# तन्त्रकीर्तिः

## आचार्य स्व० व्रजवल्लभ द्विवेदी स्मृति ग्रन्थ

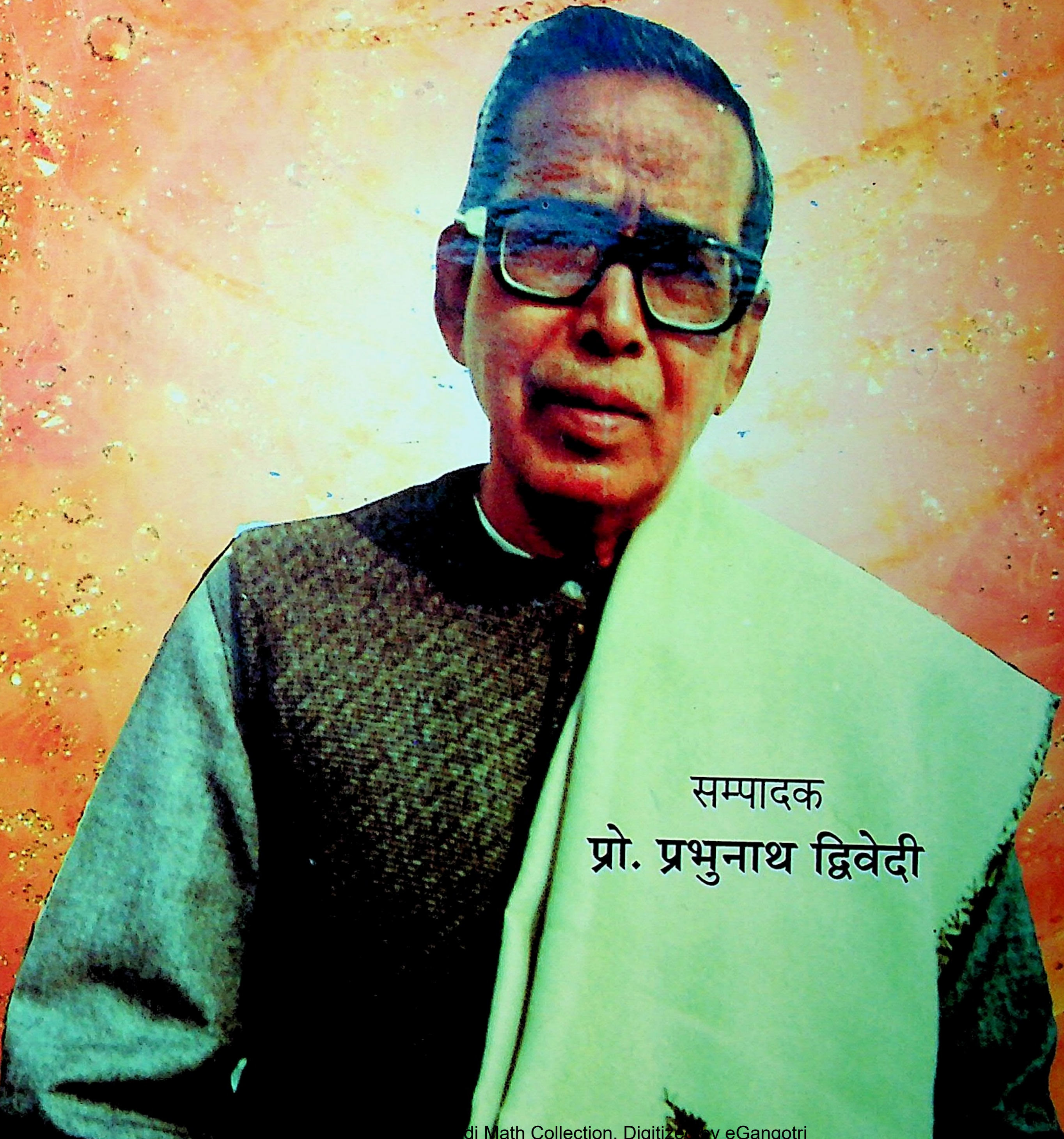

सम्पादक

**प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी**

di Math Collection. Digitiz by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तन्त्रकीर्तिः

## ( प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी-स्मृति ग्रन्थ )

सम्पादक
**प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी**
पूर्व आचार्य, संस्कृत विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रकाशक
शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्
डी. 35/77 जङ्गमवाड़ीमठ
वाराणसी- 221001

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**प्रकाशक :**
**शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्**
डी. 35/77, जङ्गमवाड़ी मठ
वाराणसी- 221001
दूरभाष : (0542) 2450546

© शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्

**मूल्य :** रु. 3000.00 (सजिल्द), रु. 2000.00 (अजिल्द)

**प्रकाशन** – विक्रम संवत् 2074

**ISBN - 978-93-82639-31-2** ( ग्रन्थमाला सं. 91 )

**अक्षर संयोजन :**
**सार संस्थान,**
पाण्डेयपुर वाराणसी-221002
दूरभाष - (0542) 2586011

**मुद्रक :**
मित्तल ऑफसेट्
सुन्दरपुर, वाराणसी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# आचार्य श्री

आगमन : दि. 30 जुलाई, 1926 प्रस्थान : दि. 17 फरवरी, 2012

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तन्त्रकीर्तिः

## आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी-स्मृतिग्रन्थ-प्रकाशन समिति

### वरिष्ठ संरक्षक

श्री 1008 जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य स्वामी जी
पीठाधीश्वर, जङ्गमबाड़ी मठ, काशी

### संरक्षक मण्डल

- श्री श्री गुरुसिद्ध महास्वामी जी
  कारंजीमठ, बेलगाँव, कर्नाटक
- पद्मश्री नवाङ् समतेन
  कुलपति,केन्द्रीय तिब्बती विश्वविद्यालय, सारनाथ, वाराणसी
- प्रो. अशोक कुमार कालिया, लखनऊ
  (पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)
- प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी, कुलाधिपति, हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
  शताब्दी पीठाचार्य, भारत-अध्ययन केन्द्र,
  काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

### परामर्शदातृ-मण्डल

- पद्मश्री रामशंकर त्रिपाठी, वाराणसी
- प्रो. नवजीवन रस्तोगी, लखनऊ
- डॉ. रमा घोष, वाराणसी
- प्रो. मार्क डिस्कावस्कि, यू. के.
- प्रो. संयुक्ता, कैम्ब्रिज, यू. के.

### सम्पादक

- प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, वाराणसी

### सह-सम्पादक

- प्रो. शीतला प्रसाद उपाध्याय, वाराणसी
- डॉ. करुणा एस. त्रिवेदी, ईडर, गुजरात

### प्रबन्ध-सम्पादक

- डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी, वाराणसी


### कार्यालय

सार संस्थान- ई.8, फेज-2, प्रेमचन्द नगर,
पाण्डेयपुर, वाराणसी-221002 (उ.प्र.)
दूरस्वन- (0542) 2586011, चल दूरस्वन-09415686502
ई-मेल : smritigranth@gmail.com, Web: www.ssar-sansthan.org
फैक्स : (0542) 2586018




CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# सम्पादकीय

जयन्ति ते सुकृतिनः प्रज्ञावन्तो विपश्चितः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

शास्त्रवित्तन्त्रमर्मज्ञो द्विवेदी व्रजवल्लभः ।
कृती सोऽद्यापि सर्वत्र स्मर्यते हि सुधीजनैः ।।

तस्य सत्कीर्तिशेषस्य पूताचारस्य धीमतः ।
पुण्यस्मृतिश्चिरं भूयादनया ग्रन्थचर्यया।।

संस्कृतविद्या, विशेषतः तन्त्रागम के क्षेत्र में अपने कर्तृत्व और उपलब्धियों से सम्पूर्ण विश्व में भारत-वैदुषी के सुप्रतिष्ठ कीर्तिध्वज को समुच्छ्रित करने वाले मनीषी मनस्वी पूज्य स्व. प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी के प्रति हार्द श्रद्धाञ्जलि के रूप में स्मृति ग्रन्थ **तन्त्रकीर्तिः** सहृदय सुधी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इस सारस्वत यज्ञ में कृपापूर्वक अपनी वाङ्मयी आहुति प्रदान करने वाले विद्वान् लेखकों के प्रति विनम्र कार्तज्ञ समर्पित है। जिन्होंने निर्धारित समयावधि में अपना योगदान कर हमें उपकृत किया और साथ ही ग्रन्थ प्रकाशन में अनपेक्षित विलम्ब के लिए उनसे क्षमा प्रार्थी भी हैं। अच्छे कार्य में बाधाएँ आती ही हैं किन्तु हमें प्रसन्नता है कि अन्ततः हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए।

श्रद्धेय प्रो व्रजवल्लभ द्विवेदी जी अपनी अन्तिम सांस तक निरन्तर चिन्तन, मनन और लेखन में क्रियाशील रहे। चाहे लेखन हो, चाहे उनकी वक्तृता रही हो, वे सदैव विषय को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करते थे। कारण, उनका शास्त्राध्ययन इतना गहन और व्यापक था कि विषयवस्तुगत जटिल समस्याएँ भी उन्हें हस्तामलकवत् हो जाती थीं।

स्मृतिग्रन्थ की प्रकाशन समिति के सभी माननीय सदस्यों के हम आभारी हैं जिन्होंने अपने स्तर से हमें पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। विशेषरूप से संरक्षक परम श्रद्धेय जगत्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी का मङ्गलाशीष हमारा मनोबल बढ़ाता रहा। वरेण्य विद्वानों के सतपरामर्श से दिशानिर्देश मिलता रहा। ग्रन्थ को मूर्तरूप प्रदान करने में सम्पादक मण्डल का सौजन्ययुत श्रम समुल्लेख्य है। विशेषतः सह-सम्पादक प्रो. शीतला प्रसाद उपाध्याय एवं डॉ. करुणा एस. त्रिवेदी ने निबन्ध संशोधन में पर्याप्त योगदान किया। आचार्य द्विवेदी जी के सुपुत्र डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी प्रबन्धगत कार्यों में सदैव हमारे सम्पर्क में रहे। प्रिय शिष्य डॉ. सरदार सरबजीत सिंह (प्रवक्ता, संस्कृत, राजकीय क्वींस कालेज, वाराणसी) एवं श्री ददन उपाध्याय ने प्रूफ संशोधन एवं सामग्री सङ्कलन में पर्याप्त श्रम किया, इन सभी के लिए मंगलकामना।

सार संस्थान के कार्यालय-सहायक श्री सुनील कुमार ने ग्रन्थसम्पूर्ति में अपनी विशिष्ट सेवा प्रदान की है, इस ग्रन्थ के प्रकाशक एवं मुद्रक ने भी अपनी सस्नेह सेवाएँ दीं। एतदर्थ इन्हें भूरिशः साधुवाद एवम् आशीर्वाद।

इस महनीय कार्य से सम्बद्ध सभी महानुभावों के प्रति सादर आभार। अन्ततः,

विश्वनाथप्रसादेन प्रासादोऽयं विनिर्मितः।।
भारती भा-रता सैषा सर्वदाऽस्मिन् प्रसीदतु।।

–सम्पादक ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तन्त्रकीर्तिः

## विषयानुक्रम


| आशीर्वचन/सन्देश/संस्मरण | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | आशीर्वचन- जगद्गुरु स्वामी डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य जी | | xv |
| 2. | स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज | | xvi |
| 3. | **सन्देश** | | |
| | क. प्रधानमंत्री | | xvii |
| | ख. सचिव | | xviii |
| | ग. मंत्रीगण | | xx |
| | घ. कुलपति | | xxi |
| | ङ. अन्य विशिष्टजन | | xxv |
| 4. | चित्रावली | | xxix |
| 5. | संक्षिप्त परिचय ( प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी) | | xliii |
| 6. | प्रातः स्मरणीय गुरुदेव : | **श्रीमान् निरंजन प्रणवस्वरूपि श्री गुरुसिद्ध महास्वामी जी** | 1 |
| 7. | तन्त्रशास्त्र के प्रतिमान : आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी | **प्रो. अमरनाथ पाण्डेय** | 2 |
| 8. | आचार्य पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व | **प्रो. शीतला प्रसाद उपाध्याय** | 7 |
| 9. | वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि | **डॉ. करुणा एस. त्रिवेदी** | 14 |
| 10 | तन्त्रसाधना एवं संस्कृति के विश्वरूप | **डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी** | 19 |
| 11. | आचार्यव्रजवल्लभेभ्यः पद्यसुमाञ्जलिशतकम् | **डॉ. धर्मदत्त चतुर्वेदी** | 43 |
| 12. | चिरस्मरणीय यादों के पल | **डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी** | 50 |
| 13. | पथ प्रदर्शक का स्मरण | **शोभा त्रिपाठी** | 53 |




CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

| | | | |
|---|---|---|---|
| 14. | सरस्वती के उपासक | श्रीमती आशा त्रिवेदी | 55 |
| 15. | इष्टदेव वन्दना, ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये | विद्यावल्लभ दवे | 57 |


<u>निबन्ध</u>


| | | | |
|---|---|---|---|
| 16. | शाक्ताद्वैततत्त्वविमर्शः | प्रो. शिवजी उपाध्यायः | 64 |
| 17. | ध्वन्यालोकलोचनेऽभिनवगुप्तस्वातन्त्र्यम् | प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी | 73 |
| 18. | श्रीमद्भगवद्गीताया उपनिषद्रूपता | प्रो.विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रो 'विनयः' | 86 |
| 19. | काव्यलक्षणपरिष्कारे रसचन्द्रिकाया वैशिष्टयम् | प्रो. रामकुमार शर्मा | 93 |
| 20. | शैवागमसन्दर्भे निगमागमयोरन्तस्सम्बन्धः | प्रो.उमारानी त्रिपाठी | 99 |
| 21. | अद्वैतवेदान्ते कर्मयोगसमीक्षणम् | डॉ. धनञ्जय कुमार पाण्डेयः | 104 |
| 22. | वेदान्तदृष्ट्या सृष्टितत्त्वानां वैज्ञानिकमनुशीलनम् | प्रो. जय प्रकाश नारायण त्रिपाठी | 110 |
| 23. | भार्गवीयमहाकाव्यस्य काव्यशास्त्रीयं वैशिष्ट्यम् | डॉ. सनन्दन कुमार त्रिपाठी | 113 |
| 24. | काश्मीरशैवदर्शनदिशा शब्दब्रह्माद्वयवादसमीक्षा | प्रो. रामकिशोर त्रिपाठी | 123 |
| 25. | वैदिकर्षीणामीश्वरैकत्वचिन्तनं तद्विमर्शश्च | डॉ. प्रह्लादसहायबुनकरः | 132 |
| 26. | पुराणसंरक्षणे ज्ञातिपुराणानां महत्त्वम् | डॉ. दक्षा जोशी | 141 |
| 27. | वैष्णवतन्त्रों के सन्दर्भ में समता के स्वर | प्रो. अशोक कुमार कालिया | 144 |
| 28. | पुष्टिमार्गीय ख्याति-विचार की समीक्षा : काश्मीर शैवसिद्धान्त के विशेष परिप्रेक्ष्य में | प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र | 152 |
| 29. | काश्मीर के अद्वैत शैवतन्त्रों में सामाजिक समता | प्रो. नवजीवन रस्तोगी | 165 |
| 30. | अभिज्ञान शाकुन्तल के पाठ विचलन की अनुक्रमिकता | प्रो. वसन्त कुमार भट्ट | 173 |
| 31. | सामाजिक व्यवस्था और बौद्धदृष्टि | पद्मश्री प्रो. रामशङ्कर त्रिपाठी | 192 |
| 32. | बौद्धतन्त्र व निगमागम-सम्बन्ध | प्रो. यदुनाथ प्रसाद दुबे | 198 |
| 33. | श्रीमद्भगवद्गीता में योग की अवधारणा | प्रो. गयाराम पाण्डेय | 208 |
| 34. | तान्त्रिक मोक्ष का अथर्ववेदीय आधार | प्रो.राजेश्वर मिश्र | 212 |
| 35. | वेदोक्त मानवीय एवं सामाजिक मूल्य और गीता | डॉ. भगवत् शरण शुक्ल | 220 |
| 36. | प्राकृत साहित्य एवम् आधुनिक शोध प्रविधियाँ | प्रो. हरिशंकर पाण्डेय | 228 |




CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

37. किरातार्जुनीय और शिशुपालवध महाकाव्य में दण्डनीति | प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी | 233
38. गीत गोविन्द का मंगलश्लोक | प्रो. राजेन्द्र नाणावटी | 245
39. अण्ड-पिण्ड सिद्धान्त का समीक्षण | डॉ. राजनाथ त्रिपाठी | 251
40. नाट्यशास्त्रानुमत लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी परम्परा का अन्तःसम्बन्ध : सामान्याभिनय के परिप्रेक्ष्य में | प्रो. सदाशिव कुमार द्विवेदी | 257
41. अथर्ववेदीय मणिबन्धन का तान्त्रिक विधान | डॉ. सुधाकर मालवीय | 275
42. वाल्मीकि-रामायण में ज्योतिषतत्त्वानुशीलन | प्रो. नागेन्द्र पाण्डेय | 293
43. कुण्डलिनी योग एवं षट्चक्रोपासना | डॉ. सुनील कुमार उपाध्याय | 298
44. वेदाध्ययन-विधि एवं महत्त्व | डॉ. अरुण कुमार मिश्र | 313
45. वेदों में उल्लिखित नदियां | प्रो.अरविन्द पी. पटेल | 317
46. महाकवि कालिदास की कृतियों में वनस्पत्यौषधियाँ | सकीना कुमारी सालवी | 323
47. काव्यशास्त्र के निकष पर रघुवंश महाकाव्य ........ | डॉ. विद्याधर सिंह | 330
48. चर्चामहाकाव्य में वर्णित नारी | श्री प्रदीप कुमार शुक्ल | 339
49. संस्कृत वाङ्मय में योगविद्या का विमर्श | डॉ. सहदेव शास्त्री | 343
50. वेदों में उदात्त राष्ट्रीय भावना | प्रो. मनसुख पी. पटोलिया | 349
51. सीता की अग्निपरीक्षा प्रसंग का संस्कृत नाटकों में निरूपण | डॉ. दिनेशचन्द्र चौबीसा | 353
52. भारत में स्त्री-आन्दोलन का इतिहास | डॉ. वीणा द्विवेदी | 357
53. ब्राह्मण-ग्रन्थों में जीवन-दर्शन | श्री नरेन्द्र कुमार पितलिया | 370
54. श्री रामचरित मानस में दो वरदान | डॉ. स्वामी जयेन्द्रानन्द सरस्वती 'हरिओम' | 374
55. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम की जीवनचर्या | डॉ. राकेश्वरी प्रसाद | 381
56. तुलसीदास और उनका काव्य | श्री मानेश्वर नाथ गुर्जर | 387
57. योग-विमर्श | डॉ. बैजनाथ पाण्डेय | 389
58. छत्रपतिसाम्राज्यम् में सात्त्विक अभिनय | डॉ. उपेन्द्रदेव पाण्डेय | 392
59. दैववाद एवं कर्मवाद के सम्बन्ध में आदि कवि.. | डॉ. श्रीमती मिण्टी पाण्डेय | 397



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

| | | | |
|---|---|---|---|
| 60. | संस्कृत साहित्य में मण्डन-कला के प्रतिमान | डॉ. भावना आचार्य | 403 |
| 61. | राजस्थान में शक्तिपूजा एवं स्थल | श्री रामनारायण सोनी | 408 |
| 62. | वेदान्त दर्शन में ब्रह्म-स्वरूप-निरूपण | डॉ. धनंजय कुमार सिंह | 411 |
| 63. | वेदों में सृष्टि विज्ञान | श्री सत्यनारायण भारद्वाज | 415 |
| 64. | श्रीगणपति-तत्त्व-विमर्श | डॉ. पवन कुमार शास्त्री | 422 |
| 65. | धर्मशास्त्र की उदारता | डॉ. ज्योत्स्ना सी. रावल | 430 |
| 66. | पातञ्जल योग सूत्र और मनोनुशासन का तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. विनोद कुमार पाण्डेय | 433 |
| 67. | अश्रुवीणा में उपचारवक्रता | प्रो. दीनानाथ शर्मा | 440 |
| 69. | श्रीमद्भागवत महापुराण में मानव-मूल्य | डॉ. बाबूलाल मीना | 445 |
| 70. | श्रीमद्भागवत पुराण कालीन अर्थव्यवस्था | डॉ. आशा सिंह | 453 |
| 71. | आचार्य हरिभद्र और पतञ्जलि के योगशास्त्रों में ईश्वर व क्रियायोग : एक समीक्षा | डॉ. देवीशङ्कर शर्मा | 462 |
| 72. | कुन्ती स्तुति : एक अनुशीलन | डॉ. मनोज कुमार चतुर्वेदी | 466 |
| 73. | समयसार में भेद-विज्ञान- निरूपण | श्रीमती रेखा यादव | 469 |
| 74. | Saiva Siddhanta- The Phenomenology of Grace | **Dr. Rama Ghosh** | 473 |
| 75. | Divine Grace According to the Advaita Saiva School of Kashmir | **Dr. Debabrata Sen Sharma** | 479 |
| 76. | Veda Vyasa And Mahabharata | **Dr. Uttam Singh** | 488 |
| 77. | Hrt Vimarsah (हृत्-विमर्शः) | **Nihar Purohit** | 492 |
| 78. | The Root and Explanation on the Sutra of Recollecting the Triple Gem. | **Dr. Tashi Tsering** | 497 |


******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# शुभाशंसा

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जगद्गुरु स्वामी डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य जी
जङ्गमवाड़ी मठ, काशी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# जगद्गुरुस्वामी डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य जी

## आशीर्वचन

आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी तन्त्रागम विषय के एक मूर्धन्य विद्वान रहे, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जी के अंतरंग शिष्यों में से आप भी एक रहे, तन्त्र और आगम सम्बन्धी सभी ग्रन्थों का तलस्पर्श अध्ययन करके उस विषय के अद्वितीय विद्वान् आप थे। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के तन्त्रागम विभाग के जब आप विभागाध्यक्ष थे तब हमारा उनसे सम्पर्क हुआ तथा वे हमारे मार्गदर्शक बने। जब काशी जंगमवाड़ी मठ में शैव भारती शोध प्रतिष्ठान की स्थापना हुयी उसके प्रेरणास्थान आप ही थे और आप ही संस्थापक निदेशक के रूप में अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक कार्य करते रहे। आपके कुशल निर्देशन में ४० से अधिक ग्रन्थ सम्पादित हो कर प्रकाशित हुये। शैव और वीर शैव धर्म के अनेक आगमों का सम्पादन, संशोधन, प्रकाशन कार्य आपके ही निर्देशन में होता आया। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से अपनी संस्था सम्बद्ध होने के कारण अनेक छात्र-छात्राओं ने पीएच.डी. की उपाधि भी आपके मार्ग दर्शन में प्राप्त की।

'विद्यायाध्ययनं तथा' इ उक्ति के अनुसार निरन्तर अध्ययन, अध्यापन में व्यस्त होने के कारण आपका जीवन एक तपस्वी जीवन से कम नहीं था। 'निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् यह उक्ति आपके जीवन में सार्थक हो जाती है।

हमारे विद्यार्थी अवस्था में संशोधन के समय सिद्धि और विषय-संयोजन में आपका बहुमूल्य मार्गदर्शन हमें प्राप्त था। देश विदेश के विद्वान् लोग आगम तत्त्वों को जानने के लिये आपकी शरण में आते थे। इससे सिद्ध होता है कि आप तन्त्रागम विषय के अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान् रहे। आपके नहीं रहने के कारण तन्त्रागम विषय में जो खाई निर्मित हुयी है उसको भरना असम्भव जैसा लग रहा है। व्यावहारिक जीवन में आर्थिक संकट होने पर भी किसी से भी कुछ अपेक्षा न करने वाला एक अर्थशुचित्व का व्यक्तित्व आपका रहा। ग्रन्थ प्रकाशन के समय में उसकी शुद्धि की तरफ आपका पूर्ण लक्ष्य रहता था। खुद देखने के बाद किसी विशिष्ट विद्वान् को पुनः देखने के लिये देते कि कोई व्यक्ति उनके किताब के एकाध मुद्रण दोष निकाल देते थे तो वह बहुत प्रसन्न होते थे। कहते थे-तुम्हारे कारण मेरा ग्रन्थ शुद्ध हुआ। ऐसा गुणग्राही व्यक्तित्व आपका रहा। ऐसे महनीय विभूति के बारे में उनके सुपुत्र डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी अनेक विद्वानों के सहयोग से एक अपूर्व ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहें हैं। इस ग्रन्थ में आचार्य द्विवेदी जी के जीवन और कार्य के प्रति तथा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित अनेक विद्वानों के लेखों का संग्रह समाविष्ट है। यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। विद्वत् समाज में इस ग्रन्थ का समादर होगा—ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। यह ग्रन्थ अपने आप में अभूतपर्व हो तथा ज्ञान का भण्डार हो ऐसा प्रयास किया जा रहा है। इस कार्य को तत्परता से कर रहे डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी एवं उनके सहयोगी सभी विद्वज्जनों को काशी विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा एंव अनन्त श्री जगद्गुरुविश्वाराध्य जी का मंगल आशीर्वाद प्राप्त हो—ऐसी मंगलकामना करते हैं।

इत्याशीषः।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशारदापीठम्
द्वारका, जामनगर, गुजरात
दूरभाष : 02892-234064

अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिर्ष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

**स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज**

श्रीज्योतिर्मठः
तोटकाचार्य गुफा, जोशीमठ, चमोली
गढ़वाल, उत्तराखण्ड
दूरभाष : 01389-222185

क्रमांक.................... सञ्चारयात्रास्थल.............................................. दिनाङ्क : ...................

## शुभकामना-सन्देश

प्रोफेसर ब्रजवल्लभ द्विवेदी जी को हमने पुरीपीठ के तत्कालीन जगद्गुरु स्वामी निरंजनदेव तीर्थ जी महाराज के साथ धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज के पास आते-जाते देखा था । बाद में जब धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज के ग्रन्थ 'वेदार्थ पारिजात' के हिन्दी अनुवाद करने का अवसर आया तो काशीस्थ पण्डितों में से यह अवसर ब्रजवल्लभ द्विवेदी जी को मिला था । तब स्वामी करपात्री जी महाराज ने कहा था कि 'मेरे भावों को याथातथ्य रूप से समझने और व्यक्त करने में ब्रजवल्लभ द्विवेदी जी ही समर्थ होंगे ।' धर्मसम्राट् की यह उक्ति पण्डित ब्रजवल्लभ द्विवेदी जी के अशेष व्यक्तित्व और गरिमा को कह देने में समर्थ है । बाद में तो उनसे हम सबकी आत्मीयता बढ़ी और शास्त्र-चर्चा होती ही रहती थी । आज वे यशःशेष हैं पर कीर्ति-शरीर ही तो जरा-मरण-भय से उपरत है ।

हमें प्रसन्नता है कि उनके एकमात्र पुत्र श्री तरुण कुमार द्विवेदी जी भी अपने पिताश्री के मार्ग पर अग्रसर हैं और अपना समय काव्यशास्त्रानुशीलन में व्यतीत करते हैं । इनके द्वारा अपने पिताजी की कीर्ति को बढ़ाने वाले ग्रन्थ 'तन्त्रकीर्ति' का प्रकाशन हो रहा है यह जानकर अति प्रसन्नता हुई ।

ग्रन्थ, न केवल उनका स्तावक अपितु पीढ़ियों का प्रेरक बने यही श्रीचन्द्रमौलीश्वर एवं पराम्बा से प्रार्थना है ।

जगद्गुरु शंकराचार्य जी महाराज की आज्ञा से

(स्वामिश्रीः अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यमेव जयते

**प्रधान मंत्री**

**Prime Minister**

## संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई है कि जंगमबाड़ी मठ एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, वाराणसी द्वारा प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी के जीवन वृतांत को शब्दबद्ध करते हुए स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है।

संस्कृत साहित्य जगत की इस विभूति को मेरा नमन।

प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी के योगदान से संस्कृत साहित्य जगत उपकृत रहा है। उनके लेखन और कृतित्व की एक अलग ही पहचान थी। आजीवन वह संस्कृत की साधना में लीन रहे। हमारे लिए यह गर्व का विषय है कि भारत की धरती ऐसे मनीषी रत्नों से युक्त रही है। संस्कृत की एक सूक्ति में कहा गया है – **'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' अर्थात् राजा को तो अपने देश में ही पूजा जाता है पर विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है।** प्रो. व्रजवल्लभ जी ऐसे ही विद्वान थे जिनका सम्मान देश ही नहीं विदेशों में भी हुआ।

ऐसे प्रकांड विद्वान और अध्येता के जीवन को स्मृति ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करना प्रशंसनीय प्रयास है, आशा करता हूं कि इस स्मृति ग्रंथ के जरिए पाठकों को प्रो. व्रजवल्लभ जी के जीवन से जुड़े पहलुओं से करीब से परिचित होने का अवसर मिलेगा।

प्रकाशपुंज के रूप में यह स्मृति ग्रंथ अपनी उपयोगिता सिद्ध करे, इसी कामना के साथ स्मृति ग्रंथ के सफल प्रकाशन हेतु हार्दिक शुभकामनाएं।

नरेन्द्र मोदी

**(नरेन्द्र मोदी)**

नई दिल्ली
09 मई, 2017

**डॉ. तरुण कु. द्विवेदी**
प्रबन्ध सम्पादक
ई - 8, फेज - 2, प्रेमचन्द नगर
पाण्डेयपुर, वाराणसी – 221002



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जी. के. दास
भारत की राष्ट्रपति का निजी सचिव
*G K. Das*
*Private Secretary to the President of India*

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-110004.
*Rashtrapati Bhavan,*
*New Delhi - 110004.*

दिनांक : 19 जुलाई, 2012

प्रिय डॉ. द्विवेदी जी,

राष्ट्रपति जी को प्रेषित आपका दिनांक 10.07.2012 का पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद। उन्हें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी की संस्कृत सेवा को सम्मानित करने एवं उनकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण रखने हेतु एक स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है।

राष्ट्रपति जी इस प्रयास के लिए आपको शुभकामनाएं प्रेषित करती हैं। तथा स्मृति ग्रंथ के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करती हैं।

सादर,

आपका,

(जी.के. दास)

डॉ. तरुण कु. द्विवेदी,
प्रबंध सम्पादक,
आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी स्मृति ग्रंथ,
ई-8, फेज-2, प्रेमचन्द नगर,
पाण्डेयपुर, वाराणसी-221002
(उ.प्र.)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अंशुमान गौड़
ANSHUMAN GAUR

भारत के उप-राष्ट्रपति के विशेष कार्य अधिकारी
OFFICER ON SPECIAL DUTY
TO THE VICE-PRESIDENT OF INDIA
नई दिल्ली/NEW DELHI - 110011
TEL. : 23016422 / 23016344 FAX : 23012645

## MESSAGE

The Hon'ble Vice President of India extends his greetings and best wishes to all those associated with brining out Remembrance Scripture publication of Acharya Vraj Vallabh Dwivedi..

(Anshuman Gaur)

**New Delhi**
**21st April, 2017.**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**सुरेन्द्र सिंह पटेल**
राज्य मंत्री
लोक निर्माण एवं सिंचाई

जी–2/3, प्रथम तल, बापू भवन
उ. प्र. सचिवालय, लखनऊ
दूरभाष : कार्यालय : 2235302
सी0एच0 : 2214803

पत्रांक 18 /पी.आई.पी./रा.मं./लो.नि.एवं सिंचा.

लखनऊ, दिनांक 22/ /2017

**संदेश**

प्रिय महोदय,

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आचार्य पण्डित श्री ब्रजबल्लभ द्विवेदी जी की संस्कृत सेवा को सम्मानित करने एवं उनकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण रखने हेतु श्रद्धेय पीठाधीश्वर, जंड़मबाडी मठ एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान वाराणसी द्वारा एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

कीर्तिशेष प्रो0 ब्रजबल्लभ द्विवेदी की विद्वता एवं तन्त्र साधना वर्तमान युग के शैक्षणिक जगत में एक आदर्श है। वे संस्कृत वाङ्मय के अध्येता, चिन्तक और मंनीषी गवेषक थे। उनकी अतुलनीय संस्कृत सेवा के कारण विभिन्न पुरस्कारों से सम्मनित भी किया गया तथा आपके द्वारा बहुत सी कृतियों का लेखन एवं सम्पादन किया गया, जो हमारे देश एवं विदेश में विद्वानों एवं शोधार्थियों के अध्ययन में सहायक सिद्ध हो रही हैं। मुझे आशा है कि स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहेगा । इस अवसर पर प्रकाशित होने वाले स्मृति ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

आपका,

(सुरेन्द्र सिंह पटेल)

डॉ0 तरूण कु0 द्विवेदी,
प्रबन्ध–सम्पादक
सार संस्थान–ई–8, फेज–2,
प्रेमचन्द नगर, पाण्डेयपुर,
वाराणसी।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**प्रो. राकेश भटनागर**
कुलपति
**Prof. Rakesh Bhatnagar** Ph.D.
*FNA, FASc, FNASc*
**Vice-Chancellor**

**काशी हिन्दू विश्वविद्यालय**
**Banaras Hindu University**
*(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916)*
**Varanasi–221005 (INDIA)**
Phone : 91-542-2368938, 2368339
Fax : 91-542-2369100, 2369951
E-mail : vc@bhu.ac.in
Website : www.bhu.ac.in

१४ जून २०१८

## संदेश

मुझें यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि कीर्तिशेष प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की संस्कृत सेवा को सम्मानित करने एवं उनकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण रखने हेतु श्रद्धेय पीठाधीश्वर, जंगमबाड़ी मठ एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, वाराणसी द्वारा एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

कीर्तिशेष प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी जी तन्त्रशास्त्र के अप्रतिम नदीष्ण विद्वान् थे। वे संस्कृत वाङ्मय के अध्येता, चिन्तक और मनीषी गवेषक थे। उनकी सर्जनशीलता असाधारण थी। उन्होनें विविध विषयों पर शताधिक ग्रन्थों एवं शोध आलेखों का प्रणयन किया था। वे वर्तमान विश्व के प्रतिनिधि तन्त्र-दार्शनिक थे। उन्होनें देश-विदेश में अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त किये थे। महामहिम राष्ट्रपति ने भी उन्हें "सर्टिफिकेट ऑफ ऑनर" से अलंकृत किया था। मेरा मानना है कि पीठाधीश्वर, जंगमबाड़ी मठ एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, वाराणसी द्वारा इस स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन एक सराहनिय प्रयास है जो जन-सामान्य को प्रो० द्विवेदी के जीवन एवं संस्कृत के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये उत्कृष्ट कार्यों से अवगत कराने में सार्थक सिद्ध होगा। मुझें पूर्ण विश्वास है कि यह स्मृति ग्रन्थ न केवल पाठकगणों में अत्यंत लोकप्रिय होगा वल्कि जनमानस इससे लाभान्वित भी होंगे।

मैं उक्त स्मृति ग्रन्थ के संपादन एवं प्रकाशन से जुड़े समस्त लोगों को बधाई देता हूँ तथा इसके सफल प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(राकेश भटनागर)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, सारनाथ, वाराणसी
ཀེནྡྲཱིཡ་ ཨུཙྪ་ ཏིབྦ་ཏཱི་ ཤིཀྵཱ་-སཾསྠཱན་ སཱ་ར་ནཱ་ཐ་ ཝཱ་རཱ་ཎ་སཱི།
དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་གཉེར་ཁང་། སཱ་ར་ནཱ་ཐ། ཝཱ་རཱ་ཎ་སཱི།
भोट विद्या संस्थान

## सन्देश

आर्यदेश भारत प्राचीन समय से ज्ञान पिपासु मनीषियों का अजस्र स्रोत रहा है, जिसके फलस्वरूप भारत में अनेक विध विद्या-परम्पराओं का प्रादुर्भाव और विकास हुआ तथा यहीं से सम्पूर्ण विश्व में इनका प्रचार-प्रसार हुआ। इसी परम्परा में प्राचीन भारतीय विद्या एवं संस्कृति के अक्षुण्ण संधारकों में प्रोफेसर व्रजवल्लभ द्विवेदी जी समकालीन समय में अन्यतम थे। द्विवेदी जी ने भारतीय तन्त्र-विद्या एवं संस्कृति के युग-पुरुष महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जी की परम्परा में तन्त्रविद्या एवं संस्कृति के परिमार्जन तथा अध्ययन-अध्यापन एवं प्रकाशन का जो अविस्मरणीय कार्य किये हैं, वे सदियों तक तन्त्रविद्या के ज्ञान पिपासुओं को मार्ग प्रदर्शित करता रहेगा।

सन् 1985 में जब इस संस्थान में प्रोफेसर जगन्नाथ उपाध्याय जी के नेतृत्व में बौद्धतन्त्रों के दुर्लभ ग्रन्थों पर शोध एवं प्रकाशन की योजना स्वीकृत हुई, तब उन्होंने भी सहर्ष इसमें अपनी सेवा प्रदान करने की सहमति दी और कालान्तर में उपाध्याय जी के देहावसान के पश्चात् इस योजना का सकुशल निर्देशन करते हुए इसे प्रकर्ष तक ले गए और अनेक युवा सहकर्मियों को इस कार्य में प्रशिक्षित किया। इतना ही नहीं, आपने इस संस्थान से अप्रकाशित बौद्ध तन्त्रशास्त्रों का सम्पादन एवं प्रकाशन कर सम्पूर्ण विश्व के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया तथा अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन कर तन्त्र के दुरुह विषयों पर विद्वानों के मध्य संवाद स्थापित किया।

प्रोफेसर द्विवेदी जी का व्यक्तित्व बहु-आयामी था तथा भारत में ही नहीं अपितु विश्व में तन्त्र-विद्या के प्रामाणिक विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध थे। आपने अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय तन्त्रविद्या और संस्कृति को विश्वभर में प्रचारित किया। भारतीय दर्शन, आगम, तन्त्रशास्त्र, भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रवाद पर आपने शताधिक ग्रन्थों का प्रणयन एवं सम्पादन कर विद्वत् समाज को समर्पित किया।

यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित तन्त्रशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् स्व. आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की पुण्यस्मृति में एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आचार्य द्विवेदी जी की पुण्यस्मृति में प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ भारत एवं विश्व के शैक्षिक जगत् के अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा।

इस अवसर पर मैं इस स्मृति-ग्रन्थ की सफलता पूर्वक प्रकाशन के लिए प्रकाशन समिति को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

१८.०६.२०१८
सारनाथ, वाराणसी

ङवङ समतेन
कुलपति

कुलपति
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-२२१००७ उ०प्र०

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES, SARNATH, VARANASI-221007, INDIA
PHONE: (0542) 2585242 • FAX: (0542) 2585150



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**प्रो० टी० एन० सिंह**
कुलपति

*Prof. T. N. Singh*
*Vice Chancellor*

**महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ**
वाराणसी-२२१ ००२

**Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith**
Varanasi-221 002

दिनांक–17 मई, 2018

## संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि श्रद्धेय पीठाधीश्वर, जंगमबाड़ी मठ एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, वाराणसी द्वारा कीर्तिशेष प्रो0 व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की संस्कृत सेवा को सम्मानित करने एवं उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने हेतु एक ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है।

आशा है ग्रंथ में प्रो0 व्रजवल्लभ द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं संस्कृत में अप्रतिम योगदान का संकलन कर प्रकाशन किया जायेगा, जो जनसामान्य के लिए प्रेरणादायक होगा।

मैं ग्रंथ के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ तथा प्रकाशन में लगे सभी सुधीजनों को साधुवाद देता हूँ।

मंगलकामनाओं सहित।

(प्रो0 टी0एन0 सिंह)
कुलपति

Tel: +91 542-2225472(O), 2221268(R), 2223160(Camp Off.), Fax:2225472(O), 2221268(R), e-mail:vcmgkvp@gmail.com



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डॉ० पृथ्वीश नाग
कुलपति

*Dr. Prithvish Nag*
*Vice Chancellor*

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी-२२१ ००२

Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith,
Varanasi-221 002.

दिनांक– 27 अप्रैल, 2017

**संदेश**

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृत विद्या के मर्मज्ञ, विलक्षण प्रतिभा के धनी एवं तंत्र दर्शन के असाधारण विद्वान कीर्तिशेष प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की पुण्यस्मृति में एक **"स्मृतिग्रन्थ"** का प्रकाशन हो रहा है। बहुभाषाविद् प्रो० द्विवेदी राष्ट्रपति पुरस्कार सहित अन्य विविध पुरस्कारों तथा सम्मानों से विभूषित हुए है। उन्होंने आजीवन सारस्वत साधना करते हुए सताधिक ग्रंथो द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। उनका वैदुष्य राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया गया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रो० द्विवेदी की पुण्यस्मृति में प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ संस्कृत के अध्येताओं तथा शोधार्थियों के लिए उपादेय सिद्ध होगा। मैं इस ग्रन्थ की प्रकाशन–समिति को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

मंगलकामनाओं सहित,

पी॰ नाग

(पृथ्वीश नाग)
कुलपति

Tel: +91 542-2225472 (O), 2221268 (R), 2223180(Camp Off.), Fax: 2225472 (O), 2221268(R), e-mail: vcmgkvp@sanchamet.in



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**दीपक अग्रवाल**
आई. ए. एस.

अ.शा.पत्रांक Memo/P.A. आयुक्त
कार्यालय : 2508203
: 2502158
: 2282333
निवास : 2282444
फैक्स : (0542) 2282345
आयुक्त, वाराणसी मण्डल, वाराणसी

दिनांक : 25/05/2010

**शुभकामना सन्देश**

यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि तन्त्रशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के मर्मज्ञ, ब्रम्हालीन आचार्य पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की पुण्यस्मृति में एक "स्मृति ग्रन्थ" का प्रकाशन हो रहा है।

बहुआयामी प्रतिभा के धनी प्रो० द्विवेदी जी तन्त्रदर्शन के ख्यातिलब्ध विद्वान थे जिनके कई ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं। यह उनका समाज के प्रति अभूतपूर्व योगदान था। उनके वैदुष्य को देखते हुए उन्हें कई पुरस्कारों से नवाजा भी गया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आचार्य द्विवेदी जी के पूर्णस्मृति में प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ आम जनमानस के साथ-साथ शैक्षणिक जगत के अध्येताओं तथा शोधार्थियों के लिए भी काफी उपयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए प्रकाशन समिति को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

भवन्निष्ठ,

(दीपक अग्रवाल)

डा० तरूण कुमार द्विवेदी,
प्रबन्ध-सम्पादक,
आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी
स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति,
सार संस्थान-ई-8, फेज-2,
प्रेमचन्द नगर, पाण्डेयपुर,
वाराणसी-221002



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शैक्षिक केंद्र :
3/9 विपुल खण्ड,
गोमती नगर,
लखनऊ – 226 010
टैलीफैक्स : 0522-2392636
ईमेल : icprlkw@gmail.com

भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्

INDIAN COUNCIL OF PHILOSOPHICAL RESEARCH

Academic Centre :
3/9, Vipul Khand,
Gomti Nagar,
Lucknow - 226 010
Telefax : 0522-2392636
Email : icprlkw@gmail.com

## स्व. प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी को भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रदत्त श्रद्धाञ्जलि

आगमों, काश्मीर शैव तंत्रों व सांख्य-योग-शाक्त-पाञ्चरात्रादि दर्शनों के परम्परागत विद्वान्, सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ, प्रो. द्विवेदी, महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज के शिष्य थे और पहले राजकीय संस्कृत कालेज वाराणसी में, और बाद में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में, कविराज जी के उत्तराधिकारी के रूप में 'सांख्य-योग-तन्त्रागम विभाग' के प्रमुख भी रहे। वे वाराणसी के ऐतिहासिक जंगमवाणी मठ द्वारा संचालित, शैव भारती संस्थान के निदेशक तथा केन्द्रीय तिब्बती विश्वविद्यालय, सारनाथ स्थित 'दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ पुनरुद्धार योजना' के उपनिदेशक भी रहे। उन्होंने शैव-शाक्त-पाञ्चरात्रादि दर्शनों, आगमों व तंत्र परम्पराओं पर अनेक ग्रन्थ लिखे व अनेक लुप्त हो चुके ग्रन्थों का पुनरुद्धार किया। विश्व संस्कृत सम्मेलनों आदि में, अनेक योरोपीय देशों की यात्रायें कीं और परम्परागत पाण्डित्य को, आधुनिक चिन्तन के प्रति समीक्षात्मक भाव रखने की दृष्टि दी।

विगत 27 मई से 6 जून 2011 तक, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् के लखनऊ स्थित शैक्षिक केन्द्र में, त्रिक् दर्शन पर आयोजित कार्यशाला हेतु उनका उद्बोधन, वीडियो टेप के रूप में प्रतिभागियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जो उनका सम्भवतः अंतिम सार्वजनिक उद्बोधन था। शारीरिक अस्वस्थता के कारण, वे उक्त कार्यक्रम में उपस्थित नहीं हो सके थे। उनके निधन से भारतीय दर्शन और चिन्तन की परम्परा को जो अपूरणीय क्षति हुई है उसकी प्रतिपूर्ति कथमपि सम्भव नहीं है। उनकी पुण्य समृति में प्रकाशित यह स्मृति ग्रन्थ निश्चित ही संग्रहणीय होगा हम इस ग्रन्थ हेतु अपनी शुभकामनाएँ देते हैं

अरुण मिश्र
26.2.2012.
(अरुण मिश्र)
निदेशक (शैक्षिक)

सेवा में,
डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी
सुपुत्र स्व. प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी
प्रेमचन्द नगर कालोनी, पाण्डेयपुर, वाराणसी

*Head Office* : Darshan Bhawan, 36, Tuglakabad Institutional Area, Mehrauli Badarpur Road, New Delhi-110 062
Tel. : 011-29964753, 29964754 • Fax : 011-29964750 • E-mail : icpr@del2.vsnl.net.in • Website : www.icpr.in



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रजतजयन्तीवर्ष – 2011
राष्ट्रिय
संस्कृत
संस्थान
मानितविश्वविद्यालय, लखनऊपरिसर
विशालखण्ड-4, गोमतीनगर, लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश)
फोन : 0522-2393748, फैक्स : 0522-2302993
ई-मेल : rsksIucknow@yahoo.com

Silver Jubilee Year - 2011
Rashtriya
Sanskrit
Sansthan
Deemed University, Lucknow Campus
Vishal Khand-4, Gomti Nagar, Lucknow-226010
Uttar Pradesh, India
Ph. : 0522-2393748 Fax : 0522-2302993

(Established under the auspices of the Ministry of Human Resources Development, Govt. of India)

क्रमांक : रा.सं.सं.ल.प./ दिनांक : 28-02-2013

## शुभकामना

भारतीय दर्शन, विशेषतः आगम सहित शैव-शाक्त-पाञ्चरात्रादि तंत्रों के गम्भीर विद्वान्, चिन्तक, संस्कृत और संस्कृतिविद्, लेखक और सम्पादक, महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज के शिष्य एवं राजकीय संस्कृत कालेज वाराणसी, बाद में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय (वासरेण सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के सांख्ययोगतंत्रागम विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष रह चुके पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी का दिनांक 17 फरवरी, 2012 को काशी में देहावसान हो गया था।

आचार्य द्विवेदी वाराणसी के जंगमवाड़ी मठ द्वारा परिचालित संस्था शैव भारती शोध संस्थान के निर्देशक व केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान (सम्प्रति केन्द्रीय तिब्बती विश्वविद्यालय सारनाथ) की महत्वकांक्षी 'दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ योजना' के अन्तर्गत उपनिदेशक भी रहे। कई बार योरोपीय विश्वविद्यालयों/संस्थाओं का शैक्षिक भ्रमण भी किया। उनके शिष्यों में भारतीय अध्येताओं के अलावा विदेशी विद्वानों का भी बड़ा वर्ग है। उनके अनेक संस्कृत निबन्धों/ग्रन्थों के योरोपीय भाषाओं में अनुवाद भी हुए हैं। उनके ग्रन्थों की संख्या विशाल है।

उनका यह स्मृति ग्रन्थ निश्चत ही अभूतपूर्व होगा तथा इसमें संस्कृत जगत के विशिष्ट पंडितों के लेख संग्रहणीय होंगे। मैं इसकी प्रकाशन हेतु शुभेच्छा प्रेषित करता हूँ।

(प्रो. सुरेन्द्र झा)
प्राचार्य

सेवा में,
डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी
पुत्र स्व. आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी
प्रेमचन्द नगर कालोनी, पाण्डेयपुर
वाराणसी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरूदेव

महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज

पितामह स्व. पं. श्री रघुनाथ जी द्विवेदी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पिता श्री स्व. पं. गोपीवल्लभ जी द्विवेदी एवं माता श्री स्व. नर्मदा

आचार्य स्व. व्रजवल्लभ द्विवेदी एवं श्रीमती सुशीला द्विवेदी

भ्राता श्री विद्यावल्लभ दवे एवं श्रीमती प्रेमलता देवी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**आचार्य स्व. व्रजवल्लभ द्विवेदी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला द्विवेदी**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पारिवारिक वैवाहिक कार्यक्रमों में आचार्य श्री



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने परिवार एवं मित्रों के साथ आचार्य श्री



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महामहिम राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा को राष्ट्रपति भवन में अपनी पुस्तक एक विश्व एक संस्कृति भेट करते हुए।

महामहिम राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा को राष्ट्रपति भवन में अपनी पुस्तक विज्ञान भैरव भेट करते हुए तथा पुस्तक के बारे में जानकारी देते हुए।

महामहिम राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा द्वारा राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त करने के उपरान्त फोटो सेशन।

महामहिम राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा से राष्ट्रपति भवन में वार्तालाप करते हुए आचार्य श्री एवं उनकी धर्मपत्नी।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल को पुस्तक भेंट करते हुए आचार्य श्री।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के द्वारा पुरस्कार ग्रहण करते हुए।

वाराणसी के सर्किट हाऊस में आचार्य श्री की पुस्तक का विमोचन करते हुए, भारत के उपराष्ट्रपति श्री भैरो सिंह शेखावत, उ.प्र. के राज्यपाल श्री विष्णुकान्त शास्त्री एवं विश्वविद्यालय प्रकाशन के श्री पी0 मोदी जी।

वाराणसी के सर्किट हाऊस में आचार्य श्री की पुस्तक विमोचन के अवसर पर, भारत के उपराष्ट्रपति श्री भैरो सिंह शेखावत, उ.प्र. के राज्यपाल श्री विष्णुकान्त शास्त्री एवं विश्वविद्यालय प्रकाशन के श्री पी0 मोदी जी, डा. तरुण द्विवेदी, प्रो. शीतला प्रसाद उपाध्याय



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विभिन्न शैक्षणिक एवं धार्मिक संस्थाओं द्वारा सम्मान प्राप्त करते हुए आचार्य श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

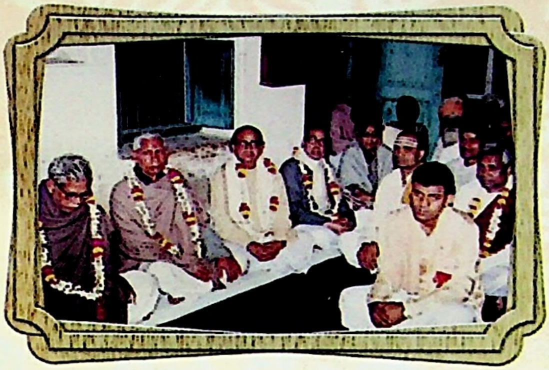

विभिन्न कार्यक्रमों में सम्मिलित आचार्य द्विवेदी जी।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यूरोपीय देशों की शैक्षणिक यात्रा के दौरान विशेषज्ञों से मुलाकात एवं
ऐतिहासिक इमारतों का अवलोकन करते हुए आचार्य द्विवेदी जी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

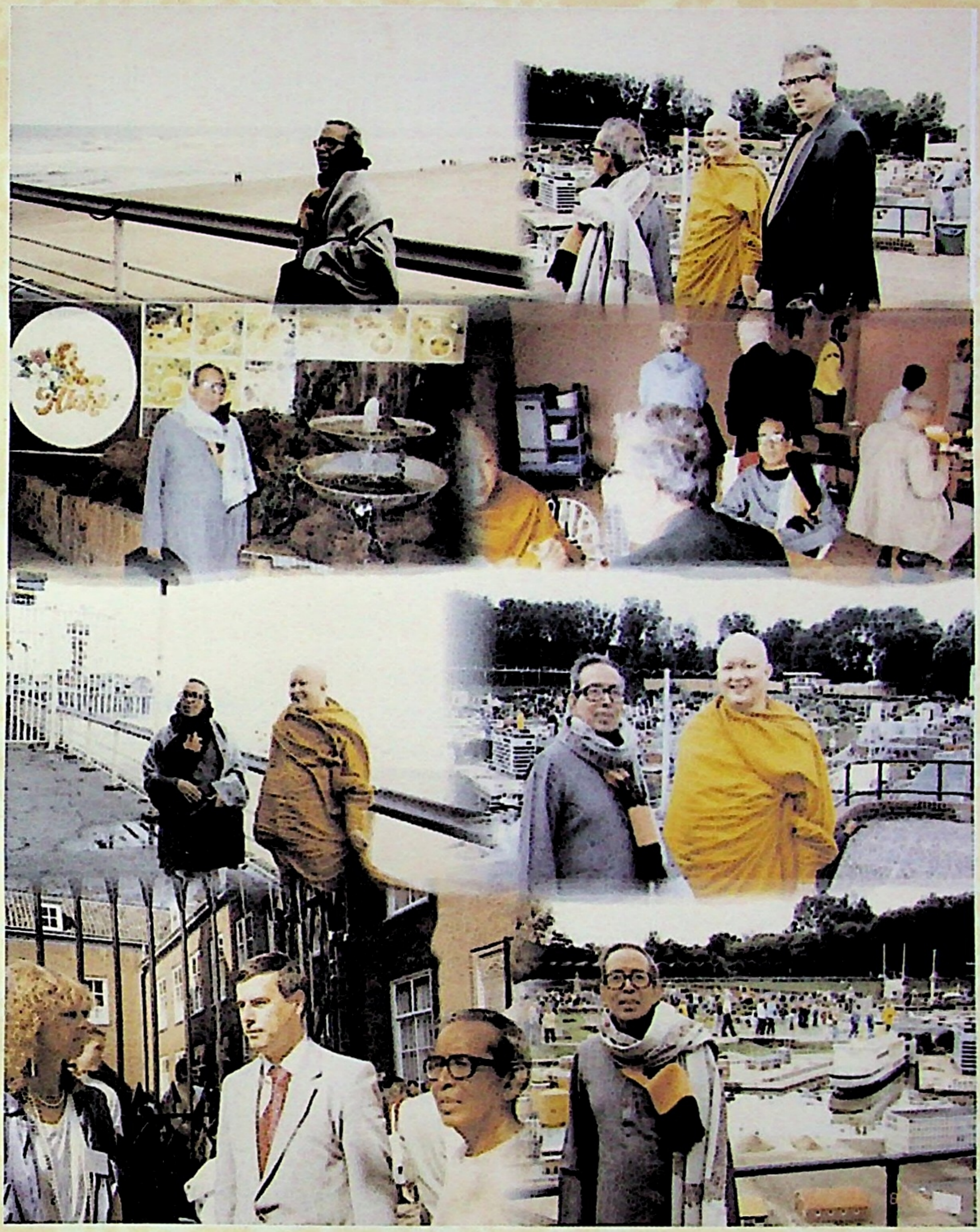

यूरोपीय देशों की शैक्षणिक यात्रा के दौरान
आचार्य श्री विभिन्न मुद्राओं में।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की स्मृति में प्रारम्भ किये गये शैवभारती पुरस्कार, जंङ्गमवाड़ी मठ एवं काशी गौरव सम्मान, सार संस्थान द्वारा प्रदत्त पुरस्कारों में काशी की महान विभूतियाँ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# संक्षिप्त परिचय

| | | |
|---|---|---|
| नाम | : | *आचार्य प्रो0 व्रजवल्लभ द्विवेदी* |
| जन्म | : | शाहपुरा (राजस्थान), जन्म तिथि—श्रावण कृष्ण दशमी शनिवार, संवत् 1978 (15 जुलाई, सन् 1926) |
| स्थायी पता | : | गुजराती मोहल्ला, केकड़ी, जिला-अजमेर (राजस्थान) |
| पता | : | एम0एम0 3 फेज-2, प्रेमचन्द नगर कालोनी, पाण्डेयपुर, वाराणसी-221002 |
| फोन नं0 | : | (0542) 2586011 |

(क) शैक्षणिक अर्हता (उपाधियाँ) —

1. दर्शनाचार्य, प्रथम श्रेणी, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी
2. एम0ए0 'संस्कृत' प्रथम श्रेणी, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
3. साहित्य रत्न 'हिन्दी', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

(ख) अन्य शैक्षणिक उपलब्धियाँ—

1. सहायक सम्पादक, सारस्वती सुषमा, संस्कृत त्रैमासिक शोध पत्रिका, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
2. प्रकाशनाधिकारी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
3. प्राध्यापक योग-तन्त्र विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
4. आचार्य एवं अध्यक्ष सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
5. शास्त्र चूड़ामणि विद्वान् (विजिटिंग प्रोफेसर), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
6. उपनिदेशक, दुर्लभ ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी
7. सम्पादक, तन्त्रग्रन्थों के साथ हिन्दी भाषा की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका 'धी:'
8. सम्पादक, गाण्डीवम्, संस्कृत साप्ताहिक पत्रिका, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(ग) (मानद रूप से)कार्य किया—

1. निदेशक, शैव भारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी (केन्द्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से मान्यता प्राप्त)
2. सदस्य, कार्य परिषद्, गुरुसिद्धपीठ गणेशपुरी, ठाणे, मुम्बई।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

3. संरक्षक, सार संस्थान, वाराणसी
इसके अतिरिक्त अनेक विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं के कार्यपरिषद् एवं परीक्षा समिति के मानद सदस्य।

**(घ) पुस्तकें, जिनको देश-विदेश में अत्यन्त ख्याति प्राप्त हुईं हैं—**

1. नित्याषोडशिकार्णव (त्रिपुरा तन्त्र) संस्कृत (इस पुस्तक की भूमिका 120 पृष्ठ की, 1967 में प्रथम संस्करण प्रकाशित)
2. निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम् (संस्कृत)
3. विज्ञान भैरव (काश्मीर का योगशास्त्र) (हिन्दी)
4. तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन (हिन्दी) (दो खण्डों में 1000 पृष्ठों का ग्रन्थ)
5. एक विश्व : एक संस्कृति
6. वेदार्थपारिजात शुक्लयजुर्वेद भाष्य (अनन्तश्री स्वामी करपात्री जी महाराज विरचित भाष्यभूमिका का 2000 पृष्ठ में हिन्दी अनुवाद)
7. सात्वतसंहिता (संस्कृत) (पांचरात्र वैष्णवागम)

**इनके अतिरिक्त नब्बे पुस्तकों का लेखन, सम्पादन व अनुवाद एवं 300 से अधिक लेख एवं निबन्ध देश-विदेश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।**

**(ङ) कुछ प्रमुख निबन्ध जिनका देश-विदेश की पत्रिकाओं प्रकाशन हुआ है— विवरण—**

1. "आगम और तन्त्रशास्त्र" (आगम आणि तन्त्रशास्त्र) का मराठी अनुवाद, पूना से सन् 1978 ई0 में वेदशास्त्रोत्तेजक सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ "प्राचीन भारतीय विद्येचे पुनर्दर्शन" (पृ0 181-196) में मुद्रित।
2. "तन्त्रशास्त्राणां सामयिक उपयोग:" (The utility of Tantras in Modern Times) सन् 1999 में लीडेन, अमेरिका आदि स्थानों से इ0जे0 ब्रिल द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ "दी संस्कृत ट्रेडीशन एण्ड तान्त्रिज्म" (पृ0 32-44) में प्रकाशित।
3. "देवो भूत्वा यजेद् देवान्" (Having Become a God, He should sacrifice to the Gods) सन् 1992 में डॉ0 आन्द्रे पादु के सम्मान में स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क से "रिचुवल एण्ड स्पेक्युलेशन इन अर्ली तान्त्रिज्म" (पृ0 32-44) में प्रकाशित।
4. "बौद्ध तन्त्रों के अनुशीलन के नये आयाम" (A New Dimension to the study of the Buddhis Tantras) सन् 1999 में डॉ0 विनयतोष भट्टाचार्य की स्मृति में कलकत्ता से प्रकाशित ग्रन्थ "तान्त्रिक बुद्धिज्म" (पृ0 146-158) में प्रकाशित।
5. "तन्त्रेषु वैदिककर्मकाण्डस्य प्रभाव:" (Le Parole EI MARMI) रोम से प्रकाशित पुस्तक।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(च) अभी तक प्राप्त पुरस्कार एवं सम्मान—

1. **कालिदास पुरस्कार, 1977 ई0 उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी, लखनऊ।**
2. संस्कृत साहित्य पुस्कार, कृति ''विज्ञानभैरव'' पर 1978 ई0 उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी, लखनऊ।
3. विशेष पुरस्कार, कृति ''तन्त्रयात्रा'' पर 1982 ई0, उ0प्र0 संस्कृत अकादमी, लखनऊ।
4. विशेष पुरस्कार, कृति ''लुप्तागमसंग्रह, भाग-1983 ई0 उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी, लखनऊ।
5. विशिष्ट संस्कृत साहित्य पुरस्कार 1986 ई0 उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी, लखनऊ।
6. राज्यस्तरीय संस्कृत साहित्य पुरस्कार, 1987 ई0 राजस्थान सरकार, जयपुर।
7. **राष्ट्रपति पुरस्कार (राष्ट्रिय-पंडित), महामहिम राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा द्वारा प्रदान। भारत सरकार 1993 ई0।**
8. हारीतराशि सम्मान, महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन, उदयपुर द्वारा प्रदत्त, 1995 ई0।
9. मीमांसाकेसरी पुरस्कार सम्मान, वैदिक संस्कृत प्रचार संघ, जयपुर द्वारा प्रदत्त 1996 ई0।
10. श्री जगद्‌गुरु विश्वभारती पुरस्कार, महाशिवरात्रि, सन् 1998 ।
11. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा संस्कृत वर्ष (2001) में सम्मानित।
12. सर्जना पुरस्कार वर्ष 2007, उ.प्र. हिन्दी संस्थान।
13. महर्षि व्यास पुरस्कार वर्ष 2008, उ.प्र. संस्कृत संस्थानम्।

(छ) साहित्य एवं संस्कृत भाषा में स्थान—

लेखक की कृतियों पर देश और विदेश के विशिष्ट विद्वानों के विचार एवं सम्मतियाँ (संलग्न) लेखक के हिन्दी और संस्कृत भाषा एवं साहित्य में स्थान का निर्धारण चयनकर्ताओं के द्वारा स्वयं किया जाय, यही उचित प्रतीत होता है। यों लेखक ने श्रद्धेय पं0 गोपीनाथ कविराज जी के आदेश के अनुसार तन्त्रागमशास्त्र के दार्शनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन की पृष्ठभूमि में भारतीय संस्कृति अथ च विश्वसंस्कृति के उपादानों को उजागर करने का प्रयत्न किया है। इनका तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन भारतरत्न म0 म0 पी0 वी0 काणे द्वारा रचित ग्रन्थ ''हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र'' के बाद भारतीय विद्या पर लिखा गया विशिष्ट ग्रन्थ है।

(ज) अन्य विवरण—

1. संस्कृत पत्रकारिता—ऊपर चर्चित ''सारस्वती सुषमा'' त्रैमासिक शोधपत्रिका (संस्कृत) तथा षाण्मासिक शोधपत्रिका ''धीः'' (हिन्दी) के अतिरिक्त संस्कृत साप्ताहिक ''गाण्डीवम्'' का भी संपादक-मंडल के सदस्य के रूप में सम्पादन तथा सम्पादकीय अग्रलेख। ('तन्त्रयात्रा' और 'निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्' में इनका पुनः प्रकाशन हुआ है)।
2. शोध-निर्देशन—(अ) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राध्यापक तथा अध्यक्ष (प्रोफेसर) पद पर रहते हुए छात्रों को शोधकार्य का निर्देशन। अभी तक शताधिक छात्र एवं छात्राओं ने प्रो0 द्विवेदी के निर्देशन में शोध कार्य किया है तथा इस समय देश-विदेश में उच्च पदों पर आसीन



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। (ब) इनके षडध्वविषयक, शिवपुराण और त्रिपुरा-भगवती विषयक तीन निबन्धों को आधार बनाकर तीन शोधकर्ताओं ने अपना-अपना शोधप्रबन्ध तैयार किया है। (स) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान में शोधरत चार छात्रों का निर्देशन। (द) विगत कई वर्षों से देश-विदेश के तन्त्रागमशास्त्र पर शोध करने वाले शोधार्थी परामर्श और सहायता के लिए आते रहते हैं।

3. **देश-विदेश की यात्रा**—(अ) विभिन्न सभा-समितियों, संमेलनों और अध्ययन-यात्राओं के प्रसंग में असम (कामरूप) से लेकर द्वारिकापुरी तक तथा जम्मू-तवी (वैष्णो देवी) से लेकर कन्याकुमारी तक पूरे देश की एकाधिक बार यात्रा, (ब) द्वादश ज्योतिर्लिंगों की यात्रा तथा दक्षिण भारत में प्रसिद्ध अष्टमूर्ति शिव की तीर्थों की यात्रा, (स) हालैण्ड एवं इंग्लैण्ड फ्रांस एवं यूरोपीय देश, ईस्ट एशिया तथा काठमाण्डू (नेपाल) की यात्रा सम्पन्न की तथा आक्सफोर्ड, कैम्बिज के अतिक्ति अन्य विख्यात विश्वविद्यालयों में विशेष व्याख्यान दिया। संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में इनमें से कुछ यात्राओं का विवरण भी प्रकाशित हो चुका है। अपने मित्रों की सहायता से हालैण्ड और इंग्लैण्ड एवं यूरोपीय देशों के सुदूर भीतरी स्थलों की कार द्वारा यात्रा। प्रो0 द्विवेदी ने विश्व संस्कृत कांफ्रेंस (हालैण्ड) में भारत का प्रतिनिधित्व किया। इन यात्राओं का प्रेरणा-स्रोत काशी के संस्कृत विद्वान् श्री महेश्वर भट्ट का "पथिकजनपातकचिन्तनस्मृति" नामक ग्रन्थ रहा है। परिचय लेखक ने अपनी प्रस्तावना के साथ इस ग्रन्थ को प्रथमतः "सारस्वती सुषमा" तथा बाद में 'तन्त्रयात्रा' में प्रकाशित कराया है। दिल्ली में हुए कत्ले-आम के ग्रन्थकर्ता महेश्वर भट्ट प्रत्यक्षदर्शी थे।

4. **विशेष अभिरुचि**—भारतीय संस्कृति के अनुशीलन में लेखक की विशेष अभिरुचि है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनका प्रकाशन हुआ है तथा "आगम और तन्त्रशास्त्र, तन्त्रयात्रा" जैसे हिन्दी-संस्कृत के संग्रह-ग्रन्थों में इनका पुनः प्रकाशन भी हो चुका है। आगमीमांसा (संस्कृत) और "भारतीय संस्कृति के नये आयाम" शीर्षक ग्रन्थ का प्रकाशन दिल्ली के लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) से हुआ है एवं "भारतीय संस्कृति का समग्र स्वरूप" नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। संस्कृति सम्बन्धी इन निबन्धों और ग्रन्थों से वर्तमान समय में भारतीय संस्कृति का स्वरूप कैसा हो? इसके लिए यथामति प्रयत्न किया गया है। लेखक का मत था कि सम्पूर्ण मानवता का विकास भारतीय संस्कृति का मुख्य प्रयोजन है। **इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए ही "तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन" नामक बृहत् ग्रन्थ का और "एक विश्व : एक संस्कृति" का निर्माण लेखक ने किया है। हिन्दी भाषा में ये लेखक की सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ मानी जा सकती हैं। तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन का प्रकाशन शैव भारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, गोदोलिया, वाराणसी से और एक विश्व : एक संस्कृति का प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी से हुआ है।**

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

## राष्ट्रियपण्डित (राष्ट्रपति-पुरस्कृत) श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी के द्वारा

# संपादित (स), अनूदित (अ) एवं रचित (र) ग्रन्थ

### देश एवं विदेश के विद्वानों की संमतियाँ एवं प्राप्त पुरस्कार

(स) प्राचीनं निर्णयपत्रम्----(धर्मशास्त्र) लखनऊ के रेजीडेंट के द्वारा प्रेषित वादपत्र का ई.इ. कम्पनी द्वारा स्थापित संस्कृत पाठशाला के विद्वानों का समाधान, सारस्वती सुषमा, व. 6, अ. 3-4; तन्त्रयात्रा में पुनः मुद्रित ।

(स) पथिकजनपातकचिन्तनस्मृति—— (यात्रावर्णन) महेश भट्ट विरचित। नादिरशाह के कत्लेआम का आँखों देखा विवरण भी। सा. सु., व. 7, अ.2; तन्त्रयात्रा में पुनः मुद्रित ।

(स) प्रत्यङ्गिरासूक्त—— पिप्पलाद शाखीय, वासुदेवद्विवेदविरचित व्याख्यान सहित। सा. सु., व 7, अ. 3-4.

(स) काण्वसंहिताभाष्यसंग्रह—— आनन्दबोध भट्टोपाध्याय विरचित। 31-40 अध्याय । सा. सु., व. 7, अ.2 से व. 9, अ. 2 पर्यन्त ।

(स) भारोत्थापनयन्त्रनिर्माणविधि—— (शिल्पशास्त्र) देवीसिंह महापति विरचित। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित प्राक्कथन । सा. सु., व. 12 अ. 2; तन्त्रयात्रा में पुनः मुद्रित ।

(स) गैरिकसूत्र—— (कला) गंगाराम जड़ी विरचित। पं. रघुनाथ शर्मा द्वारा विरचित विवरण सहित। सा. सु., व. 12, अ. 3-4; तन्त्रयात्रा में पुनः मुद्रित ।

(स) नित्याषोडशिकार्णव——(त्रिपुरा तन्त्र) शिवानन्द की ऋजुविमर्शिनी और विद्यानन्द की अर्थरत्नावली नामक टीकाओं के साथ । यहाँ परिशिष्ट भाग में दीपकनाथ सिद्ध कृत त्रिपुरसुन्दरीदण्डक का, शिवानन्द कृत सुभगोदय, सुभगोदयवासना और सौभाग्यहृदयस्तोत्र का तथा अमृतानन्द कृत सौभाग्यसुधोदय एवं चिद्विलासस्तव का भी प्रकाशन हुआ है। 120 पृष्ठ के संस्कृत उपोद्घात एवं टिप्पणी आदि के साथ इसका प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की योगतन्त्र-ग्रन्थमाला में हुआ है । इसको उत्तरप्रदेश प्रशासन का कालिदास पुरस्कार प्राप्त हुआ है। 1967 ई. में प्रथम तथा सन् 1984 द्वितीय संस्करण ।

(स) महार्थमंजरी—— (शाक्त क्रमतन्त्र) महेश्वरानन्द कृत स्वोपज्ञ व्याख्या के साथ, संस्कृत उपोद्घात एवं परिशिष्टों से संयुक्त। सं. सं. वि. वि., वाराणसी, 1972 में प्रथम तथा 1992 ई. द्वितीय संस्करण ।

(स) शक्तिसंगमतन्त्र, चतुर्थ खण्ड—— (शाक्त तन्त्र)। विस्तृत संस्कृत उपोद्घात तथा परिशिष्ट आदि से संयुक्त, गायकवाड़ शोध संस्थान, बड़ोदरा (गुजरात) से सन् 1978 में प्रकाशित ।

(अ) विज्ञानभैरव—— (काश्मीर का योगशास्त्र) । अन्वयार्था नामक संस्कृत टीका तथा रहस्यार्था नामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या से संयुक्त। विस्तृत हिन्दी उपोद्घात तथा परिशिष्ट के साथ। मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम संस्करण, सन् 1978, द्वितीय 1984 ई.। उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ द्वारा पुरस्कृत ।

(अ) वेदार्थपारिजात—— (शुक्ल यजुर्वेद) अनन्तश्री स्वामी करपात्री जी महाराज विरचित भाष्यभूमिका का हिन्दी अनुवाद । 1979-1980 ई. ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(स) तन्त्रसंग्रह, चतुर्थ भाग—— सर्वविजयी-गुप्तसाधन-माया-षडाम्नाय-गायत्री-चीनाचार-भूतिशुद्धि नामक छः तन्त्र-ग्रन्थों का संग्राहक। सं. सं. वि. वि. की योगतन्त्र-ग्रन्थमाला में सन् 1981 में प्रकाशित।

(स) सात्वतसंहिता—— (पांचरात्र वैष्णवागम) अलशिंग भट्ट विरचित भाष्य तथा विस्तृत संस्कृत उपोद्घात के साथ सं. सं. वि. वि. ग्रन्थमाला में प्रकाशित । प्रथम संस्करण 1982 ई., द्वितीय 2001.

(र) तन्त्रयात्रा—— तन्त्रागम दर्शन, संस्कृति-साहित्य, विचारविप्रुंषः(बिन्दु) और यात्रावर्णन से संबद्ध 76 संस्कृत निबन्धों का संग्रह। उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित, सन् 1982 ई.।

(र) आगममीमांसा—— वैष्णव, शैव और शाक्त आगमों का ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण। दिल्ली स्थित लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) से सन् 1982 में प्रकाशित।

(र) लुप्तागमसंग्रह—— (द्वितीय भाग) विविध ग्रन्थों में उद्धृत अनुपलब्ध आगम-तन्त्रशास्त्र के वचनों का संग्रह । लगभग 400 ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टि के परिचायक 220 पृ. के संस्कृत उपोद्घात के साथ। सं. सं. वि. वि. की योगतन्त्र ग्रन्थमाला में सन् 1983 में प्रकाशित । उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत।

(र) आगम और तन्त्रशास्त्र—तन्त्रागम दर्शन और संस्कृति संबन्धी 26 हिन्दी निबन्धों का संग्रह। परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् 1984.

(स) नेत्रतन्त्र (मृत्युंजयभट्टारक)—— क्षेमराज कृत उद्योत व्याख्या के साथ। विस्तृत हिन्दी उपोद्घात। परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् 1985.

(स) वेदान्तसूत्र श्रीकण्ठभाष्य (चतुःसूत्री भाग)—— अप्पय दीक्षित विरचित शिवार्कमणिदीपिका नामक व्याख्या के साथ। शिवधर्म ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी से सन् 1986 में प्रकाशित।

(स) गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह—— (बौद्ध तन्त्र)। दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी से सन् 1987 में विस्तृत हिन्दी उपोद्घात के साथ प्रकाशित। यहाँ पद्मवज्र की गुह्यसिद्धि, अनन्तवज्र की प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि, इन्द्रभूति की ज्ञानसिद्धि, लक्ष्मींकरा की अद्वयसिद्धि, योगिनी चिन्ता की व्यक्तभावानुगततत्वसिद्धि, डोबी हेरुक की सहजसिद्धि, कुद्दालपाद का अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश और पद्मवज्र (द्वितीय) की अद्वयविवरणप्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि नामक आठ ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है ।

(स) लिङ्गधारणचन्द्रिका—(वीरशैव) नन्दिकेश्वर शिवाचार्य विरचित। शरद् नामक संस्कृत व्याख्या तथा भाषानुवाद के साथ शिवधर्म ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी से सन् 1988 में प्रकाशित ।

(अ) योगिनीहृदय—अमृतानन्द योगी विरचित संस्कृत व्याख्या तथा भाषानुवाद से संवलित। परिशिष्ट भाग में आदिनाथ विरचित परापंचाशिका समाविष्ट । मोतीलाल बनारसीदास, सन् 1988.

(स) ज्ञानोदयतन्त्र—(बौद्ध तन्त्र), दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ सन् 1988.

(स) अष्टप्रकरण—(सिद्धान्त शैव)। सं. सं. वि. वि. वाराणसी, सन् 1988. यहाँ सद्योज्योति शिवाचार्य विरचित तत्वत्रयनिर्णय, तत्वसंग्रह, भोगकारिका, मोक्षकारिका और परमोक्षनिरासकारिका नामक पाँच ग्रन्थों का, भट्ट रामकण्ठ और अघोरशिव की व्याख्या के साथ; श्रीकण्ठ सूरि कृत रत्नत्रय और भट्ट रामकण्ठ कृत नादकारिका का अघोरशिव कृत व्याख्या के साथ तथा भोजदेव कृत तत्वप्रकाश का दो टीकाओं के साथ प्रकाशन हुआ है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(र) बौद्ध तन्त्र कोश—(प्रथम भाग) दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ सन् 1990.

(र) लुप्त बौद्ध वचन संग्रह—(प्रथम भाग) दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ, सन् 1990.

(स) वसन्ततिलक—(बौद्ध तन्त्र) कृष्णपादविरचित। रहस्यदीपिका नामक व्याख्या के साथ दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, सारनाथ से सन् 1990 में प्रकाशित ।

(स) डाकिनीजालसंवररहस्य—(बौद्ध तन्त्र) अनंगयोगी विरचित। दु. बौ. ग्र. शोध योजना, सारनाथ सन् 1990.

(स) सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान—(कार्यशाला विवरण) । दु. बौ. ग्र. शोधयोजना, सारनाथ, सन् 1990.

(स) कृष्णयमारितन्त्र—(बौद्ध तन्त्र) । कुमारचन्द प्रणीत रत्नावली पंजिका नामक व्याख्या के साथ दु. बौ. ग्र. शोधयोजना, सारनाथ से सन् 1992 में प्रकाशित ।

(स) महामायातन्त्र—(बौद्ध तन्त्र), । रत्नाकरशान्ति प्रणीत गुणवती नामक टीका के साथ दु. बौ. ग्र. शोधयोजना, सारनाथ से सन् 1992 में प्रकाशित।

(स) अभिसमयमंजरी—(बौद्ध तन्त्र) शुभाकर गुप्त विरचित। दु. बौ. ग्र. शोधयोजना, सारनाथ, सन् 1993 .

(स) कालचक्रतन्त्र—(बौद्ध तन्त्र), पुण्डरीक विरचित विमलप्रभा नामक टीका सहित। दु.बौ.ग्र. शोधयोजना, सारनाथ द्वितीय भाग, सन् 1994; तृतीय भाग, सन् 1995.

(स) शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता—अनन्तश्री स्वामी करपात्री महाराज द्वारा विरचित वेदार्थपारिजात नामक भाष्य से संवलित। श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित। द्वितीय-तृतीय अध्याय संवत् 2046; चतुर्थ-पंचम-षष्ठ अध्याय संवत् 2049; सप्तम से दशम अध्याय पर्यन्त, सं. 2049; एकादश से पंचदश अध्याय पर्यन्त, सं. 2048, षोडश से विंशति अध्याय पर्यन्त, सं. 2048 एवं 21 से 39 वें अध्याय पर्यन्त, संवत् 2048; ये सभी भाग हिन्दी भाषा में लिखित भाष्यनिष्कर्ष से संवलित हैं ।

(र) निगमागम संस्कृति—निगमागम दर्शन, साहित्येतिहास और यात्राविषयक 37 हिन्दी निबन्धों का संग्रह। शिवधर्म ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी सन् 1992.

(अ) चन्द्रज्ञानागम—(वीरशैव) क्रिया एवं चर्यापाद, भाषानुवाद, टिप्पणी, प्रस्तावना। शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1994.

(अ) सूक्ष्मागम—(वीरशैव) क्रियापाद, भाषानुवाद, टिप्पणी, प्रस्तावना। शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1994.

(अ) मकुटागम—(वीरशैव) क्रिया एवं चर्यापाद, भाषानुवाद आदि। शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1994.

(अ) पारमेश्वरागम—(वीरशैव) भाषानुवाद, टिप्पणी, प्रस्तावना । शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1995.

(स) उतरषट्क—(त्रिपुरा तन्त्र), कुलदीपिका नामक व्याख्या के साथ। सं.सं.वि.वि., वाराणसी, सन् 1995.

(र) निगमागमीय संस्कृति-दर्शन—निगमागम दर्शन, संस्कृति-साहित्य और विचारविप्रुषः(बिन्दु) से संबद्ध 77 संस्कृत निबन्धों तथा टिप्पणियों का संग्रह। शो. प्र. ग्रन्थमाला, जंगमवाड़ी, वाराणसी, सन् 1995.

(स) भारतीय तन्त्रशास्त्र—(कार्यशाला का विवरण)। दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोधयोजना, केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, सन् 1995.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(स) ज्ञानदीपविमर्शिनी—(त्रिपुरापद्धति), विद्यानन्द विरचित, परिशिष्ट आदि से संयुक्त। शो. प्र. ग्रन्थ माला, जंगम., वाराणसी सन् 1996 .

(अ) सिद्धान्तप्रकाशिका—(सिद्धान्त शैव) सर्वात्मशंभु विरचित, शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1996.

(स) संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास—तन्त्रागम विषयक एकादश खण्ड, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, सन् 1997.

(र) भारतीय संस्कृति के नये आयाम—लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, सन् 1997.

(र) वैष्णवागमविमर्श—वैखानस, पांचरात्र और भागवत आगमों का परिचय, सं.सं.वि.वि. वाराणसी, सन् 1997.

(अ) सिद्धान्तसारावलि—(सिद्धान्त शैव) त्रिलोचन शिवाचार्य विरचित, व्याख्या-भाष्य-विस्तृत प्रस्तावना-परिशिष्ट सहित, शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1998.

(र) भारतीय दर्शन परिभाषा कोश, शाक्त दर्शन—(तृतीय खण्ड)। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय (शिक्षा विभाग), भारत सरकार, नई दिल्ली, सन् 1999.

(अ) गुरुगीता, गुरुपादुकापंचक सहित—श्लोकानुवाद, भाषाभाष्य, परिशिष्ट से संवलित, शै.भा. शो. प्र. जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 1999.

(अ) देवीकालोखरागम—(वीरशैव), निरंजनसिद्ध विरचित वृति-भाषानुवाद परिशिष्ट सहित, शै. भा. शो. प्र., जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2000.

(स) सिद्धान्तशिखामणिमीमांसा—(शास्त्रसंगोष्ठी विवरण), शैव भारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2000.

(र) तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन—(दो खण्ड)। वैष्णव-शैव-शाक्त-बौद्ध-जैन-स्मार्त नामक तन्त्रागम शास्त्र की छः शाखाओं का ऐतिहासिक-दार्शनिक सांस्कृतिक विश्लेषण । शै. भा. शो. प्र., जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी सन् 2000-2001.

(स) साख्ययोगमीमांसा—लेखक एवं अनुवादक, प्रो0 मुकुटबिहारी लाल, शै. भा. शो. प्र., जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2001.

(र) भारतीय संस्कृति का समग्र स्वरूप—नैगमिक-आगमिक-सांस्कृतिक-राजनैतिक विश्लेषण परक 38 निबन्धों का संग्रह, शै.भा. शो. प्र. जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2002.

(र) एक विश्व : एक संस्कृति—विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी सन् 2003.

(र) भारतीय संस्कृति के मूल तत्व—16 संस्कार, वर्णाश्रम व्यवस्था एवं पुरुषार्थ चतुष्टय का विवेचन, वि. वि. प्रकाशन, चौक, वाराणसी सन् 2003.

(र) भारतीय दर्शन—सांख्य योग, वेदान्त, जैन एवं बौद्ध दर्शन का सामान्य परिचय, वि. वि. प्रकाशन, चौक, वाराणसी सन् 2003.

(अ) वातुलशुद्धात्य तन्त्र—(वीरशैव), भाषाभाष्य-प्रस्तावना-परिशिष्ट संवलित, शै. भा. शो. प्र., जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी सन् 2004.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(र) सांस्कृतिक राष्ट्रवाद—शै. भा. शो. प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2004.
(अ) पंचवर्णमहासूत्रभाष्य—शै. भा. शो. प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2005.
(र) सर्वागम सार सर्वस्व—शै. भा. शो. प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् 2005.
(अ) शिवपञ्चविंशतिलोकशतक्रम-सन् 2005
(र) भारत का सांस्कृतिक इतिहास-किशोर विद्यानिकेतन, वाराणसी, सन् 2008.

**उक्त सभी पुस्तकें www.ssar-sansthan.org की साइट पर उपलब्ध हैं।**

## देश एवं विदेश के विद्वानों की संमतियाँ

(सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के) योगतन्त्र विभाग में कार्य कर रहे या इसको छोड़कर गये हुए सभी व्यक्तियों में ये (पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी) ही एकमात्र व्यक्ति हैं, जिनमें कि मेरे अनुसंधान सम्बन्धी दृष्टिकोण को सही रूप में समझने और उसको उचित पद्धति से कार्यान्वित करने की पूर्ण क्षमता है। इतना ही नहीं, मेरी दृष्टि में योगतन्त्र और आगम विषय पर कार्य कर रहे नई पीढ़ी के विद्वानों में ये योग्यतम व्यक्ति हैं।

**महामहोपाध्याय प0 गोपीनाथ कविराज**
वाराणसी, 27-9-1970

मैंने ग्रन्थ (नित्याषोडशिकार्णव) आद्योपान्त पढ़ लिया है और आपके परिश्रम से बड़ा प्रभावित हुआ । ऐसे सामग्री और ऐसी भूमिका किसी पुस्तक में कभी नहीं देखी थी ।

**लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डॉ0 आदित्यनाथ झा**
दिल्ली, 1 अप्रैल 1970

ग्रन्थ (विज्ञानभैरव) के उपोद्घात में व्रजवल्लभ द्विवेदी ने आधुनिकता से ओत-प्रोत एक महत्वपूर्ण बात यह कही है कि किसी समय तान्त्रिक धर्म ने भारतीय संस्कृति को बुलन्दी पर पहुँचाया था ।…लेखक का आग्रह है कि गांधीवादी अथवा समाजवादी दर्शन में किसी योगविधि को नहीं अपनाया गया है, इसीलिये आज वे दिग्भ्रान्त हैं, रुग्ण हैं। भारतीय जनता तन और मन से बीमार है। आवश्यकता है योगशास्त्र के उपचार की। योगवासिष्ठ और विज्ञानभैरव जैसे ग्रन्थ इस अभाव को पूरी ईमानदारी से पूरा कर सकते हैं ।

**आकाशवाणी, रायपुर**

पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी द्वारा लिखित निगमागम संस्कृति नामक पुस्तक 37 निबन्धों का एक संकलन है। सभी निबन्ध भारतीय संस्कृति एवं भारतीय के दर्शन के परिचायक है। प्रो0 द्विवेदी उच्च कोटि के विद्वान् हैं। इस पुस्तक की रचना इनका अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है।

***बी0 सत्यनारायण रेड्डी, (राज्यपाल, उत्तर प्रदेश, 1992)***



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रो0 व्रजवल्लभ द्विवेदी योगशास्त्र के योग्यतम विद्वान् है, उनके द्वारा लिखित 'विज्ञान भैरव' ग्रन्थ का मैने अध्ययन किया, यह तन्त्रशास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है, इसकी तुलना अन्य ग्रन्थों से नहीं की जा सकती।

*डा. मर्रि चेन्नारेड्डी,*
*राज्यपाल उ.प्र., 1978*

प्रो0 द्विवेदी जी जैसी तन्त्र साधना तथा विद्वता विश्व के गिने चुने व्यक्तियों में ही देखने को मिलती है, इनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थ तन्त्रशास्त्र भारत एवं सम्पूर्ण विश्व के लिये अतुलनीय है, भारतीय संस्कृति पर द्विवेदी जी की विचारधारा को अपनाना राष्ट्रहित में होगा।

*नारायण दत्त तिवारी*
*मुख्यमंत्री, उत्तरांचल*
*25 जुलाई, 2002*

प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी संस्कृत साहित्य एवं योग दर्शन के प्रकांण्ड विद्वान् हैं इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ एवं उनकी अद्वितीय भूमिकाएँ सभी विषय के शोधार्थीयो के लिये अनुकरणीय होगा। विश्व पटल पर प्रो. द्विवेदी जी चमकते सितारे हैं।

*प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री*

*राज्यपाल, उ.प्र., 2003*

प्रो0 द्विवेदी जी का ग्रन्थ "एक विश्व एक संस्कृति" विश्व में व्याप्त नफरत एवं युद्ध के समाधान की ओर हमें ले जाता है, यह ग्रन्थ धर्मनिरपेक्ष की सही व्याख्या करता है। द्विवेदी जी का यह प्रयास प्रशंसनिय है।

*भैरो सिंह शेखावत*
*उपराष्ट्रपति*
*भारतीय गणराज्य,*
*जुलाई, 2003*

धर्म और संस्कृति के इस विघटनकारी देश-काल में इस पुस्तक (एक विश्व : एक संस्कृति) का विशेष महत्त्व है। भारत की पुरानी विचारधारा को आधार बनाकर लेखक ने सचमुच ही एक विश्व की स्थापना की है। यह पुस्तक भारतवासियों में आत्मविश्वास एवं दुनिया के अन्य लोगों का मार्ग प्रशस्त करती है। आशा है इस पुस्तक का गहरा स्वागत होगा।

*प्रो0 युगेश्वर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग*

*महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।*



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'एक विश्व : एक संस्कृति' के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक अतिशय उत्प्रेरक महत्त्वपूर्ण, अमूल्य सोद्देश्च विचार है, जिसका गुम्फन भारतीय मनीषा के प्रतिनिधि, विख्यात तन्त्रागमवेत्ता, चिन्तक विद्वान् प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी ने अत्यन्त अध्यवसायपूर्वक किया है।..... 'एक विश्व : एक संस्कृति' वस्तुतः विशद आध्यात्मिक चिन्तन की पृष्ठभूमि पर विनिर्मित मानव मूल्यों और सांस्कृतिक संवेदनाओं की अद्वितीय विरासत है। आचार्य द्विवेदी जी ने भारतीय चिन्तन के आलोक में नाना धर्म-दर्शन-सभ्यता-संस्कृतियों का गहन विश्लेषण करके जो पदार्थ प्रस्तुत किया है, वह निःसन्देह मानवमात्र की कल्याणयात्रा का निर्दुष्ट पाथेय है।

*डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, प्रोफेसर, संस्कृत विभाग*

*महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 26 जून, 2003 ई०*

.... The introduction (to *Nityasodasikarnava*) is highly interesting piece of original research work (by Professor Vrajavallabha Dwivedi) in a field hardly accessible to modern academic scholarship....

**Mahamahopadhyaya Pt. Gopinatha Kaviraja**
Varanasi, 7 September, 1968

....Recent instances of a correct procedure in dealing with the written sources of Hindu Tantrism of the Sakta denomination are Carlstedt's studies on the KT-regrettably written in Swedish-and in another way, Dwivedi's edition of, and Sanskrit introduction into, the NST *(Nityasodasikarnava Tantra)* very useful.

**Hindu Tantrism, p.4**
Leiden : E. J. Brill, 1979

....Prof. Dwivedi, a well-known scholar and adept in the field of Tantrasastra, has very successfully done well justice to this Tantra (*Saktisangama Tantra*) in his learned introduction....

**A. N. Jani**
Director, Oriental Institute, Baroda
21 February, 1978

....In editing such rare text *(Vijnanabhairava)* painstakingly Pt. Dwivedi deserves special mention. His wide range of knowledge in the fields of Yoga and Tantra has made such a comparative estimate of the Saiva-agama text possible. The editor has shown his openmindedness. Undoubtedly, the present edition of the *Vijnanabhairava* has been a search light for an inquisitive mind.

**N.K. Bose Memorial Foundation Newsletter**
2 June, 1979

....Many of the important works on Yoga-Tantra produced by Sri Dwivedi are testimony to his sound grasp of the system. The present work ( *Vijnanabhairava*) only adds on more feather to his cap.

**Rtam**
Lucknow



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

....This excellent edition (of Nityasodasikarnava, ed. by Vrajavallabha Dwivedi) is preceded by masterful introduction in Sanskrit which offers a succinct survey of the whole Tantric tradition.

**Hindu Tantric Literature in Sanskrit (P. 60),**
by T. Goudriaan (Holland).

....It (Satvata-samhita) is a contribution to scholarship of which you (Vrajavallabha Dwivedi) may be justly proud, and for which you will be remembered.

**H. Daniel Smith**
Professor of Religion
Syracuse University, New York

What is at present required from scholars of Tantrism is, in my opinion, the close study of single schools, on the basis of the published texts (where they exist) and, above all, the difficult work of editing what is preserved in manuscript form. Exemplary in this respect is the valuable work of Prof. Vrajavallabha Dwivedi, ex-Head of the Department of Yogatantra at the Sanskrit University of Varanasi, author of many editions of Tantric texts often accompanied by important introduction, capable as few others of moving with equal authority among the most diverse schools.

**East and West, Roma**
Vol. 33. 1983

....One should add that his numerous papers, and still more the excellent critical editions, he has made of such important texts as the Nityasodasikarnava, the Saktisangamatantra, part 4, the Satvatasamhita, and, most recently, the second volume of Luptagamasangraha (to mention only these four), together with the very learned and informative introductions in Sanskrit he wrote for these editions, are outstanding contributions to the domain of tantric studies.

Shree Vraj Vallabha Dwivedi is thus very well known, and very highly appreciated as a scholar in French indological circles (as well as, I happen to know, in corresponding circles in Great Britain, Germany and Holland.)

**(Dr.) Andre Padoux**
Director of Research in the
French Sentonal Centre for Scientific Research–10.2.84

....Both Prof. Gnoli (formerly my teacher and now my colleague in the University of Rome) and I hold you in high esteem, as the best authority in the field of Tantric studies.

**Dr. Raffable Torella**
Universita, Degli Studi Di Roma La Sapienza,
Dipartimento Di Studi Orientali,
Facolta' Di Littere E Filosofia, 12-3-84

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# प्रातःस्मरणीय गुरुदेव

**श्रीमान् निरंजन प्रणवस्वरुपि**

**श्री गुरुसिद्ध स्वामीजी***

काशी आध्यात्म, संस्कृति एवं विद्या का अति प्राचीन केन्द्र रही है। इस पुण्य काशी क्षेत्र में कई संस्कृत के विद्वान् हुए हैं। केवल विद्वान् ही नहीं बल्कि संशोधक भी हुए हैं। ये सभी लोग काशी क्षेत्र के अत्यन्त गौरवान्वित विभूति हैं। काशी के महान् विद्वानों की परम्परा में महामहोपाध्याय योगतन्त्र के महाज्ञानी पण्डित डॉ. गोपीनाथ कविराज जी के परम शिष्यों में महामहोपाध्याय विद्वान् पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी भी एक हैं।

पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने गुजरात से काशी आकर यहाँ संस्कृत का अध्ययन करके बड़े-बड़े विद्वानों का शिष्यत्व प्राप्त करके कई विषयों में आचार्य किया, इनका स्वभाव अत्यन्त सरल, सज्जन एवं सात्त्विक प्रकृतिभाव का था, सतत अध्ययनशील एवं संशोधक थे, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष होकर विद्यार्थियों को उत्तम शिक्षण प्रदान करने में, विद्यार्थियों को अपने बच्चों के समान वे मानते थे। कर्नाटक के जितने भी विद्यार्थी और मठाधीश काशी में पढ़ने आते थे आप के पास बैठकर अध्ययन किये तथा कई ने आचार्य और शोध कार्य (पीएच.डी.) भी किया। उन विद्यार्थियों मे से मैं भी एक हूँ। मुझे सन् 1970 से ही उन्होंने पढ़ाया, लिखाया और अपने मानस पुत्र के समान  एवं अपने परिवार के एक सदस्य की तरह प्यार एवं स्नेह प्रदान किया। विद्यार्थियों को केवल विश्वविद्यालय में ही नहीं अपितु घर पर भी किसी अपेक्षा के बिना, पढ़ाते थे। इनके पास देश-विदेश के छात्र/छात्राएँ भी शोध कार्य के लिये निरन्तर आते थे, उनको अत्यन्त परिश्रम से मार्गदर्शन करते थे। ये विद्यार्थी आज भी देश-विदेश में संशोधन एवं अध्यापन कर रहे हैं। आज भी ये विद्यार्थी इनका स्मरण करते हैं तथा अपना परम गुरु मानते हैं।

गुरुजी न्याय प्रिय एवं निष्ठुर वादी थे, कभी भी गलत कार्य पसन्द नहीं करते थे, समय  पर विश्वविद्यालय आकर विद्यार्थियों को पढ़ाना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। कभी-कभी मैं गलती करता था तथा समय पर पढ़ाई नहीं करता था तब मुझको प्रेम से समझाते, मेरा मार्गदर्शन करते थे। उन्हीं की कृपा से आज में कर्नाटक के बेलगाम शहर के प्राचीन श्री कारंजीमठ का पाठाधीश बनकर उनके मार्ग पर चलने का सतत प्रयास कर रहा हूँ।

इन्होंने साहित्य, आध्यात्मिक योगतन्त्र पर करीब ८० पुस्तकें स्वयं लिखी तथा सम्पादित एवं संशोधित किया, काशी के प्राचीन जगत्गुरु जंगमवाड़ी मठ से निकले पुराने सभी आगम ग्रन्थ एवं संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ के प्रकट होने में इनका बड़ा सहयोग रहा है। इनकी विद्वत्ता के कारण इनको राज्य प्रशस्ति एवं राष्ट्र प्रशस्ति एवं अन्य कई जैसे तिब्बती संस्थान और संस्थानों ने प्रशस्ति देकर इनका सम्मान किया।

ऐसे महान् विद्वान् एवं आदरणीय पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी की स्मृति में कई विद्वानों एवं उनके कई शिष्यों द्वारा लिखे हुए अमूल्य लेखों का स्मृति ग्रन्थ प्रकट होने जा रहा है। यह ग्रन्थ अतिशीघ्र प्रकट होकर विद्यार्थियों एवं संशोधकों का मार्गदर्शन करे- यही मेरी बाबा काशी विश्वनाथ से प्रार्थना है।

---

***कारंजिमठ, बेलगाम ( कर्नाटक )**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तन्त्रशास्त्र के प्रतिमान : आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी

प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय*

मैं काशी विद्यापीठ, वाराणसी में 1960 में संस्कृत के सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुआ। मैं धीरे–धीरे काशी के विद्वानों के सम्पर्क में आने लगा। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के समीप में ही स्थित है। अतः वहाँ के विद्वानों का सान्निध्य सुलभ हुआ। उस समय संस्कृत विश्वविद्यालय में अनेक उत्कृष्ट विद्वान् थे प्रो0 जगन्नाथ उपाध्याय के सम्पर्क में आने से मेरा परिचय पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी से भी हो गया। ये दोनों विद्वान् प्रारम्भ से ही अपने सिद्धान्त के प्रति आस्था से प्रभावित करते रहे। प्रो0 द्विवेदी से मेरा सम्पर्क चालीस से अधिक वर्षों से रहा। मैने उन्हें सर्वदा एक रूप में देखा वे नितान्त सरल पूर्णतया व्यवस्थित तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाले पण्डित थे। उनके आवास का स्वरूप भी व्यवस्थित रहता था। उनका चरित्र निर्मल था। वे अपने जीवन में सिद्धान्त की रक्षा के लिए सदा समर्पित रहे, जिसके कारण उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा। वे झुकने वाले व्यक्ति नहीं थे और उनके ऊपर ईश्वर की कृपा थी जिससे उनका सम्मान निरन्तर बढ़ता गया। वे अत्यधिक निःस्पृह व्यक्ति थे और उनके पुण्य का प्रभाव था कि उनके परिवार पर उनकी इस दुर्लभ छबि की पूरी छाया पड़ी।

मैं एक बार काशी विद्यापीठ के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो0 दूधनाथ चतुर्वेदी के साथ उनके बरामदे में बैठा था। संयोगवश उसी समय प्रो0 द्विवेदी उसी मार्ग से प्रो0 राजाराम शास्त्री के पास जा रहे थे। प्रो0 शास्त्री जी उस समय विद्यापीठ के कुलपति थे। प्रो0 चतुर्वेदी जी ने प्रो0 द्विवेदी जी को बुलाया और वे आकर बैठ गये। प्रो0 चतुर्वेदी जी ने उनसे कहा पण्डित जी आप अधिकारियों से भी लड़ जाते है। पण्डित "द्विवेदी ने विनम्रतापूर्वक कहा–सिद्धान्त के लिए लड़ना पड़ता है। उसके लिए मैं सदा सन्नद्ध रहूँगा, परिणाम चाहे जो कुछ भी हो।" निर्भय की यह स्थिति प्रो0 द्विवेदी के स्वरूप को अलंकृत करती थी। यह उनके व्यक्तित्व का अन्त तक अंग बनी रही।

प्रो0 द्विवेदी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठित स्थान पर विराजमान थे। उनके कार्य पर कोई उँगली नहीं उठा सकता था। उन्होंने जिसे स्वीकार कर लिया उसके साथ उनका सम्बन्ध जीवन भर उसी प्रकार बना रहा।

---

*पूर्व, अध्यक्ष, संस्कृत, विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तन्त्रशास्त्र के उद्भट विद्वान्, भारतीय संस्कृति के मर्म को समझने वाले, लेखक तथा सम्पादक के रूप में वे प्रतिष्ठित थे। उनका प्रतिपादन नितान्त स्पष्ट तथा प्रामाणिक होता था। उन्होंने आसक्ति अथवा पूर्वाग्रह से कभी भी किसी मान्यता का उल्लेख नहीं किया। वे अनासक्त साधक के रूप में कार्य करते रहे, कभी भी पुरस्कार आदि के लिए याचना करते हुए हाथ नहीं फैलाया। एक विद्वान् ने उनके वैदुष्य से प्रभावित होकर उनके नाम की संस्तुति कर दी थी, जिसके फलस्वरूप उन्हें राष्ट्रपति–सम्मान प्राप्त हो गया था।

डॉ0 राधाकृष्णन् अध्यापक के स्वरूप के विषय में लिखते हैं– "The profession of a teacher should not be reduced to a trade, it a calling, a vocation , a mission," अध्यापक की वृत्ति को व्यापार के रूप में नहीं परिणत करना चाहिए। वह एक आह्वान है एक कर्तव्य है जीवन का लक्ष्य है। श्री द्विवेदी डॉ0 सर्वपल्लि राधाकृष्णन् के अध्यापक विषयक आदर्श की प्रतिमूर्ति थे। अध्ययन, अध्यापन तथा सदाचार पूर्वक जीवनचर्या से वे असाधारण गुण के आसन पर बैठकर चर्चा करते थे, व्यवहार करते थे, लिखते थे। पूरी प्रक्रिया में वे पूर्ण निष्ठा से समर्पित मनीषी थे। यदि कहा जाय कि वे आचार्य की परम्परा के सौम्य मूर्तरूप थें, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रो0 द्विवेदी अपने विशुद्ध चरित्र और अध्यवसाय से महापुरुषों और विद्वानों को प्रभावित करते रहे। उनमें स्वामी करपात्री जी महाराज, आचार्य नरेन्द्र देव तथा प्रो0 को0 अ0 सुबह्मण्य अय्यर–सदृश मनीषी भी रहे। प्रो अय्यर अभिनन्दन ग्रन्थ में उनका एक संस्मरण प्रकाशित है– "श्रद्धेय प्राध्यापक आदर्श मानव" में वे लिखते हैं– "सन् 1950 में नवरात्र का अवकाश मेरा लखनऊ में बीता। स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव के अभिधर्मकोशभाष्य के हिन्दी अनुवाद को प्रेस में देने का कार्य आगे बढ़ चुका था। आचार्य जी तब लखनऊ विश्वविद्यालय के उप कुलपति थे। उन्हीं के स्थान पर ज्ञात हुआ कि, संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्राचार्य श्री को0· अ0 सुब्रह्मण्य अय्यर महोदय को वाराणसी के संस्कृत महाविद्यालय को सुव्यवस्थित करने के लिए प्रिंसिपल के पद पर कुछ समय के लिए भेजना आचार्य जी ने स्वीकार कर लिया है। ...... आचार्य जी जैसे मनीषी और महानुभाव ने अय्यर महोदय की विद्वत्ता तथा सदाशयता के प्रति हम लोगों के मन में श्रद्धा का बीज पनपा दिया था।" ऋतम् पृ. 29 (Vol-II-VI)

यहाँ ध्यान देना है कि श्री द्विवेदी जी ने 1950 में आचार्य नरेन्द्र देव जैसे विद्वान् को प्रभावित कर दिया था। प्रो0 द्विवेदी इस प्रसंग में प्रो0 अय्यर की प्रशासन दृष्टि का विश्लेषण करते हैं। कहते हैं कि प्रो अय्यर की दृष्टि प्राचीन तथा आधुनिक ज्ञान में समन्वय स्थापित कर प्राचीन ज्ञान को आगे बढाने की रही है। उन्होंने एक गोष्ठी का विषय रखा था "नवीन दर्शन की उत्पत्ति कैसे हो?" द्विवेदी जी लिखते हैं कि एक प्रसिद्ध विद्वान् ने नवीन दर्शन की उत्पत्ति का विरोध कर दिया था और आज भी संस्कृत समाज इस मोह निद्रा में पड़ा है। इस टिप्पणी से द्विवेदी जी की व्यापक दार्शनिक दृष्टि का ज्ञान होता है। आप देखें कि श्री द्विवेदी ने प्राचीन पद्धति से शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु उनका चिन्तन कितना व्यापक था। वे प्रो. अय्यर के विचार से सहमत हैं। दर्शन के क्षेत्र में पूरे विश्व में जो चिन्तन हो रहा है उसके महत्त्व को आचार्य द्विवेदी स्वीकार करते थे और मानते थे कि नवीन दृष्टि से चिन्तन होना



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए और दर्शन के क्षेत्र में नवीन चिन्तन का सन्निवेश भी अपेक्षित है। हाँ यह बात निश्चित है कि इसका लक्ष्य प्राचीन ज्ञान को आगे बढ़ाना होना चाहिए।

जो दृष्टि पण्डित मदनमोहन मालवीय की थी, वही प्रो0 अय्यर की भी थी। मालवीय जी ने महात्मा गांधी जी से अपने विश्वविद्यालय के लिए ऐसे व्यक्ति को चुनकर भेजने का आग्रह किया, जो प्राचीनता का प्रेमी होते हुए भी अर्वाचीनता का विरोधी न हो और जो दोनों विरुद्ध दिशाओं के बीच मध्यम मार्ग का आश्रय ले सके और जो विश्वविद्यालय के आदर्श का जीवन्त प्रतीक हो। बापू जी ने आचार्य आनन्द भाई ध्रुव को मालवीय जी द्वारा निर्धारित तुला पर तौलकर विश्वविद्यालय के वरिष्ठ अधिकारी के रूप में भेजा। यह निरूपण करना अवश्यक है कि ध्रुव जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अपनी प्रतिभा तथा निर्मल चरित्र की अमिट छाप छोड़ी और अध्यापन तथा प्रशासन दोनों क्षेत्रों में परम कीर्ति अर्जित की प्रो. ध्रुव जी यहाँ आने के पहले अहमदाबाद के गवर्नमेन्ट कालेज के प्रिंसिपल के पद पर अनेक वर्षों तक प्रतिष्ठित रहे। वे आई0 सी0 एस0 के समकक्ष आई0 ई0 एस0 (Indian Educational Service) की श्रेणी के अधिकारी थे।[1]

जिस प्रकार की दृष्टि से पण्डित मालवीय जी ने प्रो. ध्रुव जी को अपने विश्वविद्यालय में प्रतिष्ठित किया था उसी प्रकार की दृष्टि प्रो0 अय्यर की भी थी। प्रो0 द्विवेदी मालवीय जी और प्रो. अय्यर की पद्धति का ही अनुसरण करने वाले आचार्य थे। यह श्री द्विवेदी जी के उल्लेख से प्रकट होता है। प्रो0 द्विवेदी प्राचीनता के पूर्णतः समर्थक होते हुए भी आधुनिक ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धति के समर्थक थे।

प्रो0 द्विवेदी की प्रो0 अय्यर के विषय में दूसरी टिप्पणी भी तात्विक है। 1960–64 में प्रो0 अय्यर संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति (Vice Chancellor) रहे। श्री द्विवेदी लिखते हैं "इस संस्था का यह नया रूप इनको कभी पसन्द नहीं आया। वे इसको राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के रूप में ही फलता–फूलता देखना चाहते थे जिससे आधुनिक विश्वविद्यालयों के दोष इस संस्था में प्रवेश न कर सके। मनुष्य का सोचा सब कुछ होता नहीं है। संस्कृत विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर इन्होंने प्राचीन तथा नवीन ज्ञान–विज्ञान में समन्वय स्थापित करने के अपने दृष्टिकोण को पुनः विस्तार से स्पष्ट किया, किन्तु यह संस्था उनके इस दृष्टिकोण को विभिन्न कारणों से हृदयङ्गम न कर सकी। फलतः यह संस्था अपने मूल उद्देश्य से ही जो कि इसके संस्थापक स्वर्गीय सम्पूर्णानन्द जी का प्रिय मनोरथ रहा है, एक प्रकार से दूर होती चली जा रही है। हाँ इसके साथ उनका नाम अवश्य जुड़ गया है।"[2]

यहाँ हम प्रो0 द्विवेदी की दो टूक टिप्पणी का दर्शन कर सकते है। वे अपनी संस्था के भी दोषों का उदघाट्न बिना किसी हिचक के कर रहे हैं। यह सत्य के अन्वेषी का मार्ग है, जिस पर द्विवेदी जी चलते थे।

---

1. बलदेव उपाध्याय, काशी की पाण्डित्य परम्परा पृ0 993
2. ऋतम् पृ0 30 (Vol. II-VI)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्री द्विवेदी जी प्रो0 अय्यर के विषय में लिखते हैं "प्राचीन और नवीन ज्ञान–विज्ञान के प्रति इस समन्वित दृष्टिकोण के अतिरिक्त प्राचार्य अय्यर महोदय की सामान्य मूल्यों के प्रति भी एक सहज, स्वाभाविक दृष्टि है। उसी से प्रभावित होकर इन पद्धतियो के लेखक ने इस लेख के शीर्षक में आदर्श मानव शब्द जोड़ दिये हैं। इनका निरभिमान , सरल, किन्तु अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ दृष्टिकोण इनके सम्पर्क में आने वालों को सहज रूप से प्रभावित करता रहा है।......मानव के रूप में एक मनुष्य कहाँ तक उठ सकता है–इसके उदाहरण के रूप में यह लेखक आचार्य नरेन्द्र देव और प्राचार्य को0 आ0 सुब्रह्मण्य अय्यर का ही नाम ले सकता है।"[1]

मैं भी प्रो0 द्विवेदी जी के शब्दों के द्वारा ही उनके चरित्र के सम्बन्ध में कहना चाहता हूँ–"इनका (प्रो0 द्विवेदी का) निरभिमान, सरल, किन्तु अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ दृष्टिकोण इनके सम्पर्क में आने वालो को सहज रुप से प्रभावित करता रहा है।" प्रो0 द्विवेदी निरभिमान, सरल, किन्तु अपने लक्ष्य कें प्रति दृढ़ दृष्टिकोण वाले थे। मैंने इन विशेषताओं को कभी भी उनसे अलग होते नहीं देखा। अवस्था में उनसे बड़े अनेंक प्रतिष्ठित विद्वान् उनकी संस्था और अन्यत्र विद्यमान थे, किन्तु उन्होंने मानव की परमोदात्तता के निदर्शन के रूप में केवल आचार्य नरेन्द्रदेव तथा प्रो0 अय्यर का उल्लेख किया है। उन्होंने न तो किसी समबन्ध की चिन्ता की और न तो किसी के अप्रसन्न होने की। उन्होंने सत्य का आश्रय लेकर अपना विचार प्रस्तुत कर दिया।

प्रो0 द्विवेदी उक्त दोनों व्यक्तियों के स्वरूप का मूल्यांकन दार्शनिक पृष्ठभूमि पर करते हैं। पातञ्जलयोगसूत्र को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उन दोनों का चित्त मैत्री, करुणा, मुदिता तथा अपेक्षा की भावनाओं से ओतप्रोत था और है। मैं बिना किसी संकोच के यह कह सकता हूँ कि श्री द्विवेदी जी का चित्त भी मैत्री, करुणा आदि से ओतप्रोत था।

मैं 'भास्वती' नामक संस्कृत पत्रिका का सम्पादन करता था, जो काशी विद्यापीठ के संस्कृत विभाग से प्रकाशित होती थी। उसमें प्रतिष्ठित विद्धानों के लेख प्रकाशित होते थे। देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उसका स्थान था। प्रो0 द्विवेदी जी 'भास्वती ' की प्रायः प्रशंसा करते थे। प्रो0 भरत पिषारोढि ने अपनी पुस्तक 'नवरत्नम्' में उसके सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा हैं–

षाण्मासिकी विश्रुतकाशिविद्यापीठाद्विनिर्गच्छति भास्वतीयम्
भागीरथीवद्वचसांप्रवाहैर्लोकस्यमालिन्यमपोहयन्ती।
सम्पाद्यते याऽमरनाथपाण्डेयारव्यैरनल्पप्रतिभाप्रसन्नै–
रचुम्बितैः प्रौढतमैश्च लेखैराचर्यकं सा विदुषां विधत्ते।।

पत्रिका में पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पण्डितराज एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रो0 राम प्रसाद त्रिपाठी, पण्डितराज एन.टी श्रीनिवासय्यंगार, आचार्य मधुसूदन शास्त्री, प्रो0 जगन्नाथ उपाध्याय,

---

1. ऋतम् (Vol- II-VI)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी , प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी, प्रो मुकुन्द माधव शर्मा, डॉ श्री राम पाण्डेय, प्रो. श्रीराम शंकर त्रिपाठी, डॉ. गजानन्द शास्त्री मुसलगावकर, डॉ. हंस हेन्रिश हाक् (हंस हेलराज हावक), डॉ0 अमरनाथ पाण्डेय आदि के लेख प्रकाशित हुए थे। पत्रिका के प्रथम वर्ष के द्वितीय अंक (1976) में प्रो. द्विवेदी का 'चतुष्षष्टितन्त्राणि' लेख प्रकाशित हुआ था। अनुसन्धानपरक लेख में विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए चौंसठ तन्त्रों का निर्धारण किया गया है। ज्ञानार्णवतन्त्र के विषय में श्री द्विवेदी लिखते हैं– ''अतो ज्ञानार्णवतन्त्रमेतन्नित्याषोडशिकार्णवकादिमतादिभ्यः पराचीनमेवेति चतुष्षष्टितन्त्रेषु न तस्य समावेशः।'' पृ0 50। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी गयी हैं।

प्रो0 द्विवेदी तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ थे। उनके विवेचन में स्पष्टता है। वे तन्त्रगत उपासनापद्वतियों के स्वरूप और उनमें पारस्परिक भेद को जानते थे। साधना के क्रम में कहाँ–कहाँ विघ्न आते हैं और कैसे उन विघ्नों का परिहार करता हुआ साधक आगे बढ़ता है– यह विषय तन्त्रों में गूढ़ रूप से निरूपित है। इनका अधिगम आवश्यक है। फिर गुरु की महत्ता, सत्तर्क के वैशिष्ट्य तथा संविद के पारमार्थ्य का अत्यन्त विशद व्याख्यान शैवदर्शन में उपलब्ध होता है। इनकी व्याप्ति का अंकन सूक्ष्म भी है और निर्मल भी है। गुरु अपना स्वरूप कुछ अंशों में प्रकाशित करता है और कुछ अंशो में गुप्त रखता है। यदि गुरु अपने स्वरूप का कुछ भी प्रकाशन न करे, तो शिष्य में श्रद्धा का उदय नहीं होगा। गुरु शास्त्रज्ञान में उपाय बनता है और शास्त्रज्ञान सत्तर्कोदय में। जिस साधक में तीव्रतम शक्तिपात का समावेश हो जाता है उसमें सांसिद्धिक रूप से सत्तर्क समुदित हो जाता है। ऐसा साधक अपनी संवित्ति से दीक्षित होता है।

प्रो0 द्विवेदी की साधना–यात्रा में उक्त तीनों के दर्शन होते हैं। उन्होंने सद्‌गुरु से शास्त्रज्ञान प्राप्त किया और उनका शास्त्रज्ञान स्वात्मपरामर्श में परिणत हुआ। इसे हम उनके जीवन में देखते रहे हैं। उन्होंने किसी उपमार्ग का आश्रय नहीं लिया, अपने शास्त्र के निर्देश के अनुसार ही अनुसन्धान में निरत रहे। जहाँ तक उनके विषय में मेरा अनुभव है, मुझे लगता है कि वे गुरु के उस पक्ष को प्रस्तुत करते हैं जिसमें वह अपने को पूर्णतः प्रकाशित करता है, उनका जीवन खुली पुस्तक के रूप में प्रकाशित था और उसी प्रकार उनका गुरुस्वरूप भी। मेरी दृष्टि में वे उपासना की किसी गुरु पद्धति के अनुगामी नहीं थे। हाँ वे उपासनाओं की पद्धतियों का रहस्य समझते थे और उनकी विशद व्याख्या कर सकते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के अनेक सूक्ष्म तत्त्वों का उल्लेख अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व' में किया है।

आचार्य द्विवेदी मौन साधक के रूप में अपनी साधना में लगे रहे। दुःख है कि उनकी विद्वत्ता के लिए उनका जो सम्मान होना चाहिए था, वह न हो सका। संस्कृत की इस स्थिति पर कौन विचार करेगा!

उनके सम्पर्क में आने से उनके व्यक्तित्व के जो पक्ष मुझे प्रभावित करते रहे, उन्हीं के आलोक में कुछ निवेदन किया गया है, जो श्रद्धाञ्जलि के रूप में अर्पित है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# आचार्य पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

प्रो. शीतला प्रसाद उपाध्याय*

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद आचार्य पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी का जन्म राजस्थान के शाहपुरा (भीलवाड़ा) मेवाड़ में श्रावण कृष्ण दशमी, शनिवार, संवत् 1978 ( 30 जुलाई, सन् 1926 ई.) को अपनी मौसी के घर पर हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोपी वल्लभ द्विवेदी, पितामह पं. श्री रघुनाथ जी द्विवेदी एवं प्रपितामह पं. श्री रूपशंकर जी द्विवेदी थे। इनके प्रपितामह एक ईश्वर भक्त, गायत्री के उपासक दृढ़निश्चयी तथा साहसी पुरुष थे। ये **'खयालगायकी'** के उत्तम गायक भी थे। कोटाराज के नरेश के द्वारा आयोजित यज्ञ में भाग लेने के दौरान महल में लगी आग के बीच से इन्होंने अपने प्राणों की परवाह किये बिना अपने अदम्य साहस का परिचय देते हुए राजरानी को राजमहल से बाहर निकाला था जिससे प्रसन्न होकर राजा ने इनका यथोचित सम्मान किया था।

इनके पितामह पं. श्री रघुनाथ जी द्विवेदी जी का जन्म तत्कालीन अजमेर राज्य के **'केकड़ी'** कस्बे में सन् 1844 ई में हुआ था। ये भी विद्याप्रेमी, स्वतन्त्र विचारक एवं प्रभावी व्यक्तित्व के धनी थे। अरबी, फारसी एवं संस्कृत भाषा में इनको अच्छी विद्वत्ता प्राप्त थी। केकड़ी क्षेत्र के अधिकांश जागीरदार इनके शिष्य थे। तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने इनकी विद्वत्ता एवं योग्यता से प्रभावित होकर इनको 'अजमेर मेयो कालेज के राजकुमारों के होस्टल में वार्डेन पद पर नियुक्त कर दिया था। काशी के नरेश श्री विभूति नारायण सिंह भी इस कालेज के विद्यार्थी थे, जो पूरे जीवन भर इनको अपना गुरु मानते रहे। इनके कुशल प्रबन्धन, त्वरित निर्णय लेने की क्षमता व अदम्य साहस को देखकर कालेज प्रशासन ने इनको निर्णायक समिति का सदस्य बनाया था तथा स्वेच्छिक सेवानिवृत्ति का लाभ भी दिया था। इनका सम्पर्क आर्य समाज के प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द एवं महान् इतिहासविद् म.म. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा से भी था। अस्सी वर्ष की वय में मेयो कालेज अजमेर से पूरी तरह सेवानिवृत्त होकर आप केकड़ी के गुजराती मोहल्ले के अपने पैतृक आवास में आ गये थे जहाँ पर 21 मार्च सन् 1930 ई. में चैत्रमास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी (शीतला सप्तमी) को अपनी इहलीला समाप्त की। इनकी दूसरी पुत्री रम्भाबाई पुरी के पूर्व शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेव तीर्थ की जननी थीं।

आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी जी के पिताश्री पं. गोपीवल्लभ द्विवेदी जी अपने पिता पं. रघुनाथ जी के तीसरे पुत्र थे। ये बड़े ही पितृभक्त थे। पिता के सेवाव्रत में इन्होंनें अपनी 24 वर्षों की नौकरी छोड़ दी

---

***आचार्य एवम् अध्यक्ष, सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग, सं.सं.वि.वि., वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थी और अपना शेष समय अभावग्रस्त होकर व्यतीत किया। अभाव के दिनों में इनके बच्चों को अपनी मौसी का सहारा मिला था।

गोपीवल्लभ जी के चार पुत्रों में व्रजवल्लभ जी द्वितीय क्रम में थे। प. गोपीनाथ कविराज की भाँति इन्हें भी मातृपक्ष का ही सहारा मिला था। आप बाल्यावस्था से ही कुशाग्रबुद्धि के थे। अपने पैतृक निवास में रहते हुए आपने प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इनको संस्कृत भाषा के अध्ययन की प्रेरणा अपनी बुआ के लड़के श्री चन्द्रशेखर जी से मिली थी और उन्हीं के साथ ये काशी भी आये थे। काशी में आकर आपने राजकीय संस्कृत विद्यालय से **'दर्शनाचार्य'** की परीक्षा संन् 1946 ई. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा यहीं रहकर प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन से **'साहित्यरत्न'** की उपाधि अर्जित की। इन्होंने संस्कृत विषय लेकर सन् 1957 ई. में आगरा से एम.ए. की भी परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। काशी के राजकीय संस्कृत विद्यालय के प्रसिद्ध हस्तलेख संग्रहालय 'सरस्वती भवन' में आपने सन् 1944 ई. से सन् 1948 ई. तक पाण्डुलिपि–सम्पादन तथा संस्कृत वाङ्मय में शोध प्रविधि का प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

विद्याध्ययन के अनन्तर सन् 1951 ई. से सन् 1958 ई. तक काशी के राजकीय संस्कृत विद्यालय में तथा सन् 1958 से 1967 तक विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की विश्व प्रसिद्ध त्रैमासिक शोध पत्रिका 'सारस्वती सुषमा' का सम्पादन आपने अत्यन्त कुशलता के साथ किया और प्रकाशनाधिकारी के पद पर कार्य करते हुए विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली विविध विषयों की ग्रन्थमालाओं का संचालन किया। सन् 1967 से सन् 1978 ई. तक योगतन्त्र विभाग में प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे और सन् 1978 ई. में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के अपरनाम वाले सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सांख्ययोगतन्त्रागम के आचार्य एवम् अध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर सन् 1988 ई. में सेवानिवृत्त हुए। इसके अनन्तर शास्त्रचूडामणि योजनान्तर्गत इसी विभाग के अध्यापकों एवं शोधार्थियों का मार्गदर्शन करते रहे। यहाँ से सेवा निवृत्त होने के पश्चात् प्रो. जगन्नाथ उपाध्याय के आग्रह पर इन्होंने नवम्बर सन् 1988 ई. से सन् 2003 ई. तक सारनाथ के केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान द्वारा संचालित 'दुर्लभ बौद्धग्रन्थ शोध योजना' में उपनिदेशक पद पर कार्य करते हुए ग्रन्थों का उद्धार किया। तदन्तर सन् 2004 ई. से जीवन के अन्तिम समय तक काशी के जंगमवाड़ी मठ द्वारा स्थापित **'शैवभारती शोध प्रतिष्ठान'**, में निदेशक पद का दायित्व वहन करते हुए महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित करवाया। **'सारस्वती सुषमा'** त्रैमासिक शोध पत्रिका के अतिरिक्त इन्होंने केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ की सुप्रसिद्ध षाण्मासिक शोध पत्रिका **'धीः'** का तथा संस्कृत साप्ताहिक पत्र **'गाण्डीवम्'** के सम्पादक मण्डल के सदस्य के रूप में सफलतापूर्वक सम्पादन किया है।

आचार्य द्विवेदी जी की विभिन्न सभा–समितियों, सम्मेलनों और अध्ययन–यात्राओं के प्रसंग में देश और विदेश में अनेक शैक्षणिक यात्राएँ हुई थी। इन्होंने सन् 1987 ई. में हालैण्ड में आयोजित 'विश्व संस्कृत सम्मेलन' में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। उसी समय यूरोप के कई देशों की यात्रा करते हुए आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में इनका विशेष व्याख्यान भी हुआ था। अपने जीवन–काल में आपने राष्ट्रिय



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और अन्ताराष्ट्रिय सेमिनारों में भाग लेते हुए विभिन्न शैक्षणिक सत्रों में अपने सम्बोधनों से विद्वानों को चमत्कृत किया है। श्री कविराज के बाद आगम और तन्त्र शास्त्र में आप प्रमाण पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आपकी शिष्य–परम्परा के अनेक जन देश और विदेशों में उच्च पदों पर आसीन हैं जिनके सत्प्रयासों से आपके लेखों का कई भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। सौभाग्यवश इन पंक्तियों के लेखक को भी आपका शिष्यत्व प्राप्त है।

आपने शताधिक गवेषणापूर्ण शोधपत्रों के साथ–साथ 31 सम्पादित ग्रन्थ, 13 अनूदित ग्रन्थ तथा 19 स्वरचित ग्रन्थों की अमूल्य–निधियों की महत्त्वपूर्ण भेंट इस संसार को समर्पित किया है। तन्त्र और आगम शास्त्रों के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के अनुशीलन मे भी इनकी गहरी रुचि रही है और इस सन्दर्भ में इनके पाँच स्वरचित ग्रन्थ प्रकाशित हैं। परम श्रद्धेय स्वामी करपात्री जी महराज के "वेदार्थ पारिजात भाष्य" का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया है।

इनके सारस्वत अवदान के लिए इन्हें उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा छः बार पुरस्कृत किया गया था। इसके अतिरिक्त इन्हें राजस्थान सरकार द्वारा, महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन उदयपुर द्वारा, वैदिक संस्कृत प्रचार संघ जयपुर द्वारा तथा जंगमवाड़ी मठ वाराणसी द्वारा पुरस्कृत किया गया था। भारत सरकार द्वारा संस्कृत भाषा के क्षेत्र में दिया जाने वाला विशिष्ट 'राष्ट्रपति पुरस्कार' भी इन्हें प्राप्त हुआ था।

आचार्य द्विवेदी जी ने भारतीय दर्शनों का प्रारम्भिक अध्ययन पं. बालबोध मिश्र, पं. रघुनाथ शर्मा एवं पं. ढुण्डिराज शास्त्री जी से किया था, तथापि इन पर आचार्य नरेन्द्रदेव एवं प्रो. को.अ. सुब्रह्मण्य अय्यर का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। पश्चात् काल में इन्हें इस राष्ट्र के सर्वोत्कृष्ट विद्वान् म. म. पं. गोपीनाथ कविराज का सान्निध्य प्राप्त हुआ। इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों एवं निबन्धों में सर्वत्र कविराज जी का ही दृष्टिकोण और उनके द्वारा निर्धारित पद्धति का अनुसरण दिखलायी पड़ता है। ये अपने द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार के विषय में लिखते समय उसकी बहिरंग और अन्तरंग परीक्षा में सन्तुलित ध्यान देते थे और आवश्यकता पड़ने पर सन्त कबीर की शैली में स्पष्ट टिप्पणी भी करते थे। यह दृष्टि इन्हें पं. श्री कविराज जी से ही मिली थी। इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में नित्याषोडशिकार्णव, शक्तिसङ्गमतन्त्र (चतुर्थ खण्ड), सात्वतसंहिता और लुप्तागमसंग्रह (द्वितीय भाग) आदि ग्रन्थ इनके द्वारा लिखित विस्तृत उपोद्घातों के साथ प्रकाशित हैं जिनमें श्री कविराज जी की दृष्टि और उनके द्वारा निर्धारित पद्धति का अनुसरण किया गया है। भारतीय तन्त्रशास्त्र का गम्भीर अनुशीलन, गहन चिन्तन एवं पूर्वापर की समीक्षा करना इनकी रुचि ही नहीं, स्वभाव बन गया था। अपने लौकिक व्यावहारिक जीवन में ये अत्यन्त सजगता तथा कठोरता का पालन करते थे और अपने शिष्यों एवम् अनुयायियों से इसी प्रकार की अपेक्षा भी रखते थे। इनका मानना है कि भारतीय तन्त्रशास्त्र की सभी शाखाओं की उत्पत्ति मूलतः, भारतीय ही है और इन सभी ने अध्यात्म को बाहर लाने की चेष्टा की है। मानवमात्र को इसका अधिकारी माना है। इनका यह भी मानना है कि आधुनिक विज्ञान को भी चित्त के प्रभास्वरता के दर्शन की आवश्यकता है, अन्यथा चित्त की मलिनता से जुड़ा विज्ञान एक दिन सब कुछ नष्ट कर देगा।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय तन्त्रशास्त्र के अध्ययन की दिशा निर्धारित करते हुए आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि इस शास्त्र का अध्ययन हमें आचार्य अभिनवगुप्तपाद के 'तन्त्रालोक' को केन्द्र– बिन्दु मानकर करना चाहिए। अभिनवगुप्त तथा उनकी शिष्य–परम्परा में उद्धृत विशाल आगमिक एवं तान्त्रिक साहित्य को हम प्राचीन काल तथा इससे इतर और भिन्न साहित्य को नवीन काल में आविर्भूत मान सकते हैं। इन ग्रन्थों के अध्ययन से इनके समय, प्रकृति और प्रतिपाद्य विषयों का भेद स्वतः स्पष्ट हो जाता है। वर्तमान काल में अभिनवगुप्त के पहले और बाद में आविर्भूत शास्त्रों को एक में मिला देने पर नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ उठ खड़ी हो गयी हैं। उदाहरण के लिए यदि हम तन्त्रशास्त्र के आगम–निगम अथवा आगम–यामल–तन्त्र आदि विभागों को ही लें तो, अभिनवगुप्त के पूर्वकालीन साहित्यों में आगम और निगम जैसा विभाजन उपलब्ध नहीं होता। वहाँ सामान्यतः आगमशब्द तन्त्रशास्त्र के और निगमशब्द वेद–वेदान्त, दर्शन आदि अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं। इसी प्रकार तन्त्रालोक–विवेक में उद्धृत श्रीकण्ठीसंहिता के अनुसार यामल–तन्त्रों की गणना चौसठ प्रकार के भैरवागमों में की गई है, अतः इनकी प्रकृति अन्य भैरवागमों के अनुकूल ही होनी चाहिए। तब वाराहीतन्त्र के आधार पर यामलतन्त्रों की नई व्याख्या कालभेद से प्रयुक्त ही कही जा सकती है।

अपने पूर्ववर्ती कतिपय विद्वानों द्वारा भारतीय तन्त्र शास्त्र पर लगाये गये विदेशी प्रभावों के आक्षेप के प्रत्युत्तर में आचार्य द्विवेदी यह कहते हैं कि यह सही है कि परवर्ती काल का यह सास साहित्य बंगाल में ही आविर्भूत हुआ था, किन्तु यह वह साहित्य नहीं है, जो असम और नेपाल में और बौद्धधर्म के माध्यम से तिब्बत तथा चीन में गया था। यह निर्यातित ज्ञान अभिनवगुप्त के पूर्व भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आविर्भूत हुआ था। इसके विपरीत परवर्तीकाल का पूरा साहित्य, इस्लाम के आक्रमण के कारण पूर्ववर्ती साहित्यों के प्रायः नष्ट हो जाने के बाद नेपाल और तिब्बत में सुरक्षित तन्त्रों की सहायता से पुनरुद्धार के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इसका मुख्य केन्द्र बंगाल था। जब कुछ विद्वान् भारतीय तन्त्रशास्त्र पर विदेशी प्रभाव की बात करते हैं तब उनकी यह बात इसी परवर्तीकाल में आविर्भूत शास्त्र पर लागू होती है।

महाभारत के नारायणीयोपाख्यान से स्पष्ट होता है कि इसकी रचना के समय तक इस राष्ट्र में वेदारण्यक के अतिरिक्त सांख्य, योग, पांचरात्र एवं पाशुपत सम्प्रदाय एवं उनके शास्त्र प्रमाणभूत मान लिए गये थे। इनके मध्य मौलिक पार्थक्य स्पष्ट करते हुए आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि वस्तुस्थिति यह है कि भागवतों (पांचरात्र) और पाशुपतों ने एक ऐसी पूजाविधि का आविष्कार किया था, जिसमें आराधक आराध्य के साथ आन्तर और बाह्य वरिवस्या (पूजा) के द्वारा तादात्म्य स्थापित करने के उद्देश्य से भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, न्यास और मुद्राओं की सहायता से स्वयं देवस्वरूप हो जाता है। ''देवो भूत्वा देवं यजेत्'' यह उनका सिद्धान्तवाक्य था। स्वयं देवस्वरूप होकर वह अपने इष्टदेव की बाह्य वरिवस्या सम्पादित करता था। बाह्य वरिवस्या की पूर्णता के लिए यहाँ व्रत, उपवास, उत्सव, पर्व आदि का विधान था और आन्तर वरिवस्या के लिए वह कुण्डलिनी योग का सहारा लेता था। वैदिक कर्मकाण्ड से विलक्षण इस कर्मकाण्ड की निष्पत्ति के लिए जिस शास्त्र का आविर्भाव हुआ, वही आज आगम या



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तन्त्रशास्त्र के नाम से जाना जाता है। अपने आराध्य की आन्तर वरिवस्या के लिए इनका अपना दर्शन और योगपद्धति है और बाह्य वरिवस्या के लिए मन्दिरों और मूतिर्यों का निर्माण तथा उनकी आराधना की विशिष्ट विधियाँ इनमें वर्णित हैं। भारतीय वाङ्मय में कहीं श्रुति–स्मृति के, कही पुराणों और धर्मशास्त्रों के समकक्ष इनका प्रामाण्य स्वीकार किया गया है। वैदिक दृष्टि की तुलना में तान्त्रिक दृष्टि की विशेषताओं की चर्चा करते हुए आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि वाक्‌चतुष्टयात्मक शब्दब्रह्म की उपासना और षडध्व की प्रक्रिया से सारे जगत्प्रपंच की सृष्टि एवं प्रविलापन को मान्यता आगमिक दृष्टि की पहली विशेषता है। शास्त्रों में स्त्री एवं शूद्र के भी अधिकार की स्वीकृति इसकी दूसरी विशेषता है।

वैदिक और पौराणिक दृष्टिकोणों के मौलिक स्वरूप में हुए परिवर्तनों पर चर्चा करते हुए आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि वैदिक यज्ञों को न केवल उंपनिषदों ने कमजोर नाव बताया, बल्कि उसी समय सांख्य, योग, पांचरात्र और पाशुपत जैसे दार्शनिक एवं धार्मिक सम्प्रदायों का भी उदय हुआ। बुद्ध और महावीर ने जब वैदिक यज्ञीय धर्म पर प्रबल आक्रमण किया, तब भारतीय प्रबुद्ध चिन्तकों ने एक नवीन दृष्टिकोण की उद्‌भावना की जिसका पूर्ण प्रतिविम्ब हमें महाभारत और पुराणों में मिलता हैं। इस नवीन दृष्टिकोण में वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग, पांचरात्र ओर पाशुपत का ही नहीं, बुद्ध और महावीर के उपदेशों का सार भी हमें मिलता है और वैदिक यज्ञीय कर्मकाण्ड से सर्वथा विपरीत भक्ति प्रधान पौराणिक धर्म के दर्शन होते हें जिनमें स्त्री और शूद्र को भी समान अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार नवीन पौराणिक धर्म की ही नहीं अपितु भक्ति प्रधान बौद्ध महायान धर्म की भी उत्पत्ति हुई। इस सन्दर्भ में आचार्य द्विवेदी निर्देशित करते हैं कि इस पर की जाने वाली अनुपपत्तियों का निराकरण हम आगमिक, महायानिक और पौराणिक प्रभाव की घात–प्रतिघातात्मकता के आधार पर ही कर सकते हैं। इन तीनों में आपेक्षिक दृष्टि से लिखित साहित्य के अनुपलब्ध होने पर भी आगमिक धर्म ही अधिक प्राचीन है।

सांख्य, योग, पांचरात्र और पाशुपत मत का प्राचीन वाङ्मय आज उपलब्ध नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद् की प्रकृति अन्य उपनिषदों से सर्वथा भिन्न है। छान्दोग्य उपनिषद् का 'एकायन' शब्द पांचरात्रश्रुति का निदर्शक माना जाता है। इस सन्दर्भ में आचार्य द्विवेदी का निष्कर्ष यह है कि कृतान्तपंचक ने न केवल वैदिक धर्म पर, बल्कि बौद्धधर्म पर भी प्रभाव डाला है। फलतः महायान बौद्धधर्म का आविर्भाव हुआ। महायान साहित्य और शैव–वैष्णव आगम साहित्य का घात–प्रतिघातात्मक अध्ययन होना चाहिए। यद्यपि प्राचीन आगम साहित्य स्वल्प मात्रा में ही बचा है तो भी पुराणों में हमें इनका पर्याप्त अंश सुरक्षित मिल जायेगा। साथ ही प्राचीन पांचरात्र संहिताओं का विशेषकर उपलब्ध शैवागमों का प्रकाशन और उनका महायान सूत्रों और पुराणों से तुलनात्मक अध्ययन होना नितान्त आवश्यक है। पुराणों पर परवर्ती काल में आविर्भूत शाक्ततन्त्रों के प्रभाव की बात को तो स्वीकर किया जाता है किन्तु इन पुराणों पर वैष्णव और शैवागमों के प्रभाव की ओर विद्वानों की दृष्टि अभी नहीं गयी है। पांचरात्र और पाशुपतमत ने भारतीय समन्वयवादी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में बौद्धमहायान धर्म, जैनधर्म, पौराणिकधर्म और न्याय–वैशेषिक दर्शन पर अपनी कितनी छाप–छोड़ी है, इसका विश्लेषण करना अभी बाकी है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चार्ल्स ईलियट ने परवर्ती भारतीय साहित्य को चार भागों में बाँटा है– 1. महाभारत–रामायण, 2. पुराण 3. तन्त्र और 4. सन्तसाहित्य। तृतीय विभाग तन्त्र के अन्तर्गत उन्होंने आगमों और संहिताओं का समावेश किया है। इन विभागों के क्रम में आचार्य द्विवेदी जी तृतीय विभाग तन्त्र को प्रथम स्थान पर रखने का आग्रह करते हुए यह समाधान देते हैं कि कृतान्तपंचक की पृष्ठभूमि में इतिहास और पुराण–साहित्य का विकास हुआ। इन पुराणों के प्राचीनतम स्वरूप के विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता है परन्तु पुराण आज जिस रूप में उपलब्ध हैं, उन्हीं पर आगम शास्त्र के प्रभाव की समीक्षा की जा सकती है। पुराण वेदार्थ के उपबृंहक हैं, इस विषय पर तो अनेक विद्वानों ने विचार किया है, किन्तु पुराणों में आगमार्थ का भी उपबृंहण हुआ है इस विषय पर अभी विचार नहीं के बराबर हुआ है। पुराणों में ऐसे विषयों को भी संकलित किया गया है जिनकी चर्चा वेदों में नहीं मिलती। इनमें अधिकांश विषयों का संकलन आगम–तन्त्रशास्त्र से किया गया है। अतः पुराण आगमों का भी अनुवर्तन करते हैं, इस विषय में किसी प्रकार के सन्देह की कोई स्थिति नहीं रह जाती। आगमों की अपेक्षा इतिहास और पुराण–साहित्य की विशेषता यह थी की इन्होंने वेदों का सर्वोपरि प्रामाण्य स्वीकार किया और वर्णाश्रम व्यवस्था को कोई क्षति नहीं पहुँचने दी। इनकी दूसरी विशेषता परस्परविरोधी दृष्टिकोणों में समन्वय स्थापित करना था। इन कारणों से इतिहास–पुराण साहित्य की परवर्तिता स्पष्ट प्रतीत होती है। इसके विपरीत सन्त साहित्य सीधे आगमिक और तान्त्रिक धारा से प्रभावित रहा है और पौराणिक समन्वयवादी दृष्टिकोण को भी वह अस्वीकार नहीं करता।

आचार्य द्विवेदी की मान्यता है कि भारत में विगत ढाई हजार वर्ष के धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक इतिहास पर आगम और तन्त्रशास्त्र की गहरी छाप पड़ी है और आज का भारतीय जनजीवन वैदिक धर्म की अपेक्षा तान्त्रिक धर्म से अधिक संचालित है, फिर भी यह यथार्थवादी साहित्य विद्वानों की दृष्टि में उपेक्षित हो गया, जिसके बिना हम न तो बौद्धधर्म की महायान शाखा के और न जैन धर्म तथा पौराणिक धर्म के विकास का ही यथार्थ रूप जान सकते हैं। बौद्ध और जैनधर्म के स्वरूप को परिवर्तित करने में तथा पौराणिकधर्म की प्रतिष्ठा में आगमिक साहित्य के अवदान को समझने का प्रयास अभी तक नहीं किया गया हैं। एक अन्य स्थल पर उन्होंने यह भी कहा है कि वस्तुतः कहा जा सकता है कि न केवल तन्त्रशास्त्र ने, अपितु इससे पहले आगम शास्त्र ने पुराणों पर गहरा प्रभाव डाला और प्रत्यक्ष रूप से पुराणों द्वारा भी न केवल मध्यकालीन, प्रत्युत बुद्धोत्तर कालीन भारतीय धार्मिक रीतियों तथा व्यवहारों (आचारों) को भी प्रभावित किया। पूरे देश में, उत्तर और दक्षिण में, विकसित भक्तिसाहित्य का, सिद्धों, नाथों ओर सन्तों के साहित्य का तथा सूफी सन्तों का भी अध्ययन आज वेदान्त की विभिन्न शाखाओं की पृष्ठभूमि में तो किया जाता है किन्तु अद्वैतवेदान्त को छोड़कर अन्य सभी आचार्यो का वेदान्ती दर्शन इन्हीं शैव और वैष्णव आगमों से भी प्रभावित था, इस प्रसंग में आचार्य द्विवेदी का स्पष्ट मत है कि इस विषय पर सर्वाधिक गहरा प्रकाश डालने वाले प्रथम व्यक्ति कविराज जी ही थे। अपने अनेक निबन्धों में उन्होंने विस्तार से समझाया है कि सूफीमत किस प्रकार अद्वैतवादी शंकरदर्शन की अपेक्षा शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं शाक्त दर्शन से अधिक प्रभावित है। वज्रयान, सहजयान और शाक्तदर्शन की विभिन्न धाराओं



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की अनुस्यूतता पर भी उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला था। आज उनकी इन अवधारणाओं की पृष्ठभूमि में पूरे भारतीय साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

भारतीय तन्त्रशास्त्र के अनुशीलन एवं उसकी सामयिक प्रासंगिकता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य द्विवेदी का कथन यह है कि इसके लिए आवश्यक यह होगा कि हम वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था में जातिग्रह, शंका जैसे विषयो में थोड़ी शिथिलता लावें, तान्त्रिक रहस्यवादी विधानों को योगशास्त्र की परिधि से निकाल सकें, बाह्य वरिवस्या के स्थान पर आन्तर वरिवस्या को प्रधानता दें और परिमित अहन्ता से हटाकर साधक को विश्वाहन्ता में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करा सकें तो इससे व्यष्टि और समष्टि की दूरी कम हो सकती है और प्रत्येक मानव का नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर उन्नति की ओर डग भर सकता है। तन्त्रशास्त्र के अनुशीलन का यही उत्तम पक्ष हो सकता है और इसी में तन्त्रशास्त्र की सामयिक उपयोगिता भी मानी जा सकती हैं

इस प्रकार, संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि म.म. पं. गोपीनाथ कविराज जी के पथ पर चलने वाले प्रथम व्यक्ति आचार्य द्विवेदी जी ही थे। यद्यपि तान्त्रिक कर्मकाण्ड की विधियों से उनका दूर–दूर का भी रिश्ता नहीं था, तथापि सांस्कृतिक और दार्शनिक परिवेश में उनके द्वारा किये गये योगदान को नकारा नहीं जा सकता। उनकी लेखनी ने भारतीय तन्त्रशास्त्र के सभी पक्षों को आलोडित किया है। उनके निष्कर्ष विवादरहित और सर्वमान्य हैं। देश और विदेश के प्रायः सभी विद्वानों ने उनका समादर किया है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

डा. करुणा एस. त्रिवेदी*

वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल ऐसे थे मेरे पिताश्री। आप सब को आश्चर्य होगा कि इतने विश्वख्यिात विद्वान् पुरुष के लिये कठोर शब्द! हाँ मेरे पिता श्रीशिष्ट, मर्यादा और संस्कार के बहुत आग्रही थे। लोगो को ऊपर से तो वह बहुत कठोर दिखते थे लेकिन उनका मन तो फूल की तरह कोमल था। उत्तररामचरित में भवभूति ने कहा है कि ऐसे लोकोत्तर लोगों का चित्त समझना बहुत कठिन होता है।

हर गुण की व्याख्या कैसे और किन शब्दों में की जाए, यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु इतना अवश्य कह सकती हूँ कि, मानवता, स्वाभिमान, लगन, समर्पण, शालीनता, स्पष्टवादिता, अतिथिसत्कार, साहित्य के प्रति असीम निष्ठा, प्रभावशाली व्यक्तित्व और समन्वयभाव जैसे रंगों से जो एक तस्वीर उभरती है उसी का नाम था पंडितप्रवर आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी जी।

द्विवेदी जी का कहना है कि सचेतन दृष्टि एक विशेष सजगता और जागरुकता से सम्पन्न दृष्टि है जो युगीन संवेदनाओं को पकड़ने, जीवन के संघर्षो से जूझने या जीवन के सत्य को गहराई के साथ अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध होती है। सचेतन दृष्टि के अनुसार जीवन को समग्रता में देखा जाता है क्योंकि बदलती मान्यताओं से मानवीय मूल्यों का तालमेल बैठाना आत्मचेतना और आत्मसजगता से ही सम्भव है।

कविर्मनीषीः परिभूः स्वयम्भूः के साक्षात् रूप पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी भाषाविद्, तन्त्रागम दर्शन के श्रेष्ठ ज्ञाता और संस्कृति के सफल संरक्षक, लोकचेतना के संवाहक के रूप थे। अपने गहन अध्ययन एवं उत्कृष्ट प्रतिभा से अनुसंधान इनके जीवन का लक्ष्य बना रहा।

आकाश–मण्डल में जिस प्रकार कोई असाधारण नक्षत्र इतना देदीप्यमान और तेजस्वी होता है कि वह हमारी दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करता है जिसे देखकर हमारी चंचल दृष्टि स्थिर हो जाती है। राजस्थान (केकड़ी) में जन्में 'वाराणसी' सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में 'दर्शन' और 'तन्त्रविभाग' के अध्यक्ष सारस्वत और ब्रह्मर्षि समान पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ऐसे ज्योतिर्मय अप्रतिम नक्षत्र थे, जिनकी विलक्षण प्रज्ञा, अगाध पांडित्य और गहन दृष्टि मात्र राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर फैली हुई थी।

मैं अपने आप को इतनी भाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे ऐसी विश्वविख्यात महान् विभूति की पुत्री

---

*प्राचार्य, टी.एम. शाह महिला आर्ट्स कॉलेज, ईडर, सा.कां. गुजरात

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होने का गौरव प्राप्त हुआ। शरीर से लघुकाय, ऋषि व्यक्तित्व वाले द्विवेदी जी ने ज्ञान के धरातल पर सिन्धु की गंभीरता, सूर्य की तेजस्विता और आकाश की अनन्तता को अपने में समेटे रखा था।

अभी भी ऐसा लगता है कि वे हरपल हमारे साथ हैं। केवल हम उन्हें देख या स्पर्श नहीं कर पा सकते। लाख–लाख वंदन के साथ मेरे पिताश्री को अश्रुभीनी श्रद्धांजलि ही दे सकी हूँ। यह स्मृति ग्रन्थ भी स्वर्गस्थ की स्मृति में तैयार किया गया एक प्रशंसनीय प्रयास बन रहा है।

आज इस पुण्यशाली श्रद्धांजलि के अवसर पर मैं अपने पिताश्री के साथ बिताए कुछ संस्मरण आपके सम्मुख रखने का नम्र प्रयास कर रही हूँ। पिताश्री के साथ बिताई बचपन की यादें तो अनगिनत हैं परन्तु मैं यहाँ बचपन की नहीं लेकिन मेरी शादी के बाद के अपने कुछ मार्मिक पल जो दुःख दायक भी हैं लेकिन मेरे जीवन को एक नयी दिशा दिये हैं। वैसे कुछ संस्मरण द्वारा उसकी यादें ताजी कर रही हूँ और आपके साथ उन यादों को आज के सुनहरे पल में बांटना चाहती हूँ। उनकी सीख उनकी नम्रता या ममता में भी कठोरता थी, उनका डाँटना समझाना कि मैं ऐसा काम करूँ जहाँ दो परिवारों का नाम रोशन हो और मुझे अपने दो बच्चों को बड़ा करने के लिये किसी की मदद की जरुरत न पड़े। वे मुझमें एक आत्मविश्वास भरना चाहते थे, और आज मैं जिस ऊचाई पर हूँ उसमें मेरे पिताश्री का योगदान अंशतः रहा है। शायद उस समय उम्र छोटी होने के कारण मैं इतना नहीं समझ पाती थी लेकिन इतना तो समझती थी कि वह मेरे भविष्य के लिये कर रहे हैं और मैं उनके बताए कदमों पर चल पड़ती थी।

यह उस समय की बात है जब मैं अपने ससुराल में थी और अनुस्नातक का परिणाम आया और मैने आगे पीएच.डी. करने की इच्छा अपने पति और ससुराल वालों के आगे रखी। उन लोगों ने मुझे अनुमति दे दी। मैने फिर अपने पिता जी के सामने भी अपनी इच्छा व्यक्त की तब उन्होंने गुजरात युनिवर्सिटी में अध्यक्ष (संस्कृत) डां. भगवती प्रसाद पंड्या जी के पास जाने को कहा। मैं पंड्या जी से मिली और उनसे पीएच.डी. के लिये मार्गदर्शन की बात की। उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। मेरा कार्यक्षेत्र अहमदाबाद था और मैं सिद्धपुर में रहती थी। ऐसे में दो बच्चों के साथ अहमदाबाद बार–बार जाना नहीं हो पाता था इसलिये मैं बनारस आकर कुछ महीने अपने पिताश्री के पास रहकर अपने महानिबन्ध का कार्य सम्पन्न करती।

मैं ससुराल और बच्चों में इतना व्यस्त रहती थी कि मुझे पढ़ने–लिखने का समय कम मिलता था। उसी समय मेरे जीवन में एक करुण दुर्घटना हो गई। मेरे जीवन के आधार मेरे पति सुधीर त्रिवेदी का अकस्मात् निधन हो गया। मेरे माता–पिता बनारस से सिद्धपुर (गुजरात) आए। इतनी छोटी उम्र में बेटी का विधवा होना, किसी भी माँ–बाप के लिये एक बहुत बड़ा दुःख होता है। सभी क्रियाएं पूर्ण होने के बाद जब उनके वापस जाने का समय अया तब मेरे पिताजी ने मुझे पास बुलाया और कहा देख बेटा जो होना था हो गया, अब तुम्हें अपने और बच्चों के लिये कुछ करना होगा। सुधीर का जो सपना था कि तुम डॉ. बनो उसे भी पूरा करना है। जितनी जल्दी हो सके तुम अपनी पीएच.डी पूरी कर लो। दूसरी बात, जहाँ तुम्हारा कुछ खोया है उसी तरह इस परिवार ने भी अपना बेटा खोया है। तुम्हें यही रहकर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सबके सपने पूरे करने हैं, हमने जो तुम्हें संस्कार दिया है उससे दो कुल का नाम रोशन करना। दुःख की इस बेला में मुझे अपने पिता की बात पर दुःख हुआ लेकिन मैने मन से इस बात को स्वीकार लिया, लेकिन आज जब मैं कॉलेज में प्रोफेसर के उच्चपद पर हूँ तब ऐसा लगता है कि पिताजी का उस समय का निर्णय मुझे अपनी मेहनत से अपने पैरों पर खड़ा करने के लिये उचित था। मैंने अपने महानिबन्ध का काम जो अधूरा रह गया था उसे पूर्ण करने के लिये मेहनत शुरू की और उसे पूर्ण करने की मनमें ठान ली।

महानिबन्ध से सम्बन्धित दूसरा सन्दर्भ भी यहॉ बताना मुझे योग्य लगता हैं क्योंकि बहुत बार अनजाने में ही हम भूल कर बैठते हैं और हमें उसका पता भी नहीं चलता। हमें जो काम करना होता है वह न कर दूसरे काम जो हमारें लिये महत्त्व के नहीं होते, करने लगते हैं। मेरे पिता जी समय के बहुत आगे ही थे। उनके द्वारा सौंपा गया काम तुरन्त हो जाना चाहिए जो कार्य समय पर नहीं हो तो वह गुस्सा हो जाते। छोटी उम्र का तकाजा ऐसा होता है कि हम बड़ों के बताए रास्ते पर जाना पसन्द नहीं करते।

मैं अपने महानिबन्ध से सम्बन्धित पुस्तकों की चर्चा के सिलसिले में पिताजी से पत्रव्यवहार से पूछ लेती और अक्सर हीमुझे सिद्धपुर (गुजरात) से वाराणसी आना पड़ता था। मेरे महानिबन्ध के मार्गदर्शक अहमदाबाद गुजरात युनिर्वसिटी के अध्यक्ष डॉ. भगवती प्रसाद पंड्या थे लेकिन पिताजी से मुझे बहुत मदद मिल जाती थी। वह मुझे सुबह जल्दी जगा देते थे और महानिबन्ध से सम्बन्धित पुस्तक देकर कहते कि शाम तक इतना काम पूरा कर लेना। उनके निर्देश के अनुसार मैं भी अपना काम पूर्ण करने का प्रयास करती। उस समय पिता जी का वर्ताव पिता का नहीं 'गुरु' का रहता था। मुझे लिखने का जो काम पिता जी सौंप कर जाते वह पूरा कर के देना पड़ता। अध्ययन के दौरान मुझे अपनी मॉ के साथ या किसी मेहमान या किसी पड़ोसी के साथ गर्प्पे मारने का समय नहीं रहता क्योंकि कम समय के लिये ही मैं वाराणसी जा पाती थी। मैं भी सोंचती थी कि कुछ अच्छा करना है तो मुझे थोड़ा दुःख सहन करना पड़ेगा। मैं अपना काम निष्ठा पूर्वक करती थी। लेकिन उम्र छोटी होने के कारण शायद मुझे समय की इतनी कीमत नहीं थी जो अब है। मुझे लोगों से बातें करना, घूमना, पिक्चर देखना अच्छा लगता था।

एक दिन की बात है, मुझे पिता जी सुबह कुछ पुस्तकें देकर बोले मैं शाम को युनिर्वसिटी से आऊँ तब तक तुम यह किताबें पढ़कर लिख लेना। संयोग वश उस दिन हमारे जान पहचान के भाई साहब और भाभी घर पर आए और बातों–बातों में उन्होंने मुझसे पूछा हम पिक्चर देखने जा रहे हैं तुम भी हमारे साथ चलो मैने भी सोचा चलो काम कल कर लेंगे आज घूमकर, पिक्चर देखकर आते हैं। वापस आने में हम लोगों को देर हो गई। पिताजी भी विश्वविद्यालय से आ गये थे उस समय तो वह कुछ बोले नहीं पर भाई–भाभी के जाने के बाद उन्होंने मुझे बुलाया और बोले सुबह जो पीएच.डी का काम देकर गया था उसमें से कितना काम हुआ, मैने कहा पापा आज घूमने चली गई थी जिससे काम नहीं हो पाया कल पूरा करके बता दूंगी।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह सुनकर पिताजी अत्यंत गुस्से में बोले कि ऐसा करो, पीएच.डी. की कोई जरूरत नहीं है, तुम आराम से काम करना, मैं सोचता हूँ कि तुम जल्द से यह काम पूरा कर लो, तुम्हें अच्छी नौकरी मिल जाए और तुम्हें तुम्हारी और बच्चों की जरूरत के लिये किसी के आगे हाथ फैलाना न पड़े। मैं तुम्हारे भले के लिये यह सब कर रहा हूँ। उस समय तो मुझे बहुत गुस्सा आया परन्तु जब धीरे–धीरे मुझे ऐहसास होने लगा कि मेरे पिताजी ठीक कह रहे हैं। तब से मैनें मन में ठान ली कि मैं जल्द से अपनी पीएच.डी का काम पूरा करूंगी।

इसी दरमियान मुझे गुजरात के 'ऊझा'में ऊँझा आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज' में अल्पकालिक व्याख्याता की सर्विस मिल गई और साथ–साथ मेरी पीएच. डी. भी पूर्ण हो गई। तीन साल ऊँझा कालेज में सर्विस करने के बाद ईडर आर्ट्स कालेज (साबरकांठा) गुजरात में मुझे पूर्ण कालिक व्याख्याता की नौकरी मिल गई। आज मैं संस्कृत विभाग में विभागाध्यक्ष हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि पिताजी मुझे जिस जगह पर देखना चाहते थे, उस समय के लिये उनका गुस्सा ठीक ही था।

इस तरह मैं जब भी बनारस जाती तब वहाँ गोदौलिया स्थित जंगमवाड़ी मठ के पीठाधीश्वर स्वामी चन्द्रशेखर शिवाचार्य जी से जरूर आर्शीवाद ले लेती क्योंकि उनका और पिताजी का सम्बन्ध गुरु–शिष्य, पिता–पुत्र जैसा था। पिताजी मुझे कहते बेटा स्वामीजी का आर्शीवाद ले आओ। तीन साल पहले जब मैं बनारस गई तब स्वामीजी से मिलने अपनी मां के साथ गई। तब इतने सालों की बात उन्होंने मुझसे कही और बोले पीएच.डी दरमियान पिताजी आपसे बहुत लड़ते थे क्योंकि उनका सोचना था कि आप जल्द से अपनी पढ़ाई कर लें। वह जब आप पर गुस्सा हुए थे उस समय उन्होंने मुझसे कहा कि यह लड़की वैसे ही दुःखी है, मैं उसे और दुःखी करना नहीं चाहता। मेरी एक इच्छा है कि उसकी पीएच. डी का कार्य जल्द से पूर्ण हो जाए। मैं भी अपने पिताजी के स्वभाव को समझ गई और उसी तरह काम भी करने लगी। मेरे पिताजी का स्वभाव भले ऊपर से कठोर रहा हो पर अन्दर से तो वह फूलों की तरह कोमल थे।

हम तो उनके बच्चे हैं परन्तु बाहर से आए हुए किसी भी व्यक्ति के लिये उनके मन में दया की भावना थी। उसी समय से जुड़ी एक चर्चा भी यहाँ कर लेना मैं जरूरी समझती हूँ।

यह उस समय की बात है जब हम कॉलेज में पढ़ते थे। गरमी का समय था, बहुत लू चल रही थी। दोपहर के दो बजे के आस–पास किसी ने दरवाजा खटखटाया। जब मैने खोला तो देखा पोस्टमैन। बहुत तेज गरमी होने की वजह से उसने मुझसे पीने का पानी मॉगा। मैं रसोई में पानी लेने गई तब तक पिताजी भी बाहर आए और बोले बेटा उसे खाली पानी मत देना अन्दर से मिठाई ले आओं क्योंकि धूप में से आए हुए को खाली पानी नहीं देते। उस समय मुझे पिताजी के दयालु स्वभाव और विनम्रता पर बहुत गर्व हुआ कि मैं ऐसे पिता की पुत्री हूँ।

आज पिताजी सकाया हमारे समक्ष नहीं है लेकिन उनका यशः काया अमर है। उनके शत सहस्र पुण्य की कामना के साथ हम उन तन्त्रागम, दर्शन, के महामनीषी का आदर अभिवादन करते हैं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पिता जी के साहित्य की उत्कृष्टता को मान देते हुए अनेक संस्थाओं सरकार और अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने उन्हें न केवल सम्मानित एवं पुरस्कृत किया, अपितु उपलब्धि पर उन्हें प्रशस्ति पत्र भी दिया है।

उनके श्रद्धांजलि ग्रन्थ के प्रकाशन पर मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ में पिता जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत होगा। क्योंकि संस्कृत भाषा और तन्त्रागमीय दर्शन पर विकास एवं संवर्धन में वे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं। वे भारतीय संस्कृति के स्वाभाविक 'समन्वयात्मक प्रकृति' के जीवन्त प्रमाण है, जिन्होने अपने जीवन का बहुलांश समय इसी समन्वय भावना (साधना) के लिये आहुत कर दिया। सर्जनात्मक साहित्य से लेकर वैचारिक साहित्य तक उनकी लेखनी समान गति से क्रियाशील रही है।

मैं इस स्मृति ग्रन्थ के आयोजकों का आभार मानती हूँ कि उन्होंने इतना सुन्दर आयोजन किया।

आज मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि पिताजी की आत्मा को परम शांति प्राप्त हो क्योंकि मृत्यु से व्यक्ति का कर्म, स्वातंत्रय नष्ट होता होगा परन्तु मृत्यु से व्यक्ति का नाश नहीं होता। इसे राष्ट्रीय पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने सिद्ध कर दिया है। किसी उर्दू शायर ने सच कहा है–

**"हमारे बाद भी चमन में अफसाने बयां होंगे,**
**बहारें हम को ढूंढेगी न जाने हम कहाँ होंगे।"**

आप स्थूल रूप में भले यहाँ नहीं हैं, परन्तु सूक्ष्म शरीर के रूप में आप का अस्तित्व है। यह हमारा सौभाग्य है कि हम सभी दिव्यात्मा के अहसास में अपने जीवन पथ पर अग्रसर है।

******



CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तन्त्रसाधना एवं संस्कृति के विश्वरूप

*डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी

आचार्य द्विवेदी जी की शताधिक कृतियाँ हैं और सबमें कुछ विशेष है उनकी सर्वाधिक प्रिय कृति विज्ञानभैरव जिसको विश्वयोगी स्वामी मुक्तानन्द जी का आशीर्वाद था तथा उ.प्र. के तत्कालीन गर्वनर एम. चेन्नारेड्डी ने अपनी आत्मीयता प्रदर्शित की। उस ग्रन्थ के बारे में उन्होंने कहा कि यह ग्रन्थ रहस्यमय यौगिक उपायों एवं समाज में व्याप्त भ्रान्तियों को दूर करेगा। प्रो. द्विवेदी जी की तन्त्र साधना अद्वितीय है।

**विज्ञानभैरव** तन्त्रसाधना का अद्वितीय ग्रन्थ है जिसकी व्याख्या आचार्य द्विवेदी जी ने की इसकी एक लाख से अधिक प्रतियाँ पूरे विश्व में बिक चुकी हैं। 'इस ग्रन्थ में आचार्यश्री कहते हैं- "विज्ञानभैरव प्रश्न-प्रतिवचनात्मक शैली में लिखा गया एक आगम ग्रन्थ है। प्रश्न देवी अथवा भैरवी करती है और उसका उत्तर भगवान् भैरव देते हैं। इस तरह से इस ग्रन्थ का प्रादुर्भाव रुद्रयामल भाव से, शिव और शक्ति के सामरस्य से होता है। प्रथम श्लोक की व्याख्या में इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक के अनुसार इसमें रुद्रयामल तन्त्र का सार संगृहीत है। रुद्रयामल तन्त्र का प्राचीन स्वरूप आज उपलब्ध नहीं है, अतः उसके प्रादुर्भाव के काल के सम्बन्ध में हम कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हैं। विज्ञान-भैरव का प्राचीनतम उल्लेख वामननाथ के अद्वयसम्पत्तिवार्त्तिक में मिलता है। संवित्प्रकाश आदि ग्रन्थों के रचयिता वामनदत्त और वामननाथ अभिन्न व्यक्ति हैं। इनके सम्बन्ध में हम लुप्तागमसंग्रह के द्वितीय भाग के उपोद्घात में विस्तार से विचार करेंगे। कश्मीरेतिहासः' नामक ग्रन्थ की समालोचना में हमने बताया है कि कश्मीर के प्रसिद्ध आलंकारिक आचार्य तन्त्रशास्त्र के भी मर्मज्ञ विद्वान् रहे हैं। उसी परम्परा को यदि स्वीकार किया जाय तो हम आलंकारिक वामन को अद्वयसम्पत्तिकार वामननाथ से अभिन्न मान सकते हैं। आलंकारिक वामनाचार्य को कश्मीर के राजा जयापीड (779-813ई) के मन्त्री वामन से अभिन्न माना जाता है। अद्वयसम्पत्तिकार को भी उनसे अभिन्न मान लेने पर ई. आठवीं शताब्दी के अन्त तक विज्ञानभैरव का प्रदुर्भाव हो चुका था, ऐसा मान लेने मे कोई बाधा प्रतीत नहीं होती।

आधुनिक इतिहासज्ञ कश्मीर के आगम ग्रन्थों के आविर्भाव का काल ई. सातवीं-आठवीं शताब्दी में ही मानते हैं। 'जलस्येवोर्मयः' (श्लो. 108) इत्यादि श्लोक की व्याख्या में शिवोपाध्याय ने कहा है कि- ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका के आधार पर विज्ञान भैरव की दो धारणाओं के रचयिता भट्ट उत्पल हैं। इनका समय ई. नवीं शताब्दी का अन्तिम भाग और दसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक भाग माना गया है। विज्ञानभैरव को भट्ट उत्पल का परवर्ती ग्रन्थ कथमपि नहीं माना जा सकता।

'नोर्ध्वे ध्यानं प्रयुञ्जीत' (8/41-44) प्रभृति नेत्रतन्त्र के और 'न सक्तमिह चेष्टासु' (उप. 69।2-7) प्रभृति

---

***विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग**

**कूबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़- ( वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर )**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योगवाशिष्ठ के श्लोकों में विज्ञान भैरव उपदिष्ट कुछ स्थूल भावनाओं का निषेध है। इससे विज्ञानभैरव का प्रादुर्भाव इन दोनों ग्रन्थों से पहले हुआ, ऐसा कहा जा सकता है।

व्याख्याकारों में से क्षेमराज के सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा जा चुका है। उसको यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। भट्ट आनन्द और शिवोपाध्याय भी कश्मीर के ही निवासी हैं। इनके संबन्ध में कुछ अधिक ज्ञात नहीं होता। भट्ट आनन्द ने अपनी टीका के अन्त में (पृ. 63) ग्रन्थ की समाप्ति का काल कलि संवत् 4774 की चैत्र प्रतिपदा बताया है। सं. 2034 के आरंभ में कलियुग के 5078 वर्ष बीत चुके हैं। तदनुसार भट्ट आनन्द ने आज से 304 वर्ष पूर्व, अर्थात् वि. 1730 में अपनी टीका समाप्त की थी इस तरह से ई. 17वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में उनकी स्थिति माननी चाहिये।

यहाँ स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि यह विज्ञानभैरव क्या है? इस ग्रन्थ का यह नाम क्यों रखा गया? क्षेमराज के विज्ञानोद्योत के मंगल श्लोक में इनका उत्तर मिलता है। वहाँ विज्ञानभैरव का स्वरूप इस तरह से बताया गया है-

अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक (1/95-100) में बृहस्पतिपाद कृत शिवतनुशास्त्र के श्लोकों को उद्धृत कर बताया है कि इनमें अन्वर्थ नामों से भगवान भैरव इस विश्व का भरण, रवण और वमन करने वाला है। वह इस संसार का भरण-पोषण करता है, सृष्टि और संहार करता है। ऐसा करके वह स्वयं भी पुष्ट होता है, प्रसन्न होता है। यह संसारी जीवों को अभय-दान करने वाला है। संसारी जीवों के आक्रन्द (छटपटाहट) का कारण भी यही है और त्राहि-त्राहि पुकारने वाले भक्त जनों के हृदय में प्रकट होकर उनका उद्धार भी यही करता है, अर्थात् निग्रह और अनुग्रह ये दोनों भगवान् भैरव के ही व्यापार है। इसीलिये यह पंचकृत्यकारी कहलाया है। यह काल का भी काल है। इसीलिये इसको कालभैरव कहते हैं। यह कालवंचक योगियों के चित्त में समाधि दशा में स्फुरित होता है और अज्ञानी जीवों के हृदय में भी बाह्य और अन्तर इन्द्रियों (करणों) की अधिष्ठात्री देवियों (खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी) के रूप में, जो कि संविद्देवीचक के नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रकट होता है। भगवान् का यह स्वरूप महाभयानक है और परम सौम्य भी।

यह भैरव विज्ञानस्वरूप है, बोधात्मक है, चिदात्मक है। सभी स्थानों में, बाह्य और आन्तर सभी पदार्थों में भावस्वभाव (सत्तस्वभाव) विज्ञानात्मा का भान (ज्ञान) विवेकहीन सामान्य जन को भी होता है। मैं जानता हूँ' इस तन्त्र के अहंविमर्श की प्रतीति सभी को होती है। ये सारे विमर्श भैरवविमर्श से भिन्न नहीं है, इसलिये ये सारे विमर्श एक ही हैं। विज्ञानात्मा भैरव से भिन्न और कुछ भी नहीं है। घट-पट आदि के ज्ञान का कोई आधार नहीं है, क्योंकि विज्ञानभैरव से भिन्न घट-पट, चक्षु, आलोक (प्रकाश), इन्द्रिय प्रभृति की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। ये सब कुछ भ्रमात्मक है, माया के कारण उत्पन्न है, अतः एक विकल्प स्वरूप है। क्योंकि विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की वास्तविक सत्ता नहीं है।

इस तरह से अन्ततः सब कुछ चिन्मात्र, विज्ञानात्मक ही सिद्ध होता है। इस चिदात्मक विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी को भी वास्तविक सत्ता नहीं है। यह चिदात्मक विज्ञान चींटी से लेकर सदाशिव पर्यन्त सभी जीवों में समान रूप से विद्यमान है। इसलिए सभी पदार्थ सर्वात्मक माने जाते हैं। व्याख्या में स्थान-स्थान पर इस सर्वात्मकता का प्रतिपादन किया गया है।

### भारतीय संस्कृति का समग्र स्वरुप

एक हजार वर्ष तक एक साथ रहने पर भी हम इस्लाम की क्रूरता, हठवादिता और असष्णिुता जैसे कुसंस्कारों को दूर न कर सके और उनके चिरप्रचारित भाईचारे के संदेश को भी इस्लामिक घरौंदे से बाहर नहीं निकाल सकें। उलटे



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम भी इन दूषणों से घिरते चले जा रहे हैं। वैदिक, जैन, बौद्ध, आगमिक, तान्त्रिक, पौराणिक, स्मार्त-इन सभी भारतीय शास्त्रों का देश और काल की पृष्ठभूमि में सामूहिक अनुशीलन किया जाय, यह अपेक्षित है। तभी इस देश में भावात्मक एकता के माध्यम से अखण्ड भारतीय संस्कृति की स्थापना हो सकती है। सेमेटिक धर्मों के अनुयायियों के द्वारा भारतीय धर्मों को ही नहीं, उज्ज्वल भारतीय संस्कृति को भी विकृत रूप में प्रचारित किया गया है। उन मिथ्या आक्षेपों का निराकरण कर भारत में बसने वाली समस्त प्रजा के लिये-चाहे वह वैदिक, जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त, स्मार्त, सिक्ख, पारसी, इस्लाम या ख्रीष्ट धर्मों में भले ही विभक्त हो, उनमें बोये गये वैमनस्य के बीजों को सौमनस्य रूपी भाड़ में भूँज कर एक विश्वसंस्कृति के निर्माण का पथ प्रशस्त किया जा सकता है। हमारी दृष्टि में इसके लिये निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति आवश्यक है-

1. भारत में वैदिक, जैन, बौद्ध, आगमिक, तान्त्रिक, पौराणिक, स्मार्त, सिक्ख- इन सभी धर्मों की धाराओं के पावन जल को ग्रहण कर भारतीय संस्कृति गंगा अनवरत बह रही है। आवश्यक है कि हम इन सबके प्रति समान आदर-दृष्टि रखें।

2. अभिनवगुप्त के द्वारा प्रदत्त आगम की परिभाषा में हम जेन्दावेस्ता, ओल्ड टेस्टामेंट, न्यू टेस्टामेंट (बाइबिल), कुरान जैसे विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों का समावेश कर सकते हैं और इन धर्मों के प्रवर्तकों को भी राम-कृष्ण, बुद्ध-महावीर के समान आदर दे सकते हैं। इन धर्मों की धाराओं में प्रवर्तमान विचार-वारि का भी हम भारतीय संस्कृत गंगा में समावेश कर इसमें नूतन उज्ज्वलता का आधान कर सकते हैं।

3. त्याग, तपस्या, सहिष्णुता और समन्वय- इन चार मजबूत पायों पर भारतीय संस्कृति का प्रासाद खड़ा हुआ है। इनमें किसी प्रकार की विकृति न आने पावे, इसके लिये हमें पूरी तरह से सावधान रहना होगा। चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ और चतुर्व्यूह शास्त्र भारतीय संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्त हैं। वर्णों में परस्पर उद्भूत ज्येष्ठ कनिष्ठभाव को हमें छोड़ देना चाहिये। इसके लिये वर्ण, आश्रम, धन, विद्या, कुल आदि की अपेक्षा चरित्र की श्रेष्ठता को स्वीकार करना होगा। आगम-तन्त्रशास्त्र एवं पौराणिक वाङ्मय की, पूरे भारत में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से फैले सन्त-साहित्य की, अरबी भाषा में हुए भारतीय शास्त्रों के अनुवाद ग्रन्थों की, अरब यात्री अलबेरुनी और दाराशिकोह जैसे उदारचेता इस्लामिक विद्वानों के विचारों की सराहना से यह संभव हो सकता है।

4. वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार अब विरल हो गया है। इस्लामिक आतंकवाद के शमन के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ शस्त्र-संघर्ष के स्थान पर वैचारिक संघर्ष को चला सकता है। उपनिषदों से लेकर चार्वाक दर्शन तक का भारतीय साहित्य इसमें महत्त्व की भूमिका अदा कर सकता है। तान्त्रिक कर्मकाण्ड और उसके रहस्यवाद को हटाकर, तन्त्रशास्त्र में परिवर्जित जाति आदि के दुराग्रहों को दूर कर, सभी धर्मों के कालातीत तत्त्वों को किनारे कर सर्वत्र सौमनस्य बढ़ाया जा सकता है। भारत वर्ष में प्रथमतः कृतान्तपंचक के रूप में, ततः पंचायतन अथवा षडायतन पूजा के रूप में स्मार्त धर्म की प्रतिष्ठा के माध्यम से यह कार्य हो चुका है। उसी पद्धति से भारत में वर्तमान काल में प्रचलित अन्य धर्मों के साथ भी सामंजस्य स्थापित कर इन सबके प्रति समान आदरदृष्टि का विकास किया जा सकता है।

5. वेदान्त दर्शन की अपेक्षा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र एवं वीरशैव दर्शन आज हमारे लिये अधिक उपयोगी हो कसते है। वैष्णव, शैव आदि आगमों का, सिद्धों, नाथों और गुरुओं की वाणी के साथ सूफीमत का भी प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के आधार पर किया गया अनुशीलन आज की मानवता के लिये अधिक उपयोगी होगा।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

6. 'सेक्युलर' शब्द का 'धर्म-निरपेक्ष' अनुवाद भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि के विपरीत है। लोकजीवन के लिये चार पुरुषार्थों में धर्म का विशिष्ट स्थान है। धर्म नियन्त्रित अर्थ और काम के सेवन का ही शास्त्रों में विधान है। इसको हम आधुनिक नैतिकता से समरस कर सकते हैं। कुछ आधुनिक आचार्य धर्मनिरपेक्षता से प्रभावित होकर केवल अर्थ और काम पर ही अपने विचारों को केन्द्रित करना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति अनुचित है। प्राचीन काल में राजा के दर्शन के रूप में लोकायत (चार्वाक) दृष्टि को मान्यता मिली हुयी थी। उसी दृष्टि का हमें अनुकरण करना चाहिये। तदनुसार 'सेक्युलर स्टेट' का अनुवाद 'लोक राज्य' किया जा सकता है। अंग्रेजी के एक शब्द 'सेक्युलर' का 'धर्म-निरपेक्ष', 'पन्थ-निरपेक्ष' जैसे दो शब्दों में अनुवाद करना भी भारतीय भाषाओं का उपहास करने के समान ही है। धर्म-निरपेक्षता वादियों का हजयात्रियों की आर्थिक दृष्टि ने भारत के सामने सार्वजनिक आत्मदाह (आत्महत्या) की नई समस्या पैदा कर दी है। ऐसी दृष्टियों से देश को सावधान रहना होगा।

7. कुछ राजनेता अपने स्वार्थ को सिद्धि के लिये ब्राह्मणवाद, मनुवाद जैसे वैवर्तिक शब्दों को प्रचारित करते हैं। छद्म-धर्मनिरपेक्षता, भारतीय सहिष्णुता का क्षरण, प्रगतिशील-प्रतिगामी जैसे शब्द भी बहुधा प्रचारित हैं। मुकुटसंहिता की प्रस्तावना में हमने भारतीय संस्कृति के परिनिष्ठित स्वरूप पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत संग्रह में भी भारतीय संस्कृति के समग्र स्वरूप पर विचार किया गया है। उसके माध्यम से हम इस तरह के शब्दों वैवर्तिकता को भी स्पष्ट कर चुके हैं।

8. जनतन्त्र में पक्ष-विपक्ष की स्थिति आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में ऐसा है भी, किन्तु भारतीय राजनीति पक्ष और विपक्ष के स्थान पर शत्रु और मित्र के रूप में बँट गई है। कुछ राजनीतिक दलों की दृष्टि भारतीय संस्कारों से नितान्त शून्य है और ये भारतीयता को पूरी तरह से नष्ट कर देना चाहते हैं। कुछ वरिष्ठ पत्रकार-बन्धु भी इनका साथ पकड़ लेते हैं। एक हजार वर्ष पहले के भारतीय ज्ञान-विज्ञान से ये बहुधा अपरिचित हैं। ऐसा क्यों है? इसकी परीक्षा के साथ इस दृष्टिदोष का उपचार भी अपेक्षित है। हीनग्रन्थि से मुक्त होकर ही हम यह कार्य कर सकते हैं।

9. दि. 15 नवम्बर, सन् 1997 के दैनिक जागरण में इमनाम-ए- हरम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल सुहैल का बबारी मस्जिद के संबद्ध में एक वक्तव्य था प्रकाशित हुआ था। कमेटी के संयोजक जफरयाब जिलानी ने उस पर अपनी स्वीकृति भी दी थी। उसके अनुसार गुजरात के सिद्धपुर में स्थित रुद्रमहालय का उद्धार हो जाना चाहिये था।

10. हिन्दु और मुसलमान शब्दों की स्थिति 'श्रमण-ब्राह्मण' की दृष्टि से बहुत भिन्न नहीं है। हिन्दु शब्द हमारा अपना नहीं है। यह हमारे ऊपर थोपा गया है। एक हजार वर्ष पहले भारतीय साहित्य में 'हिन्दु' शब्द की कोई स्थिति नहीं थी। हिन्दुत्व की अपेक्षा हमें भारतीयता पर अधिक जोर देना चाहिये। तभी हम पूरी भारतीय प्रजा में सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।

11. हिन्दूकरण, भगवाकरण जैसे शब्दों के स्थान पर हमें भारतीयकरण की प्रक्रिया को स्वीकार करना चाहिये। इसी तरह धर्मनिरपेक्षता के स्थान पर हमें संस्कृति सापेक्ष बनना होगा। धर्म और संस्कृति के अन्तर को हम तालाब के बँधे पानी और नदी के बहते पानी के रूप में कर सकते हैं। आर्य-द्रविण, सिन्धु-सभ्यता जैसे विवाद भारतीयता को नष्ट करने के लिये उभाड़े गये हैं। स्वातन्त्र्योत्तर काल में हमारी प्रतिभा का तीव्र क्षरण हुआ है। पाँच हजार वर्ष ही सही, इस काल में विकसित पूरी भारतीयता को हमें आदरदृष्टि देनी होगी, अन्यथा अपसंस्कृतियों के आक्रमणों को हम झेल नहीं सकेंगे। खंडहरों पर खड़ा होना सेमेटिक स्वभाव है, भारतीय नहीं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ चर्चित इन सभी विषयों का विशद विवेचन हम प्रस्तुत संग्रह के अतिरिक्त उन पाँच ग्रन्थों में भी कर चुके हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया जा चुका है। प्रस्तुत संग्रह में निबन्ध 'वेदों में रामावतार' है। आधुनिक इतिहासकार इससे सहमत नहीं होंगे। प्रत्येक आधुनिक अथवा प्राचीन देशों में भावना से संबद्ध कुछ प्रसंग विद्यमान हैं, जहाँ इतिहास की मान्यता बौनी हो जाती है। इनमें से किसी को सही और अन्य को गलत मान लेना उचित नहीं है। रामचरित की विशेषता यह है कि यहाँ कुटुम्ब में विभक्त पूरी मानवता को सुख शान्ति से जीने का मार्ग दिखाया गया है। स्वयं कष्ट उठाकर भी दूसरों के दुःख को दूर करना, यही इसकी शिक्षा है। भगवान् बुद्ध ने भी तो इसी मार्ग का अनुसरण किया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि इस संसार में एक भी जीव के दुःखी रहते, मैं निर्वाण-पदवी में प्रविष्ट नहीं होऊँगा। अहिंसा धर्म के प्रतिष्ठापक जैन धर्म के ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर जैसे तीर्थंकरों ने भी इसी मार्ग को प्रशस्त किया था। आज आतंकवाद से ग्रस्त मानवता को यही दृष्टि उबार सकती है।

अपनी एक पुस्तक **धर्मों और संस्कृतियों का संघर्ष** में आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि—आचार्य रजनीश को इधर भगवान् से भी ऊपर बैठा दिया गया है। कौल सम्प्रदाय के उपदेशों के प्रसंग में हमने श्रीमद्भागवत महापुराण की "जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः" (1.5.15) इस उक्ति को उद्धृत किया है। रजनीश के उपदेशों के माध्यम से आज उस कालातीत प्रक्रिया के कर्मकाण्ड को पुनः जिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। तान्त्रिकों के जादू-टोना वाले कर्मकाण्ड के समान ही 'योगा' के नाम से भारतीय योगशास्त्र को विद्रूप करने वालों की नामावली में इनका नाम सबसे ऊपर रखने लायक है। कालातीत असांस्कृतिक गतिविधियों को जीवित करने का यह दुष्प्रयत्न इस विश्व को ही विद्रूप नहीं बना देगा, समझदार व्यक्ति को भी भ्रम में डाल देगा। हमने देखा है कि सही रास्ते पर चल रहा एक व्यक्ति किस तरह से इनके संपर्क में मार्गच्युत हो गया। आजकल की दोषपूर्ण राजनीति भी ऐसे ही व्यक्तियों के द्वारा संचालित है। भारतीय संस्कृति को अपसंस्कृति की ओर ढकेलने वाले 'योगा' की पद्धति से अपने को 'शरणा', शुक्ला' जैसे शब्दों से अलंकृत करने वाले इसी देश के आन्तरिक तत्त्व है। बाहर से इसको विकृत करने वालों का दुष्प्रयत्न तो निरन्तर चल ही रहा है।

यहाँ प्रारम्भ में ही दुनिया के प्रमुख छः धर्मों का संक्षिप्त परिचय दिया गया हैं काशी के राजघाट पर स्थित सर्व सेवा संघ ने श्रीकृष्णदत्त भट्ट रचित "धर्म क्या कहता है?" शीर्षक ग्रन्थमाला के 12 भागों में इनके साथ चीन के ताओ और कनफ्यूश धर्मों का तथा सिख धर्म का भी कुछ विस्तार से परिचय दिया है।

काका कालेलकर ने वैदिक धर्म के अतिरिक्त जरथुष्ट्र (पारसी) और यहूदी धर्म का परिचय देकर बताया है कि यहूदी धर्म से ईसाई-क्रिश्चियन धर्म निकला और वैदिक सनातनी धर्म से जैन और बौद्ध धर्म। इसी तरह से लिखते है कि हजरत इब्राहीम के उपदेशों से ही कुरान-शरीफ का मोहम्मदी धर्म निकला। हम मान सकते हैं कि सिख धर्म भी सनातनी धर्म से ही निकला है। प्रस्तुत ग्रन्थमाला में जैन और बौद्ध का अलग-अलग परिचय दिया गया है। चीन के प्राचीन धर्म और सिख धर्म का भी समावेश कर यहाँ दुनिया के नौ प्रधान धर्मों का संक्षिप्त परिचय मिलता है।

जैन और बौद्ध धर्म का विकास यद्यपि भारतीय परम्परा में ही हुआ है, किन्तु आजकल इन दोनों धर्मों को पृथक् मान्यता मिली हुई है। श्रीयुत लक्ष्मण शास्त्री जोशी जैन और बौद्ध धर्म पर उपनिषदों का प्रभाव मानते हैं, किन्तु इन पर कृतान्तपंचक में परिगणित सभी पाँचों सिद्धान्तों का प्रभाव तरतमभाव से मानना पड़ेगा। इस विषय की समीक्षा अभी पूरी तरह से नहीं हो पाई है। इतना निश्चित है कि जैन और बौद्ध धर्म पर उपनिषदों के समान सांख्य और योगदर्शन का और



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पांचरात्र (वैष्णव) तथा पाशुपत (शैव) मत का भी प्रभाव है।

प्रस्तुत ग्रन्थमाला में ही नहीं, प्रायः आजकल के सभी इतिहास-ग्रन्थों में प्राचीन सांख्य, योग और पांचरात्र-पाशुपत मतों की बहुत कम चर्चा मिलती है। सांख्य और योग का छः दर्शनों में और पांचरात्र एवं पाशुपत मत का वैष्णव और शैव पुराणों में गौण रूप से अवश्य समावेश कर लिया गया है। प्राचीन पुराणों के विषय में हमें बहुत कम जानकारी है, किन्तु इतना स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान में मान्यता- प्राप्त अठारह महापुराणों पर कृतान्तपंचक का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। फलतः भारतीय धार्मिक इतिहास की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि यहाँ विगत तीन हजार वर्षों में विकसित आगम-तन्त्रशास्त्र की पूरी उपेक्षा कर दी गई है। इसी के कारण भारतीय संस्कृति अपसंस्कृतियों के आगे धूलि-धूसरित हो गई है और उन मिथ्या आक्षेपों का शिकार हो गई है, जिनका समाधान इन शास्त्रों में आज से एक हजार वर्ष पहले ही अवश्य प्रस्तुत कर दिया गया था। पूरे देश को अपने महनीय उपदेशों से प्रबुद्ध करने वाली सन्तों की वाणियों पर भी इनका अक्षुण्ण प्रभाव देखा जा सकता है। इसी पृष्ठभूमि में हम प्रस्तुत ग्रन्थमाला की संक्षिप्त समीक्षा कर देना चाहते हैं। ''धर्मों की फुलवाड़ी'' शीर्षक पहले भाग में पूरी ग्रन्थमाला का सार प्रस्तुत किया गया है। यहाँ इस दुनिया के अनेक धार्मों की सूचना देकर 'धर्म' शब्द के अर्थ को एवं उसके बाह्य और आन्तर स्वरूप को बतया गया है। चित्त की शुद्धि पर यहाँ विशेष जोर दिया गया है और इस प्रसंग में सन्त कबीरदास और भक्त नरसी मेहता के वचनों को उद्धृत किया गया है। इन वचनों पर हम कश्मीर में नवीं शताब्दी में विद्यमान मालिनीविजयतन्त्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ''यं शैवाः समुपासते'' इस प्रसिद्ध श्लोक को उद्धृत किया गया है। इसमें 'हिन्दु' शब्द की कोई चर्चा नहीं है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में वैदिक धर्म को यही नाम दे दिया गया है, जो उचित नहीं है, यहाँ के 2-4 भागों में भी वेदिक धर्म के रूप में ही यह वर्णित है। इस सम्बन्ध में काका कालेलकर की उक्ति अधिक सही है कि इसको हम कहने लगे 'सनातन धर्म' और परदेशियों ने इसको 'हिन्दी धर्म' नाम दिया। ''भारतीय संस्कृति'' नामक अपने ग्रन्थ में भी साने गुरु जी ने भी कहा है-''हिन्दू'' भारतीय संस्कृति का शब्द नहीं है। भारत में बाहर के लोगों ने हमको हिन्दू बनाकर एक घेरे में, एक कमरे बिठा दिया और हम भी इसमें आनन्द मानने लगे।'' (पृ. 241)। श्री साने गुरु जी के इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि यहाँ वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के उदाहरणों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट अवदानों को उजागर किया गया है।

प्रस्तुत भाग में जैन, बौद्ध, इस्लाम, सिख, पारसी और इसाई धर्मों का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। विभिन्न उपासना-विधियों की भी यहाँ चर्चा मिलती है, किन्तु वराहमिहिर की उक्ति के अनुसार अपनी-अपनी पद्धति से ही अपने-अपने इष्टेव की उपासना की जाती है, उनको आपस में मिलाया नहीं जाता। उपासना का भेद होने पर भी यहाँ उपास्य की एकता को भलीभाँति समझाया गया है। इस प्रसंग में हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास के रघुवंश की और शिवभक्त पुष्पदन्त के महिम्नस्तव की उक्ति में इस विषय को बहुत पहले उद्घाटित कर दिया गया था। धर्म की व्याख्या के प्रसंग में यहाँ (पृ. 50) प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक रसेल को स्मरण किया गया है। इसी तरह की एक कथा महाभारत में भी देखने को मिली है। स्पष्ट है कि इन पर अपने-अपने देश की संस्कृति की स्पष्ट झलक मिलती है।

तृतीय भाग के प्रारम्भ में 'हिन्दु' शब्द की दी गई परिभाषा (पृ.5) प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। ऊपर के



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुच्छेद में किया गया 'वेद' शब्द का प्रयोग भी सही नहीं है। इसके स्थान पर संहिता शब्द का प्रयोग होना चाहिए। विशाल वैदिक वाङ्मय संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के रूप में विभक्त है और क्रमशः इनका सम्बन्ध चार आश्रमों से जोड़ा गया है। पाणिनि व्याकरण के पातंजल महाभाष्य के प्रारंभ (पस्पाशिक) में चारों वेदों की 1131 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। तदनुसार यजुर्वेद की 101, सामवेद की एक हजार, ऋग्वेद की 21 और अथर्ववेद की 9 शाखाएँ हैं। मान्यता है कि प्रत्येक शाखा के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भिन्न-भिन्न हैं। इस विशाल साहित्य का अब बहुत थोड़ा अंश बच पाया है। आजकल 108 ही नहीं, लगभग 300 उपनिषदें अवश्य उपलब्ध हैं।

बौद्ध धर्म का परिचय देते समय छठे भाग में यह बताया गया है कि चीन का भी यह प्रधान धर्म है। द्वितीय सहस्राब्दी के प्रारम्भ में वहाँ और उसके आस-पास अन्यत्र भी इस धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। यहाँ नवें भांग में बौद्ध धर्म के पहिले विद्यमान वहाँ के **ताओ** और **कनफ्यूश** धर्मों का परिचय दिया गया है। चीन के इन तीन प्रधान धर्मों की चर्चा कर यहाँ ताओ और कनफ्यूश के बुनियादी सिद्धान्तों का उल्लेख कर इनके प्रवक्ता लाओत्से आदि अनेक आचार्यों का परिचय दिया गया है। अकथनीय, अनाम, रहस्यमय जैसे शब्दों से जिस तत्त्व का विवेचन हुआ है, उसका स्वरूप इन्हीं से मिलते-जुलते शब्दों में शाक्त तन्त्रों में भी उपदिष्ट है। कुछ विद्वानों का कहना है कि शाक्त रहस्यवाद पर ताओ धर्म का प्रभाव था। भारतीय नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में भी इस तरह की समानता देखी जा सकती है। ज्ञानी को बालक की तरह बताया गया है। उपनिषदों में भी कहा गया है कि ज्ञानी को बालक की तरह रहना चाहिए। ''मानापमानयोस्तुल्यः'', 'आत्मनःप्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'' जैसे वचन और महात्मा गांधी के तीन बन्दरों की तरह आँख, कान और मुँह बन्द रखने की बात भी बताई गई है।

ऊपर वर्णित सभी धर्म किसी न किसी तरह वैदिक सनातन धर्म की परिधि के आस-पास हैं। इसी तरह हम यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों की एकरूपता को सेमेटिक धर्म के रूप में स्थापित कर सकते हैं। यहाँ 8वें भाग में यहूदी, 10वें में ईसाई और 11वें भाग में इस्लाम धर्म के इतिहास और उपदेशों को देश और काल की परिधि में संकलित किया गया है। इन सभी धर्मों में मूर्तिपूजा निषिद्ध है। जन्मान्तर को यहाँ मान्यता नहीं दी गई। इनके प्रधान ग्रन्थ और प्रवर्तक आचार्यों के उपदेशों का संग्रह अन्य भागों की भाँति इन भागों में भी है।

यहूदी धर्म में रिश्वत लेने को अमान्य घोषित कर दिया गया था। यह सारी पृथिवी परमेश्वर की है, इस उक्ति को हम आचार्य विनोवा भावे के भूदान आन्दोलन का प्रेरणास्रोत मान सकते हैं। आलस्य को छोड़ने और मन की शुद्धि पर भी यहाँ जोर दिया गया है। ऐसे उपदेशों से हमें इस धर्म की उत्कृष्टता का अच्छा परिचय मिलता है। काका कालेलकर ने यहूदी धर्म को आत्मतुष्टता कहा है। अर्थात् इस धर्म के अनुयायियों की धर्मान्तरण में कोई रुचि नहीं है। स्वर्ग और नरक के अतिरिक्त मोक्ष की कल्पना किसी भी सेमेटिक धर्म में नहीं है।

भारतीय सनातन धर्म में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की तरह ईसाई धर्म में परमपिता परमात्मा, भगवान् का इकलौता पुत्र ईसा और पवित्र आत्मा की सत्ता स्वीकार की गई है। चर्च और बाइबिल को धर्म का मूल आधार माना गया है। ईसा के उपदेशों को यहाँ बड़ी स्पष्टता से संगृहीत किया गया है। बाइबिल में कही गई बातों को भी उसी पद्धति से उपस्थित कर इस महनीय धर्म के स्वरूप को उजागर किया गया है। इन उपदेशों का अनुसरण कर व्यक्ति अपने को धन्य मान सकता है। पवित्र आत्मा, अर्थात् ईसाई सन्तों के उपदेश भी यहाँ संगृहीत हैं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस्लाम का अर्थ है—शान्ति। एक अल्लाह को मानना, सबके साथ भाईचारा रखना, पसीने की कमाई खाना, सदाचार का पालन करना- यह है इस्लाम शिक्षा। प्रस्तुत ग्रन्थमाला के 11वें भाग इस्लाम धर्म का का परिचय, मुहम्मद साहब की जीवनी और उनकी पवित्र वाणी के उत्कृष्ट अंश तो यहाँ दिये ही गये हैं, सूफी धर्म और सूफी सन्तों की पवित्र वाणी की झलक भी यहाँ प्रस्तुत की गई है। सत्य, प्रेम और करुणा की त्रिवेणी अपनी गति से यहाँ भी प्रवाहित हो रही है।

समीक्ष्य ग्रन्थ के 11वें भाग में ही इस्लाम शब्द के अर्थ को बताते हुए यहाँ की बुनियादी शिक्षा और साहित्य का परिचय दिया गया है। हजरत मुहम्मद साहब की जीवनी को प्रस्तुत कर कुरान शरीफ की महनीय उक्तियों का विभिन्न शीर्षकों में संग्रह किया गया है। धर्म क्या है? लड़ो मत, किसी को संताओ मत, सदाचार का पालन करो, नाप-तौल में कमी न करो, जैसे शीर्षकों से जहाँ मानबता के पोषक उपदेश संगृहीत हैं। महाभारत में काशी के व्यापारी तुलाधार की कथा मिलती है, जिसमें नाप-तौल में ईमानदारी बरतने के कारण वह अनेक वर्षों तक कठोर तपस्या करने वाले तपस्वी से श्रेष्ठ माना गया है। मुहम्मद साहब की अनेक महत्वपूर्ण उक्तियाँ दी गई हैं।

इस तरह हमने यहाँ काका कालेलकर और पं. श्रीकृष्णदत्त भट्ट के द्वारा प्रस्तुत धर्मों के स्वरूप को संक्षेप में दिखाया है। इन सभी धर्मों के प्रति समभाव रखने का उपदेश दिया जाता है। इसकी समीक्षा अपेक्षित है। आत्मतुष्ट धर्मों से दुनिया को कोई खतरा नहीं है, किन्तु स्पर्धालु धर्मों के प्रति हम ऐसा नहीं कह सकते। ये स्पर्धालु सेमेटिक धर्म पूरी दुनिया को धर्मान्तरण के माध्यम से अपने घेरे में लाने के लिए दिन-रात लगे हुए हैं और हठवादिता एवं आतंकवाद का सहारा लेने से भी नहीं चूकते। अपने देश में हम कश्मीर और असम के आस-पास के क्षेत्रों में उनके इस दुराग्रही स्वरूप का वर्षों से सामना कर रहे हैं। फलतः इन धर्मों के उदार स्वरूप के प्रति हम समादरभाव तो अवश्य रख सकते हैं, किन्तु समभाव रखने पर जैसे पूर्व में यह देश विभाजित हो गया, आगे भी इसकी सम्भावना बनी रहेगी। आज दुनिया के लिए यह अपेक्षित है कि इन सभी धर्मों के उदार तत्त्वों के प्रति समादरभाव रखते हुए उनको अपने जीवन में उतारने के लिए पूरी सद्भावना प्रदर्शित की जाय। विश्व-संस्कृति और एक विश्व की कल्पना तभी सार्थक हो सकती है।

आर्य द्रविण, गंगा-जमुनी संस्कृति जैसे अनेक वैवर्तिक, अर्थात् भ्रामक शब्दों का सार्वजनिक प्रयोग भी विघटनवादी और विलगाववादी मनोवृत्ति के प्रसार में ही अपना योगदान कर रहे हैं। अतिक्रमण, अल्पसंख्यक, असहिष्णुता, आग्रह, (दुराग्रह=धार्मिक हठ) आतंकवाद, आत्मघात, आरक्षण, नेहरु-संस्कृति, पूजा स्थानों का विद्रूपीकरण,बन्दर-घुड़की हठवाद-जैसे शब्दों और कृत्यों के माध्यम से भी अपसंस्कृति का प्रसार हो रहा है। इसे रोका जाना चाहिए। भारत में हिन्दु, मुस्लिम, ख्रीष्ट धर्म और कम्युनिज्म के रूप में चतुष्कोणीय संघर्ष चल रहा है। इसे भी रोका जाना चाहिए। नेकटाई बांधने का प्रचलन आजकल बच्चों के स्कूलों में भी बढ़ता जा रहा है। पुष्पहार (माला) पहनाने की और गुलदस्ता भेंट करने की जगह आजकल बुके ने ले ली है। बर्थ डे को मनाने में मोमबत्तियों का बुझाना भारतीय परम्परा के विपरीत है।

एप्रिल फूल, गुड फ्राई डे तक तो गनीमत है, अब वेलेन्टाइन डे, वाइन डे, आदि के नाम पर पाश्चात्य अपचारों को भी बढ़ावा देने का अपकृत्य किया जाने लगा है। समय रहते इसे भी रोका जाना चहिए। जेहादी मनोवृत्ति और मध्यकालीन बर्बरता ने इस देश की उदार मनोवृत्ति पर विपरीत प्रभाव डाला है। बालकों, वृद्धों और महिलाओं की हत्या भारतीय संस्कृति में निषिद्ध मानी गई है। आत्महत्या को भी जघन्य अपराध माना गया है। मंडल आयोग की स्थापना



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जातिग्रह (जातिवाद) से छुटकारा पाने के लिए की गई थी। उसके माध्यम से मूल समस्या का तो कोई समाधान नहीं निकल सका, उलटे आत्महत्या का नया सिलसिला इसको लागू करने वालों की नासमझी से निकल पड़ा। भारतीय संस्कृति के समग्र स्वरूप को सही तरीके से समझने की मनोवृत्ति भारतीय राजनीतिज्ञों में जागे, यह बहुत जरूरी है।

भारत में विद्यमान मेकाले और मार्क्स के मानसपुत्र जब तक ब्रिटिश कुटिलनीति और नेहरु-संस्कृति के जाल से अपने को निकाल नहीं पावेंगे, जब तक संसार के सर्वोत्कृष्ट भारतीय ज्ञान-विज्ञान को भगवाकरण के नाम पर तिलांजलि देना बन्द कर उसके उत्कृष्ट अवदानों को आत्मसात् करने में समर्थ नहीं होंगे, तब तक हम ब्राह्मणवाद, मनुवाद, ब्राह्मण साहित्य, श्रमण-ब्राह्मण जैसे वैवर्तिक (भ्रामक) शब्दों के मायाजाल से मुक्त न हो सकेंगे और आधुनिक तथाकथित बुद्धिजीवियों और विशेष कर मार्क्सवादी पत्रकारों के द्वारा फैलाये गये मिथ्यावाद से भी, न केवल सामान्य जनता को, संस्कार-शून्य राजनीतिज्ञों को भी बोध-भूमि में प्रवेश नहीं दिला सकेंगें। जैन विद्वानों ने ब्राह्मणवाद जैसे शब्दों के स्थान पर वैदिक धर्म जैसे सौम्य शब्दों का प्रयोग किया है। उसी तरह से महात्मा गांधी के अनुयायियों ने हिन्दु धर्म के स्थान पर सनातन धर्म शब्द को वरीयता दी है। आजकल के राजनीतिज्ञों में पक्ष-विपक्ष के स्थान पर परस्पर शत्रु-मित्रभाव को बढ़ावा मिल रहा है। गणतन्त्र के सम्यक्-संचालन के लिए इसका प्रतीकार हो, यह बहुत आवश्यक है।

हिन्दसा के नाम से प्रसिद्ध अंकविज्ञान पूरे विश्व को भारत की देन है। आजकल उसको भी गलत रूप में पेश करने का प्रयत्न चल रहा है। सन् 2000 में ही 21वीं शती के प्रारम्भ की घोषणा कर दी गई, जबकि इसका आरम्भ 2001 में हुआ। इसी तरह से 1 से 10 संख्या तक का पहला दशक और इसी तरह आगे 91 से 100 तक का दसवाँ दशक माना जायगा, किन्तु आजकल इस गणना को छोड़ दिया गया है और उसकी जगह साठ का दशक, अस्सी का दशक के रूप में इसको प्रस्तुत किया जाता है। पहला दशक, सातवाँ दशक आदि के रूप में इसको दिखाने वाले बिरले ही मिलते हैं तिथि का आरम्भ सूर्योदय के साथ होता है, इसे हम भूल चुके हैं। मध्यरात्रि को तारीख बदलती है, तिथि नहीं। आजकल जन्म-दिन तो तारीख के हिसाब से मानाया ही जाने लगा है, श्राद्ध के लिए भी वह मान्य होती जा रही है और 'कल्याण' जैसी धार्मिक पत्रिका भी अनजाने में ही इसको बढ़ावा देने जा रही है। भारतीय पत्रकार भारतीय-पंचांग को हिन्दु पंचांग और भारतीय तिथि को हिन्दू तिथि लिखने लगे हैं।

हमें यह याद रखना चाहिए कि चान्द्र और सौर कालगणना के अनुसार दो तरह की कालगणना आजकल प्रचलित है। चान्द्र वर्ष में 355 और सौर वर्ष में 365 दिन होते हैं। भारतीय पंचांग में इस अन्तर को अधिकमास और क्षयमास का समावेश कर दूर करदिया जाता है। इस प्रकार चान्द्र और सौर गणना का अन्तर समाप्त हो जाता है पूरी दुनिया में हिन्दसा का ही प्रचार नहीं हुआ, पंचतन्त्र की कथाओं का प्रसार भी उसी काल-अवधि में सम्पन्न पारसी अनुवाद के माध्यम से हुआ है। संघ परिवार के 8-10 सदस्यों को बाबरी ढाँचे के ढहाए जाने की तारीख तो मालूम थी, किन्तु भारतीय तिथि का कोई ज्ञान नहीं था। जब हम अपने पिता का श्राद्ध तारीख के हिसाब से मनाने लगेंगे, तो तिथि को याद रखनेकी आवश्यकता ही क्या रहेगी? छत्रपति शिवाजी की जन्मतिथि के लिए वर्तमान महाराष्ट्र सरकार ने भी तो यही किया है। लोकमान्य तिलक का प्रदेश देश को किधर ले जा रहा है?

धर्मों के समान ही हमें मिस्र, यूनान और तमिल देश के सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि के साथ, समस्त विश्व की प्राचीन धरोहर के साथ एकात्मता स्थापित करनी चाहिए। दुराग्रह और हठवाद को छोड़ कर एवं द्वेषपूर्ण शब्दों



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के व्यवहार से दूर रहते हुए हमें सर्वत्र समन्वय और सद्भाव को आगे बढ़ाना चाहिए। प्रबुद्ध चिन्तकों और शासकों में संभूय समुत्थान की और सामूहिक नेतृत्व भावना का विकास अपेक्षित है, अन्यथा व्यक्ति का अहंकार आगे भी विश्वाहन्ता को मलिन करता रहेगा।

अपनी पुस्तक **'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद'** में आचार्य जी ने राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को देश के सम्मुख रखा है इस पुस्तक में वे कहते हैं—सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता जैसे शब्दों के प्रयोग पर गंभीरता से विचार किया जाय कि क्या वर्तमान समय में इनका सही प्रयोग हो रहा है। हमारी समझ में इस्लामी संस्कृति धर्म के अनुचित हस्तक्षेप को कभी रोक नहीं सकी है और द्वन्द्वात्मक भौतिकतावाद दुनिया में परस्पर विद्वेष के बीजों को पनपाने में ही अपनी सार्थकता समझता है। आजकल इनको ही प्रधान रूप में धर्मनिरपेक्ष माना जाता है और सर्वत्र भ्रातृभाव का प्रचारक भारतीय समुदाय साम्प्रदायिक कहा जाता है। क्या यह उचित है? खंडहरों पर महल बनाने की प्रवृत्ति यहीं से पनपती है।

आजकल का भारतीय बुद्धिजीवी भी इनको प्रगतिशील और सर्वत्र एक कुटुम्ब की भावना को उजागर करने वाले को सांप्रदायिक बतलाता हैं हीन भावना से ग्रस्त भारतीय विचारक न मालूम क्यों शब्दों के इन अनुचित प्रयोगों के खिलाफ कुछ भी बोलने से कतराता रहता है। विदेशी भाषा में नारे लगाने वालों का और क्या हश्र हो सकता है?

राष्ट्रवाद की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय प्रजा हीन भावना से मुक्त होकर इस दुष्प्रचार का, मिथ्या आक्षेपों का परिहार करे और भारतीय संस्कृति सम्बन्धी सार्वभौम उच्च विचारों को पूरे विश्व में अविलम्ब मान्यता मिले, इसके लिए कमर कस लें। सर्वत्र सौहार्द और मेल-मिलाप की भावना के विस्तार के लिए यह अति आवश्यक है। तभी भावनात्मक एकता को मान्यता मिल सकती है। **''विश्वं भवत्येकनीडम्''** इस वैदिक वाक्य को बल मिल सकता है।

वैदिक औपनिषद् ज्ञान-विज्ञान को तो पूरे विश्व की मान्यता मिली ही है, दीक्षापुरश्चरण आदि के प्रसंग में कर्मकाण्ड की अग्नि-समाराधना को भी सभी भारतीय धर्मों ने अपनी अपनी पद्धति से स्वीकार किया है।

पूरी दृढ़ता के साथ हम इस बात का प्रतिवाद करते हैं कि हिन्दुत्व के नाम पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बलि की वेदी पर चढ़ा दिया जाय। घुमा-फिरा कर कुछ कहने की अपेक्षा हम स्पष्ट रूप से यह बता देना चाहते हैं कि मुसलमान आज धर्म के बन्धनों से सर्वाधिक जकड़ा हुआ मानव-समुदाय है। भारत और पाकिस्तान के मुसलमानों के सम्बन्ध में हमारी यह उक्ति अधिक सार्थक है। धर्म को अफीम मानने वाला समुदाय आज इसको अपने साथ रख कर धर्मनिरपेक्ष बन बैठा है, यह एक विडम्बना ही है। ये दोनों मिलकर भगवाकरण के नाम पर हिन्दुत्व को नष्ट कर देना चाहते हैं। कुछ लोग आयातित बौद्ध धर्म के आधार पर भी इस दुरभिसन्धि में लगे हुए हैं। हम यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं कि देश का विभाजन करा देने वाली लीगी मानसिकता की अपेक्षा इस देश के लिए हिन्दुत्व अधिक श्रेयस्कर इसलिए है कि इसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पनपने की अधिक गुंजाइश है।

''सत्यमेव जयते'' यह राष्ट्र का आदर्श वाक्य है। इस राष्ट्र की प्रकृति के अनुसार असत्य बहुत दिनों तक टिका नहीं रह सकता। भारत आज अपने सही स्वरूप को पहिचानने में असमर्थ-सा हो रहा है। अपसंस्कृतियों के धुआँधार प्रचार के आगे वह अपने सही स्वरूप को भुला बैठा है। इसके लिए यह आवश्यक है कि पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति के समग्र



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूप को सही तरीके से प्रस्तुत किया जाय। तभी हीन भावना से ग्रस्त भारतीय समाज में आत्मविश्वास सही रूप में पनपेगा, तभी इस देश में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की निरापद स्थापना हो सकेगी तथा धर्म के नहीं, बल्कि राष्ट्रीयता के आधार पर हम सब भारतीय हो सकेंगे। सांस्कृतिक आधार पर विकसित मानसिकता वाला व्यक्ति कोई भी हो, उसे हम राष्ट्र के वरिष्ठतम पद पर बैठाने में कोई संकोच नहीं करते। इस प्रवृत्ति का जब अधिकाधिक विकास होगा, तो यह देश पूरी तरह से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की महक से गमक उठेगा।

कुछ लोग उर्स के मेलों के जैसे अवसरों पर जुटने वाली भीड़ को साम्प्रदायिक सौहार्द के प्रतीक के रूप में पेश करने में अपना पराक्रम दिखाना चाहते हैं, किन्तु ऐसा प्रचार करने वालों को यह समझ होनी चाहिये कि यह हिन्दू जनता की संस्कारगत प्रवृत्ति है, हिन्दु लोकधर्म का यही स्वभाव है। इस्लाम धर्म अन्य धर्मों के देवी-देवताओं के पूजने के विरुद्ध है। सामंजस्य और समन्वय की प्रवृत्ति हिन्दुत्व की विशेषता है। यह देश का दुर्भाग्य है कि हिन्दुत्व के खिलाफ मिथ्या प्रचार करने वालों के आगोश में भोली भाली भारतीय प्रजा आती जा रही है और ये उसको बरगलाने में कामयाब होते जा रहे हैं। इस घिनौने घेरे से हमें समस्त भारतीय प्रजा को बाहर निकलना होगा। **''असतो मा सद् गमय''** इस वैदिक प्रार्थना का अनुसरण करते हुए हमें असत् के अन्धकार को दूर करना होगा।

साथ ही भारतीय प्रजा को हम यह भी बता देना चाहते हैं कि हिन्दुत्व आज राष्ट्र को जोड़ नहीं सकता। जैसा कि हमने अनेक स्थलों पर कहा है, हिन्दू और मुसलमान आज बौद्धकालीन श्रमण-ब्राह्मण जैसी परस्पर विरोधी भावनाओं से ग्रस्त हो गए हैं। सूफी सन्तों के उपदेश दुनिया को इस्लाम की एक बड़ी देन है, किन्तु जहाँ इसके माध्यम से इस्लाम ने राजनीतिक लाभ लेना शुरू कर दिया, उसकी सही समीक्षा तो करनी ही पड़ेगी। बार-बार धोखा खाना और देना, ये दोनों ही पक्ष मानवता की कोई सही सेवा नहीं कर सकते।

अपने लेखन में सुधारवादी आन्दोलन की चर्चा के प्रसंग में हम बता चुके हैं कि कहीं-कहीं यह भटक गया है। वेद, वेदान्त और बौद्ध धर्म के प्रसंग में इसे विशेष रूप से देखा जा सकता है। विगत ढाई हजार वर्षों में विकसित तन्त्रागमशास्त्र पुराणेतिहास और सन्तों के विशाल साहित्य के कारण वैदिक दृष्टिकोण में पर्याप्त सुधार हुआ है, किन्तु यहाँ उसकी पूरी तरह से उपेक्षा कर दी गई है। फलस्वरूप वैदिक वर्णव्यवस्था, अवैदिक मतों का अप्रामाण्य और श्रमण-ब्राह्मण विवाद जैसे कालातीत विषयों को पुनः जिला दिया गया है, हिन्दुत्व आज अपनी इस संकुचित दृष्टि के कारण बदनाम-सा हो गया है। 'आगम साहित्य और उसका प्रामाण्य', 'आगम-तन्त्रशास्त्र की सामाजिक दृष्टि' 'भारतीय वाङ्मय का कालिक पर्यवेक्षण' जैसे इस संग्रह के निबन्धों में हमने हिन्दुत्व के सार्वभौम स्वरूप को उजागर किया है। उसके आधार पर भगवाकरण, ब्राह्मणवाद-मनुवाद, मंडल-कर्मकाण्ड जैसे आरोपित शब्दों का कोई प्रभाव आज बचा नहीं है। हिन्दुत्व के इस उदारतम स्वरूप को पूरे विश्व के सामने उजागर करने की आवश्यकता है। तभी भारतीय प्रजा इस मिथ्या आक्षेपों से अपने को मुक्त कर सकेगी और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से ओतप्रोत हो सकेगी। विदेशी भाषा के माध्यम से नए-नए नारे गढ़ने से यह काम होने वाला नहीं है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का दूसरा विरोधी तत्त्व है धर्मान्तरण। सेमेटिक धर्मों का यह एक दुराग्रह है कि इनके अपने घेरे में आए बिना व्यक्ति मुक्ति नहीं पा सकता। दुनिया में सुख-शान्ति की स्थापना के लिए सेमेटिक धर्मों को अपना यह आग्रह छोड़ना होगा। 'पुराणानां नूनमागममूलकत्वम्' शीर्षक संस्कृत निबन्ध में आगम की परिभाषा पर विचार करते हुए



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने इष्टदेव की उपसना अपनी पद्धति से करे, इसका उसे पूरा अधिकार है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दूसरों की उपासना में उसे कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस निबन्ध के आगमशास्त्र को परिभाषित करने वाले कुछ अंश अत्यन्त माननीय हैं। वहाँ उद्धृत किए गए वराहमिहिर आदि के वचन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की स्थापना में बहुत सहायक हो सकते हैं। इस पर पूरी भारतीय प्रजा को गंभीरता से विचार करना चाहिए। आप अपने इष्टदेव को अपना इष्टदेव माने और इसके लिए उसका धर्मान्तरण किया जाय इस तरह के धार्मिक आग्रह ही राजनीति में तानाशाही पनपाने में सहायक होते हैं। क्या प्रबुद्ध मानव अनन्त काल तक इस घार्मिक मानसिकता को पाले रखेगा और धर्मनिरपेक्षता के दंभ को भी भरता रहेगा? धर्मान्तरण की मानसिकता के रहते सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की स्थापना हो ही नहीं सकती।

भारतीय संस्कृति में संप्रदाय एक पवित्र शब्द माना जाता है। गुरुपरम्परा से प्राप्त ज्ञान सांप्रदायिक कहलाता है। इसी तरह से चार पुरुषार्थों में धर्म का प्रमुख स्थान है। अर्थ और काम इसी से नियन्त्रित होते हैं। आज अर्थ और काम में आकण्ठ डूबे राजनेता एवं उनके पिछलग्गू तथाकथित बुद्धिजीवी भारतीय प्रजा को असाम्प्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष बनने का उपदेश देकर उसे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से दूर रखना चाहते हैं। ये भारतीय संस्कृति को नष्ट करने में लगे हुए हैं। भारतीय प्रजा को हीन भावना का त्याग कर भारतीय संस्कृति पर आरोपित आक्षेपों का समय रहते सही समाधान प्रस्तुत करना चाहिए। इसके लिए हमारे लेखन में उनको पर्याप्त सामग्री मिल सकती है।

हमें याद रखना है कि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात को जहर पिलाया गया था। स्वयं ईसामसीह को शूली पर चढ़ा दिया गया था। ताजिया निकालने के अवसर पर बलिदानी हसन-हुसेन को प्रतिवर्ष याद करने वाले शिया-सुन्नी मुसलमान आज भी आपस में भाई चारा नहीं बना पाये हैं। आज के कम्युनिस्ट आन्दोलन के प्रर्वतकों ने अपने ही सहयोगी की हथौड़े से सिर फोड़ कर जघन्य हत्या कर दी थी। क्या ये हिन्दुत्व को कोई शिक्षा दे सकते हैं? औरंगजेब की जगह दाराशिकोह यदि भारत का शासक बना होता, भारत की यह दुर्दशा न हुई होती।

### भारत का सांस्कृतिक इतिहास

इस पुस्तक में विद्वान लेखक का यह स्पष्ट विचार है कि भारतीय तत्त्वज्ञान के क्रमिक विकास को ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, हिन्दु आदि के कल्पित काल-विभागों में बाँट कर किया गया अनुशीलन वस्तुतः अधूरा है। सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन के दैशिक और कालिक-विकास का तुलनात्मक एवं घात-प्रतिघातात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया जाना चाहिये और ऐसा करते समय ब्राह्मण, जैन, बौद्ध जैसे कल्पित विभाग सत्य की खोज में बाधक नहीं बनने चाहिये। इस प्रकार का अनुशीलन प्रस्तुत न हो पाने से ही भारतीय चिन्तन में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ प्रविष्ट हो गई हैं।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास की प्रमुख विसंगति यह है कि यहाँ विगत ढाई-तीन हजार वर्षों में विकसित आगम-तन्त्रशास्त्र की पूरी तरह से उपेक्षा कर दी गई है। वहाँ के कुछ अंश हमारे लिए समालोच्य हो सकते हैं, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम पूरे शास्त्र का तिरस्कार कर दें। आश्चर्य इस बात का है कि तन्त्रशास्त्र का जो हेय पक्ष है, उसी से आज के योगी, स्वामी, ब्रह्मचारी नामधारी मानवता ज्यादातर जुड़ी हुई है और उसे सामान्य जनता में ही नहीं, भारतीय समृद्ध वर्ग राजनेतागण और तथाकथित बुद्धिजीवियों के बीच भी पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है। आगमशास्त्र में ऐहिक और आमुष्मिक सामान्य सुख (अभ्युदय) के अर्थ में प्रयुक्त भोग शब्द को जिन्होंने संभोग के अर्थ में ला पटका है, उनको आज भगवान से भी ऊँची जगह पर पहुँचा दिया गया है। आज का भारतीय समाज वैदिक और तान्त्रिक दोनों धर्मों की विद्रूपताओं से



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्रस्त है और इनकी अच्छाइयों को भुला बैठा है।

आज वैदिक, स्मार्त, जैन और बौद्ध धर्मों के उस प्राचीन स्वरूप को तो जिलाने का प्रयास किया जा रहा है, जिनमें विषमता प्रधान थी, किन्तु धर्म और दर्शन के क्षेत्र में वैचारिक संघर्षों के कारण जो परिवर्तन आये, आगम और तन्त्रशास्त्र ने भारतीय धर्मों और दर्शनों में समन्वय स्थापित करने का जो महनीय कार्य किया, इसे हम भुला बैठे हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि जैसे धर्मों और दर्शनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास इन शास्त्रों ने किया है, वैसे ही इनमें यह भी सामर्थ्य है कि ये आन्तर आध्यात्मिक दृष्टि और बाह्य भौतिकवाद में भी समन्वय स्थापित करने में समर्थ हो सकेंगे।

आज भारतीय समाज की जिन समस्याओं को बढ़ा-चढ़ाकर परोसा जा रहा है, उनका समाधान यहाँ बहुत पहले खोज लिया गया था और पूरे भारत की सन्त-परम्परा उसी मार्ग का उद्घोष कर रही है। यह हमारी मूढ़ता ही है हम इन सन्तों की वाणियों को पूरी तरह से स्वयंप्रसूत मान बैठे हैं और भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परम्परा से-रामायण, महाभारत, पुराण और आगम-तन्त्रशास्त्र से उसकी संबद्धता को भुला बैठे हैं। संस्कृत भाषा के प्रति फैलाये गये द्वेष की इसमें महती भूमिका है। आज अपने-अपने राज्य की भाषा का मोह उस अमृत-स्रोत को सुखाने जा रहा है, जो दुनिया की सबसे प्राचीन, सबसे समृद्ध भाषा से प्रसूत होता रहा है और आज के कम्प्यूटर युग में भी जिनसे अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर दी है। हमें यह याद रखना है कि संस्कृत दुनिया को एकता के सूत्र में पिरोने वाली भाषा है।

परिस्थितियों और समय की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न भारतीय दर्शनों का विकास हुआ है। ऊपर से देखने में इनका संबन्ध अहिनकुलवत् परस्पर विरोध-सा लगता है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। समाज में साधारण तथा स्वाभाविक परिवर्तन होता रहता है किन्तु कभी-कभी क्रान्ति के द्वारा भी सहसा गति से चलने लगता है, तो भी उस पर क्रान्ति अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। इस क्रान्ति का जन्म भी धीरे-धीरे सहज स्वाभाविक परिस्थितियों में होता है। केवल क्रान्ति से चिपके रहने वाला और सतत प्रवाहमान धारा का साथ न देने वाला पिछड़ जाता है और उसे एकाकीपन महसूस न हो, इसके लिये वह अपने इर्द-गिर्द एक नये रूढ़िवादी समाज की रचना कर लेता है। संप्रदायों, मत-मतान्तरों और नये-नये वादों का इसी प्रकार सूत्रपात होता है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इसे देखा जा सकता है।

आज भारत को पुनः उसी तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भारत में उपजे धर्मों के अतिरिक्त बाहर से आये धर्मों में आज उसी तरह की अथवा उससे भी निकृष्ट कोटि के संघर्ष की स्थिति है। क्या इनमें सहिष्णुता के आधार पर पुनः समन्वय स्थापित करने की हमारी सामर्थ्य चुक गई है? वास्तव में ऐसा है नहीं, किन्तु ऐसा करने से पहले हमें धर्म और संस्कृति का अन्तर पहचानना होगा। ऊपर बताये गये सभी धर्म या संप्रदाय यहाँ किसी न किसी रूप में अब भी स्थित है और सहिष्णुता के आधार पर समन्वय की ओर अग्रसर उदार विचारधारा भी। पहली परम्परावादिनी विचारधारा को धर्म के नाम से और दूसरी उदारवादी प्रवृत्ति को हम संस्कृति के नाम से पहचान सकते हैं। हमने आज धर्म और संस्कृति को एक मानकर संस्कृति की पहचान को ही समाप्त कर दिया है।

प्राचीन भारत की वेद को प्रमाण मानने वाली और न मानने वाली दो तरह की परम्पराओं की तरह आजकल धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करने वाली और न करने वाली दो तरह की विचारधाराएँ भी स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। तथाकथित भारतीय राजनीतिज्ञ बिना सोचे-समझे, केवल अपनी स्वार्थपूर्ण राजनीति के चलाने के लिये, भारतीय धर्मों और संप्रदायों



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की समालोचना करते हैं। उनसे उन प्रतिगामी धर्मपरिवर्तनवादिनी ताकतों को ही बल मिलता है, जो प्रच्छन्न रूप से भारतीय संस्कृति को उखाड़ फेंकने में लगी है। फलतः मध्यकालीन बर्बरता और अर्थलोलुपता को बढ़ाने वाले संस्कार आतंकवाद के रूप में तीव्र गति से भारतीय प्रजा को भयभीत करने में लगे हुए हैं। मध्यकालीन बर्बरता के अनुयायी आक्रमणकारियों ने धर्म के नाम पर असंख्य धर्मस्थलों को विकृत कर दिया। इस विकृत मानसिकता के प्रतीक इन स्थलों की सुरक्षा के नाम पर क्या हम मानवीय उदात्त गुणों की अपेक्षा धार्मिक बर्बरता को प्रश्रय नहीं दे रहे हैं? क्या इस प्रकार से भारतीय संस्कृति के सहिष्णुता, समन्वय जैसे मूल उपादानों पर ही हम कुठाराघात नहीं कर रहे हैं?

चीनी विस्तारवाद और इस्लामिक हठवाद ( बन्दर-घुड़की) का एक न एक दिन पूरी दुनिया को सामना करना पड़ेगा। अमेरिका ने तो इसका सामना किया। अपने जन्म के साथ इसराइल भी इसका जवाब दे रहा है, किन्तु भारतीय राजनीतिज्ञ इस्लामिक बन्दर-घुड़की से सदा आतंकित रहे हैं। कश्मीर से पूरा हिन्दू समाज निकाल बाहर कर दिया गया। इनके लिये आँसू बहाने वाला एक भी राजनीतिज्ञ दूरबीन से खोजने पर भी नहीं दिखाई पड़ता है, किन्तु 10-20 आतंकवादी जब एक साथ पकड़ लिये जाते हैं या मुठभेड़ में मारे जाते हैं, तो इन तथाकथित धर्म-निरपेक्ष ताकतों की नींद हराम हो जाती है। देश की रक्षा के एक स्तंभ के रूप में अपने को प्रस्तुत करने वाले पत्रकारों का शोरगुल भी पाठकों को आश्चर्य में डाले बिना नहीं रहता। धर्म के नाम पर भारतीय संस्कृति का यह पराभव विगर्हणीय है।

भारतीय धर्म और संस्कृति पर आज चतुर्दिक् प्रहार किये जा रहे हैं। यह सारा बखेड़ा धर्म और संस्कृति में घालमेल कर देने से उठ खड़ा हुआ है। भारत के सभी राज्यों में अपनी-अपनी भाषा में भक्तों, सन्तों और सूफियों का विशाल साहित्य उदारवादी भारतीय संस्कृति को उजागर करता है। रामानन्द, कबीर, रैदास, ज्ञानदेव, नानकदेव, मीराबाई, नरसी मेहता आदि उस मानवतावादी भक्ति-प्रधान सहित्य के प्रतिनिधि पुरोधा हैं, किन्तु इस बात को हम भूल बैठे हैं कि इन सबकी पृष्ठभूमि में आगम, पुराण तन्त्रशास्त्र आदि का एक विशाल उदारवादी गंभीर साहित्य-समुद्र हिलोरें ले रहा है, जिसने वैदिक-अवैदिक मतवादों में समन्वय स्थापित करने का महनीय प्रयत्न किया था। इस साहित्य ने सभी भारतीय मतवादों और धर्मों में सहिष्णुता और समन्वय को ही जन्म नहीं दिया, पूरी मानव जाति को मुक्ति का अधिकार भी दिया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी उसी उदारवादी भारतीय संस्कृति के प्रतीक थे। आज तो हम उन्हें भी भुला बैठे हैं।

हमारी अपनी समालोचना के बिना यह प्रयोग अधूरा रह जायेगा। तन्त्रशास्त्र के "भागश्च करस्थ एवं" इस सिद्धान्त को तो हमने स्वीकार कर लिया, किन्तु वहीं जब जाति की अपेक्षा चरित्र को महत्त्व दिया जाता है, तो उसकी यह बात हमारे गले-तले नहीं उतरती। 20वीं शताब्दी के राजनीश भी एक जैन आचार्य हैं और पहली-दूसरी शताब्दी के तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति भी। एक संभोग से समाधि का उपदेश देते हैं, तो दूसरे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चरित्र को मोक्ष का मार्ग मानते हैं। 'सत्' की उमास्वति की परिभाषा (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्) भारतीय दर्शन में अन्यत्र शायद दुर्लभ है। "बहुजनहिताय बहुजनसुखाय" के भगवान् के उपदेश के बात भी भारतीय दर्शन और उपासना पद्धति में से व्यक्तिवाद को हम हटा नहीं सके हैं। उनकी संसार के सारे प्राणियो को दुःख से मुक्त कराने की अभिलाषा योगी अरविन्द, परमपावन दलाई लामा, महामनीषी श्रीश्रीगोपीनाथ कविराज जैसे कुछ गिने-चुने महानुभावों तक ही सिमट कर रह गई है।

वैदिक कर्मकाण्ड को तो हम भुला बैठे हैं, किन्तु तान्त्रिक कर्मकाण्ड को आग्रहपूर्वक स्मरण किया जाता है, क्योंकि उसमें हमारी इन्द्रियलोलुपता को तुष्ट करने के लिए पर्याप्त उपादान हैं। यह बात सही है कि कुछ योग-संबन्धी और तान्त्रिक



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विधियों का प्रायोगिक अनुशीलन अपेक्षित है, किन्तु इस प्रसंग में हमें विचार करना होगा कि क्या ये विधियाँ मूल रूप से आजतक सुरक्षित हैं? वैदिक विधियों के समान ही इनमें से अधिकांश क्रियाकलाप लुप्त हो चुके है, उनमें से भी बहुत सा अंश कालातीत हो चुका है।

सिद्धियों और चमत्कारों से दूर रहने के भगवान् बुद्ध के उपदेश को हम भुला बैठे हैं। योगसूत्रकार महामुनि पतञ्जलि ने भी सिद्धियों को समाधि के लिये अन्तराय (विघ्न) माना है। फिर ये सिद्धियाँ सामान्य जन की सम्पत्ति कभी नहीं बन पाई हैं। श्रद्धेय कविराज जी के गुरुदेव के पास जो सिद्धियाँ थीं, वे इनमें संक्रान्त न हो सकीं। वे बड़े स्पष्ट शब्दों में कहते थे कि मुझे दीक्षा देने का अधिकार नहीं मिला है। उनकी यह स्पष्टोक्ति, उनका यह निर्मल-निश्छल भाव ही हमारी समझ में भारतीय संस्कृति का निचोड़ है। उनका अखण्ड महायोग अखिल विश्व के साथ तन्मयता का, निर्विकार प्रेमभाव का उद्भावक है। हम तन्त्रशास्त्र की पद्धति के अखण्ड संस्कृति के माध्यम से इसको पा सकते हैं। तन्त्रशास्त्र की शैव, शाक्त और बौद्ध धाराओं में शास्त्र और गुरु की अपेक्षा प्रातिभा ज्ञान को वरीयता दी गयी है। विविध कर्मकाण्डों की अपेक्षा उसमें चित्त की प्रभास्वरता (निर्मलता) पर अधिक जोर दिया है। आज हम सभी धर्मों की अच्छाइयों को भुला बैठे हैं और कुछ रूढ़िवादी तत्त्वों से चिपके हुए हैं। अखण्ड भारतीय संस्कृति ही अब हमारा उद्धार कर सकती है।

इसके लिये हमें पं. नेहरू और लोहिया का अधकचरा मार्ग छोड़ कर काशी के डॉ. भगवान्दास, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. सम्पूर्णानन्द, प्रो. मुकुटबिहारीलाल, जैसे विद्वानों के द्वारा दी गयी भारतीय संस्कृति की व्याख्या का अनुसरण करना होगा। सबसे पहले हमें धर्म-निरपेक्ष शब्द से अपना पिण्ड छुड़ाना होगा। इसके स्थान पर 'लोकराज्य' शब्द के औचित्य को चार्वाक दर्शन की पृष्ठभूमि में हमने सिद्ध किया है। गुजरात और महाराष्ट्र के पत्रकार 'बिन-संप्रदाय' शब्द का और उत्तर भारत के पत्रकार 'पन्थ-निरपेक्ष' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'धर्म-निरपेक्ष' शब्द का नहीं। जब तक 'सेक्युलर' शब्द का सही अनुवाद स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक इन शब्दों का प्रयोग किया ही जा सकता है।

इस दुनिया में भारत को छोड़कर शायद ही कोई ऐसा देश होगा, जिसकी अपनी राष्ट्रीयता, अपनी राष्ट्रभाषा और संस्कृति न हो। भारत की आज अपनी कोई राष्ट्रीयता नहीं है। एक विदेशी भाषा के चंगुल में यह फँसा है और इसका फन्दा दिन-प्रतिदिन कसता चला जा रहा है। पं. नेहरू के मानसपुत्र यहाँ की संस्कृति को गंगा-जमुनी संस्कृति नाम देना पसन्द करते हैं। ऐसी स्थिति में भारत में कभी एक राष्ट्रीयता, एक भाषा और एक संस्कृति पनप पायेगी, इस पर विचार करने की भी फुरसत किसी को नहीं है। बहुत से प्रगतिशील! महानुभाव तो इसकी आवश्यकता भी नहीं मानते। इस समस्या पर भी समय रखते विचार होना चाहिये।

यह देश आज चतुष्कोणीय संघर्ष में उलझा हुआ है। ये चार कोण हैं- हिन्दू, मुस्लिम, ख्रीष्ट और कम्युनिस्ट। कल्पित धर्म-निरपेक्षता के नाम पर ये दो वर्गों में बाँट दिये गये हैं। हिन्दू वर्ग को छोड़कर बाकी तीन वर्गों ने अपने को धर्म-निरपेक्ष तथा हिन्दू वर्ग को साम्प्रदायिक घोषित कर दिया है। ये अंग्रेजी भाषा और गंगा-जमुनी संस्कृति के पक्षपाती हैं। यों इन तीनों वर्गों का भी अपना-अपना लक्ष्य अलग-अलग है, किन्तु इस देश की मूल मान्यताओं को तहस-नहस कर देने में ये सब एकमत हैं। आश्चर्य यह है कि वर्तमान हिन्दू समाज ने इन वर्गों की मंशा के अनुसार अपने को एक अलग कौम मान लिया है और बेचारा यह भारत देश इस चतुष्कोणीय संघर्षों में उलझ गया है।

तन्त्रशास्त्र मात्र जादू-टोना, मारण-उच्चाटन तक ही सीमित नहीं है, न यह मात्र उन तान्त्रिकों का शास्त्र है, जिनके



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ जाकर आजकल के नेतागण नाक रगड़ते हैं और न वह तन्त्रशास्त्र है, जिसकी सिद्धियों को उपन्यास की शैली में पेश कर लोगो को भरमाया जाता है। यदि यह सब होता, तो एक हजार वर्ष पहले भारत को और आज तिब्बत को पराधीनता का मुँह न देखना पड़ता। यह तो वह शास्त्र है, जो सिद्धों और नाथों, आलवारों, सन्तों की प्रेरणा का स्रोत भी रहा है। यह बिना किसी भेदभाव के मानवता का ही नहीं, प्राणी मात्र का कल्याण चाहता है।

भारत में परस्पर विरोधी विचारधाराओं को जोड़ने के दो-तीन सफल प्रयास हुए हैं। उनकी अन्तिम परिणति हमें महाभारत, पुराण, आगम और तन्त्रशास्त्र के रूप में मिलती है। इस तरह के एक और प्रयास की हमें अपेक्षा है। हिन्दु शब्द आज बौद्ध, जैन, सिक्ख, पारसी, मुसलमान और ईसाई समुदाय को अपने में समेट पाने में असमर्थ है। आज 'श्रमण-ब्राह्मणम्' जैसी ही स्थिति हिन्दु-मुसलमान की हो गई है। शैवों, वैष्णवों और भारत के अन्य अनेक संप्रदायों के समान हम उक्त सभी धर्मों को भारतीय संस्कृति की विभिन्न धाराओं के रूप में मान्यता दे सकते हैं। यहाँ के सभी सम्प्रदाय जायज या नाजायज तरीकों से अपनी संख्यावृद्धि का आग्रह छोड़कर यदि शान्ति के साथ रहना सीख लें, तो हिन्दुत्व को इस शुभ कार्य में आड़े नहीं आने देना चाहिये। भारतीयता को ही सर्वोपरि मान्यता मिलनी चाहिये।

1. हम देखते हैं कि संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्र, स्थापत्य आदि कलाओं के क्षेत्र में पूरा राष्ट्र एकरस हो चुका है। जब बहादुरशाह जफर कहता है कि मुझे दफन होने के लिए दो गज़ जमीन अपने वतन में न मिल सकी, तो पूरा राष्ट्र अपने बहते हुए आँसुओं को रोक नहीं पाता। अकबर महान् और दाराशिकोह के दिखाये मार्ग से हम इस तरह की एकता के डग भर सकते हैं।

2. पूरे भारत में फैले पवित्र तीर्थों, नदियों, पर्वतों और सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर इस महान् देश के साथ हम पूरी तन्मयता से अपनी ममता को अनायास मोड़ सकते हैं। आधुनिक इतिहास के समान हम यहाँ के मध्यकालीन और प्राचीन इतिहास के साथ भी अपना नाता जोड़ सकते हैं। वैदिक वाङ्मय और संस्कृत भाषा आज प्राचीनतम साहित्य और भाषा के रूप में पूरे विश्व में मान्य हो चुकी है। सभी भारतीय भाषाओं में आज संस्कृत भाषा सर्वाधिक मान्य और व्यवहार्य है। इसका आदर करना तो हम सीख ही सकते हैं।

3. भगवद्गीता कहती हैं कि सभी महान् विभूतियाँ और तेजस्वी व्यक्तित्व भगवान् के ही अंश हैं। इस संसार के सभी धर्म-प्रवर्तकों, आचार्यों और अवतारों के प्रति हम अपना आदरभाव तो प्रकट कर ही सकते हैं।

4. कुछ पूर्वाग्रहों को छोड़कर यदि हम त्यौहारों को मनावें, झगड़ा करने की मंशा के बिना उत्सवों का आयोजन करें, तो इन अवसरों पर कटुता और हिंसा का वातावरण स्वतः धीरे-धीरे समाप्त हो सकता है। मस्जिदों के पास बाजा बजाना, कुर्बानी के लिये गाय को चुनना, एक दूसरे के खिलाफ नारेबाजी करना जैसे दुराग्रहों को हम अनायास छोड़ सकते हैं।

5. यहाँ रह रहे समुदायों में परस्पर के प्रति कुछ निराधार अथवा साधार आशंका घर करके बैठी हैं। पाकिस्तान के बनने से वे और गहरा गई हैं। पाकिस्तान के और पाकिस्तानियों की मनोवृत्ति के रहते हुए भी हम इन आशंकाओं के निराकरण का रास्ता खोज सकें, तो अवश्य ही एक भारतीय संस्कृति के निर्माण का पथ प्रशस्त हो सकता है।

आचार्य द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक **'भारतीय संस्कृति के विविध आयाम'** में भारत की गरिमामयी संस्कृति की विवेचना करते हुये कहा है कि— भारतीय संस्कृति पर जाने-अनजाने चतुर्दिक् प्रहार हो रहे हैं। सुधारवादी आन्दोलन शांकर वेदान्त के इर्द-गिर्द घूमा है और इसके कारण अनेक विसंगतियाँ उठ खड़ी हुई हैं। श्रमण-ब्राह्मण, आर्य-द्रविण,



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्णव्यवस्था जैसी अनेक समस्याओं को जान-बूझ कर पुनः जिला दिया गया है, जिनका कि समाधान तान्त्रिक वाङ्मय ने एक हजार वर्ष पहले ही खोज लिया था। आज हम वेद-वेदान्त और आगम-तन्त्रशास्त्र की बुराइयों से घिरे हुए हैं और इनके उत्कृष्ट अवदानों को भुला बैठे हैं। यही कारण है कि हमारी आक्रमणशील कुसंस्कारों को हजम करने की शक्ति अजीर्ण से ग्रस्त हो गई है। एक हजार वर्ष तक साथ रहने पर भी हम इस्लाम की क्रूरता, हठवादिता और और असहिष्णुता जैसे कुसंस्कारों को दूर नहीं कर सके हैं और उनके चिरप्रचारित भाईचारे के संदेश को भी इस्लामिक घरौंदे से बाहर नहीं निकाल सके हैं। उलटे हम भी उन दूषणों से घिरते जा रहे हैं। एकता में अनेकता और अनेकता में एकता को देखने वाले भारतीय दर्शन को एकेश्वरवाद के समक्ष तुच्छ सिद्ध करने का अबाध प्रचार चल रहा है और ये एकेश्वरवादी कुसंस्कार इस पूरी दुनिया पर केवल अपना ही एकछत्र आधिपत्य जमाने को उद्यत हैं। छल-छद्म अथवा नकली दयाभाव के सहारे धर्मपरिवर्तन का चक्र निरन्तर चल रहा है। हम मूक दर्शक बने हुए हैं और चिरपुरातन होते हुए भी चिरनवीन उदारवादी भारतीय संस्कार इनका प्रतीकार करने में स्वयं असहाय से हो गये हैं। राम-कृष्ण, बुद्ध-महावीर, सन्त कबीर, रविदास, गुरु नानकदेव और महात्मा गांधी के देश की क्या यही नियति लिखी गई है?

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों की कल्पना की गई है। धर्म इनमें प्रधान है। धर्म-नियन्त्रित अर्थ और काम के सेवन से ही मानव जाति सुख-शान्ति से रह सकती है। लौकिक दृष्टि से इसी को हम मोक्ष मान सकते हैं। योगी अरविन्द की कल्पना तभी साकार हो सकती है। किन्तु न मालूम किस अशुभ घड़ी में किये गये 'सेक्युलर स्टेट' के 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' अनुवाद ने पूरे देश को अनियन्त्रित अर्थ और काम के शिकंजे में फँसा दिया है। तथाकथित राजनेताओं और बुद्धिजीवियों में इसका प्रभाव तीव्र गति बढ़ा है। धीरे-धीरे पूरा देश नैतिकताविहीन होता जा रहा है। धन और विद्या को सम्मान मिले, इसमें किसको एतराज हो सकता है? किन्तु नैतिकता-विहीन धन और अहंकार भरी विद्या से समाज का क्या कल्याण होगा? आज देश को चरित्रवान् अर्थपरिशुद्ध व्यक्तियों की आवश्यकता है। आगमिक संस्कृति ने कुल, धन और विद्या की अपेक्षा चरित्र को वरीयता दी है। आज उसी की देश को आवश्यकता है। इसके अभाव में नैतिकता-विहीन अर्थ और अहंकारी विद्या से देश का हित कभी सिद्ध नहीं हो सकता।

पुरातन की आज जिस प्रकार उपेक्षा हो रही है, उसका एक अच्छा उदाहरण मनुस्मृति है। सनातन धर्म में विद्यमान सारे अनार्थों की जड़ आज इस स्मृति को मान लिया गया है। ऐसे महानुभाव आचार्य नरेन्द्रदेव की दी गई सनातन धर्म (भारतीय संस्कृति) की परिभाषा से अपरिचित हैं। सनातन धर्म के परिष्कार के लिये सम्पन्न हुए अन्य अनेक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में ही हम आर्यसमाजी विचारों की भी समीक्षा कर सकते हैं। सनातन धर्म के आजीवक, लोकायत, जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि आन्दोलनों के उदात्त तत्त्वों को ग्रहण करने में कभी परहेज नहीं किया। सिद्धों, नाथों, सन्तों और गुरुओं ने इसी दृष्टि का अनुसरण किया है। महात्मा गांधी और आचार्य नरेन्द्रदेव इसी परम्परा के प्रतिनिधि हैं। "सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते" इसका आदर्श वाक्य है। यह किसी एक ग्रन्थ पर आधारित नहीं है, अथ च सभी उत्कृष्ट अवदानों को स्वीकार करने में कभी संकोच नहीं करता। जेन्दावेस्ता, बाईबिल और कुरान को भी वह उतनी ही महत्ता देता है। इसे हम विश्व का उदारतम धर्म (संस्कृति) मान सकते हैं। इस उत्कृष्ट अवदान को दिखाने के लिये 'मनुस्मृति के कुछ वचन ही पर्याप्त हैं। आधुनिक प्रबुद्ध विचारक थोड़ा ठहर कर सोचेंगे कि क्या ये शाश्वत मूल्य कभी उपेक्षणीय हो सकते हैं?

प्रस्तुत ग्रन्थ में भगवद्गीता, पांचरात्राधिकरण, नारायणीयोपाख्यान, भागवत जैसे ग्रन्थों और विश्वाहन्ता, अखण्ड



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महायोग जैसे विषयों की भी चर्चा की गई है। आपाततः इनका परस्पर कोई संबन्ध प्रतीत नहीं होता, किन्तु इनके आधार पर यहाँ एक राष्ट्रीयता, भावात्मक एकता और अखण्ड भारतीय संस्कृति के निर्माण के लिये उपयुक्त सामग्री का ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक पद्धति से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। मीमांसाशास्त्र में उपक्रम-उपसंहार पद्धति से शास्त्र की एकरूपता का निर्णय लिया जाता है और आवाप एवं उद्वाप (ग्रहण और परित्याग) की पद्धति से उपादेय विषय का संग्रह तथा हेय विषय का परित्याग किया जाता है। इन नियमों का यहाँ पूरी तरह से पालन किया गया है और "पुराणमित्येव न साधु सर्वम्" कालिदास की इस उक्ति के अनुसार पुरातन और नूतन में सहज समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

"वसुधैव कुटुम्बकम्" और विश्वाहन्ता-दृष्टि का निरूपण करने के साथ ही यहाँ अन्तरराष्ट्रीयता के व्यामोह की आलोचना भी की गई है। स्वत्व के विस्तार के साथ उसका लोप न हो जाय, इसको देखना भी जरूरी है। किन्तु विश्व स्वत्व के संकोच की ओर तेजी से बढ़ रहा है। विगत कुछ वर्षों में अनेक देश खंडित हो चुके हैं। संघात्मकता विघटन की ओर तेजी से बढ़ रही है। इसको तभी रोका जा सकता है, जब कि दुनियाँ में नये-नये राष्ट्रों की संख्या बढ़ने के बजाय घटने लगे। यह तभी हो सकता है, जब कि राष्ट्रों में परस्पर संघबद्ध होने की भावना जगे। एक दुनियाँ का स्वप्न भी तभी साकार हो सकता है। यह जब तक संभव नहीं होता, हमें अन्तरराष्ट्रीयता के व्यामोह से बचना होगा।

वैदिक विश्वबन्धुत्व की भावना के साथ आज हमें भगवान् बुद्ध की महाकरुणा को एवं भगवान् महावीर की कठोर त्तपस्या को मिलाना होगा। साथ ही आगम और तन्त्रशास्त्र में तथा सिद्धों, नाथों, सन्तों और गुरुओं की वाणी में बताई गई समता दृष्टि का भी विस्तार करना होगा। आज ही दुनियाँ केवल राजनतिक संघर्ष से ही नहीं, धार्मिक और सांस्कृतिक विद्रूपताओं से भी भरी हुई है। राजनीतिक लाभ के लिये धार्मिक और सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का भी सहारा लिया जा रहा है और एक अखण्ड भारतीय संस्कृति के निर्माण में बाधा पहुँचाई जा रही है। दुर्योधन की जंघा की तरह कमजोर अंगों पर आक्रमण सदा होता रहा है। इसलिये हमें अपनी कमजोरियों को पहचान कर उनको दूर करने का प्रयत्न करना होगा। इसके लिये दूसरों को दोषी बताने से हमारा कोई लाभ नहीं है और न इस तरह से विघटन की प्रक्रिया ही रुक सकेगी।

दक्षिण के वैष्णव और शैव सन्तों पर तथा उत्तर के सिद्धों, नाथों और सन्तों पर आगम और तन्त्रशास्त्र का गहरा प्रभाव है। भक्त नरसी मेहता की वाणी भी इनसे आप्यायित है, जो कि महात्मा गांधी की आध्यात्मिक शक्ति की प्रेरणा-स्रोत रही है। आज कबीर, नामदेव, रविदास आदि की तथा गुरुओं की वाणी का अध्ययन इस दृष्टिकोण से नहीं किया जाता। इनको नवीन दृष्टिकोण का उद्भावक मान कर एक संकीर्ण घेरे में डाल दिया जाता है। सूफी सन्तों के अध्ययन में भी यही त्रुटि रह गई है। इसके निवारण के लिये हमें संस्कृत वाङ्मय की, विशेष कर आगम और तन्त्रशास्त्र की सहायता लेनी होगी, जिसका कि उपदेश मानवमात्र के कल्याण के लिये हुआ है।

वैयक्तिक साधना का अपना स्थान है। यह भी मानव कल्याण के लिये प्रवृत्त है, किन्तु व्यक्तिगत उन्नति के साथ सामूहिक उन्नति की भावना की, पारलौकिक उपलब्धि के साथ ऐहलौकिक नैतिकता की, सीमित रूप में ही सही, ह्रासवाद के स्थान पर विकासवाद और भाग्यवाद के स्थान पर पुरुषार्थ की भारतीय जनमानस में प्रतिष्ठा हो, इस पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये। ऐसा करने पर ही हम श्रद्धेय गुरुचरण श्री श्री गोपीनाथ कविराज के बताये अखण्ड महायोग के माध्यम



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से योगी अरविन्द की अतिमानस सृष्टि को धरती पर उतार सकते हैं। एक दुनियाँ और विश्वसंस्कृति की कल्पना तभी साकार हो सकती है। इसके लिये हमें गणेशपुरी के सन्त स्वामी मुक्तानन्द के आश्रम में अंकित "परस्परदेवो भव" वाक्य को चरितार्थ करना होगा।

भारतीय संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इस संस्कृति की वृद्धि करने में अनेकों मानव-वंश प्राचीन काल से संलग्न है। वर्तमान समय में भी यह निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर है। कतिपय परिवर्तन तथा क्रान्तियाँ इसके विकास की उज्ज्वल कड़ियाँ बनी हैं। संसार की विविध सभ्यताएँ इस संस्कृति में घुल-मिल कर एक हुई हैं। अन्य संस्कृतियों ने कुछ अंशों में अगर इसे उपकृत किया है, तो इससे उन्होंने बहुत कुछ पाया भी है। वास्तव में भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

भारतवर्ष में विभिन्न जाति, धर्म और भावनाओं के अनुयायीजन बसते हैं हिन्दु, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि धर्म तो इसी धारा की उपज है। ईशामसीह की मृत्यु के बाद प्राचीन यहूदी-धर्म के अनुयायियों ने यहाँ शरण ली थी। वैदिक धर्म के सहोदर जरथुष्ट्र धर्म के अनुयायी इस्लाम से प्रताड़ित होकर यहाँ शरण लेने लाये थें। यूरोपियन आक्राताओं के साथ ख़्रीष्ट धर्म यहाँ आया, यह तो हाल की बात है। शताब्दियों पूर्व भी विजातीय व्यक्तियों से प्रताड़ित होकर ख़्रीष्ट धर्म यहाँ आया था और केरल में आज भी उस सम्प्रदाय के अनुयायी शान्तिपूर्वक निवास कर रहे हैं।

इस प्रकार सहिष्णुता और समन्वय भारतीय संस्कृति के विशेष गुण हैं। सहिष्णुता इसका प्रकट गुण है और समन्वय की प्रक्रिया जाने-अन्जाने मन्थर गति से चलती रहती है। भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता का यह ज्वलन्त उदाहरण है कि विभिन्न देश, काल और वातावरण में विकसित संस्कृतियाँ यहाँ निर्बाध रूप से रहती आयी हैं, जिनका कि वर्णन ऊपर किया है। अभी हाल में चीनी तानाशाहों से पराभूत होकर आयी तिब्बती जन-संस्कृति यहाँ स्वतन्त्रता की साँस ले रही है। इस्लामी राज्यकाल में भी भारतीय संस्कृति के प्रभाव से अंग्रेजों के शासन काल में प्रारम्भ में ही ये गुण धूमिल से होने लगे थें। न केवल पाश्चात्य संस्कृति, किन्तु उसके राजनैतिक चंगुल में फँसी इस्लामिक संस्कृति भी भारतीय संस्कृति को पुनः तहस-नहस कर देने में लग गयी थी। इन आक्रमणों से भारतीय संस्कृति को बचाने के लिये किये गये राजाराममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, बाल गंगाधर तिलक, योगी अरविन्द आदि महापुरुषों के प्रयत्नों से हम सभी परिचित हैं। इन महानुभावों ने न केवल बाह्य आक्रमण से, अपितु कालविपाक से आये दोषों से भी भारतीय संस्कृति को उन्मुक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

भारत में दो तरह की दृष्टियों का साथ-साथ विकास हुआ है। एक दृष्टि है ब्रह्मसूत्र की, जिसमें अपने सिवाय सबको नकार दिया गया है। दूसरी दृष्टि है भगवद्गीता की, जिसमें सांख्य और योग को ही अभिन्न नहीं बताया गया, अपितु उस समय प्रचलित सभी दृष्टियों में समन्वय स्थापित करने का भी स्तुत्य प्रयास किया गया है। भग्त्पाद शंकराचार्य ने पहली दृष्टि का समर्थन किया। जाने-अन्जाने स्वामी दयानन्द ने भी अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में ब्रह्मसूत्र के तर्कपाद की पद्धति से ही अवैदिक मतों की समालोचना की, जब कि दक्षिण के शैव और वैष्णव सन्तों ने और उत्तर के सिद्धों, नाथों सन्तों और गुरुओं ने दूसरी दृष्टि को श्रेयस्कर माना। आगम और तन्त्रशास्त्र की पृष्ठभूमि में ही सब कुछ हो सका। वे भगवान् बुद्ध और महावीर के सार्वभौम उपदेशों को स्वीकार करने में परहेज नहीं करते। वैष्णव और शैव आगमों ने इस ओर क्रान्तिकारी कदम उठाये। न जाने क्यों भारतीय समाज में यह दृष्टि धूमिल हो गयी। बौद्ध दृष्टि के साथ समाज ने तन्त्रागम



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शास्त्र की समन्वय वादिनी दृष्टि को भी नकार दिया। आज हम वैदिक और तान्त्रिक दोनों धर्मों की अच्छाइयों को भुला बैठे हैं और कालक्रम से प्रविष्ट उनकी बुराइयों से चिपके हुए हैं। तान्त्रिक रहस्यावाद फिर समाज को भ्रमित करने लगा है और वैदिक दृष्टिकोण अपने संकीर्ण घेरे से हमें बाहर नहीं निकलने देता। इन दोषों से मुक्ति हम तभी पा सकते हैं, जब कि वैदिक और तान्त्रिक दृष्टि में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया जाय।

सन्त तुलसीदास अपने रामचरित मानस को नाना-पुराण-निगमागम-संमत बताते हैं। यहाँ निगम शब्द वैदिक वाङ्मय और आगम शब्द तन्त्रागम शास्त्र का सूचक है। इन शब्दों की प्रवृत्ति शास्त्रों में विभिन्न अर्थों में देखी जाती है। मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि "इतरेष्वागमाद् धर्मः" (1.82) यहाँ आगम शब्द की व्याख्या करते समय उसको वेद का वाचक मानते है। निगम शब्द भी वेद का वाचक है, इसकी जानकारी "इत्यपि निगमो भवति" ऐसे अनेक निरूक्त-वाक्यों से मिलती है। महाभाष्य पस्पशाह्निक के- "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इस वाक्य को महामुनि पतंजलि आगम वाक्य कह कर उद्धृत करते हैं, जो कि स्पष्टतः श्रुतिवाक्य माना जाता है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि अपने ग्रन्थ में आगम शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर करते हैं। टीकाकार आगम पद से ऋषि-प्रणीत शास्त्रों और निगम पद से अपौरुषेय वेदों का ग्रहण करते हैं।

काश्मीर के महान् आगमाचार्य तान्त्रिकप्रवर श्रीमान् अभिनवगुप्तपादाचार्य भी निगम पद के इसी अर्थ को मान्यता देते हैं। वे ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिमिमर्शिनी (भा. 1, पृ.15) में निगम पद की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि धर्म को समझने के लिये हमारे जानने लायक उपायों की निश्चित सूचना देने वाला शास्त्र निगम, अर्थात् वेद हैं।

आगम पद की व्याख्या वे भिन्न पद्धति से करते हैं। तन्त्रालोक (35.1-2) में वे कहते हैं कि आगम शास्त्र में समस्त जागतिक ज्ञान, पुरातन व्यवहार और प्रसिद्धि को आगम नाम से जाना जाता है। प्रसिद्धि की भी परिभाषा उन्होंने वहीं (25.19) बताई है कि प्रामाणिक व्यक्ति द्वारा उपदिष्ट वचन ही प्रसिद्धि की परिधि में आ सकते हैं। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी में वे कहते हैं कि आगमीय ज्ञान की संक्रान्ति एक शरीर से दूसरे शरीर में (गुरु से शिष्य तक) शब्द के माध्यम से होती है। इसमें भगवान् अनन्त के वाक्य को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं कि दूसरे व्यक्ति तक अपने ज्ञान को पहुँचाने के लिये शब्द से सहायता ली जाती है। योगसूत्र-व्यासभाष्य (1.7) में यह वचन आनुपूर्वी से मिल जाता है। इस विषय को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि आगम पद उस व्यक्ति के लिये उसी शास्त्र का वाचक मान लिया जायगा, जिस पर कि उसका विश्वास जम गया हो। वे पुनः कहते हैं कि बुद्ध कोई निश्चित व्यक्ति नहीं हैं, अपनी भावना के सहारे क्षणिकवाद में जो दृढ आस्था जमा लेता है वही बुद्ध हो जाता है। वर्तमान बुद्ध में इस ज्ञान का संचार पूर्व बुद्ध ने किया था और उसमें भी उसके पूर्ववर्ती बुद्ध ने। इस तरह से पारमेश्वरी विमर्श शक्ति ही वस्तुतः इस अन्तः ज्ञान की भी उपदेष्ट्री सिद्ध होती है। इसी तरह से प्रकृति आदि चौबीस तत्त्वों की भावना का उपदेश देने वाले कपिल के विषय में भी समझना चाहिये। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी आगम अनादि काल से गुरुशिष्यपरम्परा के माध्यम से निरन्तर चले आ रहे है। इस प्रकार सांख्य, योग, पांचरात्र, पाशुपत, बौद्ध, जैन आदि सभी शास्त्रों का आगमशास्त्र में समावेश किया जा सकता है।

इस प्रसंग में अभिनवगुप्त ने वराहमिहिर के उस प्रसिद्ध श्लोक को भी उद्धृत किया है, जिसमें भागवत, सौर शैव आदि उपास्य देवों की चर्चा करते हुए बताया गया है कि जो व्यक्ति जिस देव की उपासना करता है, उसको यह उपासना उक्त शास्त्र में प्रदर्शित पद्धति के अनुसार ही करनी चाहिये।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आजकल आगम और निगम के लक्षणों को बताने वाले दो श्लोक बहुत जगह उद्धृत मिलते हैं। उनका भाव यह है कि शिव के मुँह से निगल कर गिरिजा के कान तक पहुँचे तथा वासुदेव के संगत शास्त्र आगम कहलाते है और गिरिजा के मुँह से निकल कर शिव के कान तक पहुँचे और वासुदेव के संमत शास्त्र निगम कहलाते हैं। इस लक्षण के अनुसार शिवोपदिष्ट शास्त्र आगम और देवी के द्वारा उपदिष्ट शास्त्र निगम कहलाते हैं। इसी परिभाषा के अनुसार कलकत्ता से प्रकाशित कूलचूडामणि ग्रन्थ को निगम के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। यह परिभाषा वाराहीतन्त्र में उपदिष्ट प्रतीत होती है। शाक्त तन्त्रों की एक शाखा क्रममत के नाम से प्रसिद्ध है। इस शास्त्र का उपदेश भगवती शिव को देती है। ऊपर की परिभाषा के अनुसार इसका निगम विभाग में परिगणन होना चाहिये, किन्तु क्रमदर्शन के सभी आचार्यों ने इसको आगम पद से ही संबोधित किया है। इस तरह से हम कहते हैं कि सम्पूर्ण तान्त्रिक वाङ्मय आगम पद से और वैदिक वाङ्मय निगम पद से संबोधित हुआ है। प्रायः आजकल ये दोनों शब्द इन्हीं अर्थों में रूढ़ हो गये हैं, ऐसा मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

पुराण वेदार्थ के उपबृंहक हैं, इस विषय पर तो अनेक विद्वानों ने विचार किया है, किन्तु पुराणों में आगमार्थ का भी उपबृंहण हुआ है, इस विषय पर अभी विचार नहीं के बराबर हुआ है। "आगम आणि तन्त्रशास्त्र" शीर्षक मराठीं निबन्ध में हमने बताया है कि अग्निपुराण के 39-70 अध्याय 'हयशीर्ष पंचरात्र' के आदिकाण्ड से तथा वहीं के 71-106 अध्याय सोमशम्भुकृत कर्मकाण्डक्रमावली से मिलते-जुलते हैं, जिसका कि यह प्रकरण, संवत् 1130 में लीलावती शिवागम की सहायता से लिखा गया है। वैरोचनकृत प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चय (2.179-181) में शिवोक्त 21 प्रतिष्ठा तन्त्रों के नाम दिये गये हैं। ये नाम शैवागमों तथा उपागमों की अथवा उपपुराणों की सूचियों में मिलते हैं। यहाँ (2.156) बताया गया है कि लिंग, प्रासाद द्वार, मण्डप आदि के बनाने और उनकी प्रतिष्ठा करने की विधि वेद में वर्णित वैदिक वाङ्मय में नहीं है। पुराणों में वे सब विषय आगम अथवा तन्त्रशास्त्र से ही लिये गये हैं।

भविष्यपुराण (2.1.11.1) में वृक्ष, आराम (उद्यान), वापी, कूप, तडाग आदि की प्रतिष्ठा तान्त्रिक विधि के अनुसार बताई गई है। इष्ट और पूर्त- ये दो धर्म के अंग माने गये हैं। भोजदेव के तत्त्वप्रकाश के व्याख्याकार कुमार देव का कहना है कि इष्ट पारलौकिक धर्म है और पूर्त ऐहलौकिक। पुराणों में इष्ट और पूर्त दोनों ही प्रकार के धर्मों का विशद वर्णन मिलता है। इस तरह से मूर्ति, प्रासाद आदि का निर्माण और प्रतिष्ठा का तथा वापी, कूप, तगाड आदि का निर्माण और प्रतिष्ठा का वर्णन प्रधानतः तन्त्र और आगम-शास्त्र का विषय है।

बृहन्नारदीय पुराण (1.63.13) में पति-पशु-पाशात्मक तथा ज्ञान-योग-क्रिया-चर्यात्मक शैवागम प्रतिपादित विषयों का वर्णन मिलता है। कूर्मपुराण की ईश्वरगीता में भी स्पष्ट ही शैव सिद्धान्तों की छाप है। वैष्णवागमों का चतुर्व्यूह सिद्धान्त और प्रादुर्भाव सिद्धान्त महाभारत नारायणीयोपाख्यान, पद्मपुराण आदि में स्पष्ट ही उपबृंहित हुआ है। पुराणों में शिव और नारायण की एकता ही नहीं प्रतिपादित है, किन्तु शक्ति, स्कन्द, गणेश, सूर्य आदि की भी उपासना पंचायतन पूजा के अन्तर्गत समन्वित रूप में प्रपंचसार और शारदातिलक की पद्धति से वर्णित है। इस तरह से यह निश्चित हो जाता है कि पुराणों की प्रवृत्ति निगमागम धर्म में समन्वय स्थापित करने के लिये हुई थी।

ऐसा होने पर भी पुराणों में वैदिक दृष्टि को ही प्रधानता दी गई है। यहाँ वेदों को सर्वोपरि प्रमाण माना है और वर्णाश्रम की व्यवस्था को पूरी तरह से स्वीकार किया गया है। आगम की दृष्टि इस विषय में भिन्न है। यहाँ शास्त्रों का उत्तरोत्तर प्रामाण्य और मानव मात्र को मोक्ष का अधिकारी माना गया है। केवल त्रैवर्णिक को नहीं। भगवती गीता कहती है- "स्त्रियो वैश्यास्तथा



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शूद्रास्तेऽपियान्ति परां गतिम्'' इसी दृष्टि का प्रतिपादन आगम-शास्त्र करते हैं। महाभारत और पुराणों की रचना भी इसी दृष्टि को पल्लवित करने के लिये हुई है। पुराण ब्रह्मा, विष्णु और महेश को एक ही ब्रह्म की तीन मूर्तियाँ मानते हैं। नारदपुराण (1.63.12) में पाशुपत तन्त्र को भागवत तथा भगवान् शिव को विष्णु बताया गया है। इस दृष्टि को आगम-शास्त्र और आगे बढाते हैं। स्पन्दप्रदीपिका (पृ.12) में उद्धृत मायावमनसंहिता का कहना है कि विष्णु, शिव, सूर्य, बुद्ध आदि के रूप में भगवान् एक ही हैं। नेत्रतन्त्र के 13वें अधिकार में जयाख्या, मायावमनिका, सौर संहिता आदि के प्रमाण पर इनकी पूजाविधि भी वर्णित है।

स्पष्ट है कि आगम और निगम में समन्वय का कार्य पुराण-वाङ्मय द्वारा तथा अनेक आगमाचार्यों द्वारा बहुत पहले किया जा चुका है। हम आगम और निगम शब्दों की नई व्याख्या कर पूरे जगतिक ज्ञान का इनमें समावेश कर सकते हैं। प्रायः प्रत्येक धर्म की यह मान्यता है कि ईश्वर ने, किसी अलौकिक शक्ति ने प्रत्येक धर्म की प्रतिष्ठा की है और उसी शक्ति ने मनुष्य को ज्ञान भी दिया है। ऐसे अलौकिक ज्ञान को हम निगम विभाग के अन्तर्गत रख सकते हैं और दिव्यौघ तथा मानवौघ परम्परा द्वारा प्राप्त ज्ञान को आगम विभाग के अन्तर्गत। रामायण, महाभारत, भगवद्गीता आदि में किये गये निगमागम धर्म के समन्वय में निगम दृष्टि की प्रधानता रही है, किन्तु अभी हमने जिस निगमागम विभाग की चर्चा की है, उनमें परस्पर समन्वय का आधार आगम दृष्टि ही हो सकती है, जो कि मानवमात्र को ज्ञान का, मुक्ति का अधिकारी मानती है। इसी आगमिक दृष्टि को आगे कर हम आज सभी धर्मों में समन्वय स्थापित कर सकते हैं।

**'एक विश्व एक संस्कृति'** पुस्तक में आचार्य द्विवेदी जी ने पूरे विश्व को भाई-चारे का संदेश देते हुये कहा है कि—हमें विश्वशान्ति हेतु आत्मचिंतन करना होगा। उन्होंने इस पुस्तक में बताया है-अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट के व्यक्तिगत प्रतिनिधि के रूप में मिस्टर वेन्डेल विल्की ने भारत को छोड़कर लगभग पूरे विश्व का भ्रमण कर सन् 1942 ई. में एक पुस्तक लिखी थी- 'वन वर्ल्ड'। सन् 1945 ई. में उसका ''एक ही दुनिया'' के नाम से हिन्दी संस्करण निकला। कल्याणमित्र स्व. प्रो. जगन्नाथ उपाध्याय जी को पुस्तक खरीद कर पढ़ना अच्छा लगता था। छात्रावस्था से ही उनकी यह प्रवृत्ति सक्रिय थीं। उन दिनों हम लोग राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के छात्रावास में रहते थे। उनकी खरीदी पुस्तकों में से कुछ को मैं भी पढ़ लिया करता था, यह पुस्तक भी उनमें से एक थी। सौभाग्य से उनके प्रिय शिष्य प्रो. राधेश्यामधर द्विवेदी जी ने अपने यहाँ सुरक्षित उनके पुस्तक-संग्रह से इस पुस्तक को मुझे सुलभ करा दिया। अपनी पुस्तक का यह नाम चुनते समय उस पुस्तक का केवल शीर्षक मेरे दिमाग में घूम रहा था। ग्रन्थ के विषय में एक विषय में एक वाक्य में कहा जाय, तो मिस्टर विल्की की पुस्तक का प्रयोजन पूरी दुनिया पर अमेरिकी प्रभाव को स्थापित करना था। यह प्रक्रिया आज भी चल रही है। उसमें दुनिया के लिए शान्ति का कोई संदेश नहीं दिया गया था। प्रस्तुत पुस्तक का प्रयोजन पूरी दुनिया में परस्पर सामंजस्य की स्थापना और सांस्कृतिक धरातल पर सौहार्द एवं शान्ति की कामना है- ''उत्पत्स्यते नु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी'' महाकवि भवभूति की यह उक्ति हमारा संबल है।

आज के विश्व में परस्परविरोधी और अविरोधी अनेक धर्म प्रचलित हैं। इनमें कर्मकाण्ड की प्रधानता के रहते हुए भी आध्यात्मिक तत्त्वों की कमी नहीं है। कर्मकाण्ड के धरातल पर इनमें परस्पर विरोध दिखाई देने पर भी इनकी आध्यात्मिक दृष्टि में बहुत समानता है। इसके आधार पर इनमें परस्पर सामंजस्य बैठाया जा सकता है। भारत में ऐसा हुआ भी है। ''भारतीय संस्कृति के नये आयाम'' शीर्षक ग्रन्थ में हमने संस्कृति-संगम प्रथम, संस्कृति संगम-द्वितीय, सुधारवादी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आन्दोलन जैसे शीर्षकों से इस प्रक्रिया पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। प्रसिद्ध भारतीय ज्योतिर्विद् वराहमिहिर ने आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व एक ही श्लोक में इसका अच्छा समाधान दिया है कि व्यक्ति जिस किसी भी देवता की उपासना, उसके द्वारा बताई गई पद्धति से ही करे। पंचायतन और षडायतन पद्धति से भारत में तो यह भी हुआ है कि व्यक्ति अपने इष्टदेव की प्रधान रूप से उपासना करता हुआ, अन्य सम्प्रदायों के देवताओं की उपासना भी उन-उन शास्त्रों में प्रदर्शित विधि से कर सकता है। आज की दुनिया में अन्य धर्मों के साथ इस्लाम और ख्रीष्ट धर्म का सामंजस्य अभी नहीं बैठ पाया है।

वराहमिहिर की पद्धति से इनमें परस्पर सौहांर्द बने, आज यह एक विश्व की कल्पना की प्रथम आवश्यकता है

सभी धर्मों में आध्यात्मिक चर्चा भी मिलती है। इन आध्यात्मिक तत्त्वों के आधार पर ही हम प्रत्येक धर्म के परस्पर अविरोधी कर्मकाण्डों को मान्यता दे सकते हैं और आपस के विरोध को शनैः शनैः कम करते हुए आगे बढ़ सकते हैं। धर्म क आध्यात्मिक तत्त्वों के आधार पर ही दुनिया में अनेकविध संस्कृतियों का विकास हुआ है। धार्मिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा धर्म की यह आध्यात्मिकता, जिसे हम संस्कृति के नाम से पुकारते हैं, विभिन्न धर्मों के अभिमानियों में आपस में सामंजस्य बैठाने का प्रमुख साधन हो सकती है। इसके लिए हमें संस्कृति के परिनिष्ठित स्वरूप के निर्माण में प्रवृत्त होना पड़ेगा। यह कार्य कैसे हो, इसके लिए हमने अपने कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत किये हैं।

अध्यात्म भीतर झाँकता है, वह बाहर नहीं देखता। इसके विपरीत आधुनिक भौतिक विज्ञान केवल बाहरी दुनिया को देखता है, मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तियों पर वह ध्यान नहीं देता। मनोविज्ञान के आधार पर आध्यात्म में और भौतिक विज्ञान में भी परस्पर सामंजस्य स्थापित हो, इस विषय पर पूरी दुनिया का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। हमने कहीं लिखा है कि भारतीय आगम-तन्त्रशास्त्र ने आध्यात्म को बाहर लाने का प्रयत्न किया है और वही विज्ञान को मानवीय अन्तरात्मा के आन्दोलन के लिए भी प्रेरित करेगा। पूरे विश्व के विज्ञ विचारकों को इस पर विचार करना चाहिए। तभी विज्ञान द्वारा पैदा की गई अणुबम की बिभषिका से मानवजाति मुक्त हो सकेगी। अध्यात्म और विज्ञान के इस तरह के समन्वय के बाद ही एक संस्कृति का निर्माण सम्भव हो सकता है।

धर्म को आजकल दो दृष्टियों से देखा जाता है- एक तो कर्मकाण्ड प्रधान और दूसरी नैतिकता-प्रधान, जिसे हम धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप मान सकते हैं। सभी धर्मों के कुछ परस्पर-विरोधी कर्मकाण्डों के कारण आज विभिन्न संस्कृतियों के बीच उत्कट संघर्ष चल रहा है। संप्रदाय शब्द भी आजकल दो तरह की दृष्टियों में बँट गया है। कुटिल राजनीति को नियमित कर पाना कठिन होता जा रहा है। पूरे विश्व में व्याप्त असहिष्णुता को हटाकर ही हम सहिष्णुता का विकास कर इस स्थिति से निपट सकते हैं और भारतीय संस्कृति के समग्र स्वरूप को हृदयंगम कर पूरे देश में भावात्मक एकता की स्थापना कर सकते हैं इसीलिये हमने इस अधिकार में भारतीय मूल के सभी धर्मों की समीक्षा कर निगमागम के नाम से प्रसिद्ध संपूर्ण भारतीय वाङ्मय के आधार पर संस्कृति के परिनिष्ठित स्वरूप पर विचार किया है।

भावात्मक एकता की पुष्टि के लिए तृतीय अधिकार में तन्त्रागमीय दर्शन को प्रस्तुत किया गया है, जिसके आधार पर परलोक, भाग्यवाद, ह्रासवाद, युगव्यवस्था जैसे चिरकाल से भारतीय समाज को भरमानेवाली समस्याओं से निपटा जा सके। इसके साथ ही यहाँ अभ्युदय और निःश्रेयस, भोग और मोक्ष, बन्ध और मोक्ष जैसे शब्दों की पारलौकिक व्याख्या के साथ उनके ऐहलौकिक स्वरूप को भी स्पष्ट किया गया है। सांख्य-योग दर्शन की पृष्ठभूमि में विकसित तन्त्रागमीय दर्शन



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के उस स्वरूप को भी यहाँ स्पष्ट किया गया है, जिसके अनुसार यह जगत् भी अपने परम तत्त्व के समान ही परम सत्य है, उससे अभिन्न है। इस दर्शन की सहायता से जीवन्मुक्त दशा में पहुँचा प्रत्येक मानव अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकता है, अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है।

तन्त्रागमशास्त्र में गुरु के अतिरिक्त शास्त्र एवं स्वसंवेदन (निजी प्रतिभा) को भी ज्ञान की प्राप्ति का साधन माना गया है। बौद्ध तान्त्रिक स्वतः ( स्वसंवेदन) के अतिरिक्त परतः (परसंवेदन) की भी इसमें गणना करते हैं। इन्हीं दृष्टियों को ध्यान में रखकर यहाँ चतुर्थ अधिकार में तन्त्रागमीय वाङ्मय के अतिरिक्त सिद्धों और भक्तों की अनुभूतियों की भी चर्चा की गई है और बताया गया है कि इस पृष्ठभूमि में पूरे विश्व के, संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए इस शास्त्र की और सिद्धों एवं सन्तों की उत्कृष्ट अनुभूतियों की कितनी उपयोगिता है।

इसी सातत्य में पंचम अधिकार में संपूर्ण मानवता के प्रति समता दृष्टि के माध्यम से विकसित होनेवाली विश्वाहन्ता और विश्वसंस्कृति के क्रम को दिखाते हुए विश्वदृष्टि और विश्वव्यवहार का विश्लेषण किया गया है। मानव मन को इस स्थिति तक पहुँचाने के लिए यहाँ योगी अरविन्द के पूर्ण योग और महामनीषी श्रद्धेय श्री गोपीनाथ कविराज के अखण्ड महायोग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया गया है। अन्त में बताया गया है कि इसके लिये पूरे विश्व में सामूहिक नेतृत्व एवं संभूय-समुत्थान की भावना का विकास अपेक्षित है। उसी स्थिति में एक विश्व : एक संस्कृति की कल्पना साकार हो सकती है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# आचार्यव्रजवल्लभेभ्यः पद्यसुमाञ्जलिशतकम्

*डॉ.धर्मदत्तचतुर्वेदी

व्रतानि भूयांसि सुपुण्यदानिजलं विना चापि फलश्रितानि।
वन्यानि यानीह शुभानि चान्यल्लभन्त एव प्रियभारतीयाः।।1
व्रजन्ति केचित्तपसे वनानिजना गृहे चापि तपस्विनश्च।
वशंवदा जीवनमूल्यकं यल्लभन्त आयुर्विपुलं च दिष्ट्या।।2
व्रजाङ्गनावत् सुपतिव्रता याजपन्ति ताः प्राणपणैः पतिं स्वम्।
वल्मीकमृत्तेर्जननं मुनेर्यल्लभस्व मर्त्य!स्वजनिं यथाऽत्र।।3
काश्मीरिका येऽपि च काशिकेयाःकाञ्चीभवास्तेऽपि च दाक्षिणात्याः।
ये गुर्जराबङ्गबिहारराजस्थानीयमध्या इह संस्कृतज्ञाः।।4
सीमान्तवर्ग्या नवदेहलीस्थाआसामपञ्जाबहिमाचलीयाः।
चिराद्विभान्तो बहुशास्त्रविज्ञाउपासते संस्कृतदेववाणीम्।।5
तेष्वेक एवान्यतमोऽत्र राजस्थानोद्भवःश्रीव्रजवल्लभोऽसौ।
तश्रमो विश्रुतकीर्तिरेष शास्त्रे च लोकेऽमरतामवाप।।6
विश्वस्तरीयेषु समेषु विद्वद्वर्गेषु को वेत्ति न च द्विवेदम्।
नो वेत्ति तं स्वं न च वेत्ति योऽपिशास्त्रे यतः सोऽत्र समर्पितात्मा।।7
द्विवेदवर्यं बहु पञ्चत्रिंशद्वर्षैरहं वेद्मि चिराच्च काश्याम्।
आसीदसौतिब्बतविश्वविद्यालयेऽपि यद्दुर्लभयोजनायाम्।।8
यत्सावधानं मम कष्टमेतन्निशामयेयुर्गुणिनां वरेण्याः।
ये चाटुमत्या परिपुष्टिभिश्च सम्प्राप्नुवन्त्यत्र किमप्यभीष्टम्।।9
किन्ते न मन्दाः शिथिला न शास्त्रेसु.त्रिमं येऽपि यशो लभन्ते।
तश्रमाँश्चाभिभवन्ति भूयःकालान्तरे ते मलिनो भवन्ति।।10
न्याय्येन सत्येन च संस्.तज्ञैःसभासु मूल्याङ्कनकार्यकाले।
शास्त्रीयव्युत्पत्तिविदः सुपोष्यावक्तृत्वधीराश्च सुलेखका ये।।11
केचिद्धि मन्दा इह राजनीतिमन्यायनीतिं कथमाश्रयन्ते।

---

*संस्कृतविभागाध्यक्षः, केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालयः, सारनाथः, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा तथा ये विदिताः कथञ्चित्स्वार्थप्रपूर्तौ सततं रमन्ते।।12
तथा द्विवेदाः समुपेक्षिता येशास्त्रेऽरमन्तात्र तथापि मान्याः।
कृतं यदीयं ननु शास्त्रकार्यंविलोकयेयुः .पया सुविज्ञाः।।13
स्वस्मै पुरस्कार.ते न पुष्टिःसमाश्रिता तेन कदापि काचित्।
स्वतः पुरस्कारफलानि पश्चाद्हस्ते तदीये समुपागतानि।।14
शास्त्रव्रता न्यायधियः सुविज्ञाये स्वाभिमानेन वसन्ति भूयः।
तथा द्विवेदैर्निजगौरवेण सारस्वती या विहिता सपर्या।।15
आसीत्तदीया .ढलेखनीयंग्रन्थानसूतात्र नवाननेकान्।
शास्त्रीयपाण्डित्यभरान् समृद्धान्प्रामाणिकान् भ्रान्तिविखण्डकाँश्च।।16
भूयः श्रमेणात्र सुसाध्यमानंकार्यं सदा तैरभिनन्दितं यत्।
यद्बौद्धशैवागमतन्त्रशास्त्रंयत्पाठशुद्ध्या समपोषि मान्यैः।।17
एकोनविंशतिशताधिकविंशतौ सख्रीष्टेऽत्र षट्सु सुजनिं समवाप विद्वान्।
स स्नातकोत्तरमुपाधिमवाप्य काश्यांसारस्वतेऽत्र भवने व्यदधाच्च सेवाम्।।18
सारस्वतीं यःसुषमां विशिष्टांसुपत्रिकायां समपादयच्च।
तस्यां सुपाण्डित्यमहो यदीयंपश्यन्तु विज्ञा युवका युवत्यः।।19
वाराणसेयेस च विश्वविद्यालयेनियुक्तोऽपि महामनीषी।
प्रकाशनाधीशपदेन शास्त्रंप्राकाशयत् प्रौढमसावनेकम्।।20
स योगतन्त्रागमसंविभागे प्राध्यापयत् तत्र सुशिष्यवृन्दम्।
विश्वप्रशस्तःकविराजगोपीनाथो गुरुस्तस्य बभूव तत्र।।21
विभागसङ्कायगतामुवोढ सोऽध्यक्षतांतीव्रमतिर्वदान्यः।
प्राध्यापकाचार्यपदानि लब्ध्वादेशे विदेशेषु निवेशिताभः।।22
योऽसावुपाध्यायवरो जगन्नाथो बौद्धविद्वानिह विश्रुतोऽभूत्।
यत्केन्द्रिये तिब्बतविश्वविद्यालयेद्विवेदाननयन्निवृत्तान्।।23
तत्रैव यद्दुर्लभबौद्धशास्त्रशोधाख्यकेन्द्रेसमभून्नियुक्तः।
निदेशकस्यापि कृतं सुकार्यमङ्गीकृतं चोपनिदेशकत्वम्।।24
यत्सारनाथे विहितं सुकार्यं तदेव काव्येन विवेचयामि।
सेवां न वा जङ्गमवाडिशोधकेन्द्रे कृतां तस्य निरूपयेऽहम्।।25
सौभाग्यमेतत्परिलब्धमत्रसेवां प्रकर्तुं सह तेन पूर्वम्।
विनीतबुद्धिः सुजनो द्विवेदआसीत् सदाचारपथानुगामी।।26
यानेन चौकेन गतस्तदानींजनार्दनश्रीव्रजवल्लभाभ्याम्।
यत्सारनाथं सह सङ्गमेऽस्मिन्संस्मर्यते चाद्य सुधीर्द्विवेदः।।27
तदा द्विवेदैर्बुधवासुदेवद्विवेदिना पृष्टमहो सुवृत्तम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्ताधिकेऽशीतितमेऽब्दकेऽहमासं तदानीं निजसार्वभौमे।।28
षडुत्तरे यद्दिवसहस्रवर्षे श्रीवासुदेवस्मृतिसाधनाख्यः।
सम्पादितो ग्रन्थवरो मयैवंद्विवेदवर्याय समर्पितो यः।।29
अधीत्य सम्यग्व्रजवल्लभैस्तंस्वीयेन पत्रेण कृता प्रशंसा।
सम्पादनं शुद्धमिदं विलोक्य पुण्यावहोऽहं परिसाधितस्तैः।।30
चारुः प्रकृत्या सरलस्वभावोनूनं महादार्शनिकोऽत्र मान्यः।
शास्त्रीयसिद्धान्तविमर्शधीरःशास्त्रप्रकर्षेण विभासतेऽसौ।।31
यच्छास्त्रसम्पादननीतिरूपाया कार्यशालाऽत्र दिनानि सप्त।
अष्टाधिकेऽशीतितमेऽब्दके साव्यमर्शयन् शास्त्रममुत्र धीराः।।32
गोष्ठीविमर्शोऽपि च पुस्तकस्थःप्रकाशितोऽभूत् स विशालरूपः।
ये प्रास्तुवन् शोधनिबन्धपत्रंतानत्र नाम्ना च विनिर्दिशामि।।33
वागीशशास्त्री जगदीश्वरश्चजनार्दनो योऽत्र स शान्तिभिक्षुः।
सेम्पा–जितासेन्–समदोङ्सुभिक्षु–साम्तानि–कामेश्वरनाथमिश्राः।।34
अनन्तलालोऽत्र च टाटियापि नागेन्द्रनाथोऽपि च कृष्णनाथः।
गङ्गाधरन्योऽपि गयात्रिपाठीश्रेष्ठोऽत्र सिंहोगृहमान्बभूवुः।।35
सुनीतिपाठकोभट्टाचार्यो यो रामशङ्करः।
श्रीबहुलकरोदिव्यवज्रः के.बी. च शर्मकः।।36
सर्वोच्चराष्ट्रपतिगौरवमानदं यद्दत्तं हि शङ्करदयालवरेण तस्मै।
यत्कालिदाससविशिष्टपुरस्कृतिश्चसाहित्यनाम परिलब्धमिदं द्विवेदैः।।37
हारीतराशिश्च कृतौ हि मीमांसाकेसरीनाम च सर्जनाख्यः।
ग्रन्थेषु तैः प्रान्तपुरस्कृतिश्चलब्धान्यनेकानि सुमाननानि।।38
मूर्धन्यविद्वत्करपात्रवेदार्थपारिजातस्य कृतानुवादात्।
लब्धा प्रसिद्धिः समपादि मान्यैःसारस्वती या सुषमाऽपि यत्र।।39
आयोजिते संस्कृतविश्वसम्मेलनेऽत्र हालेन्डगते सुदूरे।
प्रास्तौदसौ चापि यदाक्सफोर्डेयत्संस्कृते भाषितशोधपत्रम्।।40
गाण्डीवमित्याख्यसुपत्रिकाऽपिसाप्ताहिकी या समपादि मान्यैः।
राज्येषु सर्वेषु कृताः सुयात्राःशास्त्रीयसिद्धान्तविमर्शिकाश्च।।41
शिष्या यदीया इह विश्वविद्यालयेषु ये शीर्षपदा विभान्ति।
गायन्ति कीर्तिं विमलां गुरूणांस्तुवन्ति नित्यं प्रणमन्ति मान्यान्।।42
शतं च पञ्चाशत्संख्यका ये ग्रन्था विशिष्टाः परिसाधिता यैः।
व्याख्यानतश्चाप्यनुवादतोऽपिसम्पादनान्मौलिकचिन्तनाच्च।।43
ग्रन्था विशेषनिगमागमसंस्कृतौ येयद्धर्मदर्शनमया विदितास्तदीयाः।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञानभैरवमिदं रचनाश्च तन्त्रयात्राबुधस्य विविधा प्रविभान्ति गूढाः ।।44
अन्यापि या सात्वतसंहिताख्या नित्यापि या षोडशिका कृतिः सा।
एकैकविश्वंननु संस्कृतिश्चभूयोऽप्यवर्ण्याः.तयस्तदीयाः ।।45
नाम्ना सुलघ्वी विदिता समन्ताद्धीःपत्रिकादुर्लभवस्तुबद्धा।
सम्पादितेयं निजतीव्रमत्याचाकर्षकैर्गौरवपूर्णबन्धैः ।।46
अङ्कद्वयेनात्र विभाति वर्षेवैशाखकेनापि च कार्तिकेन।
देशे विदेशेषु समेधमानासंस्वाद्यतेशास्त्रविमर्शकैर्या ।।47
बौद्धेषु शैवेषु च शाक्तकेषु तन्त्रेषु चौतैस्तुलनादिवस्तु।
धीःपत्रिकायां प्रथमे निबन्धेव्यवेचि सन्दर्भपुरस्सरं यत् ।।48
सुपत्रिकायाः षडशीतिकेऽब्देप्रकाशितोऽङ्कः प्रथमस्तदानीम्।
आसीत् स यश्चोपनिदेशकोऽसौ विख्यातनामा व्रजवल्लभो यः ।।49
यच्छैवबौद्धागमतन्त्रशास्त्रेऽसावेव विद्वान् ननु पारगामी।
न कृश्यते कोऽपि मया विकल्पःप्रतिष्ठितस्य व्रजवल्लभस्य ।।50
श्रद्धा न कस्यात्र विलोक्यते यासम्मानभावो व्रजवल्लभेऽस्मिन्। गोष्ठीगरिष्ठो महतां वरिष्ठोशास्त्रे पटिष्ठो कनकायतेऽसौ ।।51
सम्पादकः कोऽपि भवेद् गरीयान्पश्येद्यदा चास्य सुवाङ्मयं यत्। व्याख्यानशैली व्रजवल्लभस्यवैज्ञानिकी मह्यमरोचतापि ।।52
गर्वोक्तिशून्यः सुजनो महान् यःस्मिताननः शोधमतिः सुविद्वान्।
यच्छास्त्रराद्धान्तनिमज्जितोऽसौगाम्भीर्यसिन्धुश्च मतैक्यबुद्धिः ।।53
मन्येऽनुसन्धानसुपत्रिकासुधीरेव या दुर्लभवस्तु धत्ते।
यद्धस्तलेखेषु निविष्टवस्तुचोद्घाट्य भातीह सुपत्रिकेयम् ।।54
ब्राह्म्यादिनेवारिलिपीषु बद्धंयद्बौद्धसाहित्यगतं सुवस्तु।
बुधा लिपिज्ञा इह देवनागरीरूपमापाद्य निवेशयन्ति ।।55
स्तोत्राणि बौद्धानि पुरातनानिप्रकाशितानीहसुसंस्कृतेन।
छन्दस्सु नैकेषु च सुन्दराणि चास्वादनीयानि बुधैरवश्यम् ।।56
लघुः सुकायेन महान् सुबुद्ध्याशान्तस्तथा गूढमनीषिवर्यः।
अद्यापि चित्ते सुविराजते मेगायामि कीर्तिं विमलां तदीयाम् ।।57
का सात्र संस्थेह नु विश्वविद्यालयो न तं दार्शनिकं प्रवेत्ति।
विद्वद्व्रजस्यात्र च वल्लभोऽसौविभाति यो भास्यति कीर्तितोऽसौ ।।58
महासहिष्णुर्बहुपक्षपातंकृष्ट्वा च सोढ्वाऽत्र पपौ सदाऽसौ।
यदैकदा मामभणत् स्वनाम्नाप्रकाशितो मेऽन्यजनेन लेखः ।।59
चौरा यदा संस्.तपण्डिताः स्युरपण्डिता धर्मचराः कथन्ते।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदन्यदीयं प्रविचोर्य कार्यं कलङ्किताः किन्न विभान्ति दुष्टाः।।60
पुत्रस्तदीयस्तरुणाभिधानोयः शिक्षको धर्मसमाजसेवी।
आयोजयन् स प्रतियोगिताश्च तनोति यो भारतसंस्कृतिञ्च।।61
गतो बडौदांनयपालराष्ट्रं शास्त्रानुसन्धानसुवस्तुहेतोः।
अनुष्ठिता भारततन्त्रशास्त्रेया शोधगोष्ठी महती द्विवेदैः।।62
समग्रवृत्तं लिपिबद्धकं यत्प्राकाशयद् ग्रन्थममुंद्विवेदः।
श्रुत्वा ध्वनिं शब्दनिवेशयन्त्रात् श्रमेण भूयः समपादयत् सः।।63
सोऽसावपभ्रंशवचांसि धीरःसमग्रहीत् पञ्चमपत्रिकायाम्।
न्यरूपयत् सोऽपि च कालचक्रतन्त्रस्य वृत्तं ननु सप्तमेऽङ्के।।64
क्रियादिपूर्वोऽस्ति समुच्चयोऽपिवज्रावली तैर्नवमाङ्कभागे।
व्याख्यायितं तत्तुलनात्मकंयैर्यद्राष्ट्रवाण्या विधिवद् द्विवेदैः।।65
व्यमर्शयद् ग्रन्थचतुष्टयं यज्ज्ञानोदयादीनि शरैकसंख्ये।
विद्वज्जगन्नाथसुवृत्तलेखो द्वितीयभागे विनिवेशितोऽपि।।66
दीक्षाऽस्ति या सौगतमानितापियत्क्षेमराजस्य मतं हि तस्याम्।
न्यरूपि सम्यक् प्रथमेऽङ्क एवद्विवेदिनाश्रीव्रजवल्लभेन।।67
स चाद्यतो बौद्धपदार्थजातंक्रमाच्चतुर्थाङ्कमितं लिलेख।
समीक्षितोऽनेन बुधेन तन्त्रालोकः प्रसिद्धोऽपि यदष्टमाङ्के।।68
षष्ठे द्विवेदः परिशिष्टकं यत्प्राकाशयद् ग्रन्थसुपञ्चकस्य।
बौद्धानि लुप्तानि वचांसि यानि तत्संग्रहं यः प्रथमाङ्कतोऽपि।।69
स चाष्टमान्तं कृतवान् क्रमेणयत्पञ्चकं स प्रविहाय विद्वान्।
त्रयोदशे कृष्णयमारिशास्त्रंसार्धं व्यलेखीद् वसुधारयापि।।70
सुधीरसौ सप्तविधाद्यलङ्काराख्यायिकान्यायपरं सुबन्धम्।
अङ्केऽत्र षष्ठेऽपि लिलेख सूक्ष्मंसन्दर्भवाक्योद्धरणेन साकम्।।71
सम्पादनस्यात्र नयस्तथा चोपादानवृन्दं विषये मनीषी।
एकादशे द्वादशके विशिष्टमस्रावबध्नात् सुनिबन्धमेतम्।।72
एतच्चतुःसंख्यमसौ हि सेकोद्देशीयटीकापरिशिष्टकं यत्।
महेन्द्ररत्नेन सुलेखकेनसार्धं निबन्धं प्रथमे चकार।।73
श्लोकार्धगद्यद्वयसूचिकाऽपिहेवज्रतन्त्रस्य तथाष्टमाङ्के।
व्यलेखि तैरत्र मनीषिठिन्लेरामेण सार्धं व्रजवल्लभैर्या।।74
सम्पादिता येसुगवेषिताश्चप्रकाशिता दुर्लभयोजनायाम्।
ग्रन्था द्विवेदैरिह बौद्धतन्त्रेक्रमेण पश्यन्तु निरूपये तान्।।75
गुह्यादयोऽष्टाविह सिद्धयो याः तत्संग्रहाख्यं प्रथमं सुशास्त्रम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तोत्तराशीतितमेऽब्दके यत्खीष्टे द्विवेदः समपादयत्तत। ।76
सन्त्यत्र पृष्ठानि शतद्वयं यद्यत्सप्ततिर्मात्रमितञ्च शास्त्रम्।
पद्यैर्निबद्धा नवसर्गरूपायत्पद्मवज्रस्य हि गुह्यसिद्धिः।। 77
अनङ्गवज्रस्य हि पञ्चसगैः प्रज्ञादिसिद्धिर्ग्रथिता द्विवेदैः।
यज्ज्ञानसिद्धिश्च तदिन्द्रभूतेर्निरूपिता विंशतिसर्गबद्धा। ।78
लक्ष्मीङ्कराख्याद्वयसिद्धिरेषायद्व्यक्तभावानुगताख्यसिद्धिः।
चिन्ताकृता गद्यसुपद्यबद्धाछन्दोऽत्र रम्यं शिखरादिनाम। ।79
सर्गत्रये या विहिताऽत्र डोम्बीहेरुक्बुधेनात्र सुपद्यबद्धा।
षष्ठी चिता या सहजाख्यसिद्धिःसम्पादितेयं व्रजवल्लभेन। ।80
कुद्दालपादेऽ कृताऽप्यचिन्त्याद्वयक्रमाख्या कृतिराचिताऽत्र।
कृताऽद्वयस्यात्र हि पद्मवज्रैःप्रज्ञाद्युपायाख्यगता च सिद्धिः। ।81
न्यरूपि या पूर्णतया मयैवंयद्भोटभाषापरिबद्धरूपा।
गुह्यादिसिद्धिर्ननु चाष्टसंख्यासम्पादिता सा व्रजवल्लभेन।। 82
अनङ्गयोगीलघुडाकिनीजालसंवरं यच्च रहस्यकं तत्।
प्रणीतवान् तत् समपादयत् सयच्श्लोकगद्येषु निबद्धमेतत्। ।83
ग्रन्थो य एकादशपृष्ठकेषुपद्यादिसूची नवपृष्ठबद्धा।
पाठान्तरं चापि सटिप्पणं यत्प्राकाशयद् यच्च विमृश्य मान्यः।। 84
बौद्धो हि योऽभिसमयोऽपि समञ्जरीकः यं प्राणयद् बुधशुभाकरगुप्तवर्यः।
मुद्रादिमन्त्रविधिपूजनकर्मकाण्डंतन्त्रोक्तशास्त्रकमिदं समपादयत् सः। ।85
श्रीपुण्डरीकरचिता विमलप्रभाख्याटीका प्रसिद्धलघुकालकचक्रतन्त्रे।
विद्वान् स बाहुलकरोऽपि च वल्लभोऽसौभागं समेत्य समपादयतां द्वितीयम्। ।86
भोटानुवादेन च हस्तलेखैष्षड्भिः कृता तन्त्रपरा सुटीका।
भागेऽत्र बद्धं पटलद्वयं यत्क्रमात् तृतीयं च चतुर्थमेव। ।87
त्रिंशच्च चत्वारिशतद्वयं यत्पद्यानि राजन्ति बहूनि यानि।
छन्दस्स्वनेकेषु निबद्धटीकाप्रकाशयन्तीव हि कालचक्रम्। ।88
तृतीयभागेऽपि च कालचक्रतन्त्रस्य टीका समपादि यात्र।
यः पञ्चमोऽसौ पटलोऽत्र तस्यांतथा महोद्देशचतुष्टयं यत्।। 89
यल्लुप्तबौद्धवचनादिसुसंग्रहोऽत्रपद्येषु चाधिकतरः प्रथमेऽत्र भागे।
प्रक्षिप्तशास्त्रवचनानि समुद्धृतानियद्बौद्धतन्त्रविषयाणि बहूनि यानि।। 90
शास्त्रं वसन्ततिलकाख्यमिदं बृहद् यद् आचार्य.ष्णरचितं वनरत्नटीका। शास्त्रे नव प्रकरणानि समुल्लसन्तिपाठे खिले दशबलस्य घनस्य किञ्चित् ।91
अकाररूपा निखिलाप्यसौ वाग् वाक्याक्षरादीनि ततो भवन्ति।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निरूपिता बोधिजपादिहोमाः कायादिकाश्चात्र तथागतस्य।।92
आद्योऽत्र भागो ननु बौद्धतन्त्रकोशोऽप्यसौ बौद्धपदार्थसिन्धुः।
वर्णक्रमैःशास्त्रवचांसि भूयः समुद्धृतानीह विदन्तु विज्ञाः।।93
षट्चक्रशुद्धिर्विहिताऽत्र तन्त्रेज्ञानोदयाख्याख्ये विदितेऽत्र शास्त्रे।
विभिन्नयोगादिविधिश्च हस्तग्रन्थेभ्य एवात्र चितो बुधेन।।94
रत्नावलीपञ्जिकया समेतंसम्पादितं कृष्णयमारितन्त्रम्।
ग्रन्थेऽत्र चाष्टादशसंख्यका येराजन्ति भूयः पटला विभिन्नाः।।95
यद्गद्यपद्येषु निबद्धमेतद्यद्धस्तलेखैरपि भोटपाठैः।
वचांस्यपभ्रंशयुतानि किञ्चिद्.ष्टानि शास्त्रे रसनीयमेव।।96
यन्मन्त्रबीजाक्षरबद्धमेतत्श्रीवज्रदेवस्तुतिगर्भमत्र।
यच्छान्तिपुष्ट्यादिवशीकरत्वंसंस्तम्भनं मारणमोहनानि।।97
टीकाऽत्र या गुणवती विहिता महामायातन्त्रशास्त्रविदिते गहना व्यलोकि।
यद्दुर्लभं दशमपुष्पविशेषकं निर्देशत्रये सपरिशिष्टमिदं सुशास्त्रम्।।98
यद्वज्रवीरस्थितिरूपकाणिगुह्याक्षरं होमविधिर्विभान्ति।
बुद्धस्य वक्त्रादिसुवर्णकं यत्संस्थानचिह्नान्यपि सन्ति देव्याः।।99
शतं सुपद्यानि कृतानि यानितानि द्विवेदाय समर्पयामि।
तुष्यामि कायेन सुचित्तवाग्भ्यांतद्वृत्तवैशिष्ट्यनिरूपकत्वात्।।100
तत्संस्मृतिग्रन्थवरो विशिष्टः प्रकाशमानोऽमरतां प्रयाति।
तस्मै सुपद्याञ्जलिरेष मे योगायेद् द्विवेदस्य परां सुकीर्तिम्।।101
पुण्यात्मनां नाकसुखाय तेषांनिः श्रेयसे चापि सुशान्तिहेतोः।
सम्प्रार्थये काशिकविश्वनाथंयशस्विनः स्युर्जयिनो द्विवेदाः।।102

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# चिरस्मरणीय यादों के पल

**डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी***

पूज्य पिताजी का सान्निध्य मेरे लिये स्मरणीय है। आज भी उनके साथ बिताएँ गये सुनहरे पल रोमांचित कर देते हैं।, पिताजी अर्न्तमुखी थे किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया तत्काल नहीं देते थे। अपितु समय आने पर उसका विकल्प निकाल लेते थे चाहे उसमें उनका नुकसान ही क्यों न हो जाये। मैं सोचता हूँ कि यदि वे गृहस्थ आश्रम में न होते तो चार पीठ में से एक पीठ के शंकराचार्य होते। पिताजी के फुफेरे भाई पुरी के पूर्व शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ के साथ ही वह काशी अपनी उच्च शिक्षा ग्रहण करने आये और यहीं के हो कर रह गये। वे गृहस्थ आश्रम में अवश्य रहे परन्तु उनका पूरा जीवन संन्यासी की तरह ही व्यतीत हुआ, न धन का लालच, न शोहरत की चाहत, जबकि एक दर्जन से ज्यादा मुख्यमंत्री, राज्यपाल एवं कैबिनेट मंत्री उनके अत्यन्त करीबी थे। ईश्वर पर अटूट विश्वास कि जो कर्म एवं भाग्य का उनको मिलना है मिलेगा ही। कभी भी किसी पुरस्कार सम्मान के लिये न किसी से कहा और न ही शिफारिश करवायी। मेरा मानना है कि जितना उन्होंने कर्म किया, तन्त्रशास्त्र को प्रदान किया, उन्हें उसका भौतिक सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। तन्त्रशास्त्र के अथाह ज्ञान में जो उन्होंने सर्वोच्चता प्रदान की उसे शायद ही कोई विद्वान् भेद पाये। तन्त्रशास्त्र और भारतीय संस्कृति में उनके योगदान को चिरकाल तक स्मरण रखा जायेगा। उन्होंने तन्त्र का कभी भी दुरुपयोग नहीं किया बल्कि तान्त्रिक शक्तियों ने उनके चारों ओर एक सुरक्षा घेरा बना रखा था जिससे उनका अनिष्ट चाहने वाले पूरे जीवन परास्त होते रहे, मैं इण्टरमिडिएट तक तो बचपन के दौर में उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को नहीं जान पाया परन्तु ग्रेजुएशन करते समय मैने देखा कि अनेक पूँजीपति एवं मंत्रीगण उनके पास तन्त्रसाधना व सिद्धि हेतु आते थे परन्तु वे सबको स्पष्ट रूप से मना कर देते थे। मैने पिताजी से पूछा कि आप लोगों को निराश कर देते हैं तब उन्होंने कहा कि तंत्र-मंत्र का दुरुपयोग घातक होता है, सिद्धि का गलत या लाभ के लिये प्रयोग करना शुरू में जरूर लाभप्रद होता है परन्तु बाद में वह विनाश का कारण बनता है इसलिये सस्ती लोकप्रियता से बेहतर है कि उसका प्रयोग ही न किया जाये। वे सर्वज्ञाता थे परन्तु वे अपनी साधना का उपयोग जनकल्याण के लिये ही करते थे। राष्ट्र की कथित राजनीति से अत्यन्त व्यथित रहते थे, अपने अध्ययन एवं अध्यापन काल में उन्होंने अनेक कष्टों का सामना किया परन्तु सत्य व अहिंसा के मार्ग पर चल कर सभी बाधाओं को दूर कर सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। कुछ संस्मरण मैं यहाँ रखना चाहूँगा जो उनके व्यक्तित्व को प्रदर्शित करते हैं। मेरी उम्र लगभग 10 वर्ष के आस-पास रही होगी। घर पर एक रेडियो था पिताजी समाचार उसी पर सुनते थे पर जैसे ही वे विश्वविद्यालय चले जाते थे, मेरी बहनें उस पर विविध भारती लगा कर गाना सुनती थीं परन्तु जैसे ही उनके आने का

---

***विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, कूबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़**
**वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समय होता मुझे पहरे पर बैठा दिया जाता था कि जैसे ही पिताजी कालोनी के गेट पर दिखे मैं बहनों को सूचना देता था कि पिताजी आ रहे है तो वे लोग जल्दी से विविध भारती हटा कर समाचार पर लगा कर रेडियो बन्द कर देती थी ताकि जब रात में पिताजी रेडियों खोलें तो समाचार ही आये यह था उनका भय। परीक्षा के दिनों में सबको सुबह उठा कर पढ़ने के लिये बैठा देते थे और अपने भी उठकर काम करने लगते थे और बीच में उठकर कर पूछते थे। जो समझ में न आये उसे पढ़ाते थे।

पिताजी अक्सर ही इन्टरव्यू लेने या सेमिनार में भाग लेने के लिये बाहर जाते रहते थे। एक बार वे हरिद्वार जाने वाले थे। मेरी गर्मी की छुट्टियाँ हो गयी थी, मैं जिद कर बैठा कि इस बार मैं साथ चलूँगा। माता जी ने मना किया परन्तु बालहठ भारी पड़ा तब पिताजी ने कहा देखो ट्रेन में सिर्फ मेरा रिजर्वेशन है यदि तुम्हारा प्लेटफार्म पर टी.टी. टिकट बना कर सीट देता है तो ही तुम चलोगे अन्यथा स्टेशन से मुझे छोड़कर वापस आ जाओगे।

मैं इस पर राजी हो गया और संयोग से स्टेशन पर मेरा टिकट बन गया और मैं पिताजी के साथ हरिद्वार पहुँच गया दो दिन तो मुझे उनकी व्यस्तता की वजह से अकेले ही निवास स्थल पर ही रहना पड़ा पर और मैं बोर हो गया और सोचने लगा कि बेकार ही आ गया परन्तु तीसरे दिन जब वह अपने काम से खाली हो गये तो मुझे साथ लेकर हरिद्वार ऋषिकेश घुमाया और पूरी ऐतिहासिक जानकारी भी प्रदान की।

मैं कक्षा छः में पढ़ रहा था। बड़ी बहन की शादी होनी थी। छह दिन पश्चात् शादी होनी थी। सुबह का समय था मैं अपने मित्रों के साथ टीचर्स कालोनी कैंपस में खेल रहा था तभी एक बड़ा हादसा हो गया। पड़ोस के एक मन्दबुद्धि बालक ने खेल के दौरान एक  ईंट छत से नीचे फेक दी। वह ईंट सीधे मेरे सिर पर गिरी और फिर अफरा तफरी मच गयी। मुझे तुरन्त कबीरचौरा अस्पताल ले जाया गया। वहाँ डाक्टरों ने प्राथमिक इलाज कर बी.एच.यू. रेफर कर दिया मेरी हालत बिगड़ रही थी और रविवार होने की वजह से बी.एच.यू. में डाक्टर उपलब्ध नहीं थे। पिताजी व्यथित होकर शादी का सारा काम छोड़कर मुझे लेकर उपचार के लिये दौड़ रहे थे। उन्होंने अपने मित्र प्रो. जगन्नाथ उपाध्याय जी को भी वहाँ बुलाया तब उन्होनें तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री और मुख्यमंत्री को फोन लगाकर वस्तुस्थिति बताई। स्वास्थ्यमंत्री की पहल पर इमरजेन्सी ड्यूटी पर विशेषज्ञ डाक्टरों की टीम बुलायी गयी, डाक्टर आये तथा उन्होंने तुरन्त आपरेशन किया तीन घंटे आपरेशन चला। मुझे तुरन्त खून की आवश्यकता थी तथा मेरे ग्रुप का खून उपस्थित लोगों के खून से मैच नहीं कर रहा था। इसी दौरान जिस बहन की शादी थी वह भी अस्पताल में पहुँची। उन्होनें कहा कि मेरा भी खून जाँच लें और संयोग से उनका खून मैच कर गया और ईश्वर की कृपा एवं पिताजी की सत्यनिष्ठा तथा बहन की वजह से मेरा पुनर्जन्म हुआ। इसके पश्चात् मैं जितने दिन अस्पताल में रहा पिताजी सिरहाने बैठ कर विभिन्न प्रकार की पुस्तकें एवं कामिक्स पढ़कर सुनाते ताकि मेरा मन बहलता रहे।

काशी मेलों का शहर रहा है। पिताजी ने मुझे इस विधा से परिचित कराया, दुर्गापूजा में मूर्तिविजर्सन, दशहरा पर रावण दहन, मोहर्रम पर ताजिया, ईद, क्रिसमस पर चर्च, गंगा दशहरा पर गंगा के तट पर, रथयात्रा, भरत मिलाप, बुढ़वा मंगल, कवि सम्मेलन, एवं विचार गोष्ठियों में मुझे वे ले जाते थे तथा हर त्योहार व संस्कृति को नजदीक से दिखाया समझाया जिसका गहरा प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा।

पूरे जीवन उन्होंने अपने स्वाभिमान से कभी भी समझौता नहीं किया। भले ही इससे उनको नुकसान उठाना पड़ा।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें जो बात उचित नहीं लगती थी वे सबके सामने खरी-खरी बोल देते थे चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो। इसकी वजह से उन्हें कई लोगों की नाराजगी का सामना करना पड़ा।

उनके कई शिष्य भारत के अतिरिक्त यूरोप, अमेरिका, में भी थे परन्तु उन्होंने बिना किसी लोभ के विद्यादान किया और उनके द्वारा देने की इच्छा प्रकट करने पर विनम्रता पूर्वक उन्हें वापस कर दिया। उनका कहना था कि सरस्वती के उपासक के पास लक्ष्मी का क्या प्रयोजन है? जीवन के अन्तिम समय तक उनका यह संकल्प बना रहा तथा उन्होंने दुनिया से वैराग्य ले लिया था। जीवन के आखिरी क्षणों में कहते थे कि मेरे सिरहाने आकर बैठ जाओ और फिर मेरा हाथ पकड़कर एक बच्चे के समान गहन निद्रा में चले जाते थे और इसी प्रकार 17 फरवरी 2012 को फाल्गुन कृष्ण पक्ष एकादशी की सुबह विश्व को एक अप्रतिम साहित्य एवं दर्शन का उपहार दे कर आचार्यश्री चिर निद्रा में चले गये।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# पथ प्रदर्शक का स्मरण

शोभा त्रिपाठी*

राजस्थान (केकड़ी) में जन्में पिताजी पढ़ाई के प्रति अत्यधिक रुचि के कारण छोटी सी उम्र में ही अपना घर छोड़ अपने फुफेरे भाई जगद्गुरु निरंजनदेव तीर्थ, शंकराचार्य, पुरी के साथ काशी शिक्षा ग्रहण करने आ गये। वहाँ अकेले रह कर निष्ठा व लगन द्वारा ज्ञान अर्जन में जुट गये। बहुत संघर्षों का सामना कर शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ऊँचा मुकाम हासिल किया। काशी में सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्विद्यालय में योगतन्त्रागम और दर्शन विभाग में प्राध्यापक से प्रोफेसर तक का सफर तय किया तथा तन्त्रसाहित्य में अतुलनीय ख्याति प्राप्त की। वे निरन्तर आगे बढ़ते चले गये, कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा, उन्होंने दिखा दिया इन्सान अगर दिल व लगन से सोच ले तो वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

अपनी इसी योग्यता के बल पर राष्ट्रीय ही नहीं अन्ताराष्ट्रीय पुरस्कार, सम्मान एवं आदर उन्हें मिला। आज हमें अपने पर गर्व होता है कि हम उनकी बेटी हैं। आज भी वह हमारे साथ है, हमें हर पल रास्ता दिखा रहे हैं। उनकी ईमानदारी, लगन, सच्चाई आज हमें उन्हीं के पदचिह्नों पर चलने को प्रेरित करती है।

उनकी डाँट में भी प्यार व अच्छे कार्य की सीख हुआ करती थी। वह कभी इतना कड़ा शब्द बोल जाते थे जो दिल में सुई की तरह चुभ जाता था पर उसी में ढेर सारा ज्ञान छुपा मिलता था। उन्होंने सच्चाई पर चलना सिखाया सच कितना भी कड़वा हो बोलो, डरो मत, झूठ से डरना सीखाया अच्छे आदर्श, संस्कार दिये, आज हम उन्हीं के संस्कार व आशीर्वाद को लेकर परिवार के साथ खुश है। मेरे पिताजी बच्चे जैसे जिद्दी, मासूम बन जाते थे। उन्हें बच्चों की तरह मनाना पड़ता था। विद्यार्थी दूर-दूर से तो ग्रहण करने आते थे अपना सारा काम छोड़ उनको अपने बेटे की तरह शिक्षा देते थे। उनका कहना था कि तुम पढ़ कर योग्य बन जाओ मेरा नाम रोशन करो यही मेरी गुरुदक्षिणा है। उनका सारा जीवन संघर्षमय रहा पर हमेशा उनके चेहरे में मुस्कान रही। हमेशा निडरता सच्चाई से सभी मुसीबतों का सामना किया। जीवन भर अपने आदर्शों को कायम रखा। निरन्तर पुस्तकें लिखते रहे, थके नहीं, अपने अंतिम समय तक उनकी कलम कभी नहीं रुकी, आज भी वह हमारे साथ ही हैं, क्योंकि उनकी उपलब्धि पर प्राप्त सारे प्रशस्ति पत्रों की खुशबू उनकी यादों को वातावरण में फैला रही है। संस्कृत भाषा और तन्त्रागमीय दर्शन के विकास एवं संवर्धन में वे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहे। उनकी लेखनी हमेशा समाज के लिए समर्पित रही। आज हम सब उन्हीं के बताए रास्ते पर चल कर उनकी आत्मा में अपनी छाप छोड़ रहे हैं।

जब हम लोग अपने बच्चों, नाती-पोतों के साथ बैठ कर टी.वी. पर पिक्चर, गाने, सिरियल देखते हैं तब अपने विद्यार्थी जीवन की घटना याद आती है। जब हम लोग पढ़ते थे उस समय टी.वी. तो नहीं था रेडियों पर विविध भारती

---

*टोंक, राजस्थान

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से गाने आते थे तथा फिल्मी दुनिया नाम की पत्रिका आती थी, परन्तु हम लोग पिताजी के सामने न तो गाने सुन सकते थे न ही फिल्मी पत्रिका पढ़ सकते थे, पिताजी जब पढ़ाने चले जाते थे। तब बहनें रेडियो पर गाना लगा कर सुनतीं और पिता जी के आने का समय होने पर रेडियो बन्द कर पढ़ने लग जाते थे। पिताजी को हम लोग बाबूजी के संबोधन से बुलाते थे, कमरे में हम लोग जब गाना सुनते थे तो एक बहन की ड्यूटी बरामदे में रहती थी। उसे जैसे ही बाबूजी दूर से आते हुये दिखते थे वह दौड़कर हमें बताती थी और हम सब रेडियो बन्द कर पढ़ने में लग जाते थे, इस डर में भी आनन्द छिपा था और बड़ों के प्रति आदर का भाव, परन्तु जब बाबूजी विशेष अवसर पर मगदल या रबड़ी बनाते थे तो हम सब उनके चारों तरफ बैठ कर उनकी सुगंध व स्वाद का आनंद भी लेतीं थीं। स्मृतियाँ तो अनन्त हैं। जो संस्कार हमें उनसे प्राप्त हुये उसने हमारे जीवन के सार्थक उद्देश्यों को पूरा करने में मदद की। आज उनकी यादें हमारे लिये प्रेरणा का स्रोत हैं। मैं उनको शत-शत नमन करती हूँ।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# सरस्वती के उपासक

श्रीमती आशा त्रिवेदी*

पिता जी स्वभावतः एकान्तप्रिय थे। उनका अधिक समय भगवद् आराधना एवं सरस्वती की साधना में ही व्यतीत होता था। इस कारण व्यवधान के भय से हम सभी बहने उनके कक्ष में कम ही जाया करती थे।

अनावश्यक तो हम प्रायः नहीं ही जाते थे। उन्होंने अपने को इस रूप में ढाल लिया था कि उन्हें मनोरंजन की भी विशेष आवश्यकता नहीं थी। उनका मनोरंजन आकाशवाणी रेडियो से आने वाले सुबह एवं शाम के समाचार होते थे। वे अपनी साधना में अहर्निश रहे रहने वाले योगी की ही भाँति थे। मैं कह सकती हूँ कि सेवा निवृत्ति के पश्चात् पिता जी के विभागीय दायित्व के निर्वहन में व्यतीत होने वाला समय का कुछ अंश परिवार में प्राप्त हुआ, अध्ययन काल मे लगभग 10 वर्ष पिताजी के निर्देशन अध्यय किया। शादी के पश्चात् जब बनारस में रहती तो प्रातः और सायं तो अवश्य ही उनके पास बैठती और न रहने पर फोन पर वार्ता हो जाया करती थी, परन्तु वार्तालाप का विषय प्रायः एक पिता और पुत्री के मध्य होने वाली सामान्य वार्ता के साथ-साथ पढ़ाई एवं नौकरी सम्बन्धी भी होता था।

पिता जी कुछ अंश में अनासक्त थे। वे विशेष वार्ता अनायास नहीं किया करते थे और वार्तालाप में देश-काल-अर्हता आदिका ध्यान रखते थे।

पिता जी का सम्पूर्ण जीवन ही ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्भुत समन्वय था। वे समय के प्रबन्ध की कला में निपुण थे। प्रातः कुछ मंत्रों की आवृत्ति तो उनकी शय्या पर ही पूर्ण हो जाती थी। समाचार पत्र के अवलोकन तथा दैनिक क्रिया से निवृत्त हो वे लगभग 8 से 9 बजे मध्य स्नानादि के लिए प्रवृत्त होते थे। स्नानागार में प्रवेश के अधिक से अधिक दो मिनट के अन्तराल पर ही विभिन्न स्तोत्रों का पाठ प्रारम्भ हो जाता था। वे सामान्य रूप से प्रातः काल लगभग 25 मिनट पूजा करते थे। यह अवधि नवरात्र या विशेष पर्वादि के अवसर पर बढ़ जाया करती थी। पूजा के पश्चात् भोजन ग्रहण कर अध्यापन कार्य हेतु निकलते तो सायं लगभग चार बजे लौटकर कुछ विश्राम कर पुनः अध्ययन में लग जाते थे और अवकाश के दिनों में तो अध्ययन की अवधि और बढ़ जाया करती थी। तन्त्र दर्शन के उपासक पिता जी को मैंने अनेक बार अर्धरात्रि में ग्रन्थों को उलटते-पलटते देखा। वे जीवन पर्यन्त विद्यार्थी ही रहे। उन्होंने खूब अध्ययन एवं अध्यापन किया। जिसका प्रमाण गम्भीर विषयों पर हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी में लिखी गयी 80 पुस्तकें एवं लगभग 400 लेख व निबन्ध हैं। देश-विदेश में फैली हुई विद्वान् शिष्यों की परम्परा उनके पांडित्य का प्रमाण है।

पिता जी के व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता यह थी की वे स्वावलम्बी थे। वे जीवन के अन्तिम समय तक अन्य के सहयोग की अपेक्षा नहीं की। वे अत्यधिक परिश्रमी एवं एकाग्रचित थे। उनमें स्वाभिमान इतना था कि हानि होने पर

---

***अध्यापिका, दुग्ध विनायक, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी झुकना स्वीकार नहीं था। असत्य को सहन करना उनके स्वभाव में नहीं था। वे शास्त्रभिमानी थे। विद्वद्गोष्ठियों, शास्त्रचर्चाओं में अत्यन्त रुचि से भाग लेते थें अपने शिष्यों के लिए तो वे समृद्ध ग्रन्थालय के समान ही थे, जहाँ जिज्ञासुओं को प्रत्येक प्रश्न का उत्तर सद्यः प्राप्त हो जाया करता था। वे गम्भीर प्रश्न करने पर समाधान तो करते ही थे, प्रसन्न होकर प्रोत्साहित भी देते थे। वे खूब साफ-सुथरे, अच्छे वस्त्र पहनने के शौकीन थे। माता जी हमेशा उनके कक्ष में धुले व प्रेस किये कपड़े रख देती थी।

पूज्य बाबू जी का भौतिक शरीर आज हमारे समक्ष नहीं है, किन्तु विश्वास है कि उनकी प्रेरणा स्मृतियों के रूप में हमारे समक्ष रहकर सदैव ही हमारा पथ-प्रदर्शन करते हरेगे। उनके पवित्र कर्म तथा दैवी-सम्पदा स्वरूप प्रतिष्ठित सदाचरण सदा हमारे लिए अनुकरणीय रहेंगे।

बाबूजी जैसे दूसरे प्रतिमान प्रायः दृष्टिगत नहीं होते, जिनमें मन, वचन और कर्म की ऐसी एकता मिले। जलकमलवत् सर्वथा असम्पृक्त, अपनी धुन के पक्के उनका व्यक्तित्व सरल-जीवन एवं उच्च-विचार का प्रत्यक्ष निदर्शन था। जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर अविलम्ब देकर उनकी शंकाओं का समाधान वे बैठे-बैठे, चलते-चलते कर देते थे। अपने अध्ययन की परधि के विस्तार में सदैव लगे रहने वाले तथा अपनी शंकाओं के समाधान के लिए निरन्तर शास्त्र-चिन्तन करने वाले थे। उनका व्यक्तित्व प्रतिभाशाली, बहुआयामी तथा सद्गुणों का भण्डार था। सरलता, संयम, सारग्राहिता, त्याग, तपस्या एवं निरन्तर संघर्ष बाबूजी के जीवन के विभूषण थे। मेरी दृष्टि में उनका जीवन सरस्वती एवं लक्ष्मी के प्रसादन हेतु की गयी सात्त्विक साधना का अप्रतिम उदाहरण है।

बाबूजी निःसंदेह सच्चे साधक, कर्मयोगी एवं पुण्यात्मा थे, उनके प्रति मेरी हृदय से श्रद्धापूर्ण एवं भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित है। मुझे विश्वास है कि उनका पुण्यकर्म उनके यश को क्षीण नहीं होने देगा और नाम की भाँति ही वह भी 'अमर' रहेगा।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

## ईष्टदेव वंदना
## ( श्री गोविंद माधवाष्टकम् )

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः स्तुतमादिदेवं, भक्तैर्नतैश्च सततं हृदयोपगूढ़म्
लक्ष्मीपतिं विभुमुदीच्यधरामरेशम्, गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥1॥

प्राचीपितामह-सुतातट-मंदिरस्थं देवादिदेवगण वंदित पादपीठम्
दामोदरं मधुरहास्ययुतास्यकञ्जम् गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥2॥

आदाउदीच्य-वसुधाभरगीत कीर्ति विप्रप्रियं दलित-वाड़व-दुःखजालम् नारायणं
वरदमब्जदलायताक्षं गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥3॥

श्री-श्रीस्थलाख्य-वरतीर्थक्रतादिवासं कुन्देन्दु-शंखदशनं द्विभुजमं वरेण्यम्
सान्द्राभमेचकतुनं 'घृतशंखचक्रं गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥4॥

देवेन्द्र दर्पदलनं यदुवंशहंसं कांतं त्रिभंगललिताकृतमिष्टदेवम्
वंशीविभूषित-भुजद्वय-पुण्डरीकं, गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥5॥

तेजोमयं-सगुणनिर्गुणमद्वितीयं माधुर्यधैर्य-सुभगं गतरागमीशम्
आनन्दकंदमपराजितमात्मरूपं, गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥6॥

वाचामगोचरमनंत-गुणंगंभीरं, वेदान्तवेद्यममलंकरूणैकमूर्तिम्
वन्द्यं त्रिलोकनिलयं कमनीयरूपं गोविंदमाधवमहं प्रणतोऽस्मि भक्तया ॥7॥

धर्मार्थ कामयुतमोक्षकरं यशस्यं स्तोत्रं नरो पठति योऽवहितं त्रिकालम् भुक्तवामैश्च
सुलभानिह सर्वभोगान् गोविंदमाधव विभोश्चरणं प्रयायात् ।8॥

******

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# ज्ञानयज्ञेन चाप्यने यजन्तो मामुपासते

*विद्यावल्लभ दवे

## " स्व. पं. रूपशंकर जी द्विवेदी"

प्रो0 वृजवल्लभ द्विवेदी के प्रपितामह स्व0पं0 रूपशंकर जी द्विवेदी के जीवन के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध हुई उसके अनुसार वे ईश्वर मक दृढ़निश्चयी तथा सहासी पुरुष थे। आप "खयाल" गायकी के अच्छे गायक थे। आपके पास "खयाल साहित्य" का विपुल भण्डार था, जिसमें अधिकांश हस्थनिरिवत था। आपकी आवाज बुलन्द थी। घर की छत पर खड़े होकर जब आप गायन करने तो उनकी आवाज कस्बे के बाहर खेत-खलियानों में सुनाई देती थी। आपकी मृत्यु के बाद राजस्थान की एक संस्था ने इनके साहित्य की मांग हमारे पिताश्री से की।" उस समय तक अधिकांश संग्रह इधर-उधर हो गया था।

आपके जीवन काल में कोटा (राज) के नरेश द्वारा एक विशाल यज्ञ आयोजित किया गया था। यज्ञ विज्ञान का आपको अनुभव नहीं था। अतः पूरे आयोजन काल में आप गायत्री जाप करते थे। यज्ञ के चलते एक दिन अकस्मात महल के रनवास में आग लग गई जिसमें राजपरिवार आग की लपटों में घिर गया। चारों ओर शोर मच गया। परन्तु परिवार को बचाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। हमारे प्र-पितामह ने दो ऊनी कम्बल उठाए, उन्हें पानी में गीला किया तथा रनवास में प्रवेश कर एक कम्बल में राजरानी को लपेट व एक से स्वयं को ढककर रानीजी को बाहर उठा लाया।

उनके इस साहसिक कार्य से सभी अचम्भित रह गए। कोटा नरेश ने तुरन्त पुरस्कार स्वरूप अपना मोतियों का कण्ठा, एक सोने की मूठ्वाली कटार प्रदान की। खेद है कि हमारा परिवार इस पुरस्कार को सुरिक्षत न रख सका।

"सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तस्य दृढाव्रताः"।

## " स्व.पं.श्री रघुनाथ जी द्विवेदी"

हमारे पितामह पं0 श्री रघुनाथ जी द्विवेदी का जन्म तत्कालीन अजमेर राज्य के कस्बे केकड़ी में ईस्वी सन् 1844 में हुआ। आपके पिता पं0 श्री रूपशंकर जी द्विवेदी माँ गायत्री के उपासक थे। वे "खयाल" गायकी के अच्छे गायक थे। आपके पास खयाल साहित्य का अच्छा हस्तलिखित साहित्य उपलब्ध था। उस समय के कोटा नरेश द्वारा एक यज्ञ आयोजित किया गया था, जिसमें आपको गायत्री उपासना हेतु आमंत्रित किया गया। यज्ञ के दौरान अकस्मात राजमहल के रनवास (रानियों का कक्ष) में आग लग गई। राजपरिवार आग की लपटों में घिर गया। सभी शोर मचाते रहे परन्तु रूपशंकर जी दो गीले कम्बल लेकर भवन में घुस गये व रानी जी को उनमें लपेट उठाकर बाहर ले आये। इस साहसिक कार्य पर कोटा नरेश ने पारितोषिक स्वरूप सोने की मूंढ की एक कटार व अच्छे मोतियों का अपना कंठ प्रदान किया।

---

*पूर्व-अधीक्षक, जिला अस्पताल उदयपुर, राजस्थान

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पं0 श्री रघुनाथ जी विद्याप्रेमी, स्वतंत्र विचारक प्रभावी व्यक्तित्व के धनी थे। उनमें किसी भी विषय पर सही निर्णय करने की अद्भुत क्षमता थी। आप अरबी, फारसी व संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। केकड़ी क्षेत्र के अधिकांश जागीरदारों ने आपसे शिक्षा प्राप्त की। वे लोग आपका बहुत सम्मान करते थे। रजवाड़ों से आपके सम्पर्क से लाभ उठाने की दृष्टि से तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नमेंट ने आपको अजमेर मेयो-कालेज के राजकुमारों के होस्टल में वार्डन के पद पर नियुक्त किया। इस पद पर रहते आपका अन्य कई राज परिवारों से अच्छा सम्पर्क बना। एक बार एक राजकुमार नाराज होकर कालेज छोड़कर घर चले गये तो आप उनके पिता से जाकर मिले व दोनों (पिता -पुत्र) की समझकर कर राजकुमार को पुनः अपने साथ लेकर ही अजमेर लौटे। काशी के राजा बिभूती नारायण सिंह भी इसी कालेज में पढ़े थे। वो जीवन पर्यन्त इन्हें गुरू मानते रहे।

आपके कुशल प्रबन्धन, त्वरित निर्णय लेने की क्षमता व अदम्य साहस को देखते हुए कालेज प्रशासन ने कालेज की निर्णय समिति का सदस्य बनाया। समिति में इनकी सलाह को गंभीरता से लिया जाता था। जब समिति के सामने यह प्रश्न आया कि प्रेयर (प्रार्थना) में कितना समय दिया जाय, तो आपने गंभीरतापूर्वक कहा पाँच मिनट विचार-विमर्श के बाद इनका सुझाव मान लिया गया। तथा कालान्तर में निर्णय लिया गया कि सेवानिवृति की आयु सीमा की शर्त इन पर लागू नहीं होगी। इस प्रकार इनको स्वैच्छिक सेवानिवृति का लाभ दिया गया।

अजमेर निवास काल में आपका सम्पर्क आर्य समाज के प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द जी एवं महान इतिहासविद् म0म0गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा से बना व उनसे निकटता के सम्बन्ध बन गए। इन दोनों महानुभावों का अधिकांश साहित्य आपके पास उपलब्ध था। औदीच्यों में सार्वजनिक भोजन के समय शान्ती-पाठ की व्यवस्था थी जो शिथिल पड़ने लगी। अतः आपने वर्ष वि0सं0 1966 में औदीच्य सभा केकड़ी के माध्यम से शान्ती-पाठ की पुस्तिकाएँ छपवाकर जातिबन्धुओं में निशुल्क वितरित करवाई। सवाई माधोपुर राजस्थान में आयोजित प्रथम अधिवेशन के आप सभापति रहे।

अस्सी वर्ष की उम्र में मेयो कालेज अजमेर से पूरी तरह सेवा-निवृत होकर आप केकड़ी में गुजराती मोहल्ले के पैतृक निवास में आ गये। कालेज प्रशासन द्वारा विदाई समारोह में प्रसंशा पत्र व चाँदी निर्मित पूजा-पात्र (पूरा सेट) प्रदान किया गया। आपके पास साहित्य का विपुल भंडार था। कुछ दीमक द्वारा नष्ट कर दिया गया। शेष साहित्य सम्बन्धित विद्वानों व पुस्तकालयों को भेंट कर दिया गया।

आपके परिवार में चार- पुत्र तथा चार-पुत्रियाँ रही। दूसरी पुत्री रंभाबाई पुरी के भूतपूर्व शंकराचार्य निरंजन देव तीर्थ की जननी थी। भरा-पूरा केकड़ी का द्विवेदी परिवार एक घर को छोड़कर देश के विभिन्न क्षेत्रों में चला गया।

पं0 श्री रघुनाथ का निधन दिनांक 21 मार्च 1930 ई0 तद्नुसार वि0सं0 1986 चैत्र मास कृष्णपक्ष की सप्तमी (शीतला सप्तमी) को केकड़ी में हुआ।

## " स्व.पं.गोपी वल्लभजी द्विवेदी"

**विहायकामान्य सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृह।**
**निर्ममो निरहंकारः स शान्ति मधिगच्छति।।**

प्रो0 वृजवल्लभ जी द्विवेदी के पिता श्री स्व0 पं0 गोपीवल्लभ जी द्विवेदी पं0 रघुनाथ जी के तीसरे पुत्र थे। आपका जन्म ग्राम केकड़ी जिला-अजमेर राजस्थान में हुआ था। आपका विवाह फरुक्काबाद निवासी सु0 श्री नर्बदा बाई के साथ सम्पन्न हुआ। आपके चार पुत्र सर्व श्री जानकीवल्लभ, वृजवल्लभ, विद्यावल्लभ एवं शिववल्लभ एवं दो पुत्रिया विद्यादेवी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा सुशीला देवी। ज्येष्ठ पुत्र श्री जानकी वल्लभ जी को छोड़ शेष तीनों भाई क्रमशः वाराणसी, साबरमती एवं उदयपुर में बस गए।

आपके पिता श्री एवं दोनों जेष्ठ भ्राताओं के नगर से दूर सेवारत होने तथा दोनों ज्येष्ठ भ्राताओं की पत्नियों के असामयिक मृत्यु के कारण सारे परिवार का भार आपके कन्धों पर आ गया। इस दायित्व को आपने अपनी गृह कार्य में दक्ष पत्नी के सहयोग से अपनी अल्प आय से संभाला। हमारे दादा श्री रघुनाथ जी जब अजमेर मेयो कालेज से सेवा निवृत होकर पधारे तो उनका स्वास्थ्य ठींक नहीं रहता था। आप अपनी 24 वर्ष पुरानी नौकरी छोड़ उनकी सेवा सुश्रुषा में लग गए।

दादा श्री के देवलोक गमन के बाद सम्पत्ति के बारे एवं आय का कोई अन्य श्रोत नहीं होने से आपकी आर्थिक स्थिति दिन पर दिन कमजोर होती गयी, द्वितीय पुत्र वृजवल्लभ जी तो पूर्व में ही विद्याध्ययन हेतु वाराणसी चले गए। शेष दोनों कनिष्ठ पुत्रों को भी विद्याध्ययन हेतु शाहपुरा (राज) में मौसी का सहारा मिला। कहावत याद आती है'' मरो मां जीवो मौसी'' मौसी व उसके परिवार का मधुर सम्बन्ध उसके पौत्रों के साथ-आज भी कायम है।

आपका अंतिम समय संकटावस्था में बीता। इस विपरीत परिस्थिति में भी अपने धैर्य नहीं खोया व निस्पृहभाव से प्रभू पर भरोसा कर सब संकटों का सामना किया। इस अवधि में हमारी माताश्री का पूर्ण सम्बल आपको मिला। आयु के अंतिम दो वर्ष आप लकवे से ग्रस्त रहे। इस अवधि में माता श्री तथा हमारी भाभी श्रीमती रक्षादेवी ने आपकी हर संभव सेवा की। आप दिनांक 30 अक्टूबर, 1964 को केकड़ी में ही गौधाम सिधारे।

## पं0 श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी

केकड़ी निवासी पं0 श्री रघुनाथ जी द्विवेदी के पौत्र, पं0 श्री गोपीवल्लभ द्विवेदी के द्वितीय पुत्र, आगम तन्त्रशास्त्र के उद्धारक महामनीषी, पद्मविभूषण, महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज के प्रिय शिष्य पं0 श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी का जन्म दिनांक 30 जुलाई 1926 ईस्वी तदनुसार श्रावण कृष्णा दशमी शनिवार संवत् 1983 को शाहपुरा जिला-भीलवाड़ा राजस्थान में मौसी के घर हुआ।

आप बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे। अपने पैतृक निवास में रहते आपने प्रथमा परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसी काल में हमारी बुवा के लड़के भाई चन्द्रशेखर वाराणसी से शास्त्री की उपाधि प्राप्त कर केकड़ी आए। शास्त्री जी अपने नाना पं0 श्री रघुनाथ जी को नियमपूर्वक मनोयोग पूर्वक कादम्बरी की कथा सुनाया करते थे। इस कथा को सुनकर बालक व्रजवल्लभ को संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रति आकर्षण पैदा हुआ और संस्कृत भाषा के अध्ययन हेतु शास्त्री जी के साथ काशी चले गए। तथा वहीं के निवासी होकर रह गये।

काशी में आपने राजकीय संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा वहीं रहकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से साहित्य रत्न की उपाधि योग्यतापूर्वक प्राप्त की। सन् 1957 में संस्कृत विषय लेकर आगरा से एम0ए0 भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की सन् 1944 से 1948 तक वाराणसी के प्रसिद्ध हस्तलेख संग्रहालय ''सरस्वती भवन'' में पांडुलीपि सम्पादन तथा संस्कृत वाङ्मय में शोध पद्धति का प्रशिक्षण प्राप्त किया। सन् 1951 से 1967 तक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की त्रैमासिक पत्रिका ''सरस्वती सुषमा'' का सम्पादन करते हुए प्रकाशन अधिकारी के पद पर कार्य किया।

सन् 1967 में ही आपकी नियुक्ति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में योग-तंत्र विभाग में पाध्यापक पद पर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुई। इस पद पर सन् 1978 तक अपने योग्य गुरु पद्मविभुषण पं0 श्री गोपीनाथ कविराज के निर्देशन में शैक्षणिक कार्य किया। सन् 1978 में इसी विश्वविद्यालय में सांख्य योग व तंत्रागम विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य पद पर नियुक्त होकर सेवानिवृति पर्यन्त कार्य किया। सेवा-निवृती के बाद भी अगले तीन वर्षों तक इसी विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर बने रहे। तद्उपरान्त केन्द्र सरकार की महत्वपूर्ण योजना ''दुर्लभ बौद्धग्रन्थ शोध'' के अन्तर्गत उपनिदेशक के रूप में तिब्बती शिक्षा संस्थान वाराणसी में सन् 2001 तक तथा जंगमबाड़ी में स्थित शैव भारती शोध प्रतिष्ठान में मान निदेशक के रूप में आजीवन सेवाएँ प्रदान की।

प्रो0 द्विवेदी जी ने देश के अनैक प्रदेशों की शैक्षणिक यात्राएँ की'' सन् 1987 में हालैण्ड में आयोजित विश्व संस्कृत सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। बाद में कई यूरोपीय व एशियाई देशों की यात्रा करते हुए आक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में विशेष सम्बोधन किया। विभिन्न शैक्षणिक सत्रों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनारों में भाग लिया। आपके कई योग्य शिष्य देश-विदेश में उच्च पदों पर आसीन है, जिनके प्रयासो से आपकी कई रचनाओं एवं लेखों का कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

प्रो0 द्विवेदी जी द्वारा लिखित एवं सम्पादित पुस्तकों की संख्या 150 से अधिक हो चुकी है तथा सैकड़ों लेख देश-विदेश के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित है। तंत्र दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान द्विवेदी जी ने परमश्रद्धेय स्वामी करपात्री जी महाराज के **''वेदार्थपरिजात भाष्य''** का हिन्दी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त इनकी विश्वजयी रचनाओं में विज्ञान-भैरव, नित्यषोड़ाशिकार्पण व **तंत्रयात्रा,** निगमागमीय **संस्कृतिदर्शनम्, तंत्रागमीयधर्मदर्शन**, एक विश्वः एक संस्कृति, सात्वतसंहिता प्रमुख रही। ये रचनाएँ विद्वानों एवं शोधार्थियों के अध्ययन में सहायक सिद्ध हो रही है। आपके विद्या गुरु महामहोपाध्याय पं0 गोपीनाथ कविराज ने कहा है कि द्विवेदी जी योगतंत्र और आगम विषय पर नई पीढ़ी के विद्वानों में योग्यतम व्यक्ति हैं।

प्रो0 द्विवेदी जी को उनकी अतुलनीय संस्कृत सेवा के कारण 1970 में ''कालीदास पुरस्कार'' 1978 में ''संस्कृत साहित्य पुरस्कार'' 1982-83 में विशेष कृति पुरस्कार, 1986 में ''विशिष्ट संस्कृत साहित्य पुरस्कार उ0प्र0 सरकार'' 1987 में संस्कृत विशिष्ट पुरस्कार 1995 में ''हरितराशि पुरस्कार'' 1996 में ''मीमांसा केसरी पुरस्कार राजस्थान सरकार एवं 1983 में महामहिम राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा द्वारा ''राष्ट्रपति पुरस्कार से नवाजा गया। इसके अतिरिक्त भी जगद्गुरु विश्वभांरती, एवं सर्जना पुरस्कार के साथ अन्य कई राज्य सरकारों एवं विदेशों से पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए है।

प्रो0 द्विवेदी ज्ञी जब भी ग्रीष्मावकाश में साहित्यिक भ्रमण पर निकलते तो उदयपुर अपने अनुज विद्यावल्लभ के पास अवश्य आते। इसी योजना के अन्तर्गत वो सन् 1970 में भी आए। इस प्रवास के दौरान आपने सरस्वती भंडार के हस्तलिखित ग्रन्थों का अवलोकन किया। महाराणा साहब के व्यक्तिगत पुस्तकालय एवं कैलाशपुरी के महन्त जी के व्यक्तिगत संग्रह को देखने की सुविधा प्राप्त न होने पर आपको निराशा हुई। आपने अनुज के आग्रह पर साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ गए। वहाँ के ग्रन्थागार में हस्तलिखित आगमशास्त्र के ग्रन्थों का संग्रह देख बड़े प्रसन्न हुए तीन दिनों का समय देकर पारमेश्वर संहिता, नारदीय संहिता, विश्व मित्र संहिता, विद्यापद पर रामकण्ठ रचितवृत्ति की पाण्डुलिपियों का अवलोकन व अध्ययन किया। आपने इस ग्रन्थागार प्रसंशा की।

इसी प्रकार की एक दूसरी यात्रा में आप चित्तौडगढ़ व छोटी सावड़ी भ्रमर माता के विक्रम सम्बत 547 विक्रम



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के शिलालेखों का अवलोकन किया। भ्रमर माता के शिलालेख व उनके द्वारा निर्धारित ग्रन्थ की फोटो प्रति बाद में अनुज द्वारा वाराणसी भेजी गई।

प्रो0 द्विवेदी जी की सरस्वती साधन 85 वर्ष की उम्र तक निरन्तर चलती रही। दुर्घटना में कुल्हे की हड्डी टूट जाने के कारण चलने-फिरने में असुविधा के पश्चात भी आपका अध्ययन-अध्यापन का रथ मन्दगती से ही सही, मृत्यु पर्यन्त चलता रहा। सादा-जीवन उच्च-विचार के धनी प्रो0 द्विवेदी जी कहते थे "धीरे चलो पर चलते रहो। लालसा, द्वेष एवं अहंकार आपमें लेसमात्र भी नहीं था।

दुःखेष्वनुद्विग्न मनाः सुखेषु निगतस्पृहः। वीतरागमय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यतो" गीताः काशी के विद्वत समाज ने आपके अभिनन्दन में लिखा है

**व्रज का वल्लभ योगेश्वर है, तुम योग-तंत्र के निर्माता।**
**वह गीता का उपदेशक है, तुम वेद-शास्त्र के व्यारव्याता।**
**जग में पूजित व्रजवल्लभ है, तुम शासन से सम्मानित हो,**
**रुपान्तर ही व्रज वल्लभ है, सुस्वागत है व्रजवल्लभ का।**

आपका विवाह जयपुर निवासी श्री रुद्रदत्त जी शास्त्री राजगुरु (जामनगर, गुजरात) की सुपुत्री सुशीलादेवी के साथ हुआ। आपको पांच पुत्रियाँ तथा एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। काशी में दिनांक 17 फरवरी 2012 तद्नुसार संवत् 2068 फाल्गुन कृष्णा एकादशी शुक्रवार को गो-लोक धाम सिधारे।

**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**वीतरागभय क्रोधः स्थितिधीर्मुनिरुच्यते॥**

### विद्यावल्लभ दवे

श्री विद्यावल्लभ दबे, स्व0 पं0 गोपीवल्लभ जी द्विवेदी के पुत्र एवं स्व0 राष्ट्रपंडित वृजवल्लभ जी द्विवेदी जी के अनुज का जन्म केकड़ी (अजमेर-राज0) में श्रावण मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी शुक्रवार संवत 1985 को हुआ। आपने हाईस्कूल की परीक्षा अपनी मौसी के पास शाहपुरा रहते हुए अजमेर बोर्ड से 1947 में पास की। शाहपुरा में ही आप राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ की प्रथम शाखा के स्वयं सेवक बने व मुख्य शिक्षक का दायित्व निभाया। बाद में केकड़ी चले गए वहाँ पर संघ के द्वितीय सरसंघ चालक श्री गुरुजी का सानिध्य प्राप्त हुआ। संघ पर दूसरे प्रतिबंध पर सत्याग्रह कर 26 जनवरी 1949 को जेल यात्रा की। जनवरी 1949 से 12 जुलाई 1949 तक आप केन्द्रीय कारागृह अजमेर में रहे कारागृह से छूटने पर आप पुनः शाहपुरा आए। वहीं अगस्त 1949 में चिकित्सा विभाग में हुई। आपका विवाह 1950 में उदयपुर निवासी श्री गोविन्द लाल जी व्यास की सुपुत्री सुश्री प्रेमलता के साथ सम्पन्न हुआ। उनसे आपको दो पुत्रियां एवं एक पुत्र की प्राप्ति हुई। ज्येष्ठ पुत्री कु0 रेखा दबे का विवाह ग्राम दुगारी (जिला-बूंदी) निवासी श्री हरिहर जी के पुत्र अक्षय कुमार जी के साथ एवं कनिष्ठ पुत्री कु0 कल्पना देव का विवाह वाराणसी निवासी श्री सुरेन्द्रनाथ जी शास्त्री के पुत्र राजेन्द्र नाथ जी के साथ हुआ।

पुत्र श्री मनोज कुमार का विवाह बड़ी सादडी (जिला-चित्तौड़) निवासी श्री सुभाषचन्द्र जी दूबे की पुत्री सुश्री चंदा



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(राधा) के साथ सम्पन्न हुआ। अद्यः आप 1991 से हिन्दुस्तान जिंग की उदयपुर देबारी इकाई के रोस्टर विभाग में (सीनियर) पद पर कार्यरत है।

वर्ष 1951 में आपका स्थानान्तरण अलवर से उदयपुर हुआ व वहीं के स्थाई निवासी बन गए। बाल्यावस्था से युवावस्था तक आपका जीवन संघर्षपूर्ण रहा। वर्ष 1975 के आपातकाल में भूमिगत साथियों का सहयोग किया तथा कर्मचारी आन्दोलनों में दो बार जेल यात्रा हुई। आप सदैव अपने अधिकारियों एवं सहकर्मियों के स्नेह भाजन रहे। अप्रैल 1982 में रविन्द्र नाथ टैगोर आयुर्विज्ञान महाविद्यालय से अधीक्षक पद से सेवानिवृत होने के बाद तीन वर्ष तक विद्याभवन सोसायटी में तथा तत्पश्चात् 'स्वीडिस सरकार'' के आर्थिक सहयोग से संचालित ''स्वच्छ परियोजना'' में विदेशी विशेषज्ञों के साथ कार्य किया । बाद में सहस्त्रऔदीच्य समाज के साथ कार्य करते हुए प्रशस्ति पत्र प्राप्त किए।

आज ज्येष्ठ भ्राता प्रो0 वृजवल्लभ जी से चरैवेती चरैवेती की प्रेणना प्राप्त कर सामाजिक कार्य व सद्-साहित्य के अनुशीलन तथा लेखन कार्य में रत हूँ। स्मरण शक्ति अवश्य कुछ साथ छोड़ती जा रही है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# शाक्ताद्वैततत्त्वविमर्शः

प्रो. श्रीशिवजी-उपाध्यायः*

**शक्त्याऽन्वितं शिवमुपास्यमुपात्तशक्ति शाक्तं महः स्फुरति यत्परमार्थसत्यम् ।**
**अद्वैतभावगमितं महितं चिदात्मतत्त्वं तदभ्युदितमात्मनि चिन्तयेऽहम् ॥**

शाक्ताद्वैतं नाम शक्त्यभिन्नमद्वैतं तदात्मकं तत्त्वं तद्विमर्शश्चात्र प्रतन्यते । यच्च शक्त्यनुगृहीतं तद्रूपमुपास्यमानमाप्तशक्तिकं शैवं महस्तदनुस्यूतं शाक्तमद्वैतं द्वैतापेतमैकात्म्योपेतं परमार्थसत्यं चिदात्ममात्रपरिच्छिन्नं तदुद्भासते, तदाभासमात्रं विश्वमुद्भवति विकसति नश्यति च प्रत्यक्षमेव तल्लीलाक्षेत्रकुक्षीकृतमखिलं ब्रह्माण्डमुज्जृम्भते । तदेव शिवशक्त्योः सामरस्येन प्रतिष्ठितं शाक्ताद्वैततत्त्वं सवृत्तिकारिकोपन्यासपूर्वकं यथाप्रतिमानं विमृश्यते-

**शक्त्या यदागतं शाक्ताद्वैतं द्वैतभेदभाक्।**
**शक्त्यभिन्नमिदं तत्त्वं शाक्तमार्गे प्रतिष्ठितम् ॥1॥**

**शक्त्येति।** शक्यते सामर्थ्यमधिगम्यतेऽनयेति शक्तिः सर्वव्यापिका पराम्बा शिवेति व्यपदिश्यते, तया शक्यमानस्वरूपया शक्त्या यदागतं तत्सम्बन्धानुबन्धेन प्राप्तपदं शाक्तमद्वैतं द्वैतापेतं द्वैतभेदभाग् द्वैतनिष्ठभेदापगमेन ततो विभक्तं सत् शक्त्यभिन्नं शक्तितादात्म्यपरिक्लृप्तमिदं निर्दिश्यमानं विमर्शविषयीकृतं तत्त्वं तद्भावभूयिष्ठं शाक्तमार्गे शक्त्युपासकानां सम्प्रदाये प्रतिष्ठितं प्रतिष्ठामधिगतमस्तीति शेषः। सम्प्रदायश्च गुरुपरम्परोपनीतसमाम्नायः सिद्धान्तसिद्धसदध्वाख्यातः स्वीकर्तव्यस्तदनुयायिनः साम्प्रदायिकाः साधकाः शाक्ताश्चेति मन्यते । शाक्ताद्वैतशैवाद्वैतयोर्नाममात्रभेदः परिकल्प्यते वस्तुतस्तदुभयोर्भेदाभावादेकत्रैवाद्वैतमाने पर्यवसानाच्च परस्परमविरोधिता बोध्येति ।

सत्यपि शक्त्येकत्वे तद्भेदः परिकल्पनीयो भवतीत्युच्यते –

**तत्तद्व्यक्तिप्रभेदेन शक्तिभेदः प्रतन्यते ।**
**तेन चानन्त्यमायाति शक्तिरेषा समन्ततः ॥2॥**

**तत्तदिति ।** तत्तद्व्यक्तयो नामरूपजात्याकृतिभिन्ना वस्तुभेदख्याता असंख्यास्तासां प्रभेदेन मिथो दृश्यमानप्रकृष्टविशेषेण शक्तिभेदस्तत्तद्व्यक्तिनिष्ठः सोपाधिकःसन् प्रतन्यते विस्तार्यते शक्तिसमवेतशक्तपदपदार्थसम्बन्धानुरोधादिति भावः। तेन हेतुना एषा शक्तिः शक्त्यसम्बन्धावच्छिन्ना समन्ततः सार्वत्रिकप्रसारेण सर्वतोभावेन सर्वव्यापनेन चानन्त्यमनन्तभावं संख्यातीतमनवधिपदमायाति गच्छतीति। वस्तुतः स्वतन्त्रस्वभावा चितिरूपा शिवाख्या एकैव शक्तिविश्वोद्भूतिहेतुतया तत्तद्व्यक्तिवैशिष्ट्यविशकलिताऽऽनन्त्यमुपयातीति भावः – **''चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः'' ( प्रत्यभिज्ञाहृदयम् प्र0 सू0 )**

अपि च शक्तिरेव समन्विता जगन्मूलमित्यभिधीयते –

---

***प्रतिकुलपतिचरः सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालये, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**सृष्टेः प्राक्कालतः सैषा शक्तिरेव समन्विता।**
**त्रिजगन्मूलमाख्याता तन्निष्ठा लोककर्तृता ॥3॥**

**सृष्टेरिति ।** सृष्टेः सततसृज्यमानस्वरूपायाः प्रपञ्चात्मिकायाः प्रत्यक्षलक्ष्यमाणाकृतेः प्राक्कालत आरम्भसमयात् सर्गारम्भादिक्षणादेव सैषा सर्वासुप्रसिद्धा सर्वनिष्ठा सर्वाधिष्ठात्री शक्तिरेव परात्मिका शिवाख्या चिन्मात्रपरिच्छिन्ना स्वेतरव्यवच्छेदेन समन्विता समन्वयेन तत्तदनन्तव्यक्तवस्तुयोगेन परिगता । त्रिजगन्मूलं त्रयाणां जगतां हेतुः सृष्टिस्थितिलयैककारणमाख्यातोक्ता शाक्ततत्त्वविद्भिरिति भावः । यतश्च तन्निष्ठा शक्तिनिष्ठाकारणतानिरूपिता लोककर्तृता लोकनिष्ठाकार्यतानिरूपितकर्तृत्वावच्छिन्ना सैव शक्तिरित्यभिप्रायः, अथवा लोकनिष्ठाकार्यतानिरूपितकर्तृत्वावच्छिन्नशक्तिनिष्ठाकारणतेति तात्पर्यमवगन्तव्यम्, समग्राणां लोकानां शक्तेः सम्बन्धादेवोत्पद्यमानत्वात्तत्कार्यत्वेन भासमानत्वात्तत्र कारण एव लीयमानत्वाच्चेत्याशयो बोध्यः ।

सम्प्रति प्रकारान्तरेण जगद्गतं चैतन्यं शक्तिप्रवृत्तिपरमित्यनूद्यते-

**शक्त्या सम्भावितं सर्वं शक्नोत्यात्मप्रकाशने ।**
**तत्प्रवृत्तिगतं नूनं चैतन्यं जगदुम्भितम् ॥4॥**

**शक्त्येति ।** तादृशोक्तलक्षणया शक्यसम्बन्धमूलया शक्त्या सम्भावितं सम्भावनोपात्तं तत्सम्भावापन्नं वा सर्वं दृश्यादृश्यवस्तुजातं सदात्मप्रकाशने स्वरूपाभिव्यञ्जने तत्तज्जात्यादिप्रकारेण स्वप्रत्यायने शक्नोति शक्तिमाप्नोति शक्त्यनुग्राह्यविषयतां गच्छतीति भावः । किञ्च तत्प्रवृत्तिगतं तस्याःशक्तेरिच्छाविशेषनिष्ठं तदिच्छया प्रेरितं वा जगदुम्भितं सृष्टिनिष्ठितं तद्गतं तदाभासितं वा चैतन्यं चिदात्मशिवाख्यं तत्त्वं जृम्भमाणमस्तीति शेषः। तत्सम्भावितत्वेनैव सर्वस्य जगतश्चैतन्याभासितत्वात् स्वाभिव्यञ्जने शक्तत्वाच्चेत्याशयो वेद्यः । "शिवः शक्त्या युक्तः प्रभवति" इत्यभिप्रायेण शिवशक्तयोः सामरस्येन सज्जायमानं विश्वं विश्वगभिव्यनक्तीति भावः ।

इदानीं शाक्ताद्वैतं ब्रह्माद्वैतप्रतिष्ठामूलमित्युपपाद्यते –

**शक्त्यभिन्नतयोद्दिष्टं शाक्ताद्वैतमशेषतः ।**
**द्वैतातीततयोन्नीतब्रह्माद्वैते प्रतिष्ठते ॥5॥**

**शक्त्येति ।** शक्त्यभिन्नतया शक्तिभेदराहित्येन शक्त्यैकात्म्येन हेतुनोद्दिष्टमुद्देश्यतावच्छिन्नमुद्देश्यत्वकोटिगतं वा शाक्ताद्वैतं शक्त्यंभिन्नाद्वैततत्त्वं शक्तिसमवेतं शाक्तं च तदद्वैतमिति व्युत्पत्तेस्तदशेषतो निर्विशेषतया सम्पूर्णभावेन साकल्यसंयोगेन वा द्वैतातीततया द्वैतमतीत्य वर्तमानतया "द्वैताद् वै भयं भवती" त्युक्तेः द्वैतमतिरिच्य भेदाभावादद्वैततयेति भावः। उन्नीतमुन्नीयाधिगम्य कल्पितं यद् ब्रह्माद्वैतं परमात्मचिन्मात्रपरिच्छिन्नं तत्र प्रतिष्ठे प्रतिष्ठामधिगच्छति, शाक्ताद्वैतमेव ब्रह्माद्वैतमिति केवलमभिधानभेदेन पार्थक्यमुभयोर्वस्तुतस्त्वपार्थक्यमिति निगूढाभिप्रायो बोद्धव्यः। ब्रह्मणः सर्वव्यापकत्वाच्छक्तेश्च तन्मूलत्वेन तथात्वात्तयोर्नामकृतभेद एव प्रतीयते, न तु पारमार्थिको भेद इत्याशयः ।

अथ कथं शक्त्युन्मीलनं तद्हेतुत्वं च शक्तोद्भासन इत्युपपाद्यते –

**बाह्याभ्यन्तरसन्धानोन्मीलिता शक्तिरच्छला ।**
**शक्यमात्रमुरीकृत्य शक्तमुद्भासयत्यसौ ॥6॥**

**बाह्येति ।** बाह्यं बहिर्जातमाभ्यन्तरमन्तर्जातं यत्सन्धानं साधनाविष्करणम् , बाह्यानुसन्धानेन आभ्यन्तराधिकरणेन च



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विधीयमानं योगानुध्यानमित्यर्थः, तेनोन्मीलिता व्यक्तीकृता प्राकट्ययमुपनीता अच्छला निर्मला स्वाभाविकी निर्व्याजोपकृता च शक्तिः परार्थसामर्थ्यशीला सती शक्यमात्रं शक्यतावच्छिन्नं शक्यसम्बन्धानुबन्धि सकलं पदार्थप्रतिपन्नं दृश्यमानविश्वात्मकमुरीकृत्यात्मसात्कृत्य स्वानुग्राह्यविषयीकृत्य चासौ पराशक्तिः शक्तं शिवात्मभास्यमिदं भुवनत्रयमुद्भासयति प्रकाशयति प्रत्याययति प्रत्यक्षीकारयतीति भावः। तदेतच्छक्तिशक्यशक्तत्रयसम्बन्धानुरोधात्तत्त्वतः शक्तेरेव तत्तदाकारतयोद्भासनमित्यवबोध्यम् ।

प्रकारान्तरेण तदेव पुनर्द्रढयितुमित्युच्यते –

**शक्तियोग्यतया शक्यं तद्युक्तं शक्तमुच्यते ।**
**वस्तुतस्तत्त्रयं तत्रान्तर्गतं न पृथङ् मतम् ॥7॥**

**शक्तियोग्यतयेति ।** शक्तियोग्यतया शक्त्या योक्तुमर्हतया शक्त्यनुग्राह्यविषतयावच्छिन्नतया च शक्यं शक्यसम्बन्धानुबद्धं पदार्थजातं विश्वात्मकं भवतीति शेषः। तद्युक्तं शक्यसंयोगेन संगृहीतं शक्यवत्त्वावावच्छिन्नं च शक्तं पदाभिधानं शब्दात्मकं विश्वरूपं शिवतत्त्वानुस्यूतं सदित्युच्यते निरूप्यते शैवशाक्तसद्भिरिति शेषः। वस्तुतस्तत्त्वत्त्वानुशीलनेन तद् यथोक्तं त्रयं शक्तिः शक्यं शक्तमित्याख्यानभिन्नं तत्र शक्तौ परमशक्त्यात्मके तत्त्वेऽन्तर्गतं तद्विलासमात्रमाभासमानं प्रभाकराभिन्नतत्प्रकाशसदृशं न पृथङ्मतं न पार्थक्यमुपगतमभिमन्यते शक्तितत्त्वविदां नये केनचिदित्यभिप्रायः । एकैव शक्तिः शक्यशक्तोभयाकारेण प्रतीयत इत्याशयः ।

इदानीं कार्यार्थं तदभिव्यक्तिरित्युदीर्यते -

**कार्यार्थं तदभिव्यक्तिस्तत्तत्समाराधनोविचिता ।**
**जायते तेन जन्यात्मा शक्तिरेका महीयसी ॥8॥**

**कार्यार्थमिति ।** कार्यं जगत् तदर्थं तत्प्रयोजनोद्देश्यकं तदुत्पत्तिनाशविकासार्थमित्यर्थः। तदभिव्यक्तिस्तस्याः शक्तेः प्राकट्यमाविर्भावो वा तत्तदागमनिगमपुराणादिषूक्ता तत्समाराधनोचिता तस्याः शक्तेः सम्यगाराधनार्चनानुध्यानानुकूला भवतीति शेषः। 'देवानां कार्यसिध्यर्थमाविर्भवति सेति'' प्रसिद्धोक्तेः । तेन हेतुना महीयसी सर्वपूज्या सर्वसमाराध्या सर्वकाम्या सर्वव्यापिका सर्वप्रणम्या चैकाऽद्वैतभावापन्ना आद्यानवद्या शक्तिः पराम्बा परमेश्वरी जन्यात्मा जन्यरूपा स्वनिष्ठाजनकतानिरूपितंकार्यत्वावच्छिन्नजन्यतावतीत्येषा जायते प्रतिभासते प्रतीतिपदवीमवतरति लोकानामित्याशयो बोध्यः । ''एकैवानन्त्यमश्नुते'' इत्युक्तेश्चेति ।

तेन तत्र तद्दिव्यादिव्यादिनानाभेदाख्यानमिति निदर्श्यते-

**दिव्यादिव्यतया किं वा नित्यानित्यतयाप्यसौ।**
**नानाख्यानैश्च संख्यातायाऽनिर्वाच्यानन्तरूपिणी॥9॥**

**दिव्यादिव्यतयेति।** दिव्या दिवि भूतभवद्भविनो ये ते देवादय इत्यर्थः, अदिव्या तदितरे मर्त्यादयः, तद्भास्तया हेतुतया किं वा पक्षान्तरे नित्या अविनाशिनः दिक्कालादयोऽनित्याश्च घटादयो वस्तुरूपास्तद्भावस्तया हेतुतया चाप्यसौ शक्तिर्दिव्यादिव्यनित्यानित्यगततया नानाख्यानैर्नैकनामरूपादिभेदभिन्नव्यपदेशैश्च संख्याता संख्ययोद्भासिता गणनाकोटिङ्गता कृतातिशयप्रसारा तिष्ठतीति शेषः । वस्तुतस्त्वनिर्वाच्या निर्वक्तुमशक्या अनन्तरूपिणी अनवधिस्वरूपविस्तारिणी सैका शक्तिरिति भावः। अनिर्वाच्यत्वमस्याः सर्वव्यापकत्वेन सर्वनामरूपजात्यादिमत्त्वेन सविशेषमभिधातुमनर्हत्वमेवेति बोध्यम्, अनन्तरूपाया भगवत्याः शक्तेरनन्तरूपैः प्रकाशमानत्वादिति भावः।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयं च भेदस्तयोः शक्तिशक्तिमतोराध्यासिक इत्युच्यत-

**शक्तिशक्तिमतोर्मध्ये भेदस्त्वाध्यासिको मतः।**
**तत्त्वतोऽध्यवसाने तद्द्वयमैक्यं समश्नुते॥10॥**

**शक्तीति।** शक्तिशक्तिमतोः पराम्बापरमेश्वरयोस्तदुपलक्षणेन तद्भावभावितयोः स्त्रीपुंभावगतयोरात्मपरिच्छिन्नयोरन्ययोरयि दैवतयोर्ग्रहणमित्यवधेयम्। "तज्ज्ञात्वा तन्मयीभवेदित्युक्तेः" मध्येऽन्तरे जातावकाशे भिन्नव्यपदेशवशादिति भावः। भेदस्तु रूपादिविशेषः। त्विति अतत्वार्थंद्योतनार्थ बोध्यम्, आध्यासिक आरोप्यमाणः अतस्मिस्तद्बुध्यापादक आहार्यप्रत्ययात्मकश्च, न तु वास्तविक इत्याशयः। तत्त्वतः परमार्थतोऽन्तर्बोधतश्चाध्यवसाने साध्यवसायज्ञाने विनिश्चयने इदमित्थमित्याकारप्रतिभाने तद्द्वयं शक्तिशक्तिमद्युग्ममैकात्म्यप्रोतमभिन्नं सदैक्यमेकात्मभावं समश्नुते, समधिगच्छति सम्यगभिव्याप्य प्रतिपद्यते, एकमेव तत्त्वं शक्त्याख्यं द्विधा विभक्तं तादृशभेदभिन्नं पृथक्त्वं प्रतिभातीति तात्पर्यमवधेयम्। यथोक्तम्-

**या चैषा प्रतिभा तत्तत्पदार्थक्रमरुषिता।**
**अक्रमानन्तचिद्रूपः प्रमाता स महेश्वरः॥**
**मायाशक्त्या विभोः सैव भिन्नसंवेद्यगोचरा।**
**कथिता ज्ञानसंकल्पाध्यवसायादिनामभिः॥** (प्रत्यभिज्ञाहृदये 1 उ0 22 सू. व्याख्यान[7])

पुनश्च देवादिव्यक्तिभेदेन शक्तिभेदः प्रदर्श्यते-

**देवानां शक्तयो भिन्ना दुर्गाद्याः परिकीर्तिताः।**
**आसुर्यश्चासुराणां ता नराणां च तदात्मिकाः॥11॥**

**देवानामिति।** देवानां ब्रह्मविष्णुशिवादिदिव्यकलावताराणां द्योतनस्वभावानां शक्तयः शक्यमानाकारविभूतयो भिन्नः पृथग्भावापन्ना दुर्गाद्याः सरस्वती-लक्ष्मी-दुर्गा-प्रभृतयो द्योतमानाः परिकीर्तिताः परितः कीर्तिमधिगता लोकत्रयविश्रुताः सन्तीति शेषः। अथ चासुराणामासुरभावोपेतानां दैत्यादीनां ताः शक्तय आसुर्यो विध्वंसकारिण्यः स्वार्थानर्थविधायिन्यश्च भवन्तीति शेषः। तथा च नराणां मानवानां मर्त्यधर्मोपगतानां तदात्मिकास्तद्धर्मरूपा अनित्यस्वभावा नार्याकृतयश्च ताः शक्तयः सन्तीति बोध्यम्। एवमेव देवासुरनरेतराणां तत्तज्जीवानामपि तादृशस्वभावाः शक्तयो भवन्तीति प्राधान्यव्यपदेशेन स्वयमभ्यूह्यम्।

सम्प्रत्युपास्त्यादिभात्फलोदयो भवतीति निर्दिश्यते –

**उपास्त्युपासकोपास्यप्रभेदात्तत्फलोदयः।**
**यथोद्दिष्टं यथाभीष्टं शक्तिसाध्यानुरोधतः॥ 12॥**

**उपास्तीति।** उपास्तिरास्तिक्योपासना ध्यानासनस्मरणमन्त्रोच्चारणाद्यनेकसाधनैरनुष्ठीयमाना, उपासकः साधकः प्रमाता साधनादीक्षितस्तत्तत्साम्प्रदायिकसिद्धान्तानुगतश्च, उपास्य आराध्यविशेषः शक्त्याख्यस्तदनुगृहीतः शक्तिमान् परमेश्वरो वा तेषां त्रयाणामुपास्त्युपासकोपास्यानां प्रभेदादुद्रिक्तप्रकृष्टभेदोपगमात्तत्तद्विशेषाद्वा फलोदयः स्वाभीप्सितार्थप्राप्तिः पुरुषार्थाधिगमश्च यथोद्दिष्टं यथार्थोद्देश्यताकप्रवृत्तिपरं यथाभीष्टं यथार्थाभिलाषोपनिबद्धं यथा स्यात्तथा शक्तिसाध्यानुरोधतः स्वान्तर्निष्ठसामर्थ्यानुभावतः स्वेष्टदैवतपरात्मशक्तिसद्भावलक्ष्यानुगमाद्वा हेतोः सञ्जायत इत्यवधातव्यं भवति।

अयमाशयः – क्वचिदुपास्त्युपासकोपास्यगतःफलोदयस्तत्र तत्र तत्तद्भेदेन पर्यवसीयते, क्वचिच्च तत्त्रितयगतः स एक एव समुच्चीयते, तदुभयात्मकोऽपि पुरुषार्थलक्षणः फलोदयः शक्तिसाध्यताकोट्यालिङ्गतस्तदनुरोधादेव सम्भवतीति भावः। परात्मशक्त्यनुग्रहादेव शक्तिसाध्यफलोदयस्य सर्वत्र जायमानत्वादित्यकूतम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इदानीं तन्मयीभवनेन तादृशचिन्मयशक्तितत्त्वमुन्मीलितं भवतीति प्रतिपाद्यते –

**तन्मयीभवने भूम्ना तत्त्वमुद्दिश्य चिन्मयम् ।**
**शक्तिरुज्जृम्भते काचित्तादात्म्यप्रणिधानतः ।।13।।**

**तन्मयीति ।** तन्मयीभवने तादात्म्यप्रतिपत्तिक्रियायां तदाकारवृत्तिमधिगम्य तद्भावभावितान्तःकरणस्थितावित्यर्थः। भूम्ना त्रैकालिकव्याप्त्या भूतभविष्यद्वर्तमानकालव्यापनेन निरन्तरसातिशयप्रसृतप्रकारेण च चिन्मयं चिदात्मकं चैतन्यलक्षणं तत्त्वं परमार्थभावमुद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य तादात्म्यप्रणिधानतस्तदाकारवृत्यनुसान्धानात्मकध्याानानुविधानतः साधनाविशेषतो हेतोः काचिद्वाख्यातुमशक्या विलक्षणाऽनन्तप्रकाशस्वरूपा प्रतिभानमात्रगम्या वा शक्तिः परात्मिकोज्जृम्भते हृद्युन्मीलिता भवति स्वान्तरुन्मीलिता परिस्फुरतीति भावः ।

ततश्च त्रिपुटीलयात्पूर्णाद्वैतभावनोदय इत्युच्यते –

**तेन तत्र समीकाराज्जायते त्रिपुटीलयः ।**
**तदाकारतया भाने पूर्णमद्वैतभावनम् ।।14।।**

**तेनेति।** तेन पूर्वोक्तविलक्षणशक्त्युज्जृम्भणेन तादात्म्यप्रणिधानप्रतिपन्नेन चेतसा वा तत्र परावस्थायां समीकारात्साम्यापादनाद् वैषम्यापहारेण समकक्षकोट्यधिगमाच्च त्रिपुटीलयो ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदप्रहाणः प्रमातृप्रमेयप्रमाणप्रशमश्च जायते समुद्भवति, त्रिपुटी च त्र्याकारवृत्तिः साध्यसाधकसाधनास्वरूपाऽन्तर्बहिर्भावापन्ना सत्यैकात्म्ये चिरस्थैर्येण विलयं प्रयातीत्याशयो बोध्यः । अथ च तदाकारतया तत्त्वाकारवृत्तिपरत्वेन हेतुना भाने प्रकाशमयसंवित्साक्षात्कारे परिमुषितपरिमितप्रमातृभावे तन्मयोभवदात्मपरात्मबोधे पूर्णसर्वतोभावेन आदिमध्यान्तशून्याखण्डाकारेण अद्वैतभावनं द्वैतातीतपरमात्मशक्तिसंवलिताखण्डवृत्तिप्रकाशनं भवताति शेषः। तदाकाराकारिताखण्डवृत्युदयेनाखण्डशक्तिप्रतिभानेऽखण्डाद्वैतभावनोद्भूतिरित्यभिप्रायो बोध्यः ।

सा च पूर्णाद्वैतभावनावृत्तिस्तत्तद्रूपरसादिष्वपि क्षणात्मिकोद्भवतीति प्रदर्श्यते-

**रसे रूपे च गन्धे च स्पर्शादौ लौकिकेऽपि सा ।**
**भाव्यमाना भवेन्नूनं तत्र तत्र क्षणात्मिका ।। 15।।**

**रस इति।** रसे सर्वविधद्रवात्मके द्रव्ये रूपे तत्तदाकारे गन्धे सौरभादौ स्पर्शादौ त्वगादिजन्यस्पर्शनप्रत्यक्षे, आदिपदेन तत्तदिन्द्रियग्राह्यविषये लौकिकेऽपि लोकसम्बन्धिनि तद्भवे वाऽपि किमुतालौकिक इति भावः । तत्र तत्र सर्वत्र रसादिप्रत्यक्षे भाव्यमाना भावनाविषयीक्रियमाणा तत्त्वेनानुभूयमाना च साऽद्वैतप्रतिपत्तिः तदेकाकाराखण्डचित्तवृत्तिः क्षणात्मिका तत्समकालोदिताऽल्पपरमस्थायिनी भवेत् स्यात्तथा यत्नोन्मुखानां प्राणिनां कृत इत्याशयो वेद्यः । यदि च लौकिकेन्द्रियविषये प्रत्यक्षे तादृशाद्वैतभावनोदयो भवितुमर्हति, तदालौकिके शक्तिशक्तिमत्पराम्बापरमेश्वरयोः समाराधनानुसन्धानध्यानोपासनादिक्रमे तदाकाराखण्डद्वैतभावनेयं सुतरामुदीयादिति तत्र लौकिकप्रत्यक्षप्रमाणमवगन्तव्यमिति भावः ।

पुनश्च प्रकारान्तरेण तदेवोक्तं द्रढयितुमुच्यते –

**यत्र कुत्रापि तादात्म्यादानन्दीभवनोचितम् ।**
**चिदखण्डोदयेत्तत्र तदद्वैतप्रकाशनम् ।।16।।**

**यत्रेति ।** यत्र कुत्रापि यस्मिन् कस्मिन् वा स्थाने यस्यां कस्यामवस्थायां वा तादात्म्यात् तदात्मभावादभेदात्मतादात्म्यसम्बन्धाद् हेतोरित्यर्थः, आनन्दीभवनो चित्तमभूततद्भावापत्त्यनुकूलमनानन्द आनन्दः सम्पद्यमानः कृत आनन्दोभवनं तदुचित्तं तादृशं यथा



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्यात्तथा तत्र तदाकारभावनायमखण्डा निरवच्छिन्ना नैरन्तर्येण चिज्ज्ञानमात्मप्रतिभानं परात्मशक्तिबोधश्चेदुदयेदाविर्भवत्तदाऽद्वैतप्रकाशनं अखण्डाद्वयभावोन्मेषो भवति। पूर्वसाधनादिभिस्तादात्म्यापादनं तत आनन्दीभवनं पश्चाच्चिदखण्डोदयश्चरमस्थितावद्वैतप्रकाशनमिति तत्र सम्बन्धक्रमो बोध्यः।

किञ्च लौकिकालौकिकभावेन तयोर्भावनयोर्भेद इत्युच्यते -

**तत्क्षणस्थायिनी सैषा लौकिके नाम वस्तुनि ।**
**लोकोत्तरतयोद्भूता सुचिरं प्रतितिष्ठति ॥17॥**

**तत्क्षणेति ।** सैषा पूर्वोक्ताऽद्वैतभावना लौकिके लोकोद्भवे तदनुबन्धिनि वस्तुनि पदार्थे स्थूलनित्यघटादौ नामेति सम्भावनार्थकम्, तत्क्षणस्थायिनी तात्कालमात्रस्थिरस्वभावा क्षणिकेत्यर्थः, भवतीति शेषः । अपि च लोकोत्तरतया अलौकिकत्वेन लोकादूर्ध्वभावेन नित्यत्वेन परात्मशक्तिसम्बन्धानुविधायित्वेन चोद्भूता जातोद्भावा तज्जन्या वा सुचिरं कालातीतं सुदीर्घं प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठामाप्नोति परितः सुदृढपदा भवतीति भावः। एकत्र क्षणिकाऽपरत्र सुचिरस्थायिनोयमद्वैतमततत्त्वानुभाविनी भावना फलभेदेन ग्राह्याग्राह्यविषयतांमुपगच्छति, तत्र लौकिकी लौकिकफलानुबन्धिनी सापेक्षमुद्भूता सावधिसुखाभासा पार्यन्तिकवैरस्यपरिणामा भवति, तदितरा लोकोत्तरा सा परमाह्लादजनिका निरपेक्षभावोद्भाविनी निरवधिनिरतिशयसौख्यप्रदायिनी स्वरसपरिणामा तिष्ठतीत्याशयो बोध्यः ।

इदानीं समाधिक्रमेण तत्र प्रत्ययोपगम इत्यभिधीयते –

**धारणाध्यानसम्भूतसाधनैः परिकल्पितैः ।**
**सविकल्पकतापूर्वं समाधेस्तत्र सम्मता ॥18॥**

**धारणेति ।** धारणा धार्यमाणलक्षणा चित्तवृत्तिः,ध्यानं चिन्तनं स्मरणमनननिदिध्यासनसहकृतमेकान्तविधीयमानमनुष्ठानम्, तत्सम्भूतैः तद्द्वारेण जायमानैः साधनैः शमदमादिलक्षणैः परिकल्पितैर्बहिरन्तः सम्भावितैः सद्भिस्तत्र शाक्ताद्वैततत्त्वानुबोधात्मिकायां चिरन्तनभावनायां लक्ष्यीकृतपरात्मशक्तिसमाराधनायामित्यर्थः पूर्वं प्राक्कालिकसाधनावस्थायां समाधेर्योगलक्षणस्य चित्तवृत्तिनिरोधात्मकस्य च सविकल्पकता नामरूपजात्यादिविकल्पभावात्मकता विकल्पसहकृतमनोवृत्त्यवस्थानमित्यर्थः सम्मता सम्मत्याङ्गीकृता तद्विद्भिरिति शेषः। इयं युञ्जानयोगिनां सविकल्पकसमाधिगतावस्थोपदर्शितेति बोध्यम् ।

ततः क्रमेण समाध्यन्तरस्थितिरिति प्रदर्श्यते –

**ततोऽभ्यासक्रमेणान्तर्निर्विकल्पकतोदिता ।**
**शक्तिरात्माकृता शश्वद् भासते निर्विशेषतः ॥19॥**

**तत इति।** ततः सविकल्पकसमाधिस्थित्यनन्तरमभ्यासक्रमेण निरन्तरध्यानधारणासमाध्यनुष्ठानेन लक्ष्यीकृताराध्यशक्तिसमाराधनसततलग्नमानसेन अन्तर्मानसे निर्विकल्पकता नामजात्यादिविकल्पभावराहित्येन जायमाना स्वावस्थोदिताऽऽविर्भूता तत्र चात्मीकृता तादात्म्यापादिता साक्षात्कृता तन्मयीभावमधिगमिता च शक्तिः परात्मिका शश्वद् विष्वक्सदातनस्वभावन्नित्यशुद्धबुद्धलक्षणानुगमाद्वा शाश्वतप्रकाशमयसंविदाकाराद्वेतोर्निर्विशेषतो विगतस्वगतवैशिष्ट्यभावेन "सर्वविधभेदपरिहारेणाखण्डाकारेण भासते प्रतिभातीति भावः,दृश्यमानमिदं सर्व तन्मयं प्रतिभासते" इत्युक्तेः, "तद्भूमिकाः सर्वदर्शनस्थितयः"। (प्रत्यभिज्ञाहृदये,सू० ८)

किञ्च सविशेषविशेषभानादपि सैव शक्तिः स्फुरतीति प्रतिपाद्यते-



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**सविशेषाविशेषोद्यद्भानतोऽद्वैतदर्शनात् ।**
**शक्तिरेकैव सर्वत्र स्फुरन्ती प्रतिभासते ॥20॥**

**सविशेषेति** । विशेषैर्वैशिष्ट्यभावापन्नैर्नामजात्यादिकृतभेदलक्षणैरविशेषैस्तच्छून्यैः स्वात्मपर्यवसितस्वरूपैः सहितं सहकृतमुद्यदुदीयमानं यद् भानमवभासनं संवित्प्रकाशनं चैतन्यस्फुरणमित्यर्थः। ततस्तादृशविशिष्टभानतस्तदात्मकादद्वैतदर्शनाद् द्वैतातीतमानससाक्षात्काराद् एकान्तपरात्मबोधाध्यवसानजनितात्मदृष्टिसमुन्मीलनादित्यर्थः। सर्वत्र सर्वास्ववस्थासु देशकालस्थित्यादिपरिच्छिन्नाखिलदशासु स्फुरन्ती स्फुरदन्तः प्रभावस्वभावा सततस्फुरणलक्षणा चैकैवाद्वया नित्यानन्यप्रतिभात्मिका शक्तिः पराम्बा परमेश्वरो परमार्थसारसर्वस्वस्वरूपा सर्वाराध्या प्रतिभासते प्रतीतिपथमवतरतीति भावः । "स्फुरदन्तर्बहिश्चाद्या शक्तिरेका परात्मिका" इत्युक्तेः, सैव परात्मिकाऽऽद्या शक्तिरन्तर्बहिः स्फुरणशीला नानाकारप्रकारकं संसारं सृजतीत्याशयः ।

अद्वैतमार्गस्य मूलमिदं शाक्ताद्वैतमित्युच्यते –

**शाक्ताद्वैतमिदं मूलमद्वैतोद्भावनाध्वनः ।**
**शब्दार्थप्रत्ययोपात्तमभिव्यक्तिमितं पृथक् ॥ 21॥**

**शाक्तेति** । इदं प्रकृताख्यायमानं शाक्ताद्वैतं शक्तिसम्बन्धविषयीकृतद्वैतातीततत्त्वं प्रतिपाद्यमानं सदद्वैतोद्भावनाध्वनो द्वैतेतरसमग्रकल्पनामागस्य अद्वैतप्रस्थानप्रकल्पितसिद्धान्तपथस्य मूलमादिहेतुरस्तीति शेषः । तच्च शाक्ताद्वैतं शब्दार्थप्रत्ययोपात्तं पदपदार्थबोधापगतं स्ववाच्यवाचकसम्बन्धनिबद्धं वर्णसमुदायवस्तुप्रकारकप्रतीतिप्राप्तं च पृथक् स्वातन्त्र्येण स्वसम्प्रदायानुरोधेनाभिव्यक्तिमाविर्भूतिमितं गतमाभातीति शेषः। न खलु परात्मशक्त्यननुगृहीतमन्यत्किमप्यद्वैततत्त्वसिद्धान्ताविष्करणं भवितुं शक्नोतीत्याशयो बोध्यः ।

अथ च श्रोत्राकाशगतस्फोटात्मशब्दाद्वयवादोऽपि व्यक्तिरूपशक्तानुगृहीतो भवतीत्युच्यते—

**स्फुटदर्थतया स्फोटो ध्वनिर्वा शब्द उच्यते ।**
**श्रोत्राकाशगतः सोऽयं घटाद्यर्थप्रकाशकः ॥22॥**
**स्ववृत्तिश्रयणाद् व्यक्तीकर्तुमर्थानशेषतः ।**
**व्यक्तिरेकैव शक्तिः स्याच्छाब्दाद्वैतनयोदिता ॥ 23॥**

**स्फुटदिति** । स्फुटदर्थतया व्यज्यमानवाच्यवस्तुस्वभावतया घटाद्यर्थप्रकाशनसमर्थतयेत्यर्थः । स्फोटो व्याकरणस्मृतिप्रतिपादितः स्फुटीभवदर्थलक्षणो ध्वनिर्ध्वन्यमानाकृतिर्वेति पक्षान्तरद्योतनार्थम् , शब्द आकाशगुणः शब्दनात्मेत्युच्यतेऽभिधीयते शाब्दिकैरिति शेषः । सोऽयं तादृशलक्षणः शब्दः श्रोत्राकाशगतः कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नः घटाद्यर्थप्रकाशकस्तत्तद्घटपटाद्यर्थवस्तुव्यञ्जको भवतीति शेषः, स्वसम्बन्धावच्छिन्नार्थप्रत्यायकत्वं हि शब्दस्य सिद्धमिति भावः । अपि च स्ववृत्तिश्रयणाच्छब्दनिष्ठव्यापारसंयोगादशेषतः सम्पूर्णाकारतो न त्वंशतः कादाचित्कृतो वा अर्थान् घटाद्यर्थजातमात्रं व्यक्तीकर्तुं सङ्केतमुद्रया बोधयितुं शाब्दाद्वैतनयोदिता शाब्दब्रह्माद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादिता शक्तिर्वृत्तिलक्षणा एकाऽद्वितीया स्वेतराभावाद् व्यक्तिरेव व्यञ्जनात्मिका स्फोटोःनध्वननप्रत्यायनगमनाद्यनेकपर्याया प्रतितिष्ठतीति भावः ।

अयमाशयः-शब्दानुविद्धं निखिलं ज्ञानमाब्रह्मभुवनत्रयादवभासते । यथोक्तम्—

**"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।**
**अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते"॥**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्र शब्दः स्फुटदर्थबोधकत्वात् स्फुोटात्मा ध्वनिरित्युच्यते, तादृशवर्णपदवाक्यस्फोटात्मकस्य शब्दस्याद्वैतभावोऽभ्युपगतश्शब्दतत्त्वविद्भिरिति शाब्दाद्वैतवादः सिद्धान्तितस्तत्र चैकैव स्फोटात्मिका ध्वननात्मिका वा शक्तिरुपपद्यते, पुनर्वाच्यवाचकादिसम्बन्धानुविधानादभिधाद्या वृत्तयः स्फोटशक्तेरनित्योपाधिभूताः परिकल्पिताः पदार्थोपस्थाने सङ्केतग्रहमपेक्षमाणाः क्वचित्संयुक्ताः क्वचिच्च विप्रयुक्ता भवन्ति, संयोगादिभिः शब्दार्थानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतुत्वात्तासां वृत्तीनां स्खलद्रूपत्वेन शब्देन सह नित्यसम्बन्धाभावत्, तस्मात्स्फोटात्मनः शब्दस्यैकैव स्फोटात्मिका ध्वननात्मिका व्यक्तिरित्याख्या शक्तिर्नित्यसम्बन्धानुगता शाक्ताद्वैतमूलकशाब्दाद्वैतसिद्धान्तानुरोधात् सङ्गच्छत इत्यवधेयम् ।

पुनश्च प्रकारान्तरेणोक्तार्थं द्रढीकर्तुमिदमुच्यते—

**स्वोपाधेरौपसर्गाच्च वाच्यलक्ष्यार्थभेदतः ।**
**वाचकत्वाद्यनुस्यूता शब्दवृत्तिर्विभिद्यते ॥ 24॥**

**स्वोपाधेरिति** । स्वपदेन स्फोटात्मनः शब्दस्य स्फोटात्मिका ध्वनिलक्षणा शक्तिर्ग्राह्या । तदुपाधेरुपधीन्यमानस्वरूपादौपसर्गात् प्रादिप्रकृतिप्रत्ययादिलक्षणाद् वाच्यलक्ष्यार्थभेदतो वाच्यार्थलक्ष्यार्थगतनानासम्बन्धविशेषाद् वाचकत्वाद्यनुस्यूता वाचकत्वलक्षकत्वादिशब्दोपाधिसम्बन्धसङ्गता शब्दवृत्तिरभिधालक्षणाख्या विभिद्यते स्वार्थभेदेन भेदमुपगच्छतीति भावः । तत्र शब्दशक्तिरेका स्फोटात्मिका ध्वनिलक्षणा शब्दवृत्तयश्च विभिन्ना इत्याशयो बोध्यः ।

अतश्च शब्दाद्वैतशाक्ता द्वैतयोरविनाभावसम्बन्ध इत्युच्यते—

**शब्दाद्वैतमिदं प्रोक्तं शाब्दिकैर्यच्चिरन्तनैः ।**
**शक्त्यद्वैताविनाभावसम्बन्धात् तत्प्रतिष्ठते ॥25॥**

**शब्देति।** यदिदमुक्तलक्षणं प्रकृतोपात्तं शब्दाद्वैतं द्वैतेतरन्नित्यस्फोटात्मशब्दतत्त्वं सिद्धान्तसरणीकृतं चिरन्तनैर्भाष्यकृत्प्रभृतिभिः प्राक्तनैः शाब्दिकैः शब्दतत्त्वविद्भिर्बुधैः प्रोक्तं प्रकर्षेणोक्तिविषयीकृत्य प्रतिपादितं तत् साकल्येन यथोक्तं शक्ताद्वैताविनाभावसम्बन्धात् पूर्वोक्तद्वैतातीतशक्तितत्वेन सहाविनाभावित्वान्नित्यसंयोगाच्च प्रतिष्ठते प्रतिष्ठामाप्नोतीति भावः। न शाक्ता द्वैते विना शब्दाद्वैतं कल्पयितुं शक्यमित्याशयः।

अपि च वृत्त्यर्थबोधने भेदोऽयमौपर्गिको न शक्तिनिष्ठस्तष्ठतीति निगद्यते—

**औपसर्गकृतो भेदस्तत्तद्वृत्यर्थबोधने।**
**व्यक्त्यनुव्यक्त्यभिव्यक्तिक्रमेणात्रोपयुज्यते॥26॥**

**औपसर्गेति।** उपसर्गाः प्रादयो लक्षणया कल्पितत्वात्प्रकृतिप्रत्ययादयोऽपि ज्ञेयास्तद्भाव औपसर्ग उपसर्गसमूहो-पसर्गस्तत्कृतस्तद्धेतुकश्चभेदस्तत्तद्वृत्यर्थबोधने तादृशोक्ताभिधालक्षणादिजन्यार्थप्रतीतौ वाच्यार्थलक्ष्यार्थादिज्ञाने भवतीति शेषः। स चौपसर्गिको भेदो व्यक्त्यनुव्यक्त्यभिव्यक्तिक्रमेण-व्यक्तिः स्फोटात्मा ध्वनिर्व्यञ्जना अनुव्यक्तिः पश्चाद्भाविनी, सैव अनुव्यञ्जनेति अभिव्यक्तिरालङ्कारिकासम्मताऽभिव्यञ्जनेति क्रमेण-तत्तदर्थानुक्रमवशादत्र शब्दे शब्दार्थबोधविधावुपयुज्यते शब्दाद्वैतमतानुसारमुप-पत्तिमर्हतीति भावः एकैव स्फोटात्मिका व्यक्तिरौपसर्गिकभेदेन त्रैविध्यमासाद्य शाक्ताद्वैतं पुष्णातीति बोध्यम् ।

किञ्च रसाद्वैतवादेऽपि रत्यादिव्यक्तिः शक्तिरेवेत्युच्यते –

**रसाद्वैतेऽपि रत्यादिव्यक्तिः शक्तिरितीष्यते ।**
**प्रमातुश्च रसावस्था चिद्रूपा निर्वृतिः परा ॥27॥**

**रसाद्वैत इति** । "रसौ वै सः" इति श्रुत्युक्तेः स परात्मैव रसो रत्याद्यभिव्यक्तः शृङ्गारादिनवरूपतामादधातीति रसाद्वैतेऽपि निरस्तद्वैतभावात्मके रससिद्धान्ते अपिशब्दः पक्षस्थापनार्थमवबोध्यम् । तत्र रत्यादिव्यक्तिः स्थायिनां रत्यादिभावानां व्यक्तिर्व्यञ्जनं



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशनाद्यपरपर्यायं शक्तिः स्फोटात्मिका शब्दान्तर्नित्यसम्बन्धानुगतेतीष्यते तत्प्रकारतयाऽङ्गीक्रियते, शब्दाशक्त्यनुग्राह्यविषयत्वेन रत्यादिव्यक्तेर्जायमानत्वादिति भावः । अथ च प्रमातुः सचेतसो रसज्ञस्य रसावस्था रसाविष्टदशा रसोऽहमित्याकारकबोधस्थितिश्चिद्रूपा चिन्मयाकारा चिदभिन्ना तद्विशिष्टावापराकाष्ठाङ्गतोत्कृष्टाप्रकर्षमधिगतानिर्वृतिराह्लाद आनन्दसंविदात्मोल्लसदेकान्तरस्यमानसुखमस्तीति शेषः। तादृशानन्दमयरसात्मसंविदपि रत्याद्यभिव्यक्तिजन्या शब्दशक्त्यनुगृहीतरसव्यक्तिरित्यवबोध्यम्। तेन रसाद्वैतवादेऽपि शब्दाद्वैतवादहेतुकृतशक्त्यद्वैतवादः परम्परयोपस्करोतीति तात्पर्यमवधेयम् ।

सोऽयं रसात्मकः परात्मानुभवः शक्त्यभिव्यक्तिकृत इत्युच्यते-

**साधनैस्तैर्विभावाद्यैरभिव्यक्तो रसात्मकः ।**
**परात्मानुभवः साक्षाच्छक्त्यभिव्यक्तिमश्नुते ॥28॥**

**साधनैरिति**। साधनैर्लोकोक्तकारणादिसंज्ञकैरुपायैस्तैः प्रसिद्धैर्विभावाद्यैर्विभावानुभावव्यभिचारिभिर्विभाव्यमानानुभाव्यमानव्यभिचर्यमाणलक्षणैः सद्भिरभिव्यक्तोऽभितो व्यक्तिमागतोऽभिव्याप्याविभूतो रसात्मको रस्यमानाकार आह्लादमयः सहृदयैकसंवेद्यो लोकोत्तरः परात्मानुभवः परात्मसाक्षात्कारश्चिदात्मरसात्मबोध इत्यर्थः, साक्षात्प्रत्यक्षतया सहृदयमानसगोचरतयेति भावः, शक्त्यभिव्यक्तिं स्फोटात्मशब्दशक्त्याभिव्यञ्जनमश्नुते व्याप्नोतीति भावः । स्फोटात्मशब्दाशक्त्या रसाभिव्यक्तेरव्यवहितसम्बन्ध इत्याशयो बोध्यः ।

सम्प्रति शाक्ताद्वैताध्वसम्मतायाः परशक्तेः सर्वोपास्यत्वमित्युपसंहर्तुमिदमुच्यते –

**इत्थमेका परा शक्तिरनन्तार्थप्रकाशिका ।**
**समग्रोपासनोपास्या शाक्ताद्वैताध्वनि स्मृता ॥ 29॥**

**इत्थमिति** । इत्थमुक्तप्रकारेण यथाशास्त्रोक्तसिद्धान्तानुसारेण स्वोपज्ञविमर्शदर्शनानुरोधेन चानन्तार्थप्रकाशिका संम्पूर्णपदपदार्थप्रत्यायिका निरवधिनिरवच्छिन्नवस्तुव्यञ्जिका परमार्थबोधिकेत्यर्थः । समग्रोपासनोपास्या सर्वसम्प्रदायोपासनाविधिसमाराध्या सामग्र्येण साकल्येनोपासनया साधनाराधनाभावनाविधिनोपास्यमानस्वरूपा परा शक्तिः परात्मिका भगवती पूर्णाम्बा शाक्ताद्वैताध्वनि साम्प्रदायिकशाक्ताद्वैतमार्गे स्मृता स्मरणोदिता कल्पिता प्रतिष्ठितेति भावः । सत्यपि साम्प्रदायिकभेदे तस्याः परात्मिकायाः शक्तेः सर्वार्थसाधकत्वेन सर्वत्र शास्त्रान्तरेषूपादेयत्वादिति निगूढाशयो बोध्यः। सा0 सु0 -19

अन्ते परात्मशक्तिलीलामात्रमिदं विश्वमित्युपसंह्रियते-

**ततः सर्वं समुद्भूतं पुनस्तत्रैव लीयते ।**
**तल्लीलामात्रकं विश्वमाब्रह्मभुवनत्रयम् ॥ 30॥**

**तत इति** । ततः परात्मशक्तेः सकाशात् तदनुग्रहादित्यर्थः सर्वदृश्यादृश्यप्रपञ्चात्मकमिदं जगत्समुद्भूतं समन्तादुद्भवमधिगतं सम्यगुद्भवविकासमधिश्रितं पुनर्भूयोऽवसानसमये तत्रैव परात्मशक्तिपदे लीयते लयं गच्छति परात्मशक्त्यात्मकपरमकारणे लीयमानस्वरूपं तिष्ठतीत्यभिप्रायः। अतश्च तल्लीलामात्रकं तस्याः पराशक्तेरनायासक्रीडापरिकलितकलेवरं केवलमिदमाब्रह्मभुवनत्रयं सब्रह्मजगत्त्रितयपर्यन्तं विश्वं ब्रह्माण्डमुल्लसतीति भावः।

सेयं परात्मिका पराम्बा पूर्णा भगवती शक्तिः परमात्मानमनुगृह्णाति प्रीणाति चैतत् प्राणिमयं भुवनत्रयमित्यलं विस्तरेण ।

**विश्वात्मिका भगवती परशक्तिरेषा**
**निःशेषदेवमुनिमानववन्दनीया ।**
**एकैव सा किल समुद्यदनन्तरूपा**
**द्वैतेतराद्वयतुरीयपदं बिभर्ति ॥ इति ।**

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# ध्वन्यालोकलोचनेऽभिनवगुप्तस्वातन्त्र्यम्

**प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी***

**सत्काव्यतत्त्वनयवर्त्म चिरप्रसुप्तकल्प्यं मनस्सु परिपक्वधियां यदासीत्।।**

**तद्व्याकरोत् सहृदयोदयलाभहेतो रानन्दवर्धन इति प्रथिताभिधानः।। (ध्वन्या 4.19)**

**मुक्ताकणः शिवः स्वामी कविरानन्दवर्धनः।**

**प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।। (राजत. 5.34)**

अवन्तिवर्मणः स्थिति कालः 855–883 खिस्त्र वर्षं यावन्मन्यतेऽतो ध्वन्यालोकारस्य समयः 810–880 खिस्तवर्षं यावदासीत्। ध्वन्यालोकलोचनकृतः समयः सुधीभिः 950 खिस्तवर्षतः 1030 वर्षं यावन्मन्यते। तन्त्रालोकादिप्रशस्तानां प्रायशः पञ्चाशद्ग्रन्थानामभिनवभारतीलोचादिटीकानां च कर्ताऽभिनवगुप्तो महान् साधको नवतत्त्वोन्मीलनदक्षो दार्शनिकस्तलस्पर्शिशास्त्रज्ञाता विद्वानधीतिबोधाचरणप्रचारवानाचार्यश्चासीत्। विविधशास्त्रपारङ्गतेभ्य आचार्येभ्योऽयं शास्त्राणामध्ययनं कृतवान् तेषामुल्लेखोऽनेन स्वकृतिषु व्यधायि। अभिनवगुप्तशिष्यास्तं सारस्वतं मार्तण्डं मन्वाना आसन्–

**अभिनवगुरुसारस्वतमार्तण्डमरीचिपरिचयोन्निद्रे।**

**हृत्पुण्डरीककुहरे निवसति नियमेन मोक्षलक्ष्मीर्नः।।**

साहित्यशास्त्रक्षेत्रेऽप्ययमसाधारण आसीत्। ध्वन्यालोके तेन लोचननाम्नी टीका कृता प्रायशः सहस्रवर्षं यावद् ध्वनिसिद्धान्तस्य सम्यगवबोधनार्थमाचार्यस्याभिनवगुप्तस्यैवाद्वितीयं व्याख्यानं छात्रा अध्यापका विद्वांसश्च पठन्त आसन् किं लोचनं विनाऽलोक, इत्यभ्युक्तिस्तथ्यमिदं पुष्णाति।

साम्प्रतिकेषु प्रशुस्तकाव्यशास्त्राचार्येषु लोलार्कोपाह्वाचार्यचण्डिकाप्रसादशुक्लः सनातनोपाह्वश्चाचार्य–रेवाप्रसादो द्विवेदी लोचनं कर्तुरभिनवप्रस्थमतं सर्वथा न स्वीकुर्वाते। आचार्यशुक्लेन ध्वन्यालोकस्य दीपशिखा टीकाऽकारि। ग्रन्थोऽयंवाराणसीस्थविश्वविद्यालयप्रकाशनतः प्रकाशितः। ग्रन्थमिममवलोक्य मम प्रतिक्रियैवमासीत्।

**लोलार्कोहितदीपस्य शिखया गुप्तलोचनात्।**

**व्याख्यान्धत्वमपाकृत्य ध्वन्यालोकः प्रकाशितः।।**

मुखपृष्ठे शुक्लमहाभागेन ग्रन्थनामानन्तरं व्यङ्ग्यभङ्ग्या ध्वन्यालोकस्यैवैकाकारिका समुद्धृतानया कारिकया तस्य टीकायाः दीपशिखाया महत्त्वमारेखितकमिव भवति–

---

***जबलपुरस्थरानीदुर्गावतीविश्वविद्यालयस्य कृतकार्यसंस्कृताचार्याध्यक्षः**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवान् जनः।
तदुपायतया..........................................................

आचार्यो द्विवेदी सिद्धान्तदिशाऽलङ्कारप्रस्थानस्य साम्प्रतिकः पुनः प्रस्थापकपरमाचार्यो वरीवर्ति। काव्यालङ्कारकारिकादिग्रन्थमाध्यमेन तदलङ्काराग्रहः स्फुट एव। तथापि 'आचार्य आनन्दवर्धन' इति हिन्दीग्रन्थे आचार्यानन्दवर्धनस्य ध्वनिसिद्धान्तस्तटस्थतयानेन सम्यग् व्याख्यातः यत्र–तत्र लोचनकारमतं समीक्षितम्। शोधपत्रेऽस्मिन्ननयोराचार्ययोर्व्याख्यानालोके विमर्शः क्रियते। मम मते तु–

**काव्ये लोकोत्तराह्लादः परमात्मेव विद्यते।**
**रसध्वन्यादयः सन्ति जीवात्मानस्तदंशतः।**
**रसोऽलङ्काररीती च ध्वनिर्वक्रोक्तिरौचिती।**
**यान्ति लोकोत्तराह्लादमर्णवं सरितो यथा।।**

रसालङ्कारध्वनिरीतिवक्रोत्यौचित्यादीनां सम्मिश्ररूपेण स्थितिः प्रायशः काव्येषु भवति। तथाप्येकस्याह्लादकतत्त्वस्य तत्र प्राधान्यं प्रायो भवति। अतस्तान् तत्काव्यांशान् सहृदया यथास्थलं रसालङ्कारादिरूपेणानुभवन्ति। काव्यस्य काव्यपुरुषरूपेण मानवीकरणे तदाह्लादकतत्त्वानामात्म गुणाालंकारादिरूपेण स्थानं निर्धारितम्। वपुषि यथा पादस्य तथा शिरसोऽपि महत्त्वं तथैव काव्याह्लादकतत्त्वानां स्थितिः। मन्यतां नाम ध्वनेरलंकारस्य रसस्य वा महत्त्वं वस्तुत एते सर्वे काव्यप्रकारविशेषाः सन्ति।

आनन्दवर्धनस्य युगो धर्मदर्शनदृशा वैविध्यपूर्ण आसीत्। शंकराचार्यस्याद्वैतसिद्धान्तो लब्धप्रतिष्ठ आसीत्। अद्वैतसिद्धान्तः परमार्थिकरूपेण ब्रह्मण एकत्वं स्थापयन्नपि व्यवहारदृशा सगुणमपि स्वीकरोति। देवाराधनदिशा विष्णोरवतारेषु महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीत्यादिदेवीषु गणेशहनुमदादिषु चैकं प्रति परमश्रद्धां कुर्वाणा अपि सर्वान् देवान् सर्वाश्च देवीः प्रति कृतादरा भारतीया आसन् सन्ति च। यस्य देवस्य यस्या वा देव्या आराधनया यस्य कस्यचिद् भक्तस्य कल्याणमभवत् तस्य तस्या वा सर्वाधिकं महत्त्वं तद्भक्तेन प्रत्यपादि। यथा देवाराधने शरीरपरिसरादिशुद्धिः पूजनहवनादिप्रक्रिया प्रतिज्ञासङ्कल्पादिदिशा प्रचलति तथैव दर्शनेषु पंचमहाभूततन्मात्रादिषु साम्येऽपि विशिष्टतत्त्वस्वीकारे भेदो दरीदृश्यते। काव्यानुभूतावपि दर्शनदेवाराधनसदृशी स्थितिरवाप्यते। काव्येषु काव्यशास्त्रकाराः कस्यचिदेकस्य विशिष्टस्य तत्त्वस्य महत्त्वं स्वीकुर्वन्तोऽपि बहुधा व्याकृतस्य तत्त्वस्यानपेक्षितं निरूपणं न कुर्वन्ति। प्रस्थापनदिशैकस्मिन् प्रस्थाने जातश्रद्धास्तत्प्रस्थानस्य पुनः स्थापनाया प्रयत्नं कुर्वन्ति किन्तु तेऽन्यप्रस्थानानां स्थापितानि तत्त्वान्यपि स्वदृष्ट्या निरूपयन्ति। यथा रसतत्वे ध्वनितत्वे चास्थावन्तोऽपि मम्मटविश्वनाथपण्डितराजादयोरलंकारस्यापि भृशं निरूपणं कुर्वन्ति। अलंकारवादिनोऽपि रसादेर्महत्त्वं यथास्थलं स्वीकुर्वन्ति। यथा भामहः रसैश्च सकलैः पृथक् दण्डी–मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।

एवमेव काव्यविधानिरूपणे रसवादी विश्वनाथो महाकाव्यनाटकरससन्निवेशे यां व्यवस्थां करोति सा प्रशस्तकवीनां महाकाव्यनाटकादिषु क्वचिन्न सङ्गता। यथा रामायणस्यांगी रसः करुणो रामचरितमानसस्य च भक्तिरसः किन्तु विश्वनाथो वक्ति–शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते। उत्तररामचरितस्याङ्गी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रसः करुणः किन्तु स कथयति—एको रसो भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा। अत्र ध्वनिप्रस्थानपरमाचार्य आनन्दवर्धनः साधु वक्ति—

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङ्गी कर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता।। (3.21)

एवं काव्यतत्त्वादिनिरूपणे समेषामाचार्याणां महत्त्वमस्ति। यथा कस्मिश्चिद्देवे स्वकार्यसिद्धिवशादास्थावान् भक्तस्तन्महत्त्वं सर्वातिशायि प्रतिपादयति तथैव भिन्नरुचिर्हि लोक इति न्यायाद् यस्मिन् काव्याह्लादकत्त्वे विशेषमानन्दं सहृदयोऽनुभवति तस्य महताकण्ठेन महत्त्वं प्रतिपादयति। काव्येषु समेषां काव्याह्लादकतत्त्वानां सम्मिश्ररूपमेव निभाल्यते। मल्लिनाथ– राघवभट्टनारायणादिकाव्यटीकाकृतां व्याख्यानानि तथ्यमिदं पुष्णन्ति।

काव्याह्लादतत्त्वप्रतिपादने—आत्मशब्दं प्रयुञ्जाना वामनादयो रीतिरात्मा काव्यस्य, वाक्यं रसात्मकं काव्यम् विश्वनाथः रसादिश्चात्मा राजशेखरः काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति आनन्दवर्धनः काव्येऽलंकार एवात्मा सनातनो रेवाप्रसादद्विवेदी जीवितमिति शब्दतो वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्।

(कुन्तकः) औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितमिति (क्षेमेन्द्र)। अततीत्यात्मा निरन्तरं भ्रमणशील इति व्युत्पत्तिलभ्योऽर्थः। क्षेत्रज्ञः आत्मा, पुरुषः, पर्यायत्रयमेतच्छरीरदैवतस्य बोधकम्। यत्नदिशा आत्मा, धृतिः, बुद्धिः, स्वभावः, ब्रह्म वर्ष्म चेति पर्यायाः। काव्यतत्त्वनिरूपणसन्दर्भे तथ्यमिदं न विस्मर्तव्यं यत्काव्ये ह्युपमानरूपेणास्यात्मनो निरूपणम्। यथा शरीरे कश्चिदात्माऽविनाशी महत्त्वपूर्णो भवति न तथैव रसादौ, अत्र विभावादिजीवितावधिः स भवति महत्त्वावहः। श्रुतौ रसो वै सः रसह्येव लब्ध्वानन्दी भवति। किन्तु काव्ये साधर्म्यमुपमा भेद इति नियमादुपमेयोपमानयोर्भेदेऽपि तयोर्धर्मस्य साम्यं भवति। तदाकारिता तूभयत्र भवति किन्तु ब्रह्मास्वादे तदानन्दस्य नैरन्तर्यं भवति। 'एषा ब्राह्मी स्थितिस्तात! नैनां प्राप्य विमुह्यति' इति श्रीमद्भगवद्गीता वक्ति। वस्तुतोऽग्निपुराणकृता इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावलीत्यादिना वाक्यस्य पदावल्या वा परिभाषा कृता असीत् किन्तु दण्डिना तत्र शरीरं तावदिति संयोज्य शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावलीति व्यलेखि। ततो राजशेखरेण काव्यपुरुषस्याङ्गानि वर्णितानि तत्र शब्दार्थौ शरीरम्.....रसादिश्चात्मेत्यादि प्रत्यपादि। अतः काव्यस्य मानवीकरणं जातम्। समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। एते गुणा मानवगुणा इव काव्यगुणनामस्वपि प्रसिद्धाः सन्ति। काव्यवाचिनश्चैते गुणा वाक्यसम्बद्धा अपि—आनन्दधर्माः सन्ति, किन्तु विशेषरूपेण रीतिदिशा शिल्पदिशा महत्त्वपूर्णाः। मानवीकरणेन काव्यपुरुषात्मनो विचारः प्रचलितः। एतेन स्वानुभूतविशिष्टतत्त्वस्य ध्वन्यादिरूपेण नामकरणमभवत्। यथा—आत्मा वा अरे! द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्चेति प्रोक्तम् साधकेभ्यस्तथैव ध्वनिकृताऽपि प्रत्यपादि रससन्निवेशविषये। अत्र च पुनः पुनरुक्तमपि सारतयेदमुच्यते—

व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावेऽस्मिन् विविधे सम्भवत्यपि।
रसादिमय एकस्मिन् कविः स्यादवधानवान्।। (4.5)
वाच्यानां वाचकानाञ्च यदौचित्येन योजनम्।
रसादिविषयेणैतत्कर्म मुख्यं महाकवेः।। (3.32)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुख्या व्यापारविषया सुकवीनां रसादयः।
तेषां निबन्धने भाव्यं तैः सदैवाप्रमादिभिः।।

एवं ध्वनिप्रस्थानपरमाचार्यः सन्नपि रसस्य लोकोत्तराह्लादस्य/आनन्दस्य महत्त्वं महताकण्ठेन स्वीकरोत्यानन्दवर्धनः। काव्यरसो न ब्रह्मास्वादो, ब्रह्मास्वादसहोदर इति कथने ब्रह्मास्वाद प्रक्रियाया उपमामात्रम्। यतो हि ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति किन्तु काव्यसहृदयो लोकोत्तराह्लादेन सहोदात्तजीवनमूल्यानां लोकव्यवहाराणाञ्च प्रेरणां प्राप्नोति। रसानुभूते रसस्थितिरनिर्वचनीयख्यातिमाध्यमेन प्रथमनव्यमते स्फुटीकृता पण्डितराजेन जगन्नाथेन। काव्यात्मरूपेण कथितानि सर्वाणि तत्त्वानि लोकोत्तराह्लादप्रकारदिशाचार्यैः स्वीकृतानि। अत एव मया नव्यकाव्यतत्त्वमीमांसायां प्रत्यपादि–

रसोऽलंकाररीती च ध्वनिर्वक्रोक्तिरौचिती।
यान्ति लोकत्तराह्लादमर्णवं सरितो यथा।।

काव्ये यदा कारणकार्यसहकारिरूपा लोकस्थितिः तत्पात्रचित्रणे कविर्वर्णयति तदा सहृदयः स्वभावनावशात् तन्मयो भूत्वा स्वस्मिन् स्थितं रत्युत्साहादिकमनुभवति तदा रसाह्लादः शब्दार्थौ– उपमादिसन्निवेशप्रभावेण भावकानन्दं जनयतस्तदाऽलंकाराह्लादः यदा वर्ण्यविषयानुरूपेण शब्दार्थवाक्य योजनाशिल्पं समधिकं प्रभावकारि भवति तदा रीत्याह्लादः रीतिरात्मा काव्यस्य,, यदा वर्णनीयो विषयः सामान्यकोषीयशब्दार्थवाक्यादिगौणी कृत्याह्लादं जनयति तदाध्वन्याह्लादानुभूतिः।

सर्वसम्पत्परिस्पन्दसम्पाद्यं सरसात्मनाम्।
अलौकिकचमत्कारकारिकाव्यैकजीवितम्।।

इति दिशा यदा कविभणितिभङ्ग्या लोकात्तराह्लादोन्मेषो भवति तदा वक्रोक्तिः यदा लोकशास्त्रदिशा वर्णनीयविषयाणामुचितविन्यासेन लोकोत्तराह्लादो भवति तदौचित्यम्। औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। आचार्याणां काव्यविचारेऽपि कश्चिद् भेदो निभाल्यते। यथा–आनन्दवर्धनः तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्। इति वक्ति एतेन स काव्ये सहृदयदिशा विचारं प्रस्तौति, कुन्तकः–

वन्दे कवीन्द्रवक्त्रेन्दुलास्यमन्दिरनर्तकीम्।
कविव्यापारवक्रत्वं प्रकाराः सम्भवन्ति षट्।

इत्येवं वदति। एतेन कुन्तकः काव्योन्मेषदिशा विचारं करोति। तेन ग्रन्थस्य उन्मेषनाम्नाध्यायानां विभाजनं व्यधायि। एतेनानन्दवर्धनः सहृदये काव्यं श्रुत्वा पठित्वा वा यदुत्पद्यते तद्विचारयति। कण्ठतोऽपि स वक्ति–

सत्काव्यतत्त्वनयवर्त्म चिरप्रसुप्तकल्पं मनस्सु परिपक्वधियां यदासीत्।
तद्व्याकरोत् सहृदयोदयलाभहेतोरानन्दवर्धन इति प्रथिताभिधानः।।

उक्तविवेचनेन प्रतीयते यत् स्वदृष्ट्या काव्याह्लादकतत्त्वानामुन्मीलने काव्यशास्त्राचार्यैः प्रयासो व्यधायि। अत एतेन रसमयं ध्वनिमयं वक्रोक्तिमयमित्यादीनि तत्त्वानि काव्यस्य प्रकारदिशा निरूपितानि। लब्धमपि यत्तत्त्वं विमतिविषय आसीत्तस्य निरूपणमाचार्यैः कृतम्। यथोक्तमानन्दवर्धनेन–



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विमतिविषयो य आसीन् मनीषिणां सततमविदिततत्त्वः।
ध्वनिसंज्ञितः प्रकारः काव्यस्य व्यञ्जितः सोऽयम्।। (ध्वन्या 3.33)

आनन्दवर्धनः प्रतीयमानस्य व्यंजनायाश्च महत्त्वं स्वीकुर्वन् काव्यास्यात्मा ध्वनिरिति कथयन्नपि काव्यात्मेति व्यवस्थितं सहृदयश्लाघ्यमर्थं विभजन् वक्ति–

**योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।**
**वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।**

एतेनानन्दवर्धनमते वाच्यार्थोऽपि काव्यात्मा य उपमादिभिः (अलङ्कारादिभिः) प्रकारैर्बहुधा व्याकृतः। यः काव्यात्मा वाच्यः स तु प्राक्तनैर्भामहोद्भटादिभिः सम्यगुन्मीलितोऽनुन्मीलितस्य प्रतीयमानस्य ध्वन्यालोके निरूपणं करोति वाच्यस्यापि (पूर्वनिरूपितस्यापि) यथास्थलमुपयोगं करोति। वक्ति च–

**तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारैरुपमादिभिः।**
**बहुधा व्याकृतः सोऽन्यैः काव्यलक्ष्मविधायिभिः।।**
**ततो नेह प्रतन्यते, केवलमनूद्यते पुनर्यथोपयोगमिति। (ध्वन्या0 1.2, 3)**

एतेन सिद्धमिदं यत्काव्यस्य जीवातुभूतानि (आत्मतत्त्वानि) अनेकानि सन्ति तेषु एकं तत्त्वं ध्वनिसंज्ञितः प्रकारः काव्यस्य व्यञ्जितः सो व्यङ्ग्यप्राधान्ये हि ध्वनिः व्यंग्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञितकाव्यप्रकारः गुणभावे तु गुणीभूतव्यङ्ग्यता व्यंग्योऽर्थो ललनालावण्यप्रख्यो यः प्रतिपादितस्तस्य प्राधान्ये ध्वनिरित्युक्तम्। तदयमत्र संग्रहः–

**यस्मिन् रसो वा भावो तात्पर्येण प्रकाशते।**
**संवृत्याभिहितौ वस्तु यत्रालंकार एव वा।।**
**काव्याध्वनिध्वनिर्व्यङ्ग्यप्राधान्यैकनिबन्धनः।**
**सर्वत्र तत्र विषयी ज्ञेयः सहृदयैर्जनैः।।**
**ध्वनेरित्थं गुणीभूतव्यंग्यस्य च समाश्रयात्।**
**न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात्प्रतिभागुणः।।**

उक्तैरानन्वर्धनकथनैः प्रमाणितमेतद् यद्ध्वनिशब्दस्य प्रयोगः केवलं काव्यप्रकारविशेष इत्यर्थे तेनाकारि। ध्वनिप्रस्थानानुयायिना मम्मटेनापि काव्यप्रकाशे ध्वनिः काव्यप्रकार एवामानि–**इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः** तथा च सङ्कलनेन पुनरस्य ध्वनेस्त्रयो भेदा व्यङ्ग्यस्य त्रिरूपत्वात्। पण्डितराजेनापि ध्वनेः प्रयोगः स्वस्योत्तमोत्तमकाव्यस्य प्रकारार्थ एवाकारि चोक्तञ्च यद् रसादिव्यङ्ग्यभूत ध्वनेरात्मानः – अमुमेव च प्रभेदं ध्वनिमामनन्ति। एवं पंचात्मके ध्वनौ परमरमणीयतया रसध्वनेस्तदात्मा रसस्तावदभिधीयते इति। काव्ये ध्वनितत्त्वनामकरणे को हेतुरिति गदता ध्वनिकारेणोक्तम् प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानां ते श्रूयमाणेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेशो व्यंजकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः। अत्र कः काव्यत्वार्थदर्शी सूरिः? मन्ये भामह एव, अपोहवादस्य खण्डने भामहेन प्रोक्तं यत् यदि गोशब्दोच्चारणे गोशब्दस्य शक्तिरन्यगोभिन्नवस्तुनिराकृतौ कृतार्था तदा सास्नादिमतः प्राणिनस्ततश्च गोबुद्धेः गोज्ञानेऽथवा



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौरयमित्यादौ जाड्यमान्द्यप्रतीतयेऽपरो ध्वनिः कश्चिदन्वेष्टव्यः–

**यदि गौरित्ययं शब्दः कृतार्थोऽन्यनिराकृतौ।**
**जनको गवि गोबुद्धेर्मृग्यतामपरो ध्वनिः।**

सम्भवतो मृग्यतामपरो ध्वनिरिति ध्वनिकाराय प्रेरियति। केनचिदपि प्राक्तनैर्नव्यैश्चाचार्यैर्भामहस्येयं कारिका काव्यध्वनेः प्रेरणाया आधारभूतेति न व्यलेखि। अस्मन्मते तु यथा भामहस्य काव्यलंकारकारिकाः वक्रोक्तिसिद्धान्तप्रतिपादने कुन्तकस्य प्रेरणाधारास्तथैवेयं कारिका– आनन्दवर्धनस्य प्रेरणाधारा वरीवर्ति। कुन्तकस्य वक्रोक्तिप्रेरणायै–**वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृतिः। निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्। मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया यथा। सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते। यत्नोऽस्यां कवीनां कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।** नूनमेव काव्यशास्त्रभीष्मपितामहस्य भामहस्यैताः कारिका एव कुन्तकं वक्रोक्तिसिद्धान्तस्फुटीकरणाय प्रेरयन्ति। तथैव मृग्यतामपरो ध्वनिरिति पङ्क्तिरानन्दवर्धनं ध्वनिसिद्धान्तस्फुटीकरणाय प्रेरयति।

यतो हि गौरिति गोबुद्धेर्मृग्यतामपरो ध्वनिः इत्यनेन जाड्यमान्द्यप्रतीतिर्व्यञ्जनयैव भवति तथ्यमिदं स्फुटीभवति।

दीपशिखाटीकाकृता लोलार्कोपाह्वेनाचार्येण चण्डिकाप्रसादशुक्लेन ध्वन्यालोकस्य टीकाया भूमिकायां सप्तदशानुच्छेदैर्लोचनस्य स्वैरिताविषये स्वाभिप्रायो व्यलेखि। तन्मतमस्ति यदानन्दवर्धनस्य मूलतः प्रतिपादितं ध्वनिविषयकं मतं गंगाजलसमं पावनं निर्मलं प्रातःप्रकाशवद्बुद्धिवैशद्यकारकमासीत् किन्तु लोचनटीकाकृताऽभिनवगुप्तेन स्वोपनेत्रेण तद्दृष्ट्या दुरुहोऽकारि। आचार्यशुक्लस्य कथनं निभाल्यताम्–

जिस ध्वनि का आनन्दवर्धन ने उसके अज्ञात तत्त्वों की विमतिविषयता से उद्धार कर उसे सुप्रकाशित किया था– **विमतिविषयो य आसीत् मनीषिणां सततमविदितसतत्त्वः।**
**ध्वनिसंज्ञितः प्रकारः काव्यस्य व्यञ्जितः सोऽयम्।। (3.33)**

वह पुनः लोचन के कीचड़ में ऐसा उलझा कि सबके लिए दुरूह, भयावह एवं उद्वेगकारक हो गया। वस्तुतः बिना लोचन के स्वयं ध्वन्यालोक तो गंगाजल सा निर्मल एवं पावन तथा प्रभातकालीन प्रकाश की भाँति बुद्धिवैशद्यकारक है। पर लोचन का सूर्येन्दु संगम उसे अमाच्छन्न कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोचन ने आलोक का कुछ ऐसा दुरुपयोग किया कि स्वयं उसे अक्षिरोग हो गया। यहाँ कुछ विशिष्ट स्थल दिखाये जायेंगे जहाँ लोचन, आलोक को अपने चश्मे से देखता है।"

1. ध्वन्यालोकस्य प्रथमोद्योतस्य द्वितीयायाः कारिकायाः योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः इत्यादितः प्रारब्धायाः द्वादशकारिका– **तद्वत् सचेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम्।**
**बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते।।**

इति यावद् ध्वनेर्भूमिकाऽस्ति। अत्रादौ स्वयं ध्वनिकारो वक्ति तत्र ध्वनेरेव लक्षयितुमारब्धस्य भूमिकां रचयितुमिदमुच्यते– **योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।**
**वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्र प्रथमो भेदो वाच्यस्तु प्राक्तनैर्निरूपितोऽतस्तस्य निरूपणमकृत्वा प्रतीयमानार्थस्य निरूपणं ध्वनिकारः करोति। वाच्यात् प्रतीयमानोऽर्थोऽन्यत्कथं भवति, एतदर्थं प्रतीयमानं पुनरन्यदेवेत्यादि– द्वादशीं कारिकां यावत्तत्स्वरूपं प्रतिपादयति। एतासु कारिकासु स व्यंग्यार्थस्य सद्भावं प्रतिपादयति। अन्ततश्च कथयति–एवं वाच्यातिरेकिणो व्यंग्यार्थस्य सद्भावं प्रतिपाद्य प्रकृतमपयोजयन्नाह–

एतेन सुस्पष्टं यद्द्वादशीं कारिकां यावत् स व्यङ्गयार्थस्य सद्भावे प्रतिपादयन्नासीत्। अत्र ध्वनेर्लक्षणं न निरूपितमपि तु तस्य भूमिका रचिता किन्तु लोचनकारायात्र प्रतीयमानार्थस्वरूपमेव ध्वनिस्वरूपप्रतिपादनं दृश्यते। द्वितीयकारिकाया अवतरणिकायां स कथयति–ध्वनिस्वरूपे प्रतीयमानाख्ये निरूपितव्ये ततः पंचमकारिकायाः काव्यस्यात्मा स एवार्थः इत्यादि प्रारम्भेऽवतरणिकायां वक्ति–एवं प्रतीयमानं पुनरन्यदेव इतीयता ध्वनिस्वरूपं व्याख्यातम्। किन्त्वेतन्न ध्वनेः स्वरूपमपि तु व्यंग्यस्य प्रतीयमानस्य वा स्वरूपमेतद्ध्वनिकृताऽत्र प्रत्यपादि। ध्वनेः स्वरूपन्तु त्रयोदश्यां कारिकायां यत्रार्थः शब्दोवेत्यादिरूपेण लिखितायां न्यरूपि। त्रयोदश्याः कारिकायाः प्राक् ध्वनिकारेण कुत्रापि न प्रोक्तं यद् ध्वनिः प्रतीयमानोऽर्थः अथवा व्यंग्योऽर्थो ध्वनिः। किन्त्वभिनवगुप्तेन सहृदयश्लाघ्योऽर्थश्च स्वसमीकरणं निरमायि–यदि–काव्यस्यात्मा ध्वनिः सहृदयश्लाघ्योऽर्थश्च काव्यात्मा तदा सहृदयश्लाघ्योऽर्थो ध्वनिः। ध्वनिकारदिशा वाच्योऽपि काव्यात्मा सहृदयश्लाघ्यश्च। वस्तुतः काव्यात्मेति रूपेण व्यवस्थितो योऽर्थः स द्विविधः वाच्यः प्रतीयमानश्च यो वाच्यप्रतीयमानयोर्भेदस्तयोरेकस्य स्वरूपं बहुधा व्याकृतमतः प्रतीयमानस्य स्वरूपं प्रतिपादयति ध्वनिकारः द्वितीयातो द्वादशीं कारिकां यावत्। एवमेव दीपशिखाकृत आचार्यशुक्लस्य प्रथमानुच्छेदस्य सारः।

2. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।

प्रथमोद्योतस्य त्रयोदश्यामस्यां कारिकायां यत्रार्थः स्वं शब्दश्च स्वार्थं गौणीकृत्य प्रतीयमानार्थं प्राधान्येन व्यक्तीकुर्वतः स काव्यविशेषो ध्वनिः। इयं न काव्यसामान्यस्य परिभाषा। काव्यसामान्यं तु ध्वनिकारानुसारेण सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयम्–अथवा ललितोचितसन्निवेशचारु अथवा विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चचारु शब्दार्थरूपमेवास्ति। किन्त्वभिनवगुप्तेनास्यां परिभाषायां काव्यविशेषस्य अर्थः पंचविधोऽकारि वाच्य–वाचक–व्यञ्जना व्यंग्य–समुदायाः। इदमपि स स्वीकरोति यत्कारिकायां तु प्रधानतया काव्यस्वरूपसमुदाय एव ध्वनिः प्रोक्तः–

**कारिकायां तु प्राधान्येन समुदाय एव काव्यरूपो मुख्यतया ध्वनिरिति प्रतिपदितम्। (लोचने)**

शेषानां चतुर्णां कृते स्वकल्पनया ध्वनेर्व्युत्पत्तिः पञ्चधा लोचनकृताऽकारि किन्तु ध्वनिकृताऽत्रैवं व्यलेखि–वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेशो व्यञ्जकत्वसामान्याद् ध्वनिरित्युक्तः (ध्व0) किन्तु लोचनकृताऽस्य पदानि बलाद्विभज्य स्वपंचमुखिनो ध्वनेः समर्थनमभिकल्पितम्। वाच्यवाचकयोरवस्थितिस्त्व–त्रास्ति–एवं सम्मिश्रस्यार्थो व्यंग्यार्थो भविष्यतीति सम्मिश्रयते विभावानुभावसंवलनयेति व्यंग्योऽपि ध्वनिः ध्वन्यत इति कृत्वा (लो0) तथा च शब्दस्यार्थो व्यंजनाव्यापारो भविष्यति– शब्दनं शब्दव्यापारः न चासावमिधारूपोऽपित्वात्मभूतः सोऽपि ध्वननं ध्वनिः। (लो0)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यञ्जकत्वसाम्यादित्यस्यार्थस्तन्मते व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावो यः सर्वेषु पञ्चपक्षेषु समानतयाऽस्ति– व्यञ्जकत्वसाम्यादिति व्यंग्यव्यंजकभावः सर्वेषु पक्षेषु सामान्यरूपः साधारण इत्यर्थः। (लो0) एवं लोचनकारस्य स्वैरितापूर्णं व्याख्यानं तस्य शिल्पमभवदिति आचार्यशुक्लो वक्ति।

वाग्विकल्पानामानन्त्यादित्यत्र वाचोऽर्थं शब्दमर्थमभिधाव्यापारञ्च करोति लोचनकारः– वक्तीति वाक्, शब्द उच्यते इति वागर्थः उच्यतेऽनयेति वागभिधा–व्यापारः एवं प्रथमोद्योतस्य पंचदश्यां कारिकायामस्याम्–

**उक्तयन्तरेणाशक्यं यत् तच्चारुत्वं प्रकाशयन्।**
**शब्दो व्यञ्जकतां विभ्रद् ध्वन्युक्तेर्विषयी भवेत्।।**

प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थः लोचनकृता शब्द इति पंचस्वर्थेषु योज्यम्। आचार्यः शुक्लो वक्ति– ''सम्भवतः सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में शब्दों तथा वाक् इन दो शब्दों का ऐसा अर्थ नहीं किया गया है। काव्यश्लोकों का श्लेषादि अलंकारों की दृष्टि से इस प्रकार का अर्थ क्षम्य हो सकता है। किन्तु शास्त्रकारिका को इतना तोड़ना अपराध ही माना जायेगा।''

3. यत्रार्थः शब्दो वेत्यादिना ध्वनेः परिभाषां कृत्वा तस्य साधारणधर्मस्योल्लेखोऽकारि ध्वनिकृता। ततश्च ध्वनिविरोधिनामभाववादिनामुत्तरमदायि तेन। अस्याः कारिकाया वृत्तौ सोऽभाववादिनां पक्षत्रयं निरस्यति। परिकरश्लोकेषु सारतया वक्ति–

**व्यंग्यस्य यत्र प्राधान्यं वाच्यमात्रानुयायिनः।**
**समासोक्त्यादयस्तत्र वाच्यालङ्कृतयः स्फुटाः।।**
**व्यंग्यस्य प्रतिभामात्रे वाच्यार्थानुगमेऽपि वा।**
**न ध्वनिर्यत्र वा तस्य प्राधान्यं न प्रतीयते।।**
**तत्परावेव शब्दार्थौ यत्र व्यंग्यं प्रति स्थितौ।**
**ध्वनेः स एव विषयो मन्तव्यः सङ्करोज्झितः।।**

एवं ध्वनेरभाववादस्यानेनान्तर्भाववादप्रकारेण स्पष्टतः समासोक्त्यादिष्वलङ्कारेषु प्रतीयमानार्थस्य स्फुटसत्तां स्वीकृत्य तत्र ध्वनेरन्तर्भावः प्रोक्तः। तंदा प्रतीयमान एवं ध्वनिस्तर्हि तस्याभावः कथं वक्तुं शक्यते? वस्तुतो व्यङ्ग्यार्थस्य सत्ता न केवलं ध्वनिकारो मनुतेऽपितु भट्टोद्भटाद्यालङ्कारिका अपि मन्वते यथाऽनन्दवर्धनो कथयति– रूपकादिरलंङ्कारवर्गो यो याश्रितः स सर्वो गम्यमानत्वं बिभ्रद् भूम्ना प्रदर्शितः। (ध्व0 2.16) अन्यत्र वाच्यत्वेन प्रसिद्धो यो रूपकाद्यलङ्कारः सोऽन्यत्र प्रतीयमानतया बाहुल्येन प्रदर्शितस्तत्र भवद्भिर्भट्टोद्भटादिभिः। किन्त्वेते ध्वनिकाव्यस्य सत्तां न स्वीकुर्वते। अतश्चेद् व्यंग्यार्थ एव ध्वनिस्तदा कोऽप्यालङ्कारिकाचार्योऽभाववादी न भविष्यति। ध्वनिकारो ध्वनेरन्तर्भावस्य विरोधमतः करोति यतो हि सोऽङ्गी अलंकारादयस्तस्याङ्गानि। अङ्गी अवयवी ध्वनिर्व्यापकं क्षेत्रं बिभर्ति। चेदवयवोऽवयविरूपं मन्यतां तर्हि तस्य कश्चित् पृथक् प्रकारो भविष्यति–काव्यविशेषोऽङ्गी ध्वनिरिति कथितः। तस्य पुनरङ्गानि गुणा अलंकारा वृत्तयश्च। न चावयव एव पृथग्भूतोऽवयवीति प्रसिद्धः। अपृथग्भावे तु तदङ्गत्वं तस्य। न तु तत्त्वमेव। यत्रापि वा तत्त्वं तत्रापि ध्वनेर्महाविषत्वान्न तन्निष्ठत्वमेव। किन्तु लोचनकारोऽत्रापि काव्यस्यान्यालंकारादीनवयवानप्रधानान् मत्वा तान् ध्वनिं न मनुते, किन्तु प्रतीयमानरूपमवयवं प्रधानमवयवं



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वीकृत्य ध्वनिं स्वीकरोति–तत्समुदायिमध्ये च प्रतीयमानमप्यस्ति न च तदलङ्कार‌रूपं प्रधानत्वादेव। यत्त्वलङ्काररूपं तदप्रधानत्वान्न ध्वनिः। अस्मिन् व्याख्याने ध्वन्यालोकमतं भिन्नं लोचनमतं च भिन्नम्।

4. अभाववादस्य समाधानं कृत्वाऽऽनन्दवर्धनो लक्षणाश्रितमभिधाश्रितं च व्यंजनाव्यापारदिशा ध्वनिं द्विधा विभजते–तदेवं ध्वनेस्तावदभाववादिनः प्रत्युक्ताः। अस्ति ध्वनिः। स चासावविक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन परवर्तिनो मम्मटादयोऽपि ध्वनेरेतावेव द्वौ भेदौ कृतवन्तः सन्ति। किन्तु लोचनकारो ध्वनेः पंचार्थान् कृतवानतः पंचधाऽपि ध्वनिशब्दार्थे येन यत्र यतो यस्य यस्मै इति बहुब्रीह्यार्थाश्रयेण यथोचितं सामान्याधिकरण्यं योज्यम्। अत्यन्तद्रविणप्राणायामेनापि लोचनेन तत्त्वतो ध्वन्यालोको नाधिगतः। ध्वनिकृता प्रथमोद्योतीयायां चतुर्थ्यां कारिकायां वृत्तौ प्रतीयमानार्थस्य प्रकारत्रयं प्रत्यपादि वस्त्वलङ्काररसादिरूपेण सहार्थो वाच्यसामार्थ्याक्षिप्तं वस्तुमात्रमलङ्काररसादयश्चेत्यनेकप्रभेदप्रभिन्नो दर्शयिष्ये। किन्तु लोचनकारदिशा नैते प्रतीयमानस्य भेदा अपि तु ध्वनेर्भेदाः। ध्वनेर्लक्षणं तु त्रयोदश्यां यत्रार्थः शब्दो वेत्यादिकारिकायां कृतम् आनन्दवर्धनेनातस्तद्भेदाः ततः प्राक् कथं करिष्यन्ते। अत्र चतुर्थ्यां कारिकायां तु ध्वनिकारः प्रतीयमानार्थस्यैव भेदान् प्रतिपादयति न तु ध्वनेः। अत्र लोचनकारस्य समक्षं समस्या समजनि यत् पूर्वप्रतिपादितास्त्रयो भेदाः सम्प्रति च प्रतिपादतौ द्वौ भेदौ कथं सङ्गतौ भवेताम्? तद् समादधता व्यलेखि– अनेन हि नामद्वयेन ध्वननात्मनि व्यापारे प्रतिपत्तिगतायाः प्रयोक्त्रभिप्रायरूपायाश्च विवक्षायाः सहकारित्वमुक्तमिति ध्वनिस्वरूपमेव नामभ्यामेव प्रोज्जीवितम् (लो0) यद्यपि अत्र द्वयोर्भेदयोः प्रयोजनं स्वयं ध्वनिकृता प्रत्यपादि–व्यंजकत्वं हि क्वचिद् वाचकत्वाश्रयेण व्यवतिष्ठते यथा विवक्षितान्यपरवाच्ये ध्वनौ क्वचित्तु गुणवृत्याश्रयेण यथा अविवक्षितवाच्ये ध्वनौ। तदुभयाश्रयत्वप्रतिपादनायैव च ध्वनेः प्रथमानन्तरं द्वौ भेदावुपन्यस्तौ।

5. अभाववादं निराकृत्यानन्दवर्धनेन ध्वनिविषये भाक्तवादिनामुत्तरमदायि। ध्वनिकारमतं यद् यस्मिन् व्यङ्ग्यार्थः प्राधान्येन व्यक्तो भवति स ध्वनिकाव्यविशेषः। किन्तु लक्षणा/भक्ति/गुणवृत्तिर्व्यापाररूपा यत्रान्यार्थोऽन्यस्मिन्नर्थे आरोपमात्रम्। अतः स वक्ति वाच्यव्यतिरिक्तस्यार्थस्य वाच्यवाचकाभ्यां तात्पर्येण प्रकाशनं यत्र व्यङ्ग्यप्राधान्ये स ध्वनिः। उपचारमात्रं तु भक्तिः। अत्यन्तं विशकलितयोः पदार्थयोः सादृश्यातिशयमहिम्ना भेदप्रतीतिस्थगनमात्रमुपचारः। लोचनकार उक्तप्रकारो ध्वनिः इत्यस्य व्याख्यानमेवं करोति–उक्त प्रकारः शब्देऽर्थे व्यापारे व्यङ्ग्ये समुदाये च। आनन्दवर्धनस्त्रयोदश्यां कारिकायां ध्वनिकाव्यं प्रतिपादयति किन्तु लोचनकारोऽत्र स्वमनःकल्पितेषु पंचार्थेषु नियोजियति। ध्वनिकारो वक्ति यद् या चारुताऽन्यवचनेन न प्रतिपादितुं शक्यते। तां प्रकाशयन् व्यंजकः शब्दो ध्वनिरित्युच्यते–

**उक्त्यन्तरेण शक्यं यत्तच्चारुत्वं प्रकाशयन्।**
**शब्दो व्यंजकताबिभ्रद् ध्वन्युक्तेर्विषयी भवेत्।।**

किन्तु लोचनकारेणोक्तिशब्दस्य व्यञ्जनाव्यापारोऽर्थोऽकारि उक्त्यन्तरेण ध्वन्यतिरिक्तेन स्फुटेन व्यापारविशेषेण (लो0) ततश्च तेन शब्द इति शब्दात्पंचार्था निःसरिताः शब्द इति पंचस्वर्थेषु योज्यम्। (लो0)

**एतादृशोऽर्थो ध्वनिकारमतं नानुवदति।**
**वाचकत्वाश्रयेणैव गुणवृत्तिर्व्यवस्थिता।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यंजकत्वैकमूलस्य ध्वेनः स्याल्लक्षणं कथम्।।

अत्र लोचनकारो व्यंजकत्वैकमूलस्य ध्वनेर्व्यञ्जनात्मन इति वक्ति किन्त्त्वेवं कृते सति व्यंजकत्वैकमूलस्य विशेषणोऽयं तेन व्यंजनात्मना ध्वनिना सह कथं सङ्गतो भविष्यति।

असंलक्ष्ययक्रमोद्योतः क्रमेण द्योतितः परः।
विवक्षिताभिधेयस्य ध्वनेरात्मा द्विधा मतः।।

मुख्यतया प्रकाशमानो व्यङ्ग्योऽर्थो स च वाच्यर्थापेक्षया कश्चिदलक्ष्यक्रमतया प्रकाशते कश्चित् क्रमेणेति द्विधा मतः।। (ध्व0 2.2) अत्र लोचनकारेण ध्वनेरात्मा इत्यत्र प्रयुक्तस्यात्मेति शब्दस्य स्वभावोऽर्थो व्यधायि, रसादिरूपोऽर्थः ध्वनेरलक्ष्यक्रमरूपः स्वभावोऽमानि आत्मशब्दः स्वभाववचनः प्रकारमाह, तेन रसादिरूपो योऽर्थः स ध्वनेरक्रमो नाम भेदः। (लो0)

यदि ध्वनिकारमते व्यङ्ग्यार्थ एव ध्वनिरूपेणेष्टो भवेच्चेत् तंदा विवक्षिताऽभिधेयो ध्वनिः सोऽपि द्विधा मतः इत्येवं कथनमुचितमासीत्। ध्वनेरात्मेत्यत्र सम्बन्धषष्ठ्या काऽवश्यतासीत्?

7. रसादिरर्थो हि सहैव वाच्येनावभासते। स चाङ्गित्वेनावभासमानो ध्वनेरात्मा। किन्त्वत्रानुवदन् लोचनकारो वक्ति–रसादिरर्थोऽङ्गित्वेन भासमानोऽसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य ध्वनेः प्रकार इति। (लो0)

8. द्वितीयोद्योते ध्वनिकारो महत्त्वपूर्णं तथ्यं सरलरूपेण प्रस्तौति यत्र वाच्यार्थो व्यङ्ग्यपरो व्यङ्ग्यप्रधानरूपो वा व्यवस्थितस्तत्र प्राधान्येन यो व्यङ्ग्यो व्यक्तो भवति तन्नाम्नैव ध्वनिकाव्यस्य नामकरणं भवति यथा–

प्राप्तश्रीरेष कस्मात्पुनरपि मयि तं मन्थखेदं विदध्या।
निद्रामप्यस्य पूर्वामनलसमनसो नैव सम्भावयामि।।
सेतुं बध्नाति भूयः किमति च सकलद्वीपनाथानुयात।
स्त्वय्यायाते वितर्कानिति दधत इवाभाति कम्पः पयोधेः।।

इतः प्राक् ध्वनिकारो कथयति– यत्र तु व्यङ्ग्यपरत्वेनैव वाचस्य व्यवस्थानं तत्र व्यङ्ग्यमुखेनैव व्यपदेशो युक्तः। कथनमिदं महत्त्वपूर्णं स्वीकृत्य वस्तुध्वनिः अलङ्कारध्वनिः रसध्वनिरित्यादीनां शब्दानां प्रयोगस्तेन व्यधायि। उक्ते पद्ये रूपकध्वनिरस्ति। किन्तु व्यङ्ग्यमेव ध्वनिरिति गदतांकृते रूपकमेव ध्वनिः व्यङ्ग्यम् अर्थोऽयं भविष्यति।

9. द्वितीयोद्योते ध्वनिकारो निष्कर्षतया कथयति–

सर्वेष्वेव प्रभेदेषु स्फुटत्वेनावभासनम्।
यद् व्यङ्ग्याङ्गीभूतस्य तत्पूर्णं ध्वनिलक्षणम्।।

अत्रावभासनमित्यस्यार्थं लोचनकारोऽवभासमानं करोति। एवं कृते सति व्यङ्ग्यस्याङ्गिभूतस्यानयोः पदयोरन्वयो न सङ्गतो भवति। स वक्ति अवभासनमिति भावानयने द्रव्यानयनमिति न्यायादवभासमानं व्यंग्यम्। ध्वनिलक्षणं ध्वनेः स्वरूपं पूर्णं पूर्णध्वनिस्वरूपनिवेदकत्वात्। अथवा, ज्ञानमेव ध्वनिलक्षणम् लक्षणस्य ज्ञानपरिच्छेदकत्वात्। अनेन व्याख्यानेन लोचनकारेण सरलोऽर्थो जटिलोऽकारि।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

10. द्वितीयोद्योते ध्वनिकारो ध्वनिस्वरूपं भेदाँश्च व्यङ्ग्यदिशा प्रतिपादयति। व्यञ्जकदिशा तृतीयोद्योते सन्दर्भं सूचयन् वक्ति—एवं व्यङ्ग्यमुखेनैव ध्वनेः प्रदर्शिते सप्रभेदे स्वरूपे व्यंजकमुखेनैतत्प्रकाश्यते। (ध्व.)

एतेन स्फुटमिदं यद्द्वितीयोद्योतेऽविवक्षितवाच्यादिभेदे वस्त्वलङ्काररसादिप्रकाराणां स्थितिः कस्मिन् भेदे, कीदृशी भवति येन तत्काव्यं ध्वनिरिति कथ्यते कदा च न कथ्यत इत्यादेः सूक्ष्मं वर्णनं कृतम्। किन्त्वत्राभिनवगुप्तोऽस्मिन् सन्दर्भे कथयति— यद्यप्यर्थो व्यंजकस्तथापि व्यङ्ग्यतायोग्योऽप्यसौ भवतीति, शब्दस्तु न कदाचिद् व्यङ्ग्यं अपितु व्यंजक एवेति प्रकाशितोऽप्यधुना शुद्धव्यंजकमुखेन। तथा हि व्यंग्यमुखप्रेक्षितया विना पदं वाक्यं वर्णाः पदभागः सङ्घटना महावाक्यमिति स्वरूप एव व्यंजकानां भेदः, न चैषामर्थवत्कदाचिदपि व्यङ्ग्यता सम्भवतीति व्यंजकैकनियतं स्वरूपं यत्तन्मुखेन भेदः प्रकाश्यत इति तात्पर्यम्। (लो.)

अत्र व्यङ्ग्यमुखेनार्थाद् वस्त्वलङ्काररसादिरूपव्यङ्ग्यार्थदिशेति अयमर्थो लोचनकारसम्मतो नास्ति। यतो हि व्यङ्ग्यस्य त्रिधा भेदो वृत्तिकृताऽकारि तथा चात्र व्यंजकभेदनिरूपणं कारिकायां करिष्यमाणं विद्यते। उभौ पृथक् पृथगतः कर्तृभेदान्न सङ्गतिः। परन्तु द्वितीयोद्योतकारिका महता कण्ठेन वस्त्वलङ्काररसादीनां व्यङ्ग्यदिशा ध्वनिभेदानां तत्स्वरूपाणाञ्च वर्णनं तन्वते। अत यो चन्द्रिकाकार एवमेव व्याख्यानं करोति किन्त्वभिनवगुप्तस्यात्र दुराग्रहो वरीवर्ति, स चैवं वक्ति—

"यस्तु व्याचष्टे व्यङ्ग्यानां वस्त्वलङ्काररसानां मुखेनेति स एव प्रष्टव्य एतावत्त्रिभेदत्वं न कारिकाकारेण कृतम्। वृत्तिकारेण तु दर्शितम्। न चेदानीं वृत्तिकारो भेदप्रकटनं करोति। ततश्चेदं कृतमिति क्रियत इति कर्तृभेदे का सङ्गति।"(लो.) कारिकाकारवृत्तिकारभेदस्वीकृतौ तु वृत्त व्यक्ता बहव्योऽवधारणा असङ्गता भविष्यन्ति।

11. तृतीयोद्योतस्य प्रथमकारिकाया—अनुरणनरूपव्यङ्ग्यस्य ध्वनेः इत्यंशस्य व्याख्यानं कुर्वन्नभिनवगुप्तो वदति—अनुरणनेन रूपं रूपणसादृश्यं यस्य तादृशव्यग्यं यत् तस्येत्यर्थः। चेदत्र ध्वनेरर्थो व्यङ्ग्यमभविष्यत्तदाऽस्मिन्नंशे व्यङ्ग्यपदं कथं लिखितम्? अनुरणनरूपस्य ध्वनेरिति कथनेनैव तस्य बोधो भवितुमर्हति। आचार्यशुक्लो गदति—"वास्तव में यहाँ सीधा बहुब्रीहि ध्वनिकाव्यपरक अभिप्रेत है"— अनुरणनरूपं व्यङ्ग्यं यत्र तस्य ध्वनेः काव्यस्येत्यर्थः।

12. ध्वनिकारः शङ्कते यद् ध्वनिस्तु काव्यविशेषस्तर्हि पदरूपेण कथं प्रकाशते?

ननु ध्वनिः काव्यविशेष इत्युक्तं तत्कथं तस्य पदप्रकाशता? (ध्व.) किन्तु लोचनकृतः पक्षे नेयं शङ्का संभाव्यते। अतः स कथयति— इयं शङ्का केवलमेकस्मिन् पक्षे भवति यदा ध्वनिः समुदायरूपो मन्यताम्।

समुदाय एव ध्वनिरिति पक्षे चोद्यमेतत्। (लो.) ध्वनिकारः शङ्कामिमां स्वयं समादधाति— काव्यानां शरीराणामिव संस्थानविशेषावच्छिन्ना समुदायसाध्यापि चारुत्वप्रतीतिरन्वयव्यतिरेकाभ्यां भागेषु कल्प्यत इति पदानामपि व्यंजकत्वमुखेन व्यवस्थितो ध्वनिव्यवहारो न विरोधी। (ध्व.)

13. तृतीयोद्योते विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनेः प्रबन्धरूपो भेदोऽलक्ष्यक्रमरूपस्य रसादेर्व्यञ्जको भवति। एतदर्थमानन्दवर्धनो वदति—



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुस्वानोपमात्माऽपि प्रभेदो य उदाहृतः।
ध्वनेरस्य प्रबन्धेषु भासते साऽपि केषुचित्।।

अस्य विवक्षितान्यपरवाच्यस्य ध्वनेनुरणनरूपव्यङ्ग्योऽपि यः प्रभेद उदाहृतो द्विप्रकारः सोऽपि प्रबन्धेषु केषुचिद् द्योतते। तद् यथा गृद्धगोमायुसंवादादौ महाभारते।

अभिनवाय असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यप्रसङ्गोयं संलक्ष्यक्रमव्यङ्योल्लेखोऽसहनीयः अतः कथयति न केवलं प्रबन्धेन साक्षाद् व्यङ्ग्यो रसो यावत्पारम्पर्येणापीति दर्शयितुमुपक्रमते किञ्चेति शब्दशक्तिमूलोऽर्थ–शक्तिमूलश्च यो ध्वनेः प्रभेद उदाहृत स केषुचित् प्रबन्धेषु निमित्तभूतेषु व्यंजकेषु सत्सु व्यङ्ग्यतया स्थितः सन्। अस्येति रसादिध्वनेः प्रकृतस्य भासते व्यञ्जकतयेति शेषः। एतदुक्तं भवति प्रबन्धेन कदाचिदनुरणनरूपव्यङ्ग्यो ध्वनिः साक्षाद् व्यज्यते स तु रसादिध्वनौ पर्यवस्यतीति। (लो.)

ऋजुतया ध्वनिकारेण प्रतिपादितमासीद् यद् विवक्षितान्यपरवाच्यं ध्वनिकाव्यं न केवलं रसादिरूपस्यासंलक्ष्यक्रमरूपव्यङ्ग्यस्यापितु संलक्ष्यक्रमरूपव्यङ्ग्यस्य वस्तुनस्तथा चालङ्कारस्यापि व्यंजकं भवति। पुनश्च स (आनन्दवर्धनः) अन्येषां व्यंजकानां वर्णनं तनुते। किन्तु लोचनकारो व्यङ्ग्यं ध्वनिं मत्वा समग्रं प्रसङ्गमवाञ्छितं भ्रान्तं च प्रस्तौति। लोचनकारो बलात्कारिकाया अन्वयं करोति तथा च तद्वृत्तिमपि तथा कर्तुं निर्दिशति–वृत्तिग्रन्थोऽप्येवमेव योज्यः। (लो.) ऋजुकथनं तन्मान्यताविरुद्धं प्रतीयतेऽतः सोऽस्पष्टमर्थं कुर्वन् वदति–यदि स्पष्टमेव व्याख्यायते तदा ग्रन्थस्य पूर्वोत्तरस्यालक्ष्यक्रमविषयस्य मध्ये ग्रन्थोऽयमसङ्गत स्यात् नीरसत्वञ्च पाञ्चजन्योक्त्यादीनामुक्तं स्यदित्यलम्। (लो.)

महाभारतस्य गृद्धगोमायुसंवादेऽभिनवगुप्तदृष्ट्या शान्तरस एवं परिनिष्ठिततां प्राप्तः। (लो.)

14. आनन्दवर्धनदिशा सुप्तिङ्वचनादिभिरपि ध्वनिकाव्यस्य लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यरसादिरूपात्मा द्योत्यते–

**सुप्तिङ्वचनसम्बन्धैस्तथाकारकशक्तिभिः।**
**कृत्तद्धितसमासैश्च द्योत्योऽलक्ष्यकमः क्वचित्।। (ध्व.)**

किन्तु लोचनकारोऽत्र वदति यत्प्रथमतो सुबादिभिः संलक्ष्यक्रमवस्त्वलङ्काररूपं व्यङ्ग्यं भविष्यति रसादिरूपालक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यं भविष्यति–

वयं त्वित्थमेतदनन्तरं सवृत्तिकं वाक्यं बुध्यामहे सुबादिभिर्योऽनुस्वानोपमो भासते वक्त्रभिप्रायरूपः अस्यापि सुबादिभिर्व्यक्तस्यानुस्वानोपमस्यालक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो द्योत्यः।..... एतदुक्तं भवति वर्णादिभिः प्रबन्धान्तैः साक्षाद् वा रसोऽभिव्यज्यते विभावादिप्रतिपादनद्वारेण यदि वा विभावादिव्यञ्जनद्वारेण परम्परयेति। (लो.)

15. तृतीयोद्योते व्यंजकदृशा ध्वनिभेदान् निरूप्य ध्वनिकारो व्यञ्जनाया निरूपणप्रसङ्गं प्रस्तौति तदेवं व्यंजकमुखेन ध्वनिप्रकारेषु निरूपितेषु कश्चिद् ब्रूयात् किमिदं व्यंजकत्वं नाम। किन्त्वभिनवगुप्तस्य ध्वनिरपि व्यंजनाऽस्ति। अतः प्रथमोद्योतेऽपि व्यंजनानिरूपणं कल्पयति–व्यंजकभावं प्रथमोद्योते समर्थितमपि शिष्याणामेकप्रघट्टकेन हृदि निवेशितुम्.......। (लो.)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यञ्जकत्वसिद्धिप्रसङ्गे ध्वनिकारः कथयति यद् वाच्यात् पृथक् व्यङ्ग्यार्थस्य सिद्धिः प्राक्कृता (प्रतीयमानमित्यादिना) ननु वाच्यव्यतिरिक्तस्य व्यङ्ग्यस्य सिद्धिः प्रागेव प्रतिपादिता तत्सिद्ध्यधीना च व्यंजकसिद्धिरिति। (ध्व.) अत्र प्रागेव प्रतिपादितेत्यस्य व्याख्यानमभिनव एवं करोति–

प्रथमोद्योतेऽभाववादनिराकरणे। (लो.) वस्तुतोऽभाववादो ध्वनिकाव्यविरोधी न तु व्यङ्ग्यार्थविरोधी। व्यङ्ग्यार्थस्त्वनादिकालतोऽस्ति–प्रसिद्धश्चायमस्त्येव विदग्धविद्वत्परिषत्सु यदभिमततरं वस्तु व्यङ्ग्यत्वेन प्रकाश्यते न साक्षाच्छब्दवाच्यत्वेन। (ध्व.)

17. चित्रकाव्यविवेचनानन्तरमन्तत आनन्दवर्धनः कथयति–प्राप्तपरिणतीनां तु ध्वनिरेव काव्यमिति स्थितमेतत्। (ध्व0) एतेन लोचनकारो विचलितो भवति यतो हि स ध्वनिं व्यङ्ग्यं मनुते। तदा स वेदान्तदर्शनमनुसृत्य सर्वं खल्विदं ब्रह्म इति कृत्वा आत्मा आत्मवति अभेदः, भेदस्तु शिष्यजनव्युत्पत्तये कृतोऽस्ति–आत्मात्मिनोरभेद एव वस्तुतो व्युत्पत्तये तु विभागः कृतः इत्यर्थः। ध्वनेर्व्यङ्ग्यस्य चाधाराधेयसम्बन्धः यथादेहात्मनोऽस्ति। उभयोरैक्यस्य लोचनकृतः प्रतिपादनं स्वभ्रान्तिं सत्यतथ्यमानेतुं प्रयत्नः।

उक्तं सर्वनिरूपणं मया गुरुवर्येण पूज्येनाचार्येण चण्डिकाप्रसादशुक्लेन प्रत्यक्षसम्पर्कतस्तथा च तस्य ध्वन्यालोकस्य (दीपशिखाटीकायुतस्य) ग्रन्थस्य भूमिकामनुसृत्य व्यधायि। छात्रावस्थायां प्रथमतया ध्वन्यालोकाध्ययने लोचनदिशैव व्याख्यानं श्रुतम्। लोचनकारस्य ध्वन्यालोकव्याख्यानविषयिणी स्वैरिता वस्तुतः आचार्यशुक्लमहाशयादेव ज्ञाता। यद्यपि शुक्लमहाशयस्य शोधपत्रद्वयं संस्कृताङ्गलभाषया मुद्रितम्। ध्वन्यालोकस्य भूमिकायामपि तथ्यमिदं प्रतिपादितम्। लोचनदीपशिखाटीकयोर्वैशिष्ट्यं सर्वविदितं स्यादेतदर्थं निबन्धोऽयं मया व्यलेखि।

आचार्यचण्डिकाप्रसादशुक्लमहाशयस्य महामाहेश्वरमभिनवगुप्तं प्रति प्रणतिपूर्वकं प्रस्तुतं पद्यमहमपि विलिख्य क्षमां याचे–

दुर्धरं शास्त्रचिन्तायां ध्वन्यकूपारमन्दरम्।
वन्देऽभिनवगुप्ताख्यं ज्ञानमार्तण्डमुद्धुरम्।।
प्रायः शुक्लस्य टीकाया भूमिकायां समीक्षितम्।
मतं लोचनकारस्य स्वातन्त्र्येऽत्र निवेशितम्।।
आचार्यस्य शुक्लस्य टीकालेखादिभिः स्फुटम्।
लोचनेऽसङ्गतं तथ्यं पुनरत्र प्रकाशितम्।।
महामाहेश्वरं गुप्तं शुक्लं गुरुवरं प्रति।
कार्तज्ञं ज्ञापयन् स्वीयमुभौ च प्रणमाम्यहम्।।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्रीमद्भगवद्गीताया उपनिषद्रूपता

प्रो. विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्रो 'विनयः'*

गणनाथमुमानाथं वाग्देवीं केशवार्जुनौ।
श्रीमद्व्यासं गुरून् स्वीयान्भाष्यकर्तृंश्च वै नुमः।।1।।
गीतादुग्धं सुधास्निग्धं दिव्यं श्रुत्यन्तविग्रहम्।
तत्स्वरूपं विमृश्यात्र सुधियः! किञ्चिदुच्यते।।2।।

अथ भगवतः श्रीकृष्णाख्यविष्णोःसाक्षाद्वदनारविन्दनिःसृतायाः श्रीमद्भगवद्गीतायास्तत्त्वनिर्वचनं परमार्थतो न शक्याविष्करणं साधारणेन जनेन तथापि भगवत्सपर्यार्थं स्वमनस्तोषाय च व्यावहारिकदृशैवेह कोऽपि यत्न आधीयते एतस्या उपनिषत्स्वरूपताया निरूपणस्य।

ननु महाभारतस्य भीष्मपर्वण्युपलभ्यमानत्वादेतस्याः स्मृतिरूपत्वमेवाभ्युपगम्यतेऽभियुतैस्तत्कथन्तरामुपनिषद्रूपतेयं सङ्गच्छत इत्युक्ते ब्रूमः भोः! प्रत्यध्यायमध्यायान्तपुष्पिका भगवद्गीतासूपनिषत्स्विति सुस्पष्टवचनमेवात्र प्रमाणं किञ्चास्या भगवद्गीतेत्यभिधानमपि रूढिवशादेव विशेष्यतामवगाहते वस्तुत इदमुपनिषत्पदस्य विशेषणमेवेति न न विदन्ति विद्वांसः।

अपि च,

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

इति पारम्परीणे माहात्म्यप्रतिपादकपद्ये ग्रन्थस्यास्य श्रुत्यन्तसारत्वं स्फुटमुद्भाव्यते। श्रीमदाद्यशंकरभगवत्पादैरपि गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसारसङ्ग्रहभूतं दुर्विज्ञेयार्थमिति भाष्यग्रन्थेनैतदेव निरूपयाञ्चक्रुस्तस्मात् स्मृतिकलेवरतापरिग्रहेऽपि भगवत्या गीताया उपनिषन्मयत्वं निर्बाधमिति प्रतीमः।

उपनिषदिति पदस्य निरुक्तिः शास्त्रेऽस्मिन् सर्वथाऽन्वर्थकतामश्नुते तद्यथा–

उपनिषद्यतेऽवगम्यते ब्रह्मविद्याऽनया सोपनिषदित्यस्मिन्नर्थे उपनीत्युपसर्गद्वयपूर्वकं विशरणगत्यवसादनार्थकत्वात् षदॢ धातोः कर्त्रर्थे क्विप्प्रत्ययादस्य शब्दस्य निरुक्तिः यथाऽऽहुर्मुण्डकोपनिषद्भाष्योपक्रमे भगवत्पादाः–

---

*आचार्योऽध्यक्षश्च, वैदिकदर्शनविभागः, प्राच्यविद्यासङ्कायः, का.हि.वि.वि., वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गर्भजन्मजरारोगाद्यनर्थपूगं निशातयति परं ब्रह्म वा गमयत्यविद्यादिसंसारकारणं वाऽत्यन्तमवसादयति विनाशयतीत्युपनिषत्। उपनि–पूर्वकस्य सदेरेवमर्थस्मरणात्।

एतेन तत्त्वजिज्ञासुना ब्रह्मविवरिष्ठस्य गुरोरन्तिकत्वमुपेत्य सन्निष्ठया तदुपासनलब्धेन येन ज्ञानेन स्वहृदयान्धकारापसारणपुरस्सरं चित्प्रकाशमहिम्ना अविद्याग्रन्थेः शैथिल्यमुपपाद्यते तदुपनिषदित्यवसीयते। मन्त्रवर्णोऽपि शब्दान्तरेण–

**"भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।" अथर्ववेदे 19/41/1**

इत्यत्र ऋषीणां दीक्षार्थमुपनिषीदनं ततो ब्रह्मविद्याबलावाप्तिश्चाह।

कोशेषु– **धर्मे रहस्युपनिषद् (अमर. 3.3.93)**

**"भवेदुपनिषद् धर्मे वेदान्ते विजने स्त्रियाम्। (मेदिनी. 78/56)**

इति धर्मो विजनस्थलं श्रुतिशिरोभागश्चेत्युपनिषच्छब्दस्य त्रयोऽर्थाः प्रतिप्रादिताः। रहसि भवं–रहस्यं गोप्यमिति यावदित्यस्मिन्नर्थेऽपि शब्दोऽयं प्रचलन्नास्ते उपनिषत्स्वपि परमगोप्यवेदविज्ञानस्यान्त–र्निगूढत्वादेषाऽर्थपद्धतिर्न विरुध्यते, यथा चोपनिषदेव व्याचष्टे– "तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढम्" इति (श्वेताश्वतरे 5/6)।

श्रीमद्भगवद्गीताशास्त्रेऽप्यत्र उपनिषदिति शब्दस्य नैरुक्तिकोऽर्थो लाक्षणिकोऽर्थश्चेत्युभौ सङ्गच्छेते। निरुक्तिमनुसृत्य प्रथममुपसर्गद्वयस्य उप–नीत्यस्य विचारः। शब्दस्यार्थाभिव्यञ्जने उपसर्गाणां महत्त्वं निर्भ्रान्तं यदाहुराचार्याः– **अन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रकृतेः प्रत्ययस्य च।**

**पृथगर्थपरिज्ञानमिति शाब्दिकनिर्णयः।।**

**उपसर्गेष्वपि तदा भवेदिति विनिश्चयः।**

**तदेत्तद्धातुसंज्ञायां स्पष्टमाह पतञ्जलिः।।**

**तिलमात्रे भिद्यमाने पुनश्चाधीयते पदम्।**

**सुसूक्ष्मः शक्यते ज्ञातुं नाप्राज्ञैरिति निर्णयः।। इति।**

**(ऋग्वेदानुक्रमणी 3/7/2–4)**

उपेत्ययमुपसर्गो यास्कसम्मतपाठेऽष्टादशक्रमे शौनकीयपाठे नवमक्रमे पाणिनिपरिगृहीतपाठे चान्तिमे पठितस्तथैव नीत्युपसर्गो यास्कपाठे दशमे शौनकाभिगृहीते चतुर्दशे, पाणिन्युक्तपाठे च त्रयोदशक्रमे पठितः। यद्यपीमे सार्थका निरर्थका वेत्यस्मिन्नपि नैरुक्तिकेषु शाब्दिकेषु च महान् विवादो दृश्यते, तथापि यास्कादयः पाणिन्यादयोऽन्ये च पारम्परीणा आचार्या एतानर्थसंयुतानेव स्वीचक्रुस्तद्यथा ऽऽह, सारस्वतव्याकरणकारः–

**"निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेति ते त्रयः।**

**अनेकार्थाः स्मृताः सद्भिपाठस्तेषां निदर्शनम्।।**

**(सास्वतव्याकरणे स्त्रीप्रत्यये 14)**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्थमुपेत्य यस्य, सामीप्यसात्म्यानुकूल्यसेवादयश्चतुःपञ्चाशदर्थास्तथैव, नीत्यस्य प्रकर्षनैपुण्यनिगमनप्रभृतयः षट्त्रिंशदर्था व्यवहारेषूपलभ्यन्ते[1]। अत्र पुनरुपेत्यस्य सामीप्यमुपसत्तिर्वेत्यर्थ प्रासङ्गिकतामश्नुते तद्यथा– **''शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्''** इत्यत्र पार्थस्य श्रीमद्भगवच्चरणोपसत्तिरेवात्र, उपोपसर्गस्यार्थसङ्गतिरिति मन्यामहे। तथैव **'त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।' (6/39)**

इत्यस्मिन् नीत्यस्य निष्ठाप्रकर्षात्मकोऽप्यर्थः सङ्गच्छते, अथ षदॢलित्यस्य धातोरप्यर्थत्रयसङ्गतिः श्रीमद्भगवद्गीतासु क्रमभेदेन, यथा–

गतिः(अवगतिः) यत्र पार्थो भगवत्तत्त्वरहस्यमवगच्छन्नाह–

**''परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।**
**पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।**
**आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।**
**असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।**
**सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।**
**न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।**
**स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।**
**भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।** (10/12–15) इति। एकादशे च

**'त्वमक्षर** 11/17 मित्यारभ्य', **'प्रतपन्ति विष्णो'** 11/30 इत्यन्तं, **'त्वमादिदेवः'** 11/38 इत्यारभ्य, **''भव विश्वमूर्ते''**11/46 इत्यन्तं च प्रकरणम्, एवमन्येऽपि सन्दर्भा अनुसन्धेयाः।

अवसादनम्– पार्थस्य मोहग्रन्थेः शिथिलीकरणं, यथा–

**''मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।**
**यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।। ''(11/2)**

इत्यत्र मोहस्य विशेषतः समुत्सारणमेव नात्यन्तिकं विनाश इत्येवाभ्युपगन्तव्योऽयमिति सर्वनाम्ना तस्यास्तित्वस्य परामर्शात्। ननु, बहुभिष्टीकाकृद्भिः

**''मोहोऽविवेकोऽयं विशेषेणगतो नष्टः''** (नीलकण्ठटीकायाम्)।

**''मोहोऽयमनुभवसाक्षिको विगतो विनष्टो मम''** (श्रीमधुसूदनकृतगूढार्थदीपिकायाम्)।

**''ममायं मोहोऽहं हन्ता एते हन्यन्त इत्यादिलक्षणो भ्रमो विगतो विनष्टः।** (श्रीधरस्वामिकृतसुबोधिन्याम्)

इति वचनैर्विगत इति शब्दस्य विनष्ट एवेत्यर्थः कृतस्तत्कथमनेन मोहग्रन्थेरवसादनमेव स्वीकार्यं नात्यान्तिकं निरसनमिति? मैवं मंस्थाः। टीकाकृद्भिरत्र सामान्यभावार्थस्यैवाभिप्रायत्वात् मोहोऽयं विगतो



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ममाविवेकबुद्धिरपगतेति, शंकरभगवत्पादोक्तेश्च।

**अयमाशयः** यद्वचस्त्वयोक्तं तेनायं मम मोहो विगतो विशेषेण दूरीभूत इत्यर्जुनस्य कथने मोहस्य तात्कालिकमेवापाकरणमभिव्यज्यते, हस्तोत्फालनवेगाज्जलकुम्भिकापसारणवद् अन्यथाऽत्रैव गीतोपदेशावसान–प्रसक्तिरग्रे प्रयोजनाभवात् 'किञ्च, अयमिति पदेन तदाऽपि मोहसद्भावपरामर्शात्। इत्थमविवेकबुद्धिरपगतेति भगवत्पादोक्तिरेव साधीयसी बुद्धेः सदसदुपदेशप्रभावाच्छुद्धाशुद्धित्वस्वभावादिति सन्दर्भेणानेन अवसादन रूपार्थग्रहणमेव न्याय्यम्।

**विशरण–सन्दर्भः** – ग्रन्थोपसंहतौ यथा–

**कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।**
**कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।। (गीता 18/72)**

इति भगवतः कामप्रवेदानात्मिकायां पृच्छायाम् अर्जुन उवाच–

**"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।**
**स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।" (तत्रैव 18/73)**

इत्यत्र उपनिषच्छब्दप्रकृतिभूतस्य 'षदलृ' धातोः प्रथमो विशरणरूपोऽर्थः सङ्गच्छते, तथा च टीकाग्रन्थाः–
"नष्टो मोहोऽज्ञानजः समस्तसंसारानर्थहेतुः सागर इव दुस्तरः।
स्मृतिश्चात्मतत्त्वविषया लब्धा यस्या लाभात्सर्वहृदयग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।" (शाङ्करभाष्यम्)
"मोहो विपरीतज्ञानं त्वत्प्रसादान्मम तद्विनष्टम्। स्मृतिर्यथावस्थिततत्त्वज्ञोनं त्वत्प्रसादादेव तच्च लब्धम्।"
(रामानुजभष्यम्)

"मोहः पूर्वोक्तो द्विविधोऽपि नष्टः। स्मृतिरयमहमस्मि परंब्रह्मेत्यात्मानुसन्धानरूपा आत्मतत्त्वविषया लब्धा। यस्या लाभेन सर्वहृदयग्रन्थीनां यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः इत्यत्रोदाहृतानां चिज्जडैक्यभ्रमप्रभवानां विमोक्षो भवति। तथा च श्रूयते–'वियोगायोग्य स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष इति। (नीलकण्ठकृतटीका)

एवमन्येऽपि द्रष्टव्याः। एभिः सन्दर्भैः शास्त्रेऽस्मिन्नुपनिषदिति पदस्य निर्वचनलभ्योऽर्थः सुतरां सामञ्जस्यमादधाति, गोप्यं रहस्यमिति निरूढलक्षणार्थस्य सङ्गमनमप्येवं शक्यानुसन्धानम्–

**स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।**
**भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।। (गीता 4/3)**
**इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे। (9/1)**
**शृणु मे परमं वचः। (10/1)**
**मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम्।**
**यत्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।। (11/1)**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ। (15/20)
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।
सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। (18/63, 64)

एवञ्च

य इमं परमं गुह्यम् (18/68)
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम्। (18/75)

इत्येभिरस्य रहस्यरूपताऽथ चोपनिषन्मयता स्फुटमवगन्तव्या। अथास्मिच्छ्रास्त्रे किञ्चिच्छब्दपरिवृत्तिविग्रहाः कठाद्युपनिषदां मन्त्रा अन्ये च सन्दर्भा अप्येवं शक्याविष्करणास्तदयथा—

उपनिषदां मन्त्राः

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रबीम्योमित्येतत्।। (कठोपनिषद् 1/2/15)
न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्नबभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (तत्रैव 1/2/18)
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। (तत्रैव 1/2/19)
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान्परः।। (तत्रैव 1/3/10)
य इमं परमं गुह्यम् (तत्रैव 1/3/17)
ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। (तत्रैव 2/3/1)
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।। (श्वेताश्वतर 3/16,17)
नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। (श्वेताश्वतर 3/18)
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। (तत्रैव 4/18)
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्। (कैवल्योपनिषदि 22)
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।
(अमृतनादोपनिषदि 21, ब्रह्मविद्योपनिषदि 2,प्रणवोपनिषदि, 2)
सोऽमृतत्वाय कल्पते। (प्रणवोपनिषदि, 13)
भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्त्तयश्चाष्ट कीर्तिताः।। (नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषदि मन्त्र सं 1)

गीताश्लोकाः
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये।। (8/11)
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (2/20)
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। (2/18)
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। (3/42)
य इमं परमं गुह्यम्.....। (18/68)
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। (15/1)
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। (13/13–14)
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।। (5/13)
यतः प्रवृतिः प्रसृता पुराणी। (15/4)
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्। (15/15)
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म..... (8/13)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मभूयाय कल्पते (14/26), (18/53)

भूमिरापोऽनलो वायुर्खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।'' (7/4)

इति शब्दात्मिका वाक्यात्मिका वा समन्वितिः, केवलमर्थात्मिका च यथा–ईशावास्योपनिषदः "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेतच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। (ईश. 2)

इति मन्त्रस्यैवार्थविस्तरमङ्गीकरोति गीतोक्तकर्मयोगसन्दर्भस्तथा च संवदन्तः केचन श्लोकाः–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। (3.5)

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। (3.8)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः। (3.18)

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।। (4.15)

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। (4.21)

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।। (4.41)

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।। (5.7)

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। (5.10)

एवमन्येऽपि प्रसङ्गाः समुन्नेयास्तत्त्वविद्भिः।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# काव्यलक्षणपरिष्कारे रसचन्द्रिकाया वैशिष्ट्यम्

**प्रो. रामकुमारशर्मा***

रसचन्द्रिका दर्शनारण्यस्वच्छन्दसंचारिकेसरिणा श्रीमता केदारनाथओझामहाभागेन रचिता विहितमूलरहस्यप्रकाशा क्वचित् खण्डितनागेशमर्मप्रकाशा मण्डितसिद्धान्ता कृतानैकविरोधिटीकाकारमतान्ता प्रसाधितसुधीस्वान्ता प्रकाशितनवीनसिद्धान्ता कृतानेकपरिष्कारा साधारा रसगङ्गाधरस्य सार्थाभिधाना टीका। अंस्या रसगंगाधरोक्ततत्त्वपरिष्कारे यद्वैशिष्ट्यं तदिह समासेन प्रदर्श्यते–

1. काव्यलक्षंणमण्डनम्, 2. नागेशादिमतखण्डनम्, 3. शब्दरूपस्य काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् 4.काव्यलक्षणस्य द्वितीये परिष्कारेऽवच्छेदकरहस्योद्घाटनम् 5. तृतीये परिष्कारे संशोधनम् 6. त्रयोदशानां तार्किकमनोरमाणां परिष्काराणां प्रदर्शनम्

एतानि क्रमशः प्रदर्श्यन्ते–

**1 काव्यलक्षणमण्डनम्**

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' इति काव्यलक्षणेऽर्थपदेन शब्दस्वरूपस्यापि ग्रहणम् शब्दस्वरूपस्यापि वृत्तिजन्योपस्थितिविषयत्वेनार्थपदशक्यत्वात् शब्दस्य स्वरूपमपि शक्यमिति वैयाकरणसिद्धन्तः। उक्तं हि वाक्यपदीये–

**''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।**
**अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।''**

शब्दस्वरूपस्यापि रमणीयता शब्दरूपसाधारणधर्मायामुपमायां सहृदयानुभवसाक्षिका। शब्दस्वरूपस्यापि लोकोत्तराह्लादजनकभावनाविषयार्थत्वानङ्गीकारे उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च' इत्यादौ ताम्रशब्दस्थाने रक्तशब्दप्रयोगेऽपि दोषो न स्यात्। किन्तु तथा नास्ति। एवं मूलोक्तलक्षणस्थार्थपदेन शब्दस्वरूपस्यापि ग्रहणाद् रमणीयस्वरूपार्थयोः प्रतिपादकः शब्दः काव्यमिति फलितम्। शब्दार्थयो रमणीयता लोकोत्तराह्लादजनकभावनाविषयतेति मूल एव स्पष्टम्। एवं तस्याः शब्दस्वरूपार्थयोः सर्वत्र सत्त्वेऽपि यत्र शब्दस्वरूपविषयाया भावनायाः प्राधान्यं तत्रार्थविषयाया गुणीभावः अर्थगोचरायास्तस्याः प्राधान्ये शब्दस्वरूपविषयाया उपसर्जनत्वम्। अत एव शब्दार्थत्रित्वादिव्यवहारः। एवं शब्दविशेषः काव्यपदार्थः । शब्दे वैशिष्ट्यं रमणीयस्वरूपार्थप्रतिपादकत्वेन। ''काव्यं पठ्यते, काव्यादर्थोऽवगम्यते'' इत्यादिव्यवहारेण महाभाष्यप्रामाण्येन च शब्दविशेष एव काव्यत्वम्। काव्यत्वस्य शब्दार्थयुगलनिष्ठत्वे मानाभावः । अर्थविशिष्टस्यैव शब्दस्य काव्यत्वेनार्थगतदोषगुणालङ्कारादीनां निरूपणं नाप्रासङ्गिकम्।

---

***आचार्यः, साहित्यविभागः, राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थानस्य जयपुरपरिसरः।**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

## 2 नागेशादिमतखण्डनम्–

नागेशेन गंगाधरशास्त्रिप्रभृतिभिश्च काव्यत्वस्य शब्दार्थयुगलनिष्ठत्वं सप्रमाणं पण्डितराजकाव्यलक्षणे दोषाश्च प्रदर्शिताः। एतद् रसचन्द्रिकायां निराकृतम्। तत्र नागेशो गुरुमर्मप्रकाशे 'तदधीते तद् वेद' इति सूत्रस्थमहाभाष्यप्रदीपप्रामाण्येन वेदत्वादिवत् काव्यत्वस्याऽपि शब्दार्थयुगलनिष्ठत्वं साधयामास मम्मटमतं मण्डयामास जगन्नाथमतं खण्डयामास च।उक्तं मर्मप्रकाशे"यदि त्वास्वादव्यंजकत्वस्योभयत्राप्यविशेषाच्चमत्कारि–बोधजनकज्ञातावच्छेदकधर्मवत्वरूपस्यानुपहसनीयकाव्यलक्षणस्य प्रकाशाद्युक्तलक्ष्यता–वच्छेदकस्योभयवृत्तित्वाच्च काव्यं पठितं श्रुतं काव्यं बुद्धं काव्यमित्युभयविधव्यवहारदर्शनाच्च काव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तं व्यासज्यवृत्तिः। अत एवं वेदत्वादेरुभयवृत्तित्वप्रतिपादकः 'तदधीते तद्वेद' भगवान् पतंजलिः संगच्छते। म.म गङ्गाधरशास्त्री शब्दस्यैव काव्यत्वेऽर्थगतानां दोषगुणालंकाराणां निरूपणस्य व्यर्थतामाह।

तत्र नागेशमतखण्डनपरा रसचन्द्रिका वदति यद् आद्यन्तवदेकस्मिन्निति सूत्रस्य भाष्ये एकवर्णं पदम् एकपदा ऋक् एकर्थं सूक्तं इत्यत्र 'व्यपदेशिवदेकस्मिन्' इति वचनस्य फलत्वं शंकितम्। ततश्च 'अत्राप्यर्थेन युक्तो व्यपदेशः पदं नामार्थः, ऋङ् नामार्थः, सूक्तं नामार्थः इत्यभिहितम्। अत्रार्थरूपस्य निमित्तस्य सद्भावेन मुख्य एव व्यवहारः। व्यपदेशिवद्वचनस्य फलं नेदम्। पदं नामार्थः इत्यादावर्थपदेनार्थविशिष्टः शब्दमात्रं त्ववयवः। एवं पदार्थादिशब्दानामर्थविशिष्टः शब्द एवार्थः। तथा काव्यपदस्यापि रमणीयार्थविशिष्टे शब्द एव शक्तिः। शब्देन विशेषणीभूतस्यार्थस्यास्वादोद्बोधकत्वेन कविसंरम्भगोचरत्वं नानुपपन्नमिति तद–धीते तद्वेद इति सूत्रस्थेन महाभाष्यादिना अर्थविशिष्टस्य शब्दविशेषस्यैव वेदत्वादि सिध्यति, न तु वेदादेः शब्दार्थयुगलनिष्ठत्वमिति अत एवापौरुषेयं वाक्यं वेद इत्यादयो व्यवहाराः। एवमर्थविशिष्टः शब्द एव काव्यमिति स्वकरणीयमिति तर्हि केवलः शब्द एव काव्यमिति पण्डितराजस्य पक्षः येनार्थगतदोषादीनां निरूपणमसंगतं स्याद् अपितु तन्मते रमणीयार्थविशिष्ट एव शब्दः काव्यम्। अतोऽर्थगतानां रमणीयताप्रयोजकानां गुणालंकारादीनां संग्रहाय दोषाणां परिहाराय च निरूपणं प्रासंगिकम्। यथा पुच्छे भूषिते दूषिते वा पशौ भूषितत्वस्य वा व्यवहारस्तथा अर्थे भूषिते वा शब्दरूपे काव्ये भूषितत्वस्य दूषितत्त्वस्य वा व्यवहारः। अतो गङ्गाधरशास्त्रिण आक्षेपः पण्डितराजं कथमपि न स्पृशति।

## 3 शब्दरूपस्य काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्–

रसचन्द्रिकामते शब्दार्थयोः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। अस्यैव स्वीकारे 'काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् शब्दार्थशरीरं काव्यम्' इत्यादिव्यवहारे षष्ठ्युपपादनाय न कष्टकल्पनापत्तिः। शब्दार्थयोरेव काव्यत्वे काव्यस्य शब्दार्थयोश्चैकत्वेन षष्ठ्युपपादनाय 'राहोः शिरः' इत्यादाविव भेदकल्पनापत्तिः। शब्दस्यैव काव्यत्वे शब्दार्थयोः काव्यशरीरत्वे तु शरीरांशे अर्थस्याधिकस्य भानेन स्वत एव षष्ठ्याः संगतिः। इह शरीरघटकः शब्दः प्रतिपादकस्य शब्दस्य काव्यभूतस्य स्वरूपम्। स्पष्टमेतद् रसचन्द्रिकायाम्।

## 4 काव्यलक्षणस्य द्वितीये परिष्कारेऽवच्छेदकरहस्योद्घाटनम्–

रसगङ्गाधरे काव्यलक्षणस्य द्वितीयः परिष्कारः 'यत्प्रतिपादितार्थविषयकभावनात्वं चमत्कारजनकतावच्छेदकं



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वम्' इति वर्तते। भावनात्वे चमत्कारजनकतावच्छेदकत्वं काव्यार्थविषयकत्वेनैव संभवति, न तु स्वतः, काव्यार्थेतरभावनात्वस्य चमत्कारजनकताया अनवच्छेकत्वात्। अतः तृतीयपरिष्कार इवास्मिन्नपि परिष्कारे विषयतासम्बन्धेनार्थस्यैवावच्छेदकत्वेन निवेशः समीचीनः। तेन यत्प्रतिपादितार्थश्चमत्कारजनकताया अवच्छेदकः तत्त्वं (शब्दत्वम् तदानुपूर्वीमच्छब्दत्वं वा) काव्यत्वमिति द्वितीयः परिष्कारः करणीयः। यत्पदेनानुपूर्व्या ग्रहणमुच्चारणभेदेन भिन्न एकस्मिन् पद्येऽनेककाव्यव्यवहाराभावाय।

**5 तृतीये परिष्कारे संशोधनम्–**

रसगङ्गाधरे काव्यलक्षणस्य तृतीयः परिष्कारः 'स्वविशिष्टजनकतावच्छेदे काव्यप्रतिपादकतासंसर्गेण चमत्कारत्ववत्वमेव वा काव्यत्वम्' इति वर्तते। इह स्वशब्देन चमत्कारत्वस्य ग्रहणम्। तेन चमत्कारत्वेन विशिष्टो यश्चमत्कारस्तस्य जनकताया भावनानिष्ठाया विषयतासम्बन्धेन विषयितासम्बन्धेन तद्वच्छेदकस्यार्थस्य प्रतिपादकता बोधकता तत्सम्बन्धेन चमत्कारत्ववत्त्वं चमत्कारत्वविशिष्टत्वं काव्यत्वमिति शब्दार्थः प्रस्तावेन शब्दनिष्ठाया एवं तादृश्याः प्रतिपादकताया ग्रहणेन तादृशार्थप्रतिपादिकायां चेष्टायां नातिप्रसङ्गः। एवं चमत्कारत्वविशिष्टः शब्दः काव्यमिति फलितम्। एतल्लक्षणनिर्माणं संसर्गविधया। इह रसचन्द्रिका वदति यत् संसर्गस्य पारम्परिकस्य प्रामाणिकत्व एव संसर्गविधया लक्षणनिर्माणं वरम्। चमत्कारत्वस्य तया परम्परया शब्दे वृत्तितायां प्रमाणं नोपलभ्यते। यदि शब्दरूपं काव्यं चमत्कारत्ववद् इति व्यवहारे भवेत्तदा लक्षणस्य संसर्गविधया निर्माणं समीचीनं भवेत्। किन्तु काव्यं चमत्कारवत् काव्यं चमत्कारि वेति व्यवहारः प्रामाणिकः। उक्तं रसचन्द्रिकायाम्–

"यद्येतादृशपारम्परिकस्य संसर्गविमानं स्यात् तदा भवेदिदं लक्षणमुत्कृष्टम्। न चास्ति तस्मात् प्राक्तनमेव लक्षणं सम्यक्। काव्यं चमत्कारत्ववत् चमत्कारो वेति प्रामाणिको व्यवहार उपलभ्येत भवेदस्य पारम्परिकस्य संसर्गत्वं प्रामाणिकम्। काव्यं चमत्कारि चमत्कारजनकं वेति व्यवहारस्तु काव्ये चमत्कारजनकतावगाही जायते। काव्ये तादृशजनकता च काव्यप्रतिपादितार्थद्वारेति स्वावच्छेदकार्थप्रतिपादकत्वसम्बन्धेन चमत्कारजनकतावत्त्वं काव्यत्वमिति लक्षणं तु पारम्परिकस्य प्रामाणिकसंसर्गतया सुवचम्।" एवं रसचन्द्रिकायाः तृतीयः परिष्कारः संशोधितः।

**6 त्रयोदशानां तार्किकमनोरमाणां परिष्काराणां प्रदर्शनम्**

रसगङ्गाधरस्थं प्रथमं द्वितीयं तृतीयं च परिष्कारमाश्रित्य रसचन्द्रिकायां शब्दान्तरसंनिवेशेन त्रयोदश परिष्कारा विहिताः। एते यद्यपि सुकुमारमतीनां कृते क्लेशावहाः तथापि परिपक्वमतीनां परिशीलित–तर्कशास्त्राणामालंकारिकाणां तार्किकाणां च कृते मनोरमाः। त इमे सन्ति–

1 यत्प्रतिपादितार्थनिरूपितविषयिता चमत्कारत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकताया अवच्छेदिका तत्त्वम्।

2 यदानुपूर्व्यवच्छिन्नप्रतिपादकतानिरूपितप्रतिपाद्यतावदर्थनिरूपितविषयित्वं चमत्कारजनकताया अवच्छेदकं तद्वत्त्वम्।

3 यद्रूपनिष्ठ–निष्ठत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेकतानिरूपिता या निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्ना प्रतिपादकता–



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्ना प्रतिपाद्यतानिष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नार्थनिष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न विषयित्वनिष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या चमत्कारजनकता तद्रूपवत्वं काव्यत्वम्। इह यद्रूपपदेनानुपूर्व्या ग्रहणम्।

4 यद्रूपनिष्ठ–निष्ठत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतानिरूपिता या निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्ना प्रतिपादकता निष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्ना प्रतिपाद्यतानिष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नार्थनिष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्ना विषयत्वनिष्ठावच्छेदकता तन्निरूपिता या चमत्कारजनकता तद्रूपवत्त्वं काव्यत्वम्।

5 यत्प्रतिपादितार्थविषयितासामान्यं चमत्कारजनकतावच्छेदकं तत्त्वं काव्यत्वम्।

6 यत्प्रतिपादितार्थविषयितात्वव्यापकं चमत्कारजनकतावच्छेदकं तत्त्वं काव्यत्वम्।

7 यत्प्रतिपादितार्थविषयित्त्वं चमत्कारजनकताननतिरिक्तवृत्तितत्त्वं काव्यत्वम्।

8 चमत्कारजनकतावच्छेदकविषयितानिरूपकार्थप्रतिपादकत्वं काव्यत्वम्। प्रतिपादकत्वं शब्दगतमेव।

9 चमत्कारजनकतावच्छेदकविषयितानिरूपकार्थनिष्ठप्रतिपाद्यतानिरूपित–प्रतिपादितावच्छेदकानुपूर्वीमत्त्वं काव्यत्वम्।

10 चमत्कारजनकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नविषयित्वनिष्ठावच्छेकतानिरूपित–निरूपितत्वसम्बनाच्छि–न्नाथनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतिपाद्यतानिष्ठावच्छेकतानिरूपितनिरूपितत्व सम्बन्धावच्छिन्नप्रतिपादकतानिष्ठावच्छेदकतानिरूपितनिरूतित्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेकतानिष्ठावच्छे–दकतानिरूपितनिष्ठत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतावद्धर्मावच्छिन्नत्वं काव्यत्वम्।

11 चमत्कारजनकतावच्छेदकत्वव्याप्यविषयितात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितनिरूप्यतावदर्थप्रतिपदकत्वं काव्यत्वम्। प्रतिपादकत्वं शब्दगतमेव।

12 चमत्कारजनकत्वाभाववदवृत्तिविषयितानिरूपकार्थप्रतिपादकत्वं काव्यत्वम्।

13 स्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकत्वाभाववदवृत्तिविषयितानिरूपकार्थप्रतिपादकतासंसर्गेण चमत्कारत्ववत्त्वं काव्यत्वम्।

एवं गुरुमुखादाकर्णिताः त्रयोदश परिष्काराः कृताः। अन्येऽपि नैके परिष्काराः संभवन्ति। किन्तु विस्तरभिया ते न प्रदर्शिताः। प्रदर्शितेषु परिष्कारेषु प्रथमे भावनात्वस्यावच्छेदकत्वेन प्रवेशमकृत्वा अर्थनिरूपितविषयित्वस्यावच्छेदकत्वेन निवेशः। द्वितीये प्रतिपादकतायाः तदवच्छेदकानुपूर्व्या प्रतिपाद्यतायाश्च प्रवेशः। तृतीये यद्रूपपदग्राह्यानुपूर्वीनिष्ठाया विविध–सम्बन्धनिष्ठायाश्चावच्छेदकताया निवेशः। चतुर्थे विषयितास्थाने विषयतायास्तदवच्छेदकनिरूपकत्वसम्बन्धस्य च प्रवेशः। पंचमे विषयितासामान्यस्य प्रयोगस्तथापरिष्कारेण स्वरूपसम्बन्धावच्छेदकत्वपक्षे विषयितायाः काव्यैकदेशार्थवृत्त्या काव्यैकदेशेऽतिव्याप्तिवारणं च। षष्ठे सामान्यपदप्रयोगफलितव्यापकत्वस्य निवेशः। सप्तमे काव्यैकदेशेऽपिव्याप्तिवारणायानतिरिक्तवृत्तित्वरूपा–



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वच्छेदकत्वस्य प्रवेशः। अष्टमे यत्तत्पदरहितः मूलोक्तप्रथमलक्षणरीत्या परिष्कारः। नवमे द्वितीयरीत्या, दशमे तृतीयरीत्या,एकादशे षष्ठरीत्या, द्वादशे च सप्तमरीत्या शब्दान्तरेण परिष्कारः। त्रयोदशः मूलोक्ततृतीयस्यैव परिष्कारस्य शब्दान्तरेण प्रदर्शनम्। एतत् सर्वं रसचन्द्रिकायां स्पष्टम्। एवं रसचन्द्रिकया मूलोक्ताः त्रयः परिष्काराः परिवर्धिताः। इत्थं काव्यलक्षणपरिष्कारे रसचन्द्रिकायाः प्रमुखानि वैशिष्ट्यानि समासतः प्रदर्शितानि। अथ सारांश उच्यते–

**सारांशः–**

जगन्नाथेन यत् काव्यलक्षणं प्रतिपादितम्।
रम्यं तदेव भाष्यादिसिद्धान्तस्य समन्वयात्।।1।।
वेदादीनां महाभाष्यात् सिद्धा शब्दस्वरूपता।
काव्यस्यापि तथा शब्दस्वरूपत्त्वं सुनिश्चितम्।।2।।
तदधीते तद्वेदेति सूत्रभाष्यावलम्बनात्।
शब्दार्थोभयवृत्तित्वं वेदत्वादेर्निरूपितम्।।3।।
यत्तु नागेशभट्टेन तदज्ञानविजृम्भितम्।
न तत्सूत्रस्थभाष्यादि नागेशार्थप्रकाशकम्।।4।।
शब्दार्थयुगले तस्मात् काव्यत्वं नैव सिद्ध्यति।
रम्यार्थबोधके शब्दे काव्यत्वं को निवारयेत्।।5।।
काव्यत्वे सम्मते शब्द आर्था दोषगुणादयः।
नोपयुक्ता भवेयुर्यद् अर्थे नैवास्ति काव्यता।।6।।
एवं मनीषिणा प्रोक्तं यद् गङ्गाधरशास्त्रिणा।
तदयुक्तं यतो नैव शब्दमात्रस्य काव्यता।।7।।
अर्थो विशेषणीभूतः शब्दे स्वकीयबोधके।
मते पण्डितराजस्य तस्मात् सार्थस्य काव्यता।।8।।
शब्दरूपस्य काव्यस्य शब्दार्थौ वपुरुच्यते।
षष्ठ्याः संगतये तस्मान्नैव क्लिष्टप्रकल्पना।।9।।
अधिकोऽर्थः शरीरे यद् भासमानो विराजते।
लक्षणार्थपदाच्छब्दस्वरूपमपि गृह्यते।।10।।
अवच्छेदकता नैव भावनात्वस्य युज्यते।
परिष्कारे द्वितीयेऽस्तु तस्मादर्थस्य सा मता।।11।।
चमत्कारत्ववत्त्वस्य काव्ये न व्यवहारतः।
सिद्धिस्तस्मात् परिष्कारस्तृतीयो नैव युज्यते।।12।।
अत्र संशोधनं कार्यं चमत्कारो निवेश्यताम्।
चमत्कारीति काव्ये यद् व्यवहारो विलोक्यते।।13।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परिष्कारत्रयाधाराः परिष्कारा अनेकशः।
कर्तुं शक्यास्तथापीह कृता मुख्यास्त्रयोदश।।14।।
नव्यन्यायस्य वैचित्र्यमत्र कामं विजृम्भते।
तेन संतोष्टुमर्हन्ति नव्यन्यायविशारदाः।।15।।
काव्यत्वस्य परिष्कारे वैशिष्ट्यं रसचन्द्रिका।
प्रादर्शयत् तदेवात्र शोधपत्रे प्रदर्शितम्।।16।।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# शैवागमसन्दर्भे निगमागमयोरन्तस्सम्बन्धः

प्रो0 उमारानी त्रिपाठी*

भारतीयवाङ्मये निगमागमयोर्द्विधा परम्परा पुराकालादेव प्रवर्तमाना वरीवर्ति। भारतीयसंस्कृतेः प्राणभूतः विविधज्ञानविज्ञानानामाकरः वेद एव। पारम्परिक-शास्त्रमित्यर्थमुद्दिश्याऽऽगमशब्दोऽपि श्रुतिपर्याय इति वक्तुं शक्यते। यथोक्तं वाचस्पत्ये "आगमपदेन श्रुतिरिति उद्योतः। आगमा आद्युदात्ता इति।" मनुस्मृतौ कुल्लूकभट्टेन निगदितं यत् "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। श्रुतिप्रमाणको धर्मः। श्रुतिश्च द्विविधा-वैदिकी तान्त्रिकी च।"[1] पुनश्च "इतरेष्वागमाद् धर्मः"[2] इत्यत्र व्याख्याकारेण मेधातिथिना आगमशब्दोऽयं वेदवाचकत्वेन व्याख्यातः। अन्यच्च, मनुनैव प्रत्यक्षमनुमानं च शास्त्रं च विविधागममित्यादिरूपेण आगमशास्त्रस्य पुराणत्वमपि प्रतिपादितम्। आगम शब्दस्यार्थमनेकधा निरूपितं कोशग्रन्थेषु यथा–

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजानने।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते॥[3]

निगमागमयोः स्वरूपनिर्धारणे तु पौरुषेयापौरुषेयत्वमेव प्रमाणत्वेनाङ्गीक्रियते बुधैरिति। स्वामिकरपात्रमहोदयैरुक्तमिदम् यत्– "सम्प्रदायाविच्छेदे सति स्मर्यमाणकर्तृकत्वागमत्वम्", तथा च "सम्प्रदायाविच्छेदे सत्यस्मर्यमाण कर्तृकत्वं निगमत्वम्" अर्थात् आगमशास्त्रेषु परमेश्वरकर्तृकत्वमार्षत्वञ्च स्वीकृतम्, किन्तु निगम अनादिरपौरुषेयो वर्तते। उल्लेखनीयमिदं यत् शक्तिसङ्गमतन्त्रग्रन्थेऽभिहितं

वेदमूलाः क्रियाः सर्वाः वेदमूलाः परास्मृतिः।
वेदेन रहितं यत्तु तन्न कुर्याद् द्विजः क्वचित्॥[4]

पुराकाले आगमशब्दः वेदार्थकमासीत्; किन्तु कालान्तरे तन्त्रस्य कृते प्राचलत्। महाभाष्यकारेण पस्पशाह्निके "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"[5] इतीदं वचनमागमत्वेन निगदितम्। वाक्यपदीयकारेण भर्तृहरिणाऽपि स्वकीये ग्रन्थे आगमशब्दस्य प्रयोगो बहुलतया कृतः।[6] एवंविधा विविधप्रयोगा आगमपदेन निगमार्थकसूचका अपि दृश्यन्ते।[7] इत्थं निगमागमयोर्द्वयोः परस्परमन्तस्सम्बन्धः सुस्पष्टं प्रतीयते।

प्रकृतस्य विषयस्य प्रतिपादनात् प्राक् जिज्ञास्यमिदं यत् शैवागमदर्शने निगमागमयोः तात्पर्यं कीदृशमभिमतम्? अत्रोल्लेख्यमिदं यत् कश्मीरदेशस्थः प्रसिद्धः तान्त्रिक अभिनवगुप्तपादाचार्यः स्वकीयायाम् ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यां निगम इत्यस्य पदस्य तात्पर्यं धर्मस्वरूपं निश्चेतुं प्रवर्तमानं शास्त्रं निगम इति प्रतिपादयति।[8] पुनश्च तन्त्रालोके स एव कथयति यत् सकलः जागतिकपुरातनो व्यवहारः प्रसिद्धश्च यतः प्रवर्तते स आगम इति।[9] प्रसिद्धिस्तु तत्रैव व्याख्यातं यत्– प्रसिद्धिश्चावियोगेनोत्था प्रतीतिः शब्दात्मिका।"[10] अर्थात् प्रामाणिकजनैरुपदिष्टवचनानि प्रसिद्धिकोटिमुपस्थापयितुं शक्यन्ते। पुनश्च, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी

---

*संस्कृतविभागाध्यक्षचरः सङ्कायाध्यक्षः, मानविकीसङ्कायः, म. गां. काशीविद्यापीठम्, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्याख्ये ग्रन्थे आचार्यपादैरुक्तमिदं यत् आगमज्ञानं तु गुरोः शरीराच्छिष्यशरीरं संक्रामते।[11] अत्र अभिनवगुप्तपादाचार्यो भगवतोऽनन्तस्य वचनं प्रमाणत्वेनोपस्थापयति।।[12]

शैवागमनिगमयोर्द्वयोरेवाभिमतमिदं यत् परमतत्त्वभूतं चैतन्यं यद् ब्रह्म आत्मा शिवो वा कथ्यते तत् तु विश्वोत्तीर्णं विश्वमयञ्चोभयात्मकं वर्तते। उपनिषत्सु "नेति नेति, नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि वचनैः सह "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इत्यादिवचनानि परमात्मनः विश्वोत्तीर्णतां विश्वात्मकतां च प्रमाणयान्ति।[13] शैवागमग्रन्थेष्वपि शिवस्य विश्वोत्तीर्णत्वं विश्वात्मकत्वञ्च तद्वदेव स्वीक्रियते।[14]

समुल्लेखनीयमिदं यत् श्रुतिषु "स वै नैव रेमे.....तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ साम्परिष्कौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत ततः पतिश्च पत्नी च भवताम्"।[15]

तथा 'आनन्दाद्ध्यैव हि खल्विमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादिवचनैः शक्तेः स्पन्दनस्य वाऽवधारणा सन्निहिता दरीदृश्यते। श्वेताश्वतरश्रुतिस्तु "मायां तु प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरम्"[17] तथा च, "पराऽस्य शक्तिः विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च"[18] इति रूपेण शिवशक्त्यात्मकत्वं जगति स्फुटतया प्रकाशयति। एतदेव सत्यं शैवागमदर्शनेऽपि यथावत्स्वीकृतं प्रतीयते। तत्र एक एव शिवः परमतत्त्वं स्वतन्त्रः प्रकाशः। यथोक्तं तन्त्रसारे–

**आत्मा प्रकाशवपुरेष शिवः स्वतन्त्रः**
**स्वातन्त्र्यनर्मरभसेन निजं स्वरूपम्।**
**संच्छाद्य यत्पुनरपि प्रथयेत पूर्णं**
**तच्च क्रमाक्रमवशादथवा त्रिभेदात्।।[19]**

---

1. मनुस्मृतिः (2.1)
2. तत्रैव 1.82 श्लोके मेधातिथिव्याख्या द्रष्टव्या।
3. वाचस्पत्यम् पृ. 616
4. शक्तिसङ्गमे कालीखण्डे (8.31-32)
5. महाभाष्ये पस्पशाह्निकम्
6. वाक्यपदीये–शिष्टेभ्य आगमात् सिद्धाः (1.27) न चागमादृते धर्मः (1.30), आगमेस्तमुपसीनः (1.41), न जात्वकर्तृकं कश्चिदागमं प्रतिपद्यते(1.133), भिन्नैरागमदर्शनैः (2.492)
7. इत्यपि निगमो भवति–निरुक्तवचनम्
8. वेद्यं धर्माद्युपायं निश्चितं गमयतीति निगमो वेदः। –ई० प्र० वि० भाग-1 (पृ० 15)
9. इह तावत् समस्तोऽयं व्यवहारः पुरातनः
   प्रसिद्धिमनुसन्धाय सैव आगम उच्यते। –तन्त्रालोकः (35.1-2)
10. तन्त्रालोकः (35.19) तथा च तत्रैव (1.18)
11. आगमो हि नामायं शब्देन संक्रान्तिशरीरः। –ई० प्र० वि० भाग-3 (पृ. 89)
12. "यथाह– भगवाननन्तः परत्रस्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते योगसूत्र–भाष्ये (1.7), वचनमिदमानुपूर्वीरूपेणोपलभ्यते" ई. प्र. वि० भाग-3 (पृ. 89)
13. द्रष्टव्यम् – बृ.ज. (2.3.6), तैत्ति.उ. (2.6.1), बृ.उ. (4.4.19), छा.उ. (3.14.1)
14. तन्त्रसारे चतुर्थाह्निके (पृ. 95) – शिवान्तेभ्यः तत्त्वेभ्यः यदुत्तीर्णमपरिच्छिन्नसंविन्मात्ररूपं तदेव परमार्थः तद्वस्तुव्यवस्थास्थानम् तत् विश्वस्य ओजः, तेन प्राणिति विश्वम्, तदेव च अहम्, अतो विश्वोत्तीर्णो विश्वात्मा च अहम् (पृ. 95)
15. बृ.उ. (1.4.3)
16. तैत्ति. उ. (3.6) "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्"
17. श्वे. उ. (4.10)
18. श्वे. उ. (6.8)
19. तन्त्रसारे उपोद्घाते (पृ. 25)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शैवागमे "चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः"[20] इत्यनेन वचनेन शिवशक्त्योरविनाभावं प्रकाशविमर्शात्मकत्वमभिहितम्। पुनश्च, "तन्त्रसारे विशदं निरूपितं यद्– "यया इदं शिवादिधरण्यन्तमविकल्प्य संविन्मात्ररूपतया बिभर्ति च पश्यति च भासयति च परमेश्वरः साऽस्य श्रीपराशक्तिः।"[21]

शैवागमदर्शने चैतन्यं स्पन्दनात्मकं वर्तते न तु निष्क्रियम्। अत्र तत्स्वरूपं ज्ञान– क्रियात्मकम् अर्थात् प्रकाशविमर्शात्मकं वरीवर्ति, अत्र निगमागमयोर्द्वयोरेव चिन्तनपद्धत्यामेकमन्तरं स्फुटतया प्रतिभाति; यतोहि उपनिषद्वाङ्मये परमचैतन्ये क्रियात्मकतां स्वीकुर्वन्नपि "प्रज्ञानं ब्रह्म"[23] इत्यादिना ज्ञानस्य प्राधान्यं परिलक्ष्यते; परन्तु शैवागमतन्त्रे "आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्, "आनन्दरूपममृतं यद् विभाति" इतीयमुपनिषदामवधारणा स्पन्दक्रियात्वेन परिपुष्णाति।[24] अभिनवगुप्तपादाचार्यः तन्त्रसारे उपोद्घाते प्रतिपादयति– "स्वतन्त्र एकः प्रकाशः। स्वातन्त्र्यादेव च देशकालाकारावच्छेदविरहात् व्यापको नित्यः सर्वाकारनिराकारस्वभावः। तस्य च स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः, तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः, प्रकाशरूपा चिच्छक्तिः आमर्शात्मकता ज्ञानशक्तिः, सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः इत्येवं मुख्याभिः शक्तिभिर्युक्तोऽपि वस्तुतः इच्छाज्ञानक्रियाशक्तियुक्तः अनवच्छिन्नः प्रकाशो निजानन्दविश्रान्तः शिवरूपः।"[25]

प्रसङ्गेऽस्मिन् समुल्लेखनीयमिदं यद् उपनिषद्वाङ्मये शिवः महेश्वरः कार्यकारणकलातीतः स्वतन्त्रः निरपेक्षः जगत्कर्तेति वर्ण्यते।[26] शिवस्य पराशक्तिः स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियेति वर्तते।[27] महेश्वरः कालः कलातीतः अकलोऽप्यस्ति।[28] स शिवः कलासर्गकर इति स्मर्यते।[29] सः स्वेच्छया जगत्सर्वं सृजति। शैवागमतन्त्रेऽपि सर्वमिदं यथावत्स्वीकृतं वर्तते। उपनिषत्सु प्रतिपादितमखण्डमद्वैतमनन्तमानन्दरूपं ब्रह्म एव शैवागमे ईश्वराद्वयत्वेनाभिमतं विद्यते। इत्थं निगमागमयोर्द्वयोः परस्परं समन्वयमेव वरम्। वस्तुतः द्वयोरेव प्रयोजनं तु एकमेव। अनयोः साधनाप्रक्रियाऽपि मूलत एका वर्तते।

समुल्लेखनीयमिदं यद्यथा वेदो गुरुशिष्यपरम्परयाऽधिगम्यते अत एव श्रुतिरिति संज्ञयाऽभिहितो विश्वे तथैव आगमशास्त्रमपि गुरुशिष्यपरम्परयैव श्रुतिवल्लोकेऽस्मिन् प्रवर्तते। निगमागमयोर्द्वयोः तात्त्विकमभेदमुरीकृत्य प्रोक्तमिदं यत्

**"श्रुतिमूलकमिदं तन्त्रं प्रमाणं कल्पसूत्रवत्।"[30]**

यथोपनिषद्वाङ्मये प्रोक्तम्

**"समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"[31]**

"तस्मै स विद्वानुपसन्नाय प्राह।"[32]

तथा च, श्रीमद्भगवतगीतायामपि निगदितमिदं यद्–

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥[33]**

---

20. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सू. 1) 21. तन्त्रसारे चतुर्थे आह्निके (पृ. 131)
22. चैतन्यमात्मनो रूपं सिद्धं ज्ञानक्रियात्मकम्।
तस्यानावृतरूपत्वात् शिवत्वं केन वार्यते।। –शि. सू. वार्तिक (1.5)
23. ऐ. आ. (5.3) 24. तै. उ. (3.6.1) तथा मु. उ. (2.2.7)
25. तन्त्रसारे उपोद्घाते (पृ. 21) 26. श्वे. उ. (6.7)
27. तत्रैव (6.8) 28. तत्रैव (6.5) 29. उ. (5.14)
30. आगमप्रामाण्यम् (पृ. 84) पादटिप्पण्याम्
31. मु. उ. (1.2.12) 32. तत्रैव (1.2.13) 33. गीता (4.34)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथैव शैवागमदर्शनेऽपि गुरुशिष्यपरम्परया ज्ञानं प्रचलति। शैवागमशास्त्रं तु पारमेश्वरशास्त्रमिति कथ्यते।[34] अत्र गुरोरुपदेशस्तु परमं प्रमाणं भवति। अस्मिन् सन्दर्भे भास्कररायाभिमतमस्ति "यद्यथा वैदिकसाहित्ये प्रथमभागस्योत्तरवर्तिनः श्रौतसूत्राणि धर्मसंहिताश्च सन्ति तथैव वेदानामन्तिमे भागे उपनिषदामुत्तरार्द्धे तन्त्रसाधना विद्यते। अनेन निगदितमिदं यत् "तेषु वैदिका निगमपदवाच्यानि परमेश्वरस्य मुखादुद्भूतत्वादाज्ञारूपाणि।[36] शैवागमनिगमयोरत्यन्तं साम्यप्रतिपादकाः अनेके सन्दर्भाः प्राप्यन्ते ये तूभयत्र समानत्वेन सन्ति। ब्रह्ममीमांसाभाष्ये स्पष्टतया समुल्लिखितं वर्तते–

**वयं तु वेदशिवागमयोर्भेदं न पश्यामः। वेदेऽपि शिवागम इति व्यवहारो युक्तः। उभयोरेक एव शिवः कर्ता।[37]**

प्रसंगेऽस्मिन् एतत्तथ्यमुल्लेखनीयं यत् तन्त्रागमकृते अवधारणेयं सुप्रसिद्धा वर्तते यत्तत्रथितं ज्ञानं तु वस्तुतो योगिजनैरनुभवगम्यं ज्ञानमिति। अभिनवगुप्तपादाचार्यैरुपवर्णितमिदं यत्तन्त्रमार्गोऽनुभवसम्प्रदायमूलको वर्तते "अनुभवसम्प्रदायोपदेशपरिशीलनेन"[38]

तत्रोक्तमिदं यदैतदनुभवति बौद्धिकमतीन्द्रियं भवति न तु सामान्यमिन्द्रियात्मकमिति। अस्माकमन्तश्चितिरेव ईश्वरः तद्बोध एव शब्देन प्रकाशितः सन् आगमत्वेन परिकल्प्यते।

शैवागमदर्शने शिवोऽहमिति पूर्णाहन्ताविमर्श एव मोक्षहेतुः। तत्प्राप्तये योगचर्या साधनत्वेन स्वीकृता। समुल्लेख्यमिदं यन्मोक्षोपलब्धिकृते निगमागमयोर्द्वयोरेव साधनाप्रक्रिया साधारणी भवति। शैवागमपरम्परायाम् आमूलाधारात् सहस्रारपर्यन्तं षट्चक्रभेदनक्रियया शिवशक्तिसामरस्योपलब्धिजनितपरमानन्दावाप्ति एव परमं प्रयोजनं वर्तते। वैदिकवाङ्मयेऽपि तत्त्वमस्यादिमहावाक्यैः समुपदिष्टः साधकः 'अहं ब्रह्मास्मि' इति रूपेण ब्रह्मात्मैक्यबोधावाप्तये योगपद्धतिमाश्रित्य प्रयतते।[39] कठोपनिषदि प्रतिपादितमिदं यत् साधकः सुषुम्णानाड्या मूर्द्धानमभि उत्क्रमणादेवामृतत्वमेति।[40] उपनिषत्सु निगदितमिदं यज्जिज्ञासुना स्वातन्त्र्येण ब्रह्मज्ञानान्वेषणं न कुर्यात् यतो हि "आचार्यवान् पुरुषो वेद।"[41] अनेन स्पष्टं भवति यद् वेदान्तविज्ञानं गुरुशिष्यपरम्परयैव प्राप्तुं शक्यते। शैवागमपरम्परायामपि पूर्णाहन्ताविमर्शः दीक्षाक्रमेण मन्त्रोपदेशेन परमगुरुणा शिवेन परमकृपया शक्तिपातपूर्वकमेवाधिगन्तुं शक्यते। यथोक्तं तन्त्रसारे अभिनवगुप्तपादाचार्यैः "यदा खलु दृढशक्तिपाताविद्धः स्वयमेव इत्थं विवेचयति सकृदेव गुरुवचनमवधार्य।"[42] अत्र शैवागमेऽपि सोऽहमिति विमर्शः प्रत्यभिज्ञारूपः स्वीक्रियते। यथोक्तं महार्थमञ्जर्याम्–

**या स्वस्वरूपे विश्रान्तिर्विमर्शः सोऽमित्ययम्।**
**प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तितः॥ –( महार्थमञ्जरी पृ. 13 )**

शैवागमदर्शनेऽपि साधकैः "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति" इति श्रुतिवचनमनुसृत्य साधनासरणिः अङ्गीक्रियते। यथोक्तं विज्ञानभैरवग्रन्थे–

---

34. शास्त्रं च परमेश्वरभाषितमेव प्रमाणम् तन्त्रसारे प्रथमाह्निके (पृ. 13)
35. मालिनी विजयोत्तर तन्त्र 12 आलोकः 12 40,50 तथा 1/44
36. उ0 भास्कररायः। 37. द्रव्टव्यम् ब्रह्ममीमांसाभाष्ये 2/2/28 38. परात्रिंशिकाविवरणम् पृ 162
39. 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो'-छा. उ. (6.8.7) तथा 'अहं ब्रहास्मि'-बृ. उ. (1.4.10)
40. यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्थेह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावनुशासनम् ॥
शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानभिनिः सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वगन्या उत्क्रमणे भवन्ति। –क. उ. (3.15-16)
41. तन्त्रसारे द्वितीयाह्निके (पृ. 29)
42. विज्ञानभैरव, 39



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजानने।
प्रणवादिसमुच्चारात् प्लुतान्ते शून्यभावनात्।
शून्यया परया शक्त्या शून्यतामेति भैरवि।।[43(क)]
तथा च,
पिण्डमन्त्रस्य सर्वस्य स्थूलवर्णक्रमेण तु।
अर्धेन्दुबिन्दुनादान्तशून्योच्चाराद् भवेच्छिवः।।[43(ख)]

निगमागमयोरन्तस्सम्बन्धमुद्दिश्यैव समुल्लिखितं महार्थमञ्जर्याम्-

उल्लोकानन्दसुधाशीधुरसोद्वेजितेन हृदयेन।
अभिलषति लोकयात्रा तिन्तिणिचर्व्वणरसान्तरं योगी।।[44]

योऽयमुल्लोकः "स एको ब्रह्मण आनन्दः" इत्युपनिषद्प्रक्रियया मनुष्योः गन्धर्वाद्यवच्छिन्नप्रमातृहृदयानन्दातिशायी पूर्णम्भावभावना चमत्कारसारः स्वान्तर्विश्रान्तिसम्पत्सौन्दर्यमात्रस्वपरिस्पन्दः कश्चिदाह्लादोत्कर्षः।[45]

उपर्युक्तविन्यस्तसाक्ष्यानुशीलनेनेदं स्पष्टं परिज्ञायते यन्निगमागमयोरन्तस्सम्बन्धः परस्परपूरकत्वेन वर्तते यस्त्वनादिकालादेवानवच्छिन्नः संदृश्यते यतोहि द्वयोरेव प्रयोजनं त्वनन्यमेव। वस्तुतः निगमोऽपि प्रक्रियादशायामागमत्वेन परिणमते अतः निगमागमयोः समन्वय एव वरमिति वक्तुं शक्यते।

******

43. विज्ञानभैरव, 42
44. महार्थमञ्जरी, श्लोक 62
45. तत्रैव, श्लोकव्याख्या, पृ. 159·



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# अद्वैतवेदान्ते कर्मयोगसमीक्षणम्

डॉ. धनञ्जयकुमारपाण्डेयः*

श्रीमच्छङ्करभगवत्पाददर्शनदिशा श्रीपशुपतिबाबाख्यविध्यांयध्यामभिवर्ण्यते यथावेदान्तं कर्मयोगस्वरूपम् इदं तावद् वेदान्तदर्शनविद्भिरत्यन्तं स्पृहणीयमिति धियाऽवश्यमेव निरूपणीयम्। चतुर्विधपुरुषार्थेषु मोक्षस्यैव नित्यत्वमामनन्ति वेदान्तवाक्यानि। धर्मार्थकामानां तु त्रयाणां मोक्षोपपत्तये सार्थक्यमित्यपि सङ्गिरन्ते श्रुतयः। तत्र तत्र उपषिद्वाक्यतात्पर्यविनिश्चयात् कर्मानुष्ठानबुधैः पारङ्गतैराद्रियते। सर्वोऽप्यत्रत्यः शास्त्रार्थविषयोऽवतार्यते स्वबुद्धिनिर्मलत्वाय श्रीविश्वनाथप्रसादाय च।

प्रथमं तावद् वेदान्तमीमांसाया सोऽपि पक्षो वक्तव्यो येनैतस्य सङ्गतिः स्यात् श्रीमद्भगवद्गीताप्रस्थाने भगवता श्रीकृष्णेनार्जुनाय महात्मने द्वे निष्ठे कथिते। ततोऽपि कर्मयोगेनार्जुनस्य सिद्धिरित्यपि पार्थो बोधितः। एतस्य बीजं भवति–"तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।"[1] इति वाक्यम्। नियोजयसीति कथनेन कर्मयोग एवार्जुनाय सिद्धिप्रद इति दृश्यते। एवञ्चात्रोपनिशद्रीत्यैवावेद्यते सर्वजनसाधारणः पक्षः। मोक्षकामस्यापि कार्यं भवति कर्मानुष्ठानम्। मोक्षसम्पदुपपत्तये साधनसम्पत्तेरावश्यकत्वमभ्यपेक्ष्यते। अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति बादरायणसूत्रे अथेति शब्देन साधनसम्पत्तिः निर्दिश्यते। शमादिसम्पन्नस्य पुरुषस्य कृतेऽपेक्ष्यत एव कर्मयोगः। न हि कर्मयोगमन्तरा वेदान्तविद्यायां प्रवेशो मनांगपि शक्य इति प्रतीयते। अतश्च तदर्थाविष्करणाय कर्मयोगो युज्यते।

कर्मशब्देनात्र किं ग्राह्यमित्यपि विचारवेलायां निर्धारिणीयं तत्स्वरूपोपपत्तये। "कर्म क्रियेति"[2] अमरकोशप्रतिपादनेन क्रियाया अपि कर्मपदेनाभिधानं दृष्यते। अथ च क्रिया योगोऽपि वक्तुं शक्यते। क्रियते यत् तत्कर्म इति–"डुकृञ् करणे" इत्यस्माद्धातोः "सर्वधातुभ्यो मनिन्"[3] इत्युणादिसूत्रेण कर्मशब्दो निष्पद्यते। तत्रैव तत्त्वबोधिन्यां व्याख्यायां "कर्मव्याप्ते कियायां च पुंनपुंसकयोर्मतम्"[4] इति व्याख्यातमस्ति। अयं तु व्युत्पत्तिनिमित्ततोऽर्थः कर्म–शब्दस्य। कर्मणः कारकत्वाभिधानपक्षे "कर्तुरीप्सिततमं कर्म"[5] इति सूत्रेण कर्तुः क्रियया गमनादिलक्षणया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसज्ञां भजते, येन ग्रामादीनां कर्मत्वं सिध्यति। अयं

---

*आचार्यः, वैदिकदर्शनविभागः, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता (3.1)
2. अमरकोशः, तृतीयकाण्डे, सङ्कीर्ण वर्गे–1
3. उणादिसूत्रम्– (4.594)
4. तत्रैव तत्वबोधिन्याम्
5. पाणिनि सूत्रम्– (9.4.49)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पक्षोऽपि सर्वत्र पाणिनिमर्यादया नित्यनैमित्तिकादिकर्मसु लब्धप्रसरो दृष्यते। उत्क्षेपणादिलक्षणकर्मणामत्र कर्मशब्दाभिधानमनावश्यकमिति प्रतीयते। अत एवेप्सिततमत्वं घटादीनां भगवता भाष्यकृताऽपि समर्थ्यते। तद्यथा–

**न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।[1]**

इत्यस्य भाष्ये– नापि कर्माणि रथघटप्रासादादीनीप्सिततमानि लोकस्य सृजत्युत्पादयति इति व्याख्यातमस्ति। एवञ्चेप्सितमं कर्म इति कर्मशब्दार्थो युज्यते। देहेन्द्रियादिव्यापारस्यापि कर्मत्वं युज्यते। कर्तुः सर्वाः क्रियाः कर्मपदेन बोध्यन्ते, तथापि शास्त्रविहितस्यैव कर्मत्वं बोद्धव्यम् एवं रीत्या शास्त्रप्रतिपादितं निर्दिष्टमेव कर्म इत्यभिधीयते। योगपदसान्निध्यात् तस्यैव निरूपणं युक्तमिति प्रतिभाति। तथा च भगवतोच्यते–"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।"[2] इति।

एतेन श्रौतस्मार्तकर्मणां ज्ञाने विनियोगो युज्यते। यज्ञदानतपसां च सर्वेषां कर्मणां ब्रह्मणि तात्पर्यं ब्रुवता भगवता कर्मणः स्वरूपमिति स्पष्टं कथितम्। **"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।"** इति भगवद्वचनेन कर्म श्रूयते। अत्र भाष्यकृद्वचनेन कर्म नाम देहादिचेष्टा इति प्रतिपादनेन क्रियाणामपि कर्मशब्देनामिधानं दृश्यते। तथापि कर्मणः यत्स्वरूपं तत्सर्वमग्रे अपि यथाविषयं प्रतिपादयिष्यते।

योगशब्दोऽपि प्रसङ्गेऽस्मिन् ज्ञातव्यः। कोऽयं योगशब्दार्थ इति जिज्ञासायां तावद् योगशब्दो निगद्यते तदर्थश्च।

योजनं योग इत्यत्र युज् समाधौ, युजिर योगे इत्याभ्यां धातुभ्यां भावे (3.3.18) इति पाणिनिसूत्रेण सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये घञ्प्रत्यये कृते सति योगशब्दो निष्पद्यते। अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (2. 3.19) इत्यनेन सूत्रेण युज्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्याऽपि योगशब्दो भवति करणार्थः। युज्यतेऽसौ योग इत्यपि भवितुं शक्नोति कर्तृभिन्नेऽर्थे कर्मणि। किन्त्वत्र कर्मयोगप्रतिपादनायां करणार्थक एव शब्द आचार्यैर्व्याख्यायते। अभरकोशे "योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु"[3] इत्यनेन वाक्येन योगषब्दोऽभिलप्यते। एतस्य रामाश्रभीव्याख्यायाम्–

**योगोऽपूर्वार्धसम्प्राप्तौ संगतिध्यानयुक्तिषु।**
**वपुःस्थैर्यप्रयोगे च विष्कम्भादिषु भेषजे।।**
**विश्रब्धघातके द्रव्योपायसंनहनेष्वपि।**
**कार्मणेऽपि च ..... ..... ..... .....।।[4]**

इत्युद्धृतमस्ति। कोऽयं पुनः योगशब्दार्थ इति निरूपणायां योगदर्शनाभिमतोऽपि योगशब्दो द्रष्टव्यः। अथ योगानुशासनमिति[5] सूत्रे वर्णितस्य योगस्य स्वरूपं स्वयमेव योगश्चित्तवृत्तिनिरोध[6] इत्यनेन पातञ्जलसूत्रेण

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता– (5.14)
2. तत्रैव (4.33)
3. अमरकोशः नानार्थवर्गे (3.22)
4. तत्रैव रामाश्रमीव्याख्यायाम्
5. योगसूत्रम्
6. योगसूत्रस्यादिमस्य व्यासभाष्ये



CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्फुटीक्रियते। युज् समाधौ इत्येतद्धातुनिष्पन्न एवात्र योगोऽप्युपेयो नान्यः संयोगार्थः। "योगः समाधिः, स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः"[1] इति तदीयभाष्यवचनेन समाध्यर्थः प्रकाश्यते। अत एव तत्त्ववैशारदीटीकायां भगवान् वाचस्पतिमिश्रो निजगाद–

"योगः समाधिरिति युज समाधावित्यस्माद् व्युत्पन्नसमाध्यर्थो न तु युजिर योग इत्यस्मात् संयोगार्थ इति।"[2] अनेन योगदर्शनाभिमतस्यैतस्य कर्मयोगे नास्ति प्रसङ्गः।

अत्रेदमवधारणीयम्–श्रीमद्भगवद्गीतायां वर्णितयोगशब्दानां तत्तद्रीत्या यथाप्रकरणमर्थो बोध्यः। तृतीयेऽध्याये तु श्रुतिविहितकर्मणामेव विनियोगो युज्यते। अद्वैतवेदान्तविज्ञाने कथं कर्मणां योगो वा विनियोगो वेति परामृश्यते। सर्वस्यास्य गीताशास्त्रस्य निर्विशेषवस्तुपरत्वात् कथमस्य तेन सह सङ्गतिरिति धिया अग्रे प्रकाश्यते।

ब्रह्मजिज्ञासायाः प्राग् यन्नित्यानित्यवस्तुविवेकादिसाधनचतुष्टयं श्रूयते तस्य किं प्रयोजनमिति प्रथमं प्रतिपादनीयं तदनन्तरं हि ब्रह्मजिज्ञासोत्पद्यते । अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति सूत्रे अथशब्दस्य आनन्तर्यार्थकत्वं प्रतिपाद्यते। अत एव भामतीपतिराह–

"यस्मिन्नसति ब्रह्मजिज्ञासा न भवति सति तु भवन्ती भवत्येव" इति। तदन्ते च "सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः प्राग्भवीयादैहिकाद् वा वैदिकात्कर्मणो विशुद्धसत्त्वस्य भवत्यनुभवोपपत्तिभ्याम्"[3] इति। अतश्च भामतीनिरूपणेन विशुद्धसत्त्वोत्पत्तये वैदिकस्य कर्मण आवश्यकत्वमापाद्यते। अयमेव कर्मयोगपक्ष आश्रीयते वेदान्तविद्यायाम्। एतदग्रेऽपि प्रपञ्चयिष्यते यथावसरम्।

अधुना श्रीमद्भगवद्गीताप्रस्थानबलेन कर्मयोगपक्षः समीक्ष्यते। श्रीमद्भगवद्गीतायां तावत् श्रूयते–

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।[4] इति।।

अस्यार्थः अत्र सांख्यशब्देनौपनिषदः पुरुषो निर्विशेषो निगद्यते। सम्यग्ज्ञायते ख्यायते प्रतिपाद्यते वा तात्पर्यविषयत्वेन सर्वधर्मविवर्जिततया ब्रह्मतत्त्वमनयेति संख्या नामोपनिषत् तयैवोपनिषता सर्वश्रुतिसमन्वयबलेन प्रतिपाद्यते बोध्यते यः स एव सांख्योऽद्वितीयलक्षण आत्मा कूटस्थः तस्मिन् सांख्ये बुद्धिस्तन्मात्रविषयं ज्ञानं ब्रह्मसाक्षात्काराख्यं सर्वप्रपञ्चनिवर्तकं तुभ्यं पूर्वमुक्तम् इत्यर्थः। अयमेव मुख्यो वेदान्ताभिमतः पक्षः। "नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय"[5] इति श्रुतिप्रदर्शितः। एतदुपपत्तये एव कर्मयोग आवश्यको येन ज्ञानकर्मणोः समुच्चयपक्षः स्वत एव निरस्तो वेदितव्यः। उक्तमेतत् श्रीमधुसूदनस्वामिभिः–

"यदि पुनरेवं मयोक्तेऽपि तवैष बुद्धिर्नोदेति चेच्चित्तदोषात् तदा तदपनयेनात्मतत्त्वसाक्षात्काराय कर्मयोग एवं त्वयानुष्ठेयः।"[6] इत्युक्तम् एवञ्च साधनभूतस्यास्य कर्मयोगस्य साध्यं ज्ञानमेवाद्रियते।

---

1. योगसूत्रे तत्त्ववैशारद्याम् (1.1)
2.–3. भामती, 1.1..1.1.
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.39.
5. शुक्ल यजुर्वेद, 31.18 एवं श्वेताश्व0 3.8
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2.39 मधुसूदनीव्याख्यायाम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्य श्लोकस्य व्याख्यानावसरे श्रीमधुसूदनसरस्वतीभिरग्रे निगद्यते–"तुशब्दः पूर्वबुद्धेर्योगविषय–त्वव्यतिरेकसूचनार्थः। तथा च शुद्धान्तःकरणं प्रति ज्ञानोपदेशःशुद्धान्तः करणं प्रति कर्मोपदेश इति कुतः समुच्चयशङ्कया विरोधावकाश इत्यभिप्रायः"[1] इति।

अथ च कर्मयोगस्य कि महात्म्यमिति प्रस्तुतव्याख्यानेन स्वयमेव सिध्यति। अत एव परमात्मनोच्यते–

लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।[2] इति

अत्र युज्यते ब्रह्मणाा ज्ञानेनात्मना इति योगः, ज्ञानमेव योगः, ज्ञानयोगः। अन्तःकरणशुद्ध्यादिना युज्यतेऽनेनेति योगः, कर्मैव योगः, कर्मयोगः। तथा चोभयत्रापि योगप्रभावो वेदितव्यो भवति , क्वचिद् योगेन साक्षात् ह्यवाप्यते क्वचित्तु विशुद्धसत्त्वातिशयद्वारा तत्प्राप्तिरिति विवेके। अयं कर्मयोगो धर्मयोगोऽपि वक्तुं शक्यते। धर्मानुष्ठानस्य फलं भवति अन्तःकरणस्य विशुद्धिः ततश्च महावाक्यश्रवणमनननिदिध्यासनानन्तरं चिल्लक्षणं स्वप्रकाशं ब्रह्म स्वयमेव प्रकाश्यते। अत एव समस्तस्यास्य शास्त्रस्य संगतिः प्रदर्श्यते तृतीयाध्यायस्यारम्भे श्रीसरस्वतीमहाभागैः "तथाहि आदौ निष्कामकर्मनिष्ठा, ततोऽन्तःकरणशुद्धिः, ततः शमदमादिसाधनपुरःसरः सर्वकर्मसंन्यासः ततो वेदान्तवाक्यविचारसहिता भगवद्भक्तिनिष्ठा ततस्तत्त्वज्ञाननिष्ठा तस्याः फलं च त्रिगुणात्मकाविद्यानिवृत्या जीवन्मुक्तिः प्रारब्धकर्मफलभोगपर्यन्तं तदन्ते च विदेहमुक्तिः[3] इति सन्न्यरूपि।

अत्रेदं वक्तव्यम्– श्रुतिर्हि वक्ति "आत्मा वाऽरे द्रव्टव्यः" इति। अनयोपनिषता, ब्रह्मज्ञानमेव सर्वानर्थनिवर्तकमिति श्रूयते। जन्मजरामरणादिसर्वोपद्रवानामात्यान्तिकनिवृत्तये सम्यग् ज्ञानमपेक्ष्यते। सम्यग्ज्ञानादेव मोक्षावाप्तिरिति श्रुतीनां सर्वासां विनिश्चयः। तच्च सम्यग् ज्ञानं ब्रह्मविषयमेकविधमेवेति सर्वैरपि अभ्युपेयते। तत्त्वसम्यग्ज्ञानं केनोपायेन जायेत इति शास्त्राणि अधिकारभेदं पुरस्कृत्य निर्दिशन्ति।

श्रीनीलकण्ठोऽपि योगवासिष्ठवचनस्य सारं प्राह–

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव।
योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्।।
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित्तत्त्वनिश्चयः।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमः शिवः।।[4] इति

उद्धरणेन योगशब्दोक्तविषयेण कर्मयोग एव बोधव्यः। वेदान्तसारग्रन्थेऽपि साधनचतुष्टयप्रतिपादनवेलायां– "नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता[5] इत्यभाणि सदानन्दयतिवर्येण। एवं रीत्या कर्मयोग उपायत्वेन वर्ण्यतेऽन्तःकरणशुद्ध्यर्थं वेदान्तमीमांसायामस्यां भगवदनुमोदितायाम्।

---

1. तत्रैव 2.39 इत्यस्य मधुसूदनीव्याख्यायाम्।
2. श्रीमद्भगवद्गीता (3.3)
3. श्रीमद्भगवद्गीतायाः तृतीयाध्यायस्य आरम्भे, मधुसूदनीव्याख्यायाम्।
4. श्रीमद्भगवद्गीतायाः 3.3, नीलकण्ठकृतव्याख्यायाम्।
5. वेदान्तसारे, अधिकारिनिरूपणे।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय इति भगवद्वचनेन, श्रुतिनिर्दिष्टात्मज्ञाने नित्यनैमित्तकं कर्म विनियुज्यते। यतो हि "सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते"[1] इति गीतावचनमेवाप्रमाणभूतमिति वेद्यम्। एवञ्च सर्वं हि कर्म ब्रह्मात्मैक्यसाक्षात्कारे पर्यवस्यति। ईशावास्योपनिषद्यपि ईशावास्यमिदं सर्वमित्यादिमन्त्रेण ज्ञाननिष्ठैवोच्यते। अनन्तरञ्च द्वितीयेन मन्त्रेण तत्रत्येन–

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः[2]"

इत्यादिना कर्मनिष्ठैव बोध्यते। प्रवृत्तिलक्षण एव धर्मो कर्मयोगेनाभिवर्ण्यते। ततश्च कर्मज्ञानसमुच्चयः केनापि प्रकारेण न सम्भवति। "ज्ञानकर्मणोर्विरोधं पर्वतवदकम्प्यं यथोक्तं न स्मरसि किमिति" श्रीमद्भगवत्पादवचनमेव तयोः पार्थक्यं विशिनष्टि। उक्तं हि तत्र–

द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तिश्च विभावितः।।

इत्यादि पुत्राय विचार्य विनिश्चितमुक्तं व्यासेन वेदाचार्येण भगवता[3] इति। एतेन प्रवृत्तिलक्षणधर्मस्यैव श्रीमद्भगवद्गीतायां कर्मयोग इति संज्ञया नाम्ना वा प्रकाशनं श्रुत्यभिप्रेतमस्ति। एतस्य कर्मयोगस्यापि पर्यवसानं चिति ब्रह्मणि ज्ञातव्यम्।

अत्र श्रीगीतायां द्वितीयाध्यारम्भे श्रीभगवत्पादीयभाष्यारम्भे श्रीशिवेन केवलादात्मज्ञाननिष्ठामात्रादेव कैवल्यप्राप्तिरित्यगादि। तत्रैव "कर्मण्येवाधिकारस्ते" इत्यादिवचनैः ज्ञानकर्मसमुच्चयपक्षोऽपि पूर्वपक्षत्वेनाशङ्कितः। सिद्धान्तपक्षं ब्रुवद्भिराचार्यैरुक्तम्–

"एतस्या बुद्धेर्जन्मनः प्रागात्मनो देहादिव्यतिरिक्तत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यपेक्षो धर्माधर्मविवेकपूर्वको मोक्षसाधनानुष्ठाननिरूपणलक्षणो योगः, तद्विषया बुद्धिर्योगबुद्धिः सा येषां कर्मिणामुचिता भवति ते योगिनः।"[4] इति।

तस्येदं समीक्षणम् न कदाचिदपि कर्मानुष्ठानैः मोक्षः सम्भाव्यते। मोक्षस्य नित्यत्वात् तेन तेन कर्मणा अनित्यभूतेन तत्प्राप्तिर्विरुध्यते। "अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन" इति मैत्रेयीब्राह्मणवाक्यं प्रकाशयद्भिराचार्यैः– "अमृतत्वस्य तु नाशा मनसाप्यस्ति वित्तेन वित्तसाध्येन कर्मणेति" इति निरूपितम्। अतश्च नायं मोक्षः परमसुखलक्षणः साध्यः कर्मणेति मन्तव्यम्। कर्मणां तु अग्निहोत्रादिश्रौतलक्षणानामन्यदेव फलं श्रूयते, तद्विपरीतं च ब्रह्मविद्याफलमिति विवेकः। प्रत्यगात्मैव ब्रह्मविद्याया विषयः, कर्मणां तु भिन्नं भिन्नमनित्यं फलं दुःखलक्षणं, जायापुत्रवित्तादिलक्षणमिति महान् भेदः। अत एव बृहदारण्यकभाष्ये भवन्तो भाष्यकृतो जगदुः–

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः।।[5] इति।।

---

1. तत्रैव 4.33.
2. इशोपनिषद्, 2
3. तत्रत्यं शाङ्करभाष्यम्।
4. श्रीमद्भागवद्गीताभाष्यम्, 2.11.
5. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2.4.1.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतेनापि कर्मणां न साध्यो मोक्षः। ननु तर्हि कर्मणां सर्वथाऽनुपयोग एवेति स्यात् तथा च ''तमेतमात्मानं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकनेति'' श्रुतिरूपरुध्येत इत्याशङ्कायां सत्यां श्रीवाचस्पतिमिश्रगुरवो वदन्ति ''न विरुध्यन्ते। आरादुपकारकत्वात्कर्मणां यज्ञादीनाम् तथाहि–तमेतमात्मानं वेदानुवचनेन नित्यस्वाध्यायेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति, वेदितुमिच्छन्ति, न तु विदन्ति''[1] इति, प्रतिपादनेनैतेन कर्मणां विद्यायां नाङ्गत्वमित्यवधारणीयम्।

इदं तावत्सुधिय आमनन्ति यत् समेषां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यानां निर्विशेषब्रह्मणि तात्पर्यं नान्यत्र इति। अस्याः श्रुत्यानुकूल्ये न विवादः कृतीनां श्रुत्यनुगमनं प्रसिद्धतरं लोके। आनन्दगिरिव्याख्यानारम्भे व्याख्यातृभिस्तावदिदं संस्थाप्यते–

कर्मनिष्ठाज्ञाननिष्ठेत्युपायोपेयभूतनिष्ठाद्वयमधिकृत्य प्रवृत्तं गीताशास्त्रं व्याचिख्यासुर्भगवान् भाष्यकारो विघ्नोपप्लवो ...इत्यादि।[2] अत्र हि अद्वैततत्त्वं प्रदर्शयतामाचार्याणां मतेन कर्मनिष्ठा न तिरस्क्रियते। अधिकारिणं पुरस्कृत्यैव शास्त्रीयः सन्दर्भो व्याख्यायते तत्प्रणेतृभिः। समेषां शास्त्राणां संगतिरवधारणीया, महर्षिप्रणीतशास्त्रवाक्यानां सार्थक्यमौचित्यं च तत्तद्विषयप्रकाशनाधीनम्। किञ्चिद् विशिष्टं समुदिश्यैवैषां महात्मनां प्रकाशनं जायते। तत्रापि ईश्वरप्रसादलब्धया धिया तत्तदुपक्रमो बोधव्यो भवति। महेश्वरेच्छाजन्योच्चावचप्रपञ्चे महेश्वरेच्छयैव वृण्वते स्वभीप्सितं पन्थानमित्यत्र न कश्चन सन्देहः। सर्वाणि च शास्त्राणि तन्महेश्वरमहिमानमेव साक्षात् परम्परया वा शब्दार्थद्वारेणोपदिशन्ति। अतश्च कर्मयोग इत्यपि शास्त्रचनैरेवापूर्वैरवबोध्यते। अवबोधफलमपि शास्त्रैरेव श्राव्यते, नान्येनेति दिक्। कुत्र च समेषां समन्वय इति जागर्ति शङ्काविशेषः। शङ्कापि प्रागुक्ता शास्त्रसन्दर्भेषु दरीदृश्यते। स च समन्वयो भिन्न–भिन्न इत्यपि तत्तद्दर्शनप्रणेतृभिः समुपवर्ण्यते यथावकाशम् कश्चायं पन्थाः श्रेयस्कर इति जिज्ञासायां श्रुत्यर्थस्तावदविकलो निर्णयो येन श्रुतितात्पर्यं संगतं स्यात् तदर्थश्च वेदान्तविद्यायाः सर्वविद्याप्रतिष्ठावगमात् सर्वतो ज्येष्ठत्वं श्रेष्ठत्वञ्चाम्नायते। श्रद्धाख्यायाः आस्तिक्यबुद्धेरुदयात् पूर्वं नैषो विमर्शः सम्भाव्यते। सम्भाव्यते चैषः साधनसम्पत्तिभाजा ब्रह्मजिज्ञासुनेति।

******

1. ब्रह्मसूत्रभाष्यभामत्याम्, 1.1.1.1.
2. श्रीमद्भगवद्गीताया उपोद्धातभाष्यस्थे आनन्दगिरिव्याख्यारम्भे।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदान्तदृष्ट्या सृष्टितत्त्वानां वैज्ञानिकमनुशीलनम्

प्रो. जयप्रकाशनारायणत्रिपाठी*

**कार्यायोजनधृत्यादेः पदात्प्रत्ययतः श्रुतेः।**

**वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वकृदव्ययः।।[1]**

इति उदयनाचार्यवचनात् कार्यहेतुकानुमानेन जगत्कर्तुरीश्वरस्य सिद्धिर्भवति। प्रयुञ्जते हि नैयायिकाः—

क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवदित्यनुमानमीश्वरसिद्ध्यर्थम्। वेदान्तिनस्तु तस्य औपनिषदत्वं वदन्तः "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" इति वाक्याधारेण उपनिषत्प्रमितं ब्रह्मेति मन्वानो "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति"[2], "तज्जलन्निति शान्त उपासीत" इत्यादि श्रुतिवचनानि जगत्कर्तृब्रह्मप्रतिपादकानि प्रस्तुवन्ति। श्रुत्याधारेण च जगज्जन्मादिकर्तृत्वं ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं वदन्ति। अत्र जगत्पदेन कार्यजातं विवक्षितम्। कारणत्वं च कर्तृत्वम्, अतोऽविद्यादौ नातिव्याप्तिरिति, अविद्यादौ कर्तृत्वाभावात्। कर्तृत्वं च— उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वम्। ईश्वरस्य तावदुपादानगोचरतापरोक्षज्ञानसदभावे च—

**यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।**

**तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते।।[3]**

इत्यादि श्रुतिर्मानम्। अत्र श्रुतौ सर्वज्ञत्वं सामान्याकारेण सर्ववित्त्वं तु विशेषतः। यस्य भगवतः ज्ञानमयं तपः औपाधिकमीक्षणम्। तस्मादीक्षणसहकृतात् कारणरूपात् ब्रह्मणः एतत्कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भः नाम घट इत्यादि रूपं शुक्लादिः, अन्नं ब्रीहियवादिर्जायते इति श्रुत्यर्थः। एतत्सर्वं व्याकृतं न तु अव्याकृतम्।

**तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।**

**अन्नात्प्राणो मनः सत्यम्, लोकाः कर्मसु चामृतम्।।**

इति पूर्ववाक्ये अन्नपदवेदनीयनामरूपसृष्टेरभिधानम्। अस्याः श्रुतेरयमर्थः तपसा मायाजन्म ईक्षणेन जलेन बीजमिव वर्धते। अक्षरं ब्रह्म तत उपचितब्रह्मणः अन्नं अद्यते भुज्यत इत्यन्नमव्याकृतं सर्वप्राणिसाधारणभोग्याभिजायते, व्याचिकीर्षितास्थारूपेणोत्पद्यते। द्वयोः श्रुत्योरर्थविचारः क्रियते चेत् प्रथमश्रुतौ—तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायत इति वाक्यात् हिरण्यगर्भस्य ब्रह्मणो नामरूपयोः अन्नस्य (व्याकृतश्च) च सृष्टिः सूच्यते। एतस्मात् पूर्ववाक्ये अन्नपदेनाव्याकृतनामरूपसृष्टेरभिधानम्। एतस्य क्रमस्यावलोकनेनेदं वक्तुं शक्यते यत् सृष्टिकर्तुः परमेश्वरात् मायाशबलितात् पूर्वं ब्रह्मणः हिरण्यगर्भस्योत्पत्तिर्भवति।

---

*आचार्योऽध्वक्षचरश्च, वेदान्तदर्शनविभागः, सं.सं.वि.वि., वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत एवोच्यते- य: सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप:।
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत।।
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य।।[4]

जगत उत्पतौ आदिकर्तुः ब्रह्मणो मायाशबलितस्य हिरण्यगर्भस्य च उभयोः कर्तृत्वं वर्तते। अत उच्यते वेदान्तपरिभाषायाम्— "तत्र च परमेश्वरस्य पञ्चतन्मात्राद्युत्पत्तौ सप्तदशावयवोपेतलिङ्गशरीरोत्पत्तौ हिरण्यगर्भशरीरोत्पत्तौ च साक्षात्कर्तृत्वम्। इतरनिखिलप्रपञ्चोत्पत्तौ हिरण्यगर्भाद्विहाराहन्ताहमिमास्तिस्रो देवताः अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि[5] इति श्रुतेः। अत्र लिङ्गशरीरशब्देन उभयविधलिङ्गशरीरमुच्यते परापरभेदभिन्नं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चप्राणाः बुद्धिमनसी चेति सप्तदशावयवविशेषाः लिङ्गशरीरम्। तदुक्तम्—

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ।। इति ।।

हिरण्यगर्भलिङ्गशरीरं महत्तत्त्वमुच्यते। अस्मदादिलिङ्गशरीरमहङ्कार इत्युच्यते। इदं लिङ्गशरीरं मोक्षपर्यन्तं स्थायि भवति। ब्रह्माण्डव्यापित्वात् हिरण्यगर्भलिङ्गशरीरं परमुच्यते। तदव्यापित्वाच्च अस्मदादिलिङ्गशरीरमपरमुच्यते। सर्गाद्यकाले मायाशबलितः परमेश्वरः सृज्यमानप्रपञ्चवैचित्र्यहेतुप्राणिकर्मसहकृतः सन्नामरूपात्मकनिखिलप्रपञ्चं प्रथमं बुद्धावाकल्य्येदं करिष्यामीति संकल्पयति। 'तदैक्षत बहु स्याम प्रजायेय।'[6] सोऽकामयत बहु स्याम प्रजायेय"[7] इत्यादि श्रुतेः। तत आकाशादीनि पञ्चभूतानि अपञ्चीकृतानि तन्मात्रपदप्रतिपाद्यानि उत्पद्यन्ते। तथा च श्रुतिः—"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी।"[8] प्रथममाकाशः, ततः वायुः, ततस्तेजः, ततः आपः, ततः पृथिवीत्येवं क्रमवन्ति पञ्चभूतानि अपञ्चीकृतानि आत्मनः उत्पद्यन्ते इत्याशयः। शुद्धात्मनः अकारणत्वात् मायाशबलितस्यैव कारणत्वं वक्तव्यम्। अत एव ईक्षणपूर्विका सृष्टिरुच्यते। ईक्षणं मायाशबलितस्यैव सम्भवति। अचेतने ईक्षणासम्भवात्। तदुक्तं ब्रह्मसूत्रेऽपि— ईक्षतेर्नाशब्दम्।[9] वेदान्तपरिभाषायामुक्तं इमानि भूतानि त्रिगुणमायाकार्याणि त्रिगुणानीति। गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि। एतैश्च सत्त्वगुणोपेतैः पञ्चभूतैर्व्यस्तैर्यथाक्रमं श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणाख्यानि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि जायन्ते। एतेभ्यः पुनराकाशादिगतसात्त्विकांशेभ्यो मिलितेभ्यो मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि जायन्ते। एतैरेव रजोगुणोपेतैः पञ्चभूतैर्व्यस्तैः यथाक्रमं वाक्पाणिपादपायूपस्थानि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि जायन्ते। रजोगुणोपेतैर्पञ्चभूतैर्मिलितैः पञ्चवायवः प्राणापानव्यानोदानसमानाख्याः जायन्ते। एतैरेव तमोगुणोपेतपञ्चीकृतभूतेभ्यो

---

1. उदयनाचार्यकृतन्यायकुसुमाञ्जलौ।
2. तै0 उ0 (3.1)
3. मु0 उ0 (1.1.9.)
4. यजु0 (13.4), ऋ0स0 (10.120.1)
5. छा0उ0 (6.3.2)
6. तत्रैव (6.2.3)
7. तै0उ0 (2.6)
8. तै0उ0 (3.1)
9. ब्रह्मसूत्रम् (1.1.5)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूम्यन्तरिक्षस्वर्महः जनः तपः सत्याख्योर्ध्वलोकसप्तकस्य अतल वितलसुतलतलातलरसातलमहातलपातालाख्याधोलोकसप्तकस्य ब्रह्माण्डस्य जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाख्यचतुर्विधस्थूलशरीराणामुत्पत्तिः। तत्र जरायुजयां जातानि जरायुजानि, मनुष्यपश्वादिशरीराणि। अण्डेभ्यो जातानि अण्डजानि, पक्षिपन्नगादिशरीराणि। स्वेदाज्जातानि स्वेदजानि यूकामशकादीनि। भूमिमुद्भिद्य जातानि उद्भिज्जानि वृक्षादीनि। वृक्षादीनामपि पापफलभोगायतनत्वेन शरीरत्वम्।

पञ्चीकरणप्रक्रिया— एतैरेव तमोगुणोपेतैरपञ्चीकृतभूतैः पञ्चीकृतानि जायन्ते। वेदे त्रिवृत्करणोपदेशस्तु "तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि।"[10] पञ्चीकरणस्याप्युपलक्षणम्।

एकैकमेव भूतं द्विधा कृत्वा द्वयोर्भागयोः स्वभागमेकं निधाय भागान्तरं चतुर्धा करोति। तान् चतुर्भागान् भूतान्तरेषु चतुर्षु योजयति। एवं सर्वेषु भूतेषु क्रियमाणेषु एकैकस्य भूतस्यार्धं स्व भागः, अर्धान्तरचतुर्णां भूतानां भागसमुच्चयो भवति। तथा च स्वभागस्य भूयस्त्वात् परभागस्याल्पीयत्वाच्च पृथिव्यादिव्यपदेशः। तद्युक्तं बादरायणेनापि—"वैशेयात्तु तद्वादस्तद्वादः।"[11] इति। इन्द्रियाणि परमात्मना सृष्टानि इत्यत्र इन्द्रियं इन्द्रलिङ्ग इन्द्रदृष्ट इन्द्रसृष्ट इन्द्रजुष्ट इन्द्रदत्त इति वा पाणिनिसूत्रं प्रमाणम्। अत्रोक्तं सिद्वान्तकौमुद्याम् इन्द्रः आत्मा तस्य लिङ्गकरणेन कर्तुरनुमानात् इत्युक्तत्वात् आत्मसृष्टत्वमिन्द्रियेषु लभ्यते। तथोक्तं तत्त्वबोधिनीकृता—इन्द्रेण दृष्टं ज्ञातं मम चक्षुः मम श्रोत्रमित्यादिक्रमेण, सृष्टम्—दृष्टद्वारा, प्रीणितं सेवितं वा, दत्तं यथायथं विषयेभ्यः। इत्यनेन नियतरूपेण श्रोत्रेन्द्रियाणां शब्दादिग्रहणे सामर्थ्यमुच्यते। कर्मेन्द्रियाणां च वाक्पाणिपादपायूपस्थानां वचनादानविहरणोत्सर्जनानन्दाख्याः विषयाः प्रसिद्वाः। एतत्सर्वं इन्द्रेण दत्तमिन्द्रियमिति व्युत्पत्त्या सूच्यते।

सृष्टेः प्रयोजनं निर्विचिकित्सात्मप्रतिपत्तिद्वारा मोक्षप्राप्तिः। अयं भावः— सविशेषं हि ब्रह्म सोपाधिकस्यैव प्रतीतेः, निरुपाधिकं तु स्वरूपं समाधिगम्यम्, निर्विकल्पके समाधौ अनुभूयते। तदुक्तं वेदान्तपरिभाषायाः मूलव्याख्यानावसरे शिखामणौ— "यद्यपि मायाधिष्ठानत्वमात्रमेव ब्राह्मणो लक्षणमस्तु तस्य मायिनं तु महेश्वरम्" इत्यादावीश्वरासाधारणधर्मत्वावगमात् तथापि तेन रूपेण ब्रह्मप्रतिपत्तौ तदन्याधिष्ठानमन्यदिति संभावनायामाधिकरणान्तरप्रमितस्य जगतो नेह नानाऽस्तीत्यादिना ब्रह्मणि निषेधावगमेऽपि चत्वरप्रतीतघटवन्मिथ्यात्वापत्त्याऽद्वैतब्रह्मसिद्धिप्रसङ्गात्। न च विशिष्टलक्षणेऽपि जगत्परिणामित्वस्य मायायामेवावगमादुक्तदोषतादवस्थ्यं ब्रह्मगतमायापरिणामस्य जगतः ब्रह्मगतत्वसम्भवात्। अत एव शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यनिष्ठाज्ञानपरिणामरूपमपि रजतं तद्गतमेवेति राद्धन्तः।[12]

हिरण्यगर्भः एव चतुर्विधशरीराणि जरायुजभेदेन सृजति। इत्युक्तं भागवते—

**तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।**
**सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या**
**वृक्षान् सरीसृपमृगान् खगदंशमत्स्यान्।**
**तैस्तैरतुष्टहृदयो मनुजं विधाय,**
**ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥**

******

---

10. छा०उ० (6.3.3)
11. ब्र०सू० (2.4.23)
12. वे०प०शि०म०टी०, पृ. 305 विषयपरिच्छेदे



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# भार्गवीयमहाकाव्यस्य काव्यशास्त्रीयं वैशिष्ट्यम्

डॉ.सनन्दनकुमारः त्रिपाठी

विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चचारुण्यतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संस्कृतसाहित्य आवाल्मीकेराभ्येदानीं यावत् संस्कृतकाव्यसुधाधारा निरन्तरं प्रवहति, यत्रानेकानि काव्यानि विरचितानि विरच्यन्ते च। यथा– आदिकवेर्वाल्मीकेः श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् कविकुलगुरोः कालिदासस्य रघुवंशम्, महाकविभारवेः किरातार्जुनीयम् महाकवेर्माघस्य शिशुपालवधम् महाकवेः श्रीहर्षस्य नैषधीयचरितेत्यादि। सन्त्यद्यतन– कविविरचितानि संस्कृतमहाकाव्यान्यपि बहूनि। यथा–पण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृतं वैदेहीचरितम् डॉ. सत्यव्रतशास्त्रिविरचितमिन्दिरागान्धिचरितम्, डॉ. रेवाप्रसादद्विवेदिनोपनिबद्धं सीताचरिततेत्यादि। राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानस्य मानितविश्वविद्यालयस्य कुलपतीनां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिमहोदयानां काव्यनाटकोपन्यासदयो बहवंश्चमत्कारिणो ग्रन्थाः प्रकाशमाप्ताः तेषां कालिदासपुरस्कारविभूषितं लहरीदशकं नितान्तं सहृदयहृदयावर्जकम्। प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतानि विराजन्ते बहूनि महाकाव्यानि खण्डकाव्यानि च चमत्कारावहानि। डॉ. रामकुमारशर्मविरचितं भरतचरितं रसगुणालंकारादिकाव्यतत्वविनियोगदृशा विद्वन्मनोरंजकं पाण्डित्यपूर्णं महाकाव्यम्। एवमनेके संस्कृतकवयोऽधुनाऽपि काव्यनाटकोपन्यासादिलेखने बद्धपरिकरा विलसन्ति। एतादृशाधुनिककाव्यप्रणेतृष्वन्यतमा विविधानवद्यविद्याविशारदाः श्रीमद्रामचन्द्र–चरणारविन्दभृङ्गावमाणाः श्रीमद्भागवतादिपुराणार्णवप्रमथनमन्दरायमाणाः कविमूर्द्धन्या वदतां वरेण्या उज्जयिनीस्थकालिदाससंस्कृताकादम्या निदेशकाः प्रो. मिथिला प्रसाद त्रिपाठिनः। कविवरैरेतैर्भार्गवीयं नाम महाकाव्यमुपनिबद्धम्, यद्धि न्यू भारतीय बुक् कार्पोरेशन दिल्लीतः 2008 तमे ख्रष्टाब्दे प्रकाशमानीतम्। महाकाव्यस्यास्य काव्यशास्त्रीयं वैशिष्ट्यं मम शोधपत्रस्य विषयः।

एतादृशामाधुनिकं संस्कृतकाव्यं त्रिधा विभक्तुं शक्यते तत्र प्रथमं पारम्परिकं यत्र पुरातनी कथा वर्णिता किन्तु कल्पनया नवीनीकृता च। एषा परम्परा शास्त्रानुसारिणी। नवीनाऽऽधुनिकघटनाः समाश्रित्य रच्यमाना काव्यधारा द्वितीया अत्र सम्प्रति जायमानानां घटनानां छन्दोबद्धपद्येन वर्णनम्। तृतीया काव्यधारा सा या छन्दोविहीना स्वतन्त्रा क्वचित् परित्यक्तव्याकरणादिशास्त्रनियमा च। एतासु त्रिविधकाव्यधारासु भार्गवीयमहाकाव्यं प्रथमधारायां निपतति। अस्य महाकाव्यस्य कविपरिचयेन सह महाकाव्यलक्षणध्वनिगुणालङ्काररीतिरूपकाव्यशास्त्रीयत्त्वानां ग्रन्थान्तरप्रभावस्य च दृष्ट्या वैशिष्ट्यमत्र प्रदर्श्यते–

---

***वरिष्ठप्राध्यापकः (साहित्यविभागे)**

**राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गरलीपरिसरः, गरली, मण्डलम्–कांगडा (हि.प्र.)**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**1.कवि–परिचय :–** अस्य महाकाव्यस्य प्रणेतारो मध्यप्रदेशस्य रीवामण्डले भस्माख्ये ग्रामे लब्धजन्मानः वाराणसीस्थ–सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयत उत्तीर्णाचार्यपरीक्षाः, एम्. ए. परीक्षामुत्तीर्णाः, लब्धविद्यावारिध्युपाधयः विद्यावाचस्पतयः हिन्द्यामपि एम्.ए, पीएच.डी. इत्युपाधिं लब्धवन्तः प्रयागतः प्राप्तायुर्वेदरत्नोपाधयः प्रो. मिथिलाप्रसादत्रिपाठिनो विद्यन्ते। एतैः सर्वोच्चाङ्कोपलब्धये त्रीणि स्वर्णपदकानि द्वे रजतपदके चाधिगतानि। इमे नैकाभिः संस्थाभिर्विश्वद्यालयैश्च विविधसम्मानेन विभूषिताः। भवन्तो मध्यप्रदेशस्य इन्दौरनगरे देवी अहिल्याविश्वविद्यालये तुलनात्मकभाषा एवं संस्कृतिविभागे आचार्या अध्यक्षाश्च व्यराजन्त। इदानीं कालिदाससंस्कृताकादम्यामुज्जयिन्यां मध्य प्रदेशे निदेशकपदमलङ्कुर्वन्ति। इयं सूचना शोधपत्रलेखनकालस्य प्रदात्त। सम्प्रतिते त्रिपाठीवर्या कलपतिचराः पाणिनिवैदिकसंस्कृतविश्वविद्यालयस्योज्जयिनीस्थस्येति।। सम्प्रति भवतां निवासो मध्यप्रदेश इन्दौरनगरस्य वैशालीनगरखण्डे विराजते। श्रीमद्वैष्णवभूषणानामनेकशास्त्रकोविदानां भवतां श्रीमद्रामचन्द्रचरणारविन्देष्वगा–धा श्रद्धा भक्तिश्च। विद्वच्छिरोमणीनां भवतां भार्गवीयमहाकाव्यातिरिक्तान्यनेकानि काव्यानि प्रकाशितानि सन्ति। यथा–सतनामिगौरवम्, भावमाला, राष्ट्रशतकम्ः केशवशतकम् सपादशतकम् शब्दाञ्जलिः माधवीयम्, मयंकशतकम् भारतीमहिम्नःस्तोत्रम् हनुमन्महिम्नःस्तोत्रम् जानकीमहिम्नःस्तोत्रं च। एतदतिरिक्ता अन्ये गन्था इमे सन्ति श्रीरामभक्ति का विकास, वाल्मीकिरामायण और प्राकृत–अपभ्रंश, रामकाव्य तुलसीसाहित्य के रामकथन। एवमन्येः। शोधनिबन्धाः पत्रपत्रिकासु प्रकाशिताः। भवद्भी राष्ट्रियेष्वन्ताराष्ट्रियेषु चानेकेषु संस्कृतसम्मेलनेषु गोष्ठीषु कार्यशालासु च भागं गृहीत्वा शोधपत्राणि वाचितानि विश्वविद्यालयप्रतिनि–धित्वञ्च निर्व्यूढम्। भवतां पर्यवेक्षकत्वे प्रायशस्त्रिंशदधिकाः शोधार्थिनो विद्यावारिधिम् उपाधिं लब्धवन्तः। भवन्तः सर्वदैव संस्कृतसाहित्यस्य संरक्षणे संवर्धने च व्यापृतास्तिष्ठन्ति।

**2. महाकाव्यलक्षणसमन्वयः**–महाकाव्यस्य समग्रं लक्षणं कविराजविश्वनाथस्य साहित्यदर्पणे लभ्यते। तदनुसारेण महाकाव्ये सर्गबन्धः, प्रसिद्धं कथावस्तु, कुलीनधीरोदात्तनायक एकः क्वचितु तादृशा बहवो नायकाः शृङ्गारवीरशान्तानामन्यतोमोऽङ्गी रसः शेषा अंगभूता रसाः नातिह्रस्वानां नातिदीर्घाणामेक–वृत्तमयानाम्प्रयुक्त– नानावृत्तानां वा सर्गाणामल्पिष्ठा संख्याऽष्टौ। एकस्मिन् सर्गे प्रायेणैकस्य वृत्तस्य प्रयोगः सर्गान्ते वृत्तपरिवर्त्तनम् भाविकथासंसूचनम्, सन्ध्यासूर्येन्दूदयोपरागादीनां वर्णनम्, पंचसन्धीनां विन्यासश्चेति भवन्ति।

भार्गवीयं रचनारीत्या रघुवंशमनुकरोति। यथा रघुवंशे नैके नायकास्तथाऽस्मिन्नपि भृगुच्यवनस्थूलकेशशौनकशुक्रमार्कण्डेयदधीच्यौर्वऋचीकजमदग्निपरशुरामप्रभृतयो नैके नायकाः। तत्र परशुरामस्य प्राधान्यम्। सप्तमसर्गे सूर्यास्ताश्रमादिवर्ननम्, धर्मः फलम्, वीररसोऽङ्गी अन्येऽङ्गभूताः शृंगारकरुणभयानकादयः। अत्र वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, स्रग्विणी, शिखरिणी, द्रुतविलम्बितम् उपजातिः, पंञ्चामरम्, वंशस्थम्, वियोगिनी, भुजङ्गप्रयातम्, वैश्वदेवीत्येतच्छन्दसां प्रयोगः। सर्गान्ते वृत्तपरिवर्तनं भविकथासंसूचनम् च लभ्यते। महाकाव्येऽस्मिन् नवत्यधिकषोडशशतम् (1690) पद्यानि विद्यन्ते। श्रीमद्भागवतादिपुराणवर्णितमितितिवृत्तमस्य महाकाव्यस्य कथावस्तुन आधारः। सर्गानुक्रमेणाऽस्मिन् महाकाव्ये वर्णितं कथावस्त्वेवं वर्तते–



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाकाव्येऽस्मिन् प्रथमे सर्गे भृगुचरितम्, द्वितीये च्यवनजननम् तृतीये च्यवनप्रभावः चतुर्थे च्यवनचरितम् पंञ्चमे रुरुचरितम् षष्ठे शुक्रचरितम्, सप्तमें मार्कण्डेयानुचरितम्, अष्टमे दधीचिचरितम्, नवमे और्वचरितम्, दशमे जमदग्निवृत्तवर्णनम्, एकादशे परशुरामप्रभावः द्वादशे परशुरामविद्याराधनम्, त्रयोदशे रामपराक्रमः, चतुर्दशे रामविद्यागमः पंचदशे जमदग्निकोपः षोडशे जमदग्निचरितम्, सप्तदशे परशुरामाशीर्वादप्राप्तिः, अष्टादशे कार्तवीर्याचरणम्, ऊनविंशे सुचन्द्रवधः विंशे कार्तवीर्यवधः एकविंशे गणपतिसख्यम् द्वाविंशे जमदग्निसंस्कारः, त्रयोविंशे परशुराममखः, चतुर्विंशे रामक्षेत्रनिर्माणम्, पंचविंशे रामक्षेत्रवर्णनम्, षड्विंशे परशुरामकृतं नवदेशनिर्माणम्, सप्तविंशे अम्बाचरितम् अष्टाविंशे गुरुशिष्यसंगरः एकोनत्रिंशे रामविद्याप्रदानम् त्रिंशे श्रीविद्याग्रहणम्, एकत्रिंशे रामरामयोः समागमः, द्वात्रिंशे परशुरामस्तुतिश्चेति विषया मुख्यरूपेण वर्णिता।

अत्र विकीर्णानां भृगुवंशकथानामेकत्र मेलनं परमरूचिकरम्। पुरातनमपीतिवृत्तं कविप्रतिभोल्लिखिततत्वेन नूतनत्वं बिभर्ति। स्वस्य समाजस्य देशस्य विश्वस्य चाभ्युदये कोपोऽपि परमावश्यकः। रेणुकायां व्यभिचारमाशंकरय कुपितो जमदग्निः चतुरः पुत्रान् रेणुकायाः शिरश्च्छेत्तुमदिशति, तैरकरणे तान् निहन्ति च। यदा परशुरामेण जननीशिरश्छित्वा जमदग्निः प्रसादितस्तदाऽसौ कोपं सकलानर्थकं मत्वा परित्यजति। ततः कोपस्तं स्वं त्यक्तुं नादिशति। एतत्प्रसंगे जमदग्निकोपसंवादः कविना मन्ये स्वप्रतिभया कल्पितः। स रूचिकरः संवाद एवं वर्तते—

मुनिकृतामवलोक्य च तर्जनां सपदि कोप उवाच भृगूद्वहम्।
शृणु न कोऽपि च कोपविवर्जितो भवति देहधरो भुवनत्रये।।
भवति लोकगतिर्न मया विना जगदिदं ध्रियते क्रियते मया।
मखतपोऽखिलदानविधावहं भुवि भवामि सदा भृगुनन्दन।।
परिनिशम्य मुनिः पुनरब्रवीत् त्यज कलेवरमाशु नृशंस! मे।
व्रज सुदूरमितो न च मे रुचिस्त्वरय याहि तनोरथ दूरतः।।

एवं स्वस्यां सन्दिहानं जमदग्निं प्रति रेणुकाया उद्‌बोधनं कविप्रतिभाहेतुकम् यत्र स्वकीयं पतिव्रतात्वं प्रमाणयन्ती रेणुका वदति यत् तद् गृहं मृतं भवति यत्र दम्पत्योः परस्परं सन्देहः। पतिदृष्टौ गतचारित्रायाः सत्या अपि मरणमेव श्रेयः—

शंङ्का यदा भवति दम्पतिजा मिथश्च सञ्जीवनं भवति नैव गृहं तदीयम्।
स्त्रीणां चरित्रविषये विमतिर्यदा स्यान् मन्ये मृतिर्वरमिहास्ति च जीवनाद्धि।।

एवं कविना पुरातनेऽपि कथावस्तुनि नवीनकल्पनाऽऽधानेन बहुत्र नवीनताऽऽपादिता। इत्थं भार्गवीयं महाकाव्यम् कथादृष्ट्या प्राचीनमपि नवत्वं बिभर्ति। अत इदं महाकाव्यं रघुवंशस्थानीयं मन्तुं शक्यते।

**3.ध्वनिसमन्वयः—** समासतो ध्वनिस्त्रिविधः— वस्तुध्वनिः, अलंकारध्वनिः, रसध्वनिश्च। तत्र रसध्वनिरेव काव्यस्याऽऽत्मा। भार्गवीयमहाकाव्ये त्रिविधानामपि ध्वनीनां सद्भावः। तत्र रसध्वनेः प्राधान्यम्।

**वस्तुध्वनिः** इह पद्यप्रकरणप्रबन्धादिव्यंग्या वस्तुध्वनयो नैके विलसन्ति। यथा अधोलिखितपद्ये वस्तुध्वनिः—



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**स्वदेशसेवार्थमिदं शरीरं गृहं च वस्तूनि यदा जनानाम्।**
**भवन्ति राष्ट्रस्य समृद्धिरिष्टा तदा भविष्यत्यभिवर्द्धमाना।।**

अत्र परशुरामस्य वचने राष्ट्रसेवा परमो धर्म इति सामान्यभूतं वस्तु ध्वन्यते। जमदग्निकोपसंवादे कोपोऽपि क्वचित् परमावश्यक इति वस्तु ध्वन्यते। अधोलिखितपद्येऽपि वस्तुध्वनिः—

**क्वाहञ्च मन्दमतिकः क्व कवेर्यशश्च भृग्वन्वयार्णवमहो क्व च शेमुषी मे।**
**ध्यात्वाऽन्वयर्षिगुणरत्नमहं विलुब्धो वाञ्छामि पुण्यपुरूषाचरितानि चेतुम।।**

अत्र भष्वन्वयवर्णनमशक्यमिति वस्तु ध्वन्यते। एवमत्र राष्ट्रसेवा परमोधर्मः कोपोपि रक्षकः इत्यादयः प्रबन्धव्यंग्या वस्तुध्वनयोऽपि सन्ति।

**अलंकारध्वनिः** निम्नलिखितश्लोके विरोधाभासाऽलंकारध्वनिः

**ब्राह्मणयतो हरिपदं परिलभ्य लोके यो राजसंसदि विभज्य पिनाकमुग्रम।**
**सीतां श्रियं च निजचापमवाप भक्त्या रामस्तुतः स शरणं मम रामचन्द्रः।।**

अत्र चतुर्थपादे रामस्तुत इति पदे रामशब्दस्य दाशरथिरूपार्थग्रहणे विरोधः यतो पिह दाशरथिरूपो रामचन्द्रो दाशरथिनैव स्तुतो न भवति, किन्तु रामस्तुत इति पदस्थरामशब्दस्य परशुरामरूपार्थकरणे विरोधपरिहारः। एवमत्राऽपिप्रभषतिविरोधवाचकशब्दप्रयोगाभावाद् विरोधाभासाऽलंकारध्वनिः।

अधोलिखितश्लोकयोः उल्लेखालंकारो ध्वन्यते—

**यथान्धकारे शुशुभे सुदीपः भानुः प्रभाते च शशी प्रदोषे।**
**बृहस्पतिर्बुद्धिमतां सभायां तथा जनिर्भाति च भार्गवस्य।।**

अत्रोपमेयभूताया जनेः सुदीपसूर्यशशिबष्हस्पतिरूपानेकोपमानवर्णनान्मालोपमालङ्कारो वाच्यः। तेन चार्थशक्त्याएकस्याएवभृगुवंशचंद्रस्यभगवतःपरशुरामस्यजनेः दीपसूर्यचन्द्रबृहस्पतिरूपेणाऽने कधाऽवगमना दुल्लेखालङ्कारो व्यज्यते। एकस्य वस्तुनः अनेकधोल्लेखाद् उल्लेखालंकारो भवति। यथोक्तम् साहित्यदर्पणे—

**क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतष्णां विषयाणां तथा क्वचित्।**
**एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते।।**
**अयमलङ्कारोऽत्र व्यंग्यः। एवमनेकेऽलङ्कारध्वनयो द्रष्टुं शक्यन्ते।**

**रसध्वनिः**— अत्र शृंगारकरूणवीरभयानकादयो रसा ध्वनिताः। तत्र वीरस्यैवाङ्त्विम शेषास्तु रसा अंग्भूताः। तत्र पंचमसर्गे श्रषारेऽपि करूणविप्रलम्भो द्रष्टुं शक्यते। विश्वनाथमते करूणविप्रलम्भोऽपि श्रषारस्य भेदः। तन्मते यूनोरन्य तरस्मिन् लोकान्तरं गतवत्यन्यतरस्य विमनायमानत्वे पुनरूभयोः संयोगे च सति करूणविप्रलम्भः स्वीक्रियते। सर्पदंशेन प्रमदवरायां मष्तायां प्रमदवराविषयः रूरूवियोग एवं वर्णितः—

**सपदि ललितशीलां वीक्ष्य तां प्राणहीनां रूरूरतिकरुणाभिः पीडितोऽभूद् द्विजानाम्।**
**सदसि मुनिवराणां सम्मुखे रोदनोत्को मनसि कष्तनिवासां लोकमानो रुरोद।।**
**करूणभरितभावश्चिन्तयन् सर्पदष्टां गहनवनगतोऽसौ शोकपूर्णो शुशोच।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विलपति दयितां तां संस्मरन् चेष्टमानः रूरुरपि ललनार्थ विह्वलोऽभूद् विषण्णः।।
रक्षो मनोमारूतरंहसा तां साध्वीं जहारातिबलावलेपात्।।

एवं भावध्वनयोऽपि बहुत्र लभ्यन्ते। सप्तमसर्गस्थनिम्नलिखितश्लोकेषु मार्कण्डेयस्य नारायणविषया रतिरभिव्यक्ता–

नरं दिव्यं नाायामुनिमवेक्ष्याशु पदयोर्ननामाविर्भूतं मुनियुगलमायातमभितः।
उद्चद्रोमाश्रुः प्रभुमपि विलोक्य प्रमुदितः करौ बद्ध्वा नम्रः परिलुठति भूमौ नतिपरः।।
नतिर्दण्डाकारा श्रुतिमयवचोभिः स्तुतिविधा वपू रोमान्चालिं पुलकमिषमाधाय निभृतम्।
प्रहर्षोद्रेकोत्थं नयनयुगलं चाश्रुभरितम् मुनेः पश्यन् भक्तिं प्रभुरपि बभौ भक्तमतिकः।।
यमासेव्यं ध्यातुं विधिहरमुनीशाः स्तुतिरताः यमाजप्यं गातुं व्यवसित–पुराणाः सनिगमाः।
यमासेव्यं भक्त्या सुरनरभवा योगनिरताः स एवायं स्वामी मम मनसि वासी भवतु भो!।।

एवमनेकस्थले रसभावध्वनिर्द्रष्टुं शक्यते। एवं विविधं ध्वनिं विभ्राणमिदं महाकाव्यमुत्तमम्।

**4. गुणसमन्वयः–** माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयो गुणाः प्रसिद्धाः। भार्गवीयमहाकाव्ये प्रसादस्य प्राधान्यम्। अत्रत्याः शब्दाः श्रवणमात्रेण झटिति स्वार्थमर्पयन्तो रसं प्रकाशयन्ति। तत्र शब्दानां प्रसन्नता निम्नलिखितश्लोके द्रष्टुं शक्यते–

श्रृणु! मुनिवर! रोषं नात्र कार्यं कदापि भुजगकुलमशेषं मारणे बद्धवैर!!
महिसुरधृतशापा नैव ते नूनं दशन्ति क्वचिदपि हतिमाप्ताः सर्वथा ते दशन्ति।।

वीररौद्रादिरसवर्णने क्वचित् प्रसन्नशब्दाऽभिधेयोऽर्थः क्वचिच्छब्दश्चौजो व्यनक्ति। यथा–

नृपो मृधे प्रस्वपनेषुणा ततो विनिद्रितांस्तान् प्रचकार भार्गवान्।
महाबलो वीक्ष्य सहोदरांस्तथा प्रबोधयित्वा समरे ययौ प्रभुः।।

एवं श्रृगारकरुणादिरसस्थले माधुर्यमपि द्रष्टुं शक्यते।

**5.अलंकारयोजना–** शब्दार्थद्वारा रसस्य क्वचिदुपकारका अनुप्रासोपमादयोऽलंकाराः। भार्गवीये महाकाव्ये रससमाहितचेतसि स्वतः स्फुरन्तोऽपृथग्यत्ननिर्वर्त्या नैके शब्दार्थाऽलंकारा विलसन्ति। तत्र शब्दालंकारेषु

मदनमदनिविष्टो मोदमग्नस्तदाऽसौ प्रमतिमतिमतिस्थं भार्गवं भूमिदेवम्।
पितरमपि मनोज्ञः श्रावयामास वृत्तम् सखिभिरथ सुशीलस्तत्सदाचारपूर्णः।।

इत्यत्र मदनमदनिविष्टो मोद इत्यत्र मकारदकारयोरसकृदावृत्या वृत्यनुप्रासः किञ्च 'प्रमतिमतिमतिस्थम्' इत्यत्र मतिशब्दस्य तदर्थस्य च पौनरुक्त्येऽपि तात्पर्यमात्रेण भेदाल्लाटानुप्रासः।

प्रभो! पाहयाशाभिर्निगडितजनं मामशरणं भवत्रासैस्त्रस्तं जननमरणाभ्यामव सदा।
कृपादृष्ट्या पारं नय विनयमाधेहि तरणे कृपासिन्धो! सिन्धोर्वरमिह न जाने गमय माम्।।

अत्र सिन्धुशब्दस्य तदर्थस्य च पौनरुक्त्येऽपि तात्पर्यमात्रेण भेदात् स एव।

कृतगुरुजनसेवाऽराधितोग्रा तपस्या यमनियमसमुत्थं सद्व्रतं दानकर्म।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**यदि सुकृतफलं मे संचितं पुण्यमिष्टं सपदि भवतु युक्ता तेन जीव्यात् प्रिया मे।।**
**भगवति मम भक्तिर्यावती स्याच्च लोके यदपि कृतमशेषं पूर्वकालेऽपि पुण्यम्।**
**तदिह भवतु तन्व्या जीवितार्थं समन्ताद् रूरुरिह बहु रोदित्याशया जीवनस्य।।**

अत्र सर्पदंशेन प्रमदवरायां मृतायां रूरोर्विमनायमानता वर्णिता। यदा रूरूणा देवदूतवाक्येन स्वमायुषोऽर्द्धं प्रदीयते तदा प्रमदवरायां पुनरुज्जीवितायामुभयोः संयोगो भवति। एकमत्र करुणविप्रलम्भः। निम्नलिखितश्लोकेषु परशुरामस्य हतं जमदग्निमुद्दिश्य रेणुकां प्रति कथने करुणो द्रष्टुं शक्यते—

**वधादशेषभूभुजाममर्षशान्तिरिच्छिता न लप्स्यते न चाप्तिरद्य मे पितुर्भविष्यति।**
**मयि स्थिते हतो पितेति मानसं दुनोति मे वृथाऽस्ति मे पराक्रमश्च वीर्यमुल्वणं मृषा।**
**बहिष्कृतश्च कोप एव मे वशी पिता तदा तपस्यया शमाय यत्नवानभूच्च केवलम्।**
**गृहागतातिथेश्च पूजनं चकार तेन यत् तथापि हिंसितो विमार्गगामिभिर्नृपैः पिता।।**
**यदाऽतिथिश्च देवता भवत्यशेषभारते सुपूजितः शुभत्वमेति धारणा पितुः शुभा।**
**निजाश्रमे सुपालितः तथापि संस्कृतिर्हता मुनिर्हतश्च धेनुसंस्कृती हतेऽरिभिस्तदा।।**
**स्खलद्वचांसि कण्ठरोधजानि शोकजान्यलं निशम्य चात्मजस्य रेणुका भृशं विमोहिता।**
**मुहुर्मुहुः पतिं विचिन्त्य शौर्यमीप्सितन्तथा, मुमोह सा बुबोध वीक्ष्य भावविह्वलं सुतम्।।**

अत्र निहतजमदग्निरूपालम्बनविभावेन तद्गुणस्मरणादिरूपोद्दीपनविभावेन कण्ठरोधविलापाद्यनुभावेन स्मृतिदैन्यविषादादिव्यभिचारिभावेन च परशुरामनिष्ठः शोको व्यंज्यते। अन्त्यपद्ये रेणुकाया अपि शोकस्याऽभिव्यक्तिः। यद्यपि दानदयायुद्धधर्मवीरत्वेन वीररसश्चतुर्धा। तथापि भार्गवीयमाहाकाव्ये युद्धवीरस्य प्राधान्यम्। परशुरामादियुद्धवर्णने रसस्यास्य भूयस्यभिव्यक्तिः, किन्तु दया वीरस्यापि महाकाव्येऽस्मन्नुपलब्धिः। जालनिबद्धानां मत्स्यानां प्राणान् रक्षितुं च्यवनः स्वप्राणानपि त्यक्तुमुद्यतो भवति। अधोलिखितश्लोकयोर्दयावीरस्य ध्वनिः—

**निषादजालान्तरितः कदाचिद् मुनिश्च मीनैः सह बन्धनेऽभूद्।**
**क्षमापयन् ते, प्रणताश्च बुद्ध्वा न मोक्षमिच्छत्यथ भार्गवोऽसौ।।**
**वसन्ति तोये सुहृदो झषाद्याः सुपाशबद्धा इह धीवरैस्ते।**
**मृतिर्भवेद्वा नवजीवनं मे सहानुवत्स्यामि च तैर्जलीयैः।।**

च्यवनो मुनिर्जले तपस्यति स्म अतस्तस्य तज्जलनिवासिभिर्मीनैः सह मैत्री जाता। एकदा धीवराः जालेन मीनैः सह च्यवनमपि गृहीतवन्तः। धीवरा मुनिं प्रणम्य क्षमां याचित्वा मुक्त्वा च मीनान् जिघृक्षन्ति, किन्तु दयापरवशो मुनिः मीनैः सहैवात्ममोक्षमिच्छति। ततो विवादे जाते तत्रत्यो राजा मीनान् मुनिं च गां प्रदाय धीवरेभ्योऽमोचयत्। अतोऽत्र च्यवनस्य दयाया अभिव्यक्तिरिति दयावीरत्वम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुलोमराक्षसस्य समक्षं वह्नेरपि भयस्य वर्णनाद् भयानकस्य गन्धोविद्यते–

**भीतोऽपि बहिर्गिरमाह सत्यां श्रुत्वा रुषाऽभूत्स वराहवेषः।**
**विनयंतो नयतः प्रणयाद् प्रियं मिजपदाब्जनतं तनयं पुरः।**
**विनतकन्धरमाह विलोक्य तं जनिकरो जमदग्निमुनिस्तदा।।**

इत्यत्र नयतः नयत इत्यस्मिन् नकारयकारतकाराणां स्वरसंहितानां क्रमिकावृत्या यमकम्। तत्र विनयतः इति शब्दगतस्य नयत इति शब्दस्य निरर्थकत्वम्, अन्यस्य च सार्थकत्वाद् यमकालकारश्चमत्कारावहः।

अर्थालङ्कारेषु

**मुनिरपि गततीरो दृष्ट्वान् निम्नगायाः नवशिशुमपि सद्यो जायमानां च कन्याम्।**
**सुरनिभतनुकान्तिं बिभ्रतीं प्राक् विसृष्टां विजनवनगतां तां वल्लरीं वृक्षहीनाम्।।**

अत्र सुरनिभतनुकान्तिमित्यत्रोपमा।

**यथान्धकारे शुशुभे सुदीपः भानु प्रभाते च शशी प्रदोषे।**
**बृहस्पतिर्बुद्धिमतां सभायां तथा जनिर्भाति च भार्गवस्य।।**

अत्रोपमेयभूताया जनेः सुदीपशशिबृहस्पतिरूपानेकोपमानवर्णनान्मालोपमा।

**यथा शशी स्यात्तिलकायमानो ललाटलग्नश्च निशातरुण्याः।**
**पयोधितः पूतमना मयंको जज्ञे तथा भार्गववंशचन्द्रः।।**

इत्यत्रापि सैव।

**तपस्वी स्वाध्यायी शिशुवयसि विद्यार्जनमतिः पितुर्विद्यामूर्तेरखिलनिगमानङ्गसहितान्।**
**अधीत्यान्यान्धर्मानपि पठितवान् शास्त्रनिकरान् बभौ दीपाद् दीपः प्रकटित इवायं मुनिवटुः।।**

अत्र मुनिवटुर्दीपप्रभवदीपेनोपमितः अतोऽत्रोपमा चमत्कारावहा।

**मुनिरपि गततीरो दृष्टवान् निम्नगायाः नवशिशुमपि सद्यो जायमानां च कन्याम्।**
**सुरनिभततुकान्तिं बिभ्रतीं प्राक् विसृष्टां विजनवनगतां तां वल्लरीं वृक्षहीनाम्।।**

इत्यत्र कन्यायां वृक्षहीनवल्लरीत्वारोपाद् रूपकम्।

**भवति जगति कश्चित्पृच्छको नैव यस्य रचयति नहि कश्चिद् यत्कृते क्षेमयोगौ।**
**भवति सपदि कश्चिद्रक्षको नैव यस्य, तमिह झटिति पातुं प्रोद्यताः सन्ति सन्तः।।**

इत्यत्राऽप्रस्तुतसत्सामान्यस्य वर्णनेन प्रस्तुतस्य स्थूलकेशस्य प्रतीत्या, अप्रस्तुताऽसहायसामान्यस्य वर्णनात् प्रस्तुताऽसहायप्रमदवरारूपविशेषस्य प्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसा।

**कामार्दितो राक्षसवृत्तिमूढः कर्तव्यबोधोपहतस्तदानीम्।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**तां संजिहीर्षुर्मुमुदे स सम्यक् पापाध्वगः को न जहर्ष पूर्वम्।।**

इत्यादौ पुलोमामवलोक्य हरिष्यतः हृष्यतः पापिविशेषस्य पुलोमराक्षसस्य चतुर्थचरणप्रतिपाद्ये पापिसामान्यवर्णनेन समर्थनादर्थान्तरन्यासः।

**रणकलानिपुणोऽपि विचक्षणो महिसुरोऽपि युधिष्ठिरतां ययौ।**
**हरिरलोकयदस्य गुणाढ्यतां स्वयमदादथ वैष्णवकार्मुकम्।।**
**शमितवृत्तिरभूच्च तपोधनः विजितवृत्तिरभूद् विजयी रणे।**
**वहति शास्त्रकला अधिशस्त्रजा जयति चौर्वमुनिर्बहुविद्यया।।**

अत्र रणकलानिपुणोऽपि विचक्षणः महीसुरोऽपि युधिष्ठिरतां ययावितिविरोधः तस्य च ब्रह्मक्षत्रयोस्ते-जोद्वयस्यैकत्र योगेन वीरोऽप्यसौ विद्वान् ब्राह्मणः सन्नपि युधि स्थिरतां ययावित्यर्थकरणे विरोधपरिहारः। किञ्च विजितवृत्तिरित्यत्र विगता जितवृत्तिः यस्य स इत्यर्थकरणे शमितवृत्तिरिति प्रतिपाद्यार्थेन सह विरोधः। विजिताः सकला वृत्तयो येनेत्यर्थकरणे तत्परिहारः। अतोऽत्र विरोधाभासः।

**इत्थं च शाल्वनृपतिर्गिरिशं विजेतुं कृत्वा मतिं गिरिपतिं प्रति यातुकामः।**
**दीपद्युतिं ननु विलोक्य रुषा पतंगाः नाशाय वेगसहिता निपतन्ति नूनम्।।**

इह दीपद्युतिपंगयोः गिरिशशाल्वनृपयोश्च बिम्बप्रतिबिम्बभावेन दृष्टान्तः।

**क्वाहञ्च मन्दमतिकः क्व कवेर्यशश्च भृग्वन्वयार्णवमहो क्व च शेमुषी मे।**
**ध्यात्वाऽन्वयर्षिगुणरत्नमहं विलुब्धो वाञ्छामि पुण्यपुरुषाचरितानि चेतुम्।।**

अत्राऽल्पया शेमुष्या भृगुवंशवर्णनं तथैव कर्तुमशक्यं यथाऽल्पसाधनेनोडुपादिना प्रतीत्या निदर्शना च द्रष्टुं शक्यते। एवमत्र नैकेऽलंकाराः प्रयुक्तास्तथाप्यर्थान्तरन्यासस्य विनियोगे वैशिष्ट्यम्।

**6.रीतिसमन्वयः–** अलंकारशास्त्रे वैदर्भी गौडी पाञ्चालीति तिस्रो रीतयः प्रसिद्धाः। तत्र भार्गवीयमहाकाव्ये वैदर्भ्याः प्राधान्यम्। अत्र समासरहितानां स्वल्पसमासानां वा ललितपदानां विन्यासश्चित्तवर्जकः। यथा–

**मधुरिमा मुनिमोहमदाञ्चिता मदयतीव सत्यवतीतनौ।**
**मदिरवीक्षणतः सुविलासितां जनयतीव मुहुःमितमातनोत्।।**
**यदुरुयुग्मगतं पुरुचिन्तितं तदुरुसंभवनामानसहर्षणम्।**
**यदुरुकेलिरतं निभृतं रतं तदुरुबोधतयाविरतं रतम्।।**

इत्थं वैदर्भीप्रधानं प्रायेण समस्तं काव्यम्।

**7.ग्रन्थान्तरप्रभावः–** किमपि काव्यं कवेः प्रतिभां व्युत्पत्तिं वा व्यनक्ति। काव्यकारणत्वेन व्युत्पत्तिरपि स्वीकृता। इयं त्वह विविधलोकशास्त्रकाव्याध्ययनजन्या। भार्गवीयमहाकाव्यावलोकनेन श्रीमतां प्रो. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठिनां श्रीमद्भावतादिपुराणनां रामायणादिमहाकाव्यानां विविधशास्त्राणां च प्रगाढा व्युत्पत्तिः प्रतीयते।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भार्गवीयमहाकाव्यस्य श्लोकेषु नैकत्र भागवतरामायणनैषधीयचरितशाकुन्तलादिग्रन्थानां प्रभावोऽक्षरशोऽर्थतश्च दृश्यते। तत् समासतः क्रमेणैवं द्रष्टुं शक्यते—

भार्गवीयमहाकाव्ये—क्वाहञ्च मन्दमतिकः क्व कवेर्यशश्च भार्गवन्वयार्णवमहो क्व च शेमुषी मे।

एवं महाकाव्येऽस्मिन् नैकस्थलेषु ग्रन्थान्तरप्रभावो द्रष्टुं शक्यते। एतावता भार्गवीयमहाव्यस्य काव्यशास्त्रीयं वैशिष्ट्यम् संक्षेपतः प्रदर्शितम्, विस्तरतस्तु तत्रैव द्रष्टुं शक्यते। तदयमत्र प्रस्तुतनिबन्धस्य सरांशः—

विधिधानवद्यविद्याविचक्षणैः श्रीमद्रामचन्द्रचरणारविन्दचञ्चरीकैः श्रीमद्भागवतादिपुराणपयोनिधिमथनोद्धत—रमणीयकथासारहैयंगवीनवितरणाऽप्यायिताऽनेकभावतस्वान्तैः कविशिरोमणिभिः प्रो० मिथिलाप्रसादत्रिपाठि—भिर्विरचितं भार्गवीयं महाकाव्यं रघुवंशवन्नैकनायकमपि परशुरामप्रधाननायकम्, अभिव्यक्ताऽनेकरसमपि प्रधानवीरररसम् रसानुगुणालंकारम्, प्रसादगुणसम्पन्नम् श्रीमद्भागवतवर्णितमुख्यमूलकथम्, लक्ष्यमाण ग्रन्थान्तरप्रभावं नवीनं महाकाव्यम्। यद्यपि श्रीमद्भागवतादिपुराणेषु भृगुकुलं वर्णितं तथापीह तदनेकग्रन्थ समालोडनेनोद्धृतविविधकथायोगेन महाकाव्यम्। यद्यपि श्रीमद्भागवतादिपुराणेषु भृगुकुलं वर्णितं तथापीह तदनेकग्रन्थसमालोडनेनोद्धृतविविधकथायोगेन नवीनं प्रतिभाति। ब्रह्मक्षत्रयोरैक्यं समुपदिशदिदं महाकाव्यं नैकविघटनकारिणि युगेऽस्मिन् प्रासङ्गिकम्। महाकाव्यमिदं देशसेवाव्रतं देशवासिनां जीवनस्य प्रधानं लक्ष्यं मन्यते। कविना तदभावे राष्ट्रस्य समृद्धिरसम्भवा मता—

**स्वेदशसेवार्थमिदं शरीरं गृहं च वस्तूनि यदा जनानाम्।**
**भवन्ति राष्ट्रस्य समृद्धिरिष्टा तदा भविष्यत्यभिवर्द्धमाना।।**[1]

एतादृशे भार्गवीयमहाकाव्ये लभ्यमानानि महाकाव्यलक्षणध्वनिगुणाऽलंकाररीतिरूपकाव्यशास्त्रीयतत्वानि ग्रन्थान्तरप्रभावश्च कविपरिचयेन सह भार्गवीयमहाकाव्यस्य काव्यशास्त्रीयं वैशिष्ट्यमित्यभिधाने शोधपत्रेऽस्मिन् संक्षेपतः सोदाहरणं प्रदर्शितानि।

ध्यात्वाऽन्वयर्षिगुणरत्नमहं विलुब्धो वाञ्छामि पुण्यपुरुषचरितानि चेतुम्।

**रघुवंशे— तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।**
**क्व सूर्यप्रभवों वंशः क्व चाल्पविषमा मतिः।।**

**भार्गवीयमहाकाव्ये—खं वायुमग्निमसुमिन्द्रयमंशुमन्तं पृथ्वीं जलं च ह्रदयं शशिनं तपश्च।**
**स्थानानि धातुरुदितानि निवासहेतौ रुद्रंग्य साम्प्रतमपि प्रथितानि लोके।।**[2]

(श्लोकस्थपदानां पूर्वश्लोके विद्यमानया चकारेति क्रिययाऽन्वयः) श्रीमद्भागवते—हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही। सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे।।[3]

**भार्गवीयमहाकाव्ये— सुरांगणा वा शिशुरस्तु गेहे रुरोद भीत्या न जहास चापि।**[4]
**नका निशि स्पप्नगतं च वृत्रं ददर्श देवानथ ताडयन्तम्।।**

**नैषधीयचरिते— तदात्मताध्यातधवा रते च का चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम्।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नका निशि स्पप्नगतं ददर्श तं जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम्।।

भार्गवीयमहाकाव्ये– प्रसृतस्तदानीम् वीणा मृदंग–सुर दुन्दुभिभूषणानां घोषः कलं दिशि दिशि रम्याणि वीक्ष्य मधुराणि विलोक्य चाराद् नोत्कण्ठितं भवति कस्य जनस्य चेतः।।

अभिज्ञानशाकुन्तले–रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽ–पिजन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहष्दानि।।

भार्गवीयमहाकाव्ये–या रावणादिशमनाय सुरर्थिताऽभूत या मन्थराश्रितत‌या वरदानबुद्धिः।

रामनुजाननगताऽपि च चित्रकूटे सा शारदा भवतु मे रसनाग्रसंस्था।।

श्रीमचरितमानसे–सारद प्रेरि तासु मति फेरी मागेसि नींद मास षट केरी।

बालकाण्डे–176 दोहायाश्चौपाई–8

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ अजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु।।
नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।

अयोध्याकाण्डे–दोहा–11–12

हिय सुमिरी सारदा सुहाई मानस ते मुखपंकज आई।
विमल विवेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली।।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# काश्मीरशैवदर्शनदिशा शब्दब्रह्माद्वयवादसमीक्षा

प्रो. रामकिशोर त्रिपाठी*

शब्दार्थस्य भिदा हि लोकरचना शब्दार्थसन्धिर्लयः,
शब्दाज्जातजगद्बिभर्ति वसतिं बोधाय लोकान्विताम्।
वक्ता बोद्धुमितौ प्रवक्ति वचनान्याहृत्य लोकाकृतिं
तेनार्थेन समन्वितश्च सततं शब्दः प्रकाशायते।।
अर्थो लोकव्यवहारः शब्दः प्रकृतिरुच्यते।
शब्दार्थोपरतिर्मोक्षः परावागनपायिनी।।
बिन्दुरूपा परा ज्ञेया पश्यन्ती नाद उच्यते।
अर्थबोधात्मिका कण्ठे व्यवहाराय मध्यमा।।
अभिघातसमुद्भूता स्फोटव्यंग्या च वैखरी।
आकाशगुणरूपाऽसावुत्पत्तिं नाशमेति सा।।

सत्यानृतमिथुनीकृतः प्रवर्तमानो लोकव्यवहारः शब्दार्थात्मकत्वाच्छब्दाधीन एवास्ति। सर्वत्र चराचरात्मकजगद्व्यवहारे शब्दो हेतुः। शब्दमन्तरा कश्चिदपि व्यवहारो न प्रवर्तते। पशुपक्षिणोऽपि परस्परं स्वव्यवहारप्रवर्तनाय शब्दमेवाश्रयन्ति। तेषामपि काचिद् भाषा भवति। यथा ते व्यवहरन्ति, तथैव ते स्वहर्षविषादादिकं परस्परं बोधयन्ति। व्यवहारो हि सर्वत्र ज्ञातवस्तुविषयको भवति। न कश्चिदपि अज्ञातपदार्थान् व्यवहरति। अतः प्रथमतो ज्ञानं व्यवहारे हेतुः, ज्ञानञ्च स्वस्वरूपनिर्वृत्तौ शब्दमपेक्षते। यतः पद पदार्थज्ञानमन्तरेण न काचित् पदार्थावगतिर्भवति। सा च शक्तिग्रहोपायभूतवृद्धव्यवहाररूपं सङ्केतमपेक्षते। अतः सर्वमपि ज्ञानं पदपदार्थज्ञानाधीनमेवास्ति। उक्तञ्च भर्तृहरिणा-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। [1]

सकलोऽप्यर्थात्मकवाग्व्यवहारः शब्दतत्त्वादेवाभिव्यज्यते। स च शब्दः स्वस्वरूपेण नित्योऽप्यर्थबोधप्रक्रियाविधौ ततदर्थबोधकतशब्दात्मना घटपटाद्यर्थात्मना च विवर्तते। अतः शब्दस्वरूपं शब्दात्सृष्टिप्रक्रिया चोपवर्ण्यते । तत्र शब्दस्वरूपविषये शैवागमदर्शने तत्रापि काश्मीरशैवागमे भूयांसो विचारा वर्तन्ते, तन्मूलक एव शब्दस्वरूपविषयको व्याकरणदर्शनस्य सिद्धान्तः परापश्यन्ती-मध्यमावैखरीभेदेन चतुर्धाऽवस्थावर्णनं प्राथम्येन शैवागमेष्वेवोपलभ्यते। तथा तन्त्रालोके-

---

*दर्शनसंकायाध्यक्षः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये, वाराणस्याम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**प्राक् पश्यन्त्यथ मध्यमान्या वैखरी चेति ता इमाः।**
**परा परापरा देवी चरमा त्वपरात्मिका।।**[1]

तदनु वैयाकरणशिरोमणयः श्रीभर्तृहरिमहाशयास्ततश्च नागेशभट्टाश्च विस्तारयाञ्चक्रुः। महाभाष्यकारस्तु पस्पशाह्निके ध्वनिस्फोटभेदेन शब्दस्वरूपं न्यरूपयत। तत्रैव तात्पर्यं व्याकरणशास्त्रस्येति। कः शब्दोऽर्थबोधकः कश्च अर्थबोधे निमित्तमिति। तत्रापि मूलं शैवम् एवास्ति—

**उक्तो य एष उच्चारस्तत्र योऽसौ स्फुरन् स्थितः।**
**उक्तानुकृतिप्रायो ध्वनिर्वर्णः स कथ्यते।**[2]

कण्ठताल्वाद्याभिघातजन्यो ध्वनिरूपः शब्दः स्फोटरूपाकृतिमापद्यते। वैखरीनादस्योच्चरितप्रतिध्वंसितयाऽर्थबोधे निमित्तकत्वाभावात् तेनैव रूषितः स्फोटाख्यो मध्यमानादव्यङ्ग्यः शब्दोऽर्थबोधको भवति। स्फुटत्यर्थो यस्मादिति व्युत्पत्तेः। भाष्यकारोऽपि स्फोटाख्यशब्दमेव प्राथम्येन वक्ति। तस्यैवार्थबोधकत्वेन शब्दव्यवहारयोगत्वात्। शब्द्यते बोध्यतेऽर्थो यस्मादिति शब्दव्युत्पत्तेः। "येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः।"[3] वैयाकरणा वर्णव्यतिरिक्तस्य पदस्य वाक्यस्य वा वाचकत्वमिच्छन्ति। अतः प्रदीपकारः उच्चारितेनेत्यस्य विवरणं प्रकाशितेनेति रूपेण अभिधत्ते। यतो वर्णरूपस्य शब्दस्य वाचकत्वे एकैकस्य वर्णस्य वाचकत्वं समुदायस्येति वा विप्रतिपत्तिः। एकैकस्य वाचकत्वे वर्णान्तरस्यानर्थकत्वापत्तिः, समुदायस्य वाचकत्वे हि वर्णानां ध्वनिरूपतया उच्चरितप्रतिध्वंसितत्वेन वर्णसमुदायासम्भवात्। तत्रापि उत्पन्ना वर्णा अर्थवाचका अभिव्यक्ता वा । उत्पन्ना इति चेन्न, प्रत्येकंमुत्पत्तिपक्षे उत्पत्तेर्यौगपद्यासम्भवात्। अभिव्यक्तिपक्षेऽपि क्रमेण अभिव्यक्तानां समुदायासम्भवात्। पक्षद्वयेऽपि पूर्वपूर्ववर्णानुभवजन्यसंस्कारसहकृतशब्दसमुदाय एव गृह्यते। स च न सम्भवति। येन क्रमेण वर्णा अनुभूतास्तेन क्रमेण तेषां स्मृतिपथमारोहस्याभावात्। व्यतिक्रमे हि सररसपदयोः नदीदीनपदयोश्च समानार्थकत्वं स्यात्, अतो वैखरीनादोत्साहितमध्यमानादव्यङ्ग्य स्फोटाख्यः शब्द एवार्थबोधक इति वैयाकरणाः प्रतिपादयन्ति।

तत्रायमभिसन्धिः—क्रमेणाभिव्यक्तस्य स्फोटाख्यशब्दस्य वाचकमिच्छन्ति। नैयायिकाभिमतस्य क्रमेणाहितसंस्कारस्य शब्दस्य बोधकत्वं नाभ्युपगच्छन्ति, तत्र को हेतुः। तथा हि स्फोटस्य वर्णपदवाक्यरूपेणाभिव्यक्तिरभिमता वैयाकरणैः।

**नादस्य क्रमजन्यत्वान्न पूर्वो न परश्च सः।**
**अक्रमः क्रमरूपेण भेदवानिव जायते।।**[4]

यथाक्रमं वैखरीनादमनु तद्रूपेण रूषितः स्फोटो व्यज्यते। तत्तावत् प्रथमं वैखरीनादो वर्णरूपेणोच्यते, तेन रूपेण रूषितः स्फोटो वर्णस्वरूपं बोधयति। यद्यपि वर्णरूपेण शब्देन लोके काचिदर्थावगतिर्नास्ति, तथापि वर्णसमुदायस्यपदस्फोट तया वर्णस्फोटोऽभिव्यज्यते, तस्य वाचकत्वं शास्त्रेऽभिमतम्। एवमेव पदसमुदायरूपेण ध्वनिना वाक्यस्फोटस्याभिव्यक्तिस्ततोऽर्थप्रकाशः सर्वैरभिमतः। ध्वनिरूपस्य वर्णरूपस्य वा शब्दस्यानित्यत्ववादिनो नैयायिकाः पूर्वपूर्वोच्चरितप्रतिध्वंसिवर्णस्योत्तरोत्तरवर्णे संस्कारमभ्युपगच्छन्ति। संस्कारस्यानुभवक्रमेणाभिव्यक्तौ मानाभावात्तन्मतं निराक्रियते वैयाकरणैः।

---

1. वाक्यपदीययम्, ब्र.का. 123

---

1. तन्त्रालोकः, 1.270
2. तत्रैव, 1.131
3. महाभाष्ये परपशाह्निके
4. वा.प.ब्र.का. 48



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयं स्फोटक्रमोऽपि काश्मीरशैवागमे प्रपञ्चितः। तथा चोक्तं तन्त्रागमे—

**किलाव्यक्तध्वनौ तस्मिन्वादने परितुष्यति।**

**या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत्**[1]

तत्रायं विशेषः -शब्दशास्त्रनये वैखरीनादो द्विधा प्राकृतो वैकृतश्च, मध्यमानादोऽपि द्विधा प्राकृतवैकृतभेदेन, तत्र वैखर्याः प्राकृतनादोत्साहितो मध्यमायाः प्राकृतनादः स्फोटव्यञ्जकः। वैखर्या वैकृतनादश्च वृत्तिभेदे कारणमस्ति।

**वैखर्या हि कृतो नादः परश्रवणगोचरः।**

**मध्यमया कृतो नादः स्फोटव्यञ्जक इष्यते॥**

**स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते।**

**शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदे तु वैकृतः॥**[2]

तत्र प्राकृतवैकृतनादौ सहैवोत्पद्येते, प्राकृतनादोऽर्थबोधकस्फोटशब्दं व्यनक्ति, वैकृतस्तु द्रुतमध्यमविलम्बितानां वृत्तीनां नियन्त्रणे हेतुर्भवति।

**अभासार्थे द्रुता वृत्तिर्मध्या वै चिन्तने स्मृता।**

**शिष्याणामुपदेशार्थं वृत्तिरिष्टा विलम्बिता॥**[3]

शैवागमे हि परावाचोऽतिरिक्तानां सर्वासामपि स्थूलरूपताऽभिमता।

**स्फुटास्फुटरूपत्वान्मध्यमा स्थूलरूपिणी।**

**मध्यायाश्चविभागांशसद्भव इति रक्तता॥**[4]

शब्दशास्त्रे पश्यन्ती-वाग् योगिगम्येति अभिमता। तत्रापि योगिनां समाधौ कुण्डलीचक्रभेदनेन जायमानानहदनादश्रवणे आनन्दोऽभिजायते। जायमान आनन्द एव तस्या अर्थः। अर्थबोधस्तु स्फोटाभिव्यक्तिमन्तरा न सम्भवति, अतस्तत्रापि प्राकृतवैकृतनादभेदः स्वीक्रियते। परञ्च तत्र नादाभिव्यक्तौ वैखरीनादस्य कारणता नास्ति। श्रवणेन्द्रियविषयतया वैखरीनादस्य बाह्य- रूपत्वात्। अतः पश्यन्तीनादाभिव्यक्तौ योगिनां मनःसमाधानरूपो यत्न एव हेतुः। तेनाभिव्यक्ता पश्यन्ती वाग् अनहदनादजन्यमानन्दमभिव्यनक्ति।

एतद्विषये शैवागमे सम्यग् विचारितम्। तस्यैवायं विषयः। वैयाकरणास्तु पश्यन्तीनादस्य स्वरूपानभिज्ञास्तस्याः प्राकृतवैकृतभेदमपि कर्तुमक्षमाः सन्ति। अत एव नये वैमत्यमस्ति । एकत्र परा पश्यन्ती, मध्यमा वैखरीरूपेण भेदं स्वीकुर्वन्ति अपरत्र च—

**वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।**

**अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम्॥**[5]

यत्र च पश्यन्तीस्वरूपमभिदधति शब्दविदस्तत्रापि पश्यन्तीवाग् योगिभिरभिगम्येत्युक्त्वा विरमन्ति। यतस्तत्स्वरूपाभिवदनेऽक्षमास्ते सन्तिः। तिस्रो वाच इति पक्षे प्राकृत-पश्यन्ती बिन्दुस्वरूपिणी परात्वेनाभिगीयते। वाचः सम्यक् वायुनाभिव्यञ्जितमर्थबोधकं स्फोटस्वरूपञ्च विवेचितम्।

---

1. तन्त्रालोकः 3.244
2. उद्धृतं कारिकाद्वयं मञ्जूषाग्रन्थे
3. परमलघुमञ्जूषायाम्
4. तन्त्रालोकः 3.242
5. वा.प्र.,ब्र.का. 142



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा स्थूला खलु पश्यन्ती वर्णानांप्रविभागतः।
अविभागैकरूपत्वं माधुर्य शक्तिरुच्यते।।
स्थानवारवादिघर्षोत्था स्फुटतैव च पारुषी।।[1]

अत्रापि मते स्थूलरूपा सत्यपि पश्यन्ती-वाग् वर्णविभक्ता नास्ति । तत्र कुण्डलिनीचक्रभेदनजन्यशब्दैरुत्साहिता तत्तद्वर्णरूपत्वपदरूपत्वादिस्वरूपतामधिगच्छति। स्वयमेव वर्णपदादिरूपैरभिव्यक्तस्यार्थबोधकस्फोटस्वरूपं व्यनक्ति। वैयाकरणास्तु पश्यन्तीस्वरूपनिर्धारणेऽक्षमत्वात् पश्यन्तीनादाभिव्यक्तस्फोट-स्वरूपं विवेचयितुमक्षमाः सन्ति।

अत एवोच्यते-साधनाप्रकारोऽयं परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपेण वाग्-विस्तारः। सा च साधना कुण्डलिनीजागरणरूपाऽस्ति। तत्र मूलचक्रस्था बिन्दुरूपिणी परावाक् कुम्भकाख्येन प्राणायामेनोत्साहिता सती कुण्डलिनी-चक्रमधिगच्छति। कुण्डलिनीचक्रमधिगम्य सुषुम्णानाड्यरन्ध्रमभिनिविशते। रन्ध्रमार्गेणोर्ध्वमधिगच्छती नाडीग्रन्थिं भिनत्ति। ग्रन्थिभेदेन जायमानमलौकिक-शब्दं श्रुत्वाऽत्यन्तमानन्दमनुभवति साधकः। स चाश्रुतपूर्वः शब्दः सविकल्पकसमाधावेवानुभूयते। तच्छब्दश्रवणे बाह्यश्रवणेन्द्रियं नापेक्षते, तस्य बाह्यविषयग्रहण एव सामर्थ्यात्। अपि तु योगरुद्धबाह्यवृत्तिना चित्तेनैवानुभूयते। सा च परावाक् क्रमेण चक्रभेदमभिदधती सहस्रार्कपद्मपरागमधिसेवते। तेन तृप्ता प्रकाशचक्रमधिगच्छति। प्रकाशचक्रमभिप्राप्य इडापिङ्गलाभ्यां सह युज्यते। स च नाडीत्रयसंयोगोऽलौकिकप्रकाशं व्यनक्ति। स प्रकाश एव परमानन्दरूपो मोक्षः, यमभिकाङ्क्षन्ति योगिनः।

विसर्गशक्तिर्या शम्भोः सेत्थं सर्वत्र वर्तते।
तत एव समस्तोऽयमानन्दरसविभ्रमः।।[2]
प्रदर्शितेऽस्मिन्नानन्दप्रभृतौ पञ्चके यदा।।
योगी विशेत्तदा तत्तच्चक्रेशत्वं हठाद् व्रजेत्।।[3]

शब्दसृष्टिक्रमः

बिन्दोर्नादः समुत्पन्नस्ततो वर्णसमुद्भवः।
वर्णसंघातरूपेण पदत्वमधिगच्छति।।
पदसमुदाय एवासौ शब्दकारणयुग् यदा।
वाक्यं शास्त्रविदः प्राहुः स्फोटोऽर्थस्फोटनात् ।।

बिन्दुरूपा परावाक् मूलचक्रे स्थिता ततः पश्यन्ती-नादोऽभिजायते। नादश्च वर्ण-पदवाक्यादिस्वरूपै रूषितोऽर्थबोधकस्फोटरूपत्वमभिधत्ते। ततोऽर्थनिष्पत्तिर्भवति । तथा तन्त्रालोके—

एको नादात्मको वर्णः सर्ववर्णाविभागवान्।
सोऽनस्तामितरूपत्वादनाहत इहोदितः।।

स च नादोऽद्वयात्मकः, अकाररूपः प्रथमाक्षरम्। तस्मादेव स्वरव्यंञ्जनवर्णानां समुत्पत्तिर्भवति। तथा तन्त्रालोके-

अकाराज्जात आकार इकारादी इति स्मृतः।
ऊकार उकारात्स्यादृकारच्च नपुंसकम् ।।

---

1. तन्त्रालोकः 3.238
2. तन्त्रालोकः 3.200
3. तत्रैव, 5.108-109



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**एकार ऐस्वरश्चैव ओकार औकार एव च ।**

**अंकारश्च अनुस्वारः अः विसर्ग इति स्मृतः ।**

नाद एवार्थबोधोपयोगिवर्णस्वरूपमभिधत्ते। वर्णाश्च पदरूपत्वमापद्यन्ते। पदसमुदायाच्चार्थबोधः। स च जायमानोऽर्थो नहि नादाद् भिद्यते, नादाभिन्न एवार्थः उपादानाभिन्नत्वात् कार्यस्य। यथा घटादिमृत्कार्यं न मृतो भिद्यते, तद्वन्नादाभिव्यक्तो न नादाद्भिन्नः। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिका "इत्येव सत्यमिति" श्रुतेः ।[1]

**ककरादिसकारान्ता विसर्गात्पञ्चधा स च ।**

**बहिश्चान्तश्च हृदये नादेऽथ परमे पदे।।[2]**

तत्र परावाक् चिद्रूपा, तथैव नादादिवर्णास्ततो जायमानोऽर्थश्च प्रकाश्यन्ते। सा चाधिष्ठानं जायमानजगतः। अद्वयवादेऽधिष्ठानस्यैवापादानत्वं कार्यस्य च उपादानसत्तानतिरिक्तत्वमभिमतम्। उपादानाज्जायमानं कार्यं तत्रैव स्थितं सत्त्तैव लीयते। उपादनं द्विविधं परिणामि-उपादानं विवर्तोपादानं च । तत्र कार्ये यदुपादानसमसत्ताकं तदुपादानं परिणामि-उपादानपदेनाभिधीयते। यथाऽद्वैतनये अविद्या। यस्मादुपादानात्कार्यं विसमसत्ताकं तदुपादानं विवर्तोपादानमिति व्यपदिश्यते। यथाऽद्वैतनये ब्रह्म।

बिन्दुरूपिण्यां परायां वाचि पश्यन्तीमध्यमादिनादानामक्रमेण लयो भवति। तत एवार्थसमन्वितानां नादानामुत्पत्तिः।

**शब्दतत्त्वादर्थात्मकस्य जगतः सृष्टिप्रकारः**

**नादोऽभिन्नस्वरूपोऽपि व्यवहारप्रवृत्तये।**

**वक्तुरभीष्टबोधाय क्रियाकारकभेदवान्।।**

**बोधेच्छयोदितो विन्दुर्नादरूपत्वमागतः।**

**आस्यस्थानाभिघातेन वैखरीरूपतां गतः।।**

**वैखरीध्वनिभिव्यङ्ग्यः स्फोटस्त्वर्थाभिधायकः।**

**शब्दारोपवशादर्थो नादविवर्त उच्यते।।**

**एष सृष्टिक्रमोऽन्यत्र शब्दशास्त्रेऽपि मोदितः।**

**तत्र शैवागमो मूलं नान्यत्रैषा विचारणा।।**

एकैव परावाग् वक्तृविवक्षाधीनार्थबोधाय तत्तदर्थबोधकवर्णपदवाक्यादिरूपेण परिणमते, तदभिलक्ष्योच्यते—

**शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।**

**छन्दोभ्य एव प्रथममेतद् विश्वं व्यवर्तत।।[3]**

विश्वपदेनात्र मध्यमादिनादः परिगृह्यते, तेषामपि उत्पन्नविनाशिशालितया जन्यत्वमनित्यत्वञ्चाभिमतम्। अर्थश्च शब्दाभिन्नतया प्रतीयते, घट इति शब्दः घटः अयमर्थः शब्दातिरिक्तसत्ताशून्योऽतात्त्विकश्चास्ति, अतोऽर्थः शब्दस्य विवर्तः। तदेव-

**अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।**

**विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[4]**

---

1. छा.उ.
2. तन्त्रोलोक 3.222
3. वा.प.,ब्र.का. 111
4. वा.प. ब्र. का.1



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्यनेनाभिधीयतें शब्दस्य शब्दान्तरपरिणामः शैवागममूलकः। बिन्दुरूपिण्याः परावाचः पश्यन्त्यादिरूपेण परिणामो जगदित्युच्यते। उक्तञ्च तन्त्रालोके विवेकटीकाकृद्भिः-

**तदेवं बिन्दुरुद्दिष्टो व्याप्नुवन् स जगत्स्थितः।**
**अष्टात्रिंशत् कलाभेदाद् बिन्दुमाला व्यवस्थिता।।**
**बिन्दुना क्रमिताः सर्वे आदिमान्त्ययुताः स्मृताः।**

शब्दस्य शब्दान्तरपरिणामक्रमो वेदानुमोदितश्चास्ति। प्रणवरूपादोङ्कारशब्दात् शब्दान्तरोत्पत्तिर्माण्डूक्योपनिषदि प्रतिपाद्यते। तत्र सर्वेषां नादानामोङ्कारोद्भवतया 'सर्वमोङ्कार एव'[1] इत्युच्यते। तस्य व्यापकस्वरूपतया 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा''[2] इति पदेन व्यपदिश्यते। तस्यैव परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपेण भेद इति कृत्वा ''सोऽयमात्मा चतुष्पात्''[3] इत्युच्यते। तत्र प्रथमः पादः स्थूलभुग् वैश्वानरपदेनोच्यते। स च वैखरीवाग्रूपैवास्ति। तस्या एव कण्ठताल्वाद्याभिघातजन्यतया स्थूलेन्द्रियग्राह्यतया स्थूलत्वम्। मध्यमा नादश्चार्थप्रकाशकतया तैजस इत्युच्यते। स च परप्रकाशमनेक्ष्य प्रकाशते व्यवहाररूपमर्थञ्च प्रकाशयति। प्रज्ञया गृहीतार्थभोक्तृतया चायं प्रविविक्तभुग् इति कथ्यते। योगादिसमाधौ य आनन्दः अनुभूयते, तस्य स्वरूपप्रकाशकतया पश्यन्ती-वाग् आनन्दभुक् स्वयंप्रकाशरूपत्वाच्चेतोमुख इत्यभिधीयते। तुरीयपादस्तु स्वयं परावागेवास्ति। सा च योनिः सृष्टिप्रलययोः। सर्वत्रानुस्यूततया सर्वस्य नियन्त्रकत्वाच्च अन्तर्यामिपदेन व्यपदिश्यते। तथा चोक्तम्— ''एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्''[4]इमाश्च वैखरीमध्यमापश्यन्तीपरारूपेण जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयाद्यवस्थाः शब्दब्रह्मणः।

वैयाकरणानां शब्दार्थविवर्तसिद्धान्तोऽपि वेदान्तसिद्चान्तानुकृतिरेवास्ति। वेदान्तसिद्धान्तादनुकृतोऽप्ययं शब्दशास्त्रीयविवर्तवादो न स्वरूपमभिधत्ते। तथा हि विवर्तवादेऽनित्यं कार्यं सोपादानकारणेऽध्यस्तमिति मन्यते। वैयाकरणनये अर्थद्वैविध्यमभिमतम्, बौद्धार्थो बाह्यार्थश्च। तत्र कस्यार्थस्य विवर्तताऽभिमता वैयाकरणैः-बौद्धार्थस्य बाह्यार्थस्य वा न द्वितीयः? बाह्यार्थस्य स्फोटाख्यशब्देन सह तादात्मयासम्भवात्, न हि उपादानेन सह तादात्म्यशून्यस्य विवर्तता कुत्रापि स्वीकृता केनापि। न च प्रथमपक्षः, बौद्धार्थस्य शब्दशास्त्रनये नित्यत्वावगमात् नित्यस्य बौद्धार्थस्य कार्यत्वमेव नास्ति, कथं विवर्तता।

उक्तञ्च 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' इति सूत्रघटकसिद्धशब्दस्य नित्यपर्यायत्वं स्वीकुर्वद्भिर्वैयाकरणैः। अधिष्ठानतादात्म्यापन्नस्योपादनविषयसत्ताकस्यैव विवर्तत्वस्वीकारात्। अथ च यस्यार्थस्य विवर्तताभिमता वैयाकरणैः, तस्यार्थस्य सम्बन्धः स्फोटाख्यशब्देन सह नित्यः सम्बन्धः स्वीकृतः। यत्र वेदान्तदर्शने कार्यभूतस्यार्थस्य विवर्तता अभिमता, तत्र दृग्दृश्ययोः सम्बन्धो न वास्तविकः। तत्र हि दृशि परमात्मनि दृश्यभूतस्य प्रपञ्चस्य अध्यासोऽभिमतः तत्र दृग्दृश्ययोः सम्बन्धो वास्तविको नास्ति, अपि तु अध्यासिक एवास्ति, वास्तविकसम्बन्धस्वीकारे विवर्तत्वासम्भवात्। वैयाकरणास्तु शब्दार्थयोः सम्बन्धो नित्य इति स्वीकुर्वन्ति, शब्दस्यार्थरूपेण विवृतिमपि अधिगच्छन्ति। विषमोऽयं वादः।

**शब्दनित्यत्वविचारः**

**उत्पत्तिध्वंसहीनोऽसौ नित्यः शब्दोऽभिधीयते।**
**नादाभिव्यक्तिमाश्रित्य मध्यमायां प्रकाशते।।**

---

1. माण्डूक्योपनिषदि, 1, वा.प.ब्र.का.
2. तत्रैव
3. तत्रैव
4. तत्रैव, 7



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**वैखरीध्वनिना व्यक्तः स्फोटरूपत्वमागतः।**
**जगतो व्यवहारस्य प्रक्रिया समभूत् ततः।**[1]

एका एव बिन्दुरूपिणी परावाग् वक्तृतात्पर्याधीनार्थबोधकस्वरूपमाधत्ते। क्रमहीना हि परावाक् तत्रार्थक्रमो नास्ति। शब्दस्वरूपावस्था हि परावक् स्वरूपस्थितौ कश्चित् क्रमो नाभिलक्ष्यते परावस्थायामक्रमः शब्दो वैखर्यवस्थायां क्रमवान् भवति। तेनाभिव्यक्तो मध्यमानादोऽपि क्रमवान् भवति, क्रममन्तरा अर्थबोधासम्भवात्। क्रमेण वर्णपदवाक्यादिनाऽभिव्यक्तः सन् तद्रूपत्वमागतस्तत्तदर्थबोधको भवति। पूर्वं वर्णक्रमस्ततश्च क्रियाकारकादिरूपपदक्रमो भवति। अर्थबोधकसामग्रीसमन्वितः पदसमुदायो वाक्यम्, तस्यैव वाचकत्वस्वीकारात्। उक्तञ्च ईश्वरप्रत्यभिज्ञाग्रन्थे—

**कार्यकारकभावेन ध्वनतीत्याश्रितक्रमः।**
**ध्वनिः क्रमनिवृत्तौ तु ध्वनिरित्येव कथ्यते।।**[2]

तन्त्रालोकग्रन्थे च क्रमेण शब्दोत्पत्तिः क्रमेणैवार्थबोधोऽपि भवति।

**सृष्टि प्रविलयः स्थेया संहारोऽनुग्रहो यतः।**
**क्रमात्प्राणादिके काले तं तत्रानयेत्ततः।।**[3]

यतः परावागूरूपात् शब्दब्रह्मणोऽर्थोः जातः, अतस्तत्रैव लयमेति। उक्तञ्च शैवागमदर्शने-

**अव्यक्तानुकृतिप्रायो ध्वनिर्वर्णः स कथ्यते।**
**सृष्टिसंहारबीजं च तस्य मुख्यं वपुर्विदुः।**[4]

तत्र अस्ति काचित् परमेश्वरशक्तिर्यया अर्थासङ्क्रमोऽपि शब्दस्तत्तदर्थबोधक्रमेणार्थमुपसङ्क्रामति। स च शब्दार्थयोः शक्तिपदेनोच्यते। स च शक्तिरर्थबोधेच्छयोच्चरितस्वरूपं तेनोद्बुद्धर्थस्वरूपं च सम्बध्नातीति कृत्वा शब्दार्थसम्बन्धपदेन व्यवह्रियते। लोकव्यवहारो हि अर्थः स च विलक्षणोऽनेकरूपश्चास्ति। अर्थक्रियाकारित्वभेदाद् व्यवहारो भिद्यते, तेनार्थभेदः, अर्थभेदाच्छब्दार्थयोः सम्बन्धो भिद्यते। शब्दार्थसम्बन्धरूपायाः शक्तेर्भेदमाश्रित्य शब्दस्वरूपं भिद्यते।

**एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।**

अत एकमेव शब्दतत्वम् अर्थबोधेच्छया वक्तृकण्ठताल्वाद्यभिघातजन्यः
क्रियाकारकादिस्वरूपमाधत्ते।

शब्दतत्त्वस्य प्रतिबिम्बस्वरूपविचारः

**वैखरीध्वनिना व्यक्तस्तद्रूपेण रूषितः।**
**अर्थस्य बोधकः स्फोटः प्रतिबिम्बसमो भवेत्।।**
**वर्णपदादिरूपेयं वैखरीबिम्ब उच्यते।**
**तद्रूपमाश्रितः स्फोटो दर्पणे प्रतिबिम्बवत्।।**
**एवमन्यत्र बिम्बत्वं पदवाक्यादिरूपतः।**
**तेनाभिव्यक्तशब्दस्य स्फोटस्य प्रतिबिम्बता।।**

---

1. महाभाष्ये पस्पशह्निके
2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतौ
3. तन्त्रालोकः, 6.216
4. तत्रैव, 5.132



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदा वक्ता परबोधेच्छया कण्ठताल्वाद्यभिघातद्वारा तत्तद्बोधकशब्दान् उच्चारयति, तदा वर्णपदवाक्यादिरूपवैखरीनादस्य बिम्बत्वम्। स च नादः श्रवणेन्द्रियेण गृह्यते। ततो मध्यमानादोऽभिव्यज्यते। अभिव्यक्ते च मध्यमानादे कत्वखत्वादिधर्मविशिष्टवर्णरूपेण घटपटादिपदरूपेण तत्समुदितवाक्यरूपेण च याऽभिव्यक्तिः सा प्रतिबिम्ब इत्युच्यते। मध्यमानादस्य स्वच्छस्वरूपतया वर्णपदवाक्यादिरूपेणाभिव्यक्तस्य स्फोटरूपस्य प्रतिबिम्बस्य जलादिवद् रूपस्योपाधिः।

यथा स्वच्छं द्रव्यादिरूपप्रतिबिम्बस्योपाधिर्भवति, तथैवं मध्यमानादो वैखरीनादप्रतिबिम्बस्योपाधिर्भवति। तत्र प्रतिबिम्बोपाध्योरभेदेन प्रतीत्या मध्यमानादः स्फोट उच्यते।

प्रत्ययैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुगुणैस्तथा।
ध्वनिप्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते।।[1]

तत्र यथा मुखप्रतिबिम्बाभिव्यक्तौ दर्पणाद्युपाधिषु मुखसाम्मुख्यमपेक्षते, तथैव शब्दप्रतिबिम्बाभिव्यक्तौ वैखरीनादसाम्मुख्यमपेक्षते। तथा हि बोद्धृबोधसम्पत्तये वक्ता स्वान्तःस्थानर्थान् परबोधेच्छया शब्दोच्चारणसम्बन्धियत्नानभिधत्ते। स च यत्नो बुद्धिमनःप्रेरणादिरूपः, तेनोत्साहिता बिन्दुरूपिणी परावाग् वायुरूपत्वमापन्ना कण्ठदेशं प्राप्य कण्ठताल्वाद्यभिघातेन वैखरीरूपमाधत्ते। सा चाकाशदेशस्था सती श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यते, ततश्च तद्रूपेण स्फोटः प्रतिबिम्बते, तस्माच्चार्थबोधोऽपि जायते। तथा चोक्तं तन्त्रालोके-

यथा चादर्शपाश्चात्यभागस्थो वेत्ति नो मुखम्।
तथा तथाविधाकाशपश्चात्स्थो वेत्ति न ध्वनिम्।।
शब्दो न चानभिव्यक्तः प्रतिबिम्बति तद्ध्रुवम्।।
अभिव्यक्तिश्रुती तस्य समकालं द्वितीयके ।।[2]

**शब्दाद्वयतात्पर्यविचारः**

एकमेव समाम्नातं शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
शक्तिभेदेन तल्लोके भिन्नमर्थव्यपाश्रितम्।।
अर्थोपसंहृतौ शब्दो वर्णपदादिवर्जितः।
अद्वयरूपतो ज्ञेयः पराऽवस्थाविधौ हि सः।।
स एव वक्तृतात्पर्यबोधेच्छाव्यक्तवृत्तिमान्।
वर्णपदादिरूपेणैकः सन्नपि प्रभिद्यते।।[3]

शब्दाद्वयवादे पक्षद्वयम्, केचन शब्दानामद्वैतमभ्यगच्छन्ति, केचनार्थसमन्वितशब्दाद्वैतं स्वीकुर्वन्ति। आद्ये एकैव परावाग् वक्तृतात्पर्यबुभुत्सयोत्साहिता वर्णपदवाक्यादिरूपमाधत्ते।कण्ठताल्वाद्यभिघातजन्यतया ध्वनिर्विखरणाद् वैखरीति चोच्यते। सा च वैखरीवाक्श्रोत्रेन्द्रियेण गृहीता सती मध्यमानादमभिव्यञ्जयति। अभिव्यक्तश्च मध्यमानादः स्फोटं व्यनक्ति। तत्र नीरूपोऽपि मध्यमानादो वैखरीनादरूपै रूषितः सन् वर्णपदाद्याकृतिमान् भवति। सा चाकृतिः प्रतिबिम्बरूपाऽध्यासरूपा वेति विचारोऽन्यः। सैव परावाक् सविकल्पकसमाधौ योगिनामानन्दबोधिका पश्यन्तीवागिति उच्यते।

---

1. वा. प., ब्र. का. 82
2. तन्त्रालोकः, 3, 32-33
3. वा. प., ब्र. का. 2



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।**
**अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्तते।।**[1]

तन्त्रालोके च-

**विभागाभासने चास्य त्रिधा वपुरुदाहृतम्।।**
**पश्यन्ती मध्यमा स्थूला वैखरीत्यभिशब्दितम्।।**[2]

इत्थं शब्दाद्वयवादे एकमेव शब्दतत्त्वं पश्यन्तीमध्यमावैखर्यादिरूपेण परिणमते। अत्र च परिणामे शब्दतत्त्वं न विकृतिमेति। अतोऽविकृतपरिणाम इत्युच्यते।

अर्थसमन्वितशब्दाद्वयवादे बाह्यार्थमभिप्रेत्य शब्दस्य तत्तदर्थबोधक शब्दात्मना अतात्त्विकपरिणामो विवर्त इत्युच्यते। तत्र परावाग्रूपं शब्दतत्त्वं वास्तविकम्,तस्यैव नैकेऽतात्त्विकाः परिणामा अर्थबोधाय भवन्ति। इयमेव जगद्व्यवहारप्रक्रिया। बाह्यार्थरूपो व्यवहारो जगत्, तद्बोधाय शब्दपरिणामः प्रक्रिया चोच्यते। चितिरूपायां परायां वाचि शब्दार्थयोरुपशमो विद्यते। ततोऽर्थान्वितशब्दप्रसरो जायते। अर्थसमन्वितशब्दाभिव्यक्तौ च बाह्यार्थस्य भासनं भवति। उक्तञ्च तन्त्रालोके-

**बोधो हि बोधरूपत्वादन्तर्नानाकृतीः स्थिताः।**
**बहिराभासयत्येव द्राक्सामान्यविशेषतः।।**[3]

इत्थमत्र निबन्धे काश्मीरशैवदर्शनदिशा शब्दाद्वयतत्त्वं यथामति विचारितम्।

**शब्दाद्वयस्वरूपं हि शैवदर्शनसम्मतम्।**
**सारताऽत्र समाम्नातमन्यच्छास्त्रेषु गीयते।। इति।।**

******

---

1. वा. प., ब्र. का. 2
2. तन्त्रालोकः, 3, 326
3. तत्रैव, 3.257



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वैदिकर्षीणामीश्वरैकत्वचिन्तनं तद्विमर्शश्च

डॉ. प्रह्लादसहायबुनकरः*

भारतवासिनोऽधुनापि वेदवाङ्मये वर्णिताया विचारधारायाः प्रकाशे स्वजीवनोद्देश्यं कर्त्तव्यपथञ्च सम्यगनुसरन्तो जगति गौरवं भजन्ते। सर्वज्ञानमयं वेदवाङ्मयं समग्रेऽपि विश्ववाङ्मये प्रचीनतममस्ति। इत्यत्र नास्त्यधुना विपश्चितां किञ्चिद् वैमत्यम्। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा (यजु. 7. 14) वेदज्ञानराशिः तु भारतवर्षस्य सांस्कृतिकनिधिः वर्तते। भारतीयसंस्कृतेः मूलस्तम्भाः विज्ञानं[1] दर्शनं धर्मश्च वैदिकवाङ्मये प्रतिपादिताः। यदि ज्ञानस्य जिज्ञासा वर्तते तर्हि वेदा एव ज्ञेयाः।[2]

संसारस्य रंगमञ्चे प्रकृतिनटी यद्यद् नाट्यं करोति तत्तद् दिव्यं भवति। प्रकृतेः लीलायाः विविधाः पक्षाः सन्ति यथा उषस आगमनं सूर्योदयो मेघगर्जनं झंझावातो वर्षणमित्यादयः। अस्मिन् जगति विविधाः प्राकृतिकशक्तयः सन्ति या ऋतसञ्चालनं कुर्वन्ति, संसारं व्यवस्थितं कुर्वन्ति च। एताः वेदेषु ऋषिभिः देवरूपेण कल्पिताः।

संसारस्य प्राकृतिकदृश्याणां शक्तीनाञ्चाधिष्ठातारो देवतात्वेन कल्प्यन्ते । यज्ञेषु[3] याभ्यः चरुपुरोडाशसोमादीनां पदार्थनामाहुतयो दीयन्ते होत्रा च या आहूयन्ते ता एता देवता एव इन्द्रवरुणादयः।

मनुना वेदे एव सर्वेषां धर्माणां मूलत्वं प्रतिपादितम्– 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।'[4]

जगति वैदिकदर्शनस्य विचारधाराया वैशिष्ट्यं स्फुटमवलोक्यते। ऋग्वेदे दर्शनचिन्तनानि मुखरीभूतानि सन्ति।

वैदिकवाङ्मये देवा महत्त्वपूर्णाः। अत एव ते वेदाध्यायिना सर्वप्रथमं ज्ञेयाः।[5] यास्ककृतनिरुक्तस्य दैवतकाण्डे वैदिकदेवानां विवेचनं वर्तते। निरुक्तकारो यास्काचार्यो देवविषये व्युत्पत्तिजन्यमर्थं प्रकटयति– देवो दानाद्वा। दीपनाद्वा। द्योतनाद्वा। द्युस्थानीयो भवतीति वा।[6]

**अत्र प्रश्नः समुदेति यत् कियन्त देवाः सन्ति सृष्टौ?**

देवगणनाप्रसङ्ग ऋग्वेदे संख्याभेदो दृश्यते।[7] ऋग्वेदे लोकत्रयानुसारं प्रत्येकं लोकस्य एकादश देवता वर्णिताः। इत्थं तत्र त्रयस्त्रिंशद्[8] देवता मन्यते। ऐतरेयब्राह्मणेऽपि त्रयस्त्रिंशद्देवा इति कथितम्– 'अष्टौ वसवः एकादश रुद्राः द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च।'[9] शतपथब्राह्मणेऽपि देवानां यथावद्

---

* अध्यक्षः,संस्कृत विभागे आर.एल. सहरियास्नातकोत्तरमहाविद्यालये, कालाडेरा, जयपुरम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गणना क्रियते परं अन्तिमौ द्वौ प्रजापतिरिन्द्रश्च स्तः।[10] अथर्ववेदस्य ब्रह्मचारिसूक्ते देवानां त्रयस्त्रिंशत् संख्या परिगणिता।[11] ऋग्वेदशतपथब्राह्मणयोः देवतानां एकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशताधिकत्रिसहस्रसंख्या प्रोक्तास्ति।[12] यजुर्वेदेऽपि त्रयस्त्रिंशद् देवाः परिगणिता वर्तन्ते।[13]

---

1. 'एकस्माद् अनेकस्मान्नवतरणं विज्ञानं यज्ञविद्या तथा अनेकस्मादेकस्मिन्नारोहणज्ञानं ब्रह्मविद्या'—महर्षिकुलवैभवम्, उपोद्घात पृष्ठ—3
2. 'निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्'—अत्रिः।
3. 'वाचश्चित्तस्योत्तरोत्तरिक्रमो यद् यज्ञः'—ऐतरेयारण्यकम् 2,3,3,15
4. मनुस्मृतिः 2.6
5. वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रेविज्ञैः प्रयत्नतः।
   दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमधिगच्छति।।
   तद्विदां तदभिप्रायानृषीणां मन्त्रदृष्टिषु।
   विज्ञापयति विज्ञानं कर्म्माणि विविधानि च।।
   न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन दैवतम्।
   लौकिकानां वैदिकानां कर्म्माणि फलमश्नुते।।
   तत्र तत्र यथावच्च मन्त्रान् कर्म्मसु योजयेत्।
   देवतायाः परज्ञानात्तद्धि कर्म समृद्ध्यते।। — आचार्यः शौनकः, बृहद्देवता, 1.2—5
6. यास्कः, निरुक्तम्, 7.4
7. ऋग्वेदः1.41.1— मित्रो वरुणोऽर्य्यमेति त्रयः प्रचेतसो देवाः।
   ऋग्वेदः1.139.19 अपिच, 8.28.1— त्रयस्त्रिशद् देवाः।
   ऋग्वेदः3.9.9— ' त्रीणि शता त्रिसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।'
8. ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्। — ऋग्वेदः, 8.28.1, ऋग्वेदः1.39.19
   स्तुतासो असथा रिषदसोये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च। मनोर्देवा यज्ञियासः।— ऋग्वेद,8.30.02
9. ऐतरेयब्राह्मणम्1.1.1
10. 'त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त
    एकत्रिंशंदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशदिति।'— शतपथब्राह्मणम्, 11.6.3.5
    तुलनीयम्— अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्सोमो रुद्रेभिरभिरक्षत्वात्मना।
    इन्द्रो मरुद्भिर् ऋतुथा कृणोत्वादित्यैनोवरुणः सर्म संयत्।। — आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, 2.11
11. यस्य त्रयस्त्रिशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
    तान् वै त्रयस्त्रिशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः।। अथर्ववेदः,10.7.27
12. 'त्रीणि शतास्त्रिसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।' ऋग्वेदः,3.9.9 'कति देवा देवा याज्ञवल्क्येति त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेत्योमिति।'—शतपथब्राह्मणम्, 11.6.3.4
13. त्रयस्त्रिशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ट्यधिपतिरासीत्' — यजुर्वेदः, 14.31



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पण्डितमधुसूदनओझामहोदयः 'अग्निषोमात्मकं जगदि' ति[14] कथयित्वा विषयेऽस्मिन् वर्णनं करोति यद् इन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इत्यष्टौ देवता क्षत्रियाणि। क्षत्रवीर्यप्रदानव्रतैरेतैर्देवैः संस्कृतात्मा क्षत्रियो भवति।[15] विषयेऽस्मिन् निरुक्तकारो यास्काचार्यो निरुक्ते सप्तमाध्याये दैवतकाण्डे कथयति–

**तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः अग्निः पृथिवीस्थानः।**
**वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।।[16]**

अथर्ववेदेऽपि वर्णितमस्ति– '

**ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेमे भूम्यामधि।[17]**

तदा पुनः वरुणोऽयं मित्रोऽयं मरुदयं सवितायं पूषायं विष्णुरयं रुद्रोऽयं पर्जन्योऽयं प्रजापतिरयं बृहस्पतिरयमित्यादिप्रकारेण नानादेवानां वर्णनं वैदिकवाङ्मये कथमुपलभ्यते?

वेदवाङ्मयमनादि अपौरुषेयञ्च[18] मन्यते। वेदा भारतीयपरम्परागतमतानुसारेण तु स्वयं साक्षात् परमेश्वराद् पुरुषादुद्भूताः। अत एव वेदस्याधारभूताः विभिन्ना देवताः प्राकृतिक– शक्तीनां प्रतीकभूताः।

बहुदेववादिन ईश्वरं सृष्टिकर्तारं नियामकं प्रलयकारिणमेकञ्च मन्यन्ते। एतदतिरिक्तमन्याः देवताः भूतानि प्रेताः वृक्षपर्वतमेघमृतात्मादयश्च देवान् मत्वा तानुपास्यान् स्वीकुर्वन्ते। परमेकेश्वरवादिन एकमेवेश्वरमुपास्यं मत्वान्यान् वाय्वग्न्यादिकान् काल्पनिकदेवान् प्रकृतेः विकारान् मन्यन्ते।

यतो हि एता अचेतनशक्तयः परमात्मनः प्रेरणाशक्त्या विभिन्नेषु प्राकृतिककार्येषु परिणता भवन्ति।[19]

ऋग्वेदे बहुदेववादस्य विचारधारा परमार्थतो वास्तविकी नास्ति। पुरुषसूक्तं स्फुटरूपेण एकेश्वरवादं प्रमाणीकरोति–

**पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।[20]**

वैदिकर्षीणां मते विराट् पुरुष एवास्ति आदिशक्तिमान् परमेश्वरः। स एव सर्वोपरिसत्तास्ति, यः चराचरेषु व्यापनाद् व्याप्नोति। स एव विश्वस्यात्मास्ति। अत एव स परमात्मेति बोध्यः। स एव विश्वस्य सञ्चालनं करोति। स एव एकाधिष्ठाने तिष्ठन्नपि सर्वत्र विद्यमानोऽस्ति। स एव ऋतसञ्चालनं करोति।

---

14. पण्डितमधुसूदनओझाविरचितदेवतानिवित्, पृष्ठ 1
15. देवतानिवित्, पृष्ठ 3
16. यास्कः, निरुक्तम्,7.2
17. अथर्ववेदः, 10.9.12
18. ऋग्वेदः, पुरुषसूक्तम् 10.9
19. वैदिक एकेश्वरवाद (शोध लेख, डॉ. कर्णसिंह शास्त्री), वैदिक चिन्तन, डॉ. रघुवीर वेदालंकार, पृ. 191
20. ऋग्वेदः, 10.90.2



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसारस्योत्पतिः ऋग्वेदानुसारमृतादेवाभवत्।[21] अपि च हिरण्यगर्भसूक्ते एकाधिदेवमधिकृत्य ऋषिणा प्रोक्तम्–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[22]

यजुर्वेदोऽप्याह शिवसङ्कल्पसूक्ते–

'ज्योतिषां ज्योतिरेकम्'

ऋग्वेदस्य तृतीयमण्डले पञ्चपञ्चाशत्तमे सूक्ते द्वाविंशेषु मन्त्रेषु विभिन्नदेवानां रूपेषु एकस्या एव अदृष्टशक्तेः विततिरस्ति– महद्देवानां सुरत्वमेकम्।'[23]

नासदीयसूक्तमपि एकेश्वरवादं प्रतिपादयत्यधोलिखितमन्त्रेण–

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।

योऽस्याध्यक्षः परमे व्योम्नि सोऽङ्ग वेद यदि वा न वेद।।[24]

परमकारुणिकपरमेश्वरस्य विषये यजुर्वेदे वर्णितमस्ति–

'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।'[25]

शुक्लयजुर्वेदे परमात्मा सर्वेषु चराचरेषु व्याप्नोति।

एक एवेश्वरशक्तिर्विविधैः पदैरुपस्थाप्यते यजुषा–

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।।[26]

---

21. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो राश्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि दिदधद्विश्वस्य मिषतोवशी।।
सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।ए दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।। – ऋग्वेदः, 10.190. 1–3
22. ऋग्वेदः 10.121.1
23. ऋग्वेदः,3.55.1–22
24. ऋग्वेदः, 10.129.6
25. यजुर्वेदः, 40.8
26. यजुर्वेदः, 32.1



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेदभाष्यकारः सायणाचार्यः कथयति– ' तस्मात् सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते।'

शुक्लयजुर्वेदवचसि सोऽसौ परमात्माणुमात्रेषु परमाणुमात्रेषु च व्याप्तिं लभमानो वर्तते–

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्'[27] ऐतरेयब्राह्मणेऽपि च विभिन्नानां देवानां रूपेषु एक एव परमेश्वरोऽनेकैः नामभिः प्रपञ्चत्वं लभत इत्याख्यातमस्ति।[28]

वेदवाङ्मयस्य मूर्धन्यव्याख्यात्रा स्वामिदयानन्दमहोदयेन स्वग्रन्थस्य सत्यार्थप्रकाशस्य प्रथमसमुल्लासे एकस्यैव परमात्मनः शक्तिवैचित्र्याच्छताधिकानि नमानि प्रस्तुतानि। तैत्तिरीयोपनिषदनुसारम् – यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभि संविशन्ति, तद् ब्रह्मेति।[29]

श्वेताश्वरोपनिषदनुसारं तु–

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।**
**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।**[30]

निरुक्त एकेश्वरवादस्य वर्णनं कुर्वन् यास्को ब्रूते– "तासां महाभाग्यादेकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात्।"[31] पण्डितमधुसूदनओझामहोदयः कथयति यत् – यदुद्देशेन किञ्चित्क्रियते तत्र कर्मणि सा देवता, यदुद्देशेन किञ्चदुच्यते तत्र वाक्ये सा देवता। मन्त्रांश्च द्रष्टृणां वाक्यानि भवन्ति।[32] महाभाग्यादैश्वर्ययोगादेकात्मनामनेकधा विकुर्वन्तीनामेकैकस्याः प्रतिविकारं जातवेदा वैश्वानरो वरुणो रुद्रोऽश्विनौ उषा इत्येवमादीनि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।[33]

एतदेवाधिकृत्य ऋषिणा ऋग्वेदे प्रोक्तम्–

**'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यं स सुपर्णो गरुत्मान्।**
**एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।'**[34]

मन्त्रेऽस्मिन् प्रकृष्टरूपेण एकेश्वरवादस्य प्रतिष्ठास्ति। तत्तत्वमेकमेवास्ति परं विद्वांसो ब्राह्मणास्तत् अनेकरूपाश्रितमाहुः।[35] अत्रेदमवधेयं यदादौ विदुषां बहुदेववादः सुमत आसीत् परमनन्तरं दार्शनिकमतप्रवृद्धमतयो विपश्चितस्तदेकं नित्यं सत्तत्वं मन्वानास्तस्यैव सकलं विवर्त इति प्रतिपादयामासुः।[36]

---

27. यजुर्वेदः,40.1
28. ऐतरेयब्राह्मणम्, 3.1.3.12
29. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3.1
30. श्वेताश्वतरोनिषद,6.11
31. यास्कः निरुक्तम्, 7.2
32. आधिदैवविकाध्यायः, देवताधिकारः, पृ,3
33. निरुक्तम्, दुर्गभाष्यम्, 7.2
34. ऋग्वेदः, 1.164.46
35. तुलनीयम्– 'इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमानं बहुधा मेधाविना वदन्ति इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यञ्च गरुत्मन्तम्– निरुक्तम्, 7.5।
36. एक एवाग्निबर्हुधा समिद्धः एकसूर्यो विश्वमनुप्रभूतः।
एकैवौषाः सर्वमिदं विभाति एवं वा इदं विबभूव सर्वम्।। ऋग्वेदः 8.58.2



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवतावादं ब्रह्ममूलकं प्रतिपादयतां श्रीमतां दामोदरसातवलेकरमहोदयानां मते यथेकः पुरुषः पितृभ्रात्रादिगुणबोधकैः शब्दैः सम्बोध्यतेऽथ चानेकैरेभिः शब्दैः तस्यैवैकस्यैव पुरुषस्य बोधो भवति तथैव अग्निवाय्वाद्यनेकैः शब्दैरेकस्यैव परमात्मनः बोधो भवति।[13] एको मनुष्यो यथा विभिन्नानि सम्बोधनानि गृह्णाति तथैव एकस्य परमात्मनः बहूनि नामधेयानि भवन्ति। तस्माद् भिन्नानां नाम्नां भ्रमेण अनेकदेवतावादो युक्तियुक्त इति कदापि नैव बोध्यः। सारतोऽधिदेवेतरदेवा अधिदेवस्यैव प्रत्यङ्गानि इति वेत्तुं शक्यते। निरुक्तेऽपि च –

**महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।**
**एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।[38]**

तदेवं सिध्यति यदिदं देवानां वस्तुतो माहात्म्यमेव वर्ण्यते। यथार्थतस्तु तद्विभाजनं बाह्यमेवास्ति। अन्तरङ्गभूतोऽधिदेवतात्मा तु न कदापि भेदमश्नुते। तस्मात् सर्वेष्वप्येषु देवेषु समाना गुणा भवन्ति। तद्यथा सर्वेऽपि देवा बुद्धिमन्तो द्युतिमन्तः प्राणवन्तः चरित्रवन्तो यज्ञिया अनुग्रहशीलाः दानशीलाः परोपकारिणः सत्यवादिन ऋतज्ञाः अमृताः सहृदयाः सर्वोत्कृष्टाः निश्चलाः पवित्रा सर्वज्ञात्वादिगुणैरलंकृताश्च विद्यन्ते। तद्यथा निरुक्तम्–

**इतरेतरजन्मानो भवन्ति। इतरेतरप्रकृतयः।[39]**

इत्थं वर्णनविशेषकाले वर्णितो देव इतरदेवानां योनिर्भवति, यथा– 'अग्निर्वै देवयोनिः'। 'अग्निर्वै देवानां नेदिष्ठः। अग्निर्वै देवानां वशिष्ठः।' सविता वै प्रसवानामीशः। ' 'आपो वै सर्वाः देवताः।' अत एव सर्वे देवाः स्तुतिकाले स्वमाहात्म्येन सर्वोत्कृष्टरूपेण वर्णिताः। अस्मात् कारणाद् दयानन्दादयः वेदबुधाः 'देव' शब्दस्य 'परमात्मा' एव शब्दार्थं प्रस्तुवन्ति।[40]

शतपथब्राह्मणं विविधतायां यदैक्यमस्ति तमात्मानं प्रतिपादयति–

**'अत्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति तदेतत् पदनीयं सर्वस्य यदयमात्मा।'[41]**

**देवस्य ऐश्वर्यप्रदातृत्वाद् देवत्वमिति दुर्गमतम्– देवो ददाति ह्यसौ ऐश्वर्याणि।[42]**

सर्वाः देवताः प्रकृतेः विभिन्नानि स्वरूपाणि सन्ति। इदं जगद् विभिन्नानां देवानां क्रीडानिकेतनमस्ति। वैदिकार्याणां विश्वासोऽयमासीत् यदेतेषां देवानामनुग्रहणेनैव समस्तानि कार्यजातानि सञ्चालितानि भवन्ति। वैदिकदेवा महिमशालिनः सन्ति। तेषां देवानां महिम्ना एव विविधत्वं जायते। वैदिकधर्मस्य विशिष्टता इयं यद् यस्मिन् काले यो देवः स्तूयते तस्मिन् काले स एव सर्वोत्कृष्टः कथ्यतेऽर्थपतित्वात्[43]–

---

37. वैदिक चिन्तन, पृष्ठ 193 (वैदिक एकेश्वरवाद, शोधलेख)

38–39. निरुक्तम्, 7.1

40. सत्यार्थप्रकाशः सप्तमः समुल्लासः, ईश्वरवेदविषयः

41. शतपथब्राह्मणम् 14.4.2.18 42. निरुक्तम् दुर्गभाष्यम् 7.4

43. अमुष्या देवातायाः प्रसादेनाममुष्यार्थस्य पतिर्भविष्यामीत्येतां बुद्धिं पुरोधाय।
–निरुक्तम्, दुर्गभाष्यम्, 7.1 ' स एष एक एकवृदेव एव।।– अथर्ववेदः, 13.4



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्देवतः स मन्त्रो भवति।[44]

श्रीमन्मेक्डोनलमहोदयोऽपि देवमीश्वरं ज्ञात्वा कस्यचनैकस्याद्भुतस्य देवनगरस्य कल्पनां कुरुते। तद्वर्णनानुसारं सूर्यदेवस्य रथं सप्ताश्वाः कर्शयन्ति। देव्युषा कदाचन सूर्यस्य पत्नीत्वेन वर्ण्यते कदाचन च तस्य मातृत्वेन वर्ण्यते। मेक्डोनल उषसं प्रत्येकं देवस्य प्राणदायिनीमाह।[45]

एतद्विधैः सम्भ्रान्तवर्णनैः अमी विद्वांसो वैदिकदेवान् ग्रीकगाथाशास्त्रस्य 'अपोलो' आदिभिः देवैः सम्मेल्य वैदिकगाथाशास्त्रं प्रबलं कर्तुमीहमाना एकस्य नूतनस्य तुलनात्मकस्य च गाथाशास्त्रस्य च सर्जनं कुर्वन्ति।[46]

ग्रीकरोमयोः बहुदेवाताया अर्थस्तु एकस्य परदेवस्याध्यक्षे लघ्वीनामनेकासां देवातानां वास इत्याह। इयं मान्यता वैदिकदेववादस्य प्रतिकूला मान्यतास्ति।

मैक्समूलरमहोदयोः वैदिकैकेश्वरवादं 'हीनोथिज्म' इति उक्तवान्। तस्मान्मैक्समूलरः त्रयस्त्रिंशत् देवतानामुपासनामाह। परं स एतं बहुदेवतावादं न मनुते। तद्वचनानुसारं तु वैदिकर्षयः प्रत्येकं देवं परमदेवं मत्वापूजयन्।

परं महर्षिर्दयानन्दः तां मान्यतां काल्पनिकीं मत्वा तां निरस्यन् ब्रूते यद् देवताशब्देन य ईश्वरं गृह्णन्ति ते सत्यं न जानन्ति।[48] 'देवता' शब्दं व्याख्यायमानः स्वामिदयानन्दः स्फुटरूपेण एकेष्वरवादस्यैव प्रतिपादनं करोति।

पौराणिकसाहित्यस्य कारणात् प्रमुखतः वैदिको बहुदेववाद आकारं प्राचारं वागतः। अस्मादेव हेतोः हिन्दूसमाजे शैवशाक्तवैष्णवादयो विविधाः सम्प्रदायाः जनिर्लेभिरे। त इमे सम्प्रदायाः परवर्तिभिः बहुदेवतावादिभिः सम्प्रसारिताः।[49]

मैक्समूलरादयो पाश्चात्त्यविद्वांसः वैदिकदेवतावादे बहुदेववादस्य यदारोपणं कुर्वन्ति तन्मूले पौराणिककालात् प्रचलितस्य बहुदेवतावादस्य प्रभाव एंव परिलक्ष्यते।[50] विषयेऽस्मिन् स्वामिदयानन्दस्य समक्षे प्रश्नः समुदित आसीत् । स्वीयां दिव्यदृष्टिं वेदप्रामाण्यं चाधारीकृत्य स महर्षिरेकेश्वरवादं प्रसारितवान् बहुदेववादं च सप्रमाणं खण्डितवान्। तस्मात् 'हीनोथिज्म' पदेन पौराणिकदेववादस्तु बोद्धुं शक्यते परं

---

44. निरुक्तम्, 7.1
45. दर्शनीयम्– । Veduic Reader for Students Page 92 by A.A. Macdonell Reprint 1954
46. दयानन्द दर्शन, पृ. 27 (डा. वेदप्रकाष गुप्त कृत)
47. Max Muller, 'India what can it teach' page 146-247, 1879
48. सत्यार्थप्रकाशः, पृ 175., दयानन्द दर्शन पृ. 27
49. वैदिक चिन्तन (शोध लेख) पृष्ठ– 191
50. डॉ. वेदप्रकाश गुप्त, दयानन्द दर्शन. पृ.110



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पदमिदं वैदिकदेवतावादं कथमपि संकेतयितुं नार्हति। श्रीमद्भागवतेऽपि एकेश्वरवादस्य प्रबलः पक्षपातः दृश्यते–

**अहं सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।**
**हित्वार्चां भजते मौढ्यात् भस्मन्येव जुहोति सः।।**[51]

शातपथब्रह्मणेपि एकं ब्रह्म परित्यत्य पार्थिवानामन्येषां देवानां पूजनं कुर्वतः मूर्खान् ब्रूते– योऽन्यां देवतामुपासते न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्।

अत एव स्पष्टमिदं यद् अङ्गी आत्मा स्वस्मात् स्वयमेव जायते। सारतो देवा आत्मजन्मानः। आत्मैवैषां रथो भवति। आत्माश्वः आत्मायुधम्। आत्मेषवः। आत्मा सर्वं देवस्य देवः।[53]

अन्येषां पाश्चात्त्यानां मते वेदेषु प्रथमकाले बहुदेववाद आसीत् तदनन्तरमेकेश्वरवादस्य कल्पना समक्षमागता। ततः परं सर्वेश्वरवादः । देवानामेष उत्पत्तिविकासक्रमश्च निराधारः प्रतीयते। यतोऽथर्ववेद एव स्पष्टरूपेणोद्घोषितं यत्–ईश्वरः एकः। सोऽद्वितीयः सोऽद्वैतः। अथर्ववेदे परमेश्वरस्यानेकत्वं प्रत्याख्याय तस्य द्वितीयत्वं चतुर्थत्वं पञ्चमत्वं षष्ठत्वं सप्तमत्वमष्टमत्वं नवमत्वं दशमत्वादिकञ्च निषेधयति। तञ्च सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं प्रतिपादयति।[54]

दयानन्दस्य वाण्यां वेद क्वचिदपि बहुवादस्य स्फुटतराभिव्यक्तिर्नावलोक्यते परमेकेश्वरवादस्तु स्फुटतरैः शब्दैः बहुत्र मुखरीभूतो दृष्टिपथमागच्छति।[55]

महर्षिर्दयानन्द एकेश्वरवादं प्रबलैः शब्दैः पुष्णाति। तन्मतानुसारं यस्माद् वैविध्यपूर्णा सृष्टिरियमापादिता, यो धारणप्रलयौ विदधाति, यस्मिन् व्यापके जगदीश्वरे जगदिदमुत्पत्तिस्थितिप्रलयानाप्नोति सः परमेश्वरः एको नित्यः सनातनोऽस्ति।[56]

इदमेव कारणं यद् दयानन्दादयो[57] विद्वांसो वेदानामाध्यात्मिकमर्थं कुर्वाणा देवशब्दस्य परमात्मा एवार्थं गृह्णन्ति। निष्कर्षे कथयितुं शक्यते यद् वैदिकविचारानुसारेण संसारस्य एका शक्तिः भवति। सा

---

51. श्रीमद्भागवतम् 3.29.21–22
52. शतपथब्राह्मणम्, 14.4.02 कण्डिका 19.11
53. निरुक्तम्,7.1
54. न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
    न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
    नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
    स एष एक एकवृदेव एव।।– अथर्ववेदः, 13.4
55. सत्यार्थप्रकाशः, पृ. 174
56. सत्यार्थप्रकाशः, पृ. 208 , दयानन्ददर्शन, पृ. 110
57. 'एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येत् स विज्ञेयः परो धर्मः' – मनुस्मृतिः, 12.113



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एव तस्य नियामिकास्ति। एते देवाः तस्याः प्रतिनिधित्वं कुर्वन्ति। वेदेषु एकेश्वरवादः प्रतिपादितः देवत्वेन। अनेकेषु सूक्तेषु कथितमस्ति यद् अन्येषां देवानां स्थितिः केवलमेकाधिदेवस्य महिम्नोऽङ्गरूपेण वर्तते।

तदेवमेकेश्वरवादो वैदिकेश्वरवादस्य याथातथ्यम्। 'यो देवेष्वधिदेव एक एवासीत्' इति रूप एकाधिदेवः जगतः सञ्चालकः नियामकश्चास्ति। अन्येषां देवानां स्थितिः परमात्मनोऽङ्गानि वदन्तीति वेदवाक्यस्येदमेव याथार्थ्यमस्ति।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# पुराणसंरक्षणे ज्ञातिपुराणानां महत्त्वम्

डॉ. दक्षा जोशी*

ब्रह्मणा वेदाः सृष्टाः पुराणानि च। परन्तु वेदपुराणयोः मध्ये प्रथमं पुराणं निर्मितम् तदन्तरं वेदाः सर्वशास्त्राणि च रचितानि इति पुराणेषु गीयते। उक्तं च–

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।[1]

महाभारते उक्तं–इतिहासपुराणाभ्यां वेदानां उपबृंहणं जातम्।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।[2]

उपबृहणं च श्रुतिप्रतिपन्नार्थविशदीकरणम्।

एककाले इतिहासपुराणयोः भेदः एव नासीत् परंन्तु गच्छताकालेन इतिहासपुराणयोः भेदः समुपजायत। पुराणे वेदज्ञानमेवं विशदीकृतम्। यतः स्त्रीशूद्राणाम् वेदाध्ययने अधिकारोः नासीत्।

पुराणे ये सर्गविसर्गयोः वृत्तान्ताः सन्ति तेषां मूलं वेदेषु प्राप्यते। पुराणवचनानि संकलीकृत्य महर्षिणा व्यासेन पुराणसंहिता रचिता, उक्तं च विष्णुवायुब्रह्मांडपुराणेषु–

आख्यानैरुपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहिता चक्के पुराणार्थविशारदः।।[3]

व्यासेन या पुराणसंहिता सा शिष्येभ्यः प्रतिपादिता स्वयं व्यासेन अष्टादशपुराणानि रचितानि, परन्तु अद्य प्राप्तेषु पुराणेषु उक्त विस्तारः नैव प्राप्यते कुत्रचित् विस्तारः कुत्रचित् संकोचो विद्यते। ततः समर्थयति यत् पुराणेषु संवर्धनं संकोचश्च पुराणविदि्भः कृतः। पुराणनिवर्चनेषु जीवगोस्वामिना कथितं पुराणात् पुराणम्। पुराणकारैः बहूनि समाविष्टानि सन्ति। पुराणकारैः पुराणस्वरूपं निश्चितं उक्तं च मत्स्यपुराणे–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।[4]

एतत् वायुपुराणेऽपि समर्थितम्।

पुराणलक्षणेषु पूर्वे द्वे लक्षणे ऋषि परम्परातः प्राप्ते। त्रीणि लक्षणानि सूतपरम्परायाः प्रदानम् पुराणानां

---

*टी. एम. शाह महिला आर्ट्स कॉलेज, ईडर

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महत्त्वम् शास्त्रकारैः स्वीकृतम्। पुराणाध्ययनात् मानवः विचक्षणो भवति। चतुर्दशविद्यासु पुराणं प्रथमं गण्यते। अतः पुराणशास्त्रस्य अति महत्त्वमासीत्, वर्तते च्।

भागवतब्रह्मवैवर्तपुराणयोः उक्तं महापुराणस्य स्वरूपम्, भागवते तस्य लक्षणं निर्दिष्टम्–

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।[5]
सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।।[6]

पुराणेषु विविधाः विषयाः प्राप्यन्ते–

आख्यानैरुपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारदः।।[7]

मत्स्यपुराणे उक्तं च यच्चान्यद्विद्यते भुवि ते सर्वेपि विषयाः पुराणेषु समाविष्टा भवन्ति। तेन कारणेन पुराणस्य स्वरूपं सर्वज्ञानसंग्रहरूपं भवति।

पुराणसारोद्धारः ग्रन्थाअपि पुराणसंरक्षणार्थमेव रचिता आसन्। साम्प्रदायिकपुराणेषु अपि एतादृशी प्रवृत्तिः समजायत।

वेदेषु गोत्र–प्रवर्तकाः ऋषयः बभूवुः तेषां बहवः उल्लेखाः पुराणेषु प्राप्यन्ते। स्कन्दपुराणतः पद्मपुराणतश्च तीर्थमाहात्म्यानि ज्ञातिपुराणानि कश्चिद् अंश उद्धृत्य रचितानि सन्ति। गुर्जरप्रदेशे एकादशं एतादृशानि पुराणानि प्राप्यन्ते।

धर्मारण्यं स्कन्दपुराणतः पद्मपुराणतश्च रचितं वर्तते।[8] तस्मिन् मोढब्राह्मणावणिजां उत्पतिः प्राप्यते। सरस्वतीपुराणे सरस्वतीनदीतीरतीर्थानाम् माहात्म्यं प्राप्यते। देलमालग्रामः मल्लानां स्थानं अस्ति। वायुपुराणं प्रसिद्धं, वायुपुराणतः वायटब्राह्मणावणिजामितिहासः एतस्मिन् पुराणे प्राप्यते। श्रीमालपुराणं अपि श्रीमालीब्राह्मणवणिक्सुवर्णकाराणां ज्ञातिपुराणं वर्तते। श्रीमालनगरमद्य भिन्नमाल नाम्ना प्रसिद्ध इति–मस्ति। सांस्कृतिकदृष्ट्य एतत् पुराणं महत्त्वं धारयति। कालिकापुराणानि त्रीणि सन्ति, एकं कालिकापुराणमुपपुराणमन्यद् कालिकापुराणं कांस्यकारानाम् ज्ञातिपुरामस्ति। अन्यद् कालिकापुराण

---

1. महाभारतम् 1/1/64
2. श्रीभाष्यम् 2/1 1/
3. विष्णुपुराणम् 3/6 /16 वायुपुराणम् 60/21, ब्रह्मपुराणम्–1/34/1
4. मत्स्यपुराणम् 53/64
5. वायुपुराणम् 4/10
6. भागवतपुराणम् 2/10/2
7. भागवतपुराणम् 12/7/9
8. वायुपुराणम् 60/21



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिम्बचपुराणं नाम्ना प्रख्यातमस्ति। बालखिल्यपुराणे गुग्गुलिकजाघ्म्बुब्राह्मणवणिजां ज्ञातिपुरामस्तिस्ति। बालखिल्यपुराणं स्कन्दपुराणस्य भागः। दीशावलजाल्योधरब्राह्मणवणिजां सिद्धवाटिकामाहात्म्यं ज्ञातिपुराणमस्ति। साचिहरोपाख्याने साचोराब्राह्मणामितिहासः प्राप्यते। श्रीस्थलमाहात्म्ये औदिच्यब्राह्मणानां स्थलान्तरणं निरूपितम् अस्ति। नंदीपुराणे नंदब्राह्मणानां श्रीगौडमाहात्म्ये श्रीगौंडज्ञातेः अनाविलब्राह्मणानां अनाविलपुराणानां, ब्राह्मक्षेत्रे माहात्म्ये खेटकवलानां, कोटयर्कमाहात्म्ये खडायताब्राह्मणवणिजां उत्पत्तेः इतिहासः प्राप्यते।[9] कण्डूलपुराणे कण्डोलब्राह्मणवणिजां उत्पत्तिः निरूपिता वर्तते। एकलिंगमाहात्म्ये मेवाडतः आगतानां ब्राह्मणाह्मतिहासः नाभि प्राप्यते। गदाधरमाहात्म्ये उदुम्बरब्राह्मणानां नीमा, हरसोलवणिजां ज्ञातिपुराणं वर्तते। गुर्जरभाषायां लेउआ कृषिवलानां ज्ञातिपुराणं अस्ति। तत् तु गुर्जरभाषायां वर्तते। विश्वकर्मापुराणे गज्जरसूत्रकारादिनां ज्ञातिपुराणमस्ति। पांचालपुराणे पांचालक्षेत्रस्य इतिहासः ब्राह्मणवणिनामुत्पत्ति कथा प्राप्यतेसाबरमतीमाहात्म्यं तापी माहात्म्यं, डंकपुरमाहात्म्यं नर्मदामाहात्म्यं तीर्थपुराणानि एवं स्थलपुराणानि नाम्ना प्रसिद्धानि सन्ति।

एवं ज्ञातिपुराणेषु पुराणस्वरूपं भौगोलिकं महत्वं धारयति। सांस्कृतिक दृष्ट्या एतानि पुराणानि महत्त्वमादधति। एतत्तु सामाजिकपरम्परायाः स्रोतोऽस्ति।

एतेषु पुराणेषु श्रीमालपुराणबकण्डूलपुराणवालखिल्यपुराणानां अनुसंधानकार्यजामेतदवशिष्यते।

ज्ञातिपुराणानां संरक्षणार्थमध्ययनं कर्तव्यंप्रकाशनकार्यञ्च अपेक्षते। तेषां पारायणं अपि हितावहं मस्ति। ऐतिहासिकभौगोलिकसामाजिकदृष्ट्या एतेषांमध्ययनं महद् उपकारकं भवेत्। अतः सर्वेभ्य एतदर्थं प्रार्थयामि।

******

---

9. मत्स्यपुराणम् 2/24



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वैष्णवतन्त्रों के संदर्भ में समता के स्वर

**प्रो. अशोक कुमार कालिया***

भारतीय शास्त्रों में विविध प्रकार के धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जो कहीं–कहीं एक दूसरे के पूरक हैं और कहीं–कहीं एक दूसरे के विरोधी भी। प्रत्येक शास्त्र किसी न किसी विशेष सिद्धान्त की स्थापना करता हुआ दिखायी देता है। ऐसी स्थिति में प्रायः यह कहना सम्भव नहीं होता है कि किसी एक विषय पर भारतीय शास्त्रों का समवेत रूप में प्रतिपाद्य मत क्या है? हाँ, स्वर की या तात्पर्य की चर्चा अवश्य की जा सकती है। यह बात **समता** के प्रश्न को लेकर और अधिक स्पष्ट रूप में सामने आती है।

विषमता तो सृष्टि का स्वभाव है। अतः विषमता से पूर्णतया बचा नहीं जा सकता। समता का प्रश्न सामाजिक क्षेत्र में ही उठाया जा सकता है। **विषमता** प्रकृति की देन है और **समता** मानव समाज की सुन्दर कल्पना। इस सृष्टि में, वैषम्य के साम्राज्य में प्रबुद्ध मनुष्य समता के सिद्धान्तों को, समता के मूल्यों को, समता के तत्त्वों को ढूँढ़ कर स्थापित करना चाहता है, और यहीं है मनुष्य की सामर्थ्य–सीमा।

अब देखना यह है कि इस विषय में भारतीय शास्त्रों का क्या दृष्टिकोण रहा है। भारतीय समाज का एक प्रमुख आधार **वर्णव्यवस्था** है। वर्णव्यवस्था की कल्पना भारतीय शास्त्रों की अत्यन्त मौलिक कल्पना है। यह कल्पना वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से भारतीय शास्त्रकारों की सर्जनात्मक दार्शनिक मनीषा और प्रतिभा का अनुपम निदर्शन है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु जिस दृष्टि को लेकर यह व्यवस्था आविर्भूत हुई, कालक्रम से वह दृष्टि व्यवस्था के साथ अधिक समय तक चल नहीं पायी। प्रत्युत यह कहना अतिरिक्त सम्भवतः न हो कि बाद के शास्त्रकार उस दृष्टि से अपरिचित थे। सामाजिक व्यवस्था अथवा शक्तियों के आधार पर चार वर्णों में विभाजित करने की कल्पना आरम्भिक भारतीय शास्त्रोंकारों ने की। इस कल्पना की दृष्टि में लोक महत्त्वपूर्ण था, समाज महत्त्वपूर्ण था, अतः उस लोक और समाज के लिए प्रवृत्त हुई यह व्यवस्था महत्त्वपूर्ण थी, सही साध्य थी। किसी एक वर्ण की उच्चता अथवा नीचता का प्रतिपादन इसका प्रयोजन नहीं था। यह तो वर्णव्यवस्था के प्रतिष्ठापक शास्त्रकारों की बात है। यहॉ तक विषमता का कोई प्रश्न नहीं है, अतः समता का भी नहीं है। समता का प्रश्न तो वहीं उठेगा, जहाँ समता न हो। इन वर्णों में जब से एक उत्कृष्ट कहा जाने लगा और दूसरे को नीच, एक को वन्द्य कहा जाने लगा और दूसरें को निन्द्य, तभी से भारतीय समाज में विषमता का बीजवपन हुआ,

---

***पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और तभी से समता का प्रश्न भी सार्थक हो गया। प्रायः सभी उपलब्ध शास्त्र अपने ढंग से वर्णों की उच्चता अथवा नीचता की चर्चा करते हुए दिखायी देते है। अतः सामाजिक विषमता शास्त्रों में कोई ढूँढ़ने की वस्तु नहीं है।

आश्चर्य की बात यह है कि कालक्रम से विविध प्रकार की कुरीतियों से ग्रस्त होती हुई यह व्यवस्था, व्यवस्था नहीं रह गयी, यह व्यवस्था वर्णों की अव्यवस्था हो गयी और किसी भारतीय मनीषी ने इस स्थिति के विरूद्ध अपनी बैखरी का प्रयोग नहीं किया। पारमार्थिक आध्यात्मिक स्तर पर अद्वय सत्ता की स्थापना करने वाले, पूर्ण अभेद की स्थापना करने वाले आचार्य शङ्कर व्यावहारिक स्तर पर, सामाजिक स्तर पर भेददृष्टि का पूर्ण समर्थन करते है। शारीरकभाष्य का 'अपशूद्राधिकरण'[1] इसका एक उदाहरण है।

शूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः।[2]
अथ हास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रं प्रतिपूरणीयम्।[3]
यद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्।[4]
वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेद उच्चारणे शरीरभेदः।[5]
न शूद्राय मतिं दद्यात्।[6]

ये वे शास्त्रवचन हैं जिनको **शङ्कराचार्य** ने अपने भाष्य में प्रमाण के रूप में प्रयोग किया है।

आचार्य **रामानुज** ने उक्त अधिकरण[7] में **शङ्कराचार्य** द्वारा प्रदर्शित व्याख्यान–पद्धति का अवलम्बन लिया है। कम से कम एक वैष्णव आचार्य से इस प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए कि **पाञ्चरात्रसाहित्य** तथा **आलवार** भक्तों की दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी वह इस प्रकार के मतों की पुष्टि करेंगे। वस्तुतः रामानुज वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, पाञ्चरात्र, तमिलवेद इन सबको साथ लेकर चलना चाहते है। परस्पर विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाले सम्पूर्ण साहित्य की उन्होंने इस प्रकार से व्याख्या की है कि इनमें किसी प्रकार का विरोध न रह जाय। इस समन्वय के लिए उन्होंने वैदिक क्रियाकलापों में अधिकारी का निर्णय करते समय **मीमांसा** तथा **धर्मशास्त्रों** के प्रचलित मतों को स्वीकार कर लिया है। **वैदिक** क्रिया–कलापों की रामानुज ने मान्यता प्रदान तो की है किन्तु वरीयता तान्त्रिक साधना अर्थात् प्रपत्ति या शरणगति को ही दी है। रामानुज यहाँ उस चिकित्सक के रूप में सामने आते हैं जो एक ही रोग के दो उपचारों को मानते हुए एक उपचार (तान्त्रिक दीक्षा, प्रपत्ति–शरणागति) को दूसरे उपचार (वैदिक मार्ग) की अपेक्षा सर्व सुलभ, सुकर तथा शीघ्रफलप्रद होने के कारण मान्यता प्रदान करते है। विषमता का प्रतिपादन करने वाले वैदिक मार्ग को एक मार्ग मानते हुए भी तान्त्रिक मार्ग का जनसामान्य के लिए सामानुज ने अनुमोदन किया है। अब हमें यह देखना है कि **वैष्णव तंन्त्रों** की अर्थात् **पाञ्चरात्र** आगमों की इस विषय में क्या स्थिति है?

---

1. शारीरिक सूत्र, 1.3.9। 2. सं. 7.1.1.3। 3. गो. 2.3.4 4. वही।
5. गो. 2.3.4। 6. मनु. 4.80। 7. श्रीभाष्य 1.3.9।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**शङ्कराचार्य, भास्कराचार्य** तथा तन्मतानुलम्बी अन्य आचार्य **ब्रह्मसूत्र** के **'विप्रतिषेधाच्च'** सूत्र में **'चतुर्षु देवेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा शाण्डिल्य...**[2]। इस वचन को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि 'शाण्डित्य ने चारों वेदों में परम पुरुषार्थ को न देखकर इस शास्त्र का अध्ययन किया' इस प्रकार के स्पष्ट वेदनिन्दक वचनों के होने के कारण **पाञ्चरात्र** वेदविरोधी और अप्रामाणिक हैं। किन्तु यह तर्क अधिक सार्थक नहीं प्रतीत होता। **रामानुज** ने ठीक ही कहा है कि यदि यह तर्क मान लिया जाय तो स्वयं वेद का एक भाग अप्रामाणिक हो जायेगा। उदाहरण के रूप में **भूमविद्या** के उपक्रम में नारद का कथन—**ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदाथर्वणं चतुर्थम् इतिहास—पुराणं पञ्चमम्**[3] इस प्रकार अनेक विद्याओं का उल्लेख करने के बाद वह कहते है—**'सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित्'**[4]। जिस प्रकार से यहाँ **नारद** का अभिप्राय भूमविद्या की प्रशंसा ही है न कि वेदनिन्दा, उसी प्रकार से **शाण्डिल्य** के उक्त कथन को वेदनिन्दापरक न मानकर पाञ्चरात्र स्तुतिपरक मानना चाहिए। अतः पाञ्चरात्र आगमों में वेदनिन्दा है इस प्रकार का कथन भ्रामक होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

किन्तु इतना तो है ही कि इन वैष्णव तन्त्रों ने ईश्वर प्राप्ति का उन लागों के लिए भी अर्थात् स्त्री और शूद्रों के लिए भी एक ऐसे द्वार (भक्ति तथा शरणागति) का उद्घाटन किया जो वेद तथा वेद प्रतिपादित मार्ग से भिन्न है। इस अर्थ में कोई उन्हें वेदविरोधी कहना चाहे तो वह दूसरी बात है। किन्तु पाञ्चरात्र आगमों को इस आक्षेप का बोध है, ऐसा प्रतीत होता है। इसी कारण यह शास्त्र स्वयं अपने को श्रुतिमूलक सिद्ध करते हुए वेद की एकायत शाखा को अपना आधार बतलाता है।[5] इसके अरिरिक्त यत्र—तत्र वैदिक आचार की मर्यादा को स्वीकार करने, उसकी रक्षा करने की बात भी कही गयी है—

**मनीषी वैदिकाचारं मनसाऽपि न लक्ष्येत।**
**यथा हि वल्लभो राजो नदीं राज्ञा प्रवर्तिताम्।।**[6]

तथा—

**एवं विलक्ष्यन् मर्त्यो मर्यादां वेदनिर्मिताम्।**
**प्रियोऽपि न प्रियोऽसौ मे मदाज्ञाप्यनिवर्तनात्।।**[7]

इस प्रकार पाञ्चरात्र आगम अपने ऊपर वेदविरोधी होने के आरोप का निराकरण करते हुए प्रतीत होते हैं।

**पाञ्चरात्र** आगमों पर दूसरा आरोप यह लगाया गया कि यह शास्त्र वेदबाह्य जनों के द्वारा परिगृहीत है। इस कारण पाञ्चरात्र आगम अप्रामाणिक है। यामुनाचार्य ने इसका बड़ा ही सुन्दर उत्तर

---

1. ब्रह्मसूत्र 1.3.45। 2. शारीरकभाष्य 1.3.45 में उदाहृत।
3. छान्दोग्य 7.1.2। 4. वही।
5. ईश्वरसंहिता। 6. लक्ष्मीतन्त्र, 17।96।
7. वही, 17।98।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिया है कि पाञ्चरात्रिक वेदब्रह्म हैं और वैदिक पाञ्चरात्रबाह्य जनों से परिगृहीत होने से वेद अप्रमाण क्यों नहीं है–

**वेदबाह्यगृहीतत्वादप्रामाण्यवादि यत्।**
**एतद्वेदगृहीतत्वाद् वेदानां कुतो न तत्।।**[1]

तात्पर्य यह है कि यदि पाञ्चरात्र आगम वेदविद्या में अनधिकृत लोगों को अपने में अधिकार देते हैं तो इसमें अप्रामाणिकता का कौन सा कारण है। वेद से विरोध तो वहाँ होता जहाँ पाञ्चरात्र वेद में उन्हें अधिकार प्रदान करता, जिन्हें वेद में अनधिकृत कहा गया है।

**भट्टोजिदीक्षित** ने अपने **'तन्त्राधिकारिनिर्णयः'** नामक ग्रन्थ में पाञ्चरात्र आगमों में अधिकारी का निर्णय बड़े शक्तिशाली ढंग से किया है। उनका निष्कर्ष है श्रुतिभ्रष्ट तथा पतित आदि ही पाञ्चरात्र आगमों में अधिकृत हैं–

**तस्मात् पतितादय एव शङ्खचक्राद्यङ्कनादावधिकारिण इति सिद्धम्।**[2]

पद्मपुराण का वचन इस प्रकार उदाहृत मिलता है–

**शृणु राम! महाबाहो लिङ्गचक्रादिधारिणाम्।**
**शूद्रधर्मरतानां हि तेषां नास्ति पुनर्भवः।।**

**भट्टोजिदीक्षित** इस पर टिप्पणी करते हैं–

**किञ्च–स्वधर्मत्यागेन शूद्रधर्मरतानां द्विजानामपि पतितानामनेनाधिकारः।**[3]

अर्थात्, ब्राह्मण भी पाञ्चरात्र मार्ग का अवलम्बन लेता है तो वह भी पतित हो जाता है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए वह ब्रह्माण्डपुराण के इस वचन को उदाहृत करते हैं–

**तप्तमुद्रा ह्यन्त्यजाय हरिणा निर्मिता पुरा।**
**भूदेवस्तप्तमुद्रा तु चिह्नं कृत्वा विमूढधीः।।**[4]
**इह जन्मनि शूद्रः स्यात् प्रेत्य श्वा च भविष्यति।।**[5]

अर्थात्, पाञ्चरात्र मार्ग का अवलम्बन लेने वाला ब्राह्मण इस जन्म में शूद्र होता है और मर कर कुत्ता होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पाञ्चरात्र आगमों पर वेदविरोधी होने का सुनियोजित आरोप लगाया जाता रहा है। उसका एक प्रमुख कारण इसके द्वार का मानव मात्र के लिए उदघाटित होना है जिसमें स्त्री और शूद्र सम्मिलित है।

---

1. आगमप्रामाण्यम् पृ. 62।
2. तन्त्राधिकारि निर्णयः।
3. पद्मपुराण।
4. तन्त्राधिकारिनिर्णयः।
5. ब्रह्माण्डपुराण, 10।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**पाञ्चरात्र आगमों में शूद्रों और स्त्रियों की स्थिति**

पाञ्चरात्र आगम तान्त्रिक दीक्षा में त्रैवर्णिकों के साथ ही साथ स्त्री और शूद्रों को भी स्थान देते हैं। दीक्षायोग्य शिष्य के लक्षण बतलाते हुए लक्ष्मीतन्त्र में कहा गया है–

**शिष्यश्च तादृशो ज्ञेयः सर्वलक्षणलक्षितः।**
**कुलीनं च तथा प्राज्ञं शास्त्रार्थनिरते सदा।**
**ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं वा भगवत्परम्।।**
**इदृश्लक्षणसंयुक्तं शिष्यमार्जवसंयुतम्।**
**वर्णधर्मक्रियोपेतां नारीं वा सद्विवेकिनीम्।।**
**विद्यादनुमते पत्युरनन्यां पतिमानिनीम्।**
**एवं लक्षणकं शिष्यमाचार्यो भगवन्मयः।।**
**ज्ञापयेद् विधिवन्मन्त्रान् गुरुदृष्ट्या समीक्ष्य तु।**[1]

स्पष्ट है कि यहाँ तान्त्रिक मन्त्र ग्रहण करने में स्त्री और शूद्रों के अधिकार का उल्लेख है। इसी संदर्भ में परमसंहिता का निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है–

**ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या दीक्षायोग्यास्त्रयः स्मृताः।**
**जातिशीलगुणोपेताः शूद्राश्च स्त्रिय एव च।।**[2]

विश्वामित्रसंहिता में भी प्रायः इसी प्रकार की बात कहीं गयी है–

**शिष्याणां लक्षणं वच्मि तच्छृणुस्व समाहितः।**
**त्रिषु वर्णेषु सम्भूतः प्रशस्तकुलम्भवः।।**[3]

तथा

**स्त्रियः शूद्राश्चानुलोमाः कल्याणगुणसंयुताः।**
**यदि तानपि शिष्यत्वे गृह्णीयात् कृपया गुरुः।।**[4]

तान्त्रिक दीक्षा में सभी वर्णों का अधिकार है– इसमें दो मत नहीं। महाभारत का भी निम्नोद्धृत स्थल उक्त मत की पुष्टि में सहायक है–

**ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः।**
**अर्चनीयश्च सेव्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु।**
**सात्त्वतं विधिमास्थाय गीतः संकर्षणेन यः।।**[5]

पाञ्चरात्र आगम की अहिर्बुध्न्यसंहिता में वेद तक में चारों वर्णों के अधिकार की बात कहीं गयी है–

---

1. लक्ष्मीतन्त्र, 21.37–41।
2. परमसंहिता, 7.24।
3. विश्वामित्रसंहिता, 3।17।
4. विश्वामित्रसंहिता, 3।27।
5. महाभारत, भीष्मपर्व।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ये हि ब्रह्ममुखादिभ्यो वर्णाश्चत्वार उद्गताः।
ते सम्यगधिकुर्वन्ति त्यत्त्यादीनां चतुष्टयम्।।[1]

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं पाञ्चरात्र आगमों में उपर्युक्त मत बहुत समादृत नहीं हो पाया।

**पाञ्चरात्र आगमों में प्रपत्ति का सिद्धान्त**

प्रपत्ति अथवा शरणागति का सिद्धान्त पाञ्चरात्र आगमों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। **विभीषण** की शरणागति के प्रसंग में राम के द्वारा की गयी घोषणा पाञ्चरात्र आगमों में शरणागति की स्वरूपनिरूपिका मानी गयी है। राम की उक्ति है–

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।[2]**

यहाँ 'सर्वभूतेभ्यः' पद महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त गीता का निम्न श्लोक चरममन्त्र के रूप में पाञ्चरात्र सम्प्रदाय में समादृत है–

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।[3]**

इस प्रपत्ति की विशेषता ही यही है कि यह मार्ग सभी वर्णों के लिए सुलभ है। सनत्कुमारसंहिता का वचन है–

**अनन्योपात्तशक्तस्य प्राप्येच्छोऽप्यधिकारिता।**
**प्रपत्तौ सर्ववर्णस्य सात्त्विकत्वादियोगतः।।**
**सा हि सर्वत्र सर्वेषां सर्वकामफलप्रदा।**
**इति सर्वफलप्राप्तौ सर्वेषां विहिता यतः।।[4]**

शरणागति प्राणिमात्र के लिए है–यह तथ्य शरणागति के स्वरूप में ही निहित है। यहाँ लक्ष्मीतन्त्र का श्री और इन्द्र का संवाद द्रष्टव्य है। श्री ने शक्र से क्लेशसागर में डूबे हुए सभी प्राणियों के उद्धार का साधन पूछा–

**अमी हि प्राणिनः सर्वे निमग्नाः क्लेशसागरे।**
**उत्तारं प्राणिनामस्मात्कथं चिन्तयसि प्रभो।।[5]**

इस प्रश्न से प्रेरित होकर शक्र ने शरणागति का विस्तार से वर्णन किया है। इस शरणगति के 6 अंग है–

**आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।**
**रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वशरणं तथा।**

---

1. अहिर्बुध्न्य, 15.20.21। 2. रामायण, युद्ध., 18.33।
3. गीता, 18 66, द्रष्टव्य लक्ष्मीतन्त्र, 16–43, 44। 4. सनत्कुमारसंहिता।
5.लक्ष्मीतन्त्र, 17:47।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।**[1]

यहाँ प्रयुक्त प्रथम दो प्रपत्ति की विधाओं का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसी तन्त्र में कहा गया है–

**आनुकूल्यमिति प्रोक्तं सर्वभूतानुकूलता।**
**अतःस्थिताऽहं सर्वेषां भावानामिति निश्चयात्।।**
**मयीव सर्वभूतेषुओनुकूल्यं समाचरेत्।**
**तथैव प्रातिकूल्यं च भूतेषु परिवर्जयेत्।।**[2]

शरणागति के प्रथम दो अंग है– आनुकूल्यसंकल्प' तथा 'प्रातिकूल्यवर्जन'। यहाँ ईश्वर में ही अनुकूल आचरण के संकल्प तथा प्रतिकूल आचरण के वर्जन की बात नहीं कहीं गयी है। 'सर्वभूतानुकूलता' भी उसी आनुकूल्यसंकल्प में निहित है। और 'सर्वभूतानुकूलता' का आधार ईश्वर का सभी प्राणियों में अन्तर्यामिरूप में अवस्थित होना है। प्रातिकूल्यवर्जन का अर्थ इसी प्रकार है। स्पष्ट है कि शरणागति मानवमात्र के ही लिए न होकर प्राणिमात्र के लिए है। जैसा कि विष्णुचित्त का कथन है–

**श्येनकपोतीयकपातोपाख्यानकाकविभीषणक्षत्रबन्धुमुचुकुन्दगजेन्द्रद्रौपदीतक्षकशतमखादिषु मोक्षार्थतया क्षणकालनिर्वर्त्यप्रपदनार्थदर्शनात् अबधिराणां तत्र मुख्यत्वम्**[3]

वैदिक कर्म, धर्म तथा शरणागति में कई दृष्टियों से अन्तर है–

1. **देशनियम**– पुण्यक्षेत्रों में ही वैदिक कर्म हो सकते हैं। शरणागति कहीं भी की जा सकती है।
2. **कालनियम**– वसन्त आदि समय में वैदिक कर्म हो सकते है। शरणागति कभी भी की जा सकती है।
3. **प्रकारनियम**– विशिष्ट तथा निर्दिष्ट प्रकार से ही वैदिक कर्म होते है। शरणागति इस बन्धन से भी रहित है।
4. **अधिकारिनियम**– वैदिक कर्मो में त्रैवर्णिकों का ही अधिकार है। स्त्री और शूद्रों का नहीं है। शरणागति सर्वजनसुलभ है।
5. **फलनियम**– विशिष्ट वैदिक कर्म का विशिष्ट फल ही होता है। शरणाति सर्वफलप्रदा है।

इस प्रकार वैदिक धर्म में जो कमियाँ हैं, उनकी पूर्ति शरणागति करती है। यही कारण है शरणागति अन्य मोक्ष के उपायों (कर्म, ज्ञान, भक्ति) की अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट हैं–

**सत्कर्मनिरताः शुद्धाः सांख्ययोगविदस्तथा।**
**नार्हन्ति शरणस्थस्य कला कौटिलमीमपि।।**[4]

इस प्रकार से हम देखते हैं कि इन वैष्णव तन्त्रों में अन्य भारतीय शास्त्रीय परम्पराओं के विरुद्ध सामाजिक समता पर अधिक बल दिया गया है। यह सत्य है कि विषमता का निर्मूल ये तन्त्र नहीं कर

---

1. वही, 17.60.61।
2. वही, 17.66.67
3. निक्षेपरक्षा, पृ. 36 उदाहृत
4. लक्ष्मीतन्त्र, 17 ।63।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाये हैं, तथापि समता को दृष्टि में रखकर विषमता की परिधि को, विषमता के क्षेत्र को बहुत सीमित कर दिया है। यह स्वाभाविक भी था। विषमता की इतनी शक्तिशाली धारा के विरुद्ध कुछ कहने का अर्थ था स्वयं अप्रामाणिक, प्रभावहीन सिद्ध हो जाना। अतः यदि तत्कालीन समय के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो सामाजिक समता के लिए वैष्णव तन्त्रों ने बहुत किया। अप्रामाणिकता आदि के आक्षेपों को सुना, उनका उत्तर दिया, और संघर्ष भी किया। **यामुनाचार्य** आदि वैष्णव आचार्यों को 'आगमप्रामाण्य' जैसे ग्रन्थों की रचना भी प्रायः इसी प्रकार के आरोपों का उत्तर देने के लिए करनी पड़ी। किन्तु इतना सब कुछ करते हुए भी सामाजिक विषमता को दूर करने की दिशा में यह परम्परा सफल नहीं हो पायी। इसका कारण स्पष्ट है। जब तक मन्वादि स्मृतियों का स्थान ले सकने में समर्थ किसी स्वतन्त्र धर्मशास्त्र की रचना नहीं जाती तब तक सामाजिक विषमता को दूर करने का कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता। और सम्भवतः मन्वादि स्मृतियों का विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयास वैष्णव तन्त्र नहीं कर सके। वैष्णव परम्परा में आगे चलकर मन्वादि स्मृतियों के विरोध की बात तो दूर उनका समर्थन ही प्रामाणिक माना गया। स्वयं अपनी प्रामाणिकता भी मन्वादि स्मृतियों से अविरोध की स्थिति में ही मानी गयी। **रामानुज** इसी मन्वादि स्मृतियों से विरोध होने के कारण कपिलस्मृति को अप्रमाण मानते है।[1] **रामानुज** के ही शब्दों में–

**'मन्वादीनां बहूनां स्वयोगमहिमसाक्षात्कृतपरावरतत्त्वयाथात्म्यानां निखिलजगद्भेषजमतस्ववाक्यतया 'यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद् भेषजम्' इति श्रुतिप्रसिद्धानां कपिलदृष्टप्रकारेण तच्वानुपलब्धेश्रुतिविरुद्धा कपिलोपलब्धिर्भ्रान्मिूलेति न तया यथोक्तो वेदान्तार्थश्चालयितुं शक्य इति सिद्धम्'**[1]

यही कारण है कि सामाजिक विषमता के विरुद्ध होते हुए भी वैष्णव तन्त्र अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो सके।

******

1. ब्रह्मसूत्र, 2।1।1 (अधिकरण), 2. श्रीभाष्य 2।1।2।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# पुष्टिमार्गीय ख्याति–विचार की समीक्षा : काश्मीर शैवसिद्धान्त के विशेष प्ररिप्रेक्ष्य में

प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र*

ख्याति शब्द मूलतः विवेक का पर्याय है। व्यवहारज्ञान के क्षेत्र में यह शब्द सविकल्पक प्रत्यक्ष का अर्थ देता है। निर्विकल्पक ज्ञान को दर्शनमुखेन न तो प्रमा माना गया है, और न ही अप्रमा। अतएव निर्विकल्पक ज्ञान से प्रामाण्य विनिश्चय का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रामाण्य का निश्चय सदैव सविकल्पक प्रमा से ही संभव होता है। न्यायमुक्तावली में स्पष्टतः कहा गया है– न प्रमा नापि भ्रमः स्यान्निर्विकल्पकम्।

विविध दार्शनिक सम्प्रदायों में सविकल्पक ज्ञान को लेकर जो व्याख्या पक्ष उभरे हैं सामान्यतः उसी को ख्यातिवाद कहा जाता है। इस व्याख्या में भ्रमात्मक ज्ञान के मूल्यांकन अथवा समीक्षा को प्रमुखता दी गई है क्योंकि उसी के निरसन अथवा निराकरण के अनन्तर प्रमात्व का निश्चय हो पाता है। इस प्रकार ख्यातिवाद की भूमिका यथाकथञ्चित् प्रामाण्यवाद तथा अनुव्यवसाय से जुड़ी प्रतीत होती है। यद्यपि विवेक पर्याय होने के कारण ख्याति एक विध्यात्मक शब्द है परन्तु वैचारिक प्रक्रिया के स्तर पर वह उपलक्षण जैसा बन गया है भ्रम, भ्रमज्ञान अथवा भ्रान्तिज्ञान का क्यों कि भ्रान्ति के निराकरण से ही ख्याति का उदय होता है ठीक उसी प्रकार जैसे अंधकार पटल को निरस्त कर उदित होता है सूर्य।

भारत वर्ष विख्यात है अपनी द्वादश दर्शनपरम्पराओं के लिये। इनमें सांख्ययोग न्यायवैशेषिक तथा मीमांसा–उत्तरमीमांसा वेदान्त तो आस्तिक दर्शन हैं। अन्य 6 (माध्यमिक योगाचार, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, आर्हत एवं लौकायतिक ) वेद प्रामाण्य को न मानने के कारण नास्तिक दर्शन कहे गये हैं। इन समस्त दर्शनों में यद्यपि विचार विषय दो ही है प्रमेय–मीमांसा तथा प्रमाण–मीमांसा। तथापि इन्ही दो विषयों के पारस्परिक खण्डन मण्डन से प्रत्येक दर्शन का अपना पृथक् स्वरूप भी निश्चित हुआ है। किसी का प्रमेय अद्वैत तत्त्व है तो किसी का द्वैत तो किसी का बहुत्व। किसी के प्रमाण तीन हैं, चार हैं तो किसी के पॉच तो किसी के छः और कोई एक ही प्रमाण के प्रति आस्थावान् है। वैचारिक स्वतंत्रता , पूर्वपक्ष का समादर पूर्वक युक्तियुक्त खण्डन तथा स्वपक्ष अर्थात् सिद्धान्तपक्ष का निरुत्तरित कर देने वाला प्रतिपादन भारतीय दर्शनपद्धतियों का वैशिष्ट्य है।

प्रमाणमीमांसा आस्तिक एवं नास्तिक दोनों ही दर्शनों को अभीष्ट है क्योंकि बिना प्रमाण के प्रमा अर्थात् शुद्धज्ञान की प्रतिष्ठा असंभव है। इसी प्रकार प्रमेयान्तर्गत व्याख्यान आत्मादि कई तत्त्व भी सभी

---

*पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दर्शनों में समान रूप से समीक्षित हुए हैं। हाँ, कुछ ऐसे प्रमेय भी हैं जो किसी एक ही दर्शन पद्धति की पहचान कराते हैं जैसे आर्हत दर्शन का अनेकान्तवाद, बौद्धों का अभाव–प्रमाण तथा आर्यसत्य चतुष्टय, मीमांसा का अपूर्वसिद्धान्त, सांख्य का प्रकृति–पुरुष यौगपद्य अथवा चार्वाकों का काष्ठदहनन्यायेन प्रतीत देहात्मैक्यवाद। सौभाग्य से ख्यातिवाद भी सर्वदर्शनाभीष्ट विवेच्य विषय है। संभवतः ज्ञानमीमांसा का अंगभूत होने के कारण पाँच प्रकार के ख्यातिवाद तो प्रायः सर्वविदित हैं–आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा।

उपर्युक्त पञ्चविध ख्यातिवाद आचार्य आदिशंकर के युग तक के हैं जब कि रामानुज , मध्व, निम्बार्क, वल्लभ एवं गौराङ्ग महाप्रभु का उदय भी नहीं हुआ था। अतः यह मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिये कि शंकरोत्तर युग में भी ख्यातिवाद की तात्त्विक समीक्षा से अनेक नई उपलब्धियाँ हुईं। ये उपलब्धियाँ वेदान्त के अवान्तर सम्प्रदायों तथा काश्मीर शैवदर्शन की देन हैं, जो निःस्सन्देह आचार्य शंकर (आठवीं शती ई0) के बाद की दार्शनिक परम्पराएँ है।

यदि शंकरपूर्व एवं शंकरोत्तर पल्लवित ख्यातिवादों का उनके नामान्तरसहित साकल्येन परिगणन किया जाय तो चौदह सम्मत ख्यातिवादों तथा 6 नामान्तरों के साथ उनकी संख्या बीस सिद्ध होती है। इस समस्त ख्यातिवादों में भ्रमनिरूपण का प्राधान्य है और इस भ्रमनिरूपण की उपलब्धि है प्रस्थानसम्मत सम्यक् ख्याति जैसा प्रारंभ में कहा गया है कि ख्याति शब्द कथमपि भ्रमवाचक नहीं है प्रत्युत वह प्रत्यक्षमात्र के सविकल्पक पक्ष अथवा ज्ञानमात्र की संज्ञा है। श्रीमद्भागवत 11.11.2 में बड़ी स्पष्टता से कहा गया है कि स्वप्न के समान संसार भी यथार्थ न होकर आत्मा की ख्याति मात्र है। यहॉ ख्याति शब्द प्रतीतिमात्र में पर्यवसित है और इसी प्रतीतिपरक अभिप्राय पर समस्त दार्शनिक ख्यातिवादों की प्रतिष्ठा भी है।

आचार्य प्रभाचन्द्र सूरि ने उपर्युक्त ख्यातिवादों की गणना अन्य प्रकार से की है जिनमें क्रमशः विवेकख्याति, अख्याति, प्रसिद्धार्थख्याति, आत्मख्याति, अनिर्वचनीयख्याति, अलौकिकार्थख्याति तथा विपरीतार्थ ख्याति के नाम आये हैं।

आचार्य बच्चूलाल अवस्थी ने दार्शनिक सम्प्रदायों को दृष्टि में रख कर विविध ख्यातिवादों का जो परिचय दिया है वह अत्यन्त सुस्पष्ट प्रतीत होता है। विषय विवेचनदृष्ट्या मै उसे यथावत् उद्धृत कर रहा हूँ।

1 शुद्ध अख्यातिवादी चार्वाक दार्शनिक है। जो भौतिक शरीर में विद्यमान चैतन्य को मद के समान मानते है। उन्हे निर्विषयख्यातिवादी तथा निरालम्बनख्यातिवादी कहा जाता है।

2 परन्तु निर्विषय अथवा निरालम्बन ख्यातिवादियों में मुख्यतः शून्यवादी तथा विज्ञानवादी बौद्ध दार्शनिक आते है। पृथक्तया शून्यवादियों का असत्ख्यातिवाद तथा विज्ञानवादियों का आत्मख्यातिवाद प्रसिद्ध है। आत्मख्यातिवाद को ही स्वख्यातिवाद तथा विज्ञानाकारख्यातिवाद भी कहा गया है।

3 सांख्ययोग दर्शन को सदसत्ख्यातिवादी अथवा प्रसिद्धार्थख्यातिवादी कहते हैं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

4 वैशेषिक द्वैत वेदान्त तथा जैनदर्शन का ख्यातिसिद्धान्त विपरीतख्यातिवादी के नाम से प्रसिद्ध है।

5 न्यायदर्शन , भाट्टमीमांसा तथा दाक्षिणात्य शैवदर्शन में अन्यथाख्यातिवाद मान्य है जो प्रकारान्तर से विपरीतख्यातिवाद ही है।

6 कुमारिल मीमांसा तथा प्रभाकर मीमांसा के मतों को विवेकख्यातिवाद कहा जाता है जो सामान्यतः अख्यातिवाद नाम से सुप्रतिष्ठित है। प्रभाकर को अख्यातिवादी कहा जाता है परन्तु वह यथार्थवादी में सविशेष करने के कारण न्याय तथा कुमारिल मीमांसा को अलौकिक ख्यातिवादी भी कहा जाता है।

7 आचार्य मण्डन मिश्र ने अभेदख्यातिवाद को प्रतिष्ठित किया है।

8 अलौकिक ज्ञानलक्षण प्रत्यासत्ति द्वारा भ्रम की व्याख्या।

9 व्याकरण दर्शन का बुद्धिसत्ख्यातिवाद सत्ख्यातिवाद का ही नामान्तर है।

10 अद्वैत शाङ्कर वेदान्त अनिर्वचनीयख्यातिवाद का समर्थक।

11 प्रभाकर मीमांसा तथा विशिष्टाद्वैत वेदान्त दोनों यथार्थख्यातिवादी हैं परन्तु इस वर्ग में विशेष रूप से रामानुज के मत को लेकर उसे सत्ख्यातिवाद कहा जाता है।

12 शुद्धाद्वैत वेदान्त में अन्यख्यातिवाद मान्य है।

13 प्रत्यभिज्ञा शैव दर्शन का ख्यातिवाद व्यावहारिक ख्यातियों में संकुचितख्यातिवाद है परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा के अभाव की व्याख्या वह अख्याति नाम से करता है। वस्तुतः यह सत्ख्यातिवाद का ही रूपान्तर है।

वस्तुतः अख्याति का अभिप्राय भी एक नही है। जो सविकल्पक प्रत्यक्ष को प्रमा वर्ग में नहीं लेते उनके लिये वह सविकल्पकाभाव मात्र है। अविद्याजनित व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक प्रत्यय। मीमांसा में यह शब्द विवेकाख्याति अथवा असंसर्गाग्रह के सन्दर्भ में प्रयुक्त है जब कि प्रत्यभिज्ञा शैवदर्शन में शिवाद्वैत बोध न होना ही अख्याति है।

प्रस्तुत आलेख में शैवप्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं वाल्लभ वेदान्ताभिमत ख्यातिवादका युगपद् विवेचन अभीष्ट है। दोनों दर्शनसरणियों के ख्यातिविचार में कोई साम्य अथवा अन्तः सम्बन्ध है अथवा हो सकता है अथवा नहीं यह तो विद्वत्समज्या निर्णयाधीन है। परन्तु मेरा विनम्र प्रयास है दोनों मतों को सम्प्रदायोचित सन्दर्भ में निरूपित करना। एक तथ्य सर्वथा सुस्पष्ट है वह यह कि काश्मीर का प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं शुद्धाद्वैत वेदान्त मत, दोनों शंकरोत्तरयुगीन होने के कारण अन्य दर्शनों एवं मत मतान्तरों की तुलना में अभी भी अल्प व्याख्यात एवं अल्प हृदयङ्गत रहे हैं।

काश्मीर का प्रत्यभिज्ञा दर्शन यद्यपि आचार्य उत्पलदेव द्वारा प्रतिपादित माना जाता है, तथापि उसकी परम्परा उत्पल से भी पूर्ववर्तिनी सिद्ध होती है। त्र्यम्बक सम्प्रदायोत्पन्न आचार्य सोमानन्द को स्वयं उत्पलदेव शिवदृष्टिवृत्ति के मंगलाचरण में अपना गुरु बताते है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीत्र्यम्बकसद्वंशमध्यमुक्तामयास्थितेः।
श्रीसोमानन्दनाथस्य विज्ञानप्रतिबिम्बकम्।। ईश्वरप्रत्यमिज्ञा वि. वि. मंगल. 2
ईश्वरप्रत्यभिज्ञोक्तविस्तरे गुरुनिर्मिते।
शिवदृष्टिप्रकरणे करोमि पदसंगतिम्।। शिवदृष्टिविवृति मंगलश्लोक 3
इति प्रकटितो मया सुधट एष मार्गो नवो।
महागुरुभिरुच्यते स्म शिवदृष्टिशास्त्रे यथा।। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका 4.16

यद्यपि उत्पलदेव ने अपने पिता का नाम उदयाकर बताया है, परन्तु अभिनवगुप्त ने तंत्रालोक में उन्हें सोमानन्द का ही पुत्र एवं शिष्य बताया है।[2] इससे स्पष्ट है कि सोमानन्द का ही नामान्तर उदयाकर भी रहा होगा।

आचार्य उत्पल के पुत्र एवं शिष्य लक्ष्मणगुप्त जो भट्टेन्दुराज के समसामयिक थे, महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त के प्रत्यभिज्ञा गुरु थे। भट्टेन्दुराज से भी अभिनव ने अलंकारशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।[3]

काश्मीरक शैव परम्परा में यह मान्य है कि सिद्ध वसुगुप्त को साक्षात् श्रीकण्ठ अर्थात् भगवान् शिव से ही प्रत्यभिज्ञा ज्ञान प्राप्त हुआ था। वसुगुप्त से ही यह ज्ञान भट्टकल्लट को प्राप्त हुआ। शिवसूत्रविमर्शिनी में आचार्य क्षेमराज स्वयं यह तथ्य प्रकाशित करते हैं।

वसुगुप्तनामा गुरुः एतानि (शिवसूत्राणि) च सम्यगधिगम्य भट्टश्रीकल्लटाद्येषु सच्छिष्येषु प्रकाशितवान्। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा दर्शन की परम्परा स्वयं भूतभावन शिव (श्रीकण्ठ ) से प्रारंभ होकर भटकल्लट एवं सोमानन्द के माध्यम से विकसित हुई। इस परम्परा के विकास में उत्पलदेव , लक्ष्मणगुप्त पुत्र राजानक रामकण्ठ (उत्पल शिष्य) अभिनवगुप्त तथा क्षेमराज का विलक्षण योगदान है। विभ्रमाकर उत्पल के दूसरे पुत्र पद्मानन्द (सहाध्यायी) मनोरथगुप्त आदि भी उसी परम्परा की अग्रिम कड़ी हैं। चूँकि भट्कल्लट एवं अभिनव का समय राजतरंगिणी एवं क्षेमेन्द्र के प्रामाण्य से सुनिश्चित है, अतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्यभिज्ञा शैव दर्शन की प्रभविष्णुता की अवधि ई. सन् 825 से 1025 बीच रही होगी।"[4]

वल्लभवेदान्त में कृष्णभक्ति की प्रतिष्ठा पुष्टितत्व के रूप में हुई है। इस दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा शैवदर्शन शुद्धाद्वैत का सहोदर प्रतीत होता है। क्योंकि इस दर्शन में भी परमसत्ता अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिये भक्तिलक्ष्मी की ही सर्वोपरि प्रतिष्ठा की गई है। भक्तिश्री से सम्पन्न व्यक्ति के समान न कोई ऐश्वर्यवान् है और न भक्तिरहित जैसा निपट दरिद्र! यद्यपि मोक्षप्राप्ति के लिये इस दर्शन में भी

---

1. जनस्यायत्नसिद्ध्यर्थमुदयाकरसूनुना। ईश्वरप्रत्यभिज्ञेयमुत्पलेनोपपादिता।।
2. त्र्यैम्बकप्रक्षरसागरशायिसोमानन्दात्मजोत्पलजलक्ष्मणगुप्तनाथः आदि। तन्त्रा. 36.61
3. भट्टेन्दुराजचरणाब्जकृताधिवासहृद्यश्रुतोऽभिनवगुप्तपदाभिधोऽहम्।।–ध्वन्यालोकलोचन
तद्दृष्टिसंसृतिच्छेदि प्रत्यभिज्ञोपदेशिनः श्रीमल्लक्ष्मणगुप्तस्य गुरोर्विजयते वचः।। मालिनीविजयवार्तिक मंगलपद्य–2
4. अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः। अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन्।। श्रुत्वाऽभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधेः–क्षेमेन्द्रः, राज. 5.66



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आगमसम्मत अनुपाय, शाम्भव उपाय, शाक्त उपाय तथा आणव उपाय को पूर्ण मान्यता दी गई है तथापि आचार्य उत्पल अनुपाय पर ही आश्रित दीखते है जिसमें महेश्वर के साक्षात् शक्तिपातवश सद्यः महेश्वरता–वाप्ति की संभावना बनी रहती है। महेश्वर की यही अहैतुकी कृपा (शक्तिपात) वाल्लभ वेदान्त की पुष्टि के समकक्ष प्रतीत होती है। आचार्य उत्पल कहते हैं–

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम्।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम्।। 1.1
भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यदुपयाचितम्।
एतया वा दरिद्राणां किमन्यदुपयाचितम्।। 20.11–शिवस्तोत्रावली

यदि आचार्य उत्पल का प्रामाण्य स्वीकार करें तो भक्तिभाव संवलित शिवाद्वैत ही प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय का एकमात्र लक्ष्य सिद्ध होता है। भक्तिसमन्वित शुद्धाद्वैत ही वाल्लभवेदान्त का भी एकमात्र लक्ष्य है। इस प्रकार पुष्टितत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित शिव–भक्ति तथा कृष्णभक्ति और उन्हीं दोनो से संवलित कृष्णाद्वैत तथा शिवाद्वैत क्रमशः दोनों सम्प्रदायों में तुल्यप्रतिष्ठ दीखता है।

आचार्य उत्पल भक्तिसमन्वित अद्वैत के ही पक्षधर हैं। शुष्क ज्ञानमात्र के नहीं[5] वह परमेश्वर से भी बढ़ कर उसकी भक्ति को श्रेय देते है।[6] आत्मा एवं परमात्मा (शिव) की प्रत्यभिज्ञा एवम् उसकी परिपूर्ण अहन्ता का सतत विमर्श शैवदर्शनाभिमत छत्तीस तत्त्वों के क्रियालापों के माध्यम से परमेश्वर शिव का ही लीलोल्लास मानते हुए आचार्य उत्पल शिवाद्वैत का अनुभव करते हैं। उल्बण शिवभक्तिसंवलित अद्वैतसिद्धि ही भोग एवं मोक्ष दोनों का स्रोत है। इस शिवाद्वैत के समक्ष होते ही दुःख भी सुखरूपता को प्राप्त हो जाता है, विष भी अमृत बन जाता है और संसार बन्धन भी मोक्षरूप हो जाता है। ऐसे सिद्ध भक्त परमहंस स्थिति में अनिर्वचनीय अद्वैतानन्द का अनुभव करते हैं। आचार्य उत्पल ने अपनी लम्बी आयु में संभवत स्वयम् इस शिवाद्वैत सुख का अनुभव किया था–

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शांकरः।। 20.12।।
साक्षात्कृतभवद्रूपप्रसृतामृततर्पिता।
उन्मूलिततृषो मत्ता विचरन्ति यथारुचि।।12.4।।–शिवस्तोत्रावली

उपर्युक्त समस्त विवरण काश्मीर प्रत्यभिज्ञा शैवदर्शन की परिचयात्मक प्ररोचनामात्र माने जा सकते है। अभी इन विवरणों में ख्यातिवाद की पृष्ठभूमि भर प्रतिविम्बित है। उसका स्वरूप अभी भी व्याख्येय

---

5. शुष्ककं मैव सिद्धेय मैव मुच्येय वापितु ।, स्वादिष्ठपरकाष्ठाप्तत्वदभक्तिरसनिर्भरः।।
6. न विरक्तो न चापीशो मोक्षाकांक्षी त्वदर्चकः।, भवेयमपि तूद्रिक्तभक्तयासवरासोन्मदः।।
मुक्तिसंज्ञा विपक्पा भक्तेरेव त्वयि प्रभो।, तस्यामाद्यदशांरूढा मुक्तकल्या वयं ततः।।–शिवस्तोत्रावली 11.8
7. मूढोऽस्मि दुःखकलितोऽस्मि जरादिदोषभीतोऽस्मि शक्तिरहितोऽस्मि तवाश्रितोऽस्मि।
शम्भो! तथा कलय शीघ्रमुपैमि येन, सर्वोत्तमां धुटमपोज्झित दुःखमांर्गः।। –शिवस्तोमावली 11.8



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही है। प्रत्यभिज्ञादर्शन का सैद्धान्तिक विशदीकरण उत्पल की कालजयी कृतियों शिवस्तोत्रावली, ईश्वर–प्रत्यभिज्ञाकारिका, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृति (टीका) सिद्धित्रयी (अजडंप्रमातृसिद्धि, ईश्वरसिद्धिसम्बन्धसिद्धि) तथा शिवदृष्टिवृत्ति में सांगोपांगतया उपलब्ध होता है। आचार्य उत्पल के प्रथम तीन ग्रंथों तथा उन पर लिखी गई आचार्य अभिनव की विमर्शिनी एवं विवृतिविमर्शिनी को मिला कर ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन का शास्त्रपञ्चक बनता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में परमेश्वर को चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्तियों से सम्पन्न तथा सदैव सृष्टि , स्थिति , संहार ,तिरोधान और अनुग्रह रूप पञ्च कृत्यों का कर्ता माना गया है।

**आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृतचिद्विभुः।**
**अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरद्दृक्क्रियः शिवः।।–शिवदृष्टि 1.2**

इस दर्शन में शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त 36 तत्त्वों, 118 भुवनों, समस्त स्थूल सूक्ष्म भावों तथा शिव से लेकर सकलपर्यन्त सात प्रमाताओं का विकास एक ही परमसत्ता से निरूपित किया गया है। बन्धन–मोक्ष, जीव–मुक्त, शिव–शक्ति सबको एक ही परमेश्वर का लीलाविलास बताया गया है। फलतः शाङ्कर वेदान्त के ब्रह्म सत्यम् अथवा ब्रह्माद्वैत तत्त्व की ही भाँति यह दर्शन भी शिवाद्वैत की प्रतिष्ठा करता है। उत्पलदेव स्वयं इस दर्शन को अद्वयवाद, ईश्वराद्वयवाद, शिवाद्वैत, शिवाद्वैय, शक्तिमद्वाद अथवा शैवदर्शन कहते हैं। पति (पशुपति) पाश एवं पशु के संघटकत्रय की प्रधानतावश इसे त्रिकदर्शन भी कहा जाता है परन्तु आचार्य उत्पल की ही कृति ईश्वरप्रत्यभिज्ञ की प्रसिद्धिवश यह दर्शन कालान्तर में प्रत्यभिज्ञादर्शन के नाम से प्रख्यात हो गया।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जीव (पशु) वस्तुतः शिव ही होता है। परन्तु संसार मे आकर अपने मूलस्वरूप अर्थात् शिवत्व को भूल जाता है तथा अपने स्थूल , सूक्ष्म अथवा कारण शरीर को ही अपना स्वरूप समझने लगता है। ऐसे बद्ध जीव की अपने मूलस्वरूप शिवत्व की पहचान कराने के कारण ही यह दर्शन प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञा (प्रति+अ+ज्ञा) का अर्थ है पहचान जिसमें तत्त्व एवम् इदन्ता की मूल उत्पत्ति होती है। तत्तेदन्तावगाहिनी प्रतीतिः प्रत्यभिज्ञा। प्रति का अर्थ है प्रतीप अथवा विपरीत, अभि का अर्थ है अभिमुख आमने सामने, **'ज्ञा'** का अर्थ है ज्ञान अथवा प्रकाशन, अतएव विद्यमान का अभिमुख रूप से ज्ञान होना ही प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है। **'प्रतीपम्'** का तात्पर्य इतना ही है कि अपनी आत्मा का पूर्व में भी अवभास होता है, ऐसा नहीं है कि पहले उसका अस्तित्व विद्यमान न रहा हो। क्योंकि वह अनवच्छिन्न रूप से प्रकाशित रहने वाला तत्त्व है। अपनी ही स्वातंत्र्य शक्ति के विलास से असीमित (अबाधित, अविभक्त) होते हुए भी वह सीमित (बाधित, विभक्त) सा प्रतीत होता है, अतएव प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है पूर्व में भात (ज्ञात) वस्तु का सम्प्रति भासमान के साथ एकीकरण। आचार्य अभिनव कहते हैं–

**"प्रतीपम् आत्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा।**

**प्रतीपम् इति स्वात्माभासो हिताननुभूतपूर्वोऽविच्छिन्नप्रकाशत्पात् तस्य। स तु तच्छक्त्यैव विच्छिन्न इव विकल्पित इव वसति इति वस्यते।'–ईश्वरप्रत्यभिज्ञाति।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यद्यपि आचार्य सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त तथा क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञा की व्याख्यायें भिन्नरीति से की हैं तथापि उन सबका निर्गलितार्थ एक ही प्रतीत होता है। वह यह कि आत्मा में माहैश्वर्य की अनुभूति ही प्रत्यभिज्ञा है। महेश्वर ही समस्त प्राणियों की आत्मा हैं क्योंकि इन (प्राणियों) की समस्त क्रियायें उसकी इच्छा, ज्ञान एवं क्रियादि शक्तियों से संचालित होती हैं। यह आत्मा स्वप्रकाश, पूर्वासिद्ध प्रमाण तथा समस्त कार्यों की सिद्धि का समाश्रयभूत हैं। परन्तु ऐसा स्वसंवेदनसिद्ध आत्मा ज्ञान रूप होते हुए भी मोह (मायाशक्ति अथवा मल) वश अपने ऐसे असीमित ऐश्वर्य की अर्हता विस्मित कर देता है और तब इसका वहीं असाधारण प्रभाव या सामर्थ्य अभितापित होता है। अर्थात् तब इस आत्मा की सदा भिन्न ज्ञान एवं क्रिया शक्तियों का अनुसन्धान होता है। तो निश्चय ही उसकी प्रत्यभिज्ञा निरूपित होती है–

**किन्तु मोहवशादस्मिन्दृष्टेऽप्यनुपलक्षिते।**
**शक्त्याविष्करणेनेव प्रत्यभिज्ञोपदृश्यते।। ई. प्रत्यका. 1–3**

आचार्य क्षेमराज स्व–स्वरूप से अनभिज्ञ को ही संसारी जीव तथा अपनी वास्तविक शक्तियों से प्रत्यभिज्ञात को शिव मानते हैं– तथा शक्तिदरिद्रः संसारी उच्यते। स्वशक्तिविकासे तु शिव एव।

**–प्रत्यभिज्ञाहृदयम् पृ. 49**

इस प्रकार, प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का लक्ष्य है जीव को उसके वास्तविक शिवस्वरूप का प्रत्यभिज्ञान कराना ताकि वह सीमितता के निकृष्ट क्षेत्र से ऊपर उठाकर असीमित ऐश्वर्य के उत्कृष्ट क्षेत्र का आनन्दानुभव कर सके।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन की ज्ञानमीमांसा सर्वथा स्पष्ट है। शङ्कर के ब्रह्माद्वैत की तरह यहाँ भी शिवाद्वैत की प्रतिष्ठा है, परन्तु शंकरवेदान्त जैसा विवर्तवाद का उलझाव यहाँ नहीं हैं। इस दर्शन की मान्यता है कि समस्त जगत्प्रपञ्च का मूल है एक परम सत्ता (परम शिव) जो प्रकाशविमर्शरूप है। अवभासित अथवा अभिव्यक्त होना (Manifestation) उसका निसर्ग हैं। कर्तृत्व (Creativity) उसका ऐश्वर्य है। यदि वह परमसत्ता अवभासित होने में असमर्थ होती तो वह चैतन्याधिष्ठान आत्मा न होकर घटादि की भाँति जड़तत्त्व होती जैसा कि तन्त्रालोक में आचार्य अभिनव कहते हैं–

**"अस्यास्यदेकरूपेण वपुषा चेन्महेश्वरः।**
**महेश्वरत्वं संवित्त्वं तदत्यश्वद घटादिवत्''।। 3.100**

वस्तुतः वह महेश्वर (परमशिव) असीमित रूपों मे अवभासित होने की सामर्थ्य से युक्त संवित्स्वरूप है। इसके विश्वोत्तीर्ण रूप में 'अहम्' तथा 'इदम्' (=विश्व) अभेदरूप से अविस्थत हैं अर्थात् परमशिव के चिन्मय रूप के साथ पदार्थों का तादात्म्य होने के कारण उनका भी चिन्मय रूप होता है।[8] 'अहम्' उस परमेश्वर का प्रकाशरूप है तथा उस अहन्ता की अनुभूति (Awareness) उसका विमर्शरूप हैं। यही विमर्श उस परमशिव की स्वातंत्र्यशक्ति भी कहा जाता है। इसी में चराचर जगत् सूक्ष्मरूप में अवास्थित रहता है, नन्हें बीज में वटवृक्ष की तरह। परमशिव की शक्ति ही चिति, पराशक्ति अथवा परावाक् कही जाती है।

---

8 तदुत्तीर्णशिवभट्टारकस्य प्रकाशैकवपुषः प्रकाशैकरूपा एव भावाः।–प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, पृ. 50



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यही शक्ति विश्व के रूप में विकसित होती है। यह जगद्विकास ही परमशिव का विश्वमयरूप कहा जाता है–

**यथा न्यग्रोधबीजस्य शक्तिरूपो महाद्रुमः ।**
**तथा हृदयबीजस्य विश्वमेतच्चराचरम् ।। परामि0 34**

वस्तुतः विश्वोत्तीर्ण तथा विश्वमय– दोनों ही स्थितियों में परमार्थता एक ही मूलसत्ता की होती है। विश्वोत्तीर्ण रूप में भी वस्तुतः वही है। जब वह परमशिव जगत् रूप में अपना विकास करना चाहता है तो स्वभासि अभेदात्मना अवस्थित प्रमाता एवं प्रमेयों (तत्त्वों) की अपनी स्वातंत्र्यशक्ति (विमर्श) की महिमा में, स्वयं को ही आधार बना कर पृथग् उन्मीलित कर देता है। कैसे? नगर–दर्पणवत्। उन्मीलन का तात्पर्य है पूर्वावस्थित का ही प्रकटीकरण जो सृष्टि से पूर्व प्रकाशैकात्म्य रूप में अवस्थित है। जगद्विकास छत्तीस तत्त्वों में विभक्त हैं। इस प्रकार, प्रत्यभिज्ञादर्शन में सृष्टि शाङ्करवेदान्त के ब्रह्मविवर्त जैसी नहीं है। प्रत्युत वह परमशिव की आनन्दशक्ति का स्फोटमात्र है, परमशिव की स्वातंत्र्य शक्ति का विकास है, स्व का ही उन्मीलन है जो अभिन्न होते हुए भी भिन्न दीखता है, दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर के समान। अभिनव तथा क्षेमराज दोनों ही विश्वप्रपञ्च को महेश्वर की स्वातंत्र्यशक्ति (विमर्श) का हेतु मानते हैं।[9]

निष्कर्ष यह है कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में परमसत्ता (परमशिव महेश्वर) का अर्थ है शिव रूप शक्ति (अथवा, प्रकाश रूप विमर्श) का सामरस्य। परन्तु यह सामरस्य दो पृथक् तत्त्वों का नहीं प्रत्युत एक ही वस्तु के दो पक्षों का है। मूल तत्त्व तो शिवाद्वैत ही है। विश्वोत्तीर्ण दशा का ही नाम है शिव तथा विश्वमय दशा का नाम है शक्ति। शिव प्रकाश रूप है तथा शक्ति विमर्श रूप। प्रकाशरूप शिव नित्यासत्तरूप अहन्ता का परिचायक है जिसके अभाव में किसी भी वस्तु का अस्तित्व ही संभव नहीं होता। विमर्शरूप शक्ति का तात्पर्य है अकृत्रिम अथवा स्वाभाविक रूप से अहम् का विस्फुरण या प्रतीति।

परन्तु परमसत्ता के ये दोनों पक्ष–शिव तथा शक्ति (अथवा, प्रकाश एवं विमर्श, विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय) पूर्णतः अद्वैत हैं, कथमपि भिन्न नहीं। जैसे अग्नि से उष्णता, जल से शीतलता, पुष्प से सौरभ सर्वथा अभिन्न अथवा समरस होते है। ठीक उसी प्रकार शिव तथा शक्ति तत्त्व भी पूर्णतः अभिन्न हैं–

**न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।**
**न हिमस्य पृथक् शैत्यं नाग्नेरौष्ण्यं पृथग्भवेत्।।–शिवदृष्टि0 3.2.7**

प्रत्यभिज्ञादर्शन में शिव, शक्ति, अथवा प्रकाश–विमर्श की वह अद्वैतानुभूति है।, 'शिवाद्वैत' के नाम से जानी जाती है। यही प्रत्यभिज्ञा है, अर्थात् पशु को (जीव को) अपने पशुपतित्व का प्रत्यभिज्ञान, आत्मा को अपने महैश्वर्य का बोध होना (यही यथार्थ ज्ञान है। इस प्रत्यभिज्ञा की प्रतीति न होना अथवा शिवाद्वैतता की अनुभूति न होना ही इस दर्शन में अख्याति मानी जाती है।

---

9 चितिः स्वतंत्रा विश्वसिद्धिहेतुः।– प्रत्य0 सू0 1
सर्व एवायं विश्वप्रपञ्च अनन्दशक्तिस्फारः।– तंत्रालोक, पृ. 201
स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।–प्रत्य0 सू. 2



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वल्लभ वेदान्त मूलतः अन्यख्यातिवादी दर्शन है। अन्यख्याति को परिभाषित करते हुए आचार्य बालकृष्ण भट्ट कहते हैं–

**''इन्द्रियेण गृह्यमाणाद् विषयात् शुक्त्यादिरूपात् अन्यस्य रजतादेः ख्यातिः अन्यख्यातिरित्युच्यते''– प्रमेयरत्नार्णवः।**

यह एक प्रकार की बुद्धिवृत्ति है जिसे विपर्यास कहा जाता है, विपर्यास की व्याख्या करते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते हैं–''विपर्यासो भिन्नार्थप्रतिपादकः', और भिन्नार्थ की व्याख्या आचार्य बालकृष्ण करते हैं– **''इन्द्रियसंयुक्तादर्थाद् भिन्नोऽर्थः।''**

इस प्रकार इन्द्रियसंयुक्त अर्थ (शुक्ति) से भिन्न रजतत्त्व रूप अर्थ की प्रतीति अन्यख्याति है। इसकी शास्त्रीय प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए गोस्वामी पुरुषोत्तम कहते हैं–

''तत्र पूर्वोत्पन्नस्यानुभवस्य संस्कारात्मना स्थितस्य उद्बोधकैः प्राबल्ये मायिकार्था कारवती बुद्धिवृत्तिः मायया बहिः क्षिप्यते तदा सा पुरोवर्तिनं सर्वतोंऽशतो वाऽऽवृता बहिः अवभासते इति मायिकस्यान्यस्यैवाख्यानाद् अन्यख्यातिरित्यत्र व्यवह्रियते।''

अन्य ख़्याति का वाल्लभवेदान्तीय सिद्धान्त सर्वथा स्पष्ट है। परन्तु शुद्धाद्वैतमत में अख्याति का सन्दर्भ गोस्वामी पुरुषोत्तमचरण जी ने विवेचित किया है जो प्रत्यभिज्ञादर्शन सम्मत अख्याति के नामसाम्यतया व्याख्येय प्रतीत होता है।

गोस्वामी श्री पुरुषोत्तम चरण जी की दृष्टि में अन्यख्याति की प्रासंगिकता मात्र अल्पज्ञान सम्पन्नों में है जो तत्त्वज्ञान अथवा यथार्थज्ञान से विरहित हैं उन्हीं को अन्यख्याति होनी संभव है। परन्तु जो पूर्णज्ञानी अथवा पूर्णयोगी हैं उन्हें शुक्ति में रजत का भ्रम भला क्यों होगा? वे तो तत्त्ववित् हैं। यथार्थज्ञाता हैं अतः उन्हे अन्यख्याति क्यों होगी? वस्तुतः उनके सन्दर्भ में तो अख्याति ही उचित है। अर्थात् उनके सन्दर्भ में तो भ्रमाभाव ही उचित है।

**तदस्माकमभीष्टम्। पटःकश्चिद् विशेषोऽस्ति। तस्माद्ये पूर्णज्ञानिनः पूर्णयोगिनो वा तेषां सर्वत्र सर्वप्रत्यक्षम् अनागतमतीतञ्च (भाग. पुराण, 10.61.21) इत्यादिवाक्यात्। अतस्तेषां ज्ञानस्य; यथार्थत्वात् तत्रोक्ता अख्यातिः उचिता न सर्वत्र।**

उपर्युक्त सन्दर्भ में निश्चय ही गोस्वामी जी अख्याति शब्द का प्रयोग भ्रमात्मक ज्ञान के अभाव अर्थ में कर रहे हैं।

परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन में प्रयुक्त अख्याति ठीक उसके विपरीत अर्थ में प्रयुक्त परिलक्षित होती है। शिव–शक्ति का आत्मा–परमात्मा का, पशु–पशुपति का अथवा प्रकाश–विमर्श का अद्वैत ही मूलतः ख्याति अर्थात् यथार्थज्ञान है। इस अद्वैत अथवा प्रत्यभिज्ञा की अनुभूति ही शैवदर्शन अथवा संकुचितख्याति मानी गयी हैं। इस प्रकार, वाल्लभवेदान्त तथा शिवाद्वैत मतों में प्रतिष्ठित अख्याति संज्ञाबलेन तो उभयनिष्ठ सिद्ध होती है परन्तु दोनों की अन्वर्थ नामता सर्वथा भिन्न है। शुद्धाद्वैत की अख्याति भ्रमाभाव है जबकि



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवाद्वैत की अख्याति पूर्णतः भ्रममात्र है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में भी अन्यान्य दर्शनों की तरह अज्ञान को ही बन्धन का कारण माना गया है। परन्तु इस ज्ञान–अज्ञान के स्वरूप एवं क्रियाकलापादि के विषय में उसका मतैक्य अन्य दर्शनों से सिद्ध नहीं होता।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में परमसत्ता की अभिन्न शक्ति भगवती परा वाक् (चित् शक्ति) ही क्रमशः पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप में परम सत्ता से ऐक्यप्राप्त सूक्ष्मतम ज्ञान का स्थूलतम रूप में आभासन करती है अतः इसमें ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय में परमार्थतः अभेद होता है। ज्ञाता, ही ज्ञान के माध्यम से ज्ञेय रूप में अवस्थित होता है। इस ज्ञान का अपने पूर्ण अबाधित सामर्थ्य के साथ प्रकाशित होना ही शिवदशा है परन्तु भेदरूपतया, अपूर्ण एवं संकुचित सामर्थ्य के साथ स्फुटित होना ही अज्ञान तथा जीवदशा मानी गई है। अतएव प्रत्यभिज्ञा से अज्ञान, ज्ञान का अभाव नहीं प्रत्युत ज्ञान का सीमित तथा प्रकाशन मात्र है। यही अज्ञान, जाड्य अथवा अविद्या है। यह अज्ञान ही स्वरूप विकास– स्थिति में ज्ञान बन जाता हैं वस्तुतः ज्ञान एवं अज्ञान–दोनों ही परमसत्ता की स्वतंत्र इच्छा की लीलामात्र है।

**स्वात्मप्रकाशकत्वेन विद्या।**

**जगत्प्रकाशकत्वेन अविद्या।।**

इसी सन्दर्भ में यह दर्शन त्रिविध मलों (आणव, मायीय तथा कार्म) की भी व्याख्या करता है। वे त्रिविधमल भी परमेश्वरेच्छया माया शक्ति द्वारा अवकल्पित होते हैं। इस प्रकार माया के पंचविध कंचुकों से आवेष्टित होकर चित् आनन्द इच्छादि शक्तियों के संकोचन के साथ कला विद्यादि रूपों को धारण करना ही शिव का पशुभाव तथा इसका निवारण ही मोक्षभाव हैं। इसलिये प्रत्यभिज्ञादर्शन में मोक्ष प्राप्ति से किसी अवस्थान्तर या लोकान्तर की प्राप्ति जैसी उपलब्धि का व्याख्यान नहीं। वस्तुतः महैश्वर्य की अनुभूति ही मुक्ति है। जीव की शिवताप्ति ही मुक्ति है।

अनेक दृष्टियों से काश्मीर का प्रत्यभिज्ञा दर्शन शाङ्करवेदान्त व शुद्धाद्वैत वेदान्त के अत्यन्त समीप सिद्ध होता है। यों तो इस सामीप्य से उसकी अपनी मौलिक मान्यताऍ प्रभावित नहीं दिखती। कुछ विन्दुं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जिन्हे हम रेखांकित कर सकते है।

1 आचार्य शंकर के ब्रह्माद्वैत तत्त्व की ही तरह प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी शिवाद्वैततत्त्व का प्रतिष्ठापक है।

2 ब्रह्म की अभिन्न शक्ति माया के ही समान परम शिव की भी शक्ति उससे पूर्णतः अभिन्न है। फिर भी दोनो में अन्तर यह है कि शक्ति माया की तरह अनिर्वचनीय नहीं।

3 प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी जड़ में चेतन के अभिमान को शांकर वेदान्त की ही तरह, मिथ्याध्यास अथवा अज्ञान मानता है।

4 शांकरवेदान्त जगत् की सत्ता की व्याख्या विवर्तवाद से करता है तथा ब्रह्म को जगत्कारण नहीं मानता । प्रत्यभिज्ञा दर्शन जगत् को विवर्त नहीं मानता तथा परम शिव को जगत्कारण मानते हुए भी उसे विश्वातीत मानता है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

5 सृष्टि के स्तर पर प्रत्यभिज्ञादर्शन का परमशिव शुद्धाद्वैत–मत के कृष्णतत्त्व जैसा प्रतीत होता है शुद्धाद्वैत भी जगत् को सत्य मानता है तथा भगवान् कृष्ण को जगत् का स्रष्टा।

6 परमशिव तथा भगवान् कृष्ण दोनों ही स्वतंत्र हैं तथा अपनी लीलामात्र से जगत् का निर्माण करते हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शन जगत्कारणत्व में परमशिव के 'स्पन्द' को ही हेतु मानता है।

7 परमशिव जगत् का कारण होते हुए भी उससे अतीत है। वस्तुतः उस स्थिति में यह द्वैत एवं अद्वैत दोनों से परे है– यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन की मौलिक प्रतिष्ठापना है।

**प्रत्यभिज्ञादर्शन की मान्यताओं का सारांश**

यद्यपि तत्त्वमीमांसादृष्ट्या शांकर वेदान्त तथा काश्मीर प्रत्यभिज्ञा दर्शन अभिन्न से प्रतीत होते हैं और इसीलिये प्रत्यभिज्ञा दर्शन की जगद्‌विषयक धारणा अद्वैत के मिथ्यात्ववाद के सर्वथा समान लगती है। फिर भी दोनों में अन्तर है। वह अन्तर यह है कि प्रत्यभिज्ञादर्शन में संसार की व्याख्या किसी विवर्त वाद के सहारे नहीं की गई है। अतएव उसमें अद्वैत वेदान्त जैसा पारमार्थिक एवं व्यावहारिक सत्ता का दृष्टिभेद भी नहीं है।

कठिनाई यह है कि प्रत्यभिज्ञा की परमसत्ता परम शिव तथा सृष्टि विषयक सारी मानयताएँ हैं तो एक जैसी परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन व्यावहारिक जगत् को परमशिव (प्रकाश) का विवर्त नहीं मानता और बिना विवर्त स्वीकृति के जगत् की सत्ता की सम्यक् व्याख्या कर पाना कठिन है।

परमतत्त्व शिव है जो स्वतंत्र है, अद्वितीय है, सच्चित् है, तथा विश्वमय है–

**शुद्धं तत्वं परमशिवारव्यं तत्र यदा विश्वमनुसन्धत्ते तन्मयमेव तत्।** शिवसूत्रविमर्शिनी **(क्षेमराज)।**

जगत् शिव की इच्छाशक्ति मात्र का परिणाम है, शिव का स्पन्दमात्र है। वह शिव से इतर नहीं उसका विवर्त भी नहीं उससे पृथक् नहीं। प्रत्युत दर्पण में प्रतिविम्बित नगर के समान ही शिव में अवभासित है। वस्तुतः शिव ही विषय एवं विषयी–दोनों रूपों में भिन्नतया प्रतीत होता है जब कि वह भेद है नहीं।

यहीं प्रत्यभिज्ञा दर्शन अद्वैत से सर्वथा अलग हो जाता है। अद्वैत में सत्ता दो रूप है पारमार्थिक तथा व्यावहारिक। व्यवहार परमार्थ का विवर्त है जैसे रज्जु में सर्प अथवा शुक्ति में रजत। परन्तु प्रत्यभिज्ञा में सत्ता एक ही है परमार्थ तथा व्यवहार दोनों ही रूपों में। सर्पमय रज्जु या रजतमय शुक्ति ही परमसत्ता है। जब विवर्त है ही नहीं तो ख्याति का प्रश्न ही नहीं उठता।

अद्वैत में विवर्त का हेतु है माया जो कि अनिर्वचनीय है। अतः शुक्ति–रजत एवं रज्जु–सर्प सन्दर्भ में होने वाले भ्रान्तज्ञान को वहाँ अनिर्वचनीय ख्याति माना गया है। परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन में भ्रान्ति है ही नहीं शिवाद्वैत तत्त्व मात्र की प्रतिष्ठा के कारण। प्रत्यभिज्ञादर्शन का परमशिव विषय–विषयीभाव से परे है। फिर भी वह विषय एवं विषयी दोनों का अधिष्ठान है। फलतः इस दर्शन में शिवतत्त्व से भिन्न जगत् की व्याख्या ही संभव नहीं जब कि अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म (परमार्थ) से भिन्न व्यवहार जगत् की



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या संभव है विवर्तवाद के माध्यम से! अद्वैत वेदान्त में परमार्थ (ब्रह्म) तो अन्तिम सत्य है ही व्यवहार, (जगत्) भी निर्बाध अवधि में सत्य है, विवर्तरूप में ही सही। रज्जु अथवा शुक्ति तो सत्य है ही, जब तक सर्पत्व अथवा रजतत्व सरीखे भ्रान्तज्ञान का अपलाप न हो जाय, रज्जु तथा शक्ति में सर्प तथा रजत का ज्ञान भी सत्य है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में ऐसा नहीं है। शिव का स्पन्दमात्र होने के कारण जगत् शिवभिन्न है ही नहीं। वह उसका विमर्श मात्र है। सम्पूर्ण जगत् शिव में यूँ अवस्थित है जैसे समुद्र में उसकी तरंगें, वेदान्त तरंगों, को सागरजल का विवर्त मानता है अतः उसकी सत्ता के ज्ञान का प्रश्न उठाता है, परन्तु प्रत्यभिज्ञा तरंगयुक्त सागर को भी सागर ही मानता है।

वेदान्त में माया ब्रह्म की अभिन्न शक्ति है जो सदसद् विलक्षण अतश्च अनिर्वचनीय है। परन्तु प्रत्यभिज्ञा में शिव की शक्ति शिव से अभिन्न होते हुए भी अनिर्वचनीय नहीं है। वेदान्त का ब्रह्म जगत् का कारण नहीं परन्तु प्रत्यभिज्ञा का शिव विशुद्ध चेतन कूटस्थ नित्य तथा अपरिणामी होते हुए भी जगत् का भी कारण है, सर्वथा शुद्धाद्वैत के कृष्णतत्त्व की तरह!

यहाँ दोनों तथ्य परस्पर विरोधी प्रतीत हो सकते हैं कि यदि शिव कूटस्थ, नित्य तथा अपरिणामी है तो परिणामी जगत् का कारण कैसे? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य अभिनव कहते हैं कि परिणामी जगत् शिव की स्पन्दशक्ति मात्र का परिणाम है। स्पन्दशक्ति ही वस्तुतः परिवर्तन का कारण (World Creation) है। परन्तु इस स्पन्दजन्य परिवर्तन (सृष्टि) के बावजूद परमशिव की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। वह एकरूप तथा विश्वातीत ही रहता है। उस स्थिति मे तो द्वैत एवं अद्वैत दोनों ही नहीं रहते– **न द्वैतं नापि चाऽद्वैतम् ब्रह्म**–तंत्रालोक।

अद्वैत वेदान्त के परब्रह्म में न तो परमशिव जैसी स्पन्दशक्ति है और न ही ब्रह्म की मायाशक्ति का शिवाभिन्न शक्ति के साथ कोई साम्य। अतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन में परमशिव की प्रतिष्ठा अद्वैत ब्रह्म से भी 'परतर' सिद्ध होती है तथा शुद्धाद्वैत के कृष्णतत्त्व के समकक्ष।

विवर्तवाद में **परमार्थतः** कारण से कार्य को अभिन्न माना गया है परन्तु **व्यवहारतः** कारण से कार्य भिन्न प्रतीत होता है। यही उसका मिथ्यात्व है। परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन में इस कारणकार्य सम्बन्ध की प्रभूत व्याख्या नहीं की गई है, बस अपनी मान्यताओं को स्पष्ट शब्दों में उपन्यस्त कर दिया गया है।

यद्यपि प्रत्यभिज्ञादर्शन की जगत् विषयक सोच, अद्वैत वेदान्त जैसी ही है तथापि वह उसकी व्याख्या विवर्तवाद के माध्यम से नहीं करता। आखिर क्यों? यह प्रश्न अनुत्तरित है। या तो प्रत्यभिज्ञा दर्शन जगत् को परमशिव का विवर्त मानता ही नही (क्यों कि उसकी दृष्टि में तो जगत् दर्पणनगरवत् शिव में प्रतिबिम्बित है। यह एक विलक्षण दृष्टान्त है। रज्जु में सर्प का अथवा शुक्ति में रजत का भ्रमात्मक ज्ञान तो सम्भव है परन्तु दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर के ज्ञान में भ्रम कैसा? दर्पण (परम शिव) भी सत्य है नगर जगत् भी सत्य है और दोनों सत्य एकाकार है विषय एवं विषयी के अधिष्ठान की एकता के कारण।

वेदान्त के भ्रमज्ञान में सर्प एवं रज्जु अथवा शुक्ति एवं रजत के अधिष्ठान परमार्थतः भिन्न होते हैं



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यवहार मात्र में अभिन्न प्रतीत होकर मिथ्याध्यास की सृष्टि करते हैं। परन्तु प्रत्यभिज्ञा में यह मिथ्याध्यास है ही नहीं इसीलिये वहाँ भ्रमात्मक ज्ञान की भी कोई सत्ता नहीं कोई विवाद नहीं, कम से कम जगत् की सत्ता के सन्दर्भ में। परन्तु इसका यह अर्थ कत्तई नहीं कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में मिथ्याध्यास की अवधारणा है ही नही!

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में परमशिव को स्वतंत्र एवं स्वप्रकाश कहा गया है। जो स्वतंत्र है वह जड़ नही होगा। आचार्य अभिनव स्पष्टतः कहते हैं कि **स्वतन्त्रे हि स्वप्रकाशत्वमुच्यते। जाड्यं परप्रकाशत्वमुच्यते**–तंत्रालोक।

अर्थात् मात्र स्वतंत्र वस्तु ही प्रकाशात्मा होती है जब कि जड वस्तु प्रकाशार्थ पराधीन होती है। पराधीन वस्तु की स्वतंत्र सत्ता होती ही नहीं जिस में चैतन्य नहीं वह अवस्तु है–वेदान्त के इस मत को क्षेमराज भी स्वीकार करते हैं–शिवसूत्रविमर्शिनी में।

विश्व की समस्त वस्तुएं परिज्ञानार्थ (चेतन) आत्मा में अध्यस्त हैं और आत्मा का भी अभिमान (अयमहम्) अनात्मा अर्थात् अचेतन जड़ शरीर में होता है। अद्वैत वेदान्त इसी को मिथ्याध्यास मानता है। आचार्य क्षेमराज भी इस प्रकार के अभिमान को अज्ञानमूलक ही मानते हैं। इस प्रकार सिद्धान्त में तो प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी मिथ्याध्यास अथवा अज्ञान को मान्यता प्रदान करता है परन्तु जगत् की सत्ता के सन्दर्भ में वह वेदान्त के विवर्त को नहीं मानता है । जगत् विषयक उसकी अवधारणा सर्वथा शुद्धाद्वैत के ही समान है।

मेरा अन्तिम निष्कर्ष मेरी **अपनी समझ** पर आधारित है। इसका कोई सटीक सन्दर्भ मैने काश्मीर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के ग्रंथो में फिलहाल , अभी तक नही देखा है। यदि विद्वज्जन शुक्ति–रजत अथवा रज्जु–सर्प दृष्टान्तों द्वारा ही प्रत्यभिज्ञादर्शन का भ्रान्तिज्ञान विषयक दृष्टिकोण जानना चाहते हैं तो मै कहूँगा कि शुक्ति को शुक्ति न समझना (प्रत्युत उसे रजत समझना) प्रत्यभिज्ञा की दृष्टि में **अख्याति** अथवा **संकुचित ख्याति** ही है। यहाँ ख्याति का अर्थ है ज्ञान तथा अख्याति का अर्थ है अज्ञान! परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन का यह अख्यातिवाद प्राभाकर सम्प्रदाय के मीमांसकों के **अख्यातिवाद** से सर्वथा भिन्न होगा।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# काश्मीर के अद्वैत शैवतंत्रों में सामाजिक समता

प्रो. नवजीवन रस्तोगी*

एक बात हमें ईमानदारी से स्वीकार करनी होगी कि सामाजिक समता के सिद्धान्त का पल्लवन् भारतीय दर्शन में उस रूप में नहीं हुआ है जिस रूप में पाश्चात्त्यदर्शन या आज का विवेच्य विषय हमसे अपेक्षा करता हैं। शायद इसका कारण यह है कि दर्शन किसी भी समाज के व्यापकतर सांस्कृतिक व्यापार का अंग है उसका पर्याय नहीं, और इस रूप में वह उस संस्कृति के अवचेतन में छिपे चरम मूल्य को ही प्रतिबिम्बित करता आया है। मोक्ष की धारणा, उसके स्वरूप को लेकर हम चाहे जितना झगड़ते क्यों न आये हों, भारतीय दर्शन की धुरी रही है और यह साधनात्मक स्तर पर एक नितान्त वैयक्तिक, समाजोत्तीर्ण 'अत्याश्रमी' प्रक्रिया रही है। धर्मशास्त्रों में चर्चित तीन पुरुषार्थों का केन्द्र जहाँ समाज रहा है वहाँ मोक्ष समाज से हटकर व्यक्ति पर केन्द्रित हो गया है, भले ही वह मुक्त व्यक्तित्व कितना व्यापक और सर्वाङ्गीण माना जाय। ऐसा लगता है कि सामाजिक समता के लिए यदि हम धर्मशास्त्रों से नितान्त व्यक्तिरिक्त रूप में दर्शन को लें तो समता की समस्या का संदर्भ ही नहीं बनता है। अध्ययन की वस्तुनिष्ठ पद्धति का आश्रय लेने पर हम पाते हैं कि समता की बात जहाँ आयी है वहाँ वह आनुषंगिक बनकर आयी है और वहाँ भी तात्त्विक या दार्शनिक आयाम ही अधिक उभरे हैं, सामाजिक नहीं।

कहे हुए संदर्भ में विचार करना दुस्तर भी है और शायद असार्थक भी। अतः संदर्भ की पूर्णता के लिए आवश्यक है कि समस्या को उसके सम्पूर्ण सांस्कृतिक संदर्भ में उठाया जाए। इसके लिए आवश्यक होगा कि दर्शन को हम उसकी सांस्कृतिक या ऐतिहासिक गतिशास्त्र की दृष्टि से देखें। सामाजिक समता का प्रश्न सामाजिक व्यवस्था और उससे भी अधिक हमारे सांस्कृतिक अवचेतनता से जुड़ा हुआ है। सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक अवचेतन की पारस्परिकता में सहजता की मात्रा से सामाजिक समता की गति निर्धारित होती है।

विश्व का इतिहास इस बात के लिए संस्कृति–पुरुष मनु का ऋणी रहेगा कि उन्होंने भारतीय समाज को एक यथाशक्त सम्पूर्ण व्यवस्था दी, जिसमें समाज, और व्यक्ति तथा उसके सम्बन्ध को निर्धारित करने वाले मूल्यों का इस प्रकार सामंजस्य किया गया जिससे कि भारतीय समाज में ऐतिहासिक कालानुरोध से आने वाली विकृतियों का परिहार होता रहे और समाज का प्रातिस्विक निर्बन्ध प्रवाह अखण्ड चलता रहे। इसका मूल कारण यह था कि जीवन को उसकी सम्पूर्ण विविधता और

---

*पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैशिष्ट्य में स्वीकार करने की प्रवृत्ति। इसे हम जीवन–स्वीकरण दृष्टि (Life affirming atitude) कह सकते है। पर यह विरोधाभास ही कहा जायेगा कि मोक्ष जिसमें वर्णाश्रम व्यवस्था के सिरजनहारों नें जीवित व्यक्तित्व के सम्पूर्ण और चरम उन्मेष की पराकाष्ठा मानी थी, अपने समाजोत्तीर्ण और आपाततः वैयक्तिक आग्रहों के कारण पूरे जीवन की कीमत पर, न कि जीवन की गतिशीलता के सहज परिपाक के रूप में, दर्शन में समादृत हुआ और आस्तिक दर्शनों में मोक्ष के जीवन–विरोधी या जीवन–निषेधी रूप का वरण हुआ। सामाजिक संदर्भ के अभाव में जीवन का चूँकि कोई अर्थ नहीं, अतः सामाजिक संदर्भ अपने आप कटता गया।

इस सामाजिक संदर्भ को फिर से प्रतिष्ठित किया नास्तिक दर्शन ने (नास्तिक शब्द) यहाँ व्यापक संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है–आस्तिकेतर के अर्थ में केवल श्रमण या व्यापक प्रक्रिया का पार्यन्तिक अवयव या अवस्था मानकर। अतः जीवन–निषेध की आन्तरालिक दृष्टि जीवन–अंगीकरण की दृष्टि में फिर से कुछ क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हुई। जीवन–अंगीकरण के इस पुनरभियान से हम फिर सामाजिकता से जुड़े और समता की समस्या को एक संदर्भ प्राप्त हुआ। पर सामाजिकता से जोड़ की यह प्रक्रिया कई रूपों में चरितार्थ हुई, और कई कठिनाईयाँ भी सामने आईं। श्रमण और आर्हत् परम्परा में जीवन निषेध और जीवन अंगीकरण का यह विरोधाभास खुलकर सामने आया। सामाजिक स्तर पर समता, परम करुणा और संघीय जीवन के न केवल उपदिष्ट वरन् व्यवेत आदर्शों के बाद भी मोक्ष का स्वरूप मूलतः जीवन–निषेधात्मक ही रहा और परम कारुणिक तथागत के निर्वाण और अभिज्ञान शाकुन्तल के 'नेत्र–निर्वाण' में प्रयुक्त निर्वाण का अन्तर गहराता ही गया। एक तरह से यह वर्णाश्रम व्यवस्था के चरम मूल्य के स्वीकार के साथ उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया या आधार का निषेध था। तन्त्र परम्परा में जीवन का अंगीकरण ज्यादा सार्थक स्तर पर हुआ। जीवन और मोक्ष के तथाकथित द्वैत का परिहार करते हुए प्रयास, साफ चेतन स्तर का, किया गया कि मोक्ष को जीवन की चरम परिणति सहज और स्वाभाविक माना जाए। पर कहीं–कहीं इस ज्वार का उन्मेष आपाततः समाज विरोधी रूप में हुआ, अतः समाज में व्यापक स्तर पर इनकी प्रतिष्ठा में अक्सर बाधाएं आती रहीं। भागवत, भक्त और सन्त आन्दोलनों की तमाम मिली–जुली परम्पराओं में भी मनुष्य की आस्थाओं को एक आशामय उपलब्धिमान् आलम्बन देने की चेष्टा की गयी और मोक्ष यहाँ जीवन के आनन्द का पुंजीभूतरूप बनकर आया। पर जहाँ इस आन्दोलन ने सामाजिकता और लोकानुकूलन के क्षेत्र में अनेक सम्भावनाएँ दी, वहाँ आत्मसंकुचन की प्रवृत्ति ने इसे केन्द्राभिसारी और आत्मपरितुष्ट ही बने रहने दिया। पर इन सारी धाराओं और प्रयासों की एक मौलिक कठिनाई यह रही कि इनमें से कोई भी धारा एक स्थानापन्न लोक व्यवस्था नहीं दे सकी। अर्थात् जीवन–निषेध का यह विरोध एक ऐसे चक्र के रूप में आया, जिसमें केन्द्र और परिधि तो नहीं थी पर बीच में कुछ आन्तरिक सत्व (Content) नया नहीं था। अर्थात् समाज के उसी मूलभूत ढ़ाँचे के अंगीकरण का अर्थ हुआ कि व्यवस्थागत विकृतियाँ और असामाजिकता की ऐतिहासिक प्रकृति में मौलिक की जगह आपातिक परिवर्तन ही हो पाए। अतः सामाजिक समता के क्षेत्र में प्रगति तो हुई पर आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि इन सारे प्रयोगों का कोई परिणाम नहीं हुआ। इनका



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय समाजरूप अवयवी में गहरा प्रभाव पड़ा और पुंजीभूत और समग्र परिणाम यह हुआ कि वर्णाश्रम व्यवस्था के विखण्डन की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी।

इस लम्बी भूमिका का एक प्रयोजन है। हम तन्त्र साहित्य पर इसी दृष्टि से विचार करेंगे और देखेंगे कि समता की सामाजिक व्यंजनाएँ हमें कहाँ तक ले जाती हैं और यदि वे व्यंजनाएँ सीमित भी हों तो उनकी सम्भावनाएँ क्या हमें एक नए मानववादी, समतावादी भविष्य की ओर ले जाती हैं।

जहाँ तक सामाजिक समता की शब्दावली का प्रश्न है तंत्र साहित्य भी इस बात का अपवाद नहीं है कि सामाजिक समता का कोई लोकव्यवस्थात्मक ठोस स्वरूप उभरता हो। पर तान्त्रिक और वैदिक परम्परा में कोई मौलिक अन्तर अवश्य था और इस अन्तर की चेतना निगम परम्परा के स्मृतिकारों और आगम परम्परा के आचार्यो की भी रहीं है। मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्ट दो प्रकार की श्रुतियों की चर्चा करते हैं–वैदिक और तान्त्रिक।[1] इसी प्रकार श्रीकण्ठ अपने ब्रह्म सूत्र–भाष्य में शैवागमों के दो विभागों का उल्लेख करते है–वेद जिसका साक्षात् सम्बन्ध तीन वर्णों से है और दूसरे जिनका सभी वर्णो से है।

**''अतः शैवागमो द्विविधः त्रैवर्णिकविषयस्सर्वविषयश्चेति। वेदः त्रैवर्णिकविषयः। सर्वविषयकश्चान्यः। उभयोरेक एव शिवः कर्ता।''**[2] तन्त्रालोक के विश्रुत टीकाकार जयरथ भी दो प्रकार के शास्त्रों में अन्तर बताते हैं–

**''तत्र भेदप्रधानानि वेदादीनि शास्त्राणि, अभेदप्रधानानि च शैवादीनि।**

(तंत्रालोक 4.252 पर विवेकटीका)

इसी प्रकार योगसुधाकर के प्रख्यात रचनाकार सदाशिवेन्द्र सरस्वती दो प्रकार के मंत्रों की ओर ध्यान ले जाते हैं– **''ते च मन्त्राः द्विविधाः, वैदिकास्तान्त्रिकाश्च। वैदिकाः प्रगीतागीतभेदेन द्विविधाः। तान्त्रिकाः स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रिविधाः''** (पृ0 43)। सच पूछा जाए तो वैदिक और तान्त्रिक धारा का मूलभेद यहीं से प्रारम्भ होता है। वैदिकसंस्कृति वर्णाश्रमव्यवस्थामूलक और पुरुषप्रधान संस्कृति है और तान्त्रिक संस्कृति वर्ण, आश्रम और लिंगभेद की उपेक्षा करके चली है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है–

**गतं शूद्रस्य शूद्रत्वं विप्रस्यापि विप्रता।**
**दीक्षासंस्कारसंपन्ने जातिभेदो न विद्यते।।** (पृ0187)

आध्यात्मिक संस्कार से सम्पन्न व्यक्ति में जाति का यह विगलन और संस्कारिता का समीकरण सबसे ऊँचे और सबसे नीचे दोनों स्तरों पर होता है। अभिनवगुप्त गीतार्थसंग्रह में इसी अन्तर को फिर से रेखांकित करते है–

---

1. द्विविधा च श्रुतिः वैदिकी तान्त्रिकी च।
2. ब्रह्मसूत्र 2.2..37 पर श्रीकण्ठभाष्य



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शूद्राः कात्स्न्येन वैदिकक्रियानधिकृतः।
परतन्त्रवृत्तयश्च, तेऽपि मदाश्रिता मामेव यजन्ते।।
(गीता 9.35 पर गीतार्थसंग्रह)

वर्णभेद के इस निषेध की भाँति लिङ्गभेद का भी अभिनव ने साफ निषेध किया है और इस निषेध का कारण भी बताया है कि लिंग के आधार पर पात्रता का अपलाप परमेश्वर के सामर्थ्य और उसकी अगाध अनुग्रह शक्ति का उपहास उड़ाना है–

'केचिदाचक्षते–द्विजराजन्यप्रशंसापरमेतद्वाक्यं, न तु स्त्रियादिष्वपवर्गप्राप्तितात्पर्येण इति। ते हि भगवतः सर्वानुग्राहिकां शक्तिंमितविषयतया खण्डयन्तः तथा परमेश्वरस्य परमकृपालुत्वमसहमानाः, भगवत्तत्त्वेभेदलिङ्गवदादेवानयन्तः, मात्सर्यावहित्थलज्जाजिह्मी–कृतावाङ्मुख–दृष्टय इति हास्यरसविषयभावात् आत्मनि आरोपयन्ति इति।' (गीता 9.35 पर गीतार्थसंग्रह)

वर्णाश्रम परम्परा और लिंगभेद की यह उपेक्षा दो तरह से की गयी है– कहीं पर पूर्ण निषेध, अस्वीकार का उल्लंघन के द्वारा और कहीं पर उसके साथ समझौता करके। पहले प्रकार की अभिव्यक्ति वाममार्ग की पद्धति में और दूसरे की दक्षिण मार्ग से हुई है। पर मूल भाव एक ही है। जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करना तांत्रिक संस्कृति का पहला लक्षण है।

तंत्रों में यह बात बार–बार आई है कि मनुष्य के वैयक्तिक (आश्रम), सामाजिक (वर्ण) और आध्यात्मिक व्यक्तित्व परस्पर विरोधी नहीं हैं बल्कि एक ही चेतना के क्रमिक विकास हैं और इनमें से प्रत्येक पक्ष की विभिन्न अवस्थाओं में केवल स्तर–भेद है, गुणात्मक भेद नहीं। प्रत्यभिज्ञाहृदय में 'तद्भूमिकाः सर्वदर्शन–स्थितयः' (सूत्र 8) कहकर क्षेमराज ने इसी बात की अभिव्यक्ति दी है। क्षेमराज की इस सूक्ष्म वाणी का पल्लवन लल्ला की इस उक्ति में और विशद रूप में हुआ है–

शिवो वा केशवो वापि जिनो वा द्रुहिणोऽपि वा।
संसाररोगेणाक्रान्तामबलां मा चिकित्सतु ।।8।।

जो इस रहस्य को नहीं समझ पाते उनके प्रति अभिनवगुप्त की कटुता दर्शनीय है– 'परमात्मनः सर्वगतं रूपं यो न पश्यति, तस्य परमात्मा पलायितः, स्वरूपप्रकटीकाराभावात्। (गीता 6.31 पर गीतार्थसंग्रह) सच पूछिए तो साम्य की यह तात्त्विक स्वरूप की उदबोधता ही सामाजिक साम्य के बीज बोती है। तंत्रों का स्पष्ट उद्घोष है कि समता का अर्थ विषमता का अभाव नहीं है बल्कि उस वैषम्य को एक व्यवस्था के अन्तर्गत एक समंजस और परस्परानुजीवी स्थान प्रदान करता है ताकि आपातिक भेद, मौलिक अभेद का सम्पन्नतर प्रतीक बन सके। और समता का यह अर्थ भी नहीं है कि वस्तु के विशेष स्वरूप की अवधारणा या उसके स्वरूपगत वैशिष्ट्यों का अपलाप कर दिया जाए। समता का अर्थ है पदार्थ के अस्तित्व को दो चरणों में समझना–एक तो उसके विशिष्ट प्रकृति के संदर्भ में और फिर उस प्रकृति को एक ज्यादा मौलिक और सार्थक तत्त्व ही सहज परिणति के रूप में। गीता के 5.19 (विद्याविनयसम्पन्ने



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।) की व्यवस्था में अभिनवगुप्त बड़ी ही मार्मिक बात कहते हैं–

**'तथा च तेषां योगिनां ब्राह्मणे नेदृशी बुद्धिः– अस्य शुश्रूषादिनाहं पुण्यवान्भविष्यामि– इत्यादि। गवि न पावनीयमित्यादि। हस्तिनि नार्थादिधीः। शुनि नापवित्रापकारितादिनिश्चयः। श्वपाके च न पापापवित्रादिधिषणा। अत एव समं पश्यन्ति इति., न तु व्यवहरन्ति।'**

तंत्रों में इस समग्रतावादी दृष्टि को प्रत्येक स्तर पर अनेक प्रकार से उत्पन्न करने का प्रयास हुआ है। मनुष्य की चेतना के उदात्तीकरण–

**सर्वो ममायं विभवः इत्येवं परिजानतः। (ई0प्र0का0 4.3.12)**

फलतः सार्वभौमीकरण, चैतन्य के निमित्त और उपादान रूपों के अभेदीकरण[1], परमतत्व से विषयगजगत् के आवयविक निकास–

**विमतिपदमङ्ग सर्वं मम चैतन्यात्मनः शरीरमिदम्।**
**शून्यपदादीलावधि दृश्यत्वात् पिण्डवत् सिद्धम्।। (विपुराक्ष–पंचाशिका[2])**

ब्रह्माण्ड और पिण्ड के समीकरण–**अण्डपिण्डयोरुभयोरैकरूप्यमाम्नायेषु प्रसिद्धम्।** (महार्थमंजरी, वाराणसी, पृ08): समग्रतामूलक साधना के अन्तर्गत भक्ति और ज्ञान के एकीकरण आगमों के अप्रचतुष्टय–ज्ञान, योग, क्रिया, चर्या–द्वारा दर्शन, धर्म, आचार और साधना के समंजसीकरणः, कूटस्थता और परिणामिता की भिन्नध्रुवीय धारणाओं के विमर्श या स्पन्द में समन्वयन, जागतिक विकास की शाब्दिक और आर्थिक धारा के परस्परान्वयन; और विविधता में अन्तर्हित एकता के प्रत्यय के बोधन; परमशिव और योगी के समीकरण आदि के द्वारा पदार्थगत विरोधों का परिहार करके उसी समग्रता दृष्टि का पल्लवन हुआ है। इन सबका फल यह होता है कि मोक्ष और जीवन क्रमशः स्वातन्त्र्य एवं बन्धन के प्रतीक न होकर जीव की आध्यात्मिक चेतना के पूर्ण और अपूर्ण विकास के प्रतीक बन जाते है; पाप और पुण्य केवल दृष्टिभेदमात्र रह जाते हैं–

**यः पापपुण्यहेतुत्वेन मम पूर्वप्रसिद्धः नीलसुखादिभावः स एव मोक्षसाधनमिति।**
**(भास्करी, भाग 1, पृ0 40)**

और भोग एवं योग अथवा मोक्ष एक दूसरे के विरोधी न रहकर पूरक बन जाते हैं (भोगमोक्षसामरस्यात्मा मोक्षः)।[1] जो इनमें गुणात्मक भेद पाती है उसे ज्ञान की 'विवेकमूला' और इससे भिन्न दृष्टि को 'सामरस्यमूला' कह सकते हैं। ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में इसका प्रभाव ज्ञान की अध्यवसानमूला (इतरनिषेधपूर्वक निश्चयन) और अनुसंधानमूला (इतरग्रहणपूर्वक ज्ञान) प्रक्रियाओं में क्रमशः मिलता है।[2]

इस दृष्टि से शिवदृष्टि में समता के प्रत्यय का जो विकास हुआ है वह समता के सामाजिक

---

1. चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थमिच्छावशाद्बहिः। योगीव निरुपादानमर्थं तं प्रकाशयेत्।। (ई. प्र.का. 1.5.7)
2. गीता 7.11 पर अपने व्याख्यान में अभिनवगुप्त इसका उद्‌बोधन बड़े दर्प के साथ करते हैं–'एवं व्याख्यानं त्यक्त्वा ये–परस्परानुपघातकं त्रिवर्गं सेवेत–इत्याशयेन व्याचक्षते, ते सम्प्रदाय–क्रममजानाना भगवद्रहस्यं च व्याचक्षाणा नमस्कार्या एव।"



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आयामों और सम्भावनाओं को पुष्ट आधार प्रदान करता है। शिवदृष्टि के अनुसार जिसे हम कुत्सित कहते हैं वह भी परमशक्ति का ही रूप–प्रसार मात्र है अतः उसकी निन्दा अनुचित है–

**कुत्सिते कुत्सितस्य स्यात् कथमुन्मुखतेति चेत्।**
**रूपप्रसाररसतो गर्हितत्वमयुक्तिमत्।।** **(शि0 दृ0 12)**

सारे पदार्थों में परमेश्वर की सारी शक्तियों का संस्पर्श रहता है–

**यदेकतरनिर्माणे कार्यं जातु न जायते।**
**तस्मात्सर्वपदार्थानां सामरस्यमवस्थितम्।।** **(शि0 दृ0 1.23)**

यहाँ पर यह ध्यान देना चाहिए कि समता के विकास के लिए आत्मौपम्य' की भावना अनिवार्य मानी गयी है–**'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'** (गीता 6.33 में आता है–**'आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।'**) पर वस्तु तंत्र एक कदम आगे बढ़कर आत्मैक्य या आत्मा–भेद के सिद्धान्त की स्थापना करता है। कहना न होगा कि यह अभेदन व्यापार भेद का निषेध नहीं करता, बल्कि भेद का अभेद में उदात्तीकरण करता है–

**तथा नानाशरीराणि भुवनानि तथा तथा।**
**विसृज्य रूपं गृह्णति प्रोत्कृष्टाममध्यमम्।।** **(शि0दृ0 1.34)**
**एवं सर्वपदार्थानां समैव शिवता स्थिता।**
**परापदादिभेदोऽत्र श्रद्दाधानैरुदाहृतः।।** **वही– 1.48**
**एवं भेदात्मकं नित्यं शिवतत्त्वमनन्तकम्।**
**तथा तस्य व्यवस्थानान्नानारूपेऽपि सत्यता।।** **वही–1.49**

महार्थमञ्जरीकार ने त्रिक शास्त्र को उद्धृत करते हुए 'समताष्टक' के द्वारा इस सार्वात्म्य भाव का प्रतिपादन बड़ी ओजस्विता के साथ किया है–

**समता सर्वभावनां वृत्तीं चैव सर्वशः।**
**समता सर्वदृष्टीनां द्रव्याणां चैव सर्वशः।।**
**भूमिकानां च सर्वासामोवल्लीनां च सर्वशः।**
**समता सर्वदेवानां वर्णानां चैव सर्वशः।।** **पृ0 168**

परम तत्त्व की और मोक्ष की **'अहम्–इदम्'** के सामरस्य के रूप में जो परिकल्पना की गयी है वह दोनों ध्रुवों का समंजसीकरण ही है जिससे समता की उपर्युक्त कल्पना स्वतः प्रवाहित होती है। इसी प्रकार परमेश्वर के विश्वमय स्वरूप को प्रकाश विमर्शमय कहने का भी निहितार्थ यहीं है। प्रकाश का काम है भावव्यवस्था और विमर्श का भेद में अभेदव्यवस्था। इन दोनों व्यवस्थाओं का परस्पर अन्वयन और सामंजस्यीकरण ही शिव के स्वरूप का पूर्ण भाव है। सत् मात्र शुद्धसंवित् न होकर पूर्ण संवित् है और जिस चरम अभेद की कल्पना यहाँ की गयी है वह एक अपोद्धृत या अमूर्त ऐक्य न होकर सघन ऐक्य है। **हीगेल** की भाँति वह केवल विरोधियों की एकता मात्र नहीं है **अपितु क्रोचे** की भाँति वह भिन्नों



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की एकता भी है।[1] अतः सत् अनिवार्य रूप से भेद में अभेद है। सत् की पूर्णता का अभ्युपगम उसके अन्तर्निहित स्वातन्त्र्य या सद्यः स्फूर्ति के प्रत्यय के बिना सम्भव नहीं है। अतः सारी कारणात्मक व्याख्याएँ एक तरह से अधकचरी और अधूरी रह जाती है। **हीगेल** में घटनाएँ या पदार्थ 'परतत्त्व' से 'निगमित होते हैं यहाँ पर 'आभासित' या अभिव्यक्त।

तंत्रों की इस विचारधारा को यदि उसके ऐतिहासिक अनुवदन की दृष्टि से देखा जाए तो कहना पड़ेगा कि तंत्रों के प्रभाव से एक **मानवतावादी** आंदोलन का सूत्रपात अनजाने में ही काश्मीर की घाटी में होने लगा था। तंत्र प्रतिपादित भक्ति की जो अन्तर्धारा घाटी में बहीं वह चौदहवीं शताब्दी में जाकर लल्लदे के वाक्यों में अपने प्रकर्ष को प्राप्त हुई–

**यथा शिलेकैव स्वजातिभेदात् पीठादिनानाविधरूपभागिनी।**

**तथैव योऽनन्ततया विभाति कष्टेन लभ्यं श्रृणु तं गुरोः शिवम्।। 52।।**

**नीला क्रैम कुक** ने अपनी पुस्तक (Thy way of swan) में मध्य एशिया में इरफान के कवि–दार्शनिकों और काश्मीर के शैव लेखकों के मध्य एक घनिष्ठ सामानन्तर्य का दर्शन किया है। इरफान और काश्मीर के ये दोनों आन्दोलन चौदहवीं शती में **शाह–इ–हमदान** से लल्ला की भेंट के साथ ही एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, जिसका परिणाम होता है **शिवाद्वयवाद** एवं **सूफीमत** की **इरफान** परम्परा का परस्पर मिश्रण। सांस्कृतिक आश्लेषण की यह प्रक्रिया, जो कि भक्ति आन्दोलन से प्रेरित और उद्‌भूत थी, बादशाह **जैन–उल–आबिदीन** के हाथों परवान चढ़ी। सहिष्णुता, उदारता और सर्वधर्मसमभाव से यह बादशाह प्रतिश्रुत और प्रतिबद्ध था। यह पहला बादशाह जिसने काश्मीर में गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाया था और संस्कृत के पठन–पाठन को प्रोत्साहित किया था। **कुक** का कहना है कि यदि कहीं अकबर ने **जैन–उल–आविदीन** के आदर्श का पालन किया होता तो एक धर्मनिरपेक्ष भारत का अभ्युदय उसी क्षण वहीं हो जाता।[2] धार्मिक समता और सहिष्णुता की इस परम्परा को **शेख नूरूद्‌दीन** ने, जो एक हिन्दू सन्त थे और बाद में मुसलमान हो गये थे, ने आगे बढ़ाया।[3]

इतनी दौड़भाग का प्रयोजन सिर्फ इस बात को रेखांकित करता है कि **तंत्रों में** इस बात में प्रभूत आधार मिलते हैं कि एक नए **समतावादी दर्शन** की ठोस सम्भावनाएँ हैं। परमार्थ और व्यवहार के दो स्तरों की यहाँ पर भी प्रतिष्ठा की गई है। पर ऐसा लगता है कि परमार्थ और व्यवहार में यहाँ समन्वय का प्रयास किया गया है। साहचर्य नहीं। इस बात की पुष्टि इससे और भी होती है कि यहाँ व्यवहार के स्तर पर कम से कम सिद्धान्त और व्यवहार का भेद नहीं मिलता। हमारा लक्ष्य तंत्रों का औचित्य सिद्ध करना नहीं है, परन्तु छिपी हुई सम्भावनाओं को उजागर करना है। **डॉ0 हर्षनारायण** ने पाँच प्रकार की

---

1. देखिए लेखक का 'Contribution of Kashmir to Philosophy, Thought and Culture' शीर्षक लेख, एवल्फ ऑफ भंडारकर ओरिएण्टल सिसर्च इन्सटीट्यूट, भाग 56, 1974, पृ. 32–33.
2. देखिए, 'Kashmir Bi-annual, Ed. P.N. Pushp,. P. 90'
3. देखिए, 'Doctrine of Recognition, R.K. Kano, Srinagar, P. 366



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो अर्हताएँ रखी है[1] वे सभी किसी न किसी रूप में तंत्रों में प्राप्त होती है। हम संक्षेप में उनका पुनराकल्पन करें–

1. तन्त्र पूर्णतावादी होते हुए भी, सभी सत्यों को मानव सत्य के रूप में स्वीकार करता है– 'तद्भूमिकाः सर्वदर्शनस्थितयः' (प्रत्यभिज्ञोदय सूत्र 8)। अपना मत यद्यपि अन्तिम है पर परमसत् की अभिव्यक्ति की अनन्त सम्भावनाएँ उसके साथ शेष नहीं हो जातीं।
2. व्यक्ति में समष्टि की अनुस्यूति का अर्थ है प्रत्येक विचार में सार्वभौम भूतयोग्यता अन्तर्निहित है और दर्शन का काम है उस चेतना को पल्लवित करना।
3. पिण्ड और ब्रह्माण्ड, योगी और परमशिव के समीकरण और व्यक्ति चेतना और समष्टि चेतना की एकरूपता का एक ही अर्थ है व्यक्ति को साध्य मानकर उसके विकास की चरम सम्भावनाओं का अनुसंधान।
4. व्यावहारिक स्तर पर भी प्रमेय जगत् की तुलना में प्रमाता को अपेक्षाकृत स्वतंत्र और स्थायी स्वीकार करने से व्यक्ति की स्वतंत्रता और स्थायिता की धारणा को बल मिलता है।
5. यह बात बार–बार सामने आ चुकी है कि तन्त्र दर्शन की अस्तित्वगत प्रवृत्ति पदार्थो के किसी गहरे अन्योन्याश्रयत्व का अनुसंधान करने में है और यह प्रवृत्ति एक प्रकार से भेद में निहित मौलिक अभेद का अन्वेषण मात्र है। तन्त्रों में यह बात कई बार दुहराई गयी है कि लोकयात्रा के संदर्भ में यह भेदाभेदव्यवहार की परमार्थ दृष्टि में प्रवेश कराता है।[2]

पर इस प्रकार के प्रयासों में अतिसरलीकरण का आरोप आसानी से लगाया जा सकता है और विषय के हित में एक हद तक इसे स्वीकार करने के लिए हमें तैयार भी रहना चाहिए। परन्तु एक खतरे की ओर यहाँ पर ध्यान दिलाना उचित होगा। समता की बात हम लोक व्यवस्था के संदर्भ में करते हैं और समता को आधुनिक जीवन–बोध के एक आधारभूत मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। पर व्यवस्था के व्यापक सन्दर्भ में समता को यदि हम एकमात्र मूल्य स्वीकार करके चलते हैं तो यह शायद वदतो व्याघात होगा और व्यवस्था के ही अर्थ के विपरीत जा पड़ेगा। अतः दर्शन का एक मूल कृत्य रहेगा कि सार्वभौम मूल्यों में एक तारतम्य वरीयताक्रम और फिर उसमें परस्परान्वयीत्व का बोध कराना। एक की कीमत पर दूसरे की प्राप्ति व्यवस्था के मूल भाव समंजसीकरण के विपरीत है। उदाहरण के लिए स्वातन्त्र्य वांछनीय नहीं होगा। अतः सामाजिक समता की उचित और निर्बाध उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि व्यापक मूल्यचेतना के अन्तर्गत ही हम प्रयत्न करें सर्वाप्रीणत्व पर आग्रह करके तंत्र हमें एकाङ्गिता के दोष से बचाने की बार–बार चेष्टा करते हैं। स्वातन्त्र्य, साम्य, आत्मबोध, स्वस्यावस्थान, लोक चेतना के उदात्तीकरण (विकल्पसंस्कार), व्यक्तिचेतना के साधारणीकरण आदि मूल्यों में तन्त्रों में जिस प्रकार सामंजस्य बैठाया गया है, उससे हमें प्रेरणा लेनी चाहिए।

******

1. देखिए, डॉ. हर्षनारायण का लेख "भारतीय धर्म–दर्शन का स्वर सामाजिक समता अथवा विषमता"
2. "सर्वथा तावदत्र प्रमेये भगवत एव भेदने च अभेदने च स्वातन्त्र्यं घटगताभासभेदाभेददृष्टिरेव परमार्थाद्वयदृष्टिप्रवेशे उपायाः समवलम्बनीयः, न तु व्यवहारोऽपि अयं परमेश्वरस्वरूपानुप्रवेशविरोधी।" ईश्वर–प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भास्करी), 2. पृ. 121



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की आनुक्रमिकता[1]

प्रो. वसन्तकुमार म. भट्ट*

अभिज्ञानशाकुन्तल शीर्षक से सुप्रसिद्ध नाटक न केवल संस्कृत वाङ्मय की अद्वितीय शोभा है, वह विश्वनाट्य साहित्य का भी बहुमूल्य रत्न है। यह नाटक नाट्यतत्त्व और काव्यतत्त्व जैसी उभयविध दृष्टि से आकर्षक है। इन दोनों में भी काव्यतत्त्व इतना अधिक हृद्य है और सुन्दर है कि इस नाटक की साहित्यशास्त्रीय समीक्षा करने में ही विद्वज्जगत् रममाण रहता है। परन्तु इस नाटक का जो देवनागरी पाठ प्रचलित हुआ है उसकी नाटकीयता के सन्दर्भ में परीक्षा करने के लिए कोई उद्यत होगा तो उसे मालूम होगा कि यह प्रचलित पाठ तो निश्चित रूप से रंगावृत्ति ही है! क्योंकि इस पाठ में जो रंगसूचनायें हैं वह विसंगतता से भरी पड़ी हैं। अतः, इस नाटक के काव्यतत्त्वीय पक्ष को लेकर जो पाठान्तर दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उसकी अपेक्षा से नाट्यतत्त्वीय पक्ष से जुड़े पाठभेदों की पाठालोचना अनुपेक्ष्य है। यदि इस दिशा में कोई नाट्य-रसिक प्रवृत्त होगा तो आज प्रचलित हुआ देवनागरी वाचना का जो पाठ है वह बहुशः परिवर्तित एवं संक्षिप्त किया गया है यह बात तुरंत समझ में आयेगी। तथा अन्ततः, इस नाटक के मंचन का इतिहास भी दृश्यमान होने लगेगा।

अभिज्ञानशाकुन्तल इस शीर्षक से जो नाटक सुप्रसिद्ध है उसकी देवनागरी एवं दाक्षिणात्य नामक दो वाचनाएँ उपलब्ध होती हैं। अभिज्ञानशकुन्तला शीर्षक से काश्मीर की वाचना का पाठ शारदालिपि में लिखी हुई पाण्डुलिपियों में सुरक्षित है। तथा अभिज्ञानशकुन्तलम् जैसे तीसरे शीर्षक से प्रचलित हुआ पाठ मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में संचलित हुआ है। इस तरह, एक ही नाटक की पञ्चविध वाचनाओं को देखकर किसी को भी स्वाभाविकतया "इन में से मूलपाठ कहाँ छिपा हुआ होगा? ऐसी जिज्ञासा होती है। अद्यावधि जिन विद्वानों ने इस विषय में प्रारम्भिकरूप से जो कुछ सोचा है उसमें (1) "अमुक वाचना का पाठ काव्यत्वपूर्ण या व्यञ्जनापूर्ण है इस लिए वही वाचना मौलिक हो सकती है।" अथवा (2) "अमुक वाचना का पाठ बृहत्काय है, क्योंकि उसमें अश्लीलांशों का प्रक्षेप हुआ है। ऐसा पाठ कदापि मौलिक नहीं हो सकता।" अथवा, (3) "उपलब्ध हो रही अनेक पाण्डुलिपियों में से जो पाण्डुलिपि सब से प्राचीनतम काल में लिखी गई हो, उसमें सुरक्षित रहे पाठ को सर्वाधिक श्रद्धेय मान कर उसका स्वीकार करना चाहिए"। अथवा (4) "बहुसंख्यक पाण्डुलिपियों में, जो पाठ उपलब्ध होता हो, एवमेव जो पाठ बहुसंख्यक टीकाकारों के द्वारा समादृत हो उस पाठ को मान्यता दी जानी चाहिए"। अथवा (5) "सामान्यतया किसी भी कृति का लघुपाठ ही पहले आकारित होता है, और उसमें से कालान्तर में बृहत्पाठ बनाया जाता है। अतः इस नाटक का लघुपाठ जिसमें संचरित हुआ है वही याने देवनागरी वाचना ही मौलिक है।" अथवा (6) "इस नाटक की पाँचों वाचनाओं में से जहाँ जहाँ सब से अधिक नाट्यक्षम पाठ मिलता हो उसका चयन करके, उसका पुनर्गठन करना चाहिए।" ऐसे बहुविध विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं। कालिदास के इस नाटक की पाठसंशुद्धि करने के लिए सोचे

---

*निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद-380009

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गये इन मार्गों का अनुगमन किया जाय तो उनसे हमारे सामने अभिज्ञानशाकुन्तल के बहुविध संस्करण आयेंगे। और उनमें से एक भी संस्करण सर्वसम्मत नहीं होगा। क्योंकि इन मार्गों में एक या दूसरे प्रकार का तर्कदोष अन्तर्निहित है। अतः इन सभी विचारधाराओं से हट कर, प्रस्तुत शोध-आलेख में तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक जैसी उभयविध दृष्टि का उपयोग किया गया है। जिसमें वस्तुलक्षी बन कर सब से पहले यह निश्चित किया जायेगा कि उपर्युक्त पाँचों वाचनाओं में से प्राचीनतम वाचना कौन सी है? तथा अन्यान्य वाचनाओं में उपलब्ध हो रहे पाठान्तरों का तुलनात्मक अभ्यास करके, उसमें संनिहित पाठविचलन की आनुक्रमिकता उजागर की जायेगी। जिससे इस नाटक के मौलिक पाठ की गवेषणा का मार्ग प्रशस्त होगा।

**1. बृहत्पाठ वाली तीन वाचनाओं का पुरोवर्तित्व**

उपर्युक्त पाँचों वाचनाओं में से जो काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनायें हैं उन सब में इस नाटक का बृहत्पाठ मिलता है। तथा जो देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनायें हैं उन दोनों में लघुपाठ संचरित हुआ है। अतः प्रथम दृष्टि में तो लघुपाठ वाली वाचनायें ही अधिक श्रद्धेय या मौलिक होने की सम्भावना सोची जा सकती है। पाठालोचना का एक अधिनियम यह भी है कि बृहत् एवं अलंकृत पाठ की अपेक्षा से जो लघुपाठ होता है वही मूलपठ होने की सम्भावना होती है। किन्तु यह अधिनियम अभिज्ञानशाकुन्तल जैसी एककर्तृक रचना में लागू नहीं किया जा सकता। यह अधिनियम तो महाभारत जैसे प्रोक्त प्रकार के (अनेक-कर्तृक) ग्रन्थों के लिए ही सही है। नाट्यकृतियों के लिए सोचा जाय तो, उनमें कविप्रणीत बृहत्पाठ में से सूत्रधारों के द्वारा अमुक अंशों की कटौती करके, मंचन के योग्य लघुपाठ को (जिसको हम "रंगावृत्ति" कहते हैं।) तैयार करने की प्रवृत्ति ही प्रायः देखी जाती है। अतः प्रस्तुत सन्दर्भ में उपर्युक्त अधिनियम मार्गदर्शक नहीं बन सकता है। वर्तमान समय में "अभिज्ञानशाकुन्तल" शीर्षक से जो देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचना का पाठ प्रचलित है, उसका स्वरूप भी इसी तरह का, याने रंगावृत्ति स्वरूप का ही है। इस बात के प्रमाण प्रमुखतया तीसरे अंक में उपलब्ध हैं।

(क) शकुन्तला की दोनों सहेलियाँ मृगबाल के पास जाती हैं और रंगमंच पर दुष्यन्त-शकुन्तला अकेले हैं तब शकुन्तला उस लतामण्डप से बाहर जाने का उपक्रम करती है। उसको दुष्यन्त कहता है कि "उत्सृज्य कुसुमशयनं ... कथमातपे गमिष्यसि।" यानि इस दृश्य का समय मध्याह्न का है। लेकिन देवनागरी वाचना में इस उक्ति के बाद, नायक-नायिका के छोटे छोटे छः वाक्य आते हैं, और तुरंत नेपथ्य-उक्ति से कहा जाता है कि "चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व प्रियसहचरम्, उपस्थिता रजनी।" यहां मध्याह्न और रात्रि के बीच का समय व्यतीत हुआ है ऐसा प्रतीत होने के लिए पर्याप्त संवादशृङ्खला का नितान्त अभाव है। प्रोफे. एस. के. बेलवेलकरजी को यहां लगता है कि जो एकान्त-मिलन मध्याह्न में अभी शरू ही हुआ था, वहाँ केवल छः वाक्यों में ही रात्रि कैसे उपस्थित हो गई? यहाँ समयनिर्देशन की दृष्टि से जो सुसंगति का अभाव है उससे अनुमित होता है कि यहाँ पर कुछ पाठ्यांश में कटौती हुई है।

(ख) इसी दिशा में आगे चल कर, हमने इसी तीसरे अङ्क के उपान्त्य श्लोक[2] की ओर विद्वज्जगत् का ध्यान आकृष्ट किया है कि नाटक के मूलपाठ में हुई कटौती के पदचिह्न इस श्लोक में प्रकट रूप से अङ्कित हो गये हैं। जैसा कि, यहाँ दुष्यन्त ने शकुन्तला की तीन चीजों का परिगणन करवाया है। (1) पुष्पमयी शय्या (2) मदनलेख और (3) उसके हाथ से निकल गया बिसतन्तु का वलय (जिसको बिसाभरण या मृणालवलय कहा गया है।) इनमें से पहले दो पदार्थों से जुड़े प्रसंग तो इस तीसरे अङ्क में दृश्यमान हुए है, (अङ्क के आरम्भ में ही कहा गया है कि शकुन्तला कामज्वर से पीड़ित होने के कारण कुसुमास्तरणवाले शिलापट्ट पर लेटी हुई है, तथा प्रियंवदा के कहने पर उसने कमलदल पर अपने नाखून से मदनलेख लिखा है। किन्तु इस श्लोक में जो बिसाभरण का निर्देश मिलता है उसके साथ जुडा हुआ कोई दृश्य देवनागरी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाचना में मिलता ही नहीं है।[3] मंचन की दृष्टि से नाटक में किसी भी चीज का निर्देश अहैतुक नहीं हो सकता है। इससे भी अनुमित होता है कि इस तीसरे अङ्क में कोई दृश्य पहले रहा होगा, जो किसी अज्ञात रंगकर्मी के द्वारा हटाया गया है। दुष्यन्त ने शकुन्तला के हाथ में एक मृणालवलय (बिसाभरण) पहनाया है और उसको देखते समय ही शकुन्तला के नेत्र में पुष्पों की रज गिरने से उसकी दृष्टि कलुषित होती है। तब दुष्यन्त उसके नेत्र को अपने वदनमारुत से परिमार्जित कर देता हैं। ऐसे दो दृश्यों का निरूपण करने वाला पाठ्यांश काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में विद्यमान है।

(ग) प्रथमांक के भ्रमरबाधा प्रसंग में देखा जाय तो (राघवभट्ट के द्वारा स्वीकृत देवनागरी वाचना के पाठ में) राजा के मुख में "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्0"। श्लोक को "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना के साथ रखा गया है। तथा इस पाठ में यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते0 वाला दूसरा श्लोक मिलता ही नहीं। यहां नायक के मन में भ्रमर के प्रति ईर्ष्याभाव उदित हुआ है ऐसा दिखाना अभिप्रेत है। अतः राजा ने जो "चलापाङ्गां दृष्टिं" वाला श्लोक प्रस्तुत किया है, उसको तो "सासूयम्" जैसी रंगसूचना के साथ होना अनिवार्य था। किन्तु देवनागरी वाचना के पाठ में संक्षेपीकरण करते समय वह बात किसी अज्ञात पाठशोधक के ध्यान में नहीं आई। इसलिए "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना के साथ जो "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते." वाले श्लोक के साथ जुड गई!! (रंगसूचना सम्बन्धी ऐसी विसंगति की ओर किसी भी पाठ सम्पादक का अद्यावधि ध्यान गया ही नहीं है!!!) इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान देवनागरी वाचना के पाठ में में अनेक स्थानों पर संक्षेप किया गया है।।

(घ) वर्तमान देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में स्त्री वर्ग एवं विदूषकादि की प्राकृत उक्तियों में महाराष्ट्री प्राकृत का ही ध्वनिरूप बहुशः दिखाई दे रहा है, इस तरह की प्राकृत कालिदास के समय में विद्यमान ही नहीं थी। इसके प्रतिपक्ष में, यानि काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में शौरसेनी प्राकृत का ध्वनि रूप सुरक्षित रह पाया है। भरतमुनि ने स्त्रीपात्रों के लिए शौरसेनी (और मागधी) का विधान किया है, अतः कवि कालिदास के द्वारा भी वही शौरसेनी का निनियोग किया गया होगा ऐसा मानना विसंगत नहीं होगा।।

यदि देवनागरी तथा तदनुसारिणी दाक्षिणात्य वाचना में संक्षेप हुआ है, तथा शौरसेनी प्राकृत का स्वरूप ही परिवर्तित किया गया है ऐसा सप्रमाण सिद्ध होता है तो स्वाभाविक क्रम में यह स्वीकारना होगा कि जिसमें इस नाटक का बृहत्पाठ सुरक्षित रहा है वैसी काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनायें ही पुरोगामिनी वाचनाओं के रूप में प्रचलित रही होगी।। निष्कर्षतः कहा जाय तो इस नाटक का लघुपाठ जिसमें संचरित हुआ है उन दोनों वाचनाओं का जन्म उत्तरवर्ती काल में हुआ है। यथा बृहत्पाठ जिसमें संचरित हुआ है वैसी तीनों वाचनायें पुरोगामिनी है।

**( 2 ) काश्मीरी वाचना की प्राचीनतमता-** अब कालिदास के इस नाटक की बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में से कौन सी वाचना प्राचीनतम है? यह विचारणीय बिन्दु है। क्योंकि पाठालोचना का प्रथम लक्ष्य यही होता है कि प्राचीन

---

[1] गुवाहाटी युनिवर्सिटी, गौहाटी के द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद् (47 अधिवेशन) के पाण्डुलिपि विज्ञान विभाग में ( 2-4 जनवरी, 2015) प्रस्तुत किया गया शोध-आलेख।

[2] तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं, क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः। हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो, निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि।।3-23।

3. द्रष्टव्यः अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना में संक्षेपीकरण के पदचिह्न। शीर्षकवाला हमारा शोध-आलेख "नाट्यम्", अंक-71-74, (पृ. 27 से 57), संपादक : प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2011-12.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से प्राचीनतर, एवं प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ की पहले गवेषणा की जाय। अतः लघुपाठ की अपेक्षा से यदि बृहत्पाठवाली तीनों वाचनायें पुरोवर्तिनी है, तो उन तीनों में से कौन सी वाचना सब से पुरानी है? यह सोचना चाहिए। क्योंकि किसी एक वाचना की प्राचीनतमता निश्चित हो जाने के बाद ही अन्यान्य वाचनाओं में पाठविचलनक्रम की आनुक्रमिकता निर्धारित हो सकती है। वर्तमान में उपलब्ध हो रही इस नाटक की पाण्डुलिपियाँ नेवारी, मैथिली, बंगाली, शारदा, नन्दिनागरी, देवनागरी, ग्रन्थ, तेलुगु आदि लिपियों में लिखी हुई मिलती है। लिपियों के इतिहास की दृष्टि से सोचा जाय तो शारदालिपि ही प्राचीनतम है। अतः उस शारदालिपि में लिखी हुई पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ ही प्राचीनतम हो सकता है। मतलब कि काश्मीरी वाचना का पाठ, जो कि शारदालिपि में लिखी हुई चार पाण्डुलिपियों में सुरक्षित रहा है, उसी को प्राचीनतम वाचना माननी चाहिए। क्योंकि ई.सं. 850 में लिखा हुआ राजा मेरुवर्मा का शिलालेख शारदालिपि में उत्कीर्ण किया गया है। अतः शारदीलिपि का प्रचलन 6 या 7वीं शती में भी होगा, तो आज उपलब्ध हो रही शारदा पाण्डुलिपियों में जो पाठ परम्परागत रीति से संचरित होकर हम तक पहुँचा है, उसको हमें 7वीं शती का तो मानना ही चाहिए। यद्यपि केवल लिपियों के पुरातत्त्वीय प्रमाण से ही किसी एक वाचना की प्राचीनतमता घोषित करना पर्याप्त नहीं है। इसलिए इस नाटक की जो चार शारदा पाण्डुलिपियाँ मिल रही है, उनमें से कुछ पाठान्तरों की ओर विद्वज्जगत् का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। जिनसे इस वाचना की प्राचीनतमता का दृढीकरण हो सकता है। तद्यथा,

(क) कश्मीरी वाचना में, तृतीयांक के आरम्भ में रंगसूचना है कि ''**ततः प्रविशति कामयानावस्थो राजा।**'' किन्तु मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में इसी सन्दर्भ में ''**ततः प्रविशति मदनावस्थो राजा।**'' देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में यहाँ ''**ततः प्रविशति मदनावस्थो राजा।**'' देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में यहाँ ''**ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा।**'' इन पाठन्तरों में से कौन सा पाठान्तर सब से प्राचीन होगा? आचार्य वामन के काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में ''**कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्।( 5-2-82 )**'' इस सूत्र से लिखा है कि कामयान शब्द (व्याकरण से सिद्ध करना मुश्किल है, तथापि) यदि वह अनादि काल से चला आ रहा है तो उसे सिद्ध शब्द ही मानना होगा। काशी के मूर्धन्य आलंकारिक पं. श्री रेवाप्रसाद द्विवेदीजी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि स्वयं कालिदास ने रघुवंश (19-50) में भी इस शब्द का प्रयोग किया है। अतः मैथिली, बंगाली या देवनागरी वाचनाओं में जो पाठान्तर मिलते हैं वे सभी परवर्ती काल के सिद्ध होते है। केवल कश्मीरी वाचना में सुरक्षित रहा ''**कामयान**'' शब्द ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। इस तरह से काश्मीरी वाचना में ''**कथमप्युत्रमितं, न चुम्बितं तु।( 3-32 )** श्लोक आता है। इसका मैथिली एवं बंगाली वाचना में जो पाठ है वह ''**कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तत्।( 3-37 एवं 3-38 )**'' ऐसा है। इस तरह के दो पाठभेदों में से कौन पाठ प्राचीनतम होगा? यह प्रश्न है। तो आनन्दवर्धन ने निपातों की व्यंजकता के बारे में चर्चा करते हुए इस श्लोक का उद्धरण दिया है, जिसमें काश्मीरी वाचना के अनुसार ही ''**कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु।**'' पाठ रखा गया है। आनन्दवर्धन का सर्वमान्य समय 840-890 ई. स. अनुमाना गया है। इस दूसरे बहिरंग प्रमाण से भी सिद्ध होता है कि काश्मीरी वाचना में संचरित हुआ पाठ ही प्राचीनतम है।।

(ख) तृतीयांक में, दुष्यन्त मध्याह्न की वेला में प्रिया शकुन्तला को ढूँढता हुआ मालिनी नदी के तट पर पहुँचता है। लतावलय में सखियों के साथ शकुन्तला को देखकर उसके मुख में से वाक्य निकलता है: "अये लब्धं मया नेत्रनिर्वाणम्।" यह पाठ सभी वाचनाओं में एकसमान है। केवल काश्मीरी वाचना में "अये लब्धं मया नेत्रनिर्वापणम् ।" ऐसा पाठ भेद मिल रहा है। पाण्डुलिपियों के प्रतिलेखन की सुदीर्घ परम्परा में, किसी भी लिपिकार के द्वारा "निर्वापण' या "निर्वाण" लिखने



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में अनवधान से या दृष्टिभ्रम से एक के स्थान में दूसरा शब्द स्थानापन्न हो सकता है। (इसी को अनुलेखनीय सम्भावनायुक्त पाठभेद कहा जाता है।) अतः इन दोनों में से कौन सा पाठभेद मूल में होगा यह निश्चित करना कठिन है। किन्तु इसी अङ्क के आरम्भ में, कण्वाश्रम का शिष्य प्रियंवदा को आकाशोक्ति से पूछता है कि अरे, तुम किसके लिए यह उशीरानुलेप और नलिनीपत्र ले जा रही हो? तब प्रियंवदा उसका प्रत्युत्तर देती है कि ''आतपलङ्घनाद् बलवदस्वस्था शकुन्तला, तस्याः शरीरनिर्वापणायेति।'' यहाँ पर सभी वाचनाओं में एकसमान ''शरीरनिर्वापणायेति'' ऐसा ही पाठ है, इसमें अन्य कोई पाठान्तर नहीं है। एवमेव, आगे चलकर दुष्यन्त की उक्ति है कि ''स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव जातः।'' उसमें भी ''निर्वापयिता'' शब्द ही है। इस तरह से इसी कृति के आन्तरिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि काश्मीरी वाचना में मौलिक पाठ बहुशः सुरक्षित रहा है। अतः इस वाचना को ही प्राचीनतम होने का गौरव प्राप्त हो रहा है।।

(ग) शकुन्तला प्रियंवदा से कहती है कि **''हला, अलं वः अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरुद्धेन।''** यह वाक्य काश्मीरी वाचना को छोड़कर अन्य सभी वाचनाओं में एकसमान है। काश्मीरी वाचना में इस वाक्य का स्वरूप ऐसा है : **''हला, अलं वः अन्तःपुरविहारपर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरोधेन।''** यहाँ पर भी किसी भी लिपिकार के द्वारा पाण्डुलिपियों के प्रतिलेखन के दौरान विरह के स्थान पर विहार हो सकता है, अथवा विहार के स्थान में विरह हो सकता है। अतः मूल में कौन सा पाठ कवि ने अपने हाथों से लिखा होगा? उसका निर्णय करना मुश्किल है, एवं विवादास्पद भी है। तथापि प्रकृत में पूर्वापर सन्दर्भ में कहे गये वाक्यों को बारिकी से देखा जाय तो अनसूया की उक्ति महत्त्वपूर्ण है। उसने कहा है कि **''वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नः सखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निर्वाहय।''** इसमें राजाओं को बहुसंख्यक वल्लभाओंवाला कहा गया है, इसको यदि 'ध्यान में लिया जाय तो ''बहु'' शब्द का ''विहार'' शब्द के साथ ही सामञ्जस्य ठीक बैठता है। मतलब कि काश्मीरी वाचना के पाठ में ही आन्तरिक सम्भावनापूर्ण पाठ संचरित होकर हम तक सुरक्षित स्वरूप में पहुँचा है। अतः काश्मीरी वाचना के पाठ को प्राचीनतम मानना प्रमाणसिद्ध है।।

(घ) चतुर्थांक में, शकुन्तला पिता कण्व से पूछती है : **कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये। ( इति रोदिति )।** यह काश्मीरी वाचना का पाठ है। लेकिन मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में एक नया ही उपमान रखा गया है। जैसे कि, कथमिदानीं तातस्य अङ्क़ात् परिभ्रष्टा मलयपर्वतादुन्मूलिता इव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।। इन दोनों पाठान्तरों की उच्चतर समीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि कण्वाश्रम हिमालय की गोद में अवस्थित था। अतः वहाँ शकुन्तला के सामने करिसार्थ का होना ही भौगोलिक सत्य है। उस स्थान में चन्दनलता का होना सम्भव ही नहीं है। इस तरह सोचा जायेगा तो काश्मीरी वाचना का पाठ प्राचीनतम एवं मौलिकता के नजदीक सिद्ध होता है।।

(ङ) षष्ठांक में, राजा दुष्यन्त अपनी परिचारिका मेधाविनी के द्वारा शकुन्तला का चित्र मंगवाता है। उस चित्र को देखकर विरही राजा अपने मन के भावों को व्यक्त कर रहे थे। तब सूचना मिलती है कि मेधाविनी के हाथ में से वर्तिकाकरण्डक छीन कर, रानी वसुमती स्वयं आ रही है। अतः राजा उस चित्र को सुरक्षित करने के लिए विदूषक से विनती करते हैं। विदूषक चित्रफलक को उठा कर भागता है, लेकिन (1) मैथिली पाठ के अनुसार, ऐसा कह कर जाता है कि राजा जब ''अन्तःपुर के कूटपाश'' से मुक्त हो सके तब मुझे मेघछन्दप्रासाद से बुला लेना। (2) बंगाली पाठ के अनुसार, राजा जब ''अन्तःपुर की वागुरा से'' मोक्ष प्राप्त करे तब मुझे मेघछन्नप्रासाद से बुला लेना। (3) और देवनागरी पाठ के अनुसार राजा जब ''अन्तःपुर के कालकूट से'' मोक्ष प्राप्त करे, तब मेघप्रतिछन्नप्रासाद से मुझे बुला लेना। (4) दाक्षिणात्य वाचना के अनुसार, राजा जब ''अन्तःपुर के कलह से'' मुक्त हो जाय, तब मुझे मेघप्रतिछन्दप्रासाद से बुला लेना। रानी के आगमन से सम्बद्ध



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विदूषक की ऐसी टीका सभी वाचनाओं में है, केवल काश्मीरी वाचना में नहीं है। काश्मीरी वाचना के पाठ में रानी का नाम कुलप्रभा है, और वह राजा का शकुन्तला-विषयक प्रेमप्रसंग जान कर किसी भी तरह से ईर्ष्या-कषायिता नहीं होती है। राजा को अधिक प्रिय बनने की स्पर्धा में भी वह मेधाविनी के हाथ में से वर्तिका-करण्डक छींन कर स्वयं अपने हाथ से राजा को पहुँचाने का मनोरथ भी नहीं करती है। काश्मीरी वाचना में जो स्पर्धा का चित्र मिलता है वह तो राजा की परिचारिका मेधाविनी और रानी की दासी पिङ्गलिका के बीच चलता है।। यहाँ विचार करने पर एक गम्भीर बात प्रकट होती है। कालिदास ने जब इस अपूर्व और नवीन कहे गये नाटक में पूर्वपरिणीताओं की ओर से उपस्थित होने वाले अन्तराय (या संघर्ष) को प्रदर्शित करने का मार्ग छोड़कर, दुर्वासा के शाप को अन्तराय के रूप में उद्भावित किया है, तब परोक्षरूप में भी पूर्वपरिणीता रानी कुलप्रभा या वसुमती की ओर से किसी तरह के ईर्ष्याभाव को, स्पर्धा को प्रदर्शित करना अनुचित ही है। अतः काश्मीरी वाचना का पाठ मौलिकता के नजदीक है ऐसा सिद्ध होता है, और जो पाठ मौलिकता के नजदीक है वही पाठ प्राचीनतम कहना होगा।।

निष्कर्षतः कहा जाय तो बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। अर्थात् इस नाटक के पाठविचलन का क्रम निर्धारित करते समय यह बात ध्यान में रखनी है कि मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं की अपेक्षा काश्मीरी वाचना का पाठ पुरोवर्ती है। तथा अन्य दो वाचनाओं का पाठ पश्चाद्वर्ती है।।

### 3 द्वितीय क्रम पर मैथिली, एवं तीसरे क्रम पर बंगाली वाचना का समुद्भव

काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम होने के कारण "अभिज्ञानशकुन्तला" नाटक प्रथम क्रम में आता है। अब प्रश्न होगा को बृहत्पाठ की अन्य दो, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में कौन सा पौर्वापर्य होगा? यद्यपि यह प्रश्न सुलझाना बहुत कठिन है। क्योंकि इन दोनों वाचनाओं में इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तलम्" है। तथा विद्वानों के द्वारा ऐसा कहा गया है कि मैथिली वाचना का स्वतन्त्र अस्तित्व मानना उचित नहीं है। प्रो. वी. राघवन् ने कहा है कि मैथिली वाचना का पाठ कदाचित् बंगाली की ओर झुकता है, एवं कदाचित् काश्मीरी पाठ की ओर झुकता है।[4] यही बात डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने भी कही है। इस तरह के निरीक्षण में सच्चाई अवश्य हैं किन्तु मैथिली वाचना का इस तरह का उभयत्र साम्य कुछ राज की बात कह रहा है। जैसे कि (1) मैथिली वाचना के पाठ का जहाँ जहाँ बंगाली वाचना के साथ वैषम्य है और काश्मीरी पाठ के साथ साम्य है, वहाँ उस मैथिली पाठ को पाठविचलन के द्वितीय क्रमांक पर रखना होगा। एवमेव, (2) जहाँ मैथिली पाठभेदों का काश्मीरी पाठ के साथ वैषम्य है, एवं बंगाली पाठभेदों के साथ साम्य है वहाँ ऐसा अनुमान करना होगा कि जो पाठभेद एवं प्रक्षेप (पहले काश्मीरी वाचना में नहीं थे,) वे सब पहले मैथिली में दाखिल हुए होंगे। तथा वे सब पाठभेदादि उत्तरवर्ती काल में (यानि तृतीय स्तर पर) बंगाली वाचना में प्रविष्ट हुए होंगे। ऐसे मैथिली वाचना के पाठ को काश्मीरी से पश्चाद्वर्ती काल का, और बंगाली वाचना से पुरोगामी काल का मानने से, मैथिली के उस उभयत्र दिख रहे साम्य-वैषम्य को हम सटीक समझा सकते हैं।। इस सन्दर्भ में निर्देश रूप कुछ उदाहरण देखना जरूरी है:-

(क) तीसरे अङ्क में दुष्यन्त-शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह होता है। इसमें शृङ्गारिक दृश्यावली होने के कारण

---

4. Its editor claims that this text represents a Maithili recension of the play but such a fifth recession is not justified by facts. This text belongs to the Bangali-Kashmiri family, sometimes leaning towards the Bengali and some times towards the Kashmiri.- V. Raghavan, Introduction, p.3, The Abhijnanasakuntala, Ed. S.K. Belvalkar, Sahitya Akademy, Delhi, 1965.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रंगकर्मियों के द्वारा अनेक श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है। काश्मीरी वाचना में इस अङ्क में 35 श्लोक हैं। मैथिली वाचना के पाठ में 40 श्लोक है, तथा बंगाली वाचना में 41 श्लोक है। यहाँ श्लोकों की संख्या में जो क्रमिक वृद्धि दिखाई दे रही है, उसमें भी इन तीन वाचनाओं की क्रमिक पाठयात्रा स्पष्ट हो रही है। जैसे कि, काश्मीरी वाचना में **''तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वम''** (3-4) श्लोक के पीछे, पाँचवे श्लोक के रूप में ''शक्योऽरविन्दसुरभिः'' आता है। किन्तु इसी सन्दर्भ में, मैथिली वाचना की श्लोकशृङ्खला देखते है तो वहाँ पर तीन श्लोकों का प्रक्षेप मिलता हैः-

1 ''अनिशमपि मकरकेतु''.

2 ''वृथैव संकल्पशतैर'' तथा

3 ''संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोषाः।।

बंगाली वाचना ने इन्हीं तीन श्लोकों को स्वीकार लिया है। एवमेव आगे चलकर एक चौथे श्लोक का नया प्रक्षेप भी किया है। यह चौथा श्लोक मैथिली वाचना में नहीं था। **''स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं''** एवं **''क्षाम-क्षाम-कपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं''** इन दोनों के बीच में बंगाली पाठशोधकों ने एक नया श्लोक दाखिल किया, तथा उस श्लोक के पूर्व में प्रियंवदा और अनसूया की दो नवीन उक्तिओं को भी प्रक्षिप्त किया है। इन नये प्रक्षिप्तांश का पाठ इस तरह का हैः-

''प्रियंवदा – (जनान्तिकम्) अणुसूये, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरम्भिअ पन्जुस्सुअमणा सउन्तला। ण क्खु से अण्णणिमित्तो आदङ्को भवे।।

अनसूया- ममावि एरिसी आसङ्का। भोदु। पुच्छिस्सं। सहि, पुच्छिदव्वा सि किं पि। बलीओ क्खु अङ्गसंतावो।।

रजा – वक्तव्यमेव,

शशिकरविशदान्यस्यास्तथा हि दुःसहनिदाघशंसीनि।

भिन्नानि श्यामिकया मृणालनिर्माणवलयानि।। (3-12)

इस पूरे सन्दर्भ में हम देख सकते हैं कि मैथिली वाचना के द्वारा प्रक्षिप्त किये तीन श्लोकों का बंगाली पाठशोधकों ने पहले अनुगमन किया है। तदनन्तर उसी दिशा में आगे बढते हुए, एक नवीन चौथे श्लोक का प्रक्षेप भी अपनी ओर से कर दिया है। अतः इस नाटक के पाठविचलन की आनुक्रमिकता में काश्मीरी वाचना के तुरंत पीछे, यानि दूसरे क्रम में, मैथिली वाचना खडी है। तथा मैथिली के पीछे, यानि तीसरे क्रम में, बंगाली वाचना का पाठ आता है। कवि के द्वारा प्रणीत जो पाठ था वह इस तरह से बृहत् से बृहत्तर और बृहत्तम बनता चला है। (रिचार्ड पिशेल द्वारा सम्पादित अभिज्ञानशकुन्तल की समीक्षितावृत्ति में 211 श्लोक मान्य किये गये हैं। किन्तु बंगाली पाठ के टीकाकार चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने 225 श्लोकों पर टीका लिखी है।[5] सारांशतः बंगाली वाचना में ही इस नाटक का कलेवर सब से बड़ा है!)।।

(ख) काश्मीरी पाठ के द्वितीयाङ्क का एक स्थान परीक्षणीय है। विदूषक के कहने से राजा ने मृगया-कर्म से विरत होने का सोच लिया और अपने सेनापति को बुलाया। दुष्यन्त सूचना देना चाहता है कि मृगया के लिए एकत्र किये जंगल

---

5 द्रष्टव्य : अभिज्ञानशकुन्तलम् (चन्द्रशेखरचक्रवर्तिकृतया सन्दर्भदीपिकया समेतम्) सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रकाशकः- राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन- दिल्ली, 2013



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के प्राणियों को मुक्त किया जाय। दौवारिक जा कर सेनापति को ले आता है। रंगमंच पर आकर सेनापति ने राजा के शरीर को देखा। मृगया के कारण राजाजी को जो शारीरिक लाभ हुआ था उसका गुण-वर्णन वह शुरू करता है। जैसे कि, **''अनवरतधनुर्ज्यास्फालन-क्रूरपूर्वम''**। काश्मीरी वाचना में यहाँ पर दौवारिक की एक उक्ति है : अय्य, एसो क्खु अणुवअणदिण्णकण्णो इदो दिण्णदिठ्ठि येव भट्टा तुमं पडिवालेदि। ता उवसप्पदु अय्यो। (आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टिरेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति। तस्माद् उपसर्पत्वार्यः) पूर्वापर सन्दर्भ में इस उक्ति को देखेंगे तो मालूम होगा कि राजाजी ने सामने से आ रहे सेनापति के शब्द ध्यान से सुने थे, और वे उसकी प्रतीक्षा भी कर रहे थे। मतलब कि यहाँ राजा के लिए प्रयुक्त **''अनुवचनदत्तकर्ण''** एवं **''इतोदत्तदृष्टिः''** ये दोनों विशेषण राजा के आङ्गिक अभिनय से समझ में आयेगा कि ये दोनों शब्द सर्वथा उपयोगी है।।

इसी उक्ति का मैथिली वाचना में जो स्वरूप है वह निम्नोक्त हैः- एदु एदु अज्जो। एसो अणुवअण-दिण्णकण्णो भट्टा तुमं जेव्व पडिवालेदि, ता उअसप्पदु अज्जो। यहाँ मैथिली पाठ में **''इतो दत्तदृष्टिः''** इतने शब्द नहीं है। अर्थात् नाट्यप्रयोग के दौरान राजा के आङ्गिक अभिनय से स्पष्ट होगा कि राजाजी केवल सेनापति के शब्दों को सुन रहे थे, किन्तु उनकी दृष्टि सेनापति के आने की दिशा में नहीं घुमाई गई थी।।

बंगाली वाचना में इस सन्दर्भ की उक्तियाँ परीक्षणीय है। जिसमें सब से पहले यह ज्ञातव्य है कि राजा की आज्ञा से दौवारिक जब सेनापति को लेकर रंगमंच पर आता है,तो वहाँ किसी रंगकर्मी ने समय की बचत करने के लिए ''निष्क्रम्य-प्रविश्य'' की युक्ति का विनियोग किया है, और सेनापति की उक्ति को स्थानान्तरित करके पीछे ले लिया है। अब बंगाली वाचना का पाठ्यांश प्रथम द्रष्टव्य है :-

**राजा –** रैवतक, सेनापतिस्तावद् आहूयताम्।

**दौवारिकः –** तथा – (इति निष्क्रम्य पुनः सेनापतिना सह प्रविश्य) एदु एदु अज्जो। एस आलावदिण्णकण्णो भट्टा इदो जेव चिठ्ठदि। उवसप्पदु णं अज्जो। (तथा। एतु एतु आर्यः। एष आलापदत्तकर्णो भर्ता इत एव तिष्ठति। उपसर्पतु एनमार्यः।)

**सेनापतिः –** (राजानमवलोक्य स्वगतम्) कथं दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि केवलं गुणायैव संवृत्ता। तथा हि देवः,

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरकर्मा रविकिरणसहिष्णुः स्वेदलेशैरभिन्नः।

अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं, गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति।। (2-4)

इसमें सेनापति के मुख में रखा गया जो श्लोक है, वह अन्य सभी वाचनाओं में, दौवारिक उसको बुला कर साथ में ला रहा है तब सेनापति के मुख में है। वह आते समय रास्ते में ही इस श्लोक के द्वारा राजा का शरीर, जो मृगया के व्यायाम से कसा गया है, उसका निरूपण करता है। इस श्लोक का उच्चारण (या गान) पूरा हो जाने पर ही दौवारिक उसको कहता है कि राजा आपके कथन को सुन रहे है, अतः आप उसके निकट जा सकते हो। लेकिन बंगाली पाठ में इस श्लोक को पीछे कर देने से दौवारिक जब कहता है कि राजा, जो आलापदत्तकर्ण है, वह यहीं खड़े है और अब आप उसके निकट जा सकते है, तो वह वाक्य विसंगत लगता है। क्योंकि इस बंगाली पाठ में तो अभी तक सेनापति ने रास्ते में आते समय यह श्लोक बोला (या गाया) ही नहीं है। तो फिर दौवारिक कैसे कह सकेगा कि राजा आपके आलाप की ओर ध्यान देकर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुन रहे है? बंगाली पाठ की इस तरह की नवीन पाठयोजना असम्बद्ध है उसमें कोई शक नहीं है।।[6]

काश्मीरी और मैथिली पाठों में इस तरह की विसंगति नहीं है। तथा देवनागरी वाचना ने यद्यपि बंगाली वाचना की नवीन पाठयोजना का अनुसरण किया है, किन्तु उपर्युक्त विसंगति से बचने के लिए दौवारिक की पूर्वोक्त उक्ति में "**आलापदत्तकर्ण**" शब्द के स्थान में, (एसो आण्णावअणक्कंठो भट्टाइदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि। उवसप्पदु अज्जो। (एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टितिरेव तिष्ठति। उपसर्पतु आर्याः)"आज्ञावचनोत्कण्ठ" शब्द से नया ही (चौथा) पाठान्तर अवतरित किया है।।

उपर्युक्त चर्चा में पाठविचलन की यात्रा भी स्पष्टतया उद्भासित हो रही है। जैसे कि, उपलब्ध प्राचीनतम काश्मीरी वाचना के शारदा पाठ में पहले "**अनुवचनदत्तकर्णः, इत्तो दत्तदृष्टि**" ऐसे दो शब्द थे। द्वितीय क्रम में मैथिली वाचना ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण जरूर किया, लेकिन एक शब्द "**इतो दत्तदृष्टि**" को कम कर दिया। तथा सेनापति के श्लोक को, राजा के सामने लाने से पहले, प्रस्तुत करनेवाली मूलयोजना नहीं बदली। तीसरे क्रम में, बंगाली पाठ में पाठान्तर को जन्म दिया। लेकिन उसमें पूर्वोक्त प्रकार की विसंगति आने के कारण देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में एक चौथे पाठान्तर ने जन्म लिया, जिसमें "**आज्ञावचनोत्कण्ठः**" शब्द आ गया। यद्यपि इस चौथे पाठान्तर के कारण भी एक नयी विसंगति पैदा हो रही है। जैसे कि, दौवारिक ने जब राजा की मानसिकता को "**आज्ञावचनोत्कण्ठः**" से शब्दबद्ध किया है तब सेनापति के मुख में मृगया की प्रशंसा करनेवाला श्लोक असामयिक बन जाता है। यदि उसने सुना है कि राजा कुछ आज्ञा देने के लिए उत्कण्ठित है तो सेनापति को तुरंत ही "**जयतु जयतु स्वामी, गृहीताश्वपदमरण्यम**" इत्यादि बोलते हुए सीधे राजा के सामने प्रस्तुत होना ही उचित लगता है।।

(ग) काश्मीरी पाठ में राजा के परिजन-वर्ग में लिपिकरी मेधाविनी नामक दासी है। और देवी कुलप्रभा के परिजन-वर्ग में एक दासी पिङ्गलिका है। काश्मीरी पाठ में, इन दोंनों दासियों के बीच में टकराव होता है। इसमें कुलप्रभा ईष्याकषायित हो कर कुछ सक्रियता नहीं दिखाती है। मैथिली पाठ में, मेधाविनी एवं पिङ्गलिका की उपस्थिति तो यथावत् रूप में मिलती है। किन्तु जो पहला परिवर्तन आया है वह ऐसा है कि पिङ्गलिका को साथ लेकर आ रही रानी वसुमती स्वयं ईर्ष्याग्रस्त होकर मेधाविनी के हाथों में से वर्तिका-करण्डक छीन लेती है। राजा को अधिक प्रिय होने की स्पर्धा में वह अपने आप राजा के पास जाकर वर्तिका देना चाहती है।। तीसरी ओर, बंगाली पाठ में देखा जाय तो, राजा के परिजन-वर्ग में अब मेधाविनी के स्थान पर "**चतुरिका**" आ जाती है। जो राजा के लिए चित्रफलक ले आती है, और बाद में वर्तिका करण्डक को लेने भी जाती है। तथा रानी वसुमती की दासी के रूप में पिङ्गलिका यथावत् रूप में विद्यमान है। किन्तु बंगाली पाठ में जो एक असाधारण विसंगति प्रकट रूप में अद्यावधि विद्यमान दिख रही है वह यह है कि मेधाविनी को बदल कर चतुरिका का बंगाली पाठ में नया प्रवेश करवाने के बावजूद, पाठशोधक लोग एक स्थान पर पुरानी मेधाविनी को बदलना भूल गये है। जैसे कि,

**विदूषकः-** (कर्णं दत्वा) भो अहिधावन्ती एसा अन्तेउरवग्घी मेधाविणि मइं विअ कवलिदुं उवत्थिदा।[7] यदि बंगाली

---

6 इस तरह की असम्बद्धता डॉ. रिचार्ड (पृ. 19) एवं डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल (पृ. 223 द्वारा सम्पादीत बंगाली वाचना के समीक्षित पाठों में समान रूप से दृष्टिगोचर हो रही है।

7 द्रष्टव्य रिचार्ड पिशेल, द्वितीय संस्करण, 1922, पृ 86 तथा डा0 दिलीपकुमार कांजीलाल, 1980, पृ 324)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाठ में मेधाविनी के स्थान पर "चतुरिका" नया नाम प्रस्तुत करना ही था, तो उसको षष्ठांक में सर्वत्र क्यों नही बदला? लेकिन यह असावधानी हमारे लिए बड़ी काम की सामग्री बन गई है। यह विसंगति इस बात की गवाही दे रही है कि मैथिली पाठ का अनुगमन करनेवाला (आज का) बंगाली पाठ तृतीय क्रमांक पर ही तैयार किया गया है। देवनागरी पाठ में, बंगाली पाठ की उपर्युक्त विसंगति सम्पूर्णतया हटाई गई है। उसमें सर्वत्र "चतुरिका" ही मिलती है। तथा देवनागरी पाठ में, पिङ्गलिका को बदल करके "तरलिका" नाम की दासी दाखित की गई है। अतः वह चतुर्थ क्रमांक पर तैयार किया गया पाठ सिद्ध होता है।।

(घ) चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में दुर्वासा का शाप-प्रसंग निरूपित है। देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठ में शापमोचन का उपाय मांगने के लिए प्रियंवदा जाती है, और उस शापवृत्तान्त को गुप्त रखने का प्रस्ताव अनसूया करती है। किन्तु तीन अंकों के कार्यकलाप के दौरान इन दोनों सहेलियों के व्यक्तित्व का जो परिचय दर्शकों या पाठकों को मिला है उसको देखते हुए तो यह प्रतीतिकर नहीं है। अतः अन्य वाचनाओं में क्या स्थिति है उसका तुलनात्मक अभ्यास करना जरूरी है। काश्मीरी वाचना में शापमोचन की याचना के लिए अनसूया जाती है, और शापगुप्ति का प्रस्ताव प्रियंवदा ने किया है। इस तरह का वक्त्री क्रम समुचित लगता है। जब मैथिली वाचना को देखते हैं। तो उसमें शापमोचन की याचना करने के लिए जाती तो अनसूया ही। लेकिन शाप वृत्तान्त को शकुन्तला से छिपा कर रखने का प्रस्ताव भी अनसूया ही करती है। यह कैसे हो गया। प्रियंवदा ने जब कहा कि राजा के द्वारा दी गई अंगूठी शकुन्तला के पास है, इस लिए वह स्वाधीनोपाय हैं। तब अनसूया ने कहा कि चलो, देवकार्य का निर्वर्तन कर लें। (उसके बाद मैथिली वाचना के पाठ में रंगसूचना हैः इति परिक्रामतः) यह उक्ति पहले काश्मीरी वाचना में नहीं थी। किन्तु अज्ञात रंगकर्मी ने वह नयी दाखिल की। क्योंकि पुष्पचयन करने के स्थान से चल कर शकुन्तला की कुटीर पर पहुँचने के लिए रंगमंच पर परिक्रमण दिखाना आवश्यक था। और उस समय अनसूया के मुख में कुछ वाक्य होना चाहिए ऐसा सोच कर एक नये वाक्य का प्रक्षेप किया गया। अब, यानि अनसूया की उक्ति के बाद जो दूसरी उक्ति होगी वह प्रियंवदा को बोलनी होगी। बस ऐसा होने के कारण उपर्युक्त नये वाक्य के प्रक्षेप के कारण, अनुगामी संवादों की वक्त्रियां उलटापुलटा हो गई। वक्तृविशेष का क्रम बदल जाने के कारण जो कार्य जिस व्यक्तित्व के साथ सुसंगत लगता था वह पश्चाद्वर्ती समय में विकृत हो जाता है। मैथिली वाचना का अनुसरण करते हुए बंगाली वाचना में भी उपर्युक्त दोनों बातें अनसूया के ही मुख में रखी गई है। जब इसी संदर्भ में देवनागरी पाठ का अवलोकन किया जाता है तो एक और नया परिवर्तन मिल रहा है। वहाँ पर शापमोचन की याचना के लिए प्रियंवदा जाती है, और शाप वृत्तान्त को संगोपित रखने का प्रस्ताव अनुसूया ने किया है। इस नाटक की पाँचों वाचनाओं में मिल रहे विविध पाठान्तरों को इस तरह से तुलनात्मक अभ्यास करने से, काश्मीरी से शुरू हुई पाठयात्रा प्रथम मैथिली वाचना में संक्रान्त होकर, द्वितीय क्रम पर बंगाली वाचना में प्रवेश करती है। वहाँ से आगे बढती हुई पाठयात्रा चतुर्थक्रम में देवनागरी वचना में जाती है, और अन्त में दाक्षिणात्य वाचना में पहुँचती है। किन्तु प्रत्येक स्तर पर उसमें काव्यतत्त्वीय पक्ष को कम से कम हानि पहुँचाई गई है, परन्तु रंगमंचीय परिवर्तन ही प्रायः होते रहे हैं।।

**4. काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले कुछ प्रक्षेपादि**– जैसा कि पहले कहा गया है इस नाटक का काश्मीरी वाचना में सुरक्षित रहा पाठ ही प्राचीनतम पाठ है, और यह वाचना ई.स.700 के आसपास में ग्रथित हुई होगी । कवि कालिदास के समय से लेकर, अर्थात् प्रथम शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक के अन्तराल में इस पाठ में कौन से परिवर्तन, प्रक्षेपादि हुए होंगे वह भी विचारणीय है । क्योंकि काश्मीरी वाचना प्राचीनतम सिद्ध होती है इसलिए उसमें ही सर्वथा मौलिक पाठ



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संगृहीत हुआ है, या सुरक्षित रहा है ऐसा मान लेने की जल्दबाजी हम नहीं कर सकते । कालिदास और शारदा पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठ के बीच में जो 700 वर्षों का सुदीर्घ कालखण्ड पड़ा है, वह हमारे लिए अन्धकारग्रस्त है। शारदालिपि में लिखी गई भूर्जपत्रवाली (क्रमांकः 192) पाण्डुलिपि की भाग्यवशात् प्राप्ति हो जाने से उस अन्धकार भरे समय में क्या क्या हुआ होगा, तथा उसके बाद क्या होता रहा है उसका कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है। क्यूंकि, अब ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी की दो शारदा पाण्डुलिपियाँ (क्रमांकः 159 एवं 12470), तथा श्रीनगर की शारदा पाण्डुलिपि (क्रमांकः1345) की भी प्राप्ति हो गई है। इसके लिए निदर्श के रूप में तृतीयांक का कुसुमशयना शकुन्तला वाला दृश्य बारीकी से देखने की जरूरत है।।

तृतीयांक के आरम्भ में कहा गया है कि कामज्वर से पीडित शकुन्तला बलवद्-अस्वस्थ अवस्था में है । प्रियवंदा उसके शरीरदाह के निर्वापण के लिए उशीर का लेप और नलिनीपत्रादि ले जा रही है। तब कण्वाश्रम का एक शिष्य भी प्रियंवदा से कहता है कि शकुन्तला तो कण्व मुनि का श्वसोच्छ्वास है, अतः उसको बहुत सम्भाल के रखना । दृश्य का प्रारम्भ होते ही, मालिनी नदी के तट पर लतावलय में एक शिलातल पर बिछाये कुसुमास्तरण में वह लेटी हुई है। दोनों सहेलियाँ उसको नलिनीदल से पंखा झल रही हैं । यहाँ कालिदास की मूलयोजना तो यही रही है कि दृश्य के आरम्भ में शकुन्तला पुष्पमयी शय्या पर लेटी हो और मदनलेख लिखते समय भी वह लेटी है। तथा मदनलेख के शब्दों को सुन कर राजा प्रकट हो जाय और उसको उसी शिलातल पर बिठाया जाय, जिस पर शकुन्तला लेटी हो, तब भी है वहीं पर लेटी रहे। जब दोनों सहेलियाँ रंगमंच से विदा लें और दुष्यन्त शकुन्तला से कहे कि तुम आवेग में मत आओ । तेरी सखियों की भूमिका में रहा मैं तेरा आराधयिता व्यक्ति बन कर तेरे पास में हूँ। **''अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।''** 3-20'' तब, वह अपनी मदनावस्था के अनुरूप धीरे से, कष्ट के साथ कुसुमास्तरण से उठ कर चलने का आरम्भ करे। (यहाँ शारदा पाण्डुलिपियों में रंगसूचना हैः अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता।) नायिका शकुन्तला कहाँ से लेकर, कहाँ तक कुसुमास्तरण पर लेटी रहे इसकी कविनिर्धारित योजना यही है। लेकिन वर्तमान में उपलब्ध हो रहे शारद-पाठ का गठन होने से पूर्व में , अतीत के रंगकर्मियों ने, नायिका की उस लेटी हुई अवस्था का तथा लतावलय में एकान्त की स्थिति का अनुचित फायदा उठा कर अश्लील श्लोकयुक्त कुछ पाठ्यांशों का प्रक्षेप किया है। ऐसे स्थान का प्रतीकात्मक निर्देश करें तो, **''अपराधमिमं ततः सहिष्ये रम्भोरु तवाङ्गरेचितार्धे। कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे सुजनत्वादनुमन्यसेऽवकाशम् ॥ 3-19''** ॥ ऐसा अश्लील पाठ्यांश बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में कुछ पाठभेद के साथ उपलब्ध होता है। इसी लिए अनुमान किया जाता है कि ऐसे पठ्यांश का प्रक्षेप काश्मीरी वाचना की शारदा पाण्डुलिपियों का गठन होने से पहले, सुदूर अतीत में, हुआ होगा ।

स्वयं कवि कालिदास ने नायिका को रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत किया वही पाठविचलन का प्रथम उद्गम बिन्दु बन गया है। यद्यपि हमारे लिए यह आशाजनक बात है कि इन्हीं चार शारदा पाण्डुलिपियों में कुछ अंश ऐसे भी मिलते हैं कि हम उन प्रक्षिप्तांशों को पहचान भी सके। उदाहरण के रूप में,-

(क) उपर्युक्त 3-19 श्लोक से पहले, (श्लोक 3-17 से भी पहले) अनसूया ने कहा है कि देखो देखो, मेघ-नाद से आहत मयूरी की तरह हमारी प्रियसखी के जीव में जीव आ गया ! उसके बाद रंगसूचना हैः **''शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति ।''** इस तरह, नायिका लेटी हुई अवस्था से पहले ही सलज्जा खडी की गई है, उसके पास उपर्युक्त शब्दों के द्वारा सहशयन की याचना कैसे की जाय ? तथा श्लोक 3-20 के नीचे जो रंगसूचना **''अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता''**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है, उसके साथ "**शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति।**" वाली रंगसूचना भी विसंगति पैदा करती है! अतः शारदालिपि में लिखी पाण्डुलिपियों में ही रंगसूचना –सम्बन्धी जो विसंगतियाँ हैं, वही इस बात की गवाही देती हैं कि शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था की मूलदृश्य –योजना बदलने की चेष्टा 700 ई.स.से पहले से हो चुकी थी ।

(ख) इस सन्दर्भ में दूसरा उदाहरण भी देखना रसप्रद होगा : प्रियंवदा के सुझाव पर शकुन्तला जब मदनलेख लिखने के लिए मानसिक रूप से तैयार होती है तब, कवि की मूल दृश्य-योजना के अनुसार वह लेटी हुई रह कर ही गीत के अक्षर सोचती है और लेटी हुई रह कर ही लिखती है। भूर्जपत्रवाली शारदा-प्रति में "आसीना चिन्तयति" या "उपविष्टा "चिन्तयति" जैसी एक भी रंगसूचना नहीं है। किन्तु परवर्ती काल में, ऑक्सफोर्ड की 159 क्रमांकवाली पाण्डुलिपि में केवल "चिन्तयति" ऐसी रंगसूचना प्रविष्ट होती है। तदनन्तर, ऑक्सफोर्ड की 1247 क्रमांकवाली तथा श्रीनगर की 1435 क्रमांकवाली पाण्डुलिपियों में "आसीना चिन्तयति" ऐसी रंगसूचना दाखिल की गई है। जैसा कि पहले कहा गया है, यहाँ पर हमें याद रखना है कि दुष्यन्त जब तक शकुन्तला के पादसंवाहन का प्रस्ताव न करे तब तक नायिका को लेटे ही रहना है। क्योंकि पादसंवाहन का प्रस्ताव होने के श्लोक 3-20 बाद जो "अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता" ऐसी रंगसूचना है, उसका इङ्गित यही है कि मदनलेख –प्रसंग में भी नायिका लेटी रहे।

रंगमंच पर शकुन्तला को लेटी हुई स्थिति में प्रस्तुत करने का कालिदास का विचार पश्चाद्वर्ती काल में रंगकर्मियों के लिए चुनौती रूप बना है, और कहना होगा कि प्रायः सभी काल के रंगकर्मी लोग उसमें निष्फल रहे हैं। इस बात का अन्दाजा शकुन्तला कब बिठाई जाय, कब खड़ी की जाय,एवं कब उसे चलाया जाय? इस विषय को लेकर रंगसूचना– सम्बन्धी जो विसंगति प्रायः सभी वाचनाओं में फैली हुई आज भी मिलती है, उससे देखा जा सकता हैः-

(क) भूर्जपत्रवाली प्राचीनतम शारदा पाण्डुलिपि में, राजा को जब शिलातल पर बिठाया जाता है तब, शकुन्तला मेघनादाहत मयूरी का उपमान देकर लज्जा के साथ खडी की जाती है। वही एक विसंगति है। किन्तु यह उपमान रमणीय होते हुए भी प्रक्षिप्त है ऐसा निश्चित हो सकता है।

(ख) ऑक्सफर्ड की 1247 क्रमवाली एवं श्रीनगर की 1435 क्रमवाली पाण्डुलिपियों में और तदनुसारिणी मैथिली वाचना में एक दूसरी विसंगति ने प्रवेश किया है। जैसे कि, इन दो शारदा पाण्डुलिपियों में लेटी हुई शकुन्तला खड़ी करने पहले, मदनलेख लिखवाते समय "आसीना चिन्तयति" जैसी रंगसूचना से बिठाई जाती है। तथा मदनलेख को सुन कर सहसा प्रकट हुए राजा को शिलातल पर बिठाया जाता है, तब "पादौ अपसारयति" नवीन रंगसूचना से, बैठी हुई शकुन्तला के दोनों पाँव थोड़े से सिकुडने को कहा जाता है। उक्त दो शारदा प्रतियों में बैठी हुई शकुन्तला के पाँव सिकुडने की सूचना है, किन्तु मैथिली पाठ में मदनलेख लिखवाते समय शकुन्तला "आसीना चिन्तयति" नहीं बताई गई, उसमें तो शकुन्तला को केवल "चिन्तयति" रंगसूचना से, लेटी रह कर ही चिन्तन करने को कहा है। परिणामतः मैथिली वाचना में "पादौ अपसारयति" रंगसूचना का फलितार्थ यही होगा कि जिस शिलातल पर शकुन्तला लेटी है उसी पर राजा को बिठाने के लिए, लेटी हुई स्थिति में ही वह अपने दोनों पाद को अपसारित करती है।

(ग) बंगाली वाचना में मैथिली वाचना जैसा ही पाठ संचरित हुआ है, किन्तु उसमें एक परिष्कार भी किया गया है। जैसे कि, इसमें "सलज्जा तिष्ठति" वाली रंगसूचना नहीं है। अर्थात् इस वाचना के अनुसार, जब से लेटी हुई शकुन्तला का दृश्य शुरू हुआ है वहाँ से लेकर राजा ने पाद –संवाहन का प्रस्ताव रखा तब तक वह सातत्यपूर्वक रंगमंच पर लेटी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही रहती है, जो कवि की मूलयोजना थी । किन्तु ऐसा पाठ बाद में परिष्कृत किया गया है उसका क्या प्रमाण ? ऐसा प्रश्न हमें कोई भी कर सकता है। इसके प्रत्युत्तर में कहेंगें कि, (भूर्जपत्रवाली पाण्डुलिपि में आये हुए ) मेघनादाहत मयूरी के उपमान का प्रयोग करते हुए शकुन्तला को सलज्जा खडी करने वाली जो उक्ति है, वह बंगाली वाचना में भी है। लेकिन उसके साथ में जुडी "सलज्जा तिष्ठति" वाली रंगसूचना ही केवल हटाई गई है। तथा उस उक्ति को स्थानान्तरित करके, जब राजा के द्वारा **"परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य नः"** वाले श्लोक से शकुन्तला कुलप्रतिष्ठा कही जाती है तब, रखी गई है। प्रियंवदा जनान्तिक उक्ति से कहती हैः "अणुसूये, पेक्ख पेक्ख मेहवादाहदं विआ गिम्हे मोरिं खणे खणे पच्चाअदजीविदं पिअसहिं।" लेकिन इसके बाद शकुन्तला के किसी भी तरह के अनुभावों का प्रदर्शन नहीं है। बल्कि वह सहेलियों को राजा की क्षमायाचना करने को कहने लगती है, जिसके अनुसन्धान में, काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले एक अश्लील अंश का प्रक्षेप स्वीकार लिया गया है ।

(घ) इस सन्दर्भ में, देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में कैसी विसंगति अनुसंचरित हुई है वह भी द्रष्टव्य हैः दृश्य के आरम्भ में शकुन्तला कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है। मदनलेख लिखते समय, देवनागरी पाठ में, वह "आसीना चिन्तयति" की रंगसूचना से बिठाई जाती है। तत्पश्चात् राजा को उसी शिलातल पर बिठाया जाता है तब वह सलज्जा खडी हो जाती है। किन्तु आगे चलकर दुष्यन्त जब एकान्त में, उसका पादसंवाहन करने की तत्परता दिखाता है तब (देवनागरी पाठ में) एक नवीन रंगसूचना के माध्यम से हमें कहा जाता है कि "इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति" । जिसको देख कर तुरंत प्रश्न होता है कि जो शकुन्तला पहले से सलज्जा खडी है, तो अब "खडी होकर जाने की इच्छा कर रही है" ऐसी रंगसूचना कैसे दी जा रही है? एवमेव, खडी हुई शकुन्तला से राजा ऐसा कहे कि मैं क्या तुम्हें शीतल नलिनदल से पवन झलूँ, या पद्म जैसे ताम्रवर्णवाले पाँव को मेरे अङ्क में लेकर क्या मैं संवाहन करूँ? तो इन शब्दों का सन्दर्भगत औचित्य बिलकुल नहीं रहता। अतः सिद्ध होता है कि कुसुमशयना शकुन्तला का दृश्य अपने मूल स्वरूप में से बहुत पुराने समय से विचलित हो गया है। तथा विसंगति काश्मीरी वाचना को विरासत में मिली है। कालिदास के समय से , यानि प्रथम शताब्दी से लेकर सप्तम शताब्दी के बीच में इस नाटक का जो रंगमंचीय इतिहास अन्धकारग्रस्त है, उसमें दृष्टिपात करानेवाली यह विसंगतियाँ हैं। देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं के सभी सम्पादनों और संस्करणों में आज भी वह मौजूद है!!

काश्मीरी वाचना को विरासत मे मिले कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों में चतुर्थाङ्क के आरम्भ में आये चार श्लोकों का भी परिगणन करना चाहिए । इन श्लोकों में कण्वाश्रम का एक शिष्य कितनी प्रभात –वेला हुई है उसका अन्दाजा लगाने के लिए रंगमंच पर आया है और प्रभात का वर्णन करता है। इन श्लोकों में 1) कर्कन्धूनाम् उपरि तुहिनम् 1, 2) पादन्यासं क्षितिधरगुरो 1, 3) यात्येकतोऽस्तशिखरं 1, एवं 4 ) अन्तर्हिते शशिनि सैव 0 का समावेश होता है। मैथिली वाचना में भी इन सब का (और इसी क्रम में ) संग्रह किया गया है। किन्तु बंगाली वाचना के पाठशोधकों ने तीसरे –चौथे क्रमांक के श्लोकों को पहला-दूसरा श्लोक बना दिया है, और पहल-दूसरे श्लोकों को तीसरे-चौथे क्रम में रखा है।। तथा देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं में जब संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति होती है तब,1) कर्कन्धूनाम् उपरि तुहिनम् 01 2) पादन्यासं क्षितिधरगुरो— ये श्लोक निरस्त किये गये हैं। हमने इन श्लोकों की मौलिकता सम्बन्धी चर्चा की है, जिसमें यह बताया गया है कि काश्मीरी वाचना के पहले दो श्लोकों को जो देवनागरी में से हटाये गये हैं वही मौलिक श्लोक हो सकते हैं।। किन्तु " अपि च" जैसे समुच्चयार्थक निपात का प्रयोग करके, इस नाटक के पाठ में अनेक स्थानों में प्रक्षेप करने की प्रवृत्ति बहुत पुराने समय से कार्यरत हुई थी । इस विमर्श से सिद्ध किया गया है कि उपर्युक्त चार श्लोकों में से तीसरा-चौथा श्लोक



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काश्मीरी वाचना में प्राचीन काल के प्रक्षेपों की विरासत के रूप में मिले होंगे।

**( 5 ) नाटक के पाठ्यांश में कटौती करने का मार्ग जतानेवाला प्रक्षेप**

कवि द्वारा ही मूल में नायिका की लेटी हुई अवस्था और लतामण्डप के एकान्त की जिन परिस्थितियों का निर्माण किया गया है वे शृङ्गार रस का परिपोषक उद्दीपन विभाव हैं। लकिन कमजोर रंगकर्मियों के हाथों में जब ऐसा पाठ्यांश अभिनीत करने के लिए जाता है तो शृङ्गार जैसे अतिमसृण रस को अश्लीलता में फिसल जाने की भारी सम्भावना रहती है। परिणामतः तीसरे अक में (1) अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्याः, काक्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वांगदाने01(3-22),एवं (2) यदा सुरतज्ञो भविष्यामि। जैसे अश्लील पाठ्यांश भी बहुत पहले से प्रविष्ट हो गये हैं। शारदा पाठपरम्परा को ऐसे प्रक्षिप्त पाठ्यांश विरासत में मिले थे, उसका संचरण (कुछ परिवर्तनों के साथ) मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठों में भी होता रहा है। जिसके कारण बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाएँ निन्दनीय एवं अग्राह्य बनी रही ।। किन्तु बात यहाँ तक सीमित भी नहीं रही। सुरुचि का भंग करनेवाले उपर्युक्त अश्लील पाठ्यांशें को हटाने के लिए, या फिर इस नाटक को अल्प कालावधि में प्रस्तुत करने के लिए, अथवा उभयविध कारणों से प्रेरित होकर जब भी इस नाटक के बृहत्पाठ में संक्षेप करने का सोचा गया होगा तब कौन सा वह स्थान था कि जो संक्षेपीकरण के लिए काम आया? क्योकि विरासत में मिले अश्लील पाठ्यांश शारदा पाण्डुलिपियों में अन्य दो वाचनाओं में भी प्रविष्ट हुए थे। उसको तो संक्षेपीकरण के दौरान सीधे उठा लेने से प्रणय –प्रसंग में कोई बाधा नहीं आती है। किन्तु बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में जो नैसर्गिक प्रेमसहचार की दृश्यावली थी उसमें कहीं पर भी विच्छेद करने की सम्भावना ही नहीं थी। इस लिए यह खोजना अतीव आवश्यक है कि इस नाटक के संक्षेपीकरण का मार्ग प्रशस्त करनेवाला स्थान कहाँ से मिला?शारदा पाण्डुलिपियों की उपलब्धि होने से, एवं उपर्युक्त चर्चा से प्रस्थापित की गई पाठविचलन की आनुक्रमिकता को ध्यान में लेने से यह बात प्रकाश में आ सकती है। जैसा कि पहले यह सयुक्तिक सिद्ध किया गया है कि प्राचनीतम काश्मीरी वाचना के बाद ही, द्वितीय क्रम में मैथिली वाचना का उद्भव हुआ है। तो अब जो श्लोक काश्मीरी वाचना में कहीं पर न हो, और प्रथम बार मैथिली वाचना में दाखिल किया गया हो उसको ढूँढना चाहिए । वैसा एक श्लोक है, जो अन्य सभी वाचनाओं में स्वीकृत हुआ हैः गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो हि मुनिकन्यकाः। श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः।। (मै.वा.3-27) । यह श्लोक सब से पहलीबार मैथिली वाचना के पाठशोधकों ने प्रक्षिप्त किया है ऐसा सिद्ध होता है पाठविचलन की पूर्वोक्त आनुक्रमिकता से जब हम देखते है कि यह श्लोक पहले काश्मीरी वाचना की एक भी शारदा-पाण्डुलिपि में मिलता नहीं है, और बाद में वह मैथिली वाचना में दृष्टिगोचर होता है तो हम कह सकते है कि यह मैथिली परम्परा का अवदान है। यहाँ (ऐसा नहीं है कि काश्मीरी वाचना के पाठ में लिपिकारों के प्रमाद से यह श्लोक निकल गया होगा,) उच्चतर समीक्षा से भी सिद्ध होता है कि यह श्लोक प्रक्षिप्त ही है। शकुन्तला दुष्यन्त को जब सावधान करती हैः-

**शकुन्तला-** (कृतकृतकोपा) पोरव रक्ख अविणअं । इदो तदो इसिओ संचरन्ति ।

**राजा-** सुन्दरि, अलं गुरुजनाद् भयेन । न ते विदितधर्मा तत्रभवान् कण्वः खेदमुपयास्यति ।

**गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो हि मुनिकन्यकाः।**
**श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः।। ( 3-27 )**

(दिशोऽवलोक्य ) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि।(ससम्भ्रमं शकुन्तलां हित्वा तेनैव पथा पुनर्निवर्तते)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**शकुन्तला-** (पदान्तरे प्रतिनिवृत्य) पोरव, अणिच्छापूरओ वि खणमेत्तपरिचिदो अअं जणो ण विसुमरिदव्वो ।।

**( मैथिली वाचना, पृ052 )**

उपरि भाग में दिये गये पाठ्यांश को देखने से मालूम होगा कि, शकुन्तला जब दुष्यन्त को सावधान करती है कि "यहाँ वहाँ ऋषिमुनि लोग घूम रहे होंगे", तब दुष्यन्त कहता है कि गुरुजनों से भय रखने की आवश्यकता नहीं है, कण्व भी तुझे प्रेमासक्त या विवाहित जान कर खेद का अनुभव नहीं करेंगे। अर्थात् तेरे पर नाराज नहीं होंगे। दुष्यन्त यहाँ विशेष में यह भी कहता है गान्धर्व-विवाह से विवाहित हुई बहुत सी मुनिकन्यायें (या राजर्षिओं की कन्यायें) है, जो (बाद में) पिताओं के द्वारा अनुमोदित (अभिनन्दित) भी की गई है। लेकिन शकुन्तला जब कह रही है कि आसपास में ऋषिमुनि घूम रहे होंगे, तब तो विनीत बर्ताव की ही अपेक्षा है। उससे विपरीत दुष्यन्त गुरुजनों से डरने की कोई जरूरत नहीं है ऐसा समझाने का उपक्रम शुरू करे वह दुष्यन्त के धीरोदात्त चरित के अनुरूप नहीं है। अतः दुष्यन्त के मुख में रखा गया प्रथम वाक्य एवं "गान्धर्वेण विवाहेन0" श्लोक बीच में से हटाया जाय तो, जो रंगसूचना-पुरस्सर का अनुगामी वाक्य हैः (दिशोऽवलोक्य ) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि। (शकुन्तलां हित्वा पुनस्तैरेव पदैः प्रतिनिवर्तते), वह बिलकुल सही सिद्ध होता है। इसमें विचार-सातत्य भी है·और दुष्यन्त का लतामण्डप में वापस चला जाना भी शकुन्तला की उक्ति से सुसम्बद्ध है।।

महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में दुःष्यन्त बहहुत उतावला हो गया है । उस मूल कथा में सुधार के लिए उद्यत हुए महाकवि के लिए प्रेम का उदात्त चित्र खींचना मुनासिब है, तो उसको अपनी कलम से गान्धर्व-विवाह का प्रस्ताव कराके किसी मुग्धा मुनिकन्या को उकसाने की जरूरत नहीं थी । इसे, अर्थात् गान्धर्वेण विवाहेन0 वाले श्लोक को प्रक्षिप्त मान कर, बीच में से हटा देने से दुष्यन्त के उदात्त चरित की भी रक्षा होती है और शकुन्तला की उक्ति के साथ "कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि" जैसा दुष्यन्त के प्रतिभाव भी सुसंगत ठहरता है। इस तरह की उच्चतर समीक्षा का निष्कर्ष यही है कि शकुन्तला का लतामण्डप से बाहर चले जाने के बाद, दुष्यन्त भी जब वहाँ से बाहर आ जाता है तब "यहाँ वहाँ ऋषिमुनि लोग घूम रहे होंगे" ऐसी प्रिया शकुन्तला की चेतावनी के साथ तो, "(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोस्मि" का सन्धान ही मौलिक प्रतीत होता है।। तथा मैथिली वाचना में किया "गान्धर्वेण विवाहेन0" श्लोक का प्रक्षेप सिद्ध होता है।।

अब यह बताना है कि अतीत के किसी अज्ञात रंगकर्मी ने इस नाटक के पाठ्यांश में कटौती करने का जब सोचा होगा तब उसके लिए दो तरह के लक्ष्य रहे होंगे –

(क) परापूर्व से चले आ रहे अश्लील पाठ्यांशों की कटौती की जाय, और

(ख) इस नाटक की रंगमंच पर अल्प समयावधि में प्रस्तुति करने के लिए कौन से दृश्यों की कटौती की जाय, एवं प्रवर्तित कथा का कहाँ से पुनःसन्धान कर लिया जाय?उस स्थान को पसंद करना। इन दोनों में से पहला लक्ष्य सिद्ध करना सरल था, जो भी सुरुचि का भंग करनेवाले अश्लील पाठ्यांश काश्मीरी आदि तीन वाचनाओं में चले आ रहे थे उनको चुन चुन कर हटा दिया होगा । तदनन्तर, इस नाटक के तीसरे अंक में जहाँ नायक-नायिका का सहज सुन्दर नैसर्गिक प्रेमसहचार शुरू होता है, (जिसमें दुष्यन्त –शकुन्तला के हाथ में मृणाल –वलय पहनाता है, तथा दुष्यन्त शकुन्तला को पास में बिठा कर पुष्परज से कलुषित हुए उसके नेत्र को अपने वदनमारुत से मार्जित कर देता है) ऐसे दो दृश्यों को हटा दिया है। ऐसे सुन्दर प्रेमभरे दो दृश्यों को हटाने का साहस वह इस लिए कर सका है कि उसके हाथ मे मैथिली वाचना में प्रक्षिप्त किया "गान्धर्वेण विवाहेन0" वाला श्लोक था। स्वाभाविक प्रेमोपचार के विकल्प में शास्त्रसम्मत गान्धर्व-विवाह



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का नामशः निर्देश करके नायक एक आश्रम-कन्या को उकसाने में सफल रहा ऐसा निरूपण कार्यरत किया गया, और दुर्भाग्यवशात् वह अद्यावधि कामयाब भी रहा है।। देवनागरी वाचना में उक्त श्लोक के बाद केवल चार-पाँच संवाद आते हैं और तुरन्त नेपथ्योक्ति से अंक समाप्त करने की दिशा में अवशिष्टपाठ उपयुक्त किया गया है।

हाँ, एक बातऔर बताना जरूरी है कि नाटक के पाठ्यांश में यह जो कटौती की गई है, उसका अनुमानित समय 14 या 15वीं शती से पूर्व नहीं होगा । इस तरह का अन्दाजा लगाने के पीछे दो हेतु हमारे पास हैः (1) इस नाटक के उपलब्ध टीकाकारों में सब से पहले काट्यवेम रखे जाते हैं, और उनका अनुमानित समय 15वीं शती है। अतः उससे पचास-सौ साल पूर्व में ही देवनागरी वाचना का पाठ संक्षिप्त किया गया होगा। और उस नवीन संक्षिप्त रंगावृत्ति का दाक्षिणात्य पाठपरम्परा ने सद्यः अनुसरण भी किया होगा ।

(2) जोधपुर के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से 21422 क्रमांक की एक पुरानी शैली के देवनागरी अक्षरों में लिखी पाण्डुलिपि मिल रही है, (जिसका लेखनकाल 1684 विक्रम संवत् , याने 1627 ई.स.है) उसमें काश्मीरी एवं बंगाली वाचनाओं जैसा ही बृहत्पाठ सुरक्षित है। मतलब कि 16वीं शती तक तो देवनागरी पाण्डुलिपियों की परम्परा में भी इस नाटक का बृहत्पाठ भी चल रहा था । अतः देवनागरी के संक्षेपीकरण का काल 14वीं या 15वीं शती से अधिक पूर्व में नहीं माना जा सकता है।

## 6 देवनागरी वाचना में संक्षेपीकरण के साथ साथ अन्य वाचनाओं के पाठान्तरों का संमिश्रण

"देवनागरी वाचना में व्यञ्जनापूर्ण पाठ समुपलब्ध होता है और इसलिए वही मौलिक हो सकता है" ऐसा माननेवाले विद्वान् आज सर्वाधिक हैं। किन्तु जब इस नाटक की पाठालोचना उच्चतर समीक्षा के मानदण्ड से की गई है, (और उससे ऐसा सिद्ध हो रहा है कि वह संक्षिप्त किया गया पाठ है) तब मालूम होता है कि यह रंगावृत्ति स्वरूप का पाठ है। प्रस्तुत नाटक के देवनागरी पाठ का इस तरह का नया अभिज्ञान प्राप्त करने के साथ एक दूसरी बात भी ज्ञातव्य है। देवनागरी वाचना का पाठ न केवल संक्षिप्त किया गया पाठ है, उसमें तो अन्यान्य वाचनाओं के पाठान्तर भी संमिश्रित किये गये हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि देवनागरी वाचना का वर्तमान स्वरूप पाठविचलन के चतुर्थ क्रमांक पर खड़ा है। अब पाठान्तरों के संमिश्रिण के कतिपय उदाहरण देखेंगे।

(क) प्रथमांक में, काश्मीरी वाचना के पाठ का अनुसरण करते हुए देवनागरी पाठ में "तदिदानीं कतमत् प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयामः।" वाक्य में प्रकरण शब्द माना है। इसी सन्दर्भ में मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में "तत् कतमं प्रयोगमाश्रित्यैनमाराधयामः।" ऐसा पाठान्तर है।।

(ख) देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं ने "न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन." श्लोक को स्वीकार किया है। यह श्लोक मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में से लिया गया है। क्योंकि यह श्लोक काश्मीरी वाचना में नहीं है। (यद्यपि राघवभट्ट ने इस श्लोक पर टीका नहीं लिखी है।)

(ग) द्वितीयांक में, देवनागरी वाचना के पाठ में विदूषक की उक्ति है कि "तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना", किन्तु मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में तो "स्त्रीरत्नपरिभोगिनः" ऐसा पाठभेद मिलता है, तो यहाँ पर देवनागरी वाचना ने जो पाठ स्वीकारा है वह काश्मीरी वाचनानुसारी है।

(घ) देवनागरी वाचना में राजा की उक्ति है कि किस उपाय से फिर से कण्वाश्रम में जाया जा सकता है ? तो विदूषक



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहता हैः "को अवराऽपदेशस्तव राज्ञः।" मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में इस सन्दर्भ में "कः अवर अपदेशः। ननु भवान् राजा।" ऐसा सद्यः प्रत्युत्तर दिया जाता है। किन्तु काश्मीरी वाचना में तो विदूषक रंगमंच पर समाधि लगा के सोचने लगता है। "एष चिन्तयामि, मा खल्वस्यालीकपरिदेवितैः समाधि भाङ्क्षीः"। अर्थात् इस स्थान में देवनागरी वाचना ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण नहीं किया है। किन्तु बंगाली पाठ का अनुसरण किया है।।

(ङ) तीसरे अङ्क में, शकुन्तला दुष्यन्त में अनुरक्त हुई है ऐसा जान कर प्रियंवदा बोलती है "सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेण अतिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।" देवनागरी वाचना में, इसको सुन कर राजा कहते हैं कि "किमत्र चित्रं यदि चित्राविशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।" राजा की इस तरह की उक्ति मैथिली वाचना में नहीं मिलती है। ऐसी उक्ति तो काश्मीरी वाचना में से ली गई है। "किमत्र चित्रम् । यदि चित्राविशाखे शशाङ्कलेखाम् अनुवर्तेते।"

(च) शकुन्तला ने प्रियंवदा से कहा है, "हला, किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन।" यह देवनागरी वाचना का पाठ है। यह पाठ मैथिली और बंगाली वाचनाओं में मिलता है, अतः देवनागरी वाचना वालों ने उसे वहाँ से स्वीकारा है। इन सब के प्रतिपक्ष में काश्मीरी वाचना में "हला, अलं वोऽन्तःपुरविहारपर्युत्सुकेन राजार्षिणा उपरोधेन।" ऐसा सर्वथा भिन्न पाठ सुरक्षित है।।

(छ) चतुर्थांक में, शकुन्तला –विदाई प्रसंग में (देवनागरी पाठ मे) काश्यप मुनि ने शकुन्तला को ससुराल में कैसे रहना है उसका उपदेश करते हुए कहा है कि "भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी"। यह पाठ काश्मीरी वाचना में से लिया गाया है। उसके सामने मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में जो पाठ है वह, "भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी" है।

(ज) शकुन्तला पिता कण्व से पूछती हैः "कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतरून्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये।" इस तरह का देवनागरी पाठ मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में से लिया गया है। क्योंकि यहाँ जो काश्मीरी वाचना का पाठ है उसमें सर्वथा पृथग् उपमान मिल रहा है। जैसे कि, "कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये ।"

(झ) पञ्चमांक में,राजा ने गौतमी ने कहा कि, "तापसवृद्धे, स्त्रीणाम् अशिक्षितपटुत्वममानुषीषु ..... अन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति।।" तब उसको सुन कर शकुन्तला रोषपूर्वक कहती हैः "अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि" इत्यादि। यहाँ देवनागरी वाचना में दुष्यन्त को जिस "अनार्य" शब्द से सम्बोधित किया है, वह मैथिली एवं बंगाली वाचना में से लिया गया है।क्योंकि काश्मीरी वाचना में ऐसा कोई सम्बोधन शकुन्तला ने नहीं किया है।

(ञ) राजा ने निष्ठुरतापूर्वक शकुन्तला का प्रत्याख्यान कर दिया । शकुन्तला रोने लगती है, तब गौतमी पूछती हैः "वत्स शाङ्गरव, अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु।" देवनागरी का यह पाठ काश्मीरी वाचना में से लिया गया है। क्योंकि मैथिली एवं बंगाली पाठ में शकुन्तला को पुत्रिका शब्द से उल्लिखित नहीं किया है। वहाँ तो "प्रत्यादेशपिशुने भर्तरि किं कुर्याद् तपस्विनी।" ऐसा तपस्विनी शब्द रखा गया है।

(ट) षष्ठांक में , धीवर कहता है कि, "पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।" देवनागरी वाचना का यह पाठ काश्मीरी में से लिया गया है। काश्मीरी में भी श्रोत्रिय शब्द मिलता है। किन्तु इस स्थान में बंगाली वाचना में "पशुमारणं



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करोति दारुणमनुकम्पामृदुलः अपि सौनिकः।'' ऐसा परिवर्तन करके सौनिक शब्द रखा गया है।

(ङ) देवी वसुमती स्वयं वर्तिका-करण्डक लेकर आ रही है, ऐसा सुन कर विदूषक कहता है कि ''यदि भवान् अन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय'' देवनागरी वाचना का यह पाठ मैथिली एवं बंगाली पाठों से प्रभावित है। मैथिली में देवी वसुमती के लिए ''अन्तःपुरकूटपाश'' शब्द दिया है। एवं बंगाली में ''अन्तःपुरवागुरातः'' शब्द मिलता है। किन्तु काश्मीरी वाचना में अन्तःपुर की देवी कुलप्रभा ईर्ष्याकषायिता होती ही नहीं है, और उसके लिए विदूषक ने कुछ कहा भी नहीं है।

इन उदाहरणों से इतना स्पष्ट होता है कि देवनागरी वाचना के पाठ को संक्षिप्त कर देने के साथ साथ पूरी नाट्यकृति का जो पाठसम्पादन किया गया है उसमें जगह जगह पर जो पाठान्तर चुने गये हैं, वे कुत्रचित् काश्मीरी वाचना में से संगृहीत किये गये हैं, अथवा कुत्रचित् मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में से लिये गये हैं।। कहने का तात्पर्य यह है कि देवनागरी वाचना न केवल संक्षिप्त की गई वाचना है, वह संमिश्रित की गई वाचना भी कहने योग्य है। हाँ, इसके साथ साथ यहाँ अनतिविलम्बेन यह भी कहना आवश्यक है कि देवनागरी वाचना के अज्ञात सम्पादक ने अपनी स्वतन्त्र सम्पादनदृष्टि भी कार्यान्वित की है। जिसके फलरूप पञ्चम अंक का आरम्भ अन्य वाचनाओं से सर्वथा पृथक् ही है। एवमेव, षष्ठांक में अप्सरा का नाम सानुमती दिया है, जो काश्मीरी एवं मैथिली –बंगाली से भिन्न ही है। विस्तरभय से इस चर्चा को रोक लेते हैं। किन्तु देवनागरी वाचना का पुनर्मूल्यांकन करना अतीव आवश्यक है।। इति दिक् ।।

**7. उपसंहार**

प्रस्तुत शोध-आलेख में कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तल (अभिज्ञानशकुन्तलम् या अभिज्ञानशाकुन्तलम्) नाटक के पाठविचलन की आनुक्रमिकता प्रस्थापित करने का उपक्रम सप्रमाण किया गया है । इसमें इस नाटक का प्राचीनतम पाठ काश्मीर की शारदालिपि में लिखी हुई पाण्डुलिपियों में सुरक्षित रहा है ऐसा दिखलाया है। तथा उस काश्मीरी वाचना में भी परापूर्व से चले आ रहे कुछ प्रक्षेप विरासत में मिले हैं ऐसा दिखला कर, यह भी स्पष्ट किया है कि प्राचीनतम होने मात्र से काश्मीरी वाचना के पाठ को ही सर्वथा मौलिक नहीं मानना चाहिए । उसके पाठ का भी उच्चतर समीक्षा से परीक्षण करने की आवश्यकता है।।

काश्मीरी वाचना में से द्वितीय क्रमांक पर मैथिली वाचना निकली है, तत्पश्चात् तृतीय क्रमांक पर बंगाली वाचना बनाई गई है ऐसा उदाहरणों से सिद्ध किया गया है। चतुर्थ एवं पञ्चम क्रमांक पर देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनायें गठित की गई है। इस तरह की आनुक्रमिकता में यह भी देखा जाता है कि कविप्रणीत मूल पाठ क्रमशः बृहत् से बृहत्तर और बृहत्तर से बृहत्तम बनता गया है। जिसमें तीनों वाचनाओं का पौर्वापर्य भी प्रतिबिम्बित हो रहा है। ऐसा होने के बाद, उस पाठ में भारी कटौती करके देवनागरी वाचना का संक्षिप्त पाठ तैयार किया गया है। अल्प समयावधि में इस नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ऐसी रंगावृत्तियाँ बनाने की प्रवृत्ति सदैव कार्यरत रहती है। इस संक्षिप्तीकरण के साथ साथ उसमें जो पाठभेद स्वीकार किये गये हैं वे कुत्रचित् काश्मीरी वाचना में से लिये गये हैं, तो कुत्रचित् मैथिली-बंगाली वाचनाओं में से संगृहीत किये गये हैं,यानि देवनागरी वाचना न केवल संक्षिप्त वाचना है, उसे संमिश्रित वाचना भी कहना होगा।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**संदर्भ ग्रन्थ-**

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकया टीकया समेतम्,) सं. नारायण राम, प्रकाशकः राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली 2006।
2. अभिज्ञानशकुन्तलम् नाटकम्, शङ्कर-नरहरिकृताभ्यां टीकाभ्याम् अलङ्कृतम्, (मैथिलपाठानुगम्) सं. रमानाथ झा, प्रकाशकः दरभङ्गा विद्यापीठ- मिथिला, 1957
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (बंगाली वाचनानुसारि), सं. दिलीप कुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता, 1980
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (चन्द्रशेखरचक्रवर्तिनः सन्दर्भदीपिकया समेतम्), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रकाशकः राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन नई दिल्ली 2013।
5. Kalidasa's Sakuntala, the Bangali Recension, Ed. Rechard Pischle, Harvard University, press, Second edition 1922.
6. Sharada Manuscripts, No. 192, Written on Brich Bark & No. 1247, & 159 (from Oxford Uni.)., No. 1435 from Shrinagar.

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# सामाजिक व्यवस्था और बौद्ध दृष्टि

पद्मश्री प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी*

बौद्ध दर्शन मूलतः परिवर्तन का ही दर्शन है। परिवर्तन का ऐसा परिपूर्ण दर्शन भारतीय दर्शनों में सम्भवतः कोई दूसरा नहीं। बौद्धदर्शनों के विकास का पूरा इतिहास इस परिवर्तन की ही निर्दोष चरितार्थता का प्रयास है। प्रारम्भ से ही मनुष्य जाति का प्रयास एक ऐसे समाज के निर्माण का रहा है, जिसमें अन्याय, शोषण, युद्ध और अशान्ति न हों तथा उसके घटक व्यक्ति परस्पर प्रेम, सहयोग और मैत्री के साथ निवास कर सकें। इस ऐतिहासिक यात्रा में अनेकों दर्शन, धर्म, राजनैतिक और आर्थिक विचारधाराओं ने जन्म लिया, किन्तु सम्भवतः आज मनुष्य जाति सबसे अधिक भयभीत, पीड़ित, दुःखी और निराश है। इसके दो कारण हैं। एक ओर भयंकर विनाशकारी संहारास्त्रों का निर्माण है तो दूसरी ओर मनुष्य ने युद्ध, दमन और शोषण के सिद्धान्त खड़े कर लिये हैं। इस सारे कोलाहल के बीच सामान्य जन असहाय और किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। इस प्रकार अध्ययन एवं शोध के मूल में सम्भवतः सही दिशा में कल्याणकारी परिवर्तन के मार्ग की खोज की प्रेरणा ही निहित है और उसमें बौद्ध दर्शन कहाँ तक सहायक हो सकता है, इसका पता लगाना है।

मानवजाति के समुद्धार का कोई बना-बनाया शाश्वत फार्मूला है और मनुष्य को केवल उसके अनुरूप आचरणमात्र करना है, अपितु उन्होंने कहा-मेरी बातें सुनो, किन्तु उस पर विश्वास मत कर लो, उनको अपने जीवन के सत्य के साथ मिला कर देखो, सही मालूम होने पर सत्य के अनुरूप आचरण करो। इतना ही नहीं, उन्होंने किसी भी बड़े महापुरुष, परमेश्वर या किसी भी पवित्र धर्मग्रन्थ पर विश्वास कर लेने का निषेध किया । बुद्ध केवल कल्याणमित्र थे, वे सत्यान्वेषण में व्यक्ति की सहायतामात्र करना चाहते थे, न कि किसी सत्य को मनुष्य पर थोपना । मनुष्य जब किसी महापुरुष की बात के सत्य का स्पष्टतया स्वयम् अनुभव न कर उस की बातों को वैसे ही स्वीकार कर लेता है तो वह अपने ही बनाये हुए जाल में स्वयं बुरी तरह फँस जाता है। और फिर, उससे बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाता है।

इस प्रज्ञा का उत्पाद कोई ईश्वर, धर्मग्रन्थ, गुरु, उपासना या कोई अनुशासन, योजना या व्यवस्था नहीं कर सकती। मनुष्य स्वयं अपने में इसका उत्पाद करता है, जो सत्य का अन्वेषक होता है। इसीलिये बुद्ध ने कहा - "मैं केवल राह दिखा सकता हूँ, सत्य का अन्वेषण तुम्हें स्वयं करना होगा।"

मनुष्य को स्वयं यह विवेक करना होगा कि वस्तुतः यथार्थ क्या है? हममें से अधिकांश ज्ञात को ही जानते हैं, अज्ञात यथार्थ को नहीं। जब कोई घटना या वस्तु हमारे ज्ञान के क्षेत्र में आती है, तो हम अपने पुराने संचित अनुभवों अर्थात् स्मृति, वासना, संस्कार, मान्यता, पूर्वाग्रह, और धारणाओं द्वारा उसे रूपान्तरित करके देखते हैं। कहने का आशय यह है कि

---

*पूर्व आचार्य एवम् अध्यक्ष, बौद्ध दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम वास्तविकता को अपनी कल्पनाओं के परदे के माध्यम से देखते हैं, अनावृत अज्ञात सत्य का साक्षात्कार प्रायः हमें नहीं होता। बौद्ध शब्दावलि में कल्पना, वितर्क, विचार, संकल्प, वासना, बुद्धि, संवृति ये सब पर्यायवाची हैं, ये सब के विरोधी हैं और सत्य को आरोपित या रूपान्तरित करनेवाले धर्म हैं, ये सत्य और प्रज्ञा के मध्य में आकर अज्ञात सत्य के अनावृत आकलन में बाधा डालते हैं[1]। इसी तरह से काल पदार्थ है, जिसकी कोई सत्ता नहीं, यह हमारी स्मृति और आकांक्षाओं द्वारा आरोपित पदार्थ है। अतीत सदा हमारी स्मृति में तथा भविष्य हमारी महत्त्वाकांक्षाओं में निहित रहता है। यहाँ तक कि हमारा स्वयं का अस्तित्व अर्थात् आत्मा की नित्यता या स्थिरता अथवा भविष्य में कुछ होने की आकांक्षा ये सब हमारी तृष्णा, स्मृति आदि के ही परिणाम है। इतना ही नहीं, जब किसी वस्तु को जानते हैं या उसका नामकरण करते हैं तब भी वस्तुतः हम स्मृति और प्रत्यभिज्ञा आदि का ही वास्तविता पर प्रक्षेपण करते हैं। ये सब ज्ञात का ही ग्रहण करनेवाली अवास्तविक बुद्धियाँ है। ये सब सत्य को अपने अनुसार आरोपित रूपान्तरित करती हैं। इनके आधार पर बनने वाली योजना और व्यवस्थायें नई-नई समस्याओं को पैदा करती हैं। मनुष्य जाति का वास्तविक हित और नव-निर्माण इनके द्वारा *कथमपि* सम्भव नहीं। अन्याय, भय, पराधीनता, वैषम्य, शोषण, हिंसा और अशान्ति जिससे आज मानव समाज सर्वाधिक त्रस्त है, ये सब इन सबके आधार पर बनने वाली व्यवस्थाओं के परिणाम हैं।

यहाँ जिस सत्य की चर्चा की जा रही है, वह सत्य कोई रहस्य नहीं जो किसी वस्तु का या घटना का निजी वास्तविक स्वरूप है जो हमारे सामने है, जो हमारी बुद्धि या वासना द्वारा आरोपित या प्रक्षिप्त नहीं है, सत्य वही है। इस नग्न सत्य के दर्शन के लिये बौद्ध दर्शन के अनुसार न किसी का निषेध करना है और न आरोपण, जो वस्तुतः है, उसे देखना मात्र है। जो वितर्क, विचार, संकल्प, विकल्प, वासना, संस्कार, पूर्वाग्रह, मान्यता, अवधारणा, स्मृति आदि आरोपण या प्रक्षेपण करनेवाले धर्म हैं, इनके भी सत्य को अर्थात् आरोपण स्वभाव को जानना है, इनका निषेध नहीं करना है। यही सत्य का जानना है। यही प्रज्ञा का कृत्य है। ऐसा जाननेवाला व्यक्ति और समाज दुःख, दैन्य, वैषम्य, शोषण, अन्याय, युद्ध और अशान्ति से मुक्त हो सकता है, यही बौद्ध दृष्टि है। आर्य मैत्रेयनाथ ने कहा भी है -

**नापनयेदतः किंचित् प्रक्षेतव्यं न किंचन।**
**द्रष्टव्यं भूततो भूतं भूतदर्शी विमुच्यते ॥**

**व्यक्ति और समाज**

बौद्ध दर्शन की दृष्टि से व्यक्तित्व विभिन्न घटक अवयवों का एक गतिशील संपुजनमात्र है। इसके उपादानों में कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं है, जो गतिशील, अचल और कूटस्थ हो। इसके अवयवों में जड़ और चेतन दोनों प्रकार के अवयव होते हैं। इसमें विभिन्न सामाजिक और वैयक्तिक प्रभाव, मान्यताएँ, अवधारणएँ, संस्कार, स्मृतियाँ, आकांक्षाएँ और वासनाएँ संगृहीत होती हैं। जैसे कदली के छिलकों को हटाते-हटाते अन्त में कुछ शेष नहीं रहता, इसी तरह पूरे व्यक्तित्व की गहरी से गहरी परतों का विश्लेषण किया जाए तो अन्त में कोई भी स्थाई तत्त्व उपलब्ध नहीं होता।

---

1.इमं परिकरं सर्वं प्रज्ञार्थं हि मुनिर्जगौ ।
तस्मादुत्पादयेत् प्रज्ञां दुःखनिवृत्तिकांक्षया।। (बोधिचर्यावतार, 9:1)
बुद्धेरगोचरस्तत्त्वं बुद्धिः संवृतिरुच्यते ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए परस्पर सम्बद्ध और कार्यरत व्यक्तियों का समूह ही समाज है। इन व्यक्ति अवयवों से अतिरिक्त समाज नाम की कोई निरपेक्ष या स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। समाज एक चेतना है, जो प्रत्येक व्यक्ति में प्रतिफत होती है, किन्तु उन चेतनाओं को किसी उददेश्य के लिए परस्पर सम्बद्ध एवं कार्यरत होना चाहिए ।

## सामाजिक व्यवस्था

अक्सर लोग कहा करते हैं कि बौद्ध धर्म का भारतवर्ष से इसलिये विलोप हो गया, क्योंकि उसके पास कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। हमने ऊपर जिस बौद्ध दृष्टि का प्रतिपादन किया है, उससे भी ऐसा लग सकता है कि इस क्षणिक दृष्टि के रहते कैसे कोई सामाजिक व्यवस्था बन सकती है, जब कि काल, समाज आदि का कोई वास्तविक अस्तित्व इसके अनुसार बन नहीं पाता है। मेरे विचार में बौद्धों आचार्यों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि कोई व्यवस्था न देकर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। अन्यथा वे भी उस व्यवस्था के वैसे ही दास हो जाते, जैसे अन्य व्यवस्थावादी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में व्यवस्था ही सर्वोपरि हो जाती है और आम मनुष्य उसका अकिंचन दास बन कर रह जाता है। उस व्यवस्था से लाभान्वित होनेवाले व्यक्ति शक्तिसम्पन्न होकर आम आदमी का शोषण करने लगते हैं तथा वैषम्य और अन्याय की सृष्टि होती है। भिन्न व्यवस्थावादी देश आपस में लड़ते हैं और आम जनता का देश या धर्म के नाम पर जोश पैदा कर कत्ले -आम करवाया जाता हैं। अपनी व्यवस्था की रक्षा में वे शिक्षा, विज्ञान, तकनीक आदि का विश्वयुद्ध में विनियोग करते हैं और आम आदमी किंकर्त्तव्यविमूढ़ और संत्रस्त रहता है। ऐसी स्थिति में परिवर्तन की सारी सम्भावनायें समाप्त हो जाती है। अतः बौद्धों ने कोई स्थायी व्यवस्था न देकर भला काम ही किया है जिससे परिवर्तन की हमेशा सम्भावना बनी रहे ।

इस सारे कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि बौद्धों के अनुसार कोई व्यवस्था बन नहीं सकती। एक ऐसी व्यवस्था तब तक के लिये बन सकती है जब तब कि उसके द्वारा बहुजन का हित और सुख होता रहे और वह मनुष्य पर हावी न होने पाये । ऐसी व्यवस्था के बीज बौद्ध दर्शन में हैं, जैसे -1. प्रतीत्यसमुत्पाद या मध्यमार्ग 2. सभी कल्पनाओं का निरास न करना, 3. वस्त्वाधारित अनुमान का प्रमाण स्वीकार करना, 4. देश काल का अस्तित्व न मानने पर भी क्षणधारा और समाज का प्रज्ञा अस्तित्व स्वीकार करना 5. नैरात्म्य दृष्टि (प्रज्ञा) के द्वारा (व्यक्तिप्रधान नही अपितु) समाजोन्मुख करुणामूलक कर्म करना, आदि।

ऊपर कहा गया है कि यथार्थ जो गतिशील, क्षणिक और अज्ञात है, उसका जैसा वह है, उस प्रकार सक्रियतापूर्वक प्रज्ञा द्वारा आकलन करना ही सत्य को ग्रहण करना है। स्मृति, वासना, संस्कार, कल्पना, पूर्वाग्रह, मान्यतायें, विचार आदि प्रक्षेपणप्रक्रिया द्वारा उसे आरोपित रूपान्तरित करते हैं, इनकी इस रूपान्तरण प्रक्रिया का आकलन करना भी सत्य को ग्रहण करना है। अर्थात् मिथ्या के मिथ्यात्व को समझना भी सत्य को समझना ही होता है। ऐसी स्थिति में कल्पनाओं के मिथ्यात्व को समझकर भी उतनी कल्पनाएँ बौद्ध दृष्टि को मान्य होती हैं, जितनी सामान्य जागतिक व्यवहार चलाने के लिये आवश्यक होती है। कल्पनाएँ भी दो प्रकार की हैं। एक वे जो ,ऐसे सत्य का आरोपण करती हैं, जिसका बिल्कुल अस्तित्व नहीं रहता। दूसरी यद्यपि सत्य को रूपान्तरित करती है, किन्तु परस्पर या उनका सत्य से सम्बन्ध रहता है। उदाहरणार्थ आत्मकल्पना, ईश्वर कल्पना, नित्यकल्पना आदि सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि इनकी वस्तु के साथ किसी भी तरह की संगति नहीं है। किन्तु ऐसी कल्पना जिनकी परम्परा या वस्तु से संगति होती है, वे त्याज्य नहीं मानी जाती।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उदाहरणार्थ, अनुमान, नाम संयोजिका कल्पना आदि।

**अनुमान-** यह भी एक प्रकार की कल्पना है, किन्तु इसका परस्पर या वस्तु से सम्बन्ध होता है, यह अग्नि से उत्पन्न धूम को देखकर अग्नि का अनुमान करती है और अग्नि को प्राप्त कराने में समर्थ भी होती है, अतः प्रमाण मानी जाती है।

**स्मृति-प्रत्यभिज्ञा-** जो स्मृति और प्रत्यभिज्ञा आदि मिथ्या दृष्टियाँ आत्मा की और उसकी नित्यता की ग्रहिका होती हैं, वे त्याज्य हैं, क्योंकि उससे संग्रह, सुरक्षा, श्रेष्ठता आदि की प्रवृत्ति पैदा होती हैं, किंन्तु वह स्मृति आदि जिसके आधार पर किसी वस्तु में शब्द का संयोजन और पहचान आदि होती है, त्याज्य नहीं है। यद्यपि वे प्रमाण नहीं हैं, फिर जगद् भी व्यवहार के लिये आवश्यक हैं।

**प्रतीत्यसमुत्पाद या मध्यममार्ग -** यह बौद्ध दर्शनों की रीढ़ के समान है। इसके द्वारा वस्तु की क्षणिकता, निःस्वभावता आदि का बोध होता है। इसके आधार पर बौद्ध नित्य या सस्वभाव वस्तु का निषेध करते हैं, किन्तु अनित्य, क्षणिक या निःस्वभाव वस्तुओं का नहीं ,फलतः इसके आधार पर वस्तुसंगत व्यवस्था का निर्माण सम्भव है। यही वस्तुतः बौद्धों का मध्यम मार्ग है और इसका ज्ञान ही लौकिक सम्यक् दृष्टि है।

**देश एवं काल -** देश और काल की वस्तु से अतिरिक्त सत्ता पर बौद्धों का यद्यपि विश्वास नहीं है, फिर भी प्रतीत्यसमुत्पाद का सापेक्षता पर आधारित वर्तमान कालिक विस्तारमात्र देश या समाज तथा कार्यकारणभाव पर आधृत पूर्वापरकालिक विस्तारमात्र क्षणसन्तति या काल माना जा सकता है। यद्यपि इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं हैं, फिर भी व्यक्ति और क्षण की वास्तविक सत्ता पर इनकी व्यावहारिक प्रज्ञाप्तिसत्ता हेय नहीं है।

**प्रज्ञा और करुणा-** वास्तविकता को रूपान्तरित करने वाली सारी कल्पनाओं से मुक्त प्रज्ञा, जो अज्ञात सत्य का अनाकृत ग्रहण करती है, बौद्ध दृष्टि है। सत्य क्षणिक या निःस्वभाव है । ऐसी स्थिति में किसी भी आन्तरिक या बाह्य वस्तु का स्वभाव या नित्यता अवास्तविक है। प्रज्ञा द्वारा जब इस सत्य का बोध होने लगता है तब वस्तुतः करुणा, समता, मैत्री और सहयोग की भावनाओं का अजस्र उद्रेक होने लगता है। जब तक नित्य आत्मा या वस्तुस्वभाव का बोध होता रहता है, तब तक व्यक्ति का जीवन क्षुद्र, संकीर्ण एवं स्वार्थी बना रहता है। जब प्रज्ञा द्वारा नैरात्म्य और निःस्वभावता का बोध होता है, तब सारी सीमाएँ टूट जाती हैं, उस समय निरालम्बन या धर्मालम्बन असीम करुणा समता, मैत्री आदि का उत्पाद होता है तथा अनन्त सक्रियता और अनन्त निराभोग (अर्थात् संकल्परहित) कर्मों का प्रादुर्भाव होता है । बौद्धों की दृष्टि से यह स्थिति मानवजाति की स्वतन्त्रता, उत्कर्ष, कल्याण और विश्वशान्ति की साधिका है। यह जगत् से पलायन नहीं , अपितु जगत् का वास्तविक और मौलिक परिवर्तन करना है। ऐसा परिवर्तन जिसमें अन्याय, संघर्ष, वैषम्य और युद्ध की सम्भावना समाप्त हो जाय। फलतः बौद्ध दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक आदि सारी व्यवस्थाओं का संगठन व्यक्ति और संगठनों के आधार पर नहीं अपितु प्रज्ञा और करुणा के आधार पर होगा तथा इन व्यवस्थाओं का उद्देश्य भी ऐसे मानव का विकास होगा जिसमें प्रज्ञा और करुणा स्वतन्त्रता, समानता, मैत्री और सहयोग के नवीन मूल्यों का विकास सम्भव हो सके । व्यवस्थाएं चूंकि कामचलाऊ कल्पनाओं द्वारा ही प्रसूत है, अतः जब तक उनके द्वारा इष्ट साध्य सिद्ध होगा तभी तक वे उपादेय होगीं उनका हमेशा परीक्षण करते रहना होगा । यदि उनसे इच्छित फल सम्पन्न न होगा तो बौद्ध उसमें परिवर्तन से हिचकेगा नहीं । क्योंकि उसका उददेश्य व्यवस्था नहीं, अपितु मानव कल्याण है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसकी व्यवस्था के प्रति आसक्ति न होगी, अतः बौद्ध दृष्टि से व्यवस्था कभी भी मनुष्यों पर हावी न हो सकेगी। अतः व्यवस्थाओं के मानव पर हावी हो जाने से जो विभीषिका और सन्त्रास विश्व में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे बौद्ध व्यवस्था में सम्भव न हो सकेंगे ।

उपर्युक्त दृष्टि से इस प्रकार की व्यवस्थाओं के संकेत मूल बुद्धवचनों और शास्त्रों में खोजे भी जा सकते हैं। ऊपर कहा गया है कि प्रज्ञा द्वारा सत्य का साक्षात्कार होने पर ही वास्तविक करुणा, समता, मैत्री, सहयोग आदि का प्रादुर्भाव होता है। बौद्ध व्यवस्था के ये ही घटक मूल उपादान कारण बनेगें। फलतः बौद्ध दृष्टि की व्यवस्थाओं का स्वरूप सम्भवतः निम्न प्रकार का होगा-

**1.राजनीतिक व्यवस्था-** क्योंकि बौद्ध दृष्टि में सभी व्यक्ति नैरात्म्याधारित समता के आधार पर समान हैं, कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से न तो कम और न ज्यादा मूल्यवान् हैं। अतः राजनीतिक अधिकार और कर्त्तव्य सभी के समान होंगे। फलतः प्रजातन्त्र ही इस व्यवस्था का स्वरूप हो सकता है। बुद्धवचनों में भी गणतन्त्र व्यवस्था के अनेक प्रशंसापरक वाक्य उपलब्ध होते हैं। भगवान् बुद्ध ने भी अपने संघ में सभी सदस्यों को समान अधिकार प्रदान किया था और किसी भी निर्णय को बहुमत या सर्वसम्मति के आधार पर लेने की व्यवस्था दी थी ।

**2.आर्थिक व्यवस्था-** आत्मा की नित्यता का निषेध कर देने से वस्तुतः बौद्धों ने उस प्रकार के व्यक्तित्व को विकसित होने से रोका, जो स्वार्थी , संचयी और अपने ही सुख की परवाह करनेवाला होता है। परिणामस्वरूप शोषण वैषम्य और युद्ध की सम्भावनाएँ उद्भूत होती हैं। फलतः बौद्ध दृष्टि से समता और करुणा के आधार पर समाजमूलक आर्थिक व्यवस्थाएँ ही बन सकती हैं। फिर भी इसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसके विकास के अवसरों का दमन नहीं होगा। फलतः समतामूलक आर्थिक चार आर्यसत्यों के उपदेश में उन कारणों या उन व्यवस्थाओं के उन्मूलन पर या समुदय सत्य के प्रहाण पर जोर दिया था, जिससे दुःख उत्पन्न होता है। उन्होंने अपने संघ में भी समानवितरण की व्यवस्था का सूत्रपात किया था। दान में प्राप्त वस्तु पर संघ का अधिकार माना गया, जिसका आवश्यकतानुसार सभी भिक्षु उपभोग कर सकते थे। इसी प्रकार उत्पादन के साधनों पर सभी व्यक्तियों के समान अधिकार पर बौद्धों का समर्थन फलित होगा। सभी व्याक्तियों को योग्यतानुसार काम देना शासन के कर्तव्य के रूप में और वास्तविक यज्ञ के रूप में बुद्ध द्वारा उपदिष्ट है। अतः समाज से बेकार का उन्मूलन अपरिहार्य होगा ।

**3.सामाजिक व्यवस्था-** बौद्ध दृष्टि से ऊँच -नीच की भावना एवं विषमता मूलक समाज व्यवस्था नहीं बन सकती, उसमें जाति एवं वर्ण तथा उनके विशिष्ट अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकते । विशेष सुविधा प्राप्त व्यक्ति या किसी व्यक्तिसमुदाय के विकसित होनेका अवसर कथमपि सम्भव नहीं है। सामाजिक व्यवस्था ऐसी होगी, जिसमें व्यक्ति परस्पर करुणा, समता, मैत्री और सहयोग की भावना से आबद्ध होंगे । जाति और वर्ण प्रधान व्यवस्था के विरोध में बौद्धों का इस देश में बराबर आन्दोलन चलता रहा ।

**4. शैक्षिक व्यवस्था-** बौद्ध दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सत्य के प्रति निष्ठावान् बनाना है। वह सत्य जो गतिशील और क्षणिक है। व्यक्ति में ऐसी निर्विकल्प प्रज्ञा के उत्पाद के लिये सुविधा प्रदान करना, जो सत्य का साक्षात्कार करने वाली होती है। उन कल्पनाओं के सत्य को भी जानने की क्षमता उत्पन्न करना शिक्षा का उद्देश्य है, जो कल्पनाएँ सत्य को आरोपित करती हैं या सत्य को रूपान्तरित करती हैं। जिनसे तरह तरह के अन्याय, अन्ध विश्वास, रहस्य द्वन्द्व



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं कलह उत्पन्न होते हैं। प्रज्ञा के उत्पाद द्वारा व्यक्ति को पूर्ण बनाना और उसमें करुणा , समता, मैत्री, एवं सहयोग के वास्तविक जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठापित करना बौद्ध शिक्षा व्यवस्था का उददेश्य है। यही कारण है कि भगवान् बुद्ध ने अनेक सूत्रों में कर्मकाण्ड, मन्त्र, झाड़ फूक, फलित ज्योतिष, टोटका-टोना आदि विद्याओं का निषेध किया है। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य उस मार्ग का उद्घाटन करना है, जिस पर चल कर व्यक्ति सारी क्षुद्र सीमाओं को तोड़कर अपने में प्रज्ञा और करुणा का सामरस्य अनुभूत कर सके । अर्थात् बुद्धत्व या सर्वज्ञत्व या पूर्णत्व का अनुभव कर सके । बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्ति का निर्माण भी है , जो स्वार्थ, अन्धविश्वास, अन्याय, शोषण आदि पर आधारित कुप्रथाओं के खिलाफ, उनके उन्मूलन के लिए संघर्ष करने में सक्षम हो, क्योंकि निषेध, अस्वीकार या विरोध उसके दर्शन के मूल में ही निहित है। अतः वह किसी स्वार्थी या अन्यायमूलक व्यवस्था में कभी भी सहयोग नहीं कर सकता। फिर भी उसके पूरे संघर्ष और विरोध के मूल में अहिंसा का रहना आवश्यक शर्त होगी । अतः अहिंसात्मक असहयोग ही उसकी लड़ाई का हथियार होगी, क्योंकि करुणा, समता आदि जीवन मूल्यों पर उसका दर्शन आधारित है।

सारांश यह है कि यद्यपि बौद्ध दृष्टि में कोई अपरिवर्तनशील स्थायी व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती, फिर भी उसमें वे बीज, वे उपकरण या सामग्री निहित है, जिसके आधार पर तब तक के लिये एक व्यवस्था बनायी जा सकती है, जब तक उसके द्वारा मानव कल्याण अर्थात् बहुजन का हित एवं सुख सिद्ध हो सके । वह मनुष्य पर हावी नहीं हो सकेगी, क्योंकि वह आम मनुष्य की स्वतन्त्रता, समता आदि के विकास के लिये ही कल्पना द्वारा रचित है। उसके प्रति कोई आसक्ति न होगी और इस तरह उस में सर्वदा परिवर्तन की गुंजाइश रहेगी ।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# बौद्धतन्त्र व निगमागम–सम्बन्ध

प्रो0 यदुनाथप्रसाद दुबे*

पुरातनी एवं सनातनी सरणि का सेतु, पौरस्त्य और पाश्चात्त्य दार्शनिक पृष्ठभूमि के परम पावन गहन गाङ्गास्रोत का उद्गम स्मारक, जप – तप – यम – नियम – समाधि – अनुस्मृति – तर्क – चिन्तन – मनन – निदिध्यासनप्रभृति यौगिक क्रियाकलापों का हिमालय, वैदिकावैदिक – नास्तिकानास्तिक – आत्मानात्म – ईशानीशादि वैष्णव,शाक्त, शैव, बौद्ध तथा जैनों की द्वन्द्वात्मक , परस्पर विरोधात्मक किन्तु फलतः समवेत सुरताल – लयात्मक देवादेव, श्वेताश्वेत, हीनयानी, महायानी सदृश गंङ्गायमुनी संस्कृति का मेरुदण्ड , स्वर्ग – मोक्ष – कैवल्य – निर्वाणादि स्वान्तःसुखाय, स्वयं संवेद्य, पारलौकिक स्वानुभूति भावभूमिपटल पर सहजरूपेण स्वतः स्फुरित, जाज्वल्यमान मार्ग का अद्वितीय साधना केन्द्र, महनीय, कमनीय, प्रकल्पनीय ज्ञान– विज्ञान गौरवार्णव वेद–वेदांग–पुराणेतिहास–साहित्य –सौन्दर्य तंत्रादि शास्त्रों का रत्नभाण्डागार, सर्वधर्म–समभाव–जननी संस्कृत–पालि–प्राकृतादि त्रिवेण्यात्मक भाषाओं के माध्यम से परमौपनिषदिक, महाकारुणिक, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्, संगच्छध्वं , संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् , विश्वबन्धुत्व , विश्वैकनीडम् तुल्य , सर्वजनहिताय, एवं सर्वपृथक्जनसुखाय दिव्यातिदिव्य, भव्यातिभव्य अमरसन्देश समुद्घोषक तथा जय–विजय शंङ्खनादकारक, अजस्रगत्या, प्रवहणशील परांपरा महाविद्याओं एवं परा, पश्यन्ती, वैखरी प्रभृति दैवी वाक् का प्रथम सारस्वत विश्वविद्यालय, आलवारों, सिद्धों नाथों, ऋषियों एवं मुनियों का वृन्दावन तुल्य, सारे जहॉ से अच्छा, भारतवर्ष अतिप्राचीन काल से ही अध्यात्म–प्रधान देश रहा है। तन्त्रविद्या उस आध्यात्मिक साधना का परम चरमोत्कर्ष भी रही है। वस्तुतः मानव की परिपूर्णता अथवा मानवत्व विकास की पराकाष्ठा भी बुद्धत्व सम्प्राप्ति ही है। एतदर्थ सभी विशुद्ध एवं अनास्रव मानवोचित सद्गुणों का एकत्र समवस्थान अतीव विशाल, रहस्य, गूढातिगूढ मर्मोद्घाटक बौद्धतन्त्र वाङ्मय ही है। तन्त्र का अर्थ है "अविच्छिन्न सन्तति"। पृथग्जन अवस्था से लेकर बुद्धत्वप्राप्ति पर्यन्त निरन्तर प्रवहमान चित्सन्तति, जो मार्ग द्वारा शोधनीय वस्तु है, वह "वस्तुतन्त्र" कहलाती है। चित्त का शोधन करने वाले प्रज्ञोपाय–युगनद्ध मार्ग की अविच्छिन्न सन्तति "मार्गतन्त्र" और उस मार्ग से प्राप्य बुद्ध के रूपकाय और ज्ञानकाय के युगनद्धत्व की अविच्छिन्न सन्तति "फलतन्त्र" कही जाती है। इन वस्तु मार्ग एवं फल तन्त्रों को विषय बनाकर जो बुद्धवचन उपदिष्ट है, वह "बौद्धतन्त्र–वाङ्मय" है।

---

*कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बोधिचित्त का उत्पाद किये बिना व्यक्ति बौद्वतन्त्र का साधारण पात्र भी नही बन सकता है क्योंकि समस्त तन्त्र की साधना में महाकरुणा और बोधिचित्त प्रारम्भ, मध्य और अन्त में अनिवार्यता परमावश्यक है। अतः न केवल बौद्धेतर तन्त्रों से बौद्धतन्त्र विशिष्ट है अपितु श्रावकयान के मार्ग और साधनाओं से भी चित्तोत्पाद के कारण अति विशिष्ट है इन सबके कारण मार्ग का मुख्य आलम्बन शून्यता और उसके ज्ञाता ,ज्ञान में भेद नहीं होनेपर भी उपायों की विशेषता , बहुलता तथा सुगमता के कारण बुद्धत्व प्राप्ति में पारमितायान से वज्रयान अतीव विशिष्ट होता है। असंमोह , उपायबहुलता, अदुष्करचर्या तथा तीक्ष्णेन्द्रियतादि विशेषताओं के कारण तन्त्रयान, पारमितायान से भिन्न होता है–

> **"एकार्थत्वेऽप्यसंमोहाद् बहूपायाददुष्करात्।**
> **तीक्ष्णेन्द्रियाधि काराच्च तन्त्रशास्त्रं विशिष्यते।।** तत्त्वरत्नावली, पृ0 21

धारणा, महाकरुणा और बोधिचित्त बोधिसत्त्व को पारमितायान में भी या उसकी साधना में भी अर्हता प्रदान करते हैं। परन्तु तन्त्रयान में प्रवेशार्थ तदपेक्षया अतीव प्रबल करुणा और बोधिचित्त की अपेक्षा होती है। अतः पारमितायान से भी बौद्धतन्त्र विशिष्ट है।

प्रकट रूप से देवमण्डल के देवताओं अथवा मण्डल–निर्माण–विधि में बौद्धेतर तन्त्र , बौद्धतन्त्र के समान हो सकते है। परन्तु उस देवमण्डल के प्रत्येक योग–पूजन–जप,साधन में अतीव भिन्नता होती है। किसी भी तन्त्रसाधना के प्रयोगमार्ग के समकक्ष पहुँचने के लिए माध्यमिक दर्शन की अनिवार्यता है। धर्मों को निःस्वभावता में शुद्ध किये बिना किसी भी देवमण्डलकी भावना प्रारम्भ नहीं होती । समस्त पूजन–साम्रगी को भी शून्य में विशुद्ध करके पुनः उत्पत्तिक्रम से अधिष्ठित किया जाता है। संक्षेपतः बोधिचित्त और शून्यता–ज्ञान दोनों किसी बौद्धेतर तन्त्र में नहीं पाये जाते। अतएव , बौद्ध तन्त्र बौद्धेतर तन्त्रों से पृथक् है।

मै स्वीकार करता हूँ प्राणायाम, चक्रभेदन आदि अनेक तान्त्रिक विधियाँ बौद्ध एवं बौद्धेतर तन्त्रों में समान हो सकती है परन्तु इन विधियों से सम्प्राप्त शारीरिक परिवर्तनों अथवा सुख संवेदनाओ को बोधिचित्त और शून्यता ज्ञान से मार्गीकृत किये बिना ये सब शारीरिक एवं लौकिक क्रियामात्र सिद्ध होंगी, जिससे आध्यात्मिक समुत्कर्ष सम्भव नहीं होगा। बौद्धतन्त्र में इन सब विधियों को बोधिचित्त और शून्यता ज्ञान के सहयोग से बुद्धत्वप्राप्ति के मार्गरूप में विनियुक्त किया जाता है। अतएव, यह अन्य तन्त्रों से विशिष्ट है।

बौद्धतन्त्रों के उद्भव के सम्बन्ध में एक परम्परावादी सिद्धान्त और दूसरे ऐतिहासिक एवं तात्त्विक विकासक्रम की दृष्टि मतद्वय सुस्पष्ट है। उनको – क्रियातन्त्र, चर्यातन्त्र, योगतन्त्र तथा अनुत्तर योगतन्त्र प्रमुख विभाग चतुष्टय में विभाजित किया जाता है। जिस तन्त्र में देवयोग उपाय की साधना करते समय बाहयकर्मों (स्नान, आसन आदि) पर आधारित होना पड़ता है तथा आन्तरिक समाधि और बाह्य क्रिया में बाह्य क्रिया ही प्रधान होती है, इसको क्रियातन्त्र कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रधानतः छः भाग है। इसमें प्रथम मञ्जूश्री से सम्बद्ध तन्त्रों का प्रवर्तन शुद्धावासलोक में हुआ[1]। अवलोकितेश्वर से सम्बद्ध तन्त्रों का



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रवर्तन पोतल नामक पर्वत पर , अचलतन्त्र का त्रयिंस्तश लोक में, वज्रपाणि से सम्बद्ध तन्त्रों का प्रवर्तन पाताल लोक में तथा उष्णीष से सम्बद्ध तन्त्रों का प्रवर्तन गृध्रकूट में हुआ[2]। अधिकार को मार्गीकृत करने तथा अधिक सुख को शून्यता ज्ञान के साथ सम्प्रयुक्त करने की क्षमता नहीं रखते, ऐसे विनेय जनों के लिए ''योगतन्त्र'' की देशना की गयी है। इससे सम्बद्ध बौद्ध तन्त्र नीलाम्बरवज्र पातालतन्त्र , नीलाम्बर त्रैलोक्य विनयतन्त्र , अचलमहाक्रोध तन्त्र, एवं वैरोचनाभि सम्बोधि तन्त्र है।[3]

नागार्जुन , आर्यदेव, असंग, सिद्धाचार्य आदि प्रारम्भिक महायानी आचार्यों ने भी बौद्धतन्त्र के विकास परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। महामना राहुल सांकृत्यायन मन्त्रनय विकास क्रम के अनेक चरण मानते हैं। ई. पूर्व 400—100 तक सूत्र रूप में ई. पू. 100—400 ई. तक धारणी मन्त्रों का काल और मन्त्र का काल 400—700 ई. तक स्वीकार किया है। 800—1200 ई. तक का समय सिद्धों का काल था। सिद्धों ने इस युग में अपनी टीका टिप्पणियों से ही नहीं अपितु साधनाविधियों और चर्यागीतो द्वारा भी बौद्धतन्त्र विकसन—क्रम का परिवर्तन एवं संवर्धन किया।

भारत में ही नहीं अपितु भारत से बाहर चीन, जापान, श्रीलंका और तिब्बत आदि देशों में भी बौद्ध तन्त्र परम्परा का प्रचार एवं प्रसार हुआ।[4] बौद्ध तन्त्र शास्त्र का अपना विपुल तान्त्रिक वाङ्मय भी है। महत्त्वपूर्ण तान्त्रिक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचयात्मक स्वरूप इस प्रकार है—

**आर्यमञ्जूश्रीमूलकल्पः—** प्रस्तुत तन्त्रशास्त्र क्रियातन्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।[5] इसमें अनेक तान्त्रिक विधियों , देवी—देवताओं के स्वरूपों, मुद्रा, मण्डल, मन्त्र एवम् उनकी पूजाविधियों का वर्णन है। डॉ0 विनयतोष भट्टाचार्य के मतानुसार इसमें 28 परिच्छेद हैं, शेष परिच्छेद बाद में जोड़े गये हैं।

**सर्वतथागततत्त्व संग्रह :—** यह योगतन्त्र का महनीय ग्रन्थ है।[6] इस पर रचित प्रसिद्ध टीकाओं में पद्मव्रज का ''तन्त्रावतार व्याख्यान'' आनन्दाचार्य विरचित'' तत्वालोककरी नाम व्याख्या तथा कोशलालंकार तत्त्व संग्रह टीका प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ वज्रधातु , त्रिलोक विजय, सकलजगद्विनय तथा सर्वार्थसिद्ध—चार खण्डों में विभक्त है। देवता—उत्पत्ति , तत्त्वहृदय, मुद्रा, मन्त्र, विद्या, अधिष्ठान, अभिषेक ध्यान, पूजा, स्वतत्त्व, देवतत्त्व, मण्डल, प्रज्ञा, उपाय, फल , हेतु, योग, अतियोग, महायोग,गुह्ययोग, सिद्धिसाधन, समाधि, बोधिचित्त, प्रवृत्ति साधना, विधियों का विपुल संग्रह है।[7]

---

1. बौद्धतन्त्र साहित्य का वर्गीकरण ,धीः अंक 5 पृ0 63,82,1988
2. तन्त्र का स्वरूप एवं आभ्यन्तर भेद, धीः अंक 7, पृ0 154, किया तन्त्र से सम्बन्धित ''त्रिसमयव्यूह राजतन्त्र , अनन्तमखसाधक धारणी तन्त्र, सर्व तथागताधिष्ठान हृदयगुह्य धातुकरण्ड नाम धारणी एवं रश्मिविशुद्ध प्रभा नाम धारिणी—प्रमुख बौद्धतन्त्र ग्रन्थ है।
3. संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास , एकादश —खण्ड (तन्त्रागम) पृ0 408 प्रधान सम्पादक श्री बलेदव उपाध्याय
4. संस्कृत—वाङ्मय का बृहद् इतिहास, एकादश खण्ड, पृ0 419,422
5. आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प—सम्पादक—एस. बागची, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा ,1964
6. गुह्यसमाज तन्त्र भूमिका, पृ0 32—38
7. साधनमाला, भाग—2, भूमिका पृ0 57



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**सर्वदुर्गतिपरिशोधनतन्त्र** :– यह योगतन्त्र का व्याख्या तन्त्र है।[1] आचार्य बुद्धगुह्य ने समस्त ग्रन्थ को भागद्वय में विभक्त किया है। आमुख तथा मूलग्रन्थ प्रथम खण्ड में तन्त्रोपदेशस्थल प्रवचन तथा बुद्ध एवं अनुचरों द्वारा विषयोद्भावना है। मूल खण्ड में मण्डल , होम , अभिषेक आदि का सुष्ठु वर्णन है। बुद्धगुह्य की "दुर्गतिपरिशोधनार्थ वार्तिक नाम" आचार्य कामधेनु की " आर्यसर्वदुर्गतिपरिशोधन तेजोराजनाम महाकल्पराजस्यटीका, आनन्दगर्भ. की " सर्वदुर्गतिपरिशोधन तेजोराज तथागतार्हत्सम्यक् संबुद्ध कल्पनाम टीका तथा वज्रवर्मा की " सर्वदुर्गतिपरिशोधनतेजो राजकल्पालोकालंकार नाम " आदि प्रमुख हैं।

**गुह्यसमाजतन्त्र** :– बौद्धतन्त्र साहित्य में गुह्यसमाजतन्त्र का गौरवमय स्थान हैं।[2] यह जो विनेयजन अधिक राग को मार्गीकृत करने तथा अधिकसुख को शून्यता ज्ञान के साथ सम्प्रयुक्त करने की क्षमता नही रखते उन्हें "योगतन्त्र" की देशना की गई है। इसके अन्तर्गत प्रकारत्रय–मूलतन्त्र , व्याख्यातन्त्र एवं सदृशतन्त्र 'सर्वतथागततत्त्वसंग्रह'–योगतन्त्र का मूलग्रन्थ है। एवमेव, त्रैलोक्यविजयमहाकल्य, सर्वदुर्गतिपरिशोधनकल्प, वज्रगर्भालंकारतन्त्र एवं मणितिलक तन्त्र तथा साहसिकाप्रज्ञापारमितामुख आदि प्रसिद्ध तन्त्र हैं। जो विनेयजन, भाव्यमान विद्या तथा कर्ममुद्रा के साथ भी द्वीन्द्रियसमापत्ति तक के द्वारा समुत्पादित राग को मार्गीकृत कर सकते हैं तथा उससे उत्पन्न सहज सुख अथवा परमाक्षर सुख को शून्यताज्ञान के साथ सम्प्रयुक्त करके शीघ्रातिशीघ्र समस्त क्लेश और ज्ञेय आवरणों का प्रहाण करने में समर्थ होते हैं। उनके लिए "अनुत्तरतन्त्र" की देशना की गई है। इस प्रकार अनुत्तरतन्त्र की दृष्टि से चार तन्त्रों का वर्गीकरण करते समय इन्हे ईक्षण तन्त्र, हासतन्त्र, आलिंगनतन्त्र तथा हीन्द्रिय समापत्ति के नाम से भी "श्रीवज्रहृदयालंकार तन्त्र" में कहा गया है। यह अनुत्तर योगतन्त्र मातृतन्त्र, पितृतन्त्र एवं अद्वयतन्त्र नामक तीन भागों में सुविभक्त है। पितृतम्त्र एवं मातृतन्त्र को योगतन्त्र, योगिनीतन्त्र, उपायतन्त्र, प्रज्ञातन्त्र, डाकतन्त्र तथा डाकिनीतन्त्र के नाम से भी जाना जाता है। इस तन्त्र के गुह्यसमाजतन्त्र, हेवज्र एवं कालचक्र तन्त्र आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

आधुनिक विद्वानों ने बौद्धतन्त्र की समुत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐतिहासिक और तात्त्विक विकास क्रम को महत्त्व प्रदान किया है। इस विकास क्रम में क्रमशः वैज्ञानिक, सौत्रान्त्रिक , विज्ञानवाद और माध्यमिक अभिमत हैं। तन्त्रों के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम इन सिद्धान्तों का अध्ययन परमावश्यक है। भगवान् बुद्ध के प्रारंम्भिक तन्त्र की प्रवृत्तियों का अन्वेषण करना चाहिये । विनयपिटक में प्राप्त कथानक मिलिन्दपञ्हों के उद्धरण, दीघनिकाय के परीत्तसुत्त, कैवटसुत्त तथा महासमयसुत्तन्त आदि में बीजरूपेण बौद्धतन्त्र का सिद्धान्त बुद्ध के मूलवचनों में ही निहित है। प्रो0 हाजिमे नाकामूरा का अभिमत है कि बौद्धतन्त्र मूलतः

1. सर्वदुर्गतिपरिशोधनतन्त्र, सम्पादक टी. स्कोरूपस्की, मोतीलाल बनारसीदास,1983

2. संस्कृत में तीन संस्करण प्रकाशित हैं–

i. विनयतोष भट्टार्च गो.ओ.सी 53

ii. एस.बागची 1965

iii. प्रो0 युकाई मात्सुनागा।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैदिक क्रियाकाण्डों से प्रभावित है। ललित्विस्तर, समाधिराजसूत्र सन्धिनिर्मोचनसूत्र, सद्धर्मपुण्डरीक, एवं लङ्कावतार आदि प्रारम्भिक महायानी सूत्रग्रन्थों में धारणियों एवं मन्त्रों का उल्लेख द्रष्टव्य है। करण्ड व्यूहसूत्र, स्वर्णप्रभासूत्र और भैषज्यगुरु वैडूर्यप्रभराजसूत्रों में भी बौद्धतन्त्र के तत्त्व प्रचुरमात्रा में समुपलब्ध हैं। एडबर्ड कोंजे महोदय ने अनेक प्रज्ञापारमिता सूत्रों का भाषाशैलीगत तथा विषयवस्तु की विभिन्नता के कारण तांन्त्रिक प्रज्ञापारमिता साहित्य में समावेश किया है। इस प्रकार तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि बौद्ध तन्त्र का श्रीगणेश, भगवान् गौतमबुद्ध की सदुपदेशात्मक श्रीवाणी से लेकर अद्यावधिपर्यन्त चिद्विलासात्मक बौद्धतान्त्रिक साधना का पल्लवन एवं विकसन हो रहा है।

अनुत्तरतन्त्र में उपायतन्त्र का मूलतन्त्र है। गुह्यसमाजतन्त्र, तथागतगुह्यक एवं अष्टादशपटल के नाम से भी प्रसिद्ध है। सन्धिव्याकरणनामतन्त्र, वज्रमालातन्त्र इसके व्याख्यातन्त्रों में प्रमुख है। प्रो0 एलक्स वैमेन ने इसकी विस्तार से चर्चा की है।[1] गुह्यसमाज पर समाधारित अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं। पद्मव्रज कृत गुह्यसिद्धि[2], आर्य नागार्जुन का पञ्चक्रम[3] तथा इन्द्रभूति द्वारा विरचित ज्ञानसिद्धि प्रमुख है।[4] नागार्जुन ने अष्टादशपटलविस्तरव्याख्या तथा मूलतन्त्र पर तन्त्र–टीका की रचना की । चन्द्रकीर्ति ने प्रदीपोद्योतन[5] नामक विस्तृत टीका की रचना की। चेलूपा की रत्नवृक्षनाम गुह्यसमाजवृत्ति , जिनदत्त की पंजिका, रत्नाकरशान्ति की कुसुमाञ्जलिगुह्यसमाजनाम निबन्ध, स्मृतिज्ञानकीर्ति की गुह्यसमाज तन्त्रराजवृत्ति, आनन्दगर्भ की श्रीगुह्यसमाजमहातन्त्रराज टीका– इसकी अन्य महत्त्वपूर्ण टीकाएँ हैं। डॉ0 विनयतोष भट्टाचार्य ने इससे सम्बद्ध सभी टीकाओं एवं ग्रन्थों की सूची दी है।[6]

**आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति** यह बौद्धतन्त्रों का सर्वमान्य एवं सर्वाधिक ग्राह्य ग्रन्थ है। परम्परानुसार इसे बुद्धभाषित माना जाता है। अनेक भारतीय तन्त्राचार्यों ने इसकी 25 से अधिक व्याख्या, वृत्ति एवं टिप्पणियाँ की है।[7] इसके प्रारम्भिक टीकाकारों में चन्द्रगोमिन्, विमल मिश्र , विलास वज्र , डोम्बी हेरुक, तथा मञ्जुश्रीमित्र प्रमुख हैं। विष्णुसहस्रनाम एवं ललितासहस्रनाम की भाँति सुप्रसिद्ध इस ग्रन्थ में अध्येषणा प्रतिवचन, षट्कुलावलोकन, मायाजालाभिसंबोधिक्रम, वज्रधातुमहामण्डल, सुविशुद्ध ज्ञान, आदर्श ज्ञान, प्रत्यवेक्षणाज्ञान समताज्ञान, कृत्यानुष्ठान ज्ञान, पञ्चतथागतस्तुति, अनुशंसा ,मन्त्रविन्यास एवम् उपसंहार सहित 14 परिच्छेद हैं। इस ग्रन्थ को तीन भागों –प्रारम्भ के चार परिच्छेद आमुख , पांच वें परिच्छेद से 10 वें परिच्छेद तक मूलग्रन्थ तथा शेष परिच्छेद पूरक– में विभक्त किया जा सकता है।

---

1. सर्वतथागततावसंग्रह, सम्पादक डॉ0 लोकेशचन्द्र , दिल्ली, 1987
2. सर्वदुर्गतिपरिशोधन तन्त्र, सम्पादक टी. स्कोरूप्स्की
3. द्रष्टव्य धीः अंक 11,पृ0 147–154
4. हेवज्रतन्त्र 2,8,8–9 ''सर्वमन्त्रनयं ज्ञात्वा तदनु हेवज्रमारभेत्।''
5. इण्डियन बुद्धिज्म,पृ0 314
6. Tantric प्रज्ञापारमिता Texts-Conze, Sino-Indian studies, vol-v, Part II, Page-100-122
7. योग ऑव द गुह्यसमाजतन्त्र, पृ0 84–93
8. गुह्यादि–अष्टसिद्धिसंग्रह, पृ01–62



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**हेवज्रतन्त्र** – प्रस्तुत ग्रन्थ अनुत्तरतन्त्र के मातृतन्त्र का मूलतन्त्र है।[8] कृष्णपाद विरचित योगरत्नमाला, भद्रपाद का हेवज्रव्याख्या विवरण, काह्णपा की स्मृति–निष्पत्ति, नरोपा का वज्रपद सारसंग्रह, रत्नाकरशान्ति की मुक्तावली, टंकदास की सुविशुद्धसम्पुट, सरोरुह की पद्मिनी, तथा वज्रगर्भ की हेवज्रपिण्डार्थ आदि प्रसिद्ध टीकाएँ हैं।

**चण्डमहारोषण तन्त्र** – प्रस्तुत ग्रन्थ एकल्लवीरचण्डमहारोषणरत्न अथवा एकवीराख्य चण्डमहारोषण तन्त्र के नाम से भी सुप्रसिद्ध है।[1] कुछ विद्वान् इसे मातृतन्त्र का ग्रन्थ, जब कि क्रिस्टोफर गुह्यसमाज का व्याख्या तन्त्र मानते हैं।[2] इसमें मन्त्र, मण्डल, अभिषेक, देवता ध्यान देहप्रीणन स्त्रीप्रशंसा शुक्रस्तमन, वायु योग, देवता साधन आदि विषय वर्णित है। यह ग्रन्थ 25 पटलों में विभक्त है । वीर पुस्तकालय (नेपाल) की सूची में इसकी एक टीका चण्डमहारोषण तन्त्रपंजिका की सूचना प्राप्त होती है। इसके टीकाकार महासुख वज्रपाद है।

**खसमतन्त्र**– यह एक लघुकाय तन्त्र ग्रन्थ है।[3] मातृतन्त्र से सम्बन्धित इस पर रत्नाकर शान्तिपाद ने 'खसमानाम टीका' लिखी है। इसमें अनेक अपभ्रंश पदो की व्याख्या की गई है। वस्तुतः संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषा मिश्रित अनेक बौद्ध तन्त्र ग्रन्थ है। हेवज्रतन्त्र एवं सम्पुट तन्त्र आदि इसी परम्परा में आते है।

**महामाया तन्त्र** – बौद्धतन्त्र वङ्मय में यह ग्रन्थ अतीव महत्त्वपूर्ण है।[5] जम्बुदीप में कुक्करिपाद ने सर्वप्रथम इसका प्रचार प्रसार किया।[6] इनमें महामाया साधन , मण्डलविधि , महामायातन्त्रानुसार हेरुक साधनोपायिका आदि प्रसिद्ध है। रत्नाकर शान्तिपाद की 'गुणवती', दुर्जयचन्द्र की "मायावती" कृष्ण समयवज्र की "स्मृतिवृत्ति" तथा 'महामायानाम पञ्जिका' आदि टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। प्रथम निर्देश में महामाया तत्व, प्रकृति पार्थिवफल, और विशेष मार्ग का निरूपण, आलि कालि मन्त्र, धर्मयोग, गुटिका साधन, शुक्रआकृष्टि, पिण्डाकृष्टि आदि का उल्लेख है। द्वितीय निर्देश में वज्रजाप, त्रियोग के गुण, रविचन्द्र सम्पुटयोग का अभ्यास , गुह्याभिषेक का निर्देश ,तृतीय निर्देश में अमृतगुटिकासाधन, मन्त्रसमुच्चय, समापत्ति का अर्थ, वज्र अक्षर आदि का न्यास एवं अधिष्ठान का निर्देश किया गया है।

**कृष्णयमारि तन्त्र** – यह पितृतन्त्र का मुख्य ग्रन्थ है।[7] इस पर श्रीधर की श्रीकृष्णयमारितन्त्र पञ्जिका सहजालोकनाम, रत्नाकरशान्ति, की 'रत्नप्रदीपना' कृष्णपा की 'राजप्रेषणपथप्रदीपनाम' कुमार चन्द्र की कृष्णयमारितन्त्रराज पञ्जिकारत्नावलीनाम" तथा पद्मपाणि की "कृष्णयमारितन्त्र पञ्जिका"

---

1. पंचक्रम, सम्पादक पू सें, 1886
2. गुह्यादि–अष्टसिद्धिसंग्रह, पृ0 89–158
3. प्रदीपोद्योतन– सम्पादक–चिन्ताहरण चक्रवर्ती, के0 पी0 जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना
4. राष्ट्रीय अभिलेखालय संख्या 441 , खसमानाम टीका सम. सं.सं.सं.वि.वि., वाराणसी, 1983प्रो जगन्नाथ उपाध्याय , संकाय पंत्रिका ,पृ 227 –255
5. गुणवती टीका के साथ केन्द्रीय उच्च तिब्बतन शिक्षा संस्थान , सारनाथ से प्रकाशित
6. बौद्ध धर्म का इतिहास , पृ –146
7. रत्नावली पंञ्जिका के साथ केन्द्रीय उच्चतिब्बतन शिक्षा संस्थान , सारनाथ–वाराणसी से प्रकाशित



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदि प्रसिद्ध टीकाएँ प्राप्त हैं। अष्टादश पटलों में विभक्त इस ग्रन्थ में मुख्यतः मण्डल , कर्म , चक्र, आकर्षणादि, प्रयोग्रजुवज्रसाधन तथा हेरूक वज्र साधन आदि विषय वर्णित है।

**सम्पुट तन्त्र** – सम्पुट तन्त्र अथवा सम्पुटोद्भव तन्त्र एक विशाल बौद्धतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें 10 परिच्छेद और प्रत्येक परिच्छेद चार–चार प्रकरणों में विभक्त है। यह मातृतन्त्र का व्याख्यातन्त्र है।

**डाकार्णव तन्त्र**– 51 पटलों से पल्लवित डाकार्णवमहायोगिनीतन्त्र संवरतन्त्र का व्याख्या तन्त्र है। पद्मवज्र की "श्रीडाकार्णवमहायोगिनीतन्त्रराजवाहिकटीका" है।

**अभिधानोत्तर तन्त्र** – प्रायः चक्र संवरतन्त्र से साम्य अनुत्तरतन्त्र का मातृतन्त्र है।[1] इस विशाल तन्त्र में 66 परिच्छेद हैं। इसमें मुख्यतः कायसंवर, पीठसिद्धि, योगिनी के लक्षण , मुद्रा, मण्डलविधि, मन्त्र स्वाधिष्ठान, आत्मभाव पूजा आदि तांत्रिक विषयों का वर्णन है। श्री रिनछेन जङ्यो तथा दीपङ्कर श्रीज्ञान ने भोटानुवाद किया है।

**चक्रसंवर तन्त्र** – संवरतन्त्रों में चक्रसंवरतन्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पर लावापा की "साधननिदानश्रीचक्रसंवरनामपञ्चिका" भवभद्र की "श्रीचक्रसंवरपंजिकानाम" भव्यकीर्ति की "चक्रसंवरनामपंजिका–शूरमनोज्ञनाम" जयभद्र की "चकसंवरमूलतन्त्रपंञ्चिका" देवगुप्त की "श्रीचक्र संवरसाधनसर्वशालानाम" टीका आदि प्रसिद्ध है।

**संवरोदय तन्त्र**– प्रस्तुत ग्रन्थ अनुत्तरतन्त्र की मातृतन्त्र शाखा से सम्बद्ध संवरतन्त्र का व्याख्यान तन्त्र माना जाता है।[2] इसका मूलतन्त्र "लघु संवरतन्त्र" है। व्याख्यातन्त्रों में श्रीवज्रडा–कमहातन्त्रराजयोगिनीसंचर्या आदि प्रसिद्ध है। 33 परिच्छेदों वाले इस ग्रन्थ में अभिषेक, मण्डल लेखन, होम यन्त्र आचार्य एवं शिष्य के गुण आदि विषयों का विवेचन है। आचार्य रत्नरक्षित की "संवरोदयतन्त्र पंजिका" और "संवरोदयतन्त्रटिप्पणी" इसकी इन्हीं दो टीकाओं की सूचना मिलती है। शिनीचीत्सुदा ने अपने संस्करण की भूमिका में इसके समग्र साहित्य का विश्लेषण किया है।[3]

**कालचक्र तन्त्र**– प्रस्तुत ग्रन्थ अद्वयतन्त्र का मुख्य तन्त्र है।[4] लोकधातु, अध्यात्म, अभिषेक, साधन तथा ज्ञान पटल आदि पञ्च पटलों मे विभक्त है। इसकी टीकाओ मे दीपकश्रीज्ञान की टीका के अतिरिक्त पुण्डरीकविरचित "विमलप्रथा" अतीव प्रसिद्ध है।[5] इसमें तन्त्र सम्बन्धी विषयों के अतिरिक्त भूगोल, आयुर्वेद, ज्योतिष, रसायन प्रभृति विषय भी हैं। वस्तुतः एक प्रकार से यह तन्त्र का विश्वकोष है।[6]

जहाँ तक बौद्ध तन्त्र के निगमागम से सम्बन्ध का प्रश्न है, इसके पूर्व निगम एवं आगम शब्द की

---

1. शतपिटक सीरीज , भाग–263, नई दिल्ली, 1981
2 द संवरोदय तन्त्र (Selected chapters) सम्पादक शीनीची त्सुदा।
3 इण्डियन बुद्धिज्म पृ0 333
4 कालचकतन्त्रराज–सम्पादक– विश्वनाथ बनर्जी, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, वर्ष 1985
5 विमल प्रभा भाग 1 ,2,3 केन्द्रीय उ0 ति0 शिक्षा संस्थान वाराणसी (सारनाथ)
6 दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री के लिए धीः के प्रत्येक अंकों में प्राप्त पाण्डुलिपियों की सूचना है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्यापरक निरुक्ति परमावश्यक है। कुछ विद्वानों के अनुसार निगम शब्द वैदिक वाङ्मय और आगम शब्द तन्त्रागम शास्त्र का सूचक है। जहाँ एक ओर मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि "आगम" को वेदवाचक मानते हैं, वहीं निरुक्तकार निगम को वेदवाचक मानते हैं। आगमपद से ऋषि प्रणीत शास्त्रों और निगम पद से अपौरुषेय वेद का ही ग्रहण हेता है। भोजदेव के तत्त्वप्रकाश के व्याख्याकार कुमार देव के अनुसार इष्ट वैदिक धर्म का और पूर्त तान्त्रिक धर्म का अंग है। इष्ट पारलौकिक धर्म है और पूर्त ऐहलौकिक तात्पर्य यह है कि निगम शब्द से वेद ही अर्थ ग्रहण किया है। यास्काचार्य ने "इत्यपि निगमो भवतीति" वेदमन्त्र का ही ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार "आगम" शब्द से वेदातिरिक्त शिवा और शिव के द्वारा कथित सामान्यतः शास्त्रों से ग्रहण किया जाता है। जैसे वेदों में कर्म , उपासना और ज्ञान विषयत्रय का प्रतिपादन है, वैसे आगम अथवा तन्त्रशास्त्रों मे भी कर्म उपासना और ज्ञान विषयत्रय का विस्तार है। "ज्ञानमेव परं ब्रह्म" निगम और आगम में प्रधानतया वर्णन है।

मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूकभट्ट ने कहा है– वैदिकी तांत्रिकी चेति द्विविधा श्रुतिरुच्यते।" अर्थात् निगम और आगम दोनों ही श्रुति है। शारदातिलक के अनुसार , परम कारुणिक परम शिव ने सांसारिक जीवों के कल्याणसम्पादनार्थ स्वकीय विमर्शात्मिका शिवास्वरूपा शक्ति को शिष्य मानकर तन्त्रशास्त्र का समुपदेश दिया था–

"गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।।"

अतएव अनादिकाल से श्रवणपरम्परया सम्प्राप्त तन्त्रशास्त्र को ही आगम शास्त्र कहा जाता है। "आगमः पंचमो वेदः कौलस्तु पञ्चमाश्रमः" महर्षि हारीत के वचनानुसार आगमशास्त्र वेद के समान की सम्मान्य है। जिस प्रकार "अनन्ता वैहावेदाः" शास्त्रश्रुति प्रसिद्ध है, उसी प्रकार "अनन्ता वै आगमाः भी कहा जा सकता है। निगमापर पर्याय वेद परमेश्वर के निःश्वासरूप है तो आगम भी परमात्मा के उपदेश स्वरूप वाग्विस्तार है। अतएव, परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होना परम आवश्यक है। क्योंकि भारतीय तान्त्रिक साधना पद्धति में बहिरङ्ग साधना का परिचायक प्रामाणिक ग्रन्थ निगम वेद है और अन्तरंग साधनाका बोधक ग्रन्थ तन्त्रागम है। भारतीय दार्शनिक एवं सांस्कृतिक साधना तत्त्व के यथार्थ बोध के लिये निगमागम का ज्ञान भी परमावश्यक है।

एवमेव वैदिकावैदिक अथवा नास्तिकास्तिक साधना पद्धति परम्परा में परस्पर सम्बन्ध है। निदर्शनार्थ यामुनाचार्य का आगम प्रामाण्य का अंश–

"मुद्रिकाषट्कविज्ञानात् पुनस्तस्यैव धारणात्।
अपवर्गफलप्राप्तिर्न ब्रह्मावगमादिति।।
कर्णिका रुचकं चैव कुण्डलं च शिखामणिम्।
भस्म यज्ञोपवीतं च मुद्राषट्कं प्रचक्षते।।
कपालमथ खट्वांग मुपमुद्रे प्रकीतिः।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आभिर्मुद्रितदेहस्तु न भूय इह जायते।।

इसी प्रकार, बौद्धतन्त्रों में भी तथा उनकी साधना पद्धतियों मे छः मुद्राएँ वर्णित हैं। कौल तन्त्रों में वर्णित द्वादश द्रव्य , पंचरत्न के समान ही बौद्ध तन्त्रों में भी पंचामृत , पंचप्रदीप, पंचरत्न, नवरत्न, चरु आदि का विशद रूप सम्प्राप्त है। पाँचवी , छठी, शताब्दी के पश्चात् की साधना पद्धति में दीक्षा, अभिषेक मन्त्र, मातृ का मुद्रिका , पीठ , न्यास, षड्योग, चाण्डाली योग (कुण्डलिनी योग) वज्रदेह, प्राणापान आदि का वर्णन विद्या, योग ,क्रिया और चर्या के रूप में प्राप्त होता है। तदेव शब्दों और साधना पद्धतियों का प्रयोग बौद्धतन्त्र में भी प्राप्त होता है। हेवज्र तन्त्र , आर्यमञ्जुश्री मूलकल्पादि प्रमाण है।

वज्रदेह को बौद्धतन्त्र में वज्रकाय मे रूप में विशेषतः जाना जाता है। मातृसद्भाव अनुत्तरतन्त्र आदि शब्दों का जो विशद विवेचन महामाहेश्वर अभिनवगुप्त पादाचार्य ने अपने श्रीतन्त्रालोक में किया है, तद्वत् हेवज्रतन्त्रराज में अनुत्तरयोग का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। आर्यमञ्जूश्री मूलकल्प (महायान सूत्र संग्रह) में उन मुद्राओं का उल्लेख किया गया है, जो अन्य शैव, शाक्त, और वैष्णव आदि तान्त्रिक साधना पद्धतियों में समानरूपेण वर्णित है–

''बोधिचित्तविधिज्ञानां बोधिचित्तविभूषिताम्।
नित्यं बोधिमार्गस्थां तेषां मुद्रां प्रकाशयेत्।।
आदौ पञ्चशिखा प्रोक्ता महामुद्रा तु सा मता।
द्वितीयं त्रिशिखं विन्द्यात्तृतीयमेक चीरकम्।।
चतुर्थमुत्पलमित्याहुः सम्बुद्धाः द्विपदोत्तमाः।
पंचमः स्वस्तिको दृष्टः षष्ठो ध्वज उच्यते।।
..........................................
षोडशः पाशमित्युक्तः अंकुशः सप्तदशः स्मृतः।।

इन्हीं मुद्राओं का वर्णन पूर्वोक्त अन्य तन्त्रों में भी प्राप्त होता है। साधना के लिए जिस प्रकार अन्य तन्त्र वाङ्मय में षटचक्रों का विवेचन मिलता है, बौद्धतन्त्रों में भी चार तथा छः चक्रों के वर्णन प्राप्त होते हैं। कालचक्र तन्त्र की टीका विमलप्रभा तथा वज्रमाला तन्त्र में भी छः नाड़ी चक्रों का वर्णन प्राप्त है। अधिकतर बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में नाभिचक्र , हृदयचक्र, कण्ठचक्र, मूर्धा चक और इन्हीं चक्रचतुष्टयों में उष्णीय चक्रों तथा गुह्यचक के संयोग से छः चक्रों का वर्णन है। इन्हीं में महाग्रन्थ के 12 चक्रों को संयुक्त कर देने से इन चको की कुल संख्या 18 हो जाती है, जिसका विशद वर्णन कालचक्रतन्त्र की टीका विमलप्रभा में द्रष्टव्य है।

सम्पुटोद्भवतन्त्र के अनुसार नाभिचक के सम्बन्ध में–

''नाभिमध्ये स्थितं पद्मं चतुःषष्टिदलान्वितम्।
चतुःषष्टिदले चैव निर्माणं परिकीर्तितम्।।

स्मार्तग्रन्थों में नाभिचक्र षड्दल के रूप में वर्णन है तो हेवज्रपंजिका योगरत्न माला में



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"एकारः पृथ्वी ज्ञेया कर्ममुद्रा तु लोचना।
चतुःषष्टिदले नाभौ स्थिता निर्माणचक्रके।।"

64 नाभिदलों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार स्नान शुद्वि आदि बाह्यक्रियाओं का वर्णन "कियातन्त्र" में बाह्यकिया और आभ्यन्तर समाधि का वर्णन "चर्यातन्त्र" में किया गया है। जिसमें बाह्यकिया गौण और अन्तरसमाधि का विशेष रूप से वर्णन है,वह "योगतन्त्र" और जिसमें योग वैशिष्ट्य का वर्णन है वह "अनुत्तर योगतन्त्र" नाम से अभिहित है। वसन्ततिलक टीका में सम्पुटतन्त्र के वचन को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि–

"हसितप्रेक्षिताभ्यां वा आलिंगद्द्वन्द्वकैस्तथा।
तन्त्राणामपि चतुर्णां सन्ध्याभाषेण देशितम्।।"

इसके अतिरिक्त भी सत्त्वों के आधार पर जहाँ "तन्त्रचतुष्टय" का वर्णन है, वहीं वर्णों के आधार पर ब्राह्मणके लिए "क्रियातन्त्र" वैश्य के लिए "चर्यातन्त्र" क्षत्रिय के लिए "योगतन्त्र" तथा शूद्रों के लिए " अनुत्तर योग तन्त्र" का विभाजन किया गया है। यही विभाजन क्रमशः वैभाषिक सौक्रन्तिक , सौत्रान्तिक, विज्ञानवादियों तथा माध्यमिकों के लिए भी है।

निष्कर्षतः बौद्धतन्त्र की साधना पद्धति तथा उनके वांङ्मय के आधार पर आलोच्य और आलोचना के आलोक , अनुभूति और अनुकरण के रूप में कहा जा सकता है कि बौद्धतन्त्र मूलतः वैदिक क्रियाकाण्डों से पूर्णतः प्रभावित है। उनके तन्त्रागमों के दार्शनिक उपादेय है, जितनी वेदों की , क्योंकि उनके द्वारा प्रदत्त सदुपदेशों का गलितार्थ भी पूर्ण निर्वाणपरिपाक है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्रीमद्भगवद्गीता में योग की अवधारणा

प्रो0 गयाराम पाण्डेय*

श्रीमद्भगवद्गीता का आध्यात्मिक साहित्य में अद्वितीय स्थान है अध्यात्म साधना के प्रमुख मार्गो का इसमें अद्भुत समन्वय मिलता है। सनातन वैदिक चिन्तन धारा का इसमें विमल प्रवाह है जिसमे अवगाहन करने से शोक-मोहजनित ताप दूर हो जाता है और चित्त को विश्रान्ति मिलती है। भारतीय परम्परा इसे उपनिषदों का सार मानती है। इसके महात्म्य के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है। **सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।**

**पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतमृतं महत्॥**

स्वयं भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में यह वाक्य मिलता है इति **श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे...नाम...अध्यायः।**

इससे प्रमाणित होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता स्वयं में उपनिषद् ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र है। शंकराचार्य के अनुसार उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या, अतः उपनिषद् और ब्रह्मविद्या समानार्थक ही है। श्रीमद्भगवतगीता में औपनिषद चिन्तन की व्याख्या है और जीवन तथा ब्रह्म की तात्विक एकता का निरूपण है। इस विषय में प्रायः मतैक्य है। श्रीमद्भवद्गीता को योगशास्त्र कहने का तात्पर्य है कि इसमें योग का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

आचार्यो का मत है कि गीता में तीन प्रकार के योग का उपदेश है, 1. सांख्ययोग अथवा ज्ञानयोग 2.कर्मयोग और 3. भक्तियोग, शास्त्रों में भवबन्धन से मुक्ति के लिए ज्ञान,कर्म और भक्ति को पृथक् पृथक् अथवा समुच्चित रूप से उपाय बताया गया है। परन्तु गीता इन्हे योग के रूप मे ही मुक्तिदायक मानती है।

अतः गीता की दृष्टि में योग की एक विशिष्ट अवधारणा स्वीकार करनी होगी और उसे गीता के शब्दो से ही समझना होगा। गीता में योग का लक्षण 'समत्व' के रूप में किया गया है-

**योगस्थः कुरू कर्माणि संग त्यक्त्वा धनञ्जय।**

**सिद्धयसिद्धयोः समो भृत्वा समत्वं योग उच्यते॥ 2/48॥**

अन्यत्र योग का स्वरूप बताते हुये गीता कहती है-

**त विद्याद दुःख संयोगवियोगं योग सञ्ज्ञितम।**

**स निश्रयेन योक्तब्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥6/23॥**

यहाँ समत्व का अर्थ है चित्त की समता, एकरूपता, सफलता–असफलता, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि परस्पर विरोधी परिस्थितियों में समानरूपता। गीता ने इसी को बुद्धियोग भी कहा है-

---

***अध्यक्ष, संस्कृत विभाग-महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद् धनञ्जय।**
**बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। 6/23।।**

अन्यत्र योग का स्वरुप बताते हुयें गीता कती है-

**त विधाद दुःख संयोगवियोगं योग सज्ज्ञितम।**
**स निश्रयेन योक्तो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। 6/23।।**

इसके अनुसार दुःख के संयोग का वियोग ही योग है। यहाँ दुःख शब्द सुख का भी उपलक्षण है। अतः दुःख और सुख की अनुभूति से शून्य स्थिति ही योग है। यह स्थिति समत्व से भिन्न नहीं है अतः दोनों उक्तियों का तात्पर्य एक ही है।

यद्यपि योग का स्वरूप निरूपित करनेवाली ये दोनों उक्तियाँ भिन्न-भिन्न संदर्भो में कही गयी है, परन्तु ज्ञानयोग, कर्मयोग, और भक्तियोग तीनो के सन्दर्भ में ये समीचीन है। कोरा ज्ञान बुद्धिविलास मात्र होता है। चित्त की समता के बिना वह अध्यात्म साधना की दृष्टियों से निरर्थक है। उससे अहन्ता और ममता दूर नहीं होता, संसार के पदार्थे में राग-द्वेष शान्त नहीं हाता और व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों में स्थिर नहीं रह पाता। ऐसा ज्ञान चित्त को शान्ति नहीं दे सकता उल्टे अहंकार अवश्य उत्पन्न कर देता है। ज्ञानी होने का दम्भ स्वयं को तो दुःख देता ही है। दूसरो के लिए भी उद्वेगकर होता है। समत्व रूप योग से संस्कृत होकर ही ज्ञान आत्मानुभूति और भवबन्धन से मुक्ति का साधन बनता है। इसी प्रकार कर्म भी योग के अभाव में बन्धनकारी है सामान्यतः कर्म किसी फल की प्राप्ति की कामना से ही किया जाता है। उस फल की प्राप्ति से सुख अथवा हर्ष होता है और वान्छित फल की प्रप्ति न होने पर शोक या विषाद होता है। फल अथवा फल की प्रप्ति में सहायक व्यक्तियों के प्रति स्वभावतः राग उत्पन्न होता है और उसमें बाधक तत्वों के प्रति द्वेष। । इस राग-द्वेष से कर्म की श्रृंखला बनती है जो कर्म के शुभाशुभ परिणाम के साथ संसार चक्र को गति देती है। जब तक संसार चक्र रूकता नहीं तब तक मुक्ति की आशा ही नहीं की जा सकती है। कर्मजनित भवबन्धन को तोड़ने के लिए गीता निष्काम कर्म का उपदेश देती हैं। काम अर्थात् फल की इच्छा और उसके प्रति आसक्ति (राग) का त्याग कर किया गया कर्म बन्धनकारी नहीं होता। न तो वह राग द्वेष उत्पन्न करता है और न शुभाशुभ परिणाम। परन्तु यह निष्कामता स्वाभविक नहीं है। इसके लिए चित्त का संस्कार अपेक्षित है। उस संसार की परिणति है योग अर्थात् समत्व बुद्धि। गीता में इसे व्यवसायात्मिका बुद्धि कहा है इस समत्व बुद्धि से युक्त पुरूष अपने जीवन काल में पुण्य और पाप से मुक्त हो जाता है। यह योग ही कर्मो में कुशलता है योगः कर्मसु कौशलम्, समबुद्धि से युक्त मनीषी कर्मो से उत्पन्न होने वाले फल को त्याग कर जन्मरूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते है-

**कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्वा मनीषिणः।**
**जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयन।। ( गीता 2/51 )**

इस प्रकार स्पष्ट है कि समत्व बुद्धिरूप योग के द्वारा ही कर्म में भवबन्धन को तोड़ने का सामर्थ्य आती है और वह मुक्ति का साधन बनता है।

गीता के अनुसार मुक्ति का तीसरा साधन भक्तियोग है । भक्तियोग से तात्पर्य अनन्य भक्ति से है अनन्य भक्ति से युक्त पुरूष परमात्मा के लिए ही समस्त कर्म करता है परमात्मा को ही एकमात्र आश्रय समझता है आसक्तिरहित होता है किसी प्राणी के प्रति बैर नहीं रखता वह सब प्रणियों के प्रति द्वेषभाव से रहित सबके प्रति मैत्री और करूणा के भाव से सयुक्त ममता और अहंकार से रहित सुख दुःख में समभाव वाला , क्षमाशील, सदा सन्तुष्ट मन, इन्द्रिय और शरीर को वश में रखने वाला



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृढ़ निश्चय और परमात्मा में अर्पित मन-बुद्धि वाला होता है उससे कोई जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं हाता। वह हर्ष अमर्ष और भय से मुक्त होता है। भक्तियोगी आकांक्षा से रहित बाहर भीतर से शद्ध, दक्ष पक्षपात से रहित दुःखो से मुक्त और सभी सकाम कर्मो का त्यागी होता है। वह न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है न शोक करता है न कामना करता है तथा शुभ-अशुभ सभी कर्मो का त्यागी है वह शत्रु और मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी ओर सुख दुःख आदि द्वन्द्वो में समभाव से रहता है तथा आसक्ति से रहित होता है। वह निन्दा और स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जो कुछ भी शरीर के निर्वाह के लिए प्राप्त हो जाये उससे सन्तुष्ट अनिकेत और स्थिर बुद्धि वाला होता है।

साधारण भक्ति अर्थात् भजन-कीर्तन आराध्य की सेवा आदि से इस भक्तियो में बहुत अन्तर है। इसमें योग अर्थात बुद्धि की समता भी है। इस योग के कारण ही भक्त भगवान् को अत्यन्त प्रिय हो जाता है, उसे उनका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है और वे उसके योगक्षेम का निर्वहन करते है—

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः समुपासते।**
**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ ( गीता 9/22 )**

योग अर्थात् चित्त की समता के लिए अध्यात्म-ज्ञान आवश्यक है। यह समता तभी होगी जब यह बोध हो कि सांसारिक पदार्थ जड़ और अनित्य है और जीव से इनका स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है। अनित्य पदार्थो का स्वभाव ही है उत्पन्न और नष्ट होना, उनके लिए हर्ष विषाद व्यर्थ है सब प्राणियों में एक ही आत्मा का वास है जो परमात्मा का अंश है। संसार के पदार्थ यहाँ तक कि शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि भी प्रकृति के गुणों से उत्पन्न हैं गुण स्वभावतः परिणामी है और प्राणियोंके समस्त क्रिया कलाप इन्हीं से संचालित होते है।

कर्मयोग और भक्तियोग के लिए ज्ञान की आवश्यकता का प्रतिपादन गीता में अनेकत्र हुआ है। कर्मयोग के निरूपण के विषय में गीता कहती है- **कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।**
**जन्मबन्धविनिर्मुक्तः पदं गच्छन्त्यनामयम ॥ ( गीता 2/51 )**

यहाँ मनीषिणः शब्द महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है-ज्ञानीजन। आगे पुनः गीता कहती है-

**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।**
**तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥**
**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।**
**समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥**

इसका स्पष्ट आशय है कि मोक्ष रूप दलदल को ज्ञान द्वारा पार किये बिना ऐहिक और आमुष्मिक विषयों से वैराग्य नहीं होता और परमात्मा में बुद्धि के स्थिर होने पर ही योग सिद्ध होता है।

सांसारिक पदार्थो में अनासक्ति उसी की हो सकती है जो गुणों और उनके कार्यो को तत्त्वतः जानता है-

**तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।**
**गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते॥ ( गीता 3/28 )**

जिसका सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कार्य बिना कामना और संकल्प के होते है तथा जिसके समस्त कार्य ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा भस्म हो गये है, उस महापुरूष को ज्ञानी जन भी पण्डित कहते हैं-

**यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंङ्कल्पवर्जिताः।**
**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ ( गीता 4/19 )**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है, जो देहाभिमान और ममता से रहित हो गया है जिसका चित निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थिर रहता है, केवल यज्ञ-सम्पादन के लिए कर्म करने वाले उस मनुष्य के सब कर्म पूर्णतः विलीन हो जाते हैं-

**गतसंङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।**
**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।। ( गीता 4/23 )**

गीता ने सांख्य (ज्ञानयोग) और योग (कर्मयोग) की एकता का स्पष्ट प्रतिपादन किया है

**साङ्ख्योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।**
**एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम।। ( गीता 5-4 )**
**यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।**
**एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।। ( गीता 5/5 )**

गीता कहती है कि जिनका मन समभाव में स्थित है उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है क्योंकि परमात्मा निर्दोष और सम है इससे वे परमात्मा में ही स्थित हैं-

**चतुर्विधां भजन्ते मां ज्ँना: सुकृतिनोऽर्जुन।**
**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। ( गीता7/15।।)**
**तेषां ज्ञानी नित्युक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।**
**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। ( गीता 7/16।।)**
**उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम।**
**अस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।। ( गीता 7/18।।)**

गीता में उपदिष्ट योग ज्ञान,कर्म और भक्ति तीनों का उपकार किंवा परिष्कारक है। इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय है। ऐकान्तिक निवृति असम्भव है और ऐकान्तिक प्रवृत्ति अनर्थकारी। व्यक्ति की लोकयात्रा और समाज की सम्यक स्थिति के लिए दोनों का सन्तुलन आवश्यक है। गीता में वर्णित योग इसका उत्तम उपाय है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तान्त्रिक मोक्ष का अथर्ववेदीय आधार

प्रो. राजेश्वर मिश्र*

आत्मा के स्वरूप का अवस्थान अथवा मोक्ष की प्राप्ति ही मानव जीवन का वास्तविक उद्‌देश्य है। तान्त्रिक साधना का भी मूल उद्‌देश्य पूर्णत्वलाभ है और एतदर्थ अपरिच्छिन्न शक्ति के साथ सदैव संयोग रहना आवश्यक है। शक्ति के संकोच से ही जीव की अपूर्णता अथवा बन्धन होता है। और शक्ति के विकास में ही उसकी पूर्णमत्ता अथवा मुक्ति है। तान्त्रिक दृष्टि से दीक्षा के द्वारा सदगुरु जीव की इस प्रसुप्त शक्ति को जगा देता है। इस शक्ति के जागते ही पशुरूप में परिणत संसारी आत्मा के मल (अज्ञान) की निवृत्ति हो जाती है और आत्मा को अपने दिव्यभाव का अनुभव हाता है तथा वह अपने दिव्य स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है क्योंकि वह तो स्वरूपतः दिव्य और शिव रूप ही है, जिसमें अनन्त ज्ञान एवम् अनन्त क्रियाएँ रहती है।[1] अतः शिव के यथार्थरूप स्वतंन्त्र शक्ति से युक्त रूप की प्रतीति ही मोक्ष है। आचार्य अभिनवगुप्त इसे स्वरूप प्रधान की संज्ञा देते हैं। यही सम्यक् ज्ञान है और इसे प्रकाशित करने वाली विद्या ही साक्षात् विमोचिका है।[2]

अनादिकाल से आत्मा के साथ एक आवरणात्मक द्रव्य का सम्बन्ध है। वह द्रव्य भगवान् की तिरोधान शक्ति के अधीन कार्य करता है। द्वैत शैव दृष्टि से इसी द्रव्य को मल कहते हैं। इस मल–नामक द्रव्य विशेष से आत्मा में पशुत्व की उत्पत्ति होती है और संसारी आत्मा पशुरूप हो जाता है तथा उसे संसार का अनुभव होता है। यद्यपि शुद्ध आत्मा चैतन्यरूपा संविच्छक्ति मल से रहित होने पर स्वरूप को प्रकाशित करने वाली और सर्वदा अभिन्न रूपवाली एवं परिणामहीन होती है, परन्तु बाह्य पदार्थों की सन्निधि के कारण बौद्धिक ज्ञान में तत्तत् प्रकार के विभिन्न आकारों की उत्पत्ति होती है और उनका आत्मा के बोध में आशय होता है। तदनन्तर बौद्धिक ज्ञान और आत्मसंविद्‌रूप पौरुष ज्ञान में पार्थक्य का ज्ञान न रहने के कारण ही ज्ञान में नानात्व भ्रम का आविर्भाव होता है। इसका मूल कारण पशुत्व का हेतुभूत मल है। जब तक मल की निवृति नहीं होगी तब तक पशुत्व दूर नहीं होगा और शिवत्व की अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकेगी क्योंकि यह आत्मा की शिव ज्योति और तेज अर्थात् दिव्यज्ञान और क्रिया को आवृत किए रहता है। यह तण्डुल के आवरण तुष के सदृश होता है। यही आणवपाश है। यदि आत्मा की नित्य और व्यापक चिच्छक्ति का इस आणवपाश से अवरोध न होता तो संसारावस्था में भोग निष्पत्ति के लिए कलादि द्वारा अपने सामर्थ्य को उत्तेजना की आवश्यकता न होती तथा मोक्ष के लिए परमेश्वर

---

*संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की कृपा अथवा बल का कोई प्रयोजन न होता है।

मल एक होने पर भी उसकी शक्तियाँ अनेक है, उनमें से एक एक शक्ति के द्वारा एक–एक आत्मा की चित्क्रिया का निरोध होता है। यतः द्वैत मत में मल द्रव्यात्मक है अतः केवल ज्ञान के द्वारा इसका नाश होना सम्भव नहीं है।[3] अतः ईश्वर के दीक्षा संज्ञक व्यापार के द्वारा इस मल की निवृत्ति हो सकती है। मल निवृत्ति का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नही है। यह दीक्षा ही मल को छुड़ाती है और आत्मा को शिवलोक में भी ले जाती है, जैसा कि स्वायम्भुव आगम में कहा गया है। **दीक्षैव मोचयत्यूर्ध्वं शैवं धाम नयत्यपि** चित् और अचित् का अविवेक मल से उत्पन्न होता है। अतः इस मल की निवृत्ति न होने तक पूर्णविवेक की प्राप्ति नहीं हो सकती।

यह आत्मनिहित मल जो आत्मा स्वभावरूप है, दीक्षा–कालिक ईश्वर की अनुग्रह शक्ति के प्रभाव से निवृत्त हो जाता है। जो जीव निष्काम है, भोगाकाँक्षा से विरहित है और मुमुक्षु है वही भगवच्छक्ति धारण करने का सर्वोत्तम अधिकारी है और पूर्णत्व–प्राप्ति में उसे कालाक्षेप भी नहीं करना पड़ता है। अतः ईश्वर के दीक्षा व्यापार द्वारा जीवों के मल–परिपाक होने पर उनके विरुद्ध कर्मों में समता प्राप्त होने पर तथा उनमें भोग–वैतृष्ण्य अथवा गुण–वैतृष्ण्य के उदय होने पर भगवत् कृपा से स्वातन्त्र्य शक्ति से युक्त शिव के यथार्थ स्वरूप की प्रतीति हो जाती है। इस अवस्था में प्रमाता अपने को शरीर मन, बुद्धि, प्राण से ऊपर शुद्ध प्रकाश विमर्शरूप संवित् का अनुभव करता है। उसे शुद्ध 'अहम्' की पूर्ण अनुभूति होती है। यह अनुभूति ज्ञानस्वरूप श्रीभगवान् की कृपा से उत्पन्न ज्ञान से होती है, क्योंकि भगवत् कृपा के कारण ज्ञान प्राप्त होने पर इसके साथ कर्मों का कोई विरोध नहीं रह सकता और कर्मक्षय होने से ही ज्ञानोदय होता है। वस्तुतः साक्षात् या अपरोक्ष ज्ञान का अविर्भाव होते ही हृदय ग्रन्थि का भेदन हो जाता है तथा संशयों का भञ्जन एवं कर्मों का विनाश हो जाता है और अन्ततः स्वप्रकाशमयी शक्ति का प्रकाशन हो जाता है। तान्त्रिक दृष्टि से यही मोक्ष है। इस प्रकार मोक्ष का न कोई धाम है और न कहीं अन्यत्र गमन होता है प्रत्युत अज्ञान–ग्रन्थि का भेदन तथा स्वशक्ति का प्रकाश–यही मोक्ष है।[4]

शिव के शिवत्व की साधना का कोई उपाय नहीं होता क्योंकि माया जगत् से समृद्ध होने के कारण उपाय भी उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं।[5] वस्तुतः ये उपाय मल प्रक्षालन तथा पापमोचन के है। ये पाप मल, कर्म और माया भेद से साधारणतः तीन प्रकार के है। इनमें मल ही प्रधान है। इस विषय में त्रिकशास्त्र एक ऐसे सिद्धान्त का प्रकाशन करता है जिसके अनुसार परिमित का परमोच्च में, लघु का

---

1. तन्त्रालोक1.156 : मोक्षो हि नाम नैवान्यः स्वरूपप्रधनं हि सः।
2. वही : सम्यक् ज्ञानस्वभावा हि विद्या साक्षाद् विमोचिका।
3. तदेव सा तु संविदविज्ञाता तैस्तैर्भावैर्विवर्तते।
   मलोपरुद्धदृक्छक्तेर्नरस्येवोडुराट् पशोः।।
4 परमार्थसार , कारिका 60 : मोक्षस्य नैव किञ्यिद्धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
   अज्ञान–ग्रन्थि–भिदा स्वशक्त्याभिव्यक्तता मोक्षः।।
5 मुण्ड उप 2.2.10: तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परम महान् में लय हो जाता है। इसे 'समावेश' तत्त्व कहा जाता है। इसमें चार उपाय बताए गए हैः आणवोपाय, शाक्तोपाय, शाम्भवोपाय तथा अनुपाय। इन्हें ही क्रमशः आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया शक्ति कहा जाता है जिनका उन्मीलन आभास क्रम मे किया जाता है तथा जिनसे अन्तःकरण में रहने वाले तत्व का बहिःस्फुरण होता है। इस प्रकार उपर्युक्त उपायो से साधक अपने मल का परिपाक करके भगवत्कृपा से मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। मोक्ष प्राप्ति के प्रसंग में यह ध्यातव्य है कि इसमें भगवत्कृपा का उदय होना अनिवार्य है। परमेश्वर की यह अनुग्रहशक्ति द्वैतवादियों के मत में सापेक्ष है अर्थात् भगवत्कृपा के उदय में कहीं जीव का मल पाक कहीं कर्मसाम्य, कहीं संन्यास और कहीं काल विशेष निमित्त माने जाते हैं, परन्तु अद्वैत दृष्टि से इनमें से किसी पर भी यह निर्भर नहीं रहता। अतः परमेश्वर की कृपा स्वतन्त्र है और इसी लिए यह अहैतुकी कृपा कही जाती है। वही परमेश्वर जीव का बन्धन भी करते हैं और मोक्ष भी। परन्तु मोक्ष का अधिकारी वही जीव होता है जिसका मल (अज्ञान) सर्वथा पक गया हो अर्थात् जल कर नष्ट हो गया हो। मलपाक से अनुग्रह शक्ति का पात होता है और शान्त निर्मल आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार होता है। परमेश्वर नित्यनिर्मल सर्वज्ञ और सर्वकर्ता है परन्तु पशु आत्मा मल माया और कर्मपाश में बद्ध होता है। परमेश्वर कृपा करके इन पाशों को छिन्न–भिन्न करके उसे अपने जैसा कर लेते हैं। यही शिव साधर्म्य की अभिव्यक्ति है और यही मोक्ष भी है। परन्तु जब तक पशु (बद्धजीव) के चैतन्यावरोधक आदि मल का अधिकार निवृत्त नहीं होता तब तक अनुग्रह की प्रवृत्ति नहीं होती और तमःशक्ति अथवा रोधशक्ति के निवृत्त हो जाने पर परमेश्वर अपनी अनन्त ज्ञानक्रिया अभिव्यक्त कर जीव को मुक्त कर देता है।अतः श्रीभगवान् ही गुरु हैं। वे ही जीवों के उद्धारकर्ता हैं। वे ही जीवों को माया के पंक से निकाल कर परमपद पर स्थापित करने में समर्थ हैं इसी लिए सर्वत्र उन्हीं का गुरुरूप में वर्णन किया जाता है। कल्प–प्रलय में और महाप्रलय में ज्ञान तथा धर्म के उपदेश से संसारी जीवमात्र का उद्धार करना ही उनका एकमात्र प्रयोजन है और यही उनकी कृपा है, जैसा कि योगभाष्य में स्पष्ट उल्लेख किया गया है **"तस्य आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम् ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषान् उद्धरिष्यामीति"**।[6] 'अतः परमेश्वर की कृपा ही एकमात्र मोक्ष प्राप्ति का हेतु है। 'अथर्ववेद' में यद्यपि मोक्ष सिद्धान्त का विकसित दार्शनिक रूप दृष्टिगोचर नही होता तथापि सांसारिक दुःखों एवं बन्धनों से मुक्ति हेतु ऋषियों द्वारा देवशक्तियों के प्रति की गई प्रार्थनाओं में तथापुरुष, प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, स्कम्भ, उच्छिष्ट ,रोहित, प्राण, वाक् आदि के रूपों में की गई परमसत्ता की कल्पना में तान्त्रिक मोक्ष सिद्धान्त के बीज अनुसन्धेय हैं। क्रान्तदर्शी मेधावीजनों द्वारा सदा ध्यान से प्राप्तव्य विष्णु के सर्वोत्कृष्ट दिव्य वैकुण्ठधाम (परमपद)[7] में मुक्ति का तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ, तीनों लोकों से अर्जित स्पृहणीय धन (सुख) को उनके दोनों हाथों से प्राप्त करने हेतु की गई प्रार्थना[8] में उस परमसत्ता के अनुग्रह का मूलाङ्कुर देखा जा सकता है।

---

6. मृगेन्द्रआगम : तमः शक्तयधिकारस्य निवृत्तेस्तत परिच्युतौ।
व्यनक्ति दृक् क्रियानन्त्यं जगदबन्धुरणो शिवः।।

7. अथर्व. 7.27.7 : तद् विष्वोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अथर्ववेद' में अनेकत्र ऋषियों द्वारा दैवी शक्तियों से बन्धन मुक्त होने तथा पाप से मुक्त होने की प्रार्थनाएँ की गई हैं। एक स्थल पर ऋषि ब्रह्मा ने मिर्ऋषि (पाप देवता) के पाशों एवं सब पापों से मुक्ति हेतु इन्द्रादि देवताओं से प्रार्थना की है।[9] एक अन्य स्थल पर ऋषि ब्रह्मां द्वारा आदित्य देवों से पाप मुक्ति हेतु प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।[10] एक अन्य मन्त्र में ऋषि अथवा रुद्रगणों से निन्दनीय पाप कर्मों के विनाश के लिए तथा अमरत्व प्राप्ति के लिए प्रार्थना किए जाने का उल्लेख है।[11] एक अन्य स्थल पर उत्पन्न होते ही मृत्यु पाश से जकड़े हुए जीवों को मुक्त करवाने के लिए ब्रह्मा ,भृगु आदि ऋषियों द्वारा बृहस्पति से प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है।[12] अथर्ववेद के एक सम्पूर्ण सूत्र में ऋषि ब्रह्मा द्वारा अग्निदेव से सम्पूर्ण पापों को भस्म करने की प्रार्थना की गई है[13] तथा एक अन्य सूक्त में ऋषि शुनःशेप द्वारा वरूणदेव से उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के पाशों से मुक्त करने की प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।[14] इनसे पृथक् 'अथर्ववेद' में स्थल–स्थल पर देवों से पाप मुक्ति हेतु प्रार्थनाएँ उपलब्ध होती है। कुछ एक मन्त्रों में तो स्पष्टतः पापकर्मों के लिए 'मल' शब्द का प्रयोग भी उपलब्ध होता है। एकमन्त्र में ऋषि आपो देवियों से मल (पापकर्म) को[15] तथा अन्यत्र जलाभिमानी देव अग्नि से निन्दनीय एवं पाप कर्मों को ब्रह्मा ले जाने की प्रार्थना करता है।[16] इन प्रार्थनाओं में तान्त्रिक मोक्ष हेतु मलपारक की अवधारणा का बीज देखा जा सकता है क्योंकि मलपाक अथवा पापकर्मों का विनाश हुए बिना जीव प्रभु की कृपा का अधिकारी नहीं बनता। अतः सर्वथा मलपाक के लिए जीव का निष्पाप एवं सब प्रकार के पाशों से मुक्त होना आवश्यक होता है, क्योंकि शक्तिपात का मार्ग तभी प्रशस्त होता है।

'अथर्ववेद' में अन्यत्र एक सम्पूर्ण सूक्त में ब्रह्मज्ञान रूपी आदन से मृत्यु को परास्त करने का उल्लेख मिलता है। इस सूक्त में ऋषि प्रजापति ने परिपक्व आत्मा से प्राप्त अमृत अर्थात् ब्रह्मज्ञान से मृत्यु को दूर करने का संकेत किया है।[17] इस स्थल पर वर्णित पापकर्मो के नष्ट हो जाने से प्राप्त ब्रह्मज्ञान में तान्त्रिक मोक्ष के मलपाक से शक्तिप्राप्ति का मूल देखा जा सकता है। आत्मशुद्धि अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा अत्तः करण की शुद्धि के बिना शक्तियों की प्राप्ति सम्भव नहीं है, अतः 'अथर्ववेद'

---

8. वही, 7.27.8. : दिवे विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उपरोरन्तरिक्षात्
   हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यांत् ।।
9. वहीं, 1.31.2 : नो निर्कृत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः।
10. वही, 6.114.2 : कृतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः।
11. वही, 5.6.8. : मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम्।
12. वही, 3.11.8 : यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त श्रायमानं सुपाशया।
    तं ते सतस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः।।
13. वही, 4.33 (द्रष्टव्य सम्पूर्ण सूक्त)।
14. 7.83 द्रृटव्य सम्पूर्णसूक्त
15. 10.5.24: प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्रदुःश्वप्न्यं प्रमलं वहन्तुफ
16. 7.94.3: इदमापः प्रवहत्यवद्यं च मलं च यत्।
17. 4.35: येनातरन् भूतकृतोऽपि मृत्युम् तेनौदनेनावितराणि मृत्युम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में एक सूक्त में अग्नि, सूर्य आदि देवताओं से आत्मशुद्धि की प्रार्थना की गयी है,[18] क्योंकि पवित्रात्मा अथवा सन्तपुरुष ही आत्मज्ञानी हो सकता है[19] तथा वही उस परम सत्ता का साक्षात्कार कर सकता है, जिसमें सम्पूर्ण जगत् एक रूप हो जाता है।[20] सूक्त में उल्लिखित इस तथ्य में तान्त्रिक मोक्ष के उस सिद्धान्त का बीज देखा जा सकता है जिसमें पूर्णमलपाक के पश्चात् ही जीव ईश्वरीय शक्ति का अधिकारी होता है।

किसी भी शक्ति को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उस शक्ति की सत्ता का बोध अर्थात् उसके प्रति श्रद्धा का होना अत्यावश्यक है। 'अथर्ववेद' के सप्तदश अध्याय में इस परम शक्ति की सत्ता का उल्लेख करते हुए ऋषि ब्रह्मा ने कहा है कि असत् में सत् और सत् मूं भूत (प्राणी) स्थित है।[21] इस रहस्य का भाव जिस साधक को हो जाता हैं वह शोक एवं मोह से उपर उठकर परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह तदरूप हो जाता है। यही भाव 'यजुर्वेद'[22] तथा 'श्रीमदभागवत'[23] में भी द्रष्टव्य है। प्रस्तुत मन्त्र में ईश्वर की सर्वत्र व्यापकता का भाव छिपा है। पुनः 'रोहित सूक्त'[24] में ऋषि ब्रह्मा ने रोहित को सर्वशक्तिमान् सत्ता और ईश्वर स्वीकार करते हुए उसी में सम्पूर्ण जागतिक पदार्थों एवं पारमार्थिक तत्त्वों का अधिश्रयण बतलाया है तथा उसी को मृत्यु तथा अमृत अर्थात् मोक्ष प्रदाता तथा अजन्मा देव भी माना है।[25] एक अन्य स्थल पर स्कम्भ को परमसत्ता मानते हुए उसी में सबकी प्रतिष्ठा स्वीकार की गई है। वहाँ एक मन्त्र में इस मन्त्र के द्रष्टा ऋषि अथर्वा ने उल्लेख किया है कि जो इस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म की उपासना करते हैं और जो उसमें विद्यमान चैतन्य का साक्षात्कार कर सकें वे ज्ञानी ब्रह्मरूप हो जाते हैं[26] क्योंकि उसी स्कम्भ संज्ञक ब्रह्म के अधीन मृत्यु तथा मोक्ष दोनों है।[27]

अथर्ववेद में प्रतिपादित उपर्युक्त तथ्यों में तान्त्रिक मोक्ष के सन्दर्भ में साधक के मन में परमसत्ता की व्यापकता एवं उसके प्रति श्रद्धा भाव का बीज माना जा सकता है।

परमशक्ति की उपासना में महत्त्वपूर्ण एवं ध्यातव्य सिद्धान्त आत्मसमर्पण का भाव है। प्रभु अर्थात् शक्ति को प्राप्त करने के लिए साधक को सर्वस्व समर्पण करना पड़ता है। इस सर्व समर्पण की भावना

18. 6.19 द्रष्टव्य सम्पूर्णसूक्त यथा–पुनन्तु मा देवजनाःपुनन्तु
19. 2.1.2: प्रतद् बोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गहा यत्।
20. 2.1.1: वेनस्तत् पश्चत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
21. अथर्व. 17.1.19 : असिति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं हभव्यं अहितं.।
22. यजु., 40.6: यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।, तु. ईशोप., मन्त्रसं.7।
23. भाग. पु., 3.24.46 : आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम्।
अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चातमनि।।.
24. अथर्व. 13.1–4 (द्रष्टव्य सम्पूर्ण चारों सूक्त)।
25. वही, 13.4.25 : स एव मृत्युः सोऽमृतं सीऽभ्यं स रक्षः।
26. वही, 10.7.24 : यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्।
27. वही, 10.7.15 : यत्राऽमृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के बाद मनुष्य के पास कुछ भी नहीं बचता और तब वह भगवद्रुप हो जाता है। 'अथर्ववेद' में ऋषि अथर्वा द्वारा दृष्ट एक सूक्त के अन्तिम चार मन्त्रों में इस सिद्धान्त का बीज निहित माना जा सकता है जिनमें ऋषि आदित्य की स्तुति करता हुआ कहता है कि मै सब पुरुषों सहित सम्पूर्ण शरीर सहित तथा सर्वात्मना जो कुछ भी मेरा है उन सब के साथ तुम्हारा शरणागत हूॅ।[28] श्रीमद्भगवतद्गीता भी इस बात की पुष्टि करती है।[29]

'अथर्ववेद' में ऋषि अथर्वा ने एक स्थल पर भूमि से प्रार्थना करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु ही शरीर का दूसरा मुख्य कार्य है, इसके बाद इसका और दूसरा कोई कार्य नहीं है।[30] ऋषि अथर्वा द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त में तान्त्रिक देहमुक्ति का मूल आधार अन्वेष्टव्य है। एक अन्य मन्त्र में ऋषि भृग्वङ्गिरा जगद्रूपी शकट को चलाने वाले परमेश्वर (इन्द्र) को मननशील ज्ञानी पुरुषों के अन्तःकरण में प्रकट होने वाला बताया है और यह उल्लेख किया है कि जो इसका दर्शन कर लेता है वह स्वार्थ का परित्याग करके सांसारिक भोगों को भोगता हुआ देहत्याग के अनन्तर जन्म–मरण से मुक्त होकर अपने अमृत–धाम को पहुॅचता है।[31] भृग्वङ्गिरा के इस कथन में भी तान्त्रिक देहमुक्ति का मूल आधार देखा जा सकता है तथा तान्त्रिकमोक्ष में ईश्वर–दीक्षा के सिद्धान्त का भी बीज भृग्वङ्गिरा के एक अन्य सिद्धान्त में खोजा जा सकता है जिसमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि ईश्वर जीव को सर्वप्रथम पवित्र करता हुआ उसे बढाता है, पुष्ट करता है अर्थात् उसकी शक्ति को जगाता है तथा अपनी कृपा से पुण्यलोक में परमसुख को प्राप्त कराता है। अन्ततः पवित्र होता हुआ जीव उन्नत होता है और अपने मूल स्थान को प्राप्त कर लेता है। तान्त्रिक दीक्षा का मूल आधार 'अथर्ववेद' में ऋषि ब्रह्मा द्वारा दृष्ट एक अन्य मन्त्र में भी अन्वेष्टव्य है जिसमें ऋषि अग्नि देव से उस वैकुण्ठपद को प्राप्त करवाने की प्रार्थना करता है, जिसे व्रत, दीक्षा और कायिक, वाचिक एवं मानसिक तप के सहयोग से सगुण ब्रह्मस्वरूप को जानने वाले अथवा परिवृद्ध कर्मरूप ब्रह्म के ज्ञाता प्राप्त करते हैं। इस बात का उल्लेख एक दृष्टान्त के साथ 'मुण्डकोपनिषद्' में भी उपलब्ध होता है।

'अथर्ववेद' के रोहित–सूक्त में ऋषि ब्रह्मा द्वारा प्रतिपादित अष्टाङ्गयोग एवं प्राणायाम द्वारा परमतत्व की प्राप्ति में तान्त्रिक मोक्ष के साधना, ध्यान आदि का बीज देखा जा सकता है जिसमें ऋषि यह कहता है कि क्रान्तदर्शी आत्मा रमणीय शरीररूपी रथ के साथ सम्बद्ध सप्त प्राणों को नियुक्त करता है और अपने द्वारा आचरित यमनियमादि अष्टांग योग के उपायों से परमतत्व को प्राप्त करता है।

---

28. इन्द्रस्य गुहीऽसि तं त्वा प्रपद्ये तं त्वा प्र विशामि। अथर्व., 5.6.11–14
सर्वगुः सर्वपुरूषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यम्मेऽस्ति तेन।।
29. मन्मना भव मद्भक्तो मधाजी मां नमास्कुरु एवं गीता, 18.65
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। वही 18.66
30. इदमिद् वा 3 नापरं जरस्यन्यदितोअपरम् । अथर्व. 18.2.51
31. इन्द्रो जातो मनुस्येऽन्तर्धर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः। वही 4.11.3
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन्।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तान्त्रिक मोक्ष की अवधारणा मे परमेश्वर अथवा इष्ट के अनुग्रह का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईश्वर की कृपा के बिना साधक जीव को मुक्ति अथवा शिवत्व की प्राप्ति कथमपि नही होती। 'अथर्ववेद' में ऋषि अथर्वा द्वारा दृष्ट सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् के सूक्त मे ब्रह्मवादिनी वाक् के आध्यात्मिक उत्थान की सर्वोच्च स्थिति का प्रतिपादन किया गया है जिसमें द्रष्टा एवं दृश्य का भेद समाप्त हो जाता है और साधक ब्रह्मसारूप्य को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत सूक्त में वर्णित ब्रह्मवादिनी शक्ति के इस कथन कि "जिस–जिस को मै चाहती हूँ। उसे बल–वीर्य (शक्ति) सम्पन्न बना देती हूँ, उस–उस को ब्रह्मगुण से युक्त अर्थात् ब्रह्ममय क्रान्तदर्शी और उस–उस को मेधावी बना देती हूँ।[36] परेमेश्वर या ब्रह्म के अनुग्रह के बिना मोक्ष प्राप्त न होने के तान्त्रिक सिद्धान्त का मूल आधार विद्यमान है। इसके अतिरिक्त ऋषि अथर्वा द्वारा दृष्ट एक अन्य मन्त्र में की गई प्रार्थना में कि "हम उसके क्रोध के पात्र न बनें प्रत्युत हम उसकी सुखकारी अनुकूल मति के विषय बनें"[37] अथर्वा द्वारा दृष्ट एक अन्य मन्त्र में बृहस्पति की स्तुति करते हैं, उनकी सुमति में रहने की कामना[38] में ऋषि ब्रह्मा द्वारा आदित्य देव के स्तवन में समर्पित एक अन्य मन्त्र में उनकी सुमति में रहने की कामना[39] में तथा ऋषि विश्वामित्र द्वारा दृष्ट एक अन्य मन्त्र में इन्द्र के अनुग्रह की कामना करते हुए ऋषि की इस उक्ति कि प्रभु! यदि हम पर कृपा करें तो पाप हमारा पीछा न करे और कल्याण हमारे सम्मुख खड़ा रहें।[40] परमशक्ति के अनुग्रह से मोक्ष प्राप्ति के तान्त्रिक सिद्धान्त का मूल आधार द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त ऋषि वेन द्वारा दृष्ट हिरण्यगर्भ सूक्त में ऐसा उल्लेख है कि संसार मे जीवन तथा मृत्यु 'क' संज्ञक अनिर्वचनीय प्रजापति के अधीन है।[41] जीव कुछ भी नहीं कर सकता। जीव के प्राक्तन कर्मों के अनुसार भगवदिच्छा से उसे संसार में जीवन तथा मृत्यु प्राप्त होती है। अतः अमृतत्व की इच्छा रखने वाले जनों को भगवान् के पादपद्मों की छाया का पावन आश्रयण करना चाहिये। इस तथ्य में भी तान्त्रिक मोक्ष में भगवदनुग्रह का मूल देखा जा सकता है क्योंकि जीवन तथा मोक्ष उन्हीं के अनुग्रह पर आधृत है।

---

32. अनड्वान दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात्।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्ष्या तपसा सह।
33. अग्निर्मा तत्रनयत्वग्निमैध दधतु में—।
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेअस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
34. तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यम्।।
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नृत्यः।
34. ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः।।
36. अथर्व. 4.30–3 : यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्।
37. वही. 7.21.3 : तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडी के अस्य सुमतौस्याम।
38. वही. 4.16.4 : उतो दितौ मधवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।
39. वही 17.1. 8 : स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्—।
40. वही 20.20. 6. इन्द्रश्च मृडयाति ने न नः पश्चातघं न शत । भद्रं भवाति नः पुरः।
41. वही 4. 2. 2. : यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्ततः ऋषि ब्रह्मा द्वारा दृष्ट एक आध्यात्मिक सूक्त में ऋषि द्वारा उद्घाटित इस रहस्य में भी तांन्त्रिक मोक्ष की अवधारणा का संकेत प्राप्त होता है, जिसमें ऋषि कहते हैं कि "वैदिक ऋचाएँ परम व्योम में प्रतिष्ठित उस अविनाशी प्रभु की निर्देशिका हैं जिसमें सम्पूर्ण देवता आश्रय ग्रहण करते हैं। जो इन मन्त्रों द्वारा उस अविनाशी प्रभु का साक्षात्कार नहीं कर सका वह ऋचा से क्या करेगा और जो उसे जान लेता है वह परमानन्द में निमग्न हो जाता है।

अतः 'अथर्ववेद' में उपलब्ध उपर्युक्त साक्ष्यों के सम्यक् विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परवर्ती आगम ग्रन्थों में विस्तरेण प्रतिपादित मोक्ष की अवधारणा के बीज स्फुट रूप से वैदिक मन्त्रों में निहित हैं।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदोक्त मानवीय एवं सामाजिक मूल्य और गीता

डॉ. भगवतशरण शुक्ल*

अखिल विश्व की संरचना के साथ उन सम्पूर्ण मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की भी संरचना हुई जिनके अनुसार चलकर मानव एवं समाज अपने उदात्त स्वरूप को धारण करता है । उन शाश्वत मूल्यों के विषय में यद्यपि सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय चर्चा करते हैं तथापि वेद सर्वथा प्राचीन अन्य सभी के मत में है, पर भारतीय परम्परानुसार अपौरुषेय हैं अनादि हैं, परब्रह्म के निःश्वास हैं (यस्य निःश्वसितं वेदाः) इनमें इन मूल्यों का वर्णन प्राधान्येन अनेकत्र हुआ है। ऋग्वेद कहता है जो सत्य के उपासक हैं, सत्य की रक्षा हेतु ही जिनका जन्म हुआ है, तदर्थ ही उनके कर्म हैं, जो सत्य की अभिवृद्धि में लगे रहते हैं। जो असत्य को दूरीकरणार्थ कठोर स्वरूप हो असत्य से द्वेष रखते हैं, उन मनुष्यों के सुखकारी आश्रय में हम सब सामान्यजन होंवे। जो सच्चरित्र विद्वान् हैं वे भी उन सत्याचरण करने वालों के आश्रय में निवास करें।''[1]

वस्तुतः सत्याचरण ही मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का प्रमुख बीज है, जिससे अन्य सभी मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की समवस्थिति होती है; क्योंकि सत्य साक्षात् ब्रह्म की प्राप्ति का भी मार्ग है, जिसमें सत्य की स्थिति होती है वही श्रेष्ठ और उच्च होकर भासित होता है।[2]

गीता इन्हीं सत्याचरण से समुद्भूत मूल्यों की अवबोधिका है। यह छोटा सा ग्रन्थ मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का संस्थापक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गीता-माहात्म्य में कहा गया है- यह ग्रन्थ भगवान् वेद व्यास के द्वारा चारों वेदों, अष्टादश पुराणों , नव व्याकरणों का सम्यक् मन्थन करके लिखे महाभारत रूप समुद्र का मन्थन करके सम्प्राप्त नवनीत रूप सारतत्त्व है। उस सारतत्त्व को कृष्ण ने अर्जुन के मुख में स्थापित किया था।[3]

गीता में अर्जुन को उद्देश्य करके भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी उन सिद्धान्तो का उपदेश किया है जो सभी आर्ष ग्रन्थों के सार हैं।

गीता के प्रत्येक अध्याय में किसी न किसी विशिष्ट मानवीय एवं समाजिक मूल्य का उल्लेख अवश्य हुआ है। प्रथम अध्याय सम्पूर्ण गीता का मुख्य भाग न होता हुआ भी गीतोपदेश की भूमिका तैयार करता है। अर्थात् अर्जुन के मोह के दूरीकरणार्थ उपदिष्ट गीता की पूर्व पृष्ठभूमि है जिसमें अर्जुन को मोह प्राप्त होता है। फिर भी कुछ सामाजिक मूल्यों की चर्चा महर्षि व्यास के द्वारा अर्जुन के माध्यम से अवश्य हुई है। यद्यपि इस प्रथम अध्याय में अर्जुन की महामोहग्रस्तता का, कर्तव्य-पालन से विमुख होने का वर्णन है तथापि युद्धविभीषिका के फलस्वरूप सामाजिक मूल्यों के उच्छेद का एक प्रबल सन्देश भी दिया कि परस्पर युद्ध का सर्वाधिक कुप्रभाव कुलस्त्रियों पर पड़ता है। क्योकि कुल-परम्परा, कुल-मर्यादा का अधिक भार उन्हीं पर रहता है। जब उन पर पिता, भ्राता, पति, पुत्र आदि का संरक्षण रहता है तब उनकी मर्यादा पूर्ण सुरक्षित रहती

---

*प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष, व्याकरण –विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। अतएव शास्त्रों में कहा गया है- **पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।**
**पुत्रा रक्षन्ति वार्द्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।** [4]

अर्थात् स्त्री कभी भी असुरक्षित नहीं रहती क्योंकि बालावस्था में पिता, युवावस्था में पति, वृद्धावस्था में पुत्र उंसके संरक्षा में रहते है। फलतः वह सनातन कुल मर्यादा का पालन पति-पुत्रादि के माध्यम से करती रहती है। युद्ध के द्वारा पिता, पति , भ्राता, पुत्र आदि के मारे जाने से वह असुरक्षित हो जाती है और दुष्ट आक्रान्ताओं से दूषित होने से ऐसे वर्णसंकर[5] सन्तान उनसे उत्पन्न होते है, जो पारम्परिक वंशगत मूल्यों का पालन नहीं बल्कि उसके उच्छेद करने में संलग्न होते हैं। इन वर्णसंकरों का शाश्वत सनातनीय पारम्परिक कुल एवं समाज के स्थापित मूल्यों का पूर्ण विनाश करना ही मुख्य कार्य होता है।

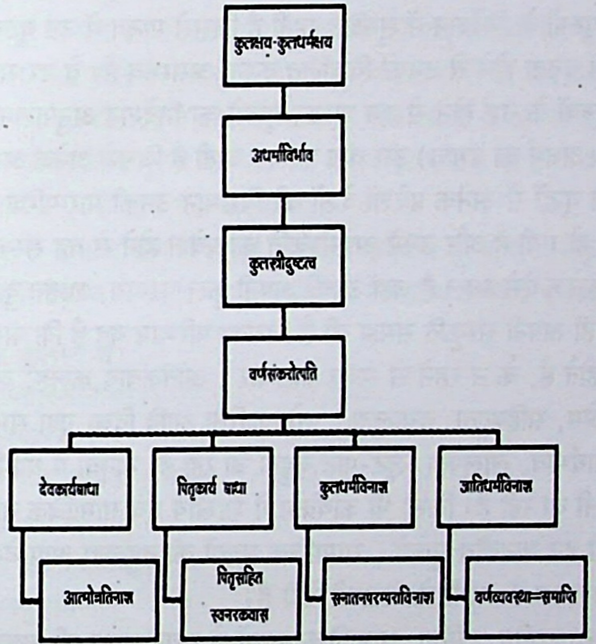


1. ऋतवान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिनरः स्याम ये च सूरयः।। ऋ. वे., 7/63/13
2. सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्ज्येष्ठमधि श्रितम्।। अ.वे. 10/8/19।।
3. अष्टादश पुराणानि नवव्याकरणानि च।
निर्मथ्य चतुरो वेदान् मुनिना भारतं कृतम्।।
भारतोदधि निर्मध्य गीता निर्मथितस्य च।
सारमुधृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे धृतम्।। गीता माहात्म्य 5,6।।
4. मनुस्मृति, 1/3
5. व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः।। मनुस्मृति 10/24।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इनके द्वारा उन मूल्यों के नष्ट करने पर परम्परा से सम्प्राप्त देवकार्य एवं पितृकार्य लुप्त हो जाते है जिससे पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह आदि पितृगण नरक को प्राप्त करते है। ये वर्णसंकर कुलधर्मो का जातिधर्मों का नाश कर देते है।[6] गीता के अनुसार इसका पूर्ण क्रम पूर्वरिखांकित प्रकार से बनेगा।

आज भी इस आधुनिक समाज में तथाकथित कुछ लोगों के द्वारा रूढिवादी कहकर पाम्परिक मूल्य के सम्पालकों को अपमानित करने की कुचेष्टा की जाती है। वस्तुतः प्रत्येक वर्ग की उसकी रूढियाँ ही उसकी अपने कुल की, वर्ण की, देश की पहचान है। ये आलोचक अपनी परम्परा को नष्ट करना चाहते है। इन्हें पूर्वोक्त लक्षणों से परम्परावादी अवश्य पहचानें कि ये कौन हैं?

विश्व के प्रत्येक समाज में, देश में वहां के विद्यमान वंशों में एक पारम्परिक उदात्त मानव मूल्य एवं उनकी वह उदात्त संस्कृति परम्परया कुलश्रेष्ठ पुरुषों के निर्देशन में सुरक्षित रहती है जिससे मानव में उन मूल्यों के प्रति दृढता तथा स्वाभिमान रहता है। उनके अनुपालन में दृढ़ता होने से उनको विचलित करना असम्भव है। वे मर सकते है पर दूषित नहीं हो सकते। उन कुलसंरक्षक कुलश्रेष्ठ पुरुषों के नष्ट होने से उन शाश्वत मूल्यों का निर्देशन अनुपालन न होने पर उन कुल परम्पराओं के नाश होने से अपसंस्कृति (अधर्म का प्रभाव) उस वंश पर बढ़ जाती है जिससे अनेक अनर्थ उत्पन्न होते है। विश्व में घटित युद्धों से विशेषतः स्वजातीय युद्धों से अनेक प्रदेशों देशों की विद्यमान उनकी पारम्परिक संस्कृति उनके शाश्वत कुलधर्म-परम्परा के नष्ट होने से नष्ट हो गयी है और उनमें अपसंस्कृति का प्रवेश होने से वह संस्कृति आज इतिहास का विषय बन गयी है। आज भारत के भी अनेक ऐसे स्थल है जहां उनकी अपनी कुल-परम्परा, शाश्वत कुल-धर्म समाप्त हो गये हैं। उनकी सन्तानें उस अपसंस्कृति को ही अपनी संस्कृति समझ ली हैं जिसका परिणाम यह है कि पारम्परिक मूल्यों, जो जाति-परम्परा तथा कुल-परम्परा से प्राप्त होते है, के न रहने से सर्वत्र भ्रष्टाचार , आतंकवाद,कलह, व्यभिचार ,लूटपाट आदि व्याप्त है और स्वदेश प्रेम, मानव प्रेम, सहिष्णुता, दयालुता , परोपकारिता आदि दिव्य गुण समाप्त होते जा रहे हैं। इनके स्थान में आतंकवाद, भोगवाद, स्वार्थभाव, लोलुपता, लूट-पाट बढ़ता जा रहा है। मानवों में धार्मिकता भी दिखावा, स्वार्थ भावना, मौज मस्ती का रूप लेती चली जा रही है। किसी भी कार्यक्रम में शास्त्रीय एवं सामाजिक मान्यताओं के प्रति लोगों में आस्था नहीं बन पा रही है। जहाँ भी इन मानवीय मूल्यों , सामाजिक मूल्यों की बहुलता आप देखते हैं, वहां अवश्य उनके पीछे वे उनके संवाहक सज्जन अवश्य हैं। तभी वे दिखायी देती है।

वेद भी एक स्वच्छ सनातनीय धार्मिक, सामाजिक मूल्यों से युक्त समाज की स्थापना का उपदेश देते हुए कहते हैं कि सहृदयता , सौमनस्य, अविद्वेष, परस्पर स्नेह भाव आदि मानवीय गुण समाज में अवश्य होना चाहिए। पुत्र पिता तथा माता का अनुसरण करे । पति पत्नी परस्पर सौमनस्यपूर्वक व्यवहार करें, भ्राताओं में तथा बहनों में परस्पर द्वेष भावना कथमपि

---

6. यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।।
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।।
अधर्माभिभावात् कृष्ण! प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायन्ते वर्णसंकराः।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न रहे। प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह सबसे मधुर वाणी से व्यवहार करे । समाज में वही कार्य सबके द्वारा किया जाय कि जिससे किसी से विरोध न हो पाये। सबके अन्दर उत्तम ज्ञान हो। समाज में श्रेष्ठ मनुष्यों का सम्मान करने वाले विचारशील, कार्यसिद्धि में तत्पर एक सर्वोत्तम मानव के नेतृत्व में चलने वाले परस्पर विद्वेष रहित परस्पर मधुर प्रियभाषी मनुष्यों वीर, धीर, गम्भीर पुरुषों का बाहुल्य हो। उनसे ही सर्वोत्तम समाज की स्थिति बनती है।[7]

समाज के मानवीय मूल्यों के उच्छेदक तत्त्वों के विषय में भी वेद सभी का ध्यान आकृष्ट करते है। वे कहते हैं कि जिनके आचरण एवं व्यवहार उल्लू पक्षी के समान मूर्खतापूर्ण हैं, जो ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र एवं परम्परा की बातों को परिहास में उड़ा देते हैं उनमें उनकी वैसे ही श्रद्धा नहीं है जैसे उल्लू को सूर्य के विषय में कोई श्रद्धा,विश्वास या ज्ञान नहीं है। जो भेड़ियों के समान अकारण या स्वार्थसिद्धि हेतु हिंसा में तत्पर रहते हैं तथा समाज के परमघातक हैं। कुत्तों के समान जो अत्यन्त स्वार्थी, स्वजन विरोधी, स्वभिन्न वर्ग के प्रति सत्यनिष्ठा वाले है, अपनों को शत्रु समझते हैं। सामान्य चिड़ियाँ आदि पक्षियों के समान अत्यन्त कामी तथा चंचल बुद्धि वाले है। गरुड़ के समान दुरभिमानी सभी को भयभीत कर, दबा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले हैं। गृद्धों के समान अत्यन्त लोभी, दूसरों के धन, मांस आदि से अपना तथा अपने परिवार का पोषण करने वाले हैं। ये सभी सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों के विनाशक मनुष्य हैं। समाज की इन विपरीत बुद्धि वालों से विचारक पूर्णसबल, सत्त्वसम्पन्न एवं सत्यनिष्ठ पुरुषों द्वारा रक्षा करनी चाहिए।[8]

अर्जुन ने स्व-सजातीय युद्ध से सम्प्राप्त सामाजिक एवं पाम्परिक मानवीय मूल्यों एवं संस्कृति की हानि से सम्पूर्ण मानव जाति की रक्षा चाहते हुए पूर्वोक्त बातें श्रीकृष्ण से कहीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वितीय अध्याय में अर्जुन से कहा कि जिन मानवीय

---

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।। गीता, 1/38-43।।

7. सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शंतिवाम।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।।
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।। अथर्ववेद, 3/10/1-5।।

8. (क) उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।। अथर्ववेद, 8/4/22।।
(ख) आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्रतिंहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि।। अथर्ववेद 8/2/12।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मूल्यों की रक्षा की बात बड़े पंडित की तरह जो तुम कर रहे हो उन्हीं में स्वकर्तव्य पालन भी एक मानवीय मूल्य है। स्वकर्म का त्याग कर मानवीय मूल्यों की रक्षा करना सम्भव नहीं है; क्योकि संसार के प्रत्येक जीव सदैव विभिन्न योनियों में स्वकृत कर्मानुसार जन्म धारण करते हैं। हम सब भी इस इस जन्म से पूर्व किसी योनि विशेष में जन्म लिए रहे होंगे तथा अग्रिम जन्म में भी (यदि मोक्ष न हुआ तो) शरीर धारण करेंगे। शरीर विनाशशील है, आत्मा नहीं। आत्मा वस्त्र की भांति प्रत्येक जन्म में शरीरों को बदलती रहती है। आत्मा अमर, अजर, अजन्मा है , अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकारी है।[9]
प्रत्येक जन्म लेने वाले का मरण और मरने वाले का जन्म सुनिश्चित है। फलतः आत्मीय जनों के विषय में शोक करना तुम्हारा अनुचित है। जन्म – मरण की प्रक्रिया में मनुष्य की भूमिका निमित्त मात्र है। अतः क्षत्रिय का कर्तव्य जो धर्मयुद्ध है, उसे तुम्हें करना चाहिए। इस विषय में सुख-दुःख , लाभ-हानि, जय-पराजय आदि में समभाव होना चाहिए। व्यक्ति का अपने कर्म में अधिकार है, कर्म फल में इच्छा या आसक्ति नहीं होनी चाहिए। इसलिए निस्पृह हो, निरहंकार ममतारहित होकर शास्त्र-विधानोक्त कर्मपालन करके ही शान्ति प्राप्त कर सकते हो[10]

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कर्मनिरूपण के प्रसंग में इन्द्रियों को नियन्त्रित कर आसक्तिरहित हो फल में बुद्धि न रखकर कर्मयोग के आचरण की शिक्षा देते है और यज्ञ से अतिरिक्त कर्म को लोकबन्धन कारक मानते है। स्व-कर्तव्य पालन से समाज के मूल्यों की रक्षा होती है। उसके बिना सम्पूर्ण प्रजा ही नष्ट हो जाती है। दूसरे के लिए निर्धारित अच्छे कर्म की अपेक्षा अपने लिए निर्धारित थोड़ा कम अच्छे कर्म को ही श्रद्धापूर्वक करना चाहिए क्योंकि अपने धर्मपालन में मरण भी श्रेयस्कर है, मंगलदायक है। परन्तु दूसरे का धर्म भयदायक होता है। काम, क्रोध, लोभ का पूर्ण त्याग कर इन्द्रियों को वश में करके स्वकीय शास्त्रानुसार निर्धारित कर्म का पालन एक कर्मयोगी को करना चाहिए।[11]

वेद भी आत्मा को अजर, अमर वर्णित करते हुए कहता है कि प्राणियों के शरीर में विद्यमान यह आत्मा रूपी कल्याणी देवता अजर-अमर है। जिस प्राणी को आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है वह सच्चा कर्मयोगी है प्रशंसनीय है।[12] यही आत्मा

---

9. अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूँश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। गीता, 3/7,9,19,35,37,43
10. इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता। शये स यश्चकार जजार सः। अथर्ववेद, 10/8/26
11. रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश।। ऋ. 6/47/18
12. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। यजु., 40/2



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अज्ञानियों के द्वारा शरीर के माध्यम से पुरुष, स्त्री, कुमार (कुमारी), युवा; वृद्ध आदि शब्दों से व्यवहार में कहा जाता है। यही कर्मानुसार अनेक योनियों में घूमता हुआ विभिन्न शरीर धारण करता है।[13] आत्मतत्त्व को जानकर कर्त्तव्य पालन करना ही प्रत्येक मानव का परमकर्तव्य है और उस कर्तव्य का पालन फलेच्छा रहित हो अनासक्त भाव से करना चाहिए। ऐसा करने से जो कर्म करने वाला है उसे उस कृत कर्म से उत्पन्न दोष प्राप्त नहीं होते ।[14]

काम ,क्रोध, लोभ आदि ये चित्त के विकार सदैव कर्म-कर्त्ता से दूर रहने चाहिएः क्योंकि ये चित्त को दूषित कर आत्मबल को कमजोर करते हैं। इनसे चित्त मरणासन्न स्थिति को प्राप्त करता है। इनसे रहित हो शुद्ध मन जीवित-सा कर्मयोग में संलग्न होता है।[15]

भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि के क्रम मे प्राणियों के प्रकृति जन्य सात्त्विक, सात्त्विक राजस, सात्त्विक राजस तामस, स्वभावों के आधार पर मानव योनि को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चार वर्ण जातियों में विभक्त किया था। इसलिए सम्पूर्ण धरातल में यही चार वर्ण जातियाँ थीं। काल एवं परिस्थितियों के प्रभाव से भारतादि कुछ देशों को छोड़कर अन्यत्र यह व्यवस्था संकरदोष होने से नष्ट हो गयी। अन्तःकरण की शुद्धि , जितेन्द्रियता , तपश्चर्या , पवित्रता, क्षमाशीलता, सरलता, वेदवेदाङ्गादि ज्ञातृत्व, वेदबोधित सत्कर्म पालनपूर्वक परमतत्त्व रूप विज्ञान साधकत्व आस्तिक्य, ये स्वाभाविक गुण तथा कर्म ब्राह्मण के होते हैं।

---

13. अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवितो मनः ।। ऋ.वे., 10/164/1

14. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।
विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।। गीता 2/11,12,22,25,27,38,47,71

15. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।
यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शम ,दम, तप, पवित्रतादि के साथ शौर्य , तेजस्विता, धैर्य , दक्षता, धर्मार्थ युद्ध में दृढ़ता , अपलायनकर्तृत्व, दानित्व, स्वामित्व आदि गुण एवं कर्म क्षत्रिय के स्वाभाविक होते हैं। कृषि, गोरक्षा, व्यापार, कर्म, दान, शम,दम ये वैश्यो के स्वाभाविक गुण एवं कर्तव्य हैं। सत्यपालन, यथासम्भव शुचिता, जितेन्द्रियता तीनों वर्णो के कार्यो में सहायता प्रदानार्थ सहायक के रूप में अपनी सेवा वृत्ति लेकर प्रदान करना तथा शिल्पकर्म के द्वारा समाज की सेवा करना यह शूद्रो के स्वाभाविक गुण एवं कर्तव्य है। ये प्रत्येक वर्ग के मानव अपने-अपने कर्मो में संलग्न हो सिद्धि को प्राप्त करते हैं।[17]

आज प्रायः देखा जाता है कि ब्राह्मणों को क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के कर्म अच्छे लगते है। तथैव क्षत्रियों को ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के कर्म अच्छे लगते है। इसी प्रकार वैश्यों को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शूद्रों के कर्म अच्छे लगते है। ऐसे ही शूद्रों को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के कर्म अच्छे लगते है। इन सबकों अपने-अपने कर्म करने में लज्जा एवं हीन भावना उत्पन्न होती है। सभी का अपने कर्मों के प्रति स्वाभिमान लुप्त हो गया है। ऐसे ही भारतीय परम्परा भिन्न वर्ग के मनुष्यों में स्वकर्म के प्रति लज्जा पर कर्म प्रति गौरव की अनुभूति हो रही है। कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग एवं नेतागण भी सभी कार्य सभी के लिए हो सकते है ऐसी अवैज्ञानिक धारणा बनाकर इस अव्यवस्थित विचारधारा को प्रोत्साहित कर रहे हैं। पर गीता का कथन इससे भिन्न है। गीता स्वभावगत व्यवस्था जिसकी स्थापना सृष्टि के समय ही परमात्मा द्वारा की गयी थी उसी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर मानव मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों की स्थापना चाहती है।[3] वह कहती है कि अपने-अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्म करने से ही व्यक्ति वास्तविक सिद्धि को प्राप्त करता है। वस्तुतः उसके निर्धारित कर्म ही विराट् पुरुष परमात्मा के आराधना के साधन है। वह उन अपने वर्ण विहित कर्मों से उस परमात्मा की आराधना रूप सिद्धि प्राप्त करता है। दूसरे के अपने को सुन्दर लगने वाले कर्मो की अपेक्षा अपने गुणरहित कर्म भी अपने लिए अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। वे भले उसे अच्छे न लगें पर उनके करने से उसे पाप नहीं लगता, किन्तु अच्छे लगने वाले दूसरे के कर्म पाप उत्पन्न करते हैं। इसलिए दोषयुक्त भी स्वकर्म त्याज्य नहीं है, क्योंकि अग्नि जैसे धूम से दूषित है वैसे ही प्रत्येक श्रेष्ठ दिखने वाले कर्म भी किसी न किसी दोष से युक्त हैं। मुख्य कारण इसका यही है कि सभी कर्मो का आरम्भ ही दोष से है अर्थात् आरम्भ में कोई न कोई दोष रहता ही है तो फिर दूसरे के दोषयुक्त कर्म करने की अपेक्षा अपने दोषयुक्त कर्म क्यों न किया जाय?

---

16. (क) चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ।। गीता, 4/13।।
(ख) ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्मणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। गीता, 18/41।।

17. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।। गीता 18/42-45 ।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतः निष्काम फलेच्छारहित जितेन्द्रिय हो , स्वकर्म का पालन ही करना चाहिए।[18]

जिस प्रकार गीता में चातुर्वर्ण्य धर्मो का उल्लेख है उसके मूलस्रोत वेद में भी प्राप्त होते हैं। वेद में भी ब्राह्मण को अहिंसक, तपस्वी, ज्ञानी, वेदज्ञ, सत्यवाक् , धर्मोपदेशक, सरल, सदाचारी कहा गया है।[19] तथैव क्षत्रिय को शौर्य वीरादियुक्त क्षमाशील, विजयशील, धन स्वामी, शस्त्रास्त्रविद् धनुर्विद्या प्रवीण, शत्रुनाशक तथा परमवीर होना कहा गया है।[20] वैश्य को ऐश्वर्य सम्पन्न, धन विध्वंसक, वैरी, डाकू तथा भ्रष्टाचारियों से अपने को सुरक्षित करके धन रक्षा करने वाला, उत्तम गोष्ठ एवं गौवों का स्वामी कृषिकर्मकर्ता कहा गया है।[21]

शूद्र को अनेक शिल्पविद्, तथा समाज के सभी वर्गो का सेवक कहा गया है।[22] ये सभी वर्ण जाति के मानव जब उत्तम रीति से स्वकर्म पालन करते हुए समाज की अपने कर्मो से उन्नति चाहते हैं तभी उदात्त मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की स्थापना एवं रक्षा होती है।[23]

गीता सर्वत्र  वेद बोधित मानव मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों को सरल एवं सहज भाव से जनसामान्य का बतलाकर उनकी स्थापना करती है। गीता समस्त मानवीय समस्याओं का समाधाता ग्रन्थ हैं। इसीलिए महर्षियों की सूक्ति सदा प्रासंगिक रहती है— **''गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ॥''**

---

18. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।, स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।, स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।।
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।, सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।, नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।।   गीता, 18/46-49
19. ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो धर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न केचित्  ।। ऋ. वे. 7/103/8
20. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ् जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषळहः साह्वान् पृतनासु शत्रून्  ।। ऋ. वे. 7/103/8
21. इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न एतु पुर एता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्   ।। अथर्ववेद, 3/15/1
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु   ।। अथर्ववेद, 4/21/6
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिंगय   ।। अथर्ववेद,3/17/6
ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मध्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ।। अथर्ववेद, 3/5/6
22. रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं  राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ।। यजु.  18/48
23. इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवी पञ्च कृष्टयः।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहन् ।। अथर्ववेद, 3/24/3

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# प्राकृत साहित्य एवम् आधुनिक शोध-प्रविधियाँ

**प्रो0 हरिशंकर पाण्डेय***

जीवन का सौन्दर्य, मन की सात्त्विकता और चैतन्य का प्रकाश ये तीनों भाषिक अभिव्यक्ति पाकर संसार के, मानवता के, विश्वजनीनता के सर्जन के सामर्थ्य से संवलित हो जाते हैं। भाषिक गुणवत्ता मानवीय जीवन का सुभग सांकेतिक लक्ष्य है, मानवीय अस्तित्व उस की समृद्ध विरासत, सम्पन्न परम्परा तथा जीवन रमणीयता का मधुमय उद्घोष है। यहाँ मधुमयता की अभिव्यक्ति माधवी भूमि पर सम्पन्न होती है। शिवत्व का, मांगलिकता का और परम शुभ का जहाँ संयोजन होता है। शब्दाक्षर की यात्रा करते-करते श्रौती संसार की सुभग सूक्ति ''एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'' से परिपूरित होकर धन्य-धान्यता एवं कृत्य-कृत्यता की सहज साधना तो हो ही जाती है, 'स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः' रूप पातञ्जलीया वाणी की शक्ति भी सम्पूरित हो जाती हैं। यही कारण है कि भाषा की महनीयता को सबने साधित करने का ललित प्रयास किया है। महामानव दण्डी ने तो यहां तक कह दिया—

**यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।**
**इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।।**

संसार में अनेक भाषाएँ है जिनकी अपनी अपनी महत्ता है, पहचान है, वैविध्यता तथा सारस्वत संज्ञान है। प्राकृत भाषा भी उन्ही में से एक है जो अपनी निसर्ग रमणीयता के साथ चारुवल्गुता एवं सहज रसनीयता के गुण से विभूषित है। इसमें आगमपुरुषों की, आप्तजनों की, महाप्रज्ञों की तपःसंभूत सहजोद्भावित ज्ञानरश्मियों की स्वयं समुत्थित उर्मियों से विलसित आगमवाणी का निसर्ग-विलास है, तो आर्षम् से भाषित त्रिकालाबाधित सत्य का विज्ञान है। महाकवि कालिदास, भासादि महाकवियों के ग्राम्य-पात्रों का सर्जन भी इस भाषा में हुआ है। सेतुबन्ध की रसिकजनोद्भाविका काव्यशैली का सशक्त निदर्शन भी मिलता है, जहाँ एक वाक्य में पूरे संवाद, सम्पूर्ण घटना की अभिव्यक्ति हो जाती है।

**दिटठ् त्ति ण नं सद्दहिअं झिण त्ति सबाहमंथरंः णिससीअं।**
**सोअई ति रूण्णंपहुणा जीअइ ति मारुइउवउढो।। सेतुबन्ध।। ( प्रथम आश्वास )**

महाकवि हाल की रसमयी हालाहली की चर्वणा भी इसी अमृत काव्य में संभव है। जिसने प्रकृतकाव्य की चर्वणा नहीं की समझो उसका जीवन ही व्यर्थ हो गया।

**अमिअं पाउकब्वं पढिउं सोउं जेण आनन्ति।**
**कामस्स तत्तन्तिं कुणति कह ते ण लज्जेति।।**

दो विधाताओं की रमणीया युवति सृष्टि की समुपलब्धि इसी रसमयी धारा में संभव है। महाकवि कालिदास की पार्वती

---

***विभागाध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम, सं.सं.वि.वि., वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का निर्माण एक विधाता ने एकत्र सौन्दर्य दर्शन की लालसा से विश्व के सभी सौन्दर्य-मानों के साथ किया है।—

**सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।**

**सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयैव॥ कु. 4.49**

तन्वीश्यामा नित्यसुभगा युवति यक्षिणी एक विधाता की आद्या सृष्टि है। प्राकृत की प्रकृतिमधुरा त्रैलोक्य सौभग विलासललिता कर्पूरमंजरी के निर्माण में विधाताओं की सर्जना शक्ति का सदुपयोग हुआ है।

**णूणं दुए पआपइणो जअम्मि जे देहणिम्मवणजोव्वणदाणदक्खा।**

**एक्को घडेइ पढमं कुमरीणमंगं कंडारिउण पअडेइ पुणो दुईओ॥ कपूंरमंजरी 3-17**

इस साहित्य में धर्म की धौरेयता, यश की सम्पन्नता के साथ कला की कमनीयता भी विद्यमान हैं। यह एक वैसा सागर है कि गोताखोर जिस कोण से डुबकी लगाए, अपार रत्नों का पात्र हो जाता है। उसे वह सबकुछ मिल जाता है, जो मानुष जन्म में दुर्लभ है।

प्राकृत-साहित्य परम्परा के उपलब्ध ग्रन्थों में प्रथम स्थान आगम साहित्य का आता है। "आगच्छतीति परम्परया वा, णज्जंति अत्था जेण, अत्तस्सवयणं वा आगमो, आविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः उपचारादाप्तवचनं च" आदि शिष्ट परिभाषाओं से संकलित आगम साहित्य आप्तवचन है। ऋषियों की सहजोत्था वाणी है। इसकी दो परम्पराएँ हैं— अर्द्धमागधी आगमसाहित्य एवं शौरसेनी आगमसाहित्य। आचारांगादि अंग एव अंग बाह्य आगमसाहित्य प्राचीनतम रूप से उपलब्ध है। इनमें अर्द्धमागधी की वैविध्यता के साथ ऋषिभाषिता रूप भी विद्यमान है। भगवान् महावीर का मूल उपदेश इसी अर्द्धमागधी आगम साहित्य में संरक्षित एवं सुरक्षित है। आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग व्याख्याप्रज्ञप्ति , ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशाध्ययन, अन्तःकृद्दशांग, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद आदि अंग आगम कहे जाते हैं। क्योकि इनकी रचना गणधरों द्वारा की गई है। इनमें दृष्टिवाद अनुपलब्ध है— उपांग साहित्य भी प्रभूत भाग में उपलब्ध है मूल, छेद सूत्र आदि , टीका साहित्य भाष्यचूर्णी आदि भी प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हैं।

ये आगम विषय की दृष्टि से अत्यन्त गंभीर एवं विशाल हैं। जैन परम्परा से सम्बद्ध दार्शनिक चिन्तन सरणि के मूलस्रोत ये ही आगम हैं। दार्शनिक विषयों के अतिरिक्त इनमें सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक, भाषिक, शैलीवैज्ञानिक विषय से सम्बद्ध अध्ययन सामग्री उपलब्ध है।

अर्द्धमागधी आगम एवं शौरसेनी आगम साहित्य षट्खण्डागम एवं कषायप्राभृत टीका साहित्य, सिद्धान्त एवं आचारमूलक साहित्य के अतिरिक्त चरित काव्य साहित्य आदि रूप में प्राकृत साहित्य की समृद्ध परम्परा विद्यमान है।

प्राकृत साहित्य में निम्नलिखित रूप से शोधप्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। साहित्य विषयक आधुनिक शोधप्रविधियों को अधोविन्यस्त में विभाजित किया जा सकता—

1. **सिद्धान्तगत अध्ययन–** ऐतिहासिक, समीक्षात्मक, सांस्कृतिक , दार्शनिक , भौगोलिक, तुलनात्मक, काव्य शास्त्रीय, भाषा शास्त्रीय, शैली वैज्ञानिक आदि अध्ययन सिद्धान्त के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।
2. **विषयगत अध्ययन–** किसी एक विषय को लेकर समग्रशास्त्रों के आधार पर शोधकार्य सम्पन्न करना विषयगत अध्ययन है। जैसे आत्मा, जीव, शरीर, इन्द्रिय, धर्म , तत्त्व, पदार्थ , मन, समाज, परिवार, नारी आदि किसी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी एक विषय का आधार लेकर अध्ययन कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।

3. **आधुनिक समस्याओं के संदर्भ में अध्ययन–** आधुनिक समस्याओं जैसे पर्यावरण , विश्वबंधुत्व, व्यक्ति-विकास, परिवार सामंजस्य , शिक्षा ,धर्म एवं समाज , जातिवाद, आतंकवाद आदि के कारण और निवारण विषयक चिन्तन के संदर्भ में प्राकृत साहित्य में प्रभूत सामग्री उपलब्ध हैं। इन विषयों के परिप्रेक्ष्य में उत्कृष्ट शोध कार्यों का सम्पादन किया जा सकता है।

4. **पाण्डुलिपि विज्ञान से सम्बद्ध शोध कार्य–** अभी भी हजारों, प्राकृत पाण्डुलिपियां शास्त्र भण्डारों में अपने उद्धार के दिन गिन रही हैं। उनका सम्पादन संवर्धन आदि दुरूह कार्य तो है लेकिन सांस्कृतिक संरक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान भी सिद्ध हो रहा है।

5. **कोशगत अध्ययन–** प्राच्यविद्या के क्षेत्र में अनेक कोशों का निर्माण हुआ है लेकिन प्राकृत के क्षेत्र में आज भी वांछ्य है। एतद्विषयक प्रभूतसामग्री उपलब्ध है, जैसे—प्राकृत वाङ्मय कोश, सामाजिक कोश, व्यक्ति कोश, स्थानकोश आदि अनेक श्रेष्ठ कार्य किये जा सकते है।

6. **आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में जैसे-** चिकित्सा विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, नृ विज्ञान, भू विज्ञान, मनोविज्ञान, से सम्बद्ध प्राकृत वाङ्मय मे ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में प्रभूत सामग्री उपलब्ध है। इन पर भी कार्य किया जा सकता है।

उपर्युक्त संदर्भ में कुछ आवश्यक प्रविष्टियों से सम्बन्धित निर्देश प्रसंग प्राप्त है। कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हे विद्वान् लोग पाश्चात्त्य जगत् की देन मानते है लेकिन उनका प्राचीन सम्बन्ध भारतीय प्रज्ञा से रहा है। यत्किञ्चित् विवेचन मान्य है—

**शैली वैज्ञानिक अध्ययन–** कवि-कथा, काव्य भाषा अथवा काव्य विन्यास प्रणाली के अध्ययन का नाम शैली वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें व्याकरण , काव्यशास्त्र , दर्शन, समाज विज्ञान तथा कवि प्रतिभा के ज्ञान के साथ आलोचक की व्युत्पत्ति समृद्धि अनिवार्य रूप से काम्य है। शैली वैज्ञानिक अध्ययन का विषय प्राचीन ऋषियों को ज्ञात था। काव्य-शास्त्रियों ने वक्रोक्ति, औचित्य, रीति आदि शब्दों से इसे अभिहित भी किया है। भारतीय शास्त्रों में प्रयुक्त एक-एक शब्द अगाध प्रयोजनीयता एवं अपनी सशक्त उपस्थिति के लिए अभ्यर्हित है। भारतीय मेधा की माधवी भूमि में जब प्रथम माधव मन्त्र का संधान सशक्तता और समृद्धि की भूमिका में होता है, जिसे आज के शैली वैज्ञानिक अध्ययन का श्रेष्ठ निदर्शन कहा जा सकता है। ऋग्वेद का ''अग्निमीडे पुरोहितम्'' रूप दिव्यमन्त्र शैली विज्ञान की सम्पूर्ण प्रविधियों से सम्पन्न है। 'अग्नि' शब्द का प्रथम उच्चारण समृद्ध अस्तित्व, अवबोध मानसिकता , सशक्त –तेजस्विता, अनवरत-गतिशीलता आदि आर्य धर्मों का सहज व्याख्यान करता है। यहां पर आर्यों की अग्नि जैसी तेजस्विता के साथ-साथ 'अग्नि अग्रणी भवति' की अग्रगामिता भी सिद्ध है। 'इतात् अक्तात् दग्धात्  वा।' इन तीन धातुओं की विभूति विद्यमान है। 'अ' शब्द का प्रथमोच्चारण श्रेष्ठता 'अ वै सर्वा वाक्' 'अक्षराणां अकारोऽस्मि' आदि धौरेय कीर्तिमत्ता की सहज अभिव्यक्ति भी हो रही है। छन्दः शास्त्रीय दृष्टि से 'मगण' का प्रथमोच्चारण भी श्री, समृद्धि, विभूति, विकास तथा चरैवेति चरैवेति के मांगलिक अनुष्ठान को भी अनुष्ठित करता है। वैदिक सभ्यता की सम्पूर्ण गुणवत्ता एक शब्द में समाहित है। 'अग्नि' शब्द के स्थान पर पावक, अनल आदि पर्याय अर्थाभिव्यंजन सामर्थ्य से परिपूर्ण नहीं है।

महाप्राण कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य 'शैलीविज्ञान' का विषय बनता है। रघुवंश का प्रारंभ ''वागर्थाविव सम्पृक्तौ



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वागर्थप्रतिपत्तये, जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ'' से होता है। इस वाक्य में शब्दार्थ ज्ञान की लालसा के माध्यम से कवि या सहृदय पाठक सम्पूर्ण विभूति को हस्तगत कर लेता है। वह विभूति जिसे जानकर भी नहीं जाना जा सकता, वह ''अकिंचन सन् प्रभवः स सम्पदाम्'' है तो त्रिलोकनाथ भी है। यहाँ हर शब्द विमर्शनीय है। एक श्लोक ही पूरा शोध विषय बन सकता है। यहाँ भी मगण प्रयोग है क्योंकि भारतीय समाज की समृद्धि और सम्पन्नता ही कालिदास को काम्य है। रघुवंशी राजाओं के व्याज से उस महामानव ने सम्पन्नता का मधुमय गीत गाया है। समृद्धि की स्रोतस्विनी बहाई है। जीवन को पूर्ण बनाने की सहज कला का आख्यान किया है। कभी न खंडित होने वाला मंत्र संगान किया है। 'सम्पृक्तौ' शब्द व्याप्ति सम्बन्ध का वाचक बना है। शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं और शक्ति के अभाव में शिव शव मात्र हो जाता है। शब्द और अर्थ अपृथक् सिद्ध है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। सम्पृक्त शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'पृच संयमने' धातु से प्रत्यय करने पर बनता है । 'प्रतिपत्तये' शब्द आनुभूतिक ज्ञान को संसूचित करता है। 'प्रतिपत्तिः परिज्ञानम्' यहां पर 'प्रतिपत्ति' शब्द से सम्यक् ज्ञान अभिलक्षित है। सम्यग्ज्ञान के बिना सांस्कृतिक अवबोध और राष्ट्रधर्म की संभावना नहीं की जा सकती है।

जैन आगम साहित्य में आचारांग प्रथम अंग आगम है, औपनिषदिक शैली में निबद्ध है। इसका प्रारंभ 'सुअं मे आउसं' से होता है। इसका चौथा मंत्र है-से आयावाई, लोयावाई, कम्मावाई, किरियावाई। वह पुनर्जन्म को मानने वाला आत्मवादी, लोकवादी ,कर्मवादी और क्रियावादी होता है। 'आस्तिक' की श्रेष्ठ परिभाषा इसमें अनुस्यूत है। 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः' रूप पाणिनीय-परिभाषा का व्याख्यान है। चारों शब्दों के प्रयोग में विलक्षण प्रयोजनीयता सिद्ध है। जो आत्मवादी होगा, आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करेगा, वह लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी भी होगा। इन चारो पदों के प्रयोग में मनोवैज्ञानिक दृष्टि भी है।

इस तरह संपूर्ण प्राकृत संस्कृत का अध्ययन वांछ्य है।

**2. व्यक्तित्व व्यवस्था सम्बन्धी अध्ययन–** आज Self management, Stress management आदि का बोल बाला खूब है। भारतीय साहित्य में व्यक्तित्व विकास, संवर्द्धन, व्यवस्था से सम्बद्ध प्रभूत सामग्री उपलब्ध है। व्यक्तित्व सफ़लता के सूत्र हैं— दृढ़ संकल्प , अटूट श्रद्धा, सम्यक् दृष्टिकोण , सह-अस्तित्व बोध आदि। दृढ संकल्प और कठोर परिश्रम के बिना व्यक्तित्व की सफलता कहाँ सिद्ध होती है। 'न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवाः' ऋग्वेदीय वचन 'देवा सहाया कृतिना भवन्ति, कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्, आदि समृद्ध सूक्तियां व्यक्तित्व विकास की गाथा को सिद्ध करती हैं। प्राकृत साहित्य में 'जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालीय विजहित्तु विसोत्तियं, 'अप्पणो बहिया पास, लज्जमाणा' पुढो पास, आदि मंत्र 'संगच्छध्वं, संवदध्वं, सं नो मनांसि जानताम्' की पुण्य भूमिका में कथित है।

**3- पर्यावरणीय अध्ययन–** प्राकृत साहित्य में पर्यावरण विषयक सामग्री की श्रेष्ठ समुपलब्धता है। वैदिक ऋषियों ने अग्नि ,जल, वायु, वृक्ष, लता आदि को देव माना है, तो जैनाचार्यों ने उन्हें षड्जीवनिकाय के अन्तर्गत परिगणित कर सर्वथा अवध्य माना है। कालिदास ने पर्यावरण सुरक्षा की कला सहोदर की भूमिका में सिखाई, तो महाप्राण भवभूति ने सफल अपत्य का आरोपण किया। राम सीता परित्याग के बाद वन जाते हैं तो आज भी गिरिमयूर माता सीता को याद करता है- 'स्मरसि गिरि मयूर एष देव्या'। वन के मृगछौने ,जिन को माता सीता ने पाला पोषा था, आज भी ठीक समय पर अपनी माता को खोजने आते हैं, लेकिन रोकर चले जा सकते हैं। ''नीरन्ध्रबालकदली वनमध्यवर्ती कान्ता सखस्य शयनीयशीलातलं ते।'' (उत्तरामचरित)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**4.मनोवैज्ञानिक अध्ययन–** मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, राजत्नीतिविज्ञान के क्षेत्र में भारतीय मनीषियों का प्रभूत योगदान है। भारतीय मनोविज्ञान इतना समृद्ध और सशक्त है कि उसकी तुलना में पाश्चात्त्य मनोविज्ञान का कोई अस्तित्व ही नहीं है। मन,मन की अवस्थाएँ, मन के कार्य, मन प्रक्षालन की प्रविधियाँ आदि विभिन्न मनोवैज्ञानिक सरणियों का चिंतन जैसा भारतीय आचार्यों ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है— "यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम् तदुसुप्तस्य तथैवैति दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।"

इन्द्रियों में मन की प्रधानता और सार्वभौमता का चित्रण कितना सुन्दर सारथि के उपमान-प्रयोग से किया है—

**सुषारथिरश्वान् इव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।**

**हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥**

मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है—मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । काम की महीनयता को ऋषि ने स्वीकारा है। प्रथम अस्तित्व काम का ही होता है। वाणी प्रमाण है—

**कामस्तदग्रे समवर्तताधि**

**मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ( ऋग्वेद )**

आचारांग का ऋषि कहता है- **कामकामी खलु अयं पुरिसे।**

वेद, उपनिषद् दार्शनिक काव्य साहित्य, प्राकृत वाङ्मय, पालिसाहित्य आदि सर्वत्र मनोविज्ञान विषयक प्रभूत सामग्री उपलब्ध है। विभिन्न प्रविधियों को आत्मसात् कर तद्विषयवक संदर्भ अपने घर में खोजने की आवश्यकता है। इससे राष्ट्र की समृद्धि एवं सांस्कृतिक विरासत के सम्पोषण के साथ-साथ उसका संवर्द्धन भी होगा और "आ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्" की सम्यावाक् पूर्ण तुष्ट एवं पुष्ट होगी।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# किरातार्जुनीय और शिशुपालवध महाकाव्य में दण्डनीति

प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी*

हरं नौमि हरिं चापि व्यासं सत्यवतीसुतम्।
देवर्षिं नारदं चैव भारविं माघसंयुतम्।।1।।

किरातं प्रथमं वन्दे माघकाव्यमनन्तरम्।
ययोर्वस्तु समाश्रित्य शोधपत्रं प्रकल्पितम्।।2।।

उपायेषु चतुर्थस्तु दण्डोऽयं प्रभुविग्रहः।
मृदुश्चापि कठोरो वा मर्यादाविधिरक्षकः।।3।।

दुष्टापराधिनस्सर्वे शत्रवोऽपि समन्ततः।
दण्ड्याः दण्डभयेनैव नियम्यन्तेऽल्पबुद्धयः।।4।।

आचार्यैः स्मृतिकारैश्च दण्डनीतिर्व्यवस्थिता।
ततोऽन्यैः काव्यकारैश्च यथायोग्यं प्रयोजिता।।5।।

किराते माघकाव्येऽपि प्रसंगस्यानुरोधतः।
प्रयुक्ता दण्डनीतिः सा शिष्टवाचा विराजते।।6।।

ताभ्यामेव समादाय ह्यत्र किञ्चिद्विमृश्यते।
याथातथ्यं भवेत्कथ्यं पथ्यं मथ्यं समीहितम्।।7।।

सर्वप्राचीन वाङ्मय वेद में 'दण्ड' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इस शब्द का प्रारम्भिक अर्थ डण्डा या छड़ी है। ऋग्वेद में (7.33.6) आये 'गो–अजनासः' का अर्थ है गाय (अथवा पशु) हाँकने का डण्डा। ऐतरेय ब्राह्मण (2.35) और शतपथ ब्राह्मण (1.5.4.6) के अनुसार दण्ड शब्द शस्त्र के अर्थ में भी प्रयुक्त है। यज्ञीय दीक्षा के अवसर पर भी एक व्यक्ति दण्ड लेकर खड़ा होता था ताकि विघ्नकारक दानवादि

---

*पूर्व आचार्य, संस्कृत–विभाग, म. गां. काशी विद्यापीठ, वाराणसी–221002

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को दूर भगा सके[1]। उपनयन संस्कार में तो दण्ड का उपयोग होता ही था और आज भी है। इसके प्रमाण हमें गृह्यसूत्रों में प्राप्त होते है।[2]

'दण्ड' अपने मूल अर्थ का त्याग न करते हुए कालान्तर में अधिकार, शक्ति और सामर्थ्य का सूचक हो गया है। ब्राह्मणों (विशेषतः ऋषियों और संन्यासियों) ने 'ब्रह्मदण्ड' धारण किया तो राजर्षियों ने भी छत्र के साथ राजदण्ड धारण किया। यह राजदण्ड 'सजा' के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। पारस्कर गृह्यसूत्र (3.15) में प्रयुक्त 'राजप्रेषितो दण्डः' इसी अर्थ का द्योतक है। शतपथ ब्राह्मण (5.4.4.7) में 'राजा के अदण्ड्य' होने तथा दण्डवध का अधिकारी होने का उल्लेख है। धर्म की अवधारणा के अस्तित्व में आने और न्याय–व्यवस्था के उदय के साथ ही 'दण्ड' उनका अङ्ग बनकर उनसे सम्बद्ध हो गया। किसी भी अपराध के प्रतीकार में प्रायश्चित्त के साथ ही सजा या दण्ड का विधान किया जाने लगा। इसके भी पर्याप्त और पुष्ट प्रमाण हमें वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मय में प्राप्त होते हैं।[3]

श्रुतियों का अनुसरण करने वाली स्मृतियों ने भी दण्ड के सम्बन्ध में व्यापक विमर्श करते हुए दण्डनीति का प्रवर्तन किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि दमन करने वालों में मैं 'दण्ड' हूँ– "दण्डो दमयितामस्मि नीतिरस्मि जिगीषिताम्।"[4] मनुस्मृति के सप्तम एवम् अष्टम अध्याय में 'दण्डनीति' विषयक व्यापक विचार प्रस्तुत किया गया है। महाभारतकार ने दण्डनीति को परिभाषित करते हुए कहा है–

**दण्डेन नीयते चेयं दण्डं नयति या पुनः।**
**दण्डनीतिरिति ख्याता त्रींल्लोकानभिवर्तते ।।**[5]

अर्थात्, यह संसार दण्ड के द्वारा सन्मार्ग पर लाया जाता है अथवा, यह शास्त्र दण्ड देने की व्यवस्था करता है, इसी से यह 'दण्डनीति' के नाम से प्रसिद्ध है और यह तीनों लोकों को अभिव्याप्त करके स्थित है। शुक्रनीति और नीतिसार में भी दण्ड तथा दण्डनीति को व्याख्यायित किया गया है–

**दमो दण्ड इति ख्यातस्तात्स्थ्याद् दण्डो महीपतिः।**
**तस्य नीतिर्दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते ।।**[6]

अर्थात्, दम (दमन=नियन्त्रण=शासन) को 'दण्ड' कहा जाता है। राजा को भी 'दण्ड' इसीलिए कहा जाता है क्योंकि शासन उसमें केन्द्रित है। दण्ड की नीति या नियमों को दण्डनीति कहते हैं और

---

1. शतपथ ब्राह्मण, 3.2.1.32.
2. पारस्करगृह्यसूत्र, 2.2.11.12, आपस्तम्ब बृह्यसूत्र, 1.19;1.22, शांखयनगृह्यसूत्र, 2.1.6.11.
3. डॉ. सूर्यकान्त : वैदिक कोश, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1963ई. पृ. 219–15.
4. श्रीमद्भगवद्गीता 10.38
5. महाभारत, शान्तिपर्व, 59.78.
6. शुक्रनीति, 1.157 तथा नीतिसार, 2.15



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'नीति'–यह संज्ञा (लोगों को सही रास्ते पर) ले चलने के कारण है। महाभारत में दण्डनीति को राजधर्म से सम्पृक्त कर दिया गया है और कहा गया है कि दण्डनीति क्षत्रिय (राजा) का विशिष्ट व्यापार है।[7] वहीं पुनः कहा गया है कि दण्डनीति अपने–अपने धर्म के पालन में चातुर्वर्ण्य को नियन्त्रित करती है–

**दण्डनीतिः स्वधर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति।**
**प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यो नियच्छति।।**[8]

दण्डनीति के अभाव में संसार मर्यादाओं के सारे बन्धन तोड़ डालेगा। अतः दण्डनीति ही समस्त विश्व का आश्रय है और इसे भगवती सरस्वती ने उत्पन्न किया है।[9]

आचार्य कौटिल्य ने दण्डनीति की गणना चार विद्याओं में की है– 'आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।[10] मनु ने दण्डनीति के साथ तीन तथा बृहस्पति ने दण्डनीति के साथ दो विद्याएँ स्वीकार की हैं।[11] जब कि शुक्राचार्य दण्डनीति को ही एकमात्र विद्या मानते हैं। 'दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः।[12]

कौटिल्य ने दण्ड और दण्डनीति के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है, 'आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः तस्य नीतिर्दण्डनीतिः।

**अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षणी रक्षितविवर्धिनी वृद्धस्य तीर्थे प्रतिपादनी च।**[13]

अर्थात् दण्ड, आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता–इन तीन विद्याओं के योग–क्षेम का साधन है। उस दण्ड का समुचित प्रतिपादन करनेवाली नीति दण्डनीति है। यह अप्राप्त को प्राप्त करानेवाली, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का संवर्धन और सवंर्धित का उपयुक्त पात्र में विनियोग करानेवाली है।

कौटिल्य की मान्यता है कि दण्डनीति पर ही लोकयात्रा (जीवन निर्वाह) निर्भर है। अतएंव राजा सदा उद्यतदण्ड रहे।[15] यथोचित दण्डविधायी राजा ही पूजित होता है– 'यथार्हदण्डः पूज्यते।[16] मनुस्मृतिकार ने भी ऐसा ही कहा है– 'दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्'।[17] महाकवि कालिदास की मान्यता है कि जो जैसा अपराध करे, उसे वैसा ही दण्ड दिया जाय– 'यथापराधदण्डानाम्'।[18] कौटिल्य ने कहा है कि सम्यग् ज्ञानपूर्वक प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम से योजित करता है।[19] समुचित दण्ड से

---

7. महाभारत, शान्तिपर्व, 69.104 8. वही, शान्तिपर्व, 69. 76
9. वही, वनपर्व, 150.32; शान्तिपर्व, 15.29, 63.28, 69.74 और 122. 25. 10. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 1.2.1.
11. वही, 1.2.2. ; 1.2.4. 12. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 1.2.6. 13. वही, 1.4.6.
14. वही, 1.4.4. 15. वही, 1.4.5. तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यद्दण्डःस्यात्।
16. वही, 1.4.10. तस्यामायत्ता लोकयात्रा, 17. मनुस्मृति, 8.26 तथा 7.19.
18. रघुवंशमहाकाव्य, 1.6. 19. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 1.4.11. सुविज्ञातप्रणीताहि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्षित राजा प्रभावशाली होता है।[20] अमरकोष के अनुसार, राजा का प्रभाव और प्रताप उसका वह तेज है जो कोष और दण्ड से उत्पन्न होता है– 'स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्।' इसीलिए राज्य के सप्ताङ्गों में दण्ड की भी गणना की गयी है।[21] कार्य–सिद्धि के चार उपायों में चौथा अन्तिम उपाय दण्ड ही है।[22] अन्ततः कौटिल्य का कथन है कि राजा के द्वारा दण्ड के आश्रय से फलित चारों वर्णों और आश्रमों से युक्त यह लोक अपने धर्म–कर्म में रहते हुए अपने लिए शास्त्रनिर्धारित मार्ग पर चलता है–

"चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु।।"[23]

संस्कृतसाहित्य में बृहत्त्रयी काव्यरत्नों की चारु मञ्जूषा है। महाकवि भारविकृत किरातार्जुनीय महाकाव्य और महाकवि माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य अपने विशिष्ट गुणों के कारण विद्वन्मण्डली में समादृत हैं। अपने वर्णन–वैचित्र्य से दोनों ही महाकाव्यों ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्यों की मूलकथावस्तु महाभारत से गृहीत है, स्वल्पकथावस्तु को इन विदग्ध महाकवियों ने अपनी प्रतिभा से महाकाव्यत्व का विस्तार दे दिया और ऐसी रचनाविच्छित्ति का प्रयोग किया कि सहृदय पण्डितों का मन काव्य की इस चमत्कार क्रीडा में खूब रमा। अलङ्कारप्रियता और काव्यक्लिष्टता की दिशा में वे एक को पीछे छोड़ने की होड़ लगाये हुए थे। 'तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः' और 'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः' इत्यादि प्रशस्तियाँ इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं। इन महाकाव्यों में उनके निर्माता महाकवियों का विविध विषयज्ञान और पाण्डित्य स्पष्ट ही परिलक्षित होता है।

यहाँ हम किरातार्जुनीय और शिशुपालवध की चर्चा एक विषयविशेष के परिप्रेक्ष्य में करने जा रहे हैं। दोनों ही महाकाव्य राजशासन के प्रसंगों से सम्पृक्त हैं। अतः इनमें राजनीति, कूटनीति और दण्डनीति का वर्णन होना स्वाभाविक है। लोक में दण्ड की व्यापकता और उसकी ग्राह्यता आदिकाल से सर्वविदित है। भारवि और माघ ने अपने काव्यों में विषयानुरूप प्रसंगतः दण्डनीति का वर्णन किया है। निःसन्देह इन दोनों महाकवियों ने पूर्ववर्ती आचार्यों एवं महर्षियों द्वारा प्रतिपादित दण्डनीति का ही सम्प्रयोग प्रदर्शित करते हुए उनके हितकर पक्ष का काव्यमय समुपवर्णन किया है। प्रस्तुत निबन्ध में इन्हीं दोनों महाकाव्यों में समुपन्यस्त दण्डनीति का किञ्चिद्विमर्श करने का प्रयत्न किया गया है, जो उन्हीं के उद्धरणों से मण्डित है।

भारवि की मान्यता है कि अपने शत्रुओं के विच्छेद की अभिलाषा रखनेवाले राजा को गुप्तचर की

---

20. वहीं, 1.4.15 स तेन गुप्तः प्रभवतीति।

21. स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा। सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गो राज्यमुच्यते।। मनु. 9.294. तथा कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 6.1; याज्ञवल्क्य. 1.353; विष्णुधर्मसूत्र, 3.33 कामन्दक., 1.16, 4.1–2; अग्निपुराण, 233. 12;महा., 69.64–65.;इत्यादि।

22. शत्रु पर विजय प्राप्त करने अथवा, कार्यसिद्धि की चार युक्तियाँ (उपाय) हैं–साम, दान, भेद, दण्ड।

23. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 1.4.16



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बातें एकान्त में सुननी चाहिए, वे बातें चाहे प्रिय हों अथवा अप्रिय। क्योंकि विश्वसनीय गुप्तचर प्रामाणिक सूचनाएँ राजा को प्रदान करते हैं। इससे दण्डनीति का एक पक्ष यह प्रकाशित होता है कि राजा को सदैव सावधान रहते हुए अपने शत्रु का उच्छेद करने के लिए सतत उद्यत रहना चाहिए।[24] दुर्योधन ने कपट द्यूत से युधिष्ठिर से राज्य छीना है। अतः वह सर्वदा उनसे पराजय की आशंका से डरा हुआ है और वह उस राज्य को पुनः नीतिपूर्वक जीतना चाहता है। शत्रु चाहे जितना भी कमजोर क्यों न हो, उससे भय बना रहता है। अतः किसी भी उपाय से उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।[25]

दुर्योधन जितेन्द्रिय होकर, न तो धन के लोभ से और न ही क्रोध से किसी को दण्ड देता है अथवा अपराधमुक्त करता है अपितु वह लोभ–क्रोध से विमुक्त होकर गुरूपदिष्ट धर्मशास्त्रानुकूल मार्ग का आश्रय करके, शत्रु और पुत्र में भेद दृष्टि न रखते हुए, दण्ड के द्वारा धर्मविप्लव का शमन करता है–

**वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।**
**गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।।[26]**

दण्डनीति कहती है कि धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने वाले राजा को अभेद बुद्धि से (अर्थात् अपना–पराया का विचार न करते हुए) सम्यग् दण्ड–प्रयोग करना चाहिए। इस पद्य की टीका करते हुए व्याख्याकारशिरोमणि कोलाचलमल्लिनाथ सूरि ने दण्डनीति के सिद्धान्त का उद्धरण प्रस्तुत किया है–

**'अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।**
**अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति।। (इति स्मरणात्)**

अर्थात्, वह राजा अपयश का भागी होकर नरकगामी होता है जो दण्डार्ह को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीय को दण्ड देता है। नीति यह है कि 'दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्' और 'यथार्हदण्डः पूज्यते।'

भारवि ने 'उपाय–चतुष्टय' का उल्लेख करके यथायोग्य पात्रों में उनके विनियोग के फल को संकेतित किया है–

**अनारतं तेन पदेषु लम्भिता विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।**
**फलन्त्युपायाः परिबृंहितायतीरुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः।।[27]**

उपायचतुष्टय है– साम, दान, भेद और दण्ड। यदि राजा समुचित परीक्षण करके इन चतुर्विध उपायों का यथायोग्य पात्रों में (अर्थात् जो जिसके लायक है उसमें) विनियोग करता है तो ये चारों नीतियाँ समुचित नियुक्ति से सत्कृत होकर, परस्पर स्पर्धा करती हुई, उत्तरोत्तर वृद्धिकारी ऐश्वर्य फलप्रदान करती हैं।

---

24. किरातार्जुनीय, 1.3– 'द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
25. वही, 1.7–8
26. किरातार्जुनीय, 1. 13.
27. वही, 1.15.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारवि का यह मानना है कि यदि राजा पक्षपातरहित है और उदारता आदि गुणों से सम्पन्न है तो उसे दण्डनीति का आश्रय नहीं लेना पड़ता और लोग उसके गुणों से आकृष्ट होकर स्वयं ही उसके अनुकूल हो जाते हैं।[28] वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि आपके समूल निर्मूलन की कुचेष्टा में लगे हुए उस दुर्योधन का प्रतीकार यथाशीघ्र करें।[29] यहाँ भारवि 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की दण्डनीति के पक्ष में दृष्टिगोचर होते हैं। वह आगे कहता है कि उपाय के विषय में आप स्वयं विचार करें, उपाय सुझाना मेरे वश की बात नहीं है। यहाँ नीति कहती है "यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।" लोक में 'ईट का जवाब पत्थर से देना' कहते हैं।

भारवि ने वीरबाला क्षत्राणी द्रौपदी के मुख से दण्डनीति की मार्मिक अभिव्यक्ति करायी है। उसने युधिष्ठिर समेत पाण्डवों के समक्ष अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक दण्डनीति के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को समुद्घाटित किया है। 'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः' का बोध कराती हुई वह कहती है–

**व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।**
**प्रविश्य हि ध्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः।।**[30]

वे मूढबुद्धि पुरुष पराजित होते हैं जो मायावियों के साथ मायावी नहीं बनते। अर्थात्, जैसे को तैसा नहीं बनते। शठ (दुष्ट) उन पुरुषों का भेद जानकर उन्हें उसी प्रकार विनष्ट कर देते हैं जैसे कवच रहित शरीर में प्रवेश करके तीक्ष्ण बाण उसका अन्त कर देते हैं।

लोग ऐसे पुरुष की अधीनता स्वयं स्वीकार कर लेते हैं जिसका क्रोध कुछ फल देने वाला होता है और जो विपत्तियों को दूर भगा देता है। क्रोधहीन मित्र को कोई आदर भी नहीं देता और क्रोधहीन शत्रु से कोई भय भी नहीं खाता–

**अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।**
**अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।।** [31]

उत्साह के अभाव में दण्डनीति निष्फल है। अतः द्रौपदी शत्रु से प्रतीकार के लिए प्रोत्साहित करती है। वह कहती है कि यह दुर्दशा शत्रु के कारण हुई है। इसी लिए मेरा अन्तःकरण मानो जड़ से उखड़ता जा रहा है (अत्यन्त व्याकुल) है जिसके बल और पराक्रम को शत्रु तिरस्कृत नहीं कर सकता, ऐसे मानियों का पराभव भी उत्साहवर्धक है अर्थात् पराभव तो तनिक सह्य भी है किन्तु मानहानि नहीं–

**द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः समूलमुन्मूलयतीव मे मनः।**
**परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्।।**[32]

---

28. वही, 1.15.28. किराता., 1.21. 'न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्।।'
29. वही, 1.25. 'तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।'
30. किरातार्जुनीय, 1.30
31. वही, 1,33 32. वही, 1.41.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतः शान्ति (क्षमा) को त्यागकर शत्रुदमन के लिए पुनः प्रचण्ड प्रताप का आश्रय लेना है। निःस्पृह मुनिजन शमके द्वारा कामादि षड्वैरियों को पराजित करके सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजागण नहीं—

विहाय शान्तिं नृप! धाम तत्पुनः प्रसीद्ध सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।।[33]

सदैव हानि पहुँचाने में तत्पर शत्रु के साथ समय (सन्ध्यादि) की प्रतीक्षा करना उचित नहीं है। असीम पराक्रम वाले विजयेच्छु राजा किसी न किसी व्याज से शत्रु को दण्डित करने के लिए सन्धि नियमों को भङ्ग कर ही देते हैं—

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि।।[34]

भारवि चारों विद्याओं का उल्लेख करते हैं जो मनु, कौटिल्यादि द्वारा प्रतिपादित हैं। वे भीम के मुख से युधिष्ठिर को उपालम्भपूर्वक कहते हैं—

चतसृस्वपि ते विवेकिनी नृप! विद्यासु निरूढिमागता।
कथमेत्य मतिर्विपर्ययं करिणी पङ्कमिवावसीदति।।[35]

लोक की संस्थापना के लिए चार विद्याएँ— आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति प्रसिद्ध हैं। विवेकी पुरुष उन चारों के स्वरूप का सम्यग् अधिगम करके हितसाधन करते हैं। टीकाकार मल्लिनाथ यहाँ मनु को उद्धृत करते हैं। 'यथाह मनुः—

आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ।
अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ।।

जो राजन्यवर्ग अनुत्साहपूर्वक, शत्रुओं की क्रमशः वर्धिष्णु प्रभुशक्ति की उपेक्षा करते हैं, वे शीघ्र ही राज्यश्री से हीन हो जाते है। प्रभु शक्ति का अर्थ है राजा का कोशदण्डमय तेज—

अनुपालयतामुदेष्यतीं प्रभुशक्तिं द्विषतामनीहया।
अपयान्त्यचिरान्महीभुजां जननिर्वादभयादिव श्रियः।।[36]

यदि राजा कदाचित् दुर्बल हो किन्तु उत्साहसम्पन्न हो तो प्रजा उसका सम्मान करती है और वह विजयी होता है।[37] भारवि का मानना है कि कार्यसिद्धि के पाँचों अंगों (सहायक, उपाय, देशविभाग, कालविभाग और विपत्तिप्रतीकार) का निर्णय करनेवाली प्रभुशक्ति की उत्पादिका नीति, कृषकों की दैवानुसरण की भाँति उत्साह की अपेक्षा करती है अर्थात्, उत्साह के बिना कोई कार्यसिद्धि नहीं होती।

प्रभवः खलु कोशदण्डयोः कृतपञ्चाङ्गविनिर्णयो नयः।
स विधेयपदेषु दक्षतां नियतिं लोक इवानुरुध्यते।।[38]

---

33. वही, 1.42.
34. वही, 1.45.
35. किरातार्जुनीय, 2.6
36. वही, 2.10.
37. वही, 2.11.
38. वही, 2.12.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषार्थ और दण्डशक्ति से सम्पन्न होने पर भी उत्साहहीनता के कारण दुर्दशा में पड़ा रहना कदापि उचित नहीं है।[39] उत्साह और पराक्रम ही प्रधान है। पराक्रम की कमी नहीं है पाण्डवों में। यदि राजा (युधिष्ठिर) उत्साही हो जाँय तो शत्रु शीघ्र ही विपद्ग्रस्त हो जाँय।

**कुरु तन्मतिमेव विक्रमे नृप! निर्धूय तमः प्रमादजम्।**
**ध्रुवमेतदवेहि विद्विषां त्वदनुत्साहहता विपत्तयः।।**[40]

राजा को दण्ड के विषय में सूर्य के समान आचरण करना चाहिए। यथासमय मृदु और कठोर दण्ड का व्यवहार करते हुए संसार पर अपना आधिपत्य स्थिर रखना चाहिए।

**समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम्।**
**अधितिष्ठति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः।।**[41]

विजयेच्छु राजा को चाहिए कि वह भेदवृत्ति से शत्रु को जर्जरित करके उस पर दण्डोपाय का प्रयोग करे। वह निश्चित रूप से विजयी होगा।

**लघुवृत्तितया भिदांगतं बहिरन्तश्च नृपस्य मण्डलम्।**
**अभिभूय हरत्यनन्तरः शिथिलं कूलमिवापगारयः।।**[42]

शत्रु के स्वभाव और उसके बलाबल का सम्यक् परीक्षण करके विजयाभिलाषी राजा को चाहिए कि वह शत्रु से अधिक बढ़चढ़कर दण्ड बल का प्रयोग करे। पाण्डवों के हितैषी महर्षि व्यास ने दण्डनीति का यही उपदेश राजा युधिष्ठिर को दिया–

**लभ्या धरित्री तव विक्रमेण ज्यायांश्च वीर्यास्त्रबलैर्विपक्षः।**
**अतः प्रकर्षाय विधिर्विधेयः प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः।।**[43]

शत्रु को अवश्य ही दण्डित करना चाहिए। यदि शत्रु से बदला चुकाये विना क्रोध शान्त हो जाता है तो वह पुरुष वस्तुतः पुरुष नहीं है।

**अनिर्जयेन द्विषता यस्यामर्शः प्रशाम्यति।**
**पुरुषोक्तिः कथं तस्मिन् ब्रूहि त्वं हि तपोधन।।**[44]

बलगर्वित शत्रु को प्रबल दण्ड का आश्रय लेकर अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिए क्योंकि शत्रूच्छेद को परम लाभ कहा गया है–

**बलशालितया यथा तथा वा धियमुच्छेदपरामयं दधानः।**
**नियमेन मया निबर्हणीयः परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः।।**[45]

साम, दान, भेद और दण्ड ये चार नीतियाँ गूढ प्रयोग के द्वारा अलक्षित होकर भी विपत्ति–प्रतीकार

---

39. वही, 2.15–21
40. वही, 2.22
41. किरातार्जुनीय 2.38
42. वही, 2.53
43. वही, 3.17
44. वही, 11.71.
45. वही, 13.12



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में समर्थ होती हैं, परराष्ट्रमण्डल को भेदकर महान् लाभ कराती हैं और प्रयोक्ता पुरुष को अभ्युदय प्रदान करती हैं– **गतैः परेषामविभावनीयतां निवारयद्भिर्विपदं विदूरगैः।**

**भृशं बभूवोपचितो बृहत्फलैः शरैरुपायैरिव पाण्डुनन्दनः।।**[46]

'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' का उद्‌घोष करनेवाले महाकवि माघ की काव्यप्रतिभा और पाण्डित्य प्रकर्ष इतना प्रभावी और बहु आयामी है कि किसी ने सत्य ही कहा– 'माघेनेव हि माघेन कस्य कम्पो न जायते'– गुणत्रय से विभूषित माघकाव्य अर्थात् शिशुपालवध में भी मूलकथावस्तु का केन्द्र राजनीति ही है। अतः यहाँ भी प्रसङ्गोपेत 'दण्डनीति' का सन्निवेश स्वाभाविक ही है।

देवर्षि नारद ने भगवान् वासुदेव से शिशुपाल का समस्त वृत्तान्त बतलाने के पश्चात् उसके वध के लिए दण्डनीति का सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि अत्याचारी दुष्टों का वध करना समर्थ सज्जन का कर्तव्य है– **तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।**

**शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो विपादनीया हि सतामसाधवः।।**[47]

राज्यशासन के लिए आवश्यक छः गुणों, तीन शक्तियों, तीन सिद्धियों और तीन उदयों को तो मन्दबुद्धि भी शुक्राचार्य आदि द्वारा प्रणीत ग्रन्थों को पढ़कर समझ लेता है।

**षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।**
**ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोप्यलम्।।**[48]

छः गुण=सन्धिविग्रहयान–आसन–द्वैधीभाव–समाश्रय, तीन शक्तियाँ=प्रभुत्व, मन्त्र, उत्साह, तीन सिद्धयाँ – प्रभुसिद्धि, मन्त्रसिद्धि, उत्साहसिद्धि, तीन उदय– वृद्धि–क्षय–अवस्थान।

कोषदण्डज तेज=प्रभाव।

स्वाभिमानी जन, शत्रु का समूलनाश किये विना उदय को प्राप्त नहीं होते। सूर्य, अन्धकार को नष्ट करके ही उदित होता है–**समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।**

**प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः।।**[49]

विपक्ष का समूल नाश किये विना प्रतिष्ठाप्राप्ति प्रायः असम्भव है। धूलि को विना कीचड़ बनाये पानी नहीं टिकता– **विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।**

**अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।।**[50]

जब तक एक भी शत्रु शेष है तब तक सुख कहाँ?

**ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्।**[51]

अमर्षयुक्त शत्रु से वैर मोल लेकर जो मनुष्य उदासीन हो जाता है, वह व्यक्ति तृणों के ढेर पर

---

46. किरातार्जुनीय, 14.52.
47. शिशुपालवध, 1.73
48. वही, 2.26.
49. शिशुपालवध, 2.33.
50. वही, 2.34.
51. वही, 2.35.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अग्नि रख कर हवा की रुख के ओर सोता है–

**विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।**
**प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्।।**[52]

शत्रु के ऊँचे भी सिर पर विना पैर रखे (अर्थात् उसे पददलित किये विना) कीर्ति कैसे स्वर्ग तक पहुँच सकती है–

**अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम्।**
**कथङ्कारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति।।**[53]

जो शत्रु एकमात्र दण्ड द्वारा ही साध्य है, उसके प्रति सामादि उपायत्रय व्यर्थ है। स्वेदन क्रिया के योग्य अपक्व ज्वर वाले रोगी को कौन बुद्धिमान् पानी से नहलायेगा?

**चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।**
**स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति।।**[54]

निर्बल (विपद्ग्रत) को बली दण्ड दे यह ज्ञानी पुरुष के लिए लज्जास्पद है। राहु भी पूर्ण चन्द्र को ही ग्रसने का उत्साह दिखाता है–

**नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये।**
**विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः।।**[55]

शिशुपाल बलवान् शत्रु है अतः उसका सिर काटकर दण्डित करना उचित है–

**प्राप्यतां विद्युतां सम्पत्सम्पर्कादर्करोचिषाम्।**
**शस्त्रैर्द्विषाच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः।।**[56]

विजयाभिलाषी को अपने अन्दर प्रज्ञा और उत्साह दोनों को धारण करना चाहिए। प्रज्ञा का अभिप्राय मन्त्रशक्ति से है। न तो केवल मन्त्रशक्ति पर्याप्त है और न ही उत्साहमात्र। ये दोनों ही प्रभुत्वशक्ति के मूल में हैं–

**प्रज्ञोत्साहवतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि।**
**तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसम्पदः।।**[57]

प्रज्ञोत्साह सम्पन्न होकर उपायचतुष्टय (साम, दान, भेद और दण्ड) का आश्रय लेने पर भी प्रमादयुक्त पुरुष के प्रयोजन उसी तरह नष्ट हो जाते हैं (अभीष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं होती) जैसे कि निद्राशील शिकारी पास आये हुए भी मृग को नहीं मार पाता–

**उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।**
**हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्।।**[58]

---

52. वही, 2.42.
53. वही, 2.52
54. वही, 2.54
55. शिशुपालवध, 2.61.
56. वही, 2.66
57. वही, 2.76.
58. वही, 2.80.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा राजा जिसकी बुद्धि ही शस्त्र है, प्रकृति अर्थात् राज्य के सातों अङ्ग ही जिसका शरीर हो, दुर्भेदमन्त्रगुप्ति जिसका कञ्चुक (शरीरावरण) हो, गुप्तचर आँखें हो और दूत ही मुख हो, लोकविलक्षण पुरुष होता है। **बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो धनसंवृत्तिकञ्चुकः।**

**चारेक्षणो दूतमुखः पुरूषः कोऽपि पार्थिवः।।**[59]

समय की गति को पहचानने वाले राजा के लिए एकमात्र तेज अथवा एकमात्र क्षमा का ही व्यवहार करना चाहिए। न तो क्षात्रधर्म का पालन करने में एकमात्र कठोर दण्डादि का प्रयोग करना चाहिए और न ही अतिशय क्षमा ही करनी चाहिए जैसे कि रसभावविद् कवि को न तो केवल ओज और न ही केवल प्रसाद गुण का आधान अपने काव्य में करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि यथाविधि दोनों का सन्तुलित प्रयोग करना चाहिए– **तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।**

**नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः।।**[60]

शत्रु द्वारा अपराधाचार करने पर भी अपने क्रोध को तब तक प्रकट नहीं करना चाहिए जब तक उचित अवसर न आ जाय। मौका मिलते ही उसे उचित दण्ड देना चाहिए–

**कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः।**
**असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा।।**[61]

इस श्लोक की टीका में मल्लिनाथ सूरि ने अभिप्राय के समर्थन में एक अतीव उपयुक्त नीति उद्धृत की है– **'वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालविपर्ययः।**

**तमेव चागते काले भिन्धाद्घटमिवाश्मना।।'**

जैसे मन्त्रौषधि के ज्ञाता और देवस्थानों में निवास करने वाले गुणीजन साँप को वश में कर लेते हैं, वैसे ही स्व– पर राष्ट्र का चिन्तन करने वाले और प्रकृतिमण्डल में सुस्थित राजा भी शत्रु को वश में कर लेते हैं– **तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता।**

**सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः।।**[62]

प्रज्ञाबल अर्थात् मन्त्रशक्ति ही जिसका प्रधान मूल है ऐसा विशाल उत्साहरूपी वृक्ष, कर के द्वारा वर्धमान विपुल प्रभुशक्ति रूपी फल देता है। प्रभुशक्ति का अर्थ है राजा का तेजोविशेष और यह तेजोविशेष कोश और दण्डशक्ति से उत्पन्न होता है–

**करप्रचेयामुत्तुङ्गः प्रभुशक्तिं प्रथीयसीम्।**
**प्रज्ञाबलबृहन्मूलः फलत्युत्साहपादपः।।**[63]

महाकवि माघ कहते हैं कि शत्रुजन्य पराभव अत्यन्त दुःसह होता है–

---

59. वही, 2.82
60. शिशुपालवध, 2.83.
61. वही, 2.84.
62. वही, 2.88.
63. वही, 2.89.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः।।[64]

सिंह कभी भी सियार की 'हुआं–हुआं' ध्वनि सुनकर नहीं दहाड़ता–

"अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी।।[65]

महात्मा तो यथाकाल क्रुद्ध होकर पराक्रम करते हैं किन्तु दुरात्मा यों ही प्रलाप करते रहते हैं–

विसृजन्त्यविकत्थिनः परे विषमाशीविषवन्नराः क्रुधम्।
दधतोऽन्तरसारुसूपतां ध्वनिसाराः पटहा इवेतरे।।[66]

इस प्रकार, हम देखते हैं कि किरातार्जुनीय महाकाव्य में महाकवि भारवि ने दण्डनीति का प्रासङ्गिक रूप से अत्यन्त प्रभावशाली सन्निवेश किया है। उन्होंने अपने महाकाव्य की कथावस्तु को इस दण्डनीति के परिप्रेक्ष्य में एक उपयुक्त प्रसङ्ग से आरम्भ किया है। युधिष्ठिर स्वयं धर्मराज हैं और न्यायपंथ के अनुगामी है। उनके चरित्र में धीरता के साथ शान्तिप्रियता भी है जो शत्रुप्रतीकार के लिए अनुपयुक्त है। द्रौपदी और मध्यम पाण्डव भीम उस राजनीति के समर्थक हैं जिसमें विरोधियों को सम्हलने का अवसर न देने की नीति है। अतः वे युधिष्ठिर को दण्डनीति के प्रभावी प्रयोग का परामर्श देते हैं। यह कथन अनुचित न होगा कि महाकवि माघ द्वारा शिशुपालवध की रचना किरातार्जुनीय के अनुकरण में की गयी है। उसमें वे अपने पाण्डित्य और काव्यसौन्दर्य के द्वारा भले ही भारवि से बीस पड़ते हों किन्तु निष्पक्ष समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि दण्डनीति के प्रभावी उपन्यास में वे भारवि से उन्नीस ही हैं। भारवि ने जिस परिपक्व दण्डनीति का परिचय दिया है, वैसी प्रौढ़ता माघ के दण्डनीति–निरूपण में नहीं है। दोनों ही महाकवियों ने मनु, कौटिल्य आदि द्वारा प्रतिपादित दण्डनीति के सिद्धान्त का अनुवर्तन किया है। वे इस विषय में पूर्ववर्ती आचार्यों की नीति से प्रभावित हैं।।

******

64. शिशुपालवध, 6.45.
65. वही, 16.25.
66. वही, 16.32.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# गीतगोविन्द का मंगलश्लोक

प्रो. राजेन्द्र नाणावटी*

जयदेवरचित गीतगोविन्दकाव्य का मंगलश्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है–

"मेघैर्मेदुरमम्बरं, वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै–
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।"
इत्थं नन्दनिदेशनश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोः जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः।।

आकाश मेघों से घिरा हुआ है, वनभूमियाँ तमालवृक्षों से श्याम बन गई हैं, और रात्रि में यह डरता है। इसलिये हे राधे! तुम ही इसे घर पहुँचाओ ऐसे नन्द के आदेश पर चल निकले राधा और माधव की यमुना के तट पर मार्ग प्रत्येक कुंज में प्रत्येक वृक्ष के नीचे रची गई एकान्त–क्रीडाओं की जय हो।

ध्यातव्य है कि शीर्षक में जयदेव ने काव्यनायक के अनेक नामों में से गोविन्द पर्याय को चुना है पर मंगलश्लोक में उसे माधव कहा है। नायिका का नाम यहाँ राधा है। राधा–माधव नामों की वर्णानुप्रासता तो ध्यानाकर्षक है ही, पर इसका कुछ और महत्त्व भी है। ज्योतिषशास्त्र में श्रवण नक्षत्र से आरंभ करते हुए 29 नक्षत्रों की सूची गिनाई जाती है। उसमें सातवाँ नक्षत्र अश्विनी अथवा अश्वियुज् का है। और जब अश्विनी नक्षत्र में चन्द्र अपनी पूरी कलाओं के साथ पूर्णरूपेण प्रकाशित होता है तो वह है आश्विनी पूर्णिमा। भागवत में उसी रात्रि में कृष्ण ने गोपियों के साथ पहले वन–विहार किया अनन्तर रासलीला रचाई। अश्विनी से पंद्रहवा नक्षत्र विशाखा का है और विशाखा नक्षत्र में चन्द्र जब पूर्णरूपेण प्रकाशित होता है तब वह है वैशाखी पूर्णिमा। अब अमरकोश कहता है, राधा विशाखा अर्थात् नक्षत्र के विशाखा नाम का पर्याय भी है राधा। वैशाखे माधवो राधः (1.4.16) वैशाख मास के नाम के पर्याय हुए माधव और राधा। हमारी कालगणना में चैत्र एवं वैशाख वसन्त ऋतु के महीने हैं! अर्थात् मंगल श्लोक में जब काव्य के नायिका–नायक का उल्लेख राधा और माधव नाम से हुआ है तब विशाखा नक्षत्र और वैशाख मास अर्थात् पूर्ण रूप से खिली हुई वसन्त ऋतु का सूचन तो मंगल श्लोक में ही हो गया है। वैसे भी प्रणय लीलाओं के लिये सर्वाधिक अनुकूल दो ऋतुएँ हैं वर्षा और वसन्त। इनमें भी वसन्त अधिक अनुकूल है। इसलिये कवि ने मंगल श्लोक के उत्तरार्ध में नायिका–नायक के नामों में वसन्त ऋतु का ध्वनितार्थ व्यञ्जित किया और फिर पूरे काव्य में प्रेमियों के तमाम व्यवहारों की पश्चात् भूमिका के रूप में वसन्त ऋतु का ही निरूपण कर दिया।

---

*पूर्व आचार्य–अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बड़ौदा विश्वविद्यालय, बडोदरा (गुजरात)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर प्रश्न उठता है। मंगल श्लोक में पश्चात् भूमिका के रूप में वर्षा ऋतु के उद्दीपन विभावों का निरुपण करके फिर काव्य में सायंत वसन्त ऋतु का निरूपण यदि कवि करता है तो इस विसंगति का हम क्या करें? एक प्रकार से तो यह प्रबन्धव्यापी विसंगति होगी। इसका समाधान स्पष्ट रूप से यह हो सकता है इसे विसंगति न मानकर मुख्यार्थ बाध मानना होगा। वातावरण वर्षा ऋतु का रचकर यदि कवि अपने नायिका–नायक को वसन्त सूचक नामों से निर्दिष्ट करता है तो अनिवार्य व्यञ्जितार्थ यही हो सकता है कि अम्बर, वनभूमि, रात्रि, अन्धकार नायक की भीरुता उसका गृह प्रापण नन्द–निदेश, नायिका–नायक का चलन, यमुना के तट पर प्रति–पदार्थ–व्यापन और उनकी रह केलियाँ इन सारे पदों को उनके अर्थों को केवल अभिधानार्थ में न लेते हुए उनके अनेक स्तरीय गहरे आध्यत्मिक अर्थों की व्यञ्जना को समझना होगा, तभी कवि के पूरे काव्यार्थ को हम प्राप्त कर सकेंगे। वैसे भी कृष्ण की गोकुल वृन्दावन लीलाओं का भागवत में जो निरूपण हुआ हैं उसके गूढार्थ तक पहुंचना लक्षणा–व्यञ्जना के माध्यम से ही संभव है यह तथ्य पूर्व सिद्ध हो ही चुका है। उन लीलाओं का नाम हमारे वैदिक औपनिषदिक चिन्तन दर्शनों से जुड़ा हुआ है इस तथ्य को भी भागवतकार ने भागवत के आरम्भ में ही इस पद्य में स्पष्ट किया हैं–

**निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।**
**पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।**

नैगमिक परंपरा का उन्हीं सन्दर्भों के साथ सगुण ब्रह्म के जैसा व पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण की जिन लीलाओं का भागवत में वर्णन है उन्हीं का अनुसंधान करते हुए उनकी एक और लीला का कवि जयदेव जब कवन करने जा रहे हैं तो काव्यवस्तुनिर्देशक मंगलश्त्रोक में ही वे उन सारे नैगमिक सन्दर्भों को समेटकर प्रस्तुत करते हैं। उन नैगमिक सन्दर्भों का विवरण करने पर ही जयदेव ने जिस कृष्ण की आधिभौतिक सांसारिक लीलाओं का यहाँ कवन–गान किया है उसका आधिदैविक अवतारी स्वरूप एवं आध्यात्मिक परब्रह्मात्मक स्वरूप हमें ज्ञात होता है।

नन्द, माधव और यमुना के तट की वन भूमियों का उल्लेख स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में जिसकी लीलाओं का वर्णन किया गया है, उसी माधव का रासपंचाध्यायी में जिस कृष्ण को माधव कहा गया उसी माधव का यहाँ निर्देश हो रहा है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत का ही मेघाच्छादित आकाश का वर्णन करने वाला एक श्लोक हमारे लिये सूचक बनता है–

**सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः।**
**अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ।। 10/20/04**

बिजली के साथ गर्जना करते हुए स्निग्धश्याम बादलों से छा गया अस्पष्ट प्रकाशवाला आाकश सगुण ब्रह्म के समान भासित हो रहा था। भागवतकार स्निधश्याम बादलों से छाये हुए व्योम को सगुण ब्रह्म की उपमा दे रहा है और उन्हीं मेघों में मेदुर अर्थात् सान्द्रस्निग्ध अम्बर के उल्लेख से गीतगोविन्दकार अपने काव्य का आरंभ करता है। वहाँ केवल मेघों को नील बताया, यहाँ पृथिवी भी श्याम बन गई है। वहाँ व्योम अस्पष्टज्योति मन्द प्रकाशवाला था, यहाँ तो नक्तं रात्रि ही है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काव्य का उपक्षेप करते ही कवि यदि इतने बड़े ध्वन्यर्थ को व्यंजित कर रहा हो तो स्पष्ट है कि काव्य के अनेकस्तरीय सूचितार्थों के विषय में हमें सावधान हो जाना चाहिये। वर्षाऋतु के उद्दीपन विभावों में से कवि यहां केवल आकाश और वनभूमि इन दो का ही यदि निर्देश करता है तो हमें वैदिक साहित्य में बारम्बार उल्लिखित होते हुए द्यावापृथिवी के सनातन दिव्य युगल का स्मरण होना स्वाभाविक है। कवि कहता है **नक्तं**–रात्रि, अंधकार कौन सा अंधकार? ऋग्वेद का नासदीय सूक्त बताता है। **तम आसीत् तमसा गुह्मग्रे।** विश्व की उत्पत्ति से पूर्व अंधकार से ढका हुआ अंधकार था। वह रात्रि वह अंधकार उस रात्रि में

**आनीद् अवातं स्वधया तदेकं**
**तस्माद् ह अन्यत् न परः किञ्चनास।।**

वायु भी नहीं था तब वह अकेला अपनी इच्छा से सांस लेता था। उसके सिवा और कोई भी नहीं था। इस अकेलेपन का उसे भय लगा। उपनिषद् कहती है **आत्मैवेदमग्र आसीत्..... न अन्यद् आत्मनो पश्यत्... सो बिभेत....स वै नैव रेमे, स द्वितीयमैच्छत्।** विश्व की उत्पत्तिसे पूर्व केवल यह आत्मा ही था। स्वयं के सिवा और किसी को उसने नहीं देखा। उसे भय लगा। उसे आनंद न हुआ। उसने दूसरे की इच्छा की **स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्।** उसने वही अपने आपको दो अंशों मे विभक्त किया **ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्** उसमें से पति और पत्नी बने, **तस्मादिदम् अर्धबृषलमिव स्व इति।...तस्माद् अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव** (बृह. उप. 1.4.1–3) इसलिये यह जो स्वयं है वह तो दाने की आधी फाड जैसा है....अतः उसका यह अवकाश यह रिक्तता स्त्री से ही भरती है। अर्थात् स्त्री से रिक्तता भरती है, अकेलेपन का भय दूर होता है, आनंद अनुभव होता है।

इसी सन्दर्भ में तैत्तिरीय आरण्यक का एक मंत्र द्रष्टव्य है। (6.11.1)

**आनन्दाय प्रमोदाय पुनरगाँ स्वान् गृहान्।**
**अप नः शोशुचद् अधम्।।**

मैं अपने घर लौट आया हूँ, आनन्द के लिये, प्रमोद के लिये मेरी अशुद्धि जलकर दूर हो। अशुद्धि है मृत्युसंबंधी दशम दिवस की नैमित्तिक क्रियाओं के संपर्क दोष की। इसी प्रकार स्वजन की मृत्यु के अनंतर आहवनीय अग्नि में आहुति देते हुए यजमान कहता है। (आप. श्रौ. सू. 5.18.2)

**शस्यं पशून् मे गोपाय विश्वरूपं धनं वसु।**
**गृहाणां पुष्टिमानन्दं तांस्ते परिददाम्यहम्।।**

हे वसु (अग्नि) मेरे धाान्य पशु एवं विविध प्रकार के धन की रक्षा के लिये मेरे गृहों की पुष्टि तथा आनंद में तुम्हे सौंपता हूँ अर्थात् गृह के साथ आनंद का अनिवार्य रूप से योग है।

दूसरी ओर राधा नाम स्वयं ही आनन्द के पर्याय जैसा है। मूल धातु है राध् अर्थात् आनंद प्रदान करना, प्रसन्न करना, आराधित करना, राधन आराधन आनंद संतोष प्राप्ति। वैदिक मंत्रों में आनन्द एवं गृहों की पुष्टि कार्यकारण के रूप में संकलित होने का भाव है। वैदिक कवि आनंद प्रमोद के लिये घर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लौटता है। हमारा केवि राधा को ही नन्दमुख से ओादेश दिलाता हैं। हे राधे तुम ही इसे घर पहुँचाओ 'गृहं प्रापय' इन शब्दों में टीकाकारों ने तात्स्थ्यलक्षणा से गृह में रहने वाली अर्थात् गृहिणी का अर्थ भी दर्शाया है। अतः कृष्ण जैसे कहता है– हे राधे मैं तुमसे ही गृहिणीवान् बनूँ। तुम ही मेरा घर बसाओ (द्रष्टव्य[1] रसिकप्रिया सामान्यनारीव्यावृत्या गृहिणी निर्वर्त्ये संभोगादिकर्मणि समुदिता भवेत्यर्थः। अत्र गृह– शब्देन तात्स्थ्याद् गृहिण्युच्यते। त्वयैवाहं गृहिणीमान् स्यामिति यावत्।।)

**इत्थं नन्दनिदेशतः** इस प्रकार नन्दके आदेश से कौन नन्द? यह माधव यदि सगुण ब्रह्म है और राधा यदि उसकी आनन्दार्ध है तो यह नन्द कौन? उपनिषदों ने जीवमात्र को कर्म में प्रेरित करने वाले के रूप में आनन्द की प्रतिष्ठा की है। तैत्तिरीय उपनिषद् (3.6) कहती है– **आनन्दाद् हि एवं खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं पर्यन्त अभिसंविशन्तीति** आनन्द से ही ये प्राणी जन्म पाते हैं **जनमें** हुए आनन्द के द्वारा ही जीते हैं और प्रयाण करके आनन्द में ही समा जाते हैं। नन्द् का धातु अर्थ आनंद पाना ऐसा है। अतः नन्द अर्थात् आनन्द भी। नन्द के निर्देश से अर्थात् आनन्द की प्रेरणा से राधा–माधव के यमुना के तट पर कुंज–कुंज में वृक्ष में रचे गये प्रणय संबंधों की कवि यहाँ जयजयकार कर रहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् (4.3.21) कहती है कि प्रणयरति का आनंद कितना ही अल्प क्यों न हो ब्रह्मानुभव की भूमिका उसकी उपमा बनता है। तद्यथा प्रियया स्त्रियाँ संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्। एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनाऽत्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्। तद्वा अस्यैतद् आप्तकामम् अकामं रूपं शोकान्तरम्। जैसे कोई पुरुष अपनी प्रिय स्त्री से प्रगाढ़ आलिंगित होकर न कुछ बाहर की जानता है न आन्तर की वैसे ही यह पुरुष जो अपनी प्राज्ञ आत्मा से आलिंगित है वह न कुछ बाहर ही जानता है न अंतर, वही उसका अपना स्वरूप है। जिसमें सभी कामनाएँ तृप्त हो चुकी हैं, आत्मा ही कामना का विषय बन गया है और जिससे वह निष्काम और शोकरहित बन जाता हैं। जब कि यहाँ तो सगुण ब्रह्म की अपनी स्वलक्षण आनंद शक्ति के साथ क्रीडाओं का निरूपण है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी प्रणीत शुद्धाद्वैत दर्शन एवं पुष्टि संप्रदाय के अनुयायी एवं गीतगोविन्द के विद्वान् टीकाकार श्री गोपाल भट्ट अपनी गूढार्थदीपिका टीका मे दो बातें इस मंगलश्लोक के सन्दर्भ में बताते हैं। वे कहते हैं–**अलौकिकलीलायां शरद एव मुख्यत्वम्। लोकानुसारिलीलायां वसन्तस्य प्रावृषश्च तथात्वम्।** भागवत में रासपंचाध्यायी (श्री भा. 10.29 33) में जो वनविहार लीला तथा रासलीला हुई वह अलौकिक थी इसलिये वहाँ शरद् ऋतु का प्राधान्य था। यहाँ गीतगोविन्द में लोकव्यवहार का अनुस्मरण करने वाली लीला का वर्णन किया जा रहा है अतः इसके लिये अर्थात् लोकानुसारी प्रणय प्रवृत्ति के लिये वसन्त एवं वर्षा ऋतु उत्तम मानी जाती है। इस कारण यहाँ मंगलश्लोक में वर्षाऋतु के वर्णन से काव्यवस्तु की उपस्थापना की तथा काव्य में वसन्त ऋतु की पश्चात् भूमिका का सृजन किया।

---

1. गीतागोविन्दकाव्यम्, पृ. 3, निर्णयसागर, 1945।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी बात राधा और कृष्ण के प्रणयसंबंध के स्वरूप को उजागर करने वाली अतः मौल महत्व की है। राधामाधवयोः इस समास पर टीका करते हुए गोपाल भट्ट कहते हैं–

**राधामाधवयोरिति माः लक्ष्मीः सा ब्रह्मानंदरूपा। तस्याः धवः भर्ता माधवः एतेन कोटिब्रह्माण्डाधीशः लोकवेदप्रसिद्धो व्यापी वैकुण्ठाधिष्ठाता पुरुषोत्तम उक्तः। लक्ष्म्यामपि स्निग्धदम्पती भावरूपो रसस्तिष्ठतीति तद्रसभोक्ता स एव। तादृशोऽपि महान्, स्वस्थ्य केवलरसात्मकत्वात्। लक्ष्म्यां केवल निरूपधिरसाभावात् अविवाहितायामेव रससिद्धिः इति निरस्तसाम्याविशयेन राधसे इति अत्रोक्ता या रसात्मकसिद्धिरूपा राधा, तया सह समस्तब्रह्मधर्मान् विस्मृत्य रसपरवशः स्वस्थ्य गौणभावमपि अंङ्गीकृत्य रमत इति ज्ञाप्यते। अत एव राधापदं पूर्वं दत्तं तस्या मुख्यत्वज्ञापनाय। उभयोः रसात्मकत्वाद् एकरूपतैव इति समस्तं पदम्।।एतेन उभयत्र स्वार्थाय भावात्मकत्वं सूचितम्।।**

मा अर्थात् लक्ष्मी। वह ब्रह्मानंद स्वरूपा है। धव अर्थात् उसका पति। अतः माधव अर्थात् कोटि ब्रह्माण्ड के स्वामी–वैकुण्ठ के अधिष्ठाता, लोक और वेदों में प्रसिद्ध सर्वव्यापी पुरुषोत्तम। लक्ष्मी में स्नेहयुक्त दाम्पत्यभावरूपी रस है और इतने महान् होने पर भी केवल रसात्मकता के कारण वे उसके भोक्ता हैं। पर लक्ष्मी में केवल निरुपाधिक इसका भाव नहीं है, क्योंकि लक्ष्मी में दाम्पत्य भाव की उपाधि है। (उपाधि अर्थात् Attribute, discrimination property, भेदक–वैशिष्टयकारक लक्षणा) जबकि सच्चिदानंद ब्रह्म तो निरुपाधिक है। इसी लिये वह अपने ही आनंदरूपी स्वलक्षण के पर्यायरूप राधा के साथ रस क्रीड़ा करता है। कृष्णरूपी ब्रह्म के आनन्दरूपी स्वलक्षण का ही व्यक्त प्रकार स्वरूप है राधा। जब रसानन्द में मग्न हो तब ब्रह्म या आनन्द–कृष्ण या राधा ऐसा तम–तर का, उच्च–अवचका, समर्प्य–समर्पक का, भगवान्–भक्त का पुरुष–स्त्री का भेद ही नहीं रहता, कृष्ण या राधा–ब्रह्म या आनन्द एक ही परम तत्त्व के दो पहलू हैं–दो रूप हैं, दोनों ब्रह्म है, नरसिंह महेता के शब्दों में **'ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे'**, दोनों मिलकर एक अखण्ड रसरूपता है। इसलिये **'देहि पदपल्लवमुपहारं'** (गीतगोविन्दः–दशम सर्ग) में राधा को यदि कृष्ण के मस्तक पर पैर रखने को कहा जाय या काव्य के अंतिम मिलन में यदि विपरीत रतिका निरूपण हो तो भी उसमें कोई अनौचित्य नहीं है। इस पूरे काव्य में वर्णित संबंध में आनन्द तत्त्व का ही प्राधान्य है, इसलिये राधामाधवयोः समास में 'राधा' पद को आगे रक्खा।

इस प्रकार, गीत गोविन्द का मंगलश्लोक प्रथम तो नन्द, माधव एवं यमुना तट के निर्देशों के द्वारा श्रीमद्भागवत की कृष्णलीलाओं का अनुसन्धान करता है। तदनन्तर वर्षाऋतु के उद्दीपन विभावों का वातावरण रचते हुए उसमें नायिका नायक के वसन्तसूचक नामों का प्रयोग करके मुख्यार्थबाध की प्रयुक्ति रचता है जिससे श्लोक की पूरी सामग्री में व्यंजना व्यापार से नैगमिक सन्दर्भों के प्रकाश में आध्यात्मिक अर्थघटना योजन की भूमिका बनती है। व्यङ्ग्यर्थ यह कि सच्चिदानंदरूप निर्गुण बह्म का सगुण स्वरूप यहाँ अवतारी कृष्ण है और उसी के आनन्दात्मक स्वलक्षण का आधिदैविक स्वरूप यहाँ आनन्द की पर्यायजायात्मिका राधा है। ब्रह्म और आनन्द के अभेद संबंध को लौकिक अथवा काव्यात्मक भूमिका पर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवल नर–नारी के निरतिशय आनंदानुभावात्मक संपरिष्वङ्ग से ही उपमित एवं व्यञ्जित किया जा सकता है। गीतगोविन्द के कवि का यही उपक्रम है। इसी बात को कवि मंगलश्लोकके अनन्तर भी तीन बार व्यञ्जित करते हैं–**यदि हरिस्मरणे सरसं मनो** इस श्लोक के द्वारा फिर पहली अष्टपदी में दशावतारी जगदीश हरि की स्तुति के माध्यम से तथा दूसरी अष्टपदी में उसी केशव हरि के पूर्णावतार कृष्ण की लीलाओं का गान करके फिर उसी कृष्ण और राधा की वसन्त ऋतु में प्रणय लीलाओं के आलेखन का काव्यवस्तु तीसरी अष्टपदी से आरंभ होता है। इस प्रकार मंगलश्लोक से दूसरी अष्टपदी तक के काव्यारंभांश में कवि पुनः पुनः इसी बात को स्थापित करते हैं कि इस पूरे काव्य में निरूपित राधा और कृष्ण की प्रणय क्रीडाएँ भी तात्पर्यतः तो ब्रह्म और उसके स्वलक्षण आनन्द की अभेदावस्था की काव्यात्मक प्रतीकलीला है अथवा प्रतीकात्मक काव्यलीला है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# अण्ड–पिण्डसिद्धान्त का समीक्षण

डॉ. राजनाथ त्रिपाठी*

'अम गत्यादिषु' इस भ्वादिगणपठित धातु से गति अर्थ में 'अमन्ताड्डः' (1/114) इस उणादि सूत्र से 'ड' प्रत्यय कर अण्ड शब्द बनता है। यह शब्द नित्य नपुंसक ल्रिंग है। मेदिनी कोश के अनुसार 'अण्ड मुष्के च पेश्यां स्यात्' (मेदिनी कोश–40/1) 'त्रीणिः अण्डस्य' इति व्याख्या[1]। इसी प्रकार 'पिण्ड' या पिण्यते शब्द भी पिण्डयते, वा पिण्डम्' जो लोहा का पिण्ड है अथवा तत्तद् वस्तुओं की जो छोटी–छोटी पिण्डी बनाई जाय वह पिण्डी कही जाती है।

भ्वादिगण में 'पिण्डी संघाते' इस अर्थ में पिण्डी शब्द बनता है। मेदिनीकोष के अनुसार–

**पिण्डो बोले बले सान्द्रे देहागारैकदेशयोः**
**देहमात्रे निवापे च गोलसिह्लकयोरपि।।**
**ओण्ड्र पुष्पे च पुंसि स्यात् क्लीबमाजीवनायसोः।**
**पिण्डी तु पिण्डतिगरेऽलाबुखर्जूरभेदयोः।।[2]**

इस प्रकार पिण्ड और पिण्डी यह पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग इन तीनों लिंगों में प्रयुक्त होता है।

इस जीवरूपी पिण्ड में ब्रह्माण्ड के तत्त्व एवं विश्वप्रशासन के सभी रहस्य गर्भित हैं। शिव–शक्ति से समुदित इस अनन्त विश्व ब्रह्माण्ड के सभी जीव शरीरावच्छिन्न होकर देश–काल के वश में अवस्थित हैं। कोई स्वतन्त्र नहीं है। एक मात्र शिव परम स्वतन्त्र और उनकी इच्छा शक्ति परम स्वतन्त्रा है। शिव ही इच्छाशक्ति से संचालित होकर सृष्टि–स्थिति–संहार और निग्रह–अनुग्रह युक्त होकर पाँच गुणों से परिपूर्ण विश्वब्रह्माण्ड की रचना और इसका उपसंहार करते रहते हैं। यह निराकार शिव का चितिरूप शक्ति से अभिन्न कार्य स्वभाव है। इसी शक्ति के अधीन अनन्त ब्रह्मा–विष्णु–शंकर, इन्द्रादि देवता, सूर्यादिग्रह आदि अपने–अपने अधिकार क्षेत्र में कार्यरत रहते हैं। ब्रह्माण्ड का लघु रूप यह पिण्ड (देह) है। अतः वेद के पुरूष सूक्त के पहले मन्त्र में इसी रहस्य का निरूपण किया गया है–

**सहस्रशीर्षा पुरूषः सहस्राक्षः सहस्रपात्**
**स भूमिं सर्वतः स्पृष्ट्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।[3]**

---

*पूर्व आचार्य, तन्त्रागम विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह सहस्र शिर, सहस्राक्ष और सहस्रपादवाला पुरुष–विशेष कौन है जो दश–दश अंगुल के अन्तर से समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर स्थित है? तब उत्तर देना पड़ता है कि वह विराट् भट्टारक शिव ही है जिसे तन्त्रागमदर्शन में सैतीसवें रूप में स्वीकार किया गया है। रुद्र गायत्री मंत्र इसी पुरूष का बोधक है।

**तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।**

**तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।**

अर्थात् वह तत् पुरुष देवाधिदेव महादेव है, वह हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों के लिये प्रेरित करें। इस प्रकार विश्वातीत और विश्वरूप शिव की महिमा वेदों में पाई गई है। वह परम प्रकाश रूप है। उस परमप्रकाश रूप महादेव का विमर्श (प्रकाशन) उसकी समवायिनी शक्ति के द्वारा ही सांसार में विज्ञेय है। वह सभी जीव–जगत् में व्याप्त होकर अवस्थित है। वह 'तत्सत्' है, ऐसा श्रुति कहती है। वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ज्ञान का अपने पॉच मुख से सभी वेदों, आगमों और ज्ञानरूप वाङ्मय का प्रकाशक है। उसके तत्पुरुष–ईशान–अघोर,–सद्योजात–वामदेव नामक मुखो में चारों वेद, चारो दिशाओं में और ऊर्ध्वमुख से ज्ञान राशि प्रकाशित होती है। वह जंगद्गुरु है, शब्द रूप है, अर्थरूप है। महानय प्रकाश में वह अर्थरूप (संसार) और शक्ति शब्द रूप से यह सृष्टि करती रहती है–

**शब्दस्वरूपमखिलं धत्ते शंकरवल्लभा।**

**अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः।**

चितिशक्ति ही उस महाप्रकाश का परा–पश्यन्ती, मध्यमा–वैखरी के रूप में विस्तार करती रहती है। वह शक्ति सर्प की कुण्डली की भॉति मेरूदण्ड के मूलाधार में स्थित है।

पद्मपुराण में सृष्टि के आदि में कुमार कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध किया गया। ब्राह्मी सृष्टि शेषशैयासीन विष्णु, द्वारा (कुण्डलिनी शक्ति) से समुद्भूत ब्रह्मकमल उत्पन्न है, विष्णु द्वारा उसी कमल पर प्रजापति ब्रह्मा का अविर्भाव हुआ है। विष्णु द्वारा उन्हें सृष्टि का आदेश हुआ था किन्तु तारकासुर ने उसे रोक दिया था। ब्रह्मा–विष्णु और स्वयं शिव से भी वह अवध्य था। शिवकुमार कार्तिकेय के द्वारा ही वह वध्य था। इसीलिये शिव–पार्वती विवाह और कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई। तारकासुर महर्षि भृगुद्वारा मृतसंजीवनी विद्या से जीवित हो जाता था। कुमार द्वारा असुर के वध का महोत्सव देवों–योगियों–सिद्धों–ऋषियों की प्रार्थना पर अयोजित हुआ। महादेव शिव उस महोत्सव के नायक बने, ब्रह्मा गायक, विष्णु वादक, कृष्ण वंशीवादक, नारदादि सरस्वती सहित वीणा वादक, हनुमान जी करताल वादक बने, महेश्वर का नटरूप से नटन प्रारम्भ हुआ। महादेव का वह नृत्त उन्मुक्त था। उनके पादचार से पृथ्वी धंसने लगी, हस्त चालन से दिशाएँ टूटने लगीं। ब्राह्मी सृष्टि उथल–पुथल होने लगी। सभी ने कातर भाव से माता पार्वती की ओर देखा। ऐसी स्थिति में माता पार्वती ने लास्य प्रारम्भ किया। लास्य

---

1. अमरकोष–पेशीकोषो द्विहीनेऽण्डम्। 2/5/37
2. मे.को.–40/18–20
3. यजुर्वेद पु. सूक्त–1



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव से शिव का उद्धत नृत्त क्रमशः रस सिक्त होकर भाव पूरित हो गया, वह सप्तस्वर, आरोह–अवरोह, मूर्च्छना, राग रागिनी से परिपूर्ण हो गये। गायन वादन, भाव–विभाव से वह नृत्य हुआ। कलायें उदित हो गईं। जगत् आह्लाद से आनन्दित हो उठा। अन्त में वह आदि नृत्य समस्त लोक में परिव्याप्त होकर विभिन्न देशों, जातियों, ऋतुओं में परिव्याप्त हो गया। ऐसा समुदित नृत्य जो स्वरों का आधार बना वह संगीत हुआ। 'गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रिभिः संगीतमुच्यते' ऐसा संगीतरत्नाकरकार का कहना है। भरत मुनि ने नाट्यसूत्र में ही 'विभावानुभावसंचरिभावाद्रसनिष्पत्तिः ऐसा सूत्र लिखा। तैत्तिरीयश्रुति ने भी 'रसो वै सः' ऐसा कहा है।

नृत्य के पश्चात् प्रसन्न होकर शिव ने अपना विचित्र वाद्य डमरू चौदह बार बजाया। माहेश्वरसूत्र उद्भूत हुये। स्वर–व्यंजन युक्त वर्ण, मातृकायें, सभी अण्ड–पिण्ड में परिव्याप्त हो गये। इन्हीं से सभी तत्त्व उत्पन्न हुये। स्वरशक्ति षोडशमातृका और सप्तघृत मातृका और व्यंजन वर्ण शिवस्वरूप होकर समस्त भुवनों में परिव्याप्त हो गये। सनकादिसिद्धों, बालिखिल्यों को ज्ञान होने से वह मुक्त हो गये। इसी लिये नन्दिकेश्वर ने अपनी काशिका में लिखा–

**नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव–पंचवारम्।**
**उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।**

यह माहेश्वरसूत्र वेद–आगम–स्मृतियों और समस्त वाङ्मय में ज्ञानरूप से विकृत होगया। 'ज्ञानमिच्छेन्महेश्वरात्' 'ज्ञानकामस्तु गिरिशम्' इत्यादि से यह प्रमाणित है कि ज्ञान की कामना भगवान् शिव से करें।

भगवान् शिव के अनन्त ब्रह्माण्डों में अण्ड–पिण्ड का अनन्य सम्बन्ध है। 'यद् ब्रह्माण्डे तदेव पिण्डे' ऐसा दर्शनों में प्रतिपादित है। श्रुतियों में भी 'नामरूपे व्याकरवाणि' 'एकोऽहम् बहुः स्याम्' 'स यदैच्छत तदेव प्राविशत, 'तस्माद्वा एतदस्मादाकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेराप अद्भयो पृथ्वी' ऐसा कहा गया है। अतः परमात्मा शिव से ही सभी तत्त्वों की उत्त्पत्ति हुई है।

**शरीर एवम् उसके अवयव में सभी देवों का वास–** 'शरीरं कर्मसम्भवम्' इस तन्त्र सिद्धान्त के आधार पर माता–पिता के मिथुन जन्य स्पर्श से रज–वीर्य के संयोग से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश रूपी गर्भ में जीव की स्थिति उसी प्रकार हो जाती है जैसे कुम्भकार के चक्के पर मिट्टी का लोना रख कर वह घट–कुम्भ–कुण्डा–नाद आदि बनाता है। उसी प्रकार गर्भ में समाविष्ट रज–वीर्य मिल कर गर्भ में उसका कलन, पॉच दिनरात्रि में उसका बुद्बद, दश रात्रि में शोणित होकर चौदह दिन–रात्रि में बुद्बुद लघु मांस पिण्ड का रूप धारण कर लेता है। वह मांसपिण्ड एक महीने में अंकुर के समान होकर ब्रह्माण्ड का आकार धारण कर उसके मध्य भाग में कंकाल सदृश मेरुदण्ड का उदय हो जाता हैं। उस मेरुदण्ड में सभी जीवों देवों का भी आलय होकर उसमें प्राण और अपान वायु की स्थिति हो जाती है। इसी मेरुदण्ड का आधार जीव का परिवार ऑख–नाक–कान–जिह्वा–हाथ–पैर की स्थिति मल–मूत्रेन्द्रियाँ, नाभि और मन स्थिति हो जाते हैं। इसमें जाग्रत–स्वप्न–सुसुप्ति की स्थिति होकर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सभी इन्द्रियों का राजा मन भी अवस्थित हो जाता हैं। इसी मन सहित गर्भस्थ जीव में आत्मा प्रकट होकर बन्धन पाप और पुण्य से युक्त हो जाता है। इसमें जीव संस्कार तथा संगीत के प्रभाव से सत्–असत् कर्म करता है, किन्तु वस्तुतः जीव परमार्थतः सदसत् कर्म रहित होकर शुद्ध और सत्त्वात्मक ही रहता है वह कर्म रहित भी मन के संयोग से सद्–असत् कर्म–कर्ता बन जाता है।

इस प्रकार विभिन्न मासों से जीव के शरीर के सभी अवयव, अष्टम मास में पूर्ण हो जाते हैं। इसमें सहस्रार (शिर) से प्रारम्भ कर मल–मूत्रेन्द्रियों के मध्य भाग में स्थित मेरुदण्ड में नीचे से ऊपर तक तैंतीस ज्ञान ग्रन्थियाँ बढ़ती जाती है।

इस शरीर में 'शाक्तानन्दतरंगिणी' के प्रथमउल्लास के अनुसार कुल बहत्तर हजार नाड़ियाँ अवस्थित हैं जिनमें प्रमुख दश नाड़ियाँ क्रमशः शरीर के दशद्वार को आवृत्त कर स्थित हैं। इनमें इडा–पिंगला–सुषुम्ना–गान्धारी–हस्ति–जिह्वा–पूषा–यशस्विनी–अलम्बुषा–कुहुः–शंखिनी हैं। इन नाड़ियों का क्रमशः वामनासापुट में इडा, दक्षिण नासापुट में पिंगला, ब्रह्मरन्ध्र अथवा सहस्रार में सुषुम्ना, वामनेत्र में गान्धारी, दक्षिण चक्षु में हस्तिजिह्वा, दक्षिणकर्ण में पूषा, वामकर्ण में यशस्विनी, मुख में अलम्बुषा, लिंगमूल में कुहू, शिर के ऊपरीभाग में शंखिनी नाड़ियाँ स्थित हैं। इस प्रकार बाह्य आभ्यन्तर भेद से क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पंचमहाभूत स्थित हैं।

गर्भस्थ शरीर के आठवें मास में ही अस्थि–चर्म–नाड़ियाँ, लोम और मांस यह पॉच गुण पार्थिवांश से उत्पन्न होते हैं। मल–मूत्र, शुक्र, कफ–रक्त ये पाँच तत्व जलीय हैं। क्षुधा–तृष्णा–निद्रा– प्रमोह–(क्रोध) कान्ति यह पाँच तत्व तेज (अग्नि) से उत्पन्न हैं। विबोध (उठना)–प्रक्षेपण–आकुंचन (आकर्षण)–धारण–तर्पण यह पाँच क्रिया वायु के अन्तर्गत होती है। राग–द्वेष–मोह–भय–लज्जा यह पॉच गुण आकाश के अनतर्गत माने गये हैं। इसी प्रकार प्राण–अपान–समान–उदान–व्यान–नाग–कूर्म–कृकर–देवदत्त और धनंजय यह प्रधान दश वायु तत्तद् नाड़ियों में स्थित हैं। प्राण–अपान–उदान–समान और व्यान यह प्रमुख वायु हैं, जिनके शरीर छूटने की स्थिति में सभी प्राण में स्थित हो जाते हैं। 'यद् ब्रह्मण्डे तदेव पिण्डे' यह उक्ति 'शाक्तानन्दतरंगिणी' ग्रन्थ के पहले उल्लास में भी प्रतिपादित की गयी है।

**ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे[1]।।**

इसलिये सभी देह धारियों के इस एक शरीर में सभी लोक आदि सभी ग्रह, कानन–भूधर, सागर स्थित हैं। पैरों के नीचे अतल उसके ऊपर वितल, जानुओं में सुतल, सन्धियों ओर छिद्रों में तल नामक लोक गुल्फ के मध्य तलातल, लिंग के मूल में रसातल, कमर के अस्थियों की सन्धियों में पाताल की स्थिति है। नाभि में भूलोक, हृदय में भुवर्लोक, कण्ठ में स्वर्लोक, नेत्रों में मनोलोक, उसके ऊपर जनलोक, ललाट में तपोलोक और ब्रह्मरन्ध्र में सत्यलोक अवस्थित हैं। इस प्रकार से शरीर की नाभि के क्रमशः नीचे अधोलोक और ऊपर ऊर्ध्वलोक हैं। ऊपर के शरीर में चौदह भुवनों की स्थिति है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड और पिण्ड में समन्वय है।

---

1. शा.त. 1/39



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**शरीर में ही कुलपर्वत–सप्तद्वीप–सप्तसागर की स्थिति**

यह ब्राह्मी सृष्टि क्रमशः शिव त्रिकोण और शक्ति त्रिकोण ऊपर–नीचे संयुक्त होकर षट्कोण बनता है। उसी षट्कोणाों में ब्राह्मी सृष्टि स्थित है। त्रिकोणों में ही ज्योंतिर्लिंग ओर शक्ति पीठ स्थित हैं। इस प्रकार ऊपर के पाँच त्रिकोण और नीचे के चार त्रिकोण कुल नव त्रिकोणों की अण्ड और पिण्ड स्थिति हैं। इन त्रिकोणों से श्रीचक्र अथवा श्रीयन्त्र की उत्पत्ति होती है जो सभी सृष्टि का बोधक है। यह यन्त्र दो क्रम से साधकों द्वारा आराध्य है। यह कामराज और लोपामुद्रा दो प्रकार से आराध्य है। कामराज क्रम क्रमशः बाहर से भीतर मूलबिन्दु में समाहित हो जाता है। यह संहार क्रम कहलाता है।

लोपामुद्राविद्या सृष्टिक्रम है। यह मूल बिन्दु से आरम्भ कर भूपुर (बाहर) की ओर जाता है। यह सृष्टि क्रम या उपक्रम क्रम कहलाता है। यथा–

**बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।**
**वृत्तत्रयं च धरणीभुवनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।**[1]

इस प्रकार नवकोणात्मक श्रीचक्र शिव–शक्ति के साम्राज्य का बोधक है योगिनीहृदयतन्त्र में पूर्णरूप से श्रीयन्त्र का निरूपण है। इस ग्रन्थ की टीका दीपिका और सेतुबन्ध में यह विषय और भी गम्भीरता से विवेचित है।[2] सौन्दर्यलहरी नामक भगवान् शंकराचार्य द्वारा विरचित ग्रन्थ में शिवशक्ति का सामरस्य ही जगत् है– **शिवः शक्त्या युक्तो यदि शक्तः प्रभवितुं,**
**न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।**
**अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिंचादिभिरपि,**
**प्रणन्तुं स्तोतुं का कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।**[3]

अर्थात्, यह जगत् सभी मंगलोपेत सदाशिव है, वह शक्ति से संवलित होकर समस्त जगत् की रचना में शक्त होते है, अन्यथा नहीं। अतः हर–हरि ब्रह्मा भी अपनी–अपनी शक्ति के बिना कोई भी क्रिया नहीं कर सकते हैं। इस लिये शक्ति विश्वाराध्य और मूल कारण है। बिना अपूर्व पुण्य के उसे, उसके रहस्य को कोई जान नहीं सकता।

इस प्रकार त्रिकोणात्मक जगत् (शरीर) में षट्चक्रों मूलाधार–स्वाधिष्ठान– मणिपुर–अनाहत–विशुद्धि और आज्ञा चक्रों की स्थिति है। सबके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) है। शरीर का मेरुदण्ड त्रिकोण में हैं और इसी के बिन्दु के (मध्य) में वह मूलाधार कहलाता है। तन्त्र और आगम दर्शन के आधार पर उसे रुद्रलोक तथा उसमें मन्दराचल, उसके ऊपर विष्णु पर्वत स्थित है। सहस्रार में शिव–शक्ति मिथुन रूप

---

1.. श्रीविद्याचिर रत्नाकर

2. सौन्दर्य लहरी–1

3. नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्।।
वैन्दावासनसंरूढसंवर्तानल–चित्कलम्।
अम्बिकारूपमेवेदमाष्टारस्थं स्वरावृतम्।।
(यो.ह., चक्रसंकेते ।।13–14।। कारिका।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में स्थित हैं। उसी से निरन्तर अमृत बिन्दु टपकता रहता है। जिसे योगी जन ऊर्ध्व जिह्वा (खेचरीमुद्रा) से निरन्तर पान करते रहते हैं। द्वीपों के अन्तराल भी इसी प्रकार ब्रह्माण्ड की भाँति इस शरीर में ही स्थित हैं। इन सागरों के मध्य में जम्बूद्वीप, मांस में कुशद्वीप, शिराओं में क्रौंचद्वीप, जलरूपी रक्त में और सभी सन्धियों में शाकद्वीप, उसके ऊपर शाल्मलीद्वीप, रोमों में प्लक्षद्वीप और नाभि में पुष्कर द्वीप स्थित हैं। इस प्रकार सप्तद्वीप भी इसी शरीर में हैं। इसी प्रकार सप्तसागर भी ब्रह्माण्ड की भाँति इस शरीर में अवस्थित हैं। मूत्र में लवण सागर, शुक्र (वीर्य) में क्षीरसागर, मज्जा में दधिसागर, शरीर के भीतर और सर्वत्र रक्त जलसागर स्थित है।

ब्रह्माण्ड की तरह शरीर रूपी पिण्ड में ही सभी नवग्रह जैसे नाद में सूर्य, बिन्दु में चन्द्रमा, नेत्रों में मंगल, हृदय में बुध, बुद्धि में बृहस्पति, शुक्र में शुक्र, नाभि में शनि, मुख में राहु तथा नाभि और पैरों में केतु ग्रह विद्यमान रहते हैं। शरीर के नवद्वार में शरीरी (देहधारी) शरीर के नव पुरों में रहकर सुख–दुःख कर्मानुसार भोगता है। यह नवपुर और नवद्वार क्रमशः दो कान, मुख, दो नेत्र, दो नासाछिद्र और दो लिंग और गुदा छिद्रों में निवास करता है। योगीजन का उत्क्रमण कपाल भेदन से होता है। इस प्रकार तन्त्रागम दर्शन के सिद्धान्तों में अण्डपिण्डसिद्धान्त है। यह अण्ड–पिण्ड अतिशय रहस्यगर्भित है। अतः इस विषय निरूपण के द्वारा शिवसायुज्य प्राप्त श्रीगुरु के पादपद्मों में मेरी सादर श्रद्धांजलि है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# नाट्यशास्त्रानुमत लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी परम्परा का अन्तःसम्बन्ध : सामान्याभिनय के परिप्रेक्ष्य में

**प्रो0 सदाशिव कुमार द्विवेदी***

आचार्य भरतमुनि विरचित नाटयशास्त्र सम्पूर्ण विश्व के सौन्दर्य सम्बन्धी तत्त्वों का आकर ग्रन्थ माना जाता है। नाट्यशास्त्र में पाठ का ग्रहण किया गया ऋग्वेद से, सामवेद से गीत का, यजुर्वेद से अभिनय का तथा अथर्ववेद से रसतत्त्व का। इन चारों वेदों से उपादान को ग्रहण करने के कारण इस पंचम वेद की शास्त्रमूलकता तथा लोकाश्रिता स्वतः सिद्ध होती है, क्योंकि वैदिक शब्दराशि, देवस्तुतियों तथा वैदिक कर्मकाण्ड के माध्यम से, लौकिक तत्त्वों के लोकोपयोगी रूप से प्रस्तुतीकरण के लिए प्रसिद्ध है।

नाट्यशास्त्र के प्रारम्भ में ही आचार्य भरतमुनि ने इसमें प्रतिपादित नाट्य के एकादश तत्त्वों– रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रङ्ग प्रयोग –इनका संग्रह किया है इस प्रकार –

**रसा भावा ह्यभिनयाः धर्मी–वृत्ति–प्रवृत्तयः।**
**सिद्धिः स्वरास्तथाऽऽतोद्यं गानं रङ्गश्च संग्रहः।।6.10।।**[1]

इन तत्त्वों में 'धर्मी' को अन्यतम तत्त्व माना गया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने सर्वविध अभिनय को सर्वथा नाट्याश्रित माना, क्योंकि यह लोक की वास्तविकता पर आश्रित होकर भी उससे सर्वथा भिन्न तथा नित्य चमत्कारकारी होता है। अभिनय को नाट्याश्रित मानते हुए आचार्य 'धर्मी' के द्विविध रूपों – **लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी**–का प्रतिपादन करते हैं इस प्रकार –

**लौकिकी नाट्यधर्मीति धर्मी तु द्विविधा स्मृता।।अथवा**
**लोकधर्मी नाट्यधर्मी धर्मीति द्विविधः स्मृतः ।।6.24**

अभिनय में लोकधर्मिता विषयसामग्री प्रदान करते हुए उपादान का कार्य करती है तथा नाट्यधर्मिता उसकी प्रस्तुति को सरस बनाती है। नाट्यधर्मिता का सम्पूर्ण आधार होता है लोक तथा उससे अनुप्राणित अपूर्व प्रातिभ अभिनेय या अनभिनेय काव्यात्मक प्रस्तुति नाट्यधर्मी परम्परा की प्रतिनिधि मानी जाती है।

लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी इन दोनों ही प्रकारों के अभिनयों का लक्षण आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के त्रयोदश अध्याय मे इस प्रकार किया है–

---

***संस्कृतविभाग, कलासंकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वभावभावोपगतं शुद्धं तु/(त्व) विकृतं तथा।
लोकवतिक्रियोपेतमङ्गलीलाविवर्जितम्।।57।।
स्वभावाभिनयोपेतं नानास्त्रीपुरुषाश्रयम्।
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता ।।58।।

लोकधर्मी अभिनय लोक की वास्तविक तथा अविकृत रूप से प्रस्तुति का परिचायक होता है। लोक में घटित व्यवहार या क्रिया का लीलरहित अंगहारों से प्रस्तुतीकरण लोकधर्मी कहलाता है। इसमें स्त्री तथा पुरुष पात्र अनेक प्रकार के होते है।

गीतात्त्वावाद्यक्रियोपेतमतिसभतिभवकम्।
लीलाङ्गहाराभिनयं नाट्यताललयान्वितम्।।59।।
स्वरा/सर्वालङ्कारसंयुक्तमस्वस्थपुरुषाश्रयम्।
यदीदृशं भवेन्नाट्यं नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ।।60।।
यश्च कक्ष्याविभागोऽयं नानादेशसमाश्रयः।
रङ्गपीठगतः प्रोक्तो नाट्यधर्मी तु सा भवेत्।।61।।

**नाट्यधर्मी** अभिनय में नट लौकिक विषय की कलात्मक प्रस्तुतिमें अपनी पहचान को विगलित कर देता है। इसमें लौकिक विषय को सहृदय के लिए चमत्कारी बनाने के निमित्त से नट द्वारा अपने अभिनय में सौन्दर्यपूर्ण शारीरिक चेष्टाओं, वाद्यात्मक कियाओं, सात्विक तथा भावात्मक प्रस्तुतियों लीलात्मक अंगहारों, ताल, लय तथा अलंकारों का आकर्षक समावेश किया जाता है। इसमें गीत, वाद्य, नाट्य इन सभी के सभी अलंकार प्रदर्शित होते हैं।

नाट्य के लोकधर्मी प्रवृत्ति के सर्वथा आश्रित होने के अनेक प्रमाण नाट्यशास्त्र के प्रथमाध्याय में मिलते हैं जहॉ भरतमुनि ने स्वयं कहा है कि नाट्य अनेकानेक भावों तथा अवस्थाओं से सम्पन्न होते हुए भी लोकवृत्त का ही अनुकारण है।

नानाभावोपसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।1.109।।

भरतमुनि ने नाट्य में तीन प्रमाण स्वीकार किए जिनमें लोक को वेद अर्थात् शास्त्र तथा अध्यात्म से सर्वोपरि प्रमाण माना–**लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्।**

इसके अतिरिक्त भरतमुनि नाट्य को त्रैलोक्य का भावानुकीर्तन मानते हैं–

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।

---

1 नाट्यशास्त्र काव्यलक्षणखण्ड , सम्पादक तथा अनुवादक–आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, वितरक आर्यन बुक्स इण्टरनेशनल, नई दिल्ली।2006



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तद्वीपानुकरणं नाट्यमेतद् भविष्यति।।1.14।।
धर्म्यं यशस्यम् आयुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।1.11।।
योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽङ्गद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।1.116।।

आचार्य भरत के अनुसार यद्यपि सम्पूर्ण अभिनय लोकाश्रित लोकानुप्रणित होता है तथापि नाट्यप्रयोग सदा नाट्यधर्मी प्रवृत्ति का ही होना चाहिए, क्योंकि नाट्य में अङ्गाभिनय प्रधान होता है। इसके बिना नाट्य की परिकल्पना ही संभव नहीं।

नाट्यधर्मी प्रवृत्ति लोकाश्रित होती है। अभिनय में चमत्कृति का आधान करने हेतु नाट्यधर्मी प्रवृत्ति अनिवार्य रूप से अपनायी जानी चाहिए। भरमुनि ने नाट्यधर्मी प्रवृत्ति को नाट्य में सौन्दर्यानुभुति का जनक माना है। यह प्रवृत्ति काव्य तथा नाट्य में कविप्रतिभाप्रसूत होती है। नाट्य में अभिनय के समय इसका प्रकाशन नट द्वारा अपने नाट्याभ्यास तथा प्रतिभा के आश्रित होकर किया जाता है। इसका निर्देश आचार्य भरतमुनि ने सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र में अनेक सन्दर्भों में किया है।

भरतमुनि ने नाट्य के तत्वों का संग्रह करते हुए एकादश तत्त्वों को स्वीकार किया है। इन तत्त्वों में आचार्य रस के अनन्तर भावों का उल्लेख करते हैं। भावों के अनन्तर आचार्य ने अभिनय का उल्लेख किया है। इनके मत में अभिनय **आंगिक, वाचिक, आहार्य** तथा **सात्त्विक** के भेद से चार प्रकार का होता है–

आंगिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्विकस्तथा।
चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः।।6.23।।

चत्वार इति आहार्यस्यापि धनुःप्रतिशीर्षकमुकुटादेः प्रत्यक्षबुद्धवुपयोगेऽन्तरंगत्वं सूचयति। नाट्यसंश्रया इति लोके तु कदाचिन्न भवत्यपि गृहीतत्वात्। नाट्ये तु तदेव जीवितम्। अत एव रसभावानन्तरमभिनया उद्दिष्टाः।।अभिनयाश्च लौकिकं धर्म तन्मूलमेव तदुपजीवितम्। सामयिकं वानुवर्तन्ते इत्यतस्तदनन्तरं धर्मी।

**सामान्यभिनय** में आचार्य भरतमुनि ने 'वचिक, आंगिक और सात्विक' इन तीनों की एक साथ समान तथा मिश्रित रूप से उपस्थित मानी है। इनका मिश्रण संवादी होना चाहिए न कि विसंवादी।

सामान्याभिनय में आचार्य ने अभिनय की श्रेष्ठता सत्त्व (चिति) के सम्मिश्रण पर आश्रित मानी है। इनके अनुसार अधिक सत्त्व का अभिनय, ज्येष्ठ समसत्त्व का अभिनय, मध्यम और निःसत्त्व का अभिनय अधम अभिनय माना जाता है। यहाँ सत्त्व से तात्पर्य है चिति का अभिनय में अभिनिवेश।[3]

सामान्यतः चतुर्विध अभिनय प्रसिद्ध हैं, परन्तु नाट्यशास्त्र में इनके अतिरिक्त अभिनय प्रकारों का

3 इसी को परवर्ती आचार्यो ने रसविवेचन प्रसंग में– शिक्षाभ्यासनिवर्तितस्वकार्यप्रकटनेन कृत्रिमैरपि तथा अनभिमन्यमानैः– कहा अर्थात् पूर्ण मनोयोग से नट के द्वारा किया गया अभिनयसन्निवेश कृत्रिम को भी वास्तविक बना देता है तथा सहृदय को सत्त्वगुण के उद्रेक से जनित आनन्दातिरेक की अवस्था में पहुँचा देता है– सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दसंविद्विश्रान्तिसतत्वेन भोगेन भुज्यते।–काव्यप्रकाश



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी विवेचन किया गया है। इससे आचार्य भरतमुनि की लोकधर्मी परम्परा की सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना परिलक्षित होती है जिसके अभाव में नाट्यधर्मी की अभिनय में समुचित प्रतिष्ठापना संभव नहीं हो सकती।

**1. सात्त्विक अभिनय –**

अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय रसाध्याय तथा सातवें अध्याय भावाध्याय के विषय जिन वाचिक तथा सात्त्विक अभिनयों पर आश्रित हैं उनका प्रकाशन आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के बाइसवें अध्याय में सामान्याभिनय के रूप में किया है। इनमें से सामान्याभिनय का लक्षण उन्होंने इस प्रकार किया है–

**सामान्याभिनयो नाम ज्ञेयो वागङ्गसत्त्वजः।**
**सत्त्वे कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यं सत्त्वे प्रतिष्ठितम्।।22.1।।**[4]

**'वाणी, अंग और सत्त्व'** इन तीनों के द्वारा **'वाचिक, आङ्गिक और सात्त्विक'** ये तीनों अभिनय जिसमें एक साथ मिश्रित रूप में उपस्थित हों उसको **'सामान्याभिनय'** कहते हैं। इन तीनों का मिश्रण भी संवादी होना चाहिए न कि विसंवादी । इनमें से अधिक मात्रा में प्रयत्न किया जाना चाहिए **'सत्त्व'** के उपस्थापन में, क्योंकि नाट्य का मुख्य आधार सत्त्व (चिति) ही है।

भरतमुनि के अनुसार सत्त्व तो अव्यक्त होता है अतः उसका अनुमान ही होता है, जिसमें हेतु बनता है भाव। रोमांच आदि गुणों से उसका रस के साथ उचित सम्बन्ध निश्चित हो जाता है–

**अव्यक्तरूपं सत्वं हि विज्ञेयं भावसंश्रयम्।**
**यथास्थानरसोपेतं रोमांचास्रादिभिर्गुणैः।।22.3।।**

भरतमुनि ने यहां लोकधर्मी परम्परा को अपनाया है तथा अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ स्त्रियों में दिखाई देने वाले 20 सात्त्विक भावों को अलङ्कार मानते हुए प्रस्तुत किया है। इन 20 प्रकार के अलङ्कारों को आचार्य भ्रतमुनि ने तीन प्रकार का माना है–

**क. अंगज–** हाव, भाव तथा हेला।

**ख. स्वभावज–** लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित तथा विहृत।

**ग. अयत्नज–** शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रागल्भ्य और औदार्य।

रसों के कारण या भावों के कारण ये सभी बढ़ते जाते हैं–

**आदौ त्रयोऽङ्गजास्तेषां दश स्वाभाविकाः परे ।**
**अयत्नजाः पुनः सप्त रसभावोपबृंहिताः।।22.5।।**

---

4 सामान्य यानी सभी अभिनयों में मिलने वाली विशेषताएँ 22.82 । इस अभिनय में कुछ खास प्रयत्न अपेक्षित रहता है। वह होता है साधारणरूप; इस अभिनय को सामान्यभिनय कहा जाता है। कटाक्ष से लेकर सिर की चेष्टा तक का अभिनय एक ही होता है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**क. अंगज अलङ्कार–** स्त्रियों में तीन अंगज अलङ्कार हैं– भाव, हाव, और हेला–

**देहात्मकं भवेदत्र सत्त्वाद् भावः समुत्थितः।**
**भावात् समुत्थितो हावो हावाद्धेला समुत्थिता।।22.6 ।।**
**भावो हावश्च हेला च परस्परसमुत्थिताः।**
**सत्त्वभेदा भवन्त्येते शरीरे प्रकृतिस्थिताः।।22.7।।**

सत्त्व है जीवित देह जिसमें उत्पन्न होता है भाव। भाव से उत्पन्न होता है हाव और हाव से उत्पत्रन्न होती है हेला। वस्तुतः भाव, हाव और हेला एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। ये सत्त्व के ही भेद होते हैं। शरीर में ये स्वतः उत्पत्र होते हैं अर्थात् इनको आयातित नहीं किया जाता । इनका बाहर से लाकर चित्त में प्रवेश नहीं कराया जाता ।

1. **भाव–** कवि के मन के भीतरी भाव को सहृदय के अनुभव तक पहुचाने के कारण भावों को भाव कहा जाता है। कवि के भावों को सहृदय तक पहुचाने में साधन बनते हैं वाक्, अंङ्ग, मुखराग, सत्त्व और अभिनय– **वागङ्मुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च ।**

**कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते ।।22.8।।**

2. **हाव–** आचार्य भरतमुनि ने सत्त्व की परिणति को ही हाव माना है जो नट में अक्षि तथा भ्रूविकारों की प्रचुरता के रूप में दिखाई देती है। इसमें शृंगाराकर की सूचना हेती है तथा यह ग्रीवारेचक से समन्वित होता है–

**तत्राक्षिभ्रूविकाराढ्यः शृङ्गाराकरसूचकः।**
**सग्रीवारेचको ज्ञेयो हावः सत्त्वसमुत्थितः।।22.9।।**

3. **हेला –** शृंङ्गाररस के सन्दर्भ में प्रतीत होने वाले भाव अर्थात् नायिकाओं की विलासपूर्ण चेष्टाएं ही हेला कहलाती है जिनका अभिनय लालित्य से परिपूर्ण होता है–

**यो वै हावः स एवैषा शृङ्गाररससंभवा।**
**समाख्याता बुधैर्हेला ललिताभिनयात्मिका ।।22. 10।।**

**ख. स्वभावज अलङ्कार–**स्त्रियों में दस स्वभावज अलङ्कार हैं– (1) लीला , (2) विलास, (3) विच्छित्ति, (4) विभ्रम, (5) किलकिञ्चित (6) मोट्टायित, (7) कुट्टमित, (8) विब्बोक, (9) ललित, और (10) विहृत–

**लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंजितम्।**
**मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोको ललितं तथा ।।22.11।।**
**विहृतं चेति विज्ञेया दश स्त्रीणां स्वभावजः ।।22.12 ।।**

**1. लीला–** प्रीतिजन्य मधुर और शिष्ट वाणी और अंगों के अलङ्कारों से शिष्ट जनों की अनुकृति लीला कहलाती है– **वागङ्गालङारैः शिष्टैः प्रीतिप्रयोजितैर्मधुरैः।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इष्टजनस्याऽनुकृतिर्लीला ज्ञेया प्रयोगज्ञैः ।।22.13।।[5]

**2. विलास** – स्त्रियों में पायी जाने वाली शृंगारपूर्ण चेष्टाएं विलास कहलाती हैं। इसमें उनके बैठने, उठने, चलने, हाथ भौंह और नेत्रों की चेष्टाओं की मिली जुली विशेषता सम्मिलित रहती है–

**स्थानासनगमनानां हस्तभ्रुनेत्रकर्म्मणां चैव ।**
**उत्पद्यते विशेषो यः श्लिष्टः स तु विलासः स्यात् ।।22.14 ।।**

**3. विच्छित्ति** – थोड़े से शृंगार में पर्याप्त शोभाजनकता विच्छित्ति कहलाती है। इसमें नायिका द्वारा माला, वस्त्र, भूषण और विलेपन आदि का जैसा–तैसा न्यास किये जाने पर भी अपार शोभा उत्पन्न होती है–

**माल्याच्छादनभूषणविलेपनानामनादरन्यासः ।**
**स्वल्पोऽपि परां शोभां जनयति यस्मात् तु विच्छित्तिः ।।22.15 ।।**

**4. विभ्रम**– विविध प्रकार के 'वाक्, अङ्ग, आहार्य और सत्त्व' से युक्त पदार्थो का मद और राग के कारण जो वैपरीत्य, वह होता है विभ्रम –

**विविधानामर्थानां वागङ्गाहार्यसत्त्वयोगानाम् ।**
**मदरागहर्षजनितो व्यत्यासो विभ्रमो ज्ञेयः ।।22.16 ।।**

**5. किलकिंजित**– स्मित, रुदित, हसित, भय, हर्ष, गर्व, दुःख, श्रम और अभिलाष का हर्ष के कारण जो कई बार मिश्रण किया जाता है, वह है किलकिंजित –

**स्मितरुदितहसितभय–हर्षगर्वदुःखश्रमाभिलाषाणाम् ।**
**सङ्करकरणं हर्षादसकृत् किलकिंजितं ज्ञेयम् ।।22.17 ।।**

**6. मोट्टायितम्** – इष्ट जन के विषय में हो रही बात सुनकर या उसे देखकर उसी के भाव की भावना में तद्भावभावना–कृत जो कुछ से निकला है वह वचन और लीला, हेलादि चेष्टाएँ, वह है नायिका का अलङ्कार जिसे कहा जाता है मोट्टायित –

**इष्टजनस्य कथानां लीलाहेलादिदर्शने वापि ।**
**तद्भावभावनाकृतमुक्तं मोट्टायितं नाम ।।22.18।।**

**7. कुट्टमितम्**– सुख की चरम मात्रा की अनभूति के क्षण में चेष्टा करना दुःख की। दुःख इसलिए जतलाना कि प्रिय ने केश पकड़े स्तन मसले और अधर पानकर जो किया उससे जो हुई सातिशय, असीम तृप्ति और हर्ष तज्जनित भय और कुछ सूझ संभ्रम रहा है–

---

5 उदाहरण अभिनवभारती में नहीं दिया गया ! धनिक ने यह उदाहरण दिया है–
तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्णम् ।
अवलोकितं सतृष्णं सविभ्रमं यथा सपत्नीभिः ।।
'वैसा ही देखना, वैसा ही बोलना जिसे सपत्नियाँ विभ्रमपूर्वक देख रही हैं'।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केशस्तनाधरादिग्रहणादतिहर्षसंभ्रमोत्पन्नम् ।

कुट्टमितं विज्ञेयं सुखमपि दुःखोपचारेण ।।22.19

8. **विब्बोक**– अभीष्ट पदार्थो की प्राप्ति हो जाने पर स्त्रियों में जो अभिमान और गर्व जागता है तथा उसके कारण उनमें अनादर का भाव जागता है, वह है विब्बोक –

इष्टानां भावानां प्राप्तावभिमानगर्व्वसंभूतः ।
स्त्रीणामनादरकृतो विब्बोको नाम विज्ञेयः ।।22.20 ।।[6]

9. **ललित** – सौकुमार्य के कारण हाथ, पैर आदि अंगों का भ्रू, नेत्र और ओंठों से प्रयोजित जो विन्यास, वह है ललित –हस्तपादाङ्गविन्यासो भ्रूनेत्रोष्ठप्रयोजितः ।

सौकुमार्याद् भवेद् यस्तु ललितं तत् प्रकीर्त्तितम् ।।22.21 ।।

10. **विह्वतम्**– प्रीतियुक्त व्यक्तियों द्वारा जो कहे जा सकते हों ऐसे वाक्यों का भी किसी बहाने से या अकारण ही न कहना है विह्वत–

वाक्यानां प्रीतियुक्तानां प्राप्तानां यदभाषणम्।
व्याजात् स्वभावतो वापि विह्वतं नाम तद्भवेत्।।22.22।।

(ग) **अयत्नज अलंकार**– स्त्रियों के अयत्नज अलंकार हैं– शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रागल्भ्य, और औदार्य। इनमें से शोभा है अंगों का अलंकरण अर्थात उपभोग से वृद्धि को प्राप्त रूप, यौवन और लावण्य। आपूर्णमन्मथा शोभा अथवा कामतृप्तिजन्न्य शोभा ही है कान्ति। कान्ति ही अतिविस्तीर्ण हो जाये तो कहलाती है दीप्ति। या ललित सभी अवस्थाओं में चेष्टा में उल्बणता (रूक्षता) न आना है माधुर्य। वह स्वाभाविक चित्तवृत्ति धैर्य है जिसमें न चपलता रहती है न विकत्थना। प्रागल्भ्य है प्रयोग में भयरहित रहना। औदार्य है सभी अवस्थाओं में विनय।

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च तथा माधुर्य्यमेव च।
धैर्यं प्रागल्भ्यमौदार्यमित्येते स्युरयत्नजाः।।22.23।।

---

6 अभिनवगुप्त ने अभीष्ट पदार्थों का अर्थ किया है प्रार्थित वस्त्र, आभूषण, आदि। उदाहरण के रूप में अभिनवगुप्त ने प्राकृतगाथा प्रस्तुत की है जिका अर्थ अस्पष्ट है। धनिक ने निम्नलिखित स्वपद्य उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है–

सव्याजं तिलकालकान् विरलयॅल्लोलांगुलीः संस्पृशन् बारम्बारमुदीरयन् कुचयुगप्रोदांचिनीलांचलम्।

यद् भ्रूभंङ्गतङ्गितांचितदृशा सावज्ञमालोकितस्तद् गर्वादवधीरितोऽस्मि, न पुनः कान्ते! कृतार्थीकृतः।।

'प्रिये! तूने तिलक पर लटकी अलकें हटाई, चंचल उँगलियों से स्तनों पर आ पड़ी नीली ओढ़नी ऊपर की और भौहे घुमाते हुए मेरी ओर अवज्ञाभरी दृष्टि डाली, इसका मतलब यह कि तूने मुझे घास नहीं डाली, कृतार्थ करने की तो कथा ही क्या?' यह हुआ विब्बोक।

7 उदाहरण के रूप में अभिनवभारती ने अस्पष्टार्थ प्राकृत गाथा प्रस्तुत की है। धनिक ने स्वयं का यह पद्य प्रस्तुत किया है– सभ्रूभंगं करकिसलयावर्त्तनैरालपन्ती सा पश्यन्ती ललितललितं लोचनस्यांचलेन।

विन्यस्यन्ती चरणकमले लीलया स्वैरयातैर्निःसंगीतं प्रथमवयसा नर्त्तिता पंकजाक्षी।।

'भौहें मटकाना, हाथों को घुमाना, मिठास के साथ बोलना, कनखी से ललित–ललित निहारना, कमलतुल्य पैरों को लीलापूर्वक रखना, इधर आना उधर जाना,– यह सब इस सुन्दरी में है क्या? यह है नई उमर की सौगात। नई उमर नृत्य करवा रही है इसमें, कमी इतनी ही है कि इसमें साज नहीं है।।' यह हुआ ललित।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूपयौवनलावण्यैरुपभोगोपबृंहितैः।
अलंकरणमङ्गानां शोभेति परिकीर्त्तिता।।22.24।।
विज्ञेया च तथा कान्तिः शोभेवापूर्णमन्मथा।
कान्तिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते।।22.25।।
सर्वावस्थाविशेषेषु दीप्तेषु ललितेषु च।
अनुल्बणत्वं चेष्टाया माधुर्यमिति संज्ञितम्।।22.26।।
चपलेनाऽनुपहता सर्वार्थेष्वविकत्थना।
स्वाभाविकी चित्तवृत्तिर्धैर्यमित्यभिधीयते।।22.27।।
प्रयोग–निःस्साध्वसता प्रागल्भ्यं समुदाहृतम्।
औदार्यं प्रश्रयः प्रोक्तः सर्वावस्थानुगो बुधैः।।22.28।।

ये भाव सुकुमार यानी ललित प्रयोग में भी होते हैं और दीप्त में भी, किन्तु दीप्त में विलास और ललित नहीं होते।।22.29।।

आचार्य भरतमुनि ने पुनः पुरुषों में पाये जाने वाले सत्त्वज भावों का उल्लेख किया है उनके अनुसार शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, लालित्य, औदार्य और तेज ये होते हैं सत्त्व के प्रकार जो पुरुषशरीर में भी स्त्रियों के सदृश प्रकट होते हैं–

शोभा विलासो माधुर्यं स्थैर्यं गाम्भीर्यमेव च ।
ललितौदार्यतेजांसि सत्त्वभेदास्तु पौरुषाः ।।22.30।।

**1. शोभा**– शोभा पुरुष शरीर की वह विशेषता है जिसके कारण किसी भी नर के शरीर में दक्षता आती है, शौर्य दिखाई देता है, उत्साह रहता है, नीच कार्यो के प्रति घृणा रहती है और स्पर्धा रहती है उत्तम गुणों की –

दाक्ष्यं शौर्यमथोत्साहो नीचार्थेषु जुगुप्सनम्।
उत्तमैश्च गुणैः स्पर्धा यतः शोभेति सा स्मृता।।22.31।।

**2. विलास**– 'दृष्टि के सञ्चार में धीरता हो, गति चाल, पादचार उत्तम वृष गोवष्भभ – सी अजित हो और बातचीत हो स्मितपूर्वक–' इस विशेषता को कहा जाएगा नरशरीर में विलास–

धीरसञ्चारिणी दृष्टिर्गतिर्गोवृषभाञ्चिता।
स्मितपूर्वमथालापो विलास इति कीर्त्तितः।।22.32।।

**3. माधुर्य**– युद्ध, नियुद्ध आदि बड़े अवसर पर इन्द्रियों की जो अक्लिष्टता वह है माधुर्य–

अभ्यासात् करणानां तु श्लिष्टत्वं यत्र जायते।
महत्स्वपि विकारेषु तन्माधुर्यमिति स्मृतम्।।22.33।।

**4. स्थैर्य**– धर्म, अर्थ और काम से संबन्धित कार्यों से न हटना है स्थैर्य, भले ही वे कार्य शुभ हों



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या अशुभ–  धर्मार्थकामसंयुक्ताच्छुभाशुभसमुत्थितात् ।
व्यवसायादचलनं स्थैर्यमित्यभिसंज्ञितम्।।22.34।।

**5. गाम्भीर्य**– जिसके प्रभाव से हर्ष, क्रोध या भय आदि के समय उत्पन्न होने वाले शारीरिक आकार या चेष्टाएँ दिखाई नहीं देतीं वह कहलाता है गाम्भीर्य–

यस्य प्रभावादाकारा हर्षक्रोधभयादिषु।
भावेषु नोपलक्ष्यन्ते तद् गाम्भीर्यमिति स्मृतम्।।22035।।

**6. ललित**– शृङ्गारी आकार और शृङ्गार की चेष्टा है ललित, किन्तु निर्विकार, सहज और अपने आप अबुद्धिपूर्वक होने वाली–

अबुद्धिपूर्वकं यत् तु निर्विकारस्वभावतम्।
शृङ्गाराकारचेष्टत्वं ललितं तदुदाहृतम्।।22.36।।

**7. औदार्य**– वह गुण औदार्य कहलाता है, जिससे व्यक्ति दान देता है, अनुग्रह अभ्युपपत्ति करता है और बात बोलता है। यह सब करते समय व्यक्ति यह नहीं सोचता कि व्यक्ति अपना है या पराया–

दानमभ्युपपत्तिश्च तथा च प्रियभाषणम्।
स्वजने च परे वापि तदौदार्यं प्रकीर्त्तितम्।।22.37।।[8]

**8. तेज**– नामक गुण वह कहलाता है जिसके कारण शत्रु के द्वारा किए गए अधिक्षेप या अपमान आदि को बिलकुल भी सहा नहीं जाता, भले ही प्राण चले जाएँ।

हे उत्तम द्विजो! मैं अब बतलाऊँगा क्रम से शरीरिक आंगिक अभिनय।सात्त्विक अभिनय मैं पहले ही बतला चुका हूँ भावाध्याय में।

अधिक्षेपाऽवमानादेः प्रयुक्तस्य परेण यत्।
प्राणात्ययेऽप्यसहनं तेत् तजः समुदाहृतम्।।22.38।।

सत्त्वजोऽभिनयः पूर्वं मया प्रोक्तो द्विजोत्तमाः।
शारीरं चाप्यभिनयं व्याख्यास्याम्यनुपूर्व्वशः।।22.39।।

---

8 औदार्य के लिए उदाहरण है–जीवन तक का दान, यथा नागानन्द में–

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति।
तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन्।।

'नाडियों से रक्त निकल ही रहा है और अभी कुछ मांस शेष है। गरुड तुम रुक क्यों गए? सत्पुरूषों की कृपा। हिमाचल की कुमारसंभव 6.63 में उक्ति–

एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्।
ब्रूत येनाऽत्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु।।

सप्तर्षियों से हिमाचल ने कहा–'भगवन्, आज्ञा करें, आपको किससे प्रयोजन है 1 यह में स्वयम्, 2 यह मेरी पत्नी और 3 यह कन्या पार्वती जो हमारे पूरे कुल का प्राण है। ये भी प्रस्तुत हैं बाह्य वस्तु का तो विचार ही नहीं करना है।'



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**2. शारीराभिनय (आङ्गिक)–**

सात्त्विक अभिनय के अनन्तर भरतमुनि ने शरीराभिनय का विवेचन किया है जिसमें लोकधर्मी और नाट्यधर्मी दोनों ही परम्पराओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनको आचार्य ने सामान्याभिनय के अन्तर्गत ही माना है क्योंकि इनकी उपस्थिति सभी प्रकार की रचनाओं तथा प्रस्तुतियों में पायी जाती है।

भरतमुनि के अनुसार शारीर आङ्गिक अभिनय के छह (क्रमिक) अंग होते हैं–

(1) वाक्य (2) सूचा (3) अङ्कुर (4) शाखा (5) नाट्यायित और (6) निवृत्त्यङ्कुर[9]–

**षडात्मकस्तु शारीरो वाक्यं सूचा तथाङ्कुरः।**
**शाखा नाट्यायितं चैव निवृत्त्यङ्कुर एव च।।22.40।।**

**1. वाक्य**– जिसमें प्राकृतभाषा या संस्कृतभाषा के कुछ वाक्यों को पढ़ा जाना वाक्य कहलाता है। वे वाक्य पद्यों में निबद्व रहते हैं और अनिबद्व चूर्णपदात्मक भी, किन्तु लिए रहते हैं वे अपने भीतर अनेक प्रकार के रस और उनसे संबन्धित अर्थ घटनाचक्र–

**नानारसार्थयुक्तैर्वृत्तनिबन्धैः कृतः स चूर्णपदैः।**
**प्राकृतसंस्कृतपाठो वाक्याभिनयो बुधैर्ज्ञेयः।।22.41।।**

**2. सूचा**– वाक्य और वाक्यार्थ की सूचना सूचा नामक नाट्यांग में सत्त्वाङ्गो के द्वारा दी जाती है, तदनन्तर किया जाता है वाक्याभिनय–

**वाक्यार्थो वाक्यं वा सत्त्वाङ्गैः सूच्यते यदा पूर्वम्।**
**पश्चाद् वाक्याभिनयः सूचेत्यभिसंज्ञिता सा तु।।22.42।।**

**3. अङ्कुर**– सूचा द्वारा सूचित हृदय मानसिक भाव का आंगिक किन्तु शब्दप्रयोगरहित अभिनय अङ्कुर नामक अभिनय होगा। यह कुशल नटों द्वारा ही साध्य है–

**हृदयस्थो निर्वचनैरङ्गाभिनयः कृतो निपुणसाध्यः।**
**सूचैवोत्पत्तिकृता विज्ञेयस्त्वङ्कुराऽभिनयः।।22.43।।**

---

9 मालविकाग्निमित्र 2.8 पद्य की पदावली इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य है–
हस्तैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थःपादन्यासैर्लयमुपगतैस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयः षड्विकल्पानुवृत्तौ भावे भावे नुदति विषयान् रागबन्धः स एव।।
दशरूपकावलोक इसमें वचन वाक्य का स्पष्ट बोधक पद है। सूचितः सूचा का ही परिणाम है। शाखायोनि शब्द से उँगली आदि का बोध है ही। षड्विकल्प 'वाक्य, सूचा, अङ्कुर, शाखा, नाट्यायित तथा निवृत्त्यङ्कुर'। मालविकाग्निमित्र के मुद्रित संस्करणों में इस पद्य का प्रथम पद 'हस्तैः' 'अङैग0' छपा है। 'षड्वि0' के स्थान पर छपा है 'तद्रविक0'। कालिदासग्रन्थावली–द्वितीय संस्काण, प्रकाशक काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, 1986 में भी 'अङ्गैः' ही छपा है। किन्तु तृतीयसंस्करण जो कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन से हिन्दी अनुवाद के साथ छपा है, उसमें अवलोक में प्राप्त पाठ ही मूल में अपनाया गया है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**4. शाखा**– में सिर, मुख, जङ्घा पिढरी, (उरू जाँघ,) पाणि और पाद–इन छहों अंगों से इसी क्रम से अभिनय किया जाता है। शाखा हाथ–पैर का दर्शन होने के कारण इसे कहा जाता है कि –

**यत् तु शिरोमुखजङ्घोरूपाणिपादैर्यथाक्रमं क्रियते।**

**शाखादर्शनमार्गाः शाखाभिनयः स विज्ञेयः।।22.44।।**

**5. नाट्यायित**– में नाट्याभिनय के भीतर गर्भाङ्क–जैसा नाट्याभिनय रहता है। इसका प्रयोजन होता है कालप्रकर्ष जिसके लिए एकाधिक प्रवेशकों ही योजना की जाती है। यह तब तक चलता है जब तक संगम नहीं हो जाता । ध्रुवाओं में किया जाने वाला भावरसयुक्त हर्षशोकादि का अभिनय भी नाट्यायिता होता है– **नाट्यायितमुपचारैर्यः क्रियतेऽभिनयसूचया नाट्ये।**

**कालप्रकर्षहेतोः प्रवेशकैः सङ्गमो यावत्।।22.45।।**

**स्थाने ध्रुवास्वभिनयो यः क्रियते हर्षशोकरोषाद्यैः।**

**भावरससंयुक्तैर्ज्ञेयं नाट्यायितं तदपि।।22.46।।**

**6. निवृत्त्यङ्कुर**– जहाँ किसी अन्य पात्र के द्वारा उक्त वाक्य को सूचाभिनय के द्वारा कोई दूसरा पात्र जोड़े और कथावस्तु संबद्ध ही रहे, तो उसे कहते हैं–

**यत्रान्योक्तं वाक्यं सूचाभिनयेन योजयेदन्यः।**

**तत्संबन्धार्थकथं भवेन्निवष्त्यङ्कुरो नाम।।22.47।।**

**3. मार्गाभिनय (वाचिक)**– आचार्य भरतमुनि ने अभिनयप्रकारों की अभिव्यक्ति के लिए लोकधर्मी परम्परा का आश्रय लेते हुए पुनः लोक में प्रचलित वाचिक प्रकारों को अपनाया है। इनको भी आचार्य सामान्याभिनय का ही अंग मानते हैं क्योंकि इनकी उपस्थिति सभी प्रकार के प्रयोगों में अपरिहार्य होती है। लोक से नाट्य में अपना लिए जाने पर इनमें भाव तथा रस की प्रमुखता हो जाती है। सामान्यतः सभी अभिनय वाक्य का आश्रय लेकर अभिव्यक्त होते हैं। इसलिए इनका सभी रचनाप्रकारों में विद्यमान रहना स्वाभाविक है। इनको आचार्य भरतमुनि मार्गाभिनय कहते हैं इस प्रकार–

**एते प्रयोगा विज्ञेया मार्गाभिनययोजिताः।**

**एतेष्विह विनिष्पन्नो विविधोऽभिनयो भवेत्।।22.64।।**

**एतेषां तु भवेन्मार्गो यथाभावरसान्वितः।**

**काव्यवस्तुषु निर्दिष्टो द्वादशाभिनयात्मकः।।22.48।।**

इनको आचार्य भरतमुनि ने बारह प्रकार का बतलाया है–(1) आलाप (2) प्रलाप (3) विलाप (4) अनुलाप (5) संलाप (6) अपलाप (7) सन्देश (8) अतिदेश (9) निर्देश (10) उपदेश (11) अपदेश और (12) व्यपदेश– **आलापश्च प्रलापश्च विलापः स्यात् तथैव च।**

**अनुलापोऽथ संलापस्त्वपलापस्तथैव च।।22.49।।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्देशश्चातिदेशश्च निर्द्देशः स्यात् तथापरः।
उपदेशोऽपदेशश्च व्यपदेशश्च कीर्त्तितः।।22.50।।

संबोधनपूर्वक बातचीत कहलाता है आलाप। अर्थरहित वचन होगा प्रलाप। दुःख और शोक से उत्पन्न उद्गार विलाप कहलाताहै।अनुलाप में एक ही वाक्य अनेक बार कहा जाएगा। संलाप में रहती हैं उक्तिप्रत्यक्ति। अपलाप में पहले कही बात का अन्यथाभाव बतलाया जाएगा। संदेश है'तुम ऐसा वचन सुनाना'—यह उक्ति। अतिदेश यह वचन कि 'जो तूने कहा वही मैंने भी' कहा है। निर्देश है 'वही मैं कह रहा हुँ' ऐसा कथन। बहाना बनाकर कहना है व्यपदेश। यह वचन कि 'ऐसा कर, इसे ग्रहण कर'। स्वयं के वक्तव्य अर्थको अन्य का वक्तव्य अर्थ बतलाना है अपदेश।

आभाषणं तु यद् वाक्यमालापो नाम स स्मृतः।[10]
अनर्थकं वचो यत् तु प्रलापः स तु कीर्त्तितः।।22.51।।[11]
दुःखशोकोद्भवो यस्तु र्विलापः स तु कीर्त्तितः।
बहुशोऽभिहितं वाक्यमनुलाप इति स्मृतः।।22.52।।
उक्तिप्रत्यक्तिसंयुक्तः संलाप इति कीत्तितः।
पूर्वोक्तस्यान्यथावादो ह्यपलाप इति स्मृतः।।22.53।।
तदिदं वचनं ब्रूहीत्येष सन्देश उच्यते।
यत् त्वयोक्तं मयोक्तं तत् सोऽतिदेश इति स्मृतः।।22.54।।
स एषोऽहं ब्रवीमीति निर्देश इति कीर्त्तितः।
व्याजान्तरेण कथनं व्यपदेश इहाच्यते।।22.55।।
इदं कुरु गृहाणेति ह्युपदेशः प्रकीर्त्तितः।
अन्यार्थकथनं यत् स्यात् सोऽपदेशः प्रकीर्त्तितः।।22.56।।

लोक में प्रचलित इन बारह मार्गों को सभी अभिनयों का कारण माना है। आचार्य भरतमुनि पुनः इनके सात अन्य भेदों का भी प्रतिपादन करते हैं जो आचार्य की लोकधर्मी दृष्टि की सूक्ष्मता से निरीक्षण के परिचायक हैं। ये सात भेद हैं— 1 प्रत्यक्ष, 2 परोक्ष, (3) वर्त्तमानकालकृत, (4) भूतकालकृत

---

10. अभिनवभारती : आभाषणं युष्मदर्थषयम्, उपदेशादिशून्यं यद्वचनं तद् आलापः।
यथा रत्नावली में— प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव।।1.20।।

11. अनर्थक परस्परसम्बद्धं मौर्ख्यादिवशादित्यर्थः यथा दरिद्राचारुत्ते शकारः 'शुणामि मल्लगंधं अंधलालसच्चिदादो उण णासिआदो हिदुतं एलामि' = 'श्रृणोमि माल्यगन्धम् अन्धकारसञ्चिताया पुनर्नासिकया भवदुक्तम् आलोकयामि'। गन्ध नासिका का विषय है गन्ध, परन्तु यहां मूर्ख शकार उस गन्ध को श्रवणेन्द्रिय का विषय बनाकर सुनने की बात यह रहा है। अर्थात् शकार 'नाक से सुन रहा है।' गन्ध का प्रत्यक्ष करना नासिका का काम है। यहां शकार उसके लिए इस प्रकार कहता है— 'मैं आपकी बात नासिका से देख रहा हूँ यह सर्वथा अर्थ रहित होने से प्रलाप माना जाएगा।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(5) भविष्यकालकृत, (6) आत्मस्थ तथा (7) परस्थ–

**एते मार्गास्तु विज्ञेयाः सर्वाभियन्योजकाः।**
**सप्तप्राकरमेतेषां पुनर्वक्ष्यामि लक्षणम्।।22.57।।**
**प्रत्यक्षश्च परोक्षश्च तथा कालकृतास्त्रयः।**
**आत्मस्थश्च परस्थश्च प्रकाराः सप्त कीर्त्तिताः।।22.58।।**

'मैं कर रहा हूँ उत्तर दे रहा हूँ मुझे' ये है आत्मरथ, वर्त्तमान औ प्रत्यक्ष आलाप। 'करूगा, जाऊगा और बोलूँगा' यह है आत्मस्थ, परोक्ष और भूतकालिक आलाप।

नाट्यप्रयोग के बीच हाथ को बीच में करके जो कुछ कहा जाता है वह होता है आत्मस्थ, हृदयस्थ और परोक्ष।

अन्य लोगों की, स्वयं की और काल की विशेषताओं से ये ही सात भेद अनेक प्रकार के हो जाते हैं। इन्हीं प्रयोगों को आचार्य भरतमुनि मार्गाभिनंय मानते हैं। इनमें से ही विविध प्रकार के अभिनय विकसित हुए माने जाते हैं–

**अहं करोमि गच्छामि वदामि वचनं तव।।**
**आत्मस्थो वर्त्तमानश्च प्रत्यक्षश्चैव स स्मृतः।।22.59।।**
**करिष्यामि गमिष्यामि वदिष्यामीति यद् वचः।**
**आत्मस्थश्च परोक्षश्च भविष्यत्काल एव च।।22.60।।**
**हता जिताश्च भग्नाश्च मया सर्वे द्विषद्गणाः।**
**आत्मस्थश्च परोक्षश्च वृत्तकालश्च स स्मृतः।।22.61।।**
**हस्तमन्तरतः कृत्वा यद् वदेन्नट्कर्मणि।**
**आत्मस्थं हृदयस्थं च परोक्षं चैव तन्मतम्।।22.62।।**
**परेषामात्मनश्चैव कालस्य च विशेषणात्।**
**सप्तप्रकारस्यास्यैव भेदा ज्ञेया अनेकधा।।22.63।।**

**4. सामान्याभिनय**– आचार्य भरतमुनि अभिनय प्रकारों के प्रतिपादन के अनन्तर अन्त में **सामान्याभिनय** का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि इन अभिनय प्रकारों को सामान्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनमें शरीर के विभिन्न अंगों – सिर, हस्त, कटि, वक्ष, जंघा, और उरू के कारणों के अभिनयों में जो कर्म–विभाग होता है वह 'सम(समान)' होता है। भरतमुनि के मत में ललित हस्तसंचार तथा मृदु अंगचेष्टाओं से समन्वित अभिनय रस तथा भाव से समन्वित होता है। अतः नाट्य के विद्वान् प्रयोक्ताओं को इसको अपनाना चाहिए–

**शिरोहस्तकटीवक्षोजंङ्घोरुकरणेषु तु।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समः कर्मविभागो यः सामान्याभिनयस्तु सः।।22.64।।

ललितैर्हस्तसंचारैस्तथा मृद्वंगचेष्टितैः।

अभिनेयन्तु नाट्यज्ञै रसभावसमन्वितम्।।22.66।।

मार्गाभिनय के प्रकारों का विचार करने के अनन्तर भरतमुनि ने नाट्य को दो प्रकार का माना जो उनकी नाट्यधर्मी परम्परा के प्रति दृढ आस्था का परिचायक है। यहां आचार्य लोक से अपनाये विषय को नाट्य में शास्त्रीय विधान के साथ प्रस्तुत करने पर बल देते हैं। आचार्य लोकधर्मी को शास्त्रधर्मी बनाते हुए नाट्य में अपनाने के पक्षधर हैं क्योंकि इसमें ही औचित्य की रक्षा सम्भव है तथा उसका सर्वविध चमत्कारकारी होना भी प्रमाणित होता है। इस दृष्टि से आचार्य ने पुनः सम्पूर्ण नाट्य को दो प्रकार का माना है– (1) आभ्यन्तर तथा (2) बाह्य

लय, ताल, कलापात के प्रमाण सुनिश्चित हों, पदों के आलाप ठीक से विभक्त हों, जो निष्ठुर न हो, जिससे आकुलता न उत्पन्न हो, उद्धत न हो संभ्रम पैदा न करे और जो आविद्ध (रूक्ष) न हो उनको आभ्यन्तर माना जाता है।

जिनमें आभ्यन्तर का विपरीत स्वरूप पाया जाए वे हो जाते हैं बाह्य। इस नाट्य में गीत और वाद्य शास्त्रीय विधि से निबद्ध न होकर स्वच्छन्द गति और स्वच्छन्द चेष्टाओं से युक्त होते है–

अनुद्धतमसम्भ्रान्तमनाविद्धांगचेष्टितम्।

लय–ताल–कला–पात–प्रमाण–नियतात्मकम्।।22.67।।

सुविभक्तपदालापमनिष्ठुरमकाहलम्/मनाकुलम्।

यदीदृशं भवेन्नट्यं ज्ञेयमाभ्यनतरं तु तत्।।22.68।।

एतदेव विपर्यस्तं स्वच्छन्दगतिचेष्टितम्।

अनिबद्धगीतवाद्यं नाट्यं बाह्यमिति स्मृतम्।।22.69।।

भरतमुनि के मत में शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणों के भीतर होने के कारण आभ्यन्तर को आभ्यन्तर कहा जाता है। शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणों के बाहर की सभी चेष्टाएं बाह्य कहलाती हैं। शास्त्र के द्वारा लक्षण बतलाया जाता है प्रयोग का भी और उसके कर्म का भी। इस कारण शास्त्रीय लक्षण को नाट्य में लागू किया।

बाह्य के प्रदर्शन का आचार्य निषेध करते हैं। इनके अनुसार जो कर्म आचार्य (गुरु) ने न कहे हों, और जो शास्त्र से बहिष्कृत हों, उन्हें कहा जाता है बाह्य। आचार्य की शिक्षा से रहित नाट्यकर्मी ही इनका प्रयोग करते हैं– लक्षणाभ्यन्तरत्वादधि तदाभ्यन्तरमिष्यते।

शास्त्रबाह्यं भवेद यत्तु तद बाह्यमिति भण्यते।।22.70।।

अनेन लक्ष्यते यस्मात् प्रयोगः कर्म चैव हि।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्माल्लक्षणमेतद्धि नाट्येऽस्मिन् संप्रयोजितम् ।22.71 ।।

अनाचार्योदिता ये च ये च शास्त्रबहिष्कृताः।

बाह्यान् प्रयुज्यते ताँस्तु न ज्ञात्वाचार्यकीं क्रियाम् ।।22.72 ।।

लोक से सम्बद्ध तथा सर्वत्र विद्यमान सृष्टि के उपादानभूत पंचमहाभूतों की नियामक पंचतन्मात्राओं की अभिव्यक्ति नाट्य में कैसे हो इसके विषय में आचार्य ने यहां विचार किया हे। इनके अनुसार तत्त्वज्ञ विद्वान् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध– ये जो इन्द्रियों के विषय हैं, इनका और इनकी इन्द्रियों का भावों द्वारा निर्देश करे।

शब्द का निर्देश करे दृष्टि को तिरछा (साचीकृत) करके, सिर को पार्श्वभाग में झुकाकर और कान के पास तर्जनी लगाकर–

**स्पर्श** के अभिनय में नेत्रों को आकुंचित करे, भौहें उपर उठाए तथा दोनों कन्धों और कपोलों का स्पर्श किए रहे।

**रूप** का अभिनय द्वारा निर्देश करने हेतु सिर पर दो 'पताक'[12] बनावे, मुख (चेहरा) थोड़ा हिलाए और ऑख में बनाए निर्वर्णन की मुद्रा।

**रस** और **गन्ध** दन दोनों की अभीष्टता बतलानी हो, तो नेत्र करे आकुंचित, नासिका उपर की ओर फुलावे और एक लम्बी सॉस ले।

शब्दं स्पर्शं च रूपं च रसं गन्धं तथैव च।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च भावैभिनयेद् बुधः।।22.73।।

कृत्वा साचीकृतां दृष्टिं शिरः पार्श्वनतं तथा।

तर्जनीं कर्णदेशे च बुधः शब्दं विनिर्दिशेत्।।22.74।।[13]

किंचदाकुंचिते नेत्रे कृत्वा भ्रूक्षेपेव च।

तथांसगण्डयोः स्पर्शात् स्पर्शमेवं विनिर्दिशेत्।।22.75।।

कृत्वा पताकौ मूर्धस्थौ किंचित्प्रचलिताननः।

निर्वर्यायन्त्या दृष्ट्या च रूपं त्वभिनयेद् बुधः।।22.76।।

किंचिदाकुंचिते नेत्रे कृत्वोत्फुल्लां च नासिकाम्।

एकोच्छ्वासेन चेष्टौ तु रसगन्धौ विनिर्दिशेत्।।22.77।।

ये ही पॉच तन्मात्र–शब्द आकाश का गुण है और प्रतिष्ठित हैं श्रोत्रेन्द्रिय में। स्पर्श महाभूत वायु

---

12 9.18 नाट्यशास्त्र।

13 'साचीकृता चारूतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन' (कुमारसंभव 3.68)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का विषय है जो त्वागिन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है। रूप का तन्मात्र तेजस् चक्षुरिन्द्रिय का विषय बनता है। रस तन्मात्र जल दस महाभूत में प्रतिष्ठित हो रसनेन्द्रिय का विषय बनता है ओर गन्ध तन्मात्र पृथ्वी दस महाभूत का नियामक हो घ्राणेन्द्रिय का भाव या विषय बनता है। इस प्रकार दस तन्मात्रों से ही दस इन्द्रियों और उनके भावों का अनुभव कराया जाता है। अर्थात् ये पंचतन्मात्र ही बनते है अनुभाव इन्द्रियों और उनके विषय के अनुभव के।

ये पॉचों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) हैं वे विषय जिनकी लालसा रहती है श्रोत्र आदि इन्द्रियों को। अतः ये ही बनते हैं अनुभाव मन की प्रतीति में, क्योंकि जिसका मन नहीं (अमना) उसे इनमें से किसी भी विषय का अनुभव नहीं हो पाता।

**पंचानामिन्द्रियार्थनां भावा ह्येतेऽनुभविनः।**
**श्रोत्रत्वंनेत्रजिह्वानां घ्राणस्य च तथैव हि।।22.78।।**
**इन्द्रियार्थः स मनसो भवन्ति ह्यानुभाविनः।**
**न वेत्ति ह्यामना कंचिद् विषयं पंचधाऽऽगतम्।।22.79।।**[14]

अभिनय में मन का विषय तीन प्रकार का बतलाया जाता है (1) इष्ट (प्रिय), (2) अनिष्ट (अप्रिय), और (3) मध्यस्थ (न प्रिय और न अप्रिय)–

**मनसस्त्रिविधो भावो विज्ञेयोऽभिनये बुधैः।**
**इष्टास्तथा ह्यानिष्टाश्च मध्यस्थष्च तथैव हि।।22.80।।**

प्रिय हो वस्तु, तो शरीर को प्रह्लादित दिखलावे, उस पर रोमांच प्रकट करे और मुख खिलावे। प्रिय हो यदि शब्द, रूप, स्पर्स, रस और गन्ध, तो मन से अधिष्ठित इन्द्रियों के निर्देश के लिए सौमुख्य दिखलावे। अप्रिय हों, तो सिर पीछे कर ले, नेत्र नासिका को वापस ले और न देखने का अभिनय करे–

**प्रह्लादनेन गात्रस्य तथा पुलकितेन च।**
**वदनस्य विकासेन कुर्यादिश्टनिदर्शनम्।।22.81।।**
**इष्टे शब्दे तथा रूपे स्पर्शे गन्धे तथा रसे।**

---

14 अभिनवभारती : अभिनवगुप्त ने पाठ माना है 'इन्द्रियार्थाः समनसः' यथा शब्दादिग्रहणक्रियाभिः शब्दः श्रोत्रे प्रतीयते तन्मनोऽपि तदधिष्ठातृक्रमेणाधिष्ठानं कुर्वदित्यतोऽपि सामान्याभिनयः। मनसस्त्रिविधो भावो वैशेषिकादिदृशि मनःसंयोगजो य आत्मन इच्छाद्वेषमाध्यस्थलक्षणो भाव स मनस इत्युक्तः (पृ0 182) कापिलदृशि तु विन्ध्यवासिनो मनस एव, ईष्वरकृष्णदिमते मनःशब्देनात्र बुद्धिः। (पृ0 183)

अर्थात् शब्द आदि विषय रहते हैं श्रोत्र आदि इंन्द्रियों मे। वहीं उनका अधिष्ठाता बनकर आ बैठता है मन भी–'इसलिए भी हुआ यह अभिनय सामान्यभिनय। मन के सिवाय तीन प्रकार के वैशेषिकदर्षन की दृष्टि से। उसी में कहा गया है– मन के संयोग से जो भाव आत्मा में इच्छा, द्वेष और तटस्थता रूप उत्पन्न होते हैं वे हेतु हैं मन की सिद्धि में। कपिल की दुष्टि में विषयप्रत्यक्ष में। विन्ध्यवासी केवल मन को ही हेतु मानते हैं।

ईश्वरकृष्ण के निरीश्वर सांख्य में मन शब्द से बुद्धि ली जाएगी।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियैर्मनसा प्राप्तैः सौमुख्यं संप्रदर्षयेत्।।22.82।।
परावष्त्तेन शिरसा नेत्रनासाविकर्षणैः।
चक्षुषश्चाप्रदानेन ह्यानिष्टमभिनिर्दिशेत्।।22.83।।
नातिहृष्टेन मनसा न जुगुप्साकृतेन वा।
मध्यस्थेनैव भावेन मध्यस्थमभिनिर्दिशेत्।।22.84।।

मध्यस्थ को मध्यमार्ग से ही प्रस्तुत करे, न अत्यन्त प्रहृष्ट मन की स्थिति में उसे प्रस्तुत करे और अत्यन्त घृणाभरी स्थिति में। 'यह कार्य उसने किया है,' 'यह कार्य उसका है' अथवा 'वह ऐसा करता है' इस प्रकार का अभिनय होता है परोक्षाभिनय। यही है मध्यस्थ कोटि का अभिनय। आत्मस्थ उस पदार्थ को कहा जाता है जिसे आत्मा का अर्थात् स्वयं अपना अनुभव हो। इसी प्राकर परस्थ वह जिसमें अपने से भिन्न व्यक्ति का अनुभव रहे–

तेनेदं तस्य वासीदं स एवं प्रकरोति वा।
परोक्षाभिनयों यस्तु मध्यस्थ इति स स्मृतः।।22.85।।
आत्मानुभावी योऽर्थः स्यादात्मस्थ इति स्मृतः।
परार्थवर्णना यत्र परस्थः स तु संज्ञितः।।22.86।।

जितने भी विषय हैं उसकी निष्पत्ति प्रायः काम से होती है। वह काम है कामी अर्थात् इच्छागुणसंपन्न। अनेक प्राकर का बतलाया गया है वह (काम) कोई काम होता है धर्मकाम, काई अर्थकाम और कोई मोक्षकाम। केवल काम वह जिसमें हो स्त्रीपुरूष– संयोग। सभी शरीरधरियों का दुःख सुख से मिटाने वाला केवल काम ही सर्वत्र (भूयिष्ठ) देखा गया है, जहॉ तक कि आपदाओं के क्षण (व्यसन) में भी।

प्रायेण सर्वभावनां कामान्निपत्तिरिष्यते।
स चेच्छागुणसंपन्नो बहुधा परिकल्पितः।।22.87।।
धर्मकामोऽर्थकामश्च मोखकामस्तथैव च।
स्त्रीपुंसयोस्तु योगो यः स तु काम इति स्मृतः।।अ88।।[15]
सर्वस्यैव हि लोकस्य सुखदुःखनिवर्हणः।
भूयिष्ठं दृश्यते कामः स सुखं व्यसनेष्वपि।।22.89।।
सुखस्य हि स्त्रियो मूलं नानाशीलाश्च ताः पुनः।।22.91।।

---

15 अभिनवभारती : कामो नामेच्छा। सा च सुखे सुखसाधने वा। तत्र धर्मार्थयोः सुखसाधनतैव। मोक्षः पुनः सुखात्मापि सुदुर्लभ इति जन्तुमात्रस्य न स्पृहाविषयः। स्त्रीपुरुषयो संयोगस्तु साक्षदेव सुखसाधनमिति तस्यैवेच्छाविषयतेति निरूपपदेन कामशब्देन स एव वाच्यः।।00।' कामोपचारस्य सामान्याभिनयत्वं बहुतरलक्ष्यव्यापकमिति तदेव दर्शयति। उपचारोऽन्योन्यहृदयग्रहणोचितैर्व्यापारैः परिपूर्णः।। (नाट्यशास्त्र पृ0 186 बड़ौदा संस्करण)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुख का मूल स्त्रियों को मानकर आचार्य ने उनके द्वेवशीला से प्रारम्भ कर मनुष्यशीला तथा गोशीला तक 22 प्रकार उनके स्वभावों के सूक्ष्म विवेचन के साथ प्रस्तुत किए हैं। यहीं पर आचार्य ने स्त्रियों को स्वभाव के आधार पर तीन प्रकार का माना (1) बाह्या (2) आभ्यन्तरा और (3) बाह्याभ्यान्तरा। कुलीन स्त्री आभ्यन्तरा होगी, वेश्या हो बाह्या और (ऋतुधर्म के बाद) शुद्ध हुई बाह्याभ्यन्तरा (ऋतुकाल में बाह्य और शुद्ध होने पर आभ्यन्तरा)–

त्रिविधा प्रकृतिः स्त्रीणां नानासत्वसमुद्भवा।
बाह्या चाभ्यन्तरा चैव स्याद् बाह्याभ्यन्तरा परा।।142।।
कुलीनाऽऽभ्यन्तरा ज्ञेया बाह्या वेश्यांगना स्मृता।
कृतशौचा तु या नारी सा बाह्याभ्यन्तरा स्मृता।।143।।

भरतमुनि ने इसके अनन्तर नायिकाभेद तथा उसके स्वभावों का विवेचन किया है। यह विवेचन भरतमुनि की लोकधर्मी दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचायक है। नाट्यधर्मी प्रवृत्ति लोक का सूक्ष्मता से निरीक्षण कर उसका शास्त्रीय विधि से प्रदर्शन करने पर ही प्रतिष्ठित हो सकती है, यही है आचार्य भरतमुनि का सभी नाट्याचार्यों को सन्देश। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भरतमुनि लोक का सूक्ष्म निरीक्षण कर ही नाट्यप्रस्तुति में प्रवृत्त होने के पक्षधर हैं। नाट्य की प्रतिष्ठा लोकानुसारी होने में हैं, परन्तु रस–भावादि से समन्वित होने पर वही नाट्य चमत्कारकारी होकर युगों तक लोक की प्रशंसा का पात्र बनता है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# अथर्ववेदीय मणिबन्धन का तान्त्रिक विधान

डा० सुधाकर मालवीय*

मानवीय व्याधियों, आधियों ईतिभीति एवं अद्बुद्दोष जनित अरिष्टों से संरक्षण में समर्थ, भैषज्यकर्म के अन्तर्गत विभिन्न  कर्मो में मणिबन्धन का उल्लेख अथर्ववेद में है। उस मणि धारण के तान्त्रिक सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि अथर्ववेद की शौनकीय शाखा सम्मत मणियाँ केवल रत्न की ही नहीं होतीं अपितु वनस्पति से निर्मित; वनस्पति के रसों के पुट से सम्पुटित–भेषज का महत्त्वपूर्ण ज्योतिषशास्त्र सम्मत विषय है, अन्ध विश्वास कदापि नहीं है क्योंकि ये वनस्पतियाँ किसी न किसी नक्षत्र से सम्बधित हैं।

## अथर्ववेदीय कतिपय मणियाँ

1. जङ्गिड़ (अर्जुन), 2. शंखमणि, 3. प्रतिसरमणि, 4.अञ्जनमणि, 5. मणिबन्धनम् (अथर्ववेद10.6. 1–35 ), 6. हरिणमणि, 7. दर्भमणि, 8. औदुम्बरमणि, 9. शतावरीमणि, 10. अस्तृतमणि, 11. त्रिसन्ध्यामणि (दुपहरिया), पिशाच नाशन में प्रयुक्त, 12. वरणमणि–विल्व, 13. स्त्रात्त–तिलकमणि, 14. अभीवर्तमणि, 15. यवमणि, 16. अर्कमणि, 17. खदिरमणि, 18. फालमणि, 19. लोममणि, 20. पाठामूल, 21. आयमगन् (पलाश), 22. तलाश (पलाश)।

## 1. तलाश (पलाश)मणि

""उत्तमो अस्याषधीनाम्" (अ० कां० 6/15,1–3) कौ० अ० 3/19 सू 26 दारिल केशव मत

"तलाशा बल्ली" (पलाश) अम्बुके (आम्बु) केचित् अन्य–तलाशा सोमस्यानयो विकल्प। (ताड़वृक्ष)

अथर्व संहिता के भाष्यकार–सायणाचार्य के मत से बृहत् पलाश है। पुष्टिकामी बृहत् पलाशमणि को विधि से उपर्युक्त सूक्त से अभिमन्त्रित कर बाधें।

वृक्षों से उत्पत्र द्रव्य–गौंद (लाक्षा लाख)  को मणितुल्य धारण करें।इसी का सेवन करें। गर्भधारण काल में एवं पुंसवन में पलाश रस ग्राह्य है। वन्ध्या आदि दोष निवारण में(बृहत्पलाश)  जो नेपाल में मिलता है इसके पत्ते का प्रयोग कहा गया है। ब्रह्मचारी को पलाश दण्ड धारण का उल्लेख होने से पलाश का सर्वस्व शाखा प्रशाखा आदि सभी कल्याणप्रद है।

---

*सेवा निवृत्त शोध सहायक, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**शत्रुनिवारणम्**

(अ० कां० 6/15,1–3)

1–3 उद्दालकः। वनस्पतिः। अनुष्टुप् तलाशमणिधारणे विनियोगः।

**उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः।**
**उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति।।1।।**
**सबन्धुश्चासबन्धश्च यो अस्माँ अभिदासति।**
**तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।2।।**
**यथासोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः।**
**तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।3।।**

## 2. यवमणि (इन्द्र जौ)

**"उच्छ्रयस्व"** (अथर्व० कां० 6 सू० 142ऋ 1) का० अ० 3 कं०19 सूत्र 27 में यवमणि (काण्डमणि) अर्थात् यववल्ली के टुकड़े के छिद्र में लोममणि अर्थात् इसी के निर्मित धागे को पुराकर अभिमन्त्रित कर धारण करें। इसको घी में मिला कर बोते समय कुड़ी तो अन्न का फुटाव तथा उत्पादन बढ़ता है और राशि में रखे तो अक्षय अन्न होता है। यव–त्रिदोषनाशक एवं बल–वीर्य वर्द्धक होता है। यह वैदिक ऋषियों का प्रिय अन्न है।

यव समस्त बुद्धि विकार–जाड़्य आदि को शान्त करने वाला है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने बार्ली के पानी को अशक्त रोगी के लिए उपयुक्त माना है। यव वुस (भूषा) से तथा जल से क्षेत्रीय परम्परागत व्याधियों के शमनार्थ विहित है। सभी यज्ञों में ग्राह्य है एवं यवमणि कल्याणप्रद है। यव अर्थात् इन्द्र जौ की बनी मणि लेकर बाँधना चाहिए।

**अन्नसमृद्धिः**

(अथर्व० कां० 6 सू० 142)

1–3 विश्वावमित्रः। वायुः। अनुष्टुप्। यवमणिधारणे अनुमन्त्रणे विनियोगः।

**उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव।**
**मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत्।।1।।**
**आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि।**
**तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः।।2।।**
**अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः।**
**पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वाक्षिताः।।3।।**

## 3. गोदाममणि

अथर्व० कां० 7 सू 16 **'तां सवितः सत्यसवां'** कौ० सू० अ०3 24सूत्र 7 कं. कौ. 3/7 में वर्णित गोदाम–मणि। एक बार की ब्याई गौ गृष्टि कहलाती है। उसकी रस्सी (दाम) की मणि बना, मणियों



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के विधानानुसार ही उपर्युक्त सूक्त 'तां सवितः' से अभिमंत्रित कर पुष्टिकामी बाँधें।

इसके प्रयोग से बुद्धि  का जाड्य, विभ्रम आदि दूर होते हैं। बुद्धि शान्त होती है और किसी भी गम्भीरतर विषय की मूल तक बुद्धि सरलता एवं शीघ्रता से पहुँचाती है यहाँ यह उल्लेखनीय है।

**सविता (अ० कां० 7 सू 16)**

1 भृगुः । सविता। त्रिष्टुप्। गोदाममणि अनुमन्त्रणे विनियोगः।

**तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामहं वृणे सुमतिं विश्वावाराम्।**
**यामस्य कण्वो अदुहन् प्रपीनां सहस्रधारां महिषा भगाय।।1।।**

प्राचीन वैद्य कहते हैं प्रथम बार की गौ के प्रथम बार के दुग्ध को गर्म करने से कीला बन जाता है। (कीला या खीस)  अर्थात् दूध फटकर पानी अलग दूध जमा सा अलग  हो जाता है। वे रात्रि में अन्धापन (रतौंध)  तथा बुद्धि दोषों के रोगियों को अभिमन्त्रित कर खिलाते तथा पिलाते थे । उससे बुद्धि सम्बन्धी विकारों के रोगी–नेत्रों के रोगियों को लाभ प्रायः हो जाता था। पुष्टिकर्म के नाते इस पर  विचार करना चाहिए ।

## 4.फालमणि (खदिरमणि)

अ० कां० 10 सू 6 (ऋ–6 व 7), कौ० सू० अ० 3 कं० 19 सू० 23–25 खदिरमणि (फालमणि) अर्थात् कत्था (भाषा) के वृक्ष निर्मितमणि पूर्वोक्त विधि से ही धारण की जाती है।

इस मणि के निर्माण विषय में पर्याप्त अन्वेषण सापेक्ष्य ही है–

1. खदिर के टुकड़ों को पानी में डालें साथ ही स्वर्ण भी डालें उबालें पश्चात् होने पर छानकर घी डालकर पकाएं। उसमें मधु–अन्न मिलाएं। उसे सेवन करें।

2. मणि को धारण करें। यह सर्वरोग भैषज्य है। समस्त इन्द्रियों की शिथिलता दूर कर स्फूर्ति, नवयौवन, बल, वीर्य, ओज–वर्चस् बढ़ाने वाली है। इसके धारण करने से अन्न –पय –घृत–मधु आदि भोग्य पदार्थों के भण्डार अक्षय हो जाते हैं। अतिथियों की सेवा व आगमन का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। गौआदि पशुवृद्धि कृषिवृद्धि, कृषिवृष्टि, उद्यम–लाभ, उद्योगवृद्धि, वाणिज्यलाभ, देशान्तर भ्रमण लाभ, प्रजा–पुत्र–पौत्र परम्परा की अविकल वृद्धि करने वाली है। दिव्य दृष्टि करने वाली है।

उपर्युक्त सूक्त से अभिमन्त्रित  कर, होम  कर धारण करें। यदि इन सभी मणियों या  ब्रह्मवेदोक्त–मन्त्र, ऋषि, देव बल के चमत्कार की जिज्ञासा हो तो इन्हें धारण करें। नित्य इन सूक्तों से इनका उपस्थान  करें।

**मणिबन्धनम्**

**(अ०कां० 10 सू० 6)**

1–35 बृहस्पतिः। फालमणिः, वनस्पतिः,3. आपः। अनुष्टुपः 1:4:21 गायत्री;  5 षट्पदा जगती; 6 सप्तपदा विराट् शक्वरी; 7–10 व्यवसाना अष्टपदाऽष्टिः (10 नवपदाधृतिः), 11,20,23–27 पथ्यापङ्क्तिः,



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

12—17 व्यवसाना षट्पदा शक्वरी, 31 त्रयवसाना षट्पदा जगता; 35 पञ्चपदा त्र्यनुष्टुब्गर्भा जगती। खदिरमणि फालमणि अनुमन्त्रणें, अवधारणे च विनियोगः।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा।।1।।
वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा।।2।।
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम्।।3।।
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महोदधत्।गृहे वसतु नोऽतिथिः।।4।।
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयसे।
विचिकित्सतु भूयोभूयः श्वः श्वो देवेभ्यो मणिरेत्य।।5।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्मुग्रं खदिरमोजसे।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह।
आज्यं भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वेद्विषतो जहि।।6।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमिन्द्रः पत्यमुञ्चतौज से वीर्याश्य कम्।
सो अस्मै बलमिददुहे भूयोभूयः श्रवः श्रवस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।7।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्नुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चतहि श्रोत्राय चक्षसे।
सो अस्मै बर्च इद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वःस्तेनत्वं द्विषतो जहि।।8।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्नुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं सूर्यः प्रत्यमजचत तेनेमा अजयद् दिशः।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वःस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।9।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्नुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं विभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्दानवनां हिरण्ययीः।।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।10।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।11।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तेनेमां मणिना कृषिमश्रिवनावभि रक्षतः।
सभिषग्म्यां महो दुहे भूयोभूयः श्रवः श्रवस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।12।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं विभ्रत् सवितामणिं तेनेदमजयत् स्वऽः।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।13।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः।
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्रवः श्रवस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।14।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं राजा वरुणोमणिं प्रत्यमजचत शंभुवम्।
सो अस्मै सत्यमिद्दुहे भूयोभूयः श्रवः श्रवस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।15।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं देवताबिभ्रतोमणिं सवर्ल्लिोकान् ययाजयन्।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्रवः श्रवस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।16।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमिमं देवतामणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्रवः श्रवस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।17।।
ऋतवस्तमबध्नत वास्तमबध्नत।
सं वत्सरस्तं बध्द्वा सर्वभूतं विरक्षति।।18।।
अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधरॉ अकः।।19।।
अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत।
तैर्मेदिनो अंङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।20।।
तं धाता प्रत्यमुञ्चत सभूतं व्यऽकल्पयत्।
तेन त्वं द्विषतो जहि ।।21।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा।।22।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमद् सहगोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह।।23।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सहव्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह।।24।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह।।25।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स मायं मणिरागमदुर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह।।26।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्यां सह यशसा कीर्त्याऽसह।।27।।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत्सर्वाभिर्भूतिभिः सह।।28।।
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये।
अभिमुंक्षत्र वर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम्।।29।।
ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम्।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधरॉ अकः।।30।।
उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते।
स मायमधिरोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः।।31।।
यं देवाः पितरो मनुष्याऽउपजीवन्ति सर्वदा।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः।।32।।
यथा बीजमुर्वरा यां कृष्टे फालेन रोहति।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं विरोहतु।।33।।
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे पत्यमुचं शिवम्।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात्।।34।।
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा।।35।।

फल—सपत्न, द्वेषों तथा शत्रुओं का दमन करने वाली, बल—वीर्य वर्द्धक, चोर, आतताई, बधिकों का संहारकर्त्री—असुरादिकृत अभिचार, माया को नष्ट करने वाली विश्वभेषज है। कृत्या विनाशक, शाप तथा जन्मान्तरीय पापों से रक्षा करने वाली—यक्ष्यघ्नी; दुःस्वप्नजनितारिष्टनिवारिणी, नैर्ऋतिदोष शमन करने वाली, अपमृत्यु, अपशकुननिवारिणी; जिस स्त्री को रज ही न हो, उस दोष को दूर करने वाली, द्विपाद, चतुष्पाद, सरीसृपादि के भय निवारण में समर्थ कीर्ति—भूति यश, तेज , ओज प्रदायक है। विशेष मन्त्र में ही घोषणा की गई है। इसको उपर्युक्त विधि से धारण करें।

### 5. वरणमणि (बिल्व)

अ0 कां0 10 सु0 3 **"अयं मे वरणे मणिः"** कौ0 सू0 अ0 2 कं0 10 सु. 2 में वर्णित वरण शब्द का अर्थ कौ0 अ0 1 कं0 8 सू0 15 में निर्दिष्ट वरण का अर्थ भाष्यकार दारिल—(वरण—बिल्वौ प्रसिद्धो) करते हैं। वरणवृक्ष प्राचीन शारदापीठ ग्राम टिक्कड़ के पहाड़ पर भगवती रागना देवी के मन्दिर पर खड़े हैं।

यह मणि मेधाजनन में, पुष्टिकर्म में, गले में बाँधने का निर्देश है । कौ0 अ. 3कं0 19 सूत्र 22 में भी ऐसा ही कहा गया है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकमुखी रुद्राक्ष तथा बिल्व की मणिका अर्थात माला का बीज जैसा बना कर शीशा–लोह–स्वर्ण के तारों में 101 बार मढ़कर (लपेटकर) बीच के छिद्र को सोने से मढ़कर –पूर्वोक्त विधि से धारण करें।

**राष्ट्रस्य राजा राजकृतश्च**

**(अ0 कां0 सू 5)**

1–8 अथर्वा। सोमः। 1 पुरोऽनुष्टुष्टिुअुप्, 2–3, 5–7 अनुष्टुप् 4 त्रिष्टुप् 8 विराड्डुरो–बृहती। खदिरमणि फालमणि अनुमन्त्रणें, अवधारणे च विनियोगः।

**आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्।**
**ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्व प्रयावन्।।1।।**
**मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद्रयिम्।**
**अहं राष्ट्रस्याभवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।।2।।**
**यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्।**
**तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे।।3।।**
**सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः।**
**तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।4।।**
**आ मारुक्षत्पर्णमणिर्मह्या अरिष्टायते।**
**यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः।।5।।**
**ये धीवरो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।**
**उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान्।।6।।**
**ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यऽश्च ये।**
**उपस्तीन्पर्ण मह्य त्वं सर्वान्कृण्वाभितो जनान्।।7।।**
**वर्णोऽऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया।**
**संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे।।8।।**

## 6. अभीवर्तमणि

अ0 कां0 1 सू0 29 **"अभीवर्तेन मणिना"** कौ0अ0 2 कं0 16 सूत्र 28 "अभीवर्तेनेति–रथनेमि मणिमयः सीसलोहरजतताम्रवेष्टितं हेमनाभिं वासितं बध्वा सूत्रोक्तं बर्हिषि कृत्वा संपातवन्तं प्रत्यृचंभृष्टी रभीवर्तोत्तमाभ्यांमाचृताति।

इसमें भाष्यकार दारिल का मत है कि " **रथचक्रस्य बाह्यपुष्टिस्तदवयवं–पुष्टि 3–मण्याकारं कृत्वा–एतैः अयः तन्मणि वेष्टयित्वा–नाभिमणिद्वारं सुवर्ण द्वारां कृत्वा।** स्पष्ट है युद्ध में काम आने वाले रथ की नेमि (बाह्यपुष्टि के भाग तीन को मणि के आकार का बना लें, सीसा–लोह, रजत, ताम्र से युक्त तारों या पत्र से उसे ढकें, बीच के द्वार को स्वर्ण से ढकें। प्राण प्रतिष्ठा कर (कौ0सू0अ0 1 कं0 7 सूत्र 19 के अनुसार त्रयोदशी से प्रारम्भ कर तीन रात्रि पर्यन्त गोदधि और मधु मिला



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर उसी में रहने दें। नित्य "अभीवर्तेन मणिना" (1/29 की ऋचा 5–6) से अभिमन्त्रत करते रहें। तीन रात्रि के पश्चात् निकालें पूरे सूक्त से अभिमन्त्रित करें। धूप आदि दें, पुनः ऋचा 1/29 की 5 "उदसो सूर्यो" (6) –सपत्नक्षयणं" को जपते हुए धारण करे।–दधि मधु को खा लें। मणियों के अभिमन्त्रण में त्रयोदशी से 3 रात्रि का तथा मधुप्राशन का कर्म सर्वत्र ही समझें केवल तत्तमण के सूक्तों से अभिमन्त्रण में ही भेद रहेगा।

इस मणि को विश्व विजयेच्छु, विश्वाधिपत्यकामी राजा या सेनाध्यक्ष धारण करें।निश्चित आश्चर्यप्रद सफलता प्रदायक है। त्रिवट दर्भ की रस्सी को मणि के छिद्र में पुरो कर बाँधें।

जिस राष्ट्र से शत्रु ने निकाल दिया हो, वह राजा अ० वे० (3/3–1) तथा (3/4–1) से भी उपर्युक्त मणि का अभिमन्त्रण करें। तथा निकाले हुए क्षेत्र से जौ, धान जल, दर्भादियुक्त अभिमन्त्रित कर पुरोडाश से स्थाली पाक होम इन्हीं दो सूक्तों से करें, पुरोडाश भक्षण कर शयन करें।

**राष्ट्राभिवर्धनं सपत्नक्षयणं च**

**(अ० कां० 1 सू० 29)**

1–6 वसिष्ठः। ब्रह्मणस्पतिः, अभीवर्तमणिः। अनुष्टुप्। अभीवर्तमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः।

**अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।**
**तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय।।1।।**
**अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।**
**अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति।।2।।**
**अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।**
**अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि।।3।।**
**अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।**
**राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभवे।।4।।**
**उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।**
**यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा।।5।।**
**सपत्नोक्षयणो बृपपाभिराष्ट्रो विषासहिः।**
**यथाहमेषां वीराणां विराजनि जनस्य च।।6।।**

**7. अञ्जनमणि**

अथर्व कां० 4/9 'एहि जवं त्रायमाणं" (7/31) "स्वाक्तं मे द्यावा" (19/45) "ऋणाद्दणमिव" तथा 19/44 "आयुषोऽसि" में वर्णित अंजनमणि है। कौशिक (7/5) न० क० 19 तथा अथर्व 19/69/70 "जीवास्थ" शुद्धानः आपः" (12/1–30) में अञ्जनमणि की गरिमा का उल्लेख है। यह यक्ष्मनाशन प्रकरण में दिया जा चुका है। तथापि मणिबन्धन की विशेषता से उल्लेख है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हरिणाशृङ्गमणि के समस्त कार्यो; तथा नैर्ऋति दोष निवारणार्थ, दीर्घायुष्य विसर्पकरोग (कैन्सरादि) जानु के नीचे के भाग के (डौरूरोग) समस्त उल्टे विनामुख के फोड़े, नेत्र विकार, चर्म रोगों में, स्नान में, मिथ्यावाद जनित या किसी के दिए पत्र या सन्देश को न देने से उत्पन्न अरिष्ट निवारण में, गजविनाश निराकरणार्थ "ऐरावती नाम्नी" महाशान्ति में होता है। यह गौ, अश्व, पुरुष सभी की रक्षा करती है। देवों के प्रति प्रण करके उसे पूरा न करने से उत्पन्न भय निवारक, असन्मन्त्रोच्चारणादि जनित, दुःस्वप्नादि निवारण करने वाली यह मणि है।

यह एक घाट (बूटी) है, जो हिमालय तथा द्वावा (गंगा–जमुना) के क्षेत्र में प्रायः होती है। कृषक जनों को प्रायः इसका ज्ञान है। यह अग्निवर्द्धक, अग्निदाह शान्त करने वाली, प्राण, अपान, आयु, वर्च, तेज, ओज, स्वस्त्ययन की जननी है।

**8. हरिणमणि**

अ0 कां0 3 सू0 7 में वर्णित हिरणशृङ्गार मणि तथा कस्तूरी में कोई भी या दोनों ही विषूची तथा समस्त क्षेत्रीय व्याधि–मातृ–पितृ परम्परागत व्याधियों के शमनार्थ अभिमन्त्रित कर धारण करें। जल में घिसकर जल को अभिमन्त्रित कर पिलाएं, निमोनिया में लेप करें। कच्चे मृगचर्म में कील से छेद करें उससे स्पर्श गर्म कील को जल से बुझाएँ। उस जल से उषाकाल में कौए बोलने से पूर्व रोगी को छीटे दें। यह मूल शान्ति में भी विहित कर्म है। तिल की मंजोर तथा यवों के वूसे से उस पानी को गर्म करें।

ये "कौमारी" नाम की शान्ति में सभी न0क0 (17–19) में विहित हैं।चरक, सुश्रुत, वाग्भट, आयुर्वेद में इसका औषधि–भस्म आदि का पृथक् वर्णन है। हमारा संकल्प "भैषज्य" से है। भैषज्य विषम मन्त्र बल साध्य है। अतः विषयान्तर में कुछ भी कहना अनुपयुक्त है। यहाँ मणि–बन्धन मात्र से लाभ दृष्टिगोचर हुए हैं।

1–7 भृग्वंङ्गिराः। 1–3 हरिणः, 4 तारके, 5 आपः, 6–7 यक्ष्यनाशनम्। अनुष्टुप् 6 भुरिक्। हिरणमणि अनुमन्त्रणे; अवधारणे विनियोगः।

**यक्ष्मनाशनम्**

**(अ0 कां0 3 सू0 7)**

**हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।**
**स क्षेत्रियं विषाणया विषुचीनमनीनशत्।।1।।**
**अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरकमीत्।**
**विषाणे विष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि।।2।।**
**अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छादिः।**
**तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि।।3।।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम्।।4।।
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्।।5।।
यदासुतेः कियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत्।।6।।
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्द्दुतु।।7।।

## 9. जंङ्गिडमणि

अथर्ववेद कां0 2/4 "दीर्घयुत्वाय" "जङ्डिडोऽसि" (19/34) "इन्द्रस्य नाम" (19/34) में वर्णित जङ्गिड का नाम कौशिकसूत्र में दारिल भाष्यकार ने 'अर्जुन' स्वीकर किया है।

यह कृत्या दोष, समस्त अभिचार जनित व्याधि, समस्त दैवी, आसुरी, यातुधानी, मानवीय माया, शाप, क्रूरदृष्टि, आक्रोश, क्षेत्रियदोष, नैर्ऋतिदोष, क्रव्यादोष (कच्चा मांस खाने वाले, खून पी जाने वाले पिशाच–राक्षस, कीटाणु तथा चाण्डाल अग्नि) जनित दोष, महाव्याधि–राजयक्ष्मादि, वातव्याधि, छूतजन्यः सर्वप्रकार के पीड़ाकारक रोग, उत्पात, अद्भुदोषजन्यारिष्ट, विशेष हिंसक रोग (कैंसर) गण्डमाला, कण्ठमाला, उल्टे फोड़े, गलने वाले सदा बहने वले फोड़े, नसवार, बल क्षयकारक रोग, निरन्तर बहने वाले रोग, विशेष कीटाणुजनित या विषकीटाणुजनित व्रणादि, लता द्रुम, स्पर्शजनित रोग निवारण में समर्थ होने से इसका औषधिवत् (आयुर्वेदोक्त) प्रयोग किया जाता है। परन्तु भेषज कर्म में इसकी मणि ही अभिमन्त्रित कर बॉधी जाती है। मणि के शरीर से स्पर्श मात्र से लाभ होता है।

कौशिक सूत्र (5/6) के मत से "सन" (पटसन, फुलसन, जूट) वनस्पति के धागे में वनस्पतियों के रस के पृथक् पृथक् पुट (भावनाएं) देकर तैयार कर बॉधे। इसे त्रयोदशी से 3 रात्रि पर्यन्त रसों में बिठाएं। पश्चात् सभी मणियों पर यह लागू होता है। पश्चात् पूजा, प्राण–प्रतिष्ठा कर होम कर, इन मणियों को धारण करें। नित्य धूप आदि देना लाभप्रद हुआ है। ये चौपाए, दोपाए, नाखूनों वाले, सींग वाले, दॉत वाले, निगलने वाले, विषैले बाण, अस्त्र–शस्त्र, आयुधजन्य अरिष्टों से रक्षा में समर्थ, दीर्घायुप्रद तथा जप, होम, स्वाध्याय में निर्विघ्नता लानेवाली, मन–बुद्धि को स्थिर बनाने वाली है। ब्रह्महत्यादिदोष निवारणार्थ, बन्ध्यादिदोष निवारण में इसके अर्जुन के पत्तों का आसन तथा पोटली भी बनाई जाती है। यह देवों का अमोघशस्त्र भूमि तल में छिपा था जिसे अंङ्गिराजी ने प्रत्यक्ष किया । अमित–अमोघवीर्यवती होने से देवराज को वृत्रासुरादि के दमनकालिक युद्ध में विजयार्थ दिया। इससे समस्त विषैले कीटांणु, स्थावर, जङ्गमशि भी शमन होते हैं। ऋषियों ने इसका नाम "जंङ्गिड" रखा। देवताओं ने धनपाल कुबेर को दिया। यह दिन, रात्रि, सन्ध्या, महारात्रि में समस्त लोक–लोकान्तरों में भूत–भविष्य–वर्तमान में रक्षा करती है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह "विश्वभेषज' के नाम से ऋषियों ने प्रकाशित की है। आन्त्रिक रोगोपशमन में भी यह सफल सिद्ध हुई है (प्लुरसिरोग) कृषिजन्य, वनस्पतिजन्य, रसों के पुट सभी पृथक पृथक दिए जाने से इसके गुणों में भी तीव्रगति आ जाती है।

**10. शतावरी मणि**

अ० कां० 19 सू० 36 से 38 ये 3–सन्ततिप्रद, बलप्रद, वीर्यस्तम्भनकर, गर्भपुष्टिकर, बहुदुग्धप्रद, ओज, वर्चवर्द्धक, कुलक्षयदोष निवारक हैं। "सन्तति नामशान्ति" नक्षत्रकल्प तथा शान्तिकल्पोक्त विधि इन्हीं से की जाती है। शतावर को दुग्ध के साथ सेवन करें अभिमन्त्रित कर भुजा में भी धारण करने पर भी वही फल देती है।

इसके अग्रभाग में राक्षसादिभय, जड़ से यातुधानादि तथा मध्य से यक्ष्मादि, त्वचा के रोग, दाद, खाज, उल्टे फोड़े, कान, नाक, नेत्र कर्णपुटी तथा जंघा के अन्तवर्ति (रोगों के) गुदा के भगन्दर आदि बवासीर आदि रोग, अपस्मार, मृगी (हिस्टिया) आदि व्याधि निवारण होते हैं। सौन्दर्य वर्द्धक है।

भयंकर शब्द कारक यक्ष्म को शमन करने वाली है, गन्धर्व, अप्सरादि, कच्चे मांस खाने वाले, कीटाणुओं को नष्ट करने में समर्थ है। राजयक्ष्मादि में अश्वत्थमूल की जटा, कुष्ठ, गुग्गुल, शतावर का मध्य तथा छाल को; तीनों सन्ध्याओं में; इन तीनों सूक्तों से अभिमन्त्रित कर धूप दें। यक्ष्मादि के कीटाणु नष्ट होते हैं; पशु आदि के कीट; बच्चों के पेट के कीट(चनूना आदि) अनिष्ठ अरिष्ट परिहार होता है। जलदोष–कफजन्य समस्त दोष तथा जोर से भंयकर शब्द करने वाले रोगों तथा कुष्ठ रोगों को; विविध कीटाणुओं को नष्ट करती है। शरीर की चर्बी को कम करके पतला पुष्ट बनाती है।

सूक्तों के अर्थो से स्पष्ट हो रहा है, संशय की बात ही नहीं है। यह ऋषिबल, देवबल तथा मन्त्रबल का चमत्कार प्रायः अनुभूत है। यह भेषज है। शतावर के गुण–चरक, सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थों में ओषधि के अनेक प्रयोग भरे पड़े हैं।

**शतवार मणिः**

**(अथर्व० कां० 19 सू० 36)**

**शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।**
**आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः।।1।।**
**शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यऽः।**
**मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति।।2।।**
**ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।**
**सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत्।।3।।**
**शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्।**
**दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते।।4।।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिरण्यशृङ्गः ऋषभः शातवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वास्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत्।।5।।
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शजम्।
शतं शश्वन्तीनां शतवारेण वारये।।6।।

1–4 अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप् ; 2 आस्तारपंक्तिः, 3 त्रिपदा महाबृहती 4 पुराष्णिक्।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्याऽतान्यग्निः प्र ददातु मे।।1।।
वर्च आ धेहि मे तन्वां3 सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याऽय प्रति गृह्णामि शतशारदाय।।2।।
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय।।3।।
ऋतुभ्यष्ट्रवार्तवेभ्यो मार्भय्: संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे।।4।।

1–3 अथर्वा। गुल्गुलः। अनुष्टुप; 2 चतुष्पदा उष्णिक;, 3 एकावसाना प्रजापत्यानुष्टुप् गुल्गुलुमणि अनमन्त्रणे विनियोगः ।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धे अश्नुते।।1।।
विष्वञ्च स्तस्मद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते।
यद्‌गुल्गुलु सैन्धवं यद्वाप्यासि समद्रियम्।।2।।
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये।।3।।

## 11. औदुम्बरमणि

अथर्व कां० 19 सूं० 31 ''औदुम्बरमणि'' इस सूक्त से धन क्षय हो जाने पर धन प्राप्ति हेतु ''कौवेरी'' शान्ति करें।(न० क० 19)

इससे पशु वृद्धि, पशु पुष्टि, दुग्ध, घृत वृद्धि; पुत्र, धन, सुन्दरता, स्वास्थ्य वृद्धि, लावण्यता, पुष्टि; गौ, अश्रव, महिषी, हस्ती तथा वाहनों की प्राप्ति होती है। वास्तु शान्ति में रक्षोहण कर्म में इसी की मेख अभिमन्त्रित कर दस दिशाओं में गाड़ने का प्रावधान–समस्त आधिभैतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, विघ्न, चोर, दस्यु, व्याघ्र असुर, पिशाच आदि भय निवारण में समर्थ मानकर ही किया गया है। पुत्रेष्टि यज्ञ में इसी की समिधा, स्रुवा, का विधान हैं, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन में भी इसी के फला का प्रयोग होता है। गर्भपुष्टि गर्भस्थवाल की सौन्दर्यता, पुष्टगात्र, पुष्ट बुद्धि के निर्मित्त प्राविधान है। यह ऋतुधर्म विपर्यय ऋतदोष निवारण, रक्तस्राव में में भी प्रयोग होता है। पीली बोतल में गंगाजल भरें, मुंह खोलकर पीली ऊर्ण से ढांकें। सूर्य किरणों में रखें, उसमें से 1 तोला मात्रा का जल लें तथा स्वर्ण तप्त जल में से 1तोला



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जल मिलाएं, इसे गूलर के फलो के चूर्ण के ऊपर पीएं, तो रजोदोष (प्रदर आदि) दूर हो। गूलर के दूध को बताशे में रखकर सेवन करने से प्रमेह–प्रदर–स्वप्न दोषादि बाधा दूर हो, ये फल ही लें, रक्षातन्त्र में मेख, दिक्षण पश्चिम दिशा की (वृक्ष की) लें इसके फल को समिधा आदि शान्ति, पुष्टि कार्यो में उत्तर पूर्व (तै० ब्रा० 3/7/4,5); (आश्व०गृ० सु० 2/3); (तै० सं० 2/1/1–6) (काले उड़द व तिल, काले धान (साठी) के चावल–जौ कांगनी, इन्द्र जौ) में मिला खिचड़ी में रस (गो दूग्ध या गो दधि गो घृत में ज्योष्ठी मधु) मिला अभिमन्त्रित कर खिलाएँ। इनसे मूत्र कृच्छ, बहुमूत्र, मधुमेह आदि की व्याधियाँ दूर होती हैं। यह शत्रु बलक्षयकारक; स्वबलवीर्य वँर्च तेज, यश, धन–धान्य, मेधा, बुद्धि, वक्तृत्व वर्द्धक है। जठराग्नि दीप्तकर–क्षुधा–वर्द्धक भी है। इसी सूक्त की ऋचा 9/10 में वर्णित यह औदुम्बरमणि–मूंगा, मोती, हीरा, पत्रा आदि रत्नमणि में सार्वभौम है, उन सब को बढ़ाने वाली है औक्ष तथा वर्य भी है। नपुंसकता या बन्ध्यात्व निवारक भी है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के चतुर्थ तथा पञ्चम ब्राह्मणों में वर्णित श्रीमन्थ तथा पुत्रमन्थ कर्मो में इसका मौलिक प्राविधान साक्षी है। इसी का दण्ड भी वैश्य ब्रह्मचारी को धारण कराया जाता है। इसी की समिधा, इसी के पात्रों चमस तथा रई, स्रुवा, सतु, इसी के फलों के मन्थ से होम का विनियोग करें। मन्थ अभिमन्त्रित कर पुत्रादि का भी व्यक्ति को भक्षण करना चाहिए। मणिवद्धारण करें। सूक्त आगे देखें। यह आँत (हार्निया) उतर आने, चर्बी बढ़ जाने में भी सेवनीय सिद्ध हुई है।

### औदुम्बरमणिः

1–14 सविता (पुष्टिकामः)। औदुम्बरमणिः। अनुष्टुप्; 5,12 त्रिष्टुप्; 6 विराट् प्रस्तारपंक्तिः, 11,13 पञ्चपदा शक्वरी; 14 विराडास्तारपंक्तिः औदुम्बरमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविताऽकरत्।।1।।
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशुनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या।।2।।
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ।।3।।
यद् द्विपाच्च यान्नायानि ये रसाः।
गृहणे3 हं त्वेषां भूमानं विभ्रदौदुम्बरं मणिम्।।4।।
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यऽम्।
पयः पशूनां रसमोषाधीनां बृहस्पतिः सविता रमे नि यच्छात्।।5।।
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टातिर्दधातु।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु।।6।।
उपमौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रेण जिन्वितो मणिरामागन्त्सह वर्चसा।।7।।
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु।।8।।
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती।।9।।
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यऽम्।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः।।10।।
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः
सत्वमस्मत्सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च।।11।।
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ।।12।।
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम्।।13।।
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छांत्।।14।।

**12. दर्भमणि**—अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 28; 29; 30 तथा 32; 33 ये पाँच एवं अथर्ववेद काण्ड 2 सूक्त 27 "नेच्छत्रु" ये 6 सूक्त यम भय तथा एकाशत मृत्यु भय निवारण मे समर्थ हैं।शान्तिकल्पोक्त "यामी" शान्ति में इनका विनियोग विहित है। पाठा मूल तथा दर्भमणि से होम करने तथा मणिरूप में धारण करने का प्राविधान है।

**"इमं बध्नामि"** (19/28); **"निक्षदर्भ"** (19/28) **"यत्तेदर्भ"** (19/30) ये तीनों ही बल, ऐश्वर्य, सम्पदा; उत्तम वृष्टि कारक; पशु बाहुल्य प्रचुर धन–धान्य हेतु; परकुचक्रागमन से सुरक्षा, शत्रुदमन कार्यो में "ऐन्द्री" महा शान्ति में विनियोग विहित है। इनके साथ **"अभीवर्तेन"** (1/29) का भी विनियोग कहा है। इन सभी के लिए दर्भमणि धारण का प्राविधान है।

**"शतकाण्डो दच्यवन"** (19/32); **सहस्रर्धः शतकाण्ड"** (19/33) तथा **"मेच्छुत्रु"** (2/27) अर्थात् ये सातों (न० कं० 17–18) के द्वारा उपर्युक्त सभी तथा निम्नकार्यों में भी (यास्यी) शान्ति में विनियोजनीय है।

ये पिशाच, यातुधान, राक्षस, ब्रह्मग्रह, कृत्या, असुर, यमदूत, बाह्य आभ्यन्तर, "आधिदैविक; आधिभौतिक, आध्यात्मिक" शत्रुबलक्षय में शाप पाप प्रतारण में राजसूय यज्ञतुल्य सर्वश्रेष्ठ हैं। यह माधुर्ययुक्त बल, वीर्यवर्द्धक (ऋषभ–औक्ष) पवित्र बनाने वाली हैं। दर्भ आसन; दर्भ की पवित्री; दर्भ मुष्टिधारण का निर्विवाद अभिप्राय, यह उपर्युक्त के साथ जप, उपस्थान, आदि के उत्पत्र पावन कीटाणु



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम विचार आदि उनमें समाहित हो जाते हैं, नष्ट नहीं हो पाते, उपर्युक्त समस्त विघ्नों का बल क्षीण होकर, इन उत्तम सञ्चित कीटाणुओं के माध्यम से मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का निग्रह होने लगता है। इसी कारण ऊर्ण, रेशम, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म निर्मित आसनों तथा लोममणि धारण का भी यही फल होने से धर्मशास्त्रों में इन्हें उपयुक्त कहा है। इन पाठामूल तथा दर्भ का घृत के साथ होम विधान है। मृतक श्राद्ध या जघन्य ब्रह्म हत्यादि पाप निवारण में इन्हीं के आसन पर बैठकर; इनको धारण कर महाव्याहृति जप गायत्री जप तथा दर्भ का पानी (तप्तकर) कृच्छ्र चान्द्रायणव्रत ऋग्विधान में दिया है।

एक अनुभूत इन्हीं का चमत्कार उल्लेखनीय तथा पुनः पुनः परीक्षणीय भी है। मृतक के दाह से अवशिष्ट समिधा (लकड़ी कोयला) को "ऐतुप्राण; ऐतुजीव" ऋचा जो तृतीय अध्याय में "नान्दीश्राद्ध" में वैतान सूत्र विधि में वर्णित है, से अभिमन्त्रित करें। कुशा (दर्भ) आसनों के नीचे (श्राद्धीय भोक्ताओं के) पवित्र भूमि में रखकर भोक्ता को बिठाएं, सङ्कल्पान्त में ही मृत आत्मा (सूक्ष्मलिङ्ग, की तात्कालिक शारीरिक स्थिति अर्थात् उसके फोड़े, रुधिर, कुष्ठ आदि जैसा भी था उसी के पूर्णतया उन लोगों को श्राद्धीय भोजन के कव्य पृथक्–पृथक् वस्तु से पृथक् पत्तल से ग्रहण करता दृष्टिगोचर होगा।

**विघ्नशमनार्थ मणिधारण**

विविध विघ्न; विस्कन्ध विघ्न, स्पर्द्धा, सर्प, शृगि (सींगवाले) दाढ़वाले पशुओं से उत्पन्न विघ्न, विविधशस्त्र के प्रयोगों से रक्षा, युद्ध में शत्रु द्वारा प्रयुक्त विविध माया, मायाज़ाल युक्त युद्ध विघ्न, इन्द्रजाल विघ्न तथा युद्ध के अन्य अज्ञात, अचिन्त्य विघ्नों के निवारणार्थ शत्रु के आक्रमण को विफल करने हेतु, शत्रु को भगाने हेतु निम्न सूक्त से अभिमन्त्रित कर, "अरलू" से बनी मणि अरलू का दण्ड, वेणु दण्ड, चित्रित दण्ड, ध्वज दण्ड, चिह्नयुक्त दण्ड, लकुटादि दण्ड तथा युद्ध में उपयुक्त आयुध, कवचादि को अभिमन्त्रित कर पिशङ्गवर्ण के सूत्र में बॉधकर या उनके ऊपर पिशङ्गवर्ण का सूत्र या वस्त्र लपेट कर धारण करें।

**दुःखनाशनम्**

कौ0 43–1 अस्य काण्ड 3 सूक्त 9 "कर्शफस्य" वामदेवः–ऋषिः। द्यावापृथिवी, देवाः। अनुष्टुप् 4 चतुष्पदा निचृद् बृहती, 6 भुरिक्। दन्दांसि–समस्त विघ्न, मायाजालादि निवारणार्थे, भौतिकनिवारणे मणि, आयुध, दण्डादि अभिमन्त्रणे, आयुधदि धारणे विनियोगः।

**कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता।**
**यथाभिचक्रं देवास्तथापं कृणुता पुनः।।1।।**
**अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम्।**
**कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव।।2।।**
**पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नान्ति वेधसः।।**
**श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः।।3।।**
**येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शुनां पिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च।।4।।
दष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम्।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ।।5।।
एक शतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम्।।6।।

**आयमगन् पर्णमणि (पलाशमणि)**

"आयमगन् पर्णमणि" (अ0 वे0 का0 3 स0 4) कौ0 अ0 3 कं0 19 सू0 22 तथा कं0 (8 सू0 19) में भाष्यकार दारिल मत से (आयमगन्– पलाश) पलाशपत्रमणि तथा पलाश काष्ठमणि दोनों ही हैं। इसकी विधि वरण (बिल्व मणि) के तुल्य ही है।

उसके गुणों के अतिरिक्त इसकी विलक्षणता है। धन्य–धान्य, स्वस्त्ययन, दीर्घायुष्य कुचक्रदमन, चौर, दस्यु वधिक, आततायि विनाशक, धीवान, रथादि के निर्माण में विशेष चातुर्य–राजपुरुषों, ग्राम्यजनों को मुग्ध तथा वशीकरण करनी वाली है। मेधाजनन, पुष्टि कार्यों में गले में ही धारण करें।

अन्य सब पूर्ण मणियों की भाँति ही है। अभिमन्त्रण उपर्युक्त अथर्व सूक्त से करें।

यह कलाकारों तथा शिल्प विशेषज्ञों एवं लोक निर्माण कर्मी जनों को एक विशेष बल, विवेक एवं बुद्धिप्रद प्रयोग है।

**प्रतिसरमणि (सिलुत्ककुः)**

"अयं प्रतिसरोमणिः" अ0 कां0 8/5 कौ0 8/19 तथा अ0 3कां0 19 सू0 22 मे भाष्यकार दारिल अयं प्रतिसरः इति सिलुत्ककः अर्थ किया है। परन्तु राजनिघण्टु में "पीतमणि" (पुष्परागः) तिलकवृक्ष निर्मितोमणि–प्रतिसरण साधनः तिलक वृक्ष निर्मित मणि लें। अन्य धारणादि विधि वरण (बिल्व) मणि के तुल्य ही है। अभिमन्त्रण में उपर्युक्त सूक्त का प्रयोग अनिवार्य है।

टिप्पणी : जङ्गिड (अर्जुन) वरण (वरना) की दालों से तप्त जल तथा इनसे निर्मित मणि धारण पूर्वोल्लिखित जासौंदी (गुड़हल) लालकी, परागकेशर घी में तल कर 1/1 प्रातः सायं 7 दिन देने से रक्तस्राव, रक्तप्रदर तथा श्वेत गुड़हल की परागकेशर 21 दिन मात्रा 1/1 प्रातः सायं घी में तलकर देने से श्वेत प्रदर तथा मधुमेह दूर हुए हैं। भेषज में सूक्तों से अभिमन्त्रण करना अनिवार्य है।

वरणमणि यह टिक्कड़ में शारदा पीठ में काश्मीर में मिलते हैं। (बिल्व) पलाशमणियों के सभी गुण तथा निम्न विशेष हैं। शौर्यप्रद है, शूरवीर धारण करें तो जल–थल–नभ की दुर्घटनाएं, उत्पात तथा संग्राम में प्रयुक्त दिव्यायुध अस्त्र–शस्त्रादि से पूर्ण रक्षा करने में समर्थ हैं। वृत्रासुर वध से पूर्व, इन्द्र ने भी धारण किया था।

**प्रतिर्वमणि**–स्रत्त्कयमणि (तिलकमणि) के साथ धारण करें तो द्यावापृथिवी के समस्त विघ्न, तथा आंगिरसी, आसुरी या स्वयं की प्रयुक्त या अन्य से प्रयुक्त कृत्या दूषणों को शमन करने वाला है। इसके



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभाव से व्याघ्र –सिंह, रीक्ष अप्सरा, गन्धर्व सभी दूर भागते हैं। यह प्रजा–धन–धान्य, पशु–प्रतिष्ठा कीर्ति, वाहनप्रद है।

1 स्राक्त्य (तिलकमणि) 2 (बिल्वमणि) 3 पलाशमणि तथा 4 खदिरमणि इन चारों को इसके साथ 101 बार शीशा–लोहा तथा स्वर्ण सूत्र में ढककर पूर्वोक्ति विधि से त्रयोदशी से 3 रात्रि दधि मधु में बिछाकर इन सभी सूक्तों से निरन्तर अभिमन्त्रित करे। चौथे दिन पूजा प्राणप्रतिष्ठा, स्थलीपाक होम इन्हीं सूक्तों से करे– पुरोडाश तथा दधि मधु को भक्षण करें। संयुक्त इन (पॉचों) मणियों को धारण करने वालों के प्रभाव से देव ऋषि भी कृपा करते हैं। उन भाग्यवानों के लिए अन्य कुछ भी दुर्लभ नहीं। यह स्वयं मन्त्रों में ही विस्पष्ट है प्रमाण अन्यत्र न देखें। यहॉ विशद वर्णन है।

तिलकमणि तथा कवच का उल्लेख इसी कां0 8 सूक्त 5 ऋचा 7 में है। दोनों का प्रभाव पूर्णतया विस्पष्ट है। ये बिना औषधि सेवन के ही मणि या कवच रूप में धारण करने मात्र से आश्चर्य में डालने वाली है।

## अभयगण

### स्वतिदा पूषा

### (7) 9 (10)

1–4 उपरिबभ्रवः। पूषा। त्रिष्टुप्, 3 त्रिपदा आर्षी गायत्री, 4 अनुष्टुप्, पाटामणि अनुमन्त्रणे विनियोगः

प्रपथे पथमजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः।
उभे अभि प्रियतकं सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन्।।1।।
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर ऐतु प्रजानन्।।2।।
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि।।3।।
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि।।4।।

### दीर्घायुः प्राप्ति

### (8.1.5,10)

1–21, बह्मा। आयुः। त्रिष्टुप्।पाटामणि अनुमन्त्रणे विनियोगः।

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वे3 शं तपति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठा।।5।।
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्।।10।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

## अभयम्
### (अथर्व0 कां0 19 सू0 15)

सूक्त 19.9 से लेकर कां 19 के 20 सूक्त तक की **अप्रतिरथ संज्ञा** है, इनसे अभयगण कार्यों के साथ राजाको निवास गृह में ले जाकर परिक्मा क्रम से अंगुष्ठ से गृह में चारों और शर्करा व सरसों फेंक कर रक्षाकर्म के पश्चात् स्वयं और राजा का प्रवेश करें। धूम्रकेतु दर्शन आदि उत्पातों की शान्ति में होम करें। इनसे दी गई आहुति तीक्ष्णतर प्रहार करती है।

अथर्वा ऋषिः। 1–4 इन्द्रः, मन्त्रोक्ताः देवते। त्रिष्टुप्। 1 पथ्या बष्हती 2–5 जगती 3 पथ्या पंक्ति छन्दासि। अप्रतिरथसंज्ञकसूक्तोक्तषु–अभयगणोक्त कार्येषु विनियोगः।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्विद्विषो वि मृधो जहि।।1।।
इन्द्रं वयमनुराधं हवामहेष्नु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मानः सेना अरूषीरूप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय।।2।।
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् सपुरस्तान्नो अस्तु।।3।।
उरूं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता।।4।।
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।5।।
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।6।।

## अभयम्
### (अथर्व0 कां0 19 सू0 14)

1, अथर्वा ऋषि। द्यावापृथिवी देवता। त्रिष्टुप् छन्द उपर्युक्तकर्मषु विनियोगः।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो नस्तु।।1।।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वाल्मीकि–रामायण में ज्योतिषतत्त्वानुशीलन

प्रो नागेन्द्र पाण्डेय*

वेदाङ्गों में ज्योतिषशास्त्र को प्रमुख अवयव नेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार किसी मनुष्य के समस्त अंग पूर्ण एवं स्वस्थ हों परन्तु वह दृष्टिहीन हो तो उसके जीवन में निराशा रूपी अन्धकार घनीभूत हो जाता है। जिसके काारण उसे पग–पग पर कठिनाइयों का समाना करना पड़ता है। उसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति को अपने कार्य सम्पादन में अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। ज्योतिष मानव को तिमिर से प्रकाश की ओर लाता है। अन्धकार भयकारक होता है। जबकि प्रकाश अभय प्रदान करता है। इसी भाव का प्रकटीकरण वैदिक ऋषियों ने "तमसो मा ज्योतिर्गमय" कहकर किया है। ज्योतिषका वर्णन हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। क्रमशः यह वेदाङ्ग आरण्यक, उपनिषदों, स्मृतियों में पुष्पित पल्लवित होते हुए महाकाव्यों में सरल एवं सहज रूप में दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः ज्योतिष समाज का अभिन्न अंग है। महर्षि वाल्मीकि के आदि काव्य रामायण में विस्तार से ज्योतिषशास्त्र के तत्त्व उपलब्ध होते हैं।

रामायण में वर्णित इक्ष्वाकु कुल के आदि प्रवर्तक स्वयं भगवान् सूर्य हैं। भगवान् राम का जन्म मेषस्थ सूर्य के योग में हुआ था। इनके जन्म के समय पुनर्वसुनक्षत्र एवं कर्क लग्न था। उस समय पॉच ग्रह अपने–अपने उच्च स्थान पर विराजमान थे तथा लग्न में चन्द्रमा के साथ बृहस्पति अवस्थित था। यथा–

नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।।
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्।।

वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड (18.9–10)

चन्द्रमा के पुष्यनक्षत्र में स्थित होने पर राज्याभिषेक का सर्वोत्तम मुहूर्त बनता है। इसी पुण्यनक्षत्र में श्रीराम के राज्याभिषेक का विनिश्चय महाराज दशरथ ने किया था–

तं चन्द्रमिव पुण्येण युक्तं धर्मभृतां वरम्।
यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुङ्गवम्।।

रामायण, अयोध्याकाण्ड (2.12)

---

*पूर्व, ज्योतिष विभागाध्यक्ष, सं.सं.वि.वि., वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संहिता ग्रन्थों में लोकभयोत्पादक ग्रहस्थितियों का वर्णन प्राप्त होता है। भगवान् राम के वनवास के समय ही ग्रहस्थितियाँ थीं। उस समय त्रिशंकु मंगल, गुरु, बुध तथा अन्य समस्त ग्रह शुक्र, शनि आदि रात में वक्रगति से चन्द्रमा के पास पहुँच कर दारुण होकर स्थित हो गये। नक्षत्रों की कान्ति निस्तेज हो गयी तथा ग्रह कान्तिहीन हो गये। वे सभी आकाश मे विपरीत मार्ग पर अवस्थित हो धूमाच्छन्न प्रतीत हो रहे थे। यथा–

त्रिशङ्कुर्लोहिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि।<br>
दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः।।<br>
नक्षत्राणि गतार्चाषि ग्रहाश्च गततेजसः ।<br>
विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे।।

रामायण, अयोध्याकाण्ड (41.11–12)

संहिता ग्रन्थों में प्रत्येक कार्य सम्पादन के शुभाशुभ मुहूर्त का विचार किया गया है। अन्ध नक्षत्र में लुप्त वस्तु शीघ्र प्राप्त होती है मन्द नक्षत्र में प्रयत्न करने पर केवल सूचना मिलती है एवं सुलोचन नक्षत्र में गत वस्तु का ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। गिद्धराज जटायु ने देखा कि सीता का हरण अन्ध नक्षत्र में विन्द नामक मुहूर्त में रावण ने किया है। इस मुहूर्त मे खोया हुआ धन शीघ्र ही उसके स्वामी को मिल जाता है। विन्द मुहूर्त में रावण ने सीता का अपहरण किया था। परन्तु राक्षसराज रावण को इसका ज्ञान नहीं था। जिस प्रकार मछली मरने के लिए ही बंसी पकड़ लेती है, उसी प्रकार वह भी सीता को ले जाकर शीघ्र नष्ट हो जायेगा–

येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः।<br>
विप्रणष्टे धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते।।<br>
विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोबुधत।<br>
त्वत्प्रियां जानकीं ह्वत्वा रावणो साक्षसेश्वरः।<br>
झषवद् बडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति।।

रामायण, अरण्यकाण्ड (68.12–13)

मानव के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास प्रकृति स्वयं देती है। तभी तो रावण के द्वारा मारे गये गृधराज की ओर देखकर चन्द्रमुखी सीता अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करते हुए कहती हैं। मनुष्यों को सुख दुःख की प्राप्ति के सूचक लक्षण स्वप्न पक्षियों के स्वर तथा उनके दायें–बायें का दर्शन आदि शुभाशुभ निमित्त अवश्य दिखायी देते हैं। ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम! मेरे अपहरण की सूचना देने के लिए निश्चय ही ये मृग और पक्षी अशुभ सूचक मार्ग से दौड़ रहे हैं । यथा–

निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम्।<br>
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते।।<br>
न नूनं राम जानासि महद्व्यसनमात्मनः।<br>
धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणाः।।

रामायण, अरण्यकाण्ड (52.2–3)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौआ जब आकाश में बोलता है तो प्रियजन से वियोग होता है तथा जब पेड़ इत्यादि पर बैठकर आनन्दित होकर कूजता है तो प्रिय से मिलन होता है। तभी तो श्री राम लक्ष्मण को धीरे से जगाते हुए कहते हैं। शत्रुओं को सन्ताप देने वाले सुमित्रा कुमार! मीठी बोली बोलने वाले शुक–पिक आदि जंगली पक्षियों का कलरव सुनो। अब हम यहाँ से प्रस्थान करें, क्योंकि प्रस्थान योग्य समय उपस्थित हो गया है।

**सौमित्रे! शृणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम्।**

**सम्प्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परंतप।।**

**रामायण, अयोध्याकाण्ड (56.2)**

सीता के वियोग काल में राम के सम्मुख कौवा पेड़ पर बैठकर बोलता था। इससे राम के मन में सीता से पुनर्मिलन की आशा बलवती हो जाती थी। निराशा के गर्त में गिरे हुए व्यक्ति के सम्मुख शुभ शकुनों के उपस्थित होने पर उसकी निराशा दूर होती है तथा उसका आत्मबल बलीभूत होताहै। तभी तो राम कहते हैं– "जब सीता मेरे साथ थी उन दिनों जो पक्षी कौआ आकाश में जाकर कॉव –कॉव करता था वह उसके भावी वियोग को सूचित करने वाला था। अब सीता के वियोग काल में वह कौआ वृक्ष पर बैठकर बड़े हर्ष के साथ अपनी बोली बोल रहा है। अतः इससे सूचित हो रहा है कि सीता का संयोग शीघ्र ही सुलभ होगा–

**तं विनाथ विङ्गवेऽसौ पक्षी प्रणदितस्तदा।**

**वायसः पादपगतः प्रहृष्टमभिकूजति।।**

**रामायण, किष्किन्धाकाण्ड (1.55)**

इसी प्रकार से आत्महत्या की इच्छुक सीता के अशोक वृक्ष के नीचे आने पर बहुत से शुभ शकुन प्रकट हो व्यथितहृदया सती साध्वी , हर्षशून्य, दीनचित्त तथा शुभलक्षणा सीता का उसी प्रकार सेवन करने लगे जिस प्रकार श्री सम्पन्न पुरुष के पास सेवा करने वाले लोग स्वयं ही पहुँच जाते हैं। यथा–

**तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां**
**व्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम्।**
**शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे**
**नरं श्रिया जुष्टमिवोपसेविनः।।**

**सुन्दरकाण्ड (29.1)**

उस समय सुन्दर केशों वाली सीता का बॉकी बरौनियों से घिरा हुआ परम मनोहर काला, श्वेत और विशाल बायॉ नेत्र फड़कने लगा। जैसे मछली के आघात से लाल कमल हिलने लगते हों–

**तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्म**
**राज्यावृतं कृष्णविशालशुक्लम्।**
**प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या**
**मीनाहतं पद्मभिवाभिताम्रम्।।** **(सुन्दरकाण्ड (29.2)**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साथ ही उनकी सुन्दर प्रशंसित गोलाकार मोटी, बहुमूल्य काले अगुरु और चन्दन से चर्चित होने योग्य तथा परम उत्तम प्रियतम द्वारा चिरकाल से सेवित बायीं भुजा भी तत्काल फड़क उठी–

भुजश्च चार्वञ्चितवृत्तपीनः
परार्ध्यकालागुरु चन्दननार्हः।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण
चिरेण वामः समवेतमाशु।। –सुन्दरकाण्ड (29.3)

इसी प्रकार से अनेक शुभ शकुन प्रकट हुये, जिसके कारण उनका शोक अपगत होने लगा, समस्त क्लान्तता दूर हो गयी।

श्रीवाल्मीकि रामायण में वास्तु विज्ञान के भी तत्त्व प्राप्त होते हैं प्राचीन ज्योतिष के संहिता ग्रन्थों में वास्तुनिर्माण से पूर्व भूतबलि , भूमिपूजन द्वारा स्थान शुद्दि का विधान बतलाया गया है। तदनन्तर वास्तु निर्माण के पश्चात् वास्तुशान्ति की विधि वर्णित की गयी है। इसके बाद ही सौभाग्याकांक्षी व्यक्ति शुभमुहूर्त में गृह प्रवेश करे। इसी प्रकार के मुहूर्त में चित्रकूट मै अपनी पर्णशाला की श्रीराम ने वास्तुशान्ति की। राम ने लक्ष्मण से कहा कि इस गजकन्द को पकाओ। हम पर्णशाला के अधिष्ठाता देवताओं का पूजन करेंगे। शीघ्रता करो। यह सौम्य मुहूर्त है और यह दिन भी ध्रुवसंज्ञक है। अतः इसी में यह शुभ कार्य होना चाहिए–

ऐणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम्।
त्वर सौम्यमुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम्। –अयोध्याकाण्ड (56.25)

भारतीय समाज में धार्मिक संस्कारों की बहुत अधिक प्रतिष्ठा है। संस्कारो के द्वारा ही मनुष्य समस्त कर्मों की योग्यता में अभिवृद्धि प्राप्त करता है। मनुस्मृति में कहा गया है–

जन्मना जायते शूद्रो संस्कारात् द्विजो भवेत्।

इससे स्पष्ट है कि सभी वर्णो के लोग जन्म से शूद्र होते हैं तथा संस्कारों से संस्कारित किये जाने पर वे द्विज कहलाते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी संस्कारों का उल्लेख यथावसर प्राप्त होता है। रामायण के बालकाण्ड में वर्णन आया है कि देवताओं द्वारा बनायी हुई उत्तम खीर को खाकर महाराज की उन तीनों साध्वी महारानियों ने शीघ्र ही पृथक्–पृथक् गर्भ धारण किया–

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा।।
–बालकाण्ड (16.31)

गृधराज जटायु ने सीता की रक्षा करते हुए अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया। उसकी मृत्यु के समय राम उसके सम्मुख थे। श्रीराम ने जटायु का दाह संस्कार किया तथा गोदावरी नदी के पावन तट पर स्नान करके उसे जलाञ्जलि एवं पिण्डदान दिया । इस प्रकार जटायु का श्राद्ध कर्म पूरा हुआ। इसी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार से बाली की मृत्यु के बाद सुग्रीव तथा अंगद ने अन्य वानरों के साथ मिल कर शास्त्रीय विधि के द्वारा उसका दाह संस्कार किया। तदनन्तर सभी वानर जलाञ्जलि देने के लिए पवित्र जल से भरी हुई कल्याणमयी तुङ्गभद्रानदी के तट पर आये। यथा–

ततोऽग्निं विधिवद् दत्त्वा सोऽपसण्यं चकार ह।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।।
संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत् प्लवगर्षभाः।
आजग्मुरुदकं कर्तु नदीं शुभजलां शिवाम्।। –किष्किन्धाकाण्ड (25/50–51)

अथ पवनसमान विक्रमाः
प्लवगवराः प्रतिबन्धपौरूषः।
अभिजिदभिमुखां दिशं ययुः
जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः।। –किष्किन्धाकाण्ड (63/15)

एवमाज्ञपय क्षिप्रं बलानां सर्वसंग्रहय।
मुहर्तेन न युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय।।
आस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्तविजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः।। –युद्धकाण्ड, (3/33)

सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्त मे प्रस्थान की तैयारी करो। सूर्य देव दिन के मध्य भाग में जा पहुँचे हैं। इसलिये इस विजय नामक मुहूर्त में हमारी यात्रा उपयुक्त होगी।

इस प्रकार, स्थालीपुलाकन्याय से वाल्मीकि रामायण में ज्योतिष के कतिपय प्रसङ्गों का उपस्थापन करके तत्त्वानुशीलन का उपक्रम किया गया।।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# कुण्डलिनी योग एवं षट्चक्रोपासना

डॉ. सुनील कुमार उपाध्याय*

मानव लिङ्गशरीर में सुषुम्णा के भीतर 32 पद्म की स्थिति है। इसमें सबसे नीचे तथा सबसे ऊपर सहस्त्रार पद्म हैं। नीचे वाले ऊर्ध्वमुख सहस्त्रार पद्म में अरुणवर्ण की कुलकुण्डलिनी है जो कन्दमूल में स्वयम्भूलिङ्ग को सार्धत्रिवलयाकार रूप से वेष्टित करके अवस्थित है। ऊपर स्थित अधोमुख सहस्त्रार में श्वेत वर्ण की अकुल कुण्डलिनी है। अकुल कुण्डलिनी प्रकाशात्मक अकाररूपा तथा कुलकुण्डलिनी विमर्शात्मक हकाररूपा है।

हृदय में प्राण कुण्डलिनी स्थित है। इससे प्राणशक्ति निकलती है। इसको अनचक्र कला भी कहते हैं। इसमें स्वर रहित हकार का अनवरत नाद चलता रहता है। यह नाद की उन्मेष अवस्था है। जिससे प्राण कुण्डलिनी की गति ऊर्ध्वोन्मुख होती है। इसी से श्वास-प्रश्वास को (प्राण-अपानवायु) को गति मिलती है। यहाँ इन सबकी एकता का अनुसन्धान किया जाता है। मध्यनाडी सुषुम्णा को सार्ध कहते हैं। प्राणशक्ति भी सार्ध त्रिवलया है। मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी में भी यद्यपि प्राण का निवास है किन्तु इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हृदय में होती है अतः इसका पृथग् उल्लेख है।

महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज जी का कहना है कि मूलाधार में सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को उद्बुद्ध किए बिना कर्म, ज्ञान, या भक्ति कोई भी मुक्ति या अनर्थ निवृत्ति के उपाय रूप में परिणत नहीं हो सकती । जो कर्म, ज्ञान, या भक्ति कुण्डलिनी के जागरण में सहायता करती है, वही यथार्थ कर्म, ज्ञान या भक्ति है। यही कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोग है। इसके बिना कर्म आदि व्यर्थ का प्रयास है। कुण्डलिनी के निद्राभंग के बिना आत्मा या परमात्मा में स्थिति पाना संभव नहीं है।

कुण्डलिनी का दूसरा आधार शक्ति है। जो शक्ति सभी पदार्थों को आश्रय देकर मूल सत्ता के रूप में मौजूद है। इसको चेतन करने से यह निराधार हो जाती है। कुण्डलिनी के निराधार होने से जगत् की सारी वस्तु निराधार हो जाती है। इसके चैतन्य होने पर ब्रह्माण्ड चैतन्य हो जाता है। अतः कुण्डलिनी चैतन्य तथा श्रुतिनिर्दिष्ट 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' रूप में अनुभूत ब्रह्मसाक्षात्कार एक ही चीज है। यह जागरण क्रमशः होता है। जब पूर्ण जागरण सम्पन्न होता है तब निद्रालेश मात्र भी नहीं रहती । इसी अवस्था में परिपूर्ण अद्वैतलाभ होता है। इससे पहले द्वैतस्फुरण अवश्यम्भावी है, तंत्रशास्त्र में इसको 'पूर्णहन्ता' कहा गया है।

कुण्डलिनी शक्ति, गुरुकृपा, ईश्वरकृपा, काल का परिपाक, पुरुषकार अथवा और किसी कारण से जाग्रत होती है। इसके मूल में प्राण –अपान शक्तियों का साम्य स्थापन है। प्राण-अपान शक्तियों से सारी विरुद्ध शक्तियों को समझना चाहिए। इन विरुद्ध शक्तियों के साम्य भाव का अर्थ समानवायु की क्रिया की फल प्राप्ति है। इसके परिणाम से सुप्त कुण्डलिनी जाग

---

* अतिथि प्राध्यापक, सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग, सां0 सं0 वि0 वि0, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उठती हैं। साधक का प्राण तथा मन इस जाग्रत कुण्डलिनी रूप चिदग्नि से एकीभूत होता है। इस एकीभूत शक्ति से सभी चक्रों को आयत्त करना होता है।

ये षट्चक्र पञ्चमहाभूत एवं चित्त के प्रतीक हैं। पञ्चभूतों के शुद्ध होने से चित्त शुद्ध होता है तथा चित्त के शुद्ध होने से पञ्चभूत शुद्ध होते हैं। षट्चक्रभेदन के बाद भ्रूमध्य के नीचे सारे विकल्प निरोहित होते रहते हैं। ललाट प्रदेश में दहाभिमान वर्जित होकर साधक को परमज्योति के अनुभव की शक्ति प्राप्त होती है। फिर महाज्योति के आकर्षण से सहस्रदल कमल का आभास देखने में आता है। भ्रूमध्य से सहस्रार के मध्य बिन्दु तथा सभी स्तरों को पार करके महाशक्ति महाबिन्दु में परमशिव का आलिठन करती है। इसी को शिव-शक्ति का मिलन कहते हैं। इस अवस्था में कुण्डलिनी कुण्डल भाव को त्याग करके दण्ड रूप धारण करती है तथा महाबिन्दु में परमशिव के साथ सामरस्य प्राप्त करती है। इस मिलन से गलित अमृत धारा से प्राण मन अभिषिक्त होते हैं। कुण्डलिनी ऊपर की ओर मुख करके अमृत पीती रहती है।

समानवायु की क्रिया के बाद उदानवायु की क्रिया के कारण कुण्डलिनी ऊर्ध्वगति से सम्पन्न होती है। यह गति सहस्रार में समाप्त न होकर ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। इसके बाद ऊर्ध्वगति नहीं रहती । फिर व्यान वायु के प्रभाव से यह अनन्त व्यापक रूप धारण करती है।

कुण्डलिनी के नहीं जगने से परम लक्ष्य की प्राप्ति की बात तो दूर महापथ पर चलना भी असंभव है। इस सुप्त भगवत्ता के जागे बिना चित् एवं अचित् का द्वन्द्व नहीं मिटता। विवेक ज्ञानपथ पर आरुढ़ होने का एक सोपान मात्र है। शक्ति की साधना के बिना शिवभाव की प्राप्ति असंभव है और कुण्डलिनी जागरण के बिना शक्ति साधना का कोई अंश वश में नहीं आता ।

**कुण्डलिनी का स्वरूप, स्थान एवं प्रयोजन :** आगम एवं तंत्रशास्त्रों में कुण्डलिनी को वित्कोटिनिभा, वह्निरूपधरा, प्रसुप्त भुजगाकारा, सार्धत्रिवलयाकृति, मृणालतन्तुतनीयसी, जवासिन्दूरसंकाशा तथा उद्यद्भास्करसन्निभा कहा गया है।

गुदा के ऊपर खग के अण्डे की तरह कन्दमूल है। यहीं से सभी नाड़ियाँ निकलती हैं। यही कुल कुण्डलिनी का वास स्थान है। सभी नाडियों में चौदह नाडियाँ प्रधान हैं। इनमें भी इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्णा मुख्य हैं। सुषुम्णा वज्रा तथा चित्रा के साथ वेष्टित है। इस प्रकार इडा, पिङ्गला सहित ये पाँच नाडियाँ योगियों के लिए प्रसिद्ध हैं। मेरु के वाम भाग में इडा दक्षिण भाग में पिङ्गला तथा मध्यदेश में वज्रा तथा चित्रा से वेष्टित सुषुम्णा है। सुषुम्णा पृष्ठदेश से मेरु से संश्लिष्ट होकर ब्रह्मरन्ध्र तक गयी है। यह ग्रीवा के उन्नत में तिर्यक् होकर शंखिनी नाल को अवलम्ब बनाकर ब्रह्मसाधन में पहुँचती है। यह सत्त्वादि त्रिगुणों का आधार तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव से अभिन्न है। इसे ब्रहननाडी भी कहते हैं। चित्रा सत्त्वगुण से युक्त चन्द्ररूपिणी, वज्रा रजोगुण से युक्त सूर्यरूपिणी तथा सुषुम्णा तमोगुण से युक्त अग्नि स्वरूपा है। चित्रा प्रणव से विभूषित तथा मकड़ी के जाले के समान अत्यन्त सूक्ष्म है।

---

1. कुण्डलनी योग एवं षट्चक्रोपासना नामक लेख साधकों को सामान्य जानकारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से लिखा गया है। इस लेख के प्रमुख आधार सुभगोदय, सौन्दर्य लहरी, एवम् उनकी संस्कृत टीकाएँ, वरिवस्या रहस्य, चिन्तामणि का षट्चक्रनिरुपण, भूतशुद्धितंत्र, मण्डमालातंत्र, कलिङ्गमालिनीतंत्र, श्रीगोपीनाथ कविराज के साहित्य एवं डीड्रे डोमर ABC's of Cakra Therapy है। "षट्चक्रों की उपासना प्रधानतः" सौन्दर्यलहरी की टीकाओं के आधार पर प्रस्तुत की गयी है। इस लेख से संबंधित तथ्यों की विस्तृत जानकारी के लिए उपर्युक्त ग्रन्थों को देखना चाहिए।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुण्डलिनी जागरण से पञ्चमहाभूतों एवं चित्त पर अधिकार हो जाता है। इसके अनन्तर परम पद में प्रतिष्ठा मिलती है। सौन्दर्यलहरी के टीकाकारों ने कुण्डलिनी उद्बोध के फलों को बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। कुण्डलिनी के मूलाधार के वेध करने पर योगी पृथिवी के ऊपर उठ जाता है, मणिपूर में वह्नि के भेदन करने पर जल की तरह अग्नि को स्पर्श करने की क्षमता आ जाती है। अनाहत में वायु के भेदन से सैकड़ों कोसों में शीघ्र गमन प्राप्त होता है, विशुद्धि में आकाश के भेदन से आकाश गमन सिद्धि प्राप्त होती है। आज्ञा में मन के भेदन से मनोगति प्राप्त हो जाती है। ऐसा योगी त्रिलोक में स्वेच्छानुसार विचरण कर सकता है। सहस्रार में शिव के साथ योग होने पर साक्षात् शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है।

सौन्दर्यलहरी के टीकाकार लक्ष्मीधर ने इस चक्रोपासना का फल इस प्रकार दिया है-''समय मत में आधार एवं स्वाधिष्ठान तामिस्र होने के कारण उपास्य नहीं है। मणिपूर चक्र की साधना करने वालों को सार्ष्टि मुक्ति, अनाहत में उपासना करने से सालोक्य मुक्ति, विशुद्धि की उपासना करने से सामीप्य मुक्ति, आज्ञाचक्र की उपासना से सारूप्य मुक्ति तथा सहस्रार में उपासना करने से सायुज्य मुक्ति मिलती है।'' यह शाश्वत मुक्ति है। शेष चारों गौण हैं। देवी के पुर के समीप दूसरे पुर का निर्माण करके उनकी सेवा करते रहना सार्ष्टि मुक्ति है। देवी के धाम में निवास करना सालोक्य मुक्ति है। देवी के अंगों की सेवा करना सामीप्य मुक्ति है। देवी के समान रूप की प्राप्ति सारूप्य मुक्ति है। यह पृथग् देहधारण करने के कारण सायुज्य मुक्ति से भिन्न है।

**कुण्डलिनी योग** – यम तथा नियम के श्रद्धापूर्वक अभ्यास में लगा हुआ साधक मूलाधार से सहस्रारपर्यन्त कुण्डलिनी के उद्बोध की विधि को गुरुमुख से भलीभाँति समझने के अनन्तर वायु अग्नि के आक्रमण और बीज मंत्र की भावना के बल से स्वयम्भूलिङ्ग से वेष्टित सार्धत्रिवलयाकार रूप में अवस्थित कुण्डलिनी शक्ति को स्वयम्भूलिङ्ग के छिद्र से निकाल कर उसे ब्रह्मद्वार तक पहुँचा देता है। कुण्डलिनी शक्ति पहले मूलाधार में स्थित स्वयम्भू लिङ्ग का फिर अनाहत चक्र में स्थित बाणलिङ्ग का तथा अन्त में आज्ञाचक्र में स्थित इतर लिङ्ग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाडी की सहायता से सहस्रार में जाकर परमानन्दमय, शिव से मिलती है। योगी अपने जीवभाव सहित इस कुल-कुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर सहस्रार तक ले जाता है और उसको परबिन्दु में स्थित परलिङ्ग शिव के साथ समरस कर देता है। सामरस्य को प्राप्त यह कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में लाक्षावर्ण के समान परमामृत का पान करके तृप्त हो जाती है। और परमानन्द की इस अनुभूति को मन में सँजोए यह पुनः मूलाधार में वापिस आ जाती है।

इसके सिद्ध होने पर योगी जीवभाव से मुक्त होकर जीवन्मुक्त की अवस्था प्राप्त कर लेता है। कुण्डलिनी की भूमिका भेद से उन्नय, लय, प्रत्यावृत्ति एवं विश्रान्ति चार अवस्थाएँ हैं। लक्ष्मीधर इसके उद्बोध की प्रक्रिया बताते हुए कहते हैं कि योगी समाहित चित्त होकर जब चन्द्र को चन्द्र स्थान में तथा सूर्य को सूर्य स्थान में वायु से निरुद्ध करने में सक्षम बनता है तब निरुद्ध चन्द्र एवं सूर्य अमृत सेचन और अमृत आहरण में असमर्थ हो जाते हैं। इस समय वायु से प्रेरित स्वाधिष्ठान की वह्नि से शुष्कीभूत अमृतकुण्ड में निराहारा कुण्डलिनी स्वाप्नावस्था से उठकर सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई ग्रन्थित्रय का रुद्र, विष्णु, एवं ब्रह्म भेदन करके सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्रमण्डल को डँस लेती है। यहाँ से निःसृत पीयूषधारा आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती है और यहाँ से क्षरित पीयूषधारा सम्पूर्ण देह को आप्लावित करती है।

इस सन्दर्भ में प्राणायाम, जालन्धरादिबन्ध एवं आसनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

## षट्चक्रों का परिचय

**मूलाधार स्वरूप–** यह चक्र सुषुम्णा के मुख से संलग्न है। लिङ्ग के नीचे तथा ऊपर अपानवायु के स्थान पर इसकी स्थिति है।इसमें सोने के वर्ण के चार रक्तवर्ण दल हैं। इसके दलों में चार अक्षर वँ शँ षँ सँ हैं। इनकी आभा स्वर्ण के समान है। यह अधोमुख है। इसके बीजकोश में चतुष्कोश पृथ्वीमण्डल है। यह चारों ओर से आठशूलों से अत्यन्त प्रदीप्त एवम् आवृत है। यह अत्यन्त सुन्दर एवम् पीतवर्ण का है। इसमें धराबीज ''लँ'' है। यह बीज भी पीत वर्ण का है। इसके अन्दर ऐन्द्रबीज है। इस इन्द्र को महाबाहु या आजानबाहु कहा गया है। ये चार भुजाओं से विभूषित तथा ऐरावत हाथी पर विराजमान हैं। इनके अङ्ग में सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा शिशु रूप में हैं। इनकी आभा मध्याह्न सूर्य की तरह है। इनकी चार भुजाएँ हैं और ये चतुर्मुखी हैं।

**डाकिनी शक्ति का स्वरूपः-** इस चक्र में डाकिनी शक्ति का निवास है। ये चार भुजाओं से सुशोभित तथा इनके नेत्र रक्तवर्ण के हैं। ये अनेक उदीयमान सूर्य के प्रकाश के समान तेजोमय हैं। ये सदैव शुद्धबुद्धि एवं तत्त्वज्ञान को प्रकाशित करती हैं। उपर्युक्त चार वर्णो की ये अधिष्ठात्री मानी जाती है। तत्त्वज्ञान के लिए इनकी आराधना की जाती है। साधकों को ये अमरत्व प्रदान करती हैं। डाकिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार है-

**रक्ताक्षीं रक्तवर्णां पशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां**

**वामे खड्गं दधानां चषकमपि सुधापूरितं चैकवक्त्राम् ।**

**अत्युग्रामुद्रदंष्टामरिकुलमथनीं पायसान्ने प्रसक्तां**

**मूलाधारेऽमृतार्थे परिवृतवपुषां डाकिनीं चिन्तयेत् ताम् ॥**

**कुण्डलिनी एवं स्वयम्भूलिङ्ग का स्वरूप-** इस आधारकमल की कर्णिकाओं के मध्य में त्रैपुर है। त्रिपुरा से संबधित होने के कारण इसको त्रैपुर कहते हैं। इसके वक्त्रदेश में वज्रा नाडी है। यह विद्युत् की तरह प्रकाशित है। यहाँ त्रिकोण के आकार का 'कामरूपपीठ' है। इसमें कन्दर्प वायु स्थित है। इसे जीवों का स्वामी 'जीवेश' कहा जाता है। यह कोटि सूर्यों के प्रकाश के समान देदीप्यमान है। इसके मध्य में स्वयम्भूलिङ्ग है। यह द्रवित स्वर्ण की तरह कोमल और कान्तिमान है। यह अधोमुख है। ज्ञान, ध्यान एवं योग से यह प्रकाश में आता है। यह पूर्णचन्द्र के समान शीतल, आकर्षक एवं सौन्दर्यमय है। यहाँ जो देव निवास करते हैं, वे उसी प्रकार आह्लाद से पूर्ण हैं मानो वे काशी में हैं। तात्पर्य है कि इस चक्र में साधना करना काशी में साधना करने के समान है। स्वयम्भूलिङ्ग कामबीज (क्लीं पर स्थित) है। अतः यह कामबीज के जप से क्रियाशील होता है। इस लिङ्ग के ऊपर कमलतन्तु के सदृश सूक्ष्म एवं सुप्त कुण्डलिनी स्थित है। यह जगत् की मोहिनी और महामायां रूपा है। इससे ब्रह्मद्वार का मुख आवृत है। यह अमृत के निर्झर को रोककर अमृत का पान करती हुए प्रसुप्त रूप में रहती है। इसने शिव को साढ़े तीन कल्पों में आबद्ध किया है। साधना से इसके अमृतपान को रोककर इसे क्षुधा से व्याकुल किया जाता है। तभी यह जाग्रत होकर सर्प की भाँति फूत्कार करती हुई ऊर्ध्वगमन करती है। कुण्डलिनी श्वास-प्रश्वास की प्रक्रियाओं से जीव को स्थित एवं जीवित रखती है। कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार है-

**ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीमिष्टदेवस्वरूपिणीं**

**सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम्।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषितां
पूर्णचन्द्रप्रभां रक्तां सदा चञ्चललोचनाम्॥

कुण्डलिनी का ध्यान अन्य तंत्रों में अलग-2 भी बताया गया है। कुण्डलिनी के मध्य में परमा कला है। इन्हें परम परमेश्वरी कहते हैं। सृष्टि करने में इनका कौशल अतुलनीय है। अनादि आनन्द की धारा से जिस अमृत का स्राव होता है, उसे यह ग्रहण करती हैं। इनका प्रकाश विद्युन्माला के समान तेजोमय है। इसी प्रकाश से ब्रह्माण्ड प्रकाशित हो रहा है। इनके शरीर को ब्रह्माण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्ड में जितने गुण हैं, वे सभी इनमें हैं, इसी परमाकला से नित्यज्ञान का उदय होता है। इनको शिव की नादशक्ति कहा गया है।

## स्वाधिष्ठान चक्र

**स्वरूप –** यह सुषुम्णा के मध्य जननेन्द्रियों के मूल स्थान में है। यह सिन्दूर वर्ण का है। इसके छह दलों पर वँ भँ मँ यँ रँ लँ छह वर्ण हैं। इनका वर्ण विद्युत् के समान है। इस पद्म के मध्य में वरुण मण्डल है। यह अतिप्रभावान् तथा प्रकाश से निर्मल है। यहाँ मकर पर आरुढ़ 'वँ' बीज है। यह निष्कलङ्क, निर्मल, तथा चन्द्रमा के सदृश शुभ्र वर्ण वाला है। इस बीज (वँ) के अङ्क में श्री हरि (विष्णु) हैं। इनका शरीर नीलकान्ति से सम्पन्न है। इनका यौवन उद्दाम रूप में छलक रहा है। इन्होंने पीलावस्त्र धारण कर रखा है। ये चार भुजाओं श्रीवत्स, तथा कौस्तुभ मणि से सुशोभित हैं।

**राकिनी शक्ति का स्वरुपः –** इस चक्र में 'राकिनी शक्ति' का निवास है। ये श्यामकमल के समान श्यामवर्णवाली हैं। इनके हाथों में विविध आयुध हैं। ये हाथों में शूल, डमरु और टंक धारण करती हैं। इनके अङ्गो में दिव्य आभूषण एवं परिधान है। सुधा पान करने के कारण इनका चित्त आह्लाद पूर्ण रहता है। इनका ध्यान इस प्रकार मिलता है।

श्यामां शूलाब्जहस्तां डमरुकरयुतां तीक्ष्णटंकं वहन्ती-
मुग्रां रक्तत्रिनेत्रां शुचिकुटिललसच्चोग्रदंष्टां प्रभाति।
दीप्तां देवदेवीं त्रितयकमलगां रक्तधारैकनाथां
शुक्लाङ्गे सक्तचित्तामभिमतफलदां राकिनीं चिन्तयेत् ताम् ॥

ये साधकों को मनोवाञ्छित फल प्रदान करती हैं। इनका ध्यान अन्य प्रकार का भी मिलता है।

## मणिपूरचक्र

**स्वरूपः –** यह नाभि के मूल में दश दलों से सुशोभित है। इन दलों पर 'डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ 'दश वर्ण हैं। इनका प्रकाश जल से परिपूर्ण मेघ के समान है। यह नीलकमल के सदृश है। इसमें वह्निबीज 'रँ' का ध्यान करना चाहिए। यह बीज मेष पर आरुढ़ है।उदीयमान सूर्य के समान इसकी आभा है। इसकी चार भुजाएँ हैं तथा अङ्ग अत्यन्त उज्ज्वल है। इस बीज के अङ्क में रुद्र विराजमान हैं। इनका रंग शुद्ध सिन्दूर के समान है। इनके अङ्गों पर भस्म का लेप होने से ये पूर्णतया धवल दिखायी देते हैं। इनको तीन नेत्र हैं। ये त्रिलोक को मनोवाञ्छित वर देते हैं। ये अभयमुद्रा में हैं। ये सृष्टि का संहार करने वाले हैं।

**लाकिनी शक्ति का स्वरूपः –** इस चक्र में सभी का कल्याण एवं शुभ करने वाली लाकिनी शक्ति है। इनकी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चार भुजाएँ हैं। इनका शरीर उज्ज्वल एवं कान्तिमान है। इनका वस्त्र पीतवर्ण का है। ये विविध रत्नजटित आभूषणों से सुसज्जित एवम् अलंकृत है। ये श्यामवर्ण वाली एवं मत्त चित्त है। इनका साधक ब्रम्हा, विष्णु एवं शिव तुल्य हो जाता है। इनका ध्यान इस प्रकार है-

**नीलां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनलसितां दंष्ट्रिमुग्रस्वरूपां**

**वज्रं शक्तिं दधानामभयवरकर॰। दक्षवामक्रमेण ।**

**ध्यात्त्वा नाभौ सुपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं तां**

**मांसांशीं गौरवर्णां भक्तोत्सुकहृदयां विन्यसेत् साधकेन्द्रः ।।**

## अनाहत चक्र

**स्वरूप –** यह हृदयदेश में स्थित है। यह बन्धूक पुष्प के समान कान्तिमान एवं सिन्दूर वर्ण का है। इसमें बारह दल है। इन दलों पर कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ झँ ञँ टँ ठँ बारह वर्ण हैं। यह कमल कल्पवृक्ष के समान है। इसकी उपासना से समस्तमनः कामनाएं पूर्ण होती हैं। यह मोक्षदायक चक्र है। इसमें धूम्रवर्ण के समान षट्कोणीय वायुमण्डल में वायुबीज यँ का ध्यान करना चाहिए । इसका स्वरूप घनीभूत धूम्र के समान है। इसमें जीवात्मा दीपकलिका के रूप में स्थित है। वायुबीज की चार भुजाएं हैं। यह कृष्णसार मृग पर आरूढ है। यहीं विराट् ईश्वर का वास है। यह हंस सूर्य के समान तेजोमय, निष्कलङ्क, निर्मल एवं करुणानिधान हैं। इनके दो हाथ वर एवम् अभय मुद्रा से सुशोभित हैं। ये वरदाता तथा तीनों लोकों के भय का हरण करने वाले हैं।

**काकिनीशक्ति का स्वरूप -** इसमें काकिनी शक्ति का वास है। नवीन विद्युत् की तरह इनका वर्ण पीत है। ये सभी आभूषणों से अलङ्कृत तीन नेत्रों वाली तथा अत्यन्त कल्याणकारी है। ये सदा हर्षाभिभूत रहने के कारण सभी के हित में तत्पर रहती हैं। इनकी चार भुजाएँ हैं। इसमें दो में पाश एवं खप्पर तथा अन्य दो में वर एवम् अभय मुद्राएँ हैं। ये सुधापान से उन्मत्त एवं रसपूर्ण रहती हैं। ये कङ्काल की माला पहने हुए हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है—

**तत्र ध्यायेदिमां तां रविदलकमले कामिनीं वेदहस्तैः**

**पाशं शूलं वहन्तीं डमरुकमभयं धारिणीं पीतवर्णाम् ।**

**दध्यन्ने सक्तचित्तां काकिनी मत्तचित्तां ।**

**पत्राणैः कादिठान्तैः परिवृतवपुषां भावयेद् योगिनीं ताम् ।।**

**त्रिकोण का स्वरूप –** इस पद्म की कर्णिकाओं में त्रिकोण है। जिसमें शक्ति स्थित है। इनका शरीर अत्यन्त मृदु है। ये कोटि विद्युत् की आभा के समान देदीप्यमान हैं। इसमें बाणलिङ्ग स्थित है। यह लिङ्ग स्वर्ण के समान प्रकाशमान है। इसके सिर पर एक सूक्ष्म छिद्र है। इसमें लक्ष्मी का निवास है।

**विशुद्धिचक्र स्वरुप-** यह कण्ठ में है। इसकी आभा धूम के सदृश है। इसमें सोलह रक्ताभ दल हैं। इन पर 'अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः' सोलह स्वर हैं। प्रखर बुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति को ये स्पष्ट प्रतीत होते हैं। इसमें शुक्लवर्ण का आकाश है। यह वृत्ताकार एवं पूर्ण चन्द्र की तरह प्रकाशमान है। इसमें आकाशबीज हँ



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोभायमान है। इसकी चार भुजाओं में पाश, अङ्कुश, वर एवम् अभय मुद्राएँ हैं। इसके अङ्क में हिम के समान धवल शिव का वास है। इनके तीन नेत्र, दस सुन्दर हाथ और पाँच मुख हैं। ये गिरिजा से अभिन्न देह धारण किए हुए हैं। इनके शरीर पर व्याघ्र का चर्म है। ये सदाशिव योगियों के मनस् के प्रकाश हैं।

**शकिनीशक्ति का स्वरूप-** इस चक्र में शकिनीशक्ति हैं। इनका वस्त्र पीतवर्ण का है। ये परम पवित्र हैं। इनके चारों हाथों में शर, चाप, पाश, एवम् अकुश सुशोभित है। इस कमल की कर्णिकाओं में चन्द्रमण्डल है। यह पूर्ण निष्कलङ्क है। इसको निर्वाण एवं मुक्ति का द्वार कहा गया है। इनका ध्यान है—

**देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनलसितां पञ्चवक्त्राभिरामां**
**हस्तैश्चापंचपाशं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।**
**ध्यायेत् कण्ठस्थपद्मे निखिलपशुजनोन्मादिनीमस्थिसंस्थां**
**दुग्धान्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां शकिनीं साधकेन्द्रः ॥**

## आज्ञाचक्र

**स्वरूप–** यह भ्रूमध्य में स्थित है। यह चन्द्रमा के समान प्रशस्त एवं धवल वर्ण का है। इसमें दो दल हैं। इन दलों पर हँ,क्षँ दो वर्ण हैं। शक्तिसम्प्रदाय में इसमें हँ लँ दो वर्णों का न्यास माना जाता है। इस पद्म में हाकिनी शक्ति का वास है। ये भी चन्द्रमा के समान शुभ्रकान्ति से सम्पत्र तथा छह मुखों वाली हैं। इनके छह हाथों में विद्यामुद्रा, ज्ञानमुद्रा, वरदानमुद्रा, एवम् अभय मुद्रा शोभा पा रहे है। शेष दो हाथों में कपाल छोटी दुन्दुभि एवं माला है। ये पूर्णतः शुद्धचित्तवाली हैं। इस चक्र में गुरु की आज्ञा प्राप्त होती है अतः आज्ञाचक्र कहा जाता है। यह मन का निवास स्थान है। हाकिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार है-

**चक्रस्थां शुक्लवर्णां डमरुकरयुतामक्षसूत्रां कपालं**
**विद्यां मुद्रां दधाना त्रिनयनविलसद् रक्तसद्वक्त्रयुक्ताम् ।**
**हारिद्रान्ने प्रसक्तां मधुमदमुदितां शुक्लमब्जस्वरूपां**
**देवीं देवेन्द्ररत्नाकरमधुमुदितां भावयेद् हाकिनीं ताम् ॥**

**आज्ञाचक्रस्थ मनस् का स्वरूप -** इस पद्म के अन्तराल में मनस् का निवास है। इसकी कर्णिकाओं में योनि है जिसमें शिवलिङ्ग रुप में स्थित हैं। इसका नाम 'इतरलिङ्ग' है। यह यहाँ विद्युत् पुञ्ज के समान प्रकाशमान है। इसमें वेदों का आदिबीज प्रवण ऊँ है। यह बीज अपनी प्रभा से ब्रह्मसूत्र को प्रकाशित कर रहा है।

**आज्ञाचक्रस्थ प्रणव का स्वरूप -** इस चक्र के ऊर्ध्व में प्रणव स्थित है। इसकी ज्योति प्रदीप्त आभा के समान है। इसके ऊपरी भाग में अर्द्धचन्द्र है। इस अर्द्धचन्द्र के ऊपर बिन्दु है। इसके ऊपर धवलवर्ण का नाद है। इसका आकार वक्र है। यह चन्द्रकिरणों को पराभूत करता है। गुरुके आर्शीवाद से साधक को जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे वह यहाँ लीन करता है। यही परमानन्द का स्थान है। चित्त यहीं लीन होता है। यह निरालम्ब मुद्रा से साध्य है। योगी को यहाँ दीपप्रभा की तरह प्रकाश का अनुभव होता है। इस प्रकाया का स्वरूप प्रातः कालीन सूर्य के समान है। यहीं भगवान का साक्षात्कार



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होता है। यहाँ पूर्ण वैभव एवं ज्ञान के साथ उनकी अभिव्यक्ति होती है। यह अव्यय एवं सर्वसाक्षी का स्थान है। ये सूर्य चन्द्र एवम् अग्नि की तरह प्रकाशित है।

**सहस्त्रार चक्र-** आज्ञा चक्र के ऊपर अर्द्धचन्द्र, रोधिनी, नाद नादान्त, शक्ति, व्यापिका समना, एवम् उन्मनी ये सभी चक्र अत्यन्त सूक्ष्म हैं। इसके ऊपर महाबिन्दु है। अर्द्धचन्द्र प्रभा एवम् आकृति से बिल्कुल चन्द्रमा की तरह है। रोधिनी त्रिभुज के आकार की है। दो अण्डों के मध्य विराजमान पद्मराग की कान्तिवाला नाद है। विद्युत् की भाँति प्रकाशमान नादान्त हल की तरह है। बिन्दु से बायीं ओर उदीयमान सिरा के आकार की शक्ति है। बिन्दु के ऊपर त्रिकोण के आकारवाली व्यापिका है। दो बिन्दुओं के समान 'समना' है बिन्दु के बिना समना ही उन्मनी है।

इसके ऊपर महाशंखिनी नाडी के पास शून्यदेश में विसर्ग के नीचे सहस्रार कमल है। यह पूर्णचन्द्र के सदृश शुभवर्ण की तथा अधोमुखी है। इसके तन्तु पुञ्ज तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान है। इसका विग्रह आदिक्षान्त अक्षरों से घटित है। यह केवलानन्द स्वरूप है।

**सहस्त्रारस्थ चन्द्रमण्डल का स्वरूप-** इस पद्म में शश रहित चन्द्रमण्डल है। यह अमृत के समान शीतल एवं सरस है। चन्द्र के मध्य त्रिकोण है। इसमें शून्य है जो अतिप्रभा से सम्पन्न है। सभी देवता इसकी गुप्तरुप से पूजा करते हैं। इसमें परम शिव की स्थिति है। यहीं से अमृतक्षरण होता है। अत्यन्त सूक्ष्म है। यहीं सम्पूर्ण जीवों की आत्मा एवं ब्रह्म है। इसी में रस एवं विरस संयुक्त रूप में है। इसी से अज्ञान का मोहान्धकार नष्ट होता है। शैव इसे परमशिव, वैष्णव परमपुरुष अन्य हरिहरपद, शाक्त देवी के चरणकमल सांख्य प्रकृति पुरुष का शुद्धस्थान कहते हैं। इस पद्म रुप चन्द्र मण्डल में चन्द्र की षोडशी कला है। इसको अमाकला नाम से जान जाता है। यह उदीयमान सूर्य के समान प्रकाशित अत्यन्त शुद्ध एवं निर्विकार है। कमल तन्तु के सौवें भाग से भी यह सूक्ष्म है। यह पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी की समष्टि रूप में स्थित है, यह नित्य उदित है। इसका कभी क्षय नहीं होता। यह अधोमुखी है। इसका उदय ब्रह्म से है अतः अमृतधारा से यह निरन्तर आप्लावित है। अमाकला के अन्दर निर्वाण कला है। यह केश के अग्रभाग के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म है। यह सर्वव्यापिका है। यह भूतों की अधिष्ठत्री भगवती स्वरूपा है। इसी में निर्वाणशक्ति है। यह त्रिभुवनजननी एवं सर्वभूतों का आधार है। मुनियों में यही तत्त्व ज्ञान का उद्‌बोध करती है। इसी शक्ति को परब्रह्म की शक्ति कहते हैं। इस शक्ति में शिव का निर्मल स्थान है। यह माया से मुक्त है। यह केवल योगियों के लिए गम्य है। कुछ लोग इसको परब्रह्म का स्थान कहते है। हंस स्थान, विष्णुपद आदि नाम इसी को दिया जाता है।

## चक्रोपासना का प्रयोजन

**मूलाधार-** करोड़ों सूर्य की भाँति कुण्डलिनी का जो मूलाधार में ध्यान करता है, वह तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य है कि साधक जिस प्रकार का ध्यान करता है, उसी प्रकार का हो जाता है। उसकी वाणी माधुर्य एवं रस से ओत-प्रोत हो जाती है। क्रमशः उसे वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यह वाक् सिद्धि दो प्रकार की है- साहित्यरचना, संगीतादि की विद्या और दूसरी जिसको जो कुछ साधक कह दे, वह संपन्न हो जाय। मनुष्यों में यह साधक इन्द्र की तरह तथा सर्वविद्याओं का विनोदी हो जाता है। यह सदैव नीरोग एवं स्वस्थ रहता है। यह दिन-रात ईश्वर के महानन्द में लीन रहता है। शुद्ध चरित वाला होने से साधक देवताओं का प्रिय हो जाता है।षट्‌चक्रों का यह मूल है, अतः इसको मूलाधार कहा गया है। कुण्डलिनी के मूलाधार में प्रवेश करने पर साधक पृथिवी के ऊपर उठ जाता है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डीड्रे डोमर ने (The ABC's of Cakra Therapy) नामक पुस्तक में मूलाधार चक्र का मुख्य सम्बन्ध मनुष्य की मूल आवश्यकता से स्थापित किया है। उनके अनुसार यह चक्र मनुष्य की भोजन, धन, आश्रय, प्राकृतिक आपदाएँ एवं मनुष्य कृत विपत्तियों आदि से संबंधित है। उपर्युक्त तथ्यों की प्राप्ति एवं सुरक्षा इस चक्र की साधना से संभव है। इस चक्र से आत्मविश्वास प्राप्त होता है। इसमें दया एवं क्षमा की भावना मजबूत होती है। उस चक्र से निर्भयता प्राप्त होती है। इससे उत्साह अत्यन्त बढ़ जाता है। इस चक्र से कुछ शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक समस्याओं का भी समाधान होता है। जैसे साइटिका, अपने पैरों से खड़ा न होना, पुराना पीठ का दर्द, असहाय होने की भावना, ट्यूमर, कैंसर, आदि । इस चक्र से स्वयं के प्रति प्रेम बढ़ जाता है।

तंत्र सम्प्रदाय के अनुसार संसार की सब प्रकार की भौतिक, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं का निदान मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्रों की उपासना से हो सकता है। संसार की सृष्टि, स्थिति एवं लय इन चक्रों से संभव है।

**मणिपूर-** इस चक्र की साधना से अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह मात्सर्य आदि समाप्त हो जाते हैं। यह साधक योगियों में सिरमौर हो जाता है। काव्य रचना की अदभुत शक्ति इस चक्र से प्राप्त होती है। कुण्डलिनी के यहाँ पहुँचने पर साधक जल में पैदल चलने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

डीमर ने इस चक्र को काम, वासना, लालच, इच्छा, लोभ, कामुकता, बुरी आदत, हिंसा, बलात्कार, पारिवारिक व्यभिचार, धोखा, भावनात्मक अनियंत्रण, एवं रचनात्मकता से संबंधित माना है। यह चक्र अत्यधिक क्षमाशीलता एवं प्रेम प्रदान करता है। इस चक्र से दैनन्दिन जीवन की कला आती है। कामशक्ति का उपयोग कैसे करना चाहिए।यह चक्र इसकी शिक्षा देता है। इस चक्र के संतुलित एवं स्वस्थ होने पर ऊर्जा धनात्मक रूप में रचनात्मक कार्य करती है। इसके असंतुलित रहने पर निम्न रोगों का लक्षण दिखायी पड़ता है। प्रजनन संबंधी अनियमितता, नसों में गाँठ बनना, गले का कैंसर, प्राँस्टेट कैंसर, बवासीर, मूत्राशय का असंतुलन, एलर्जी, कमर एवं पीठ का दर्द, तथा सेक्स संबंधी क्रियाहीनता। इस सन्दर्भ में इनका मानना है कि नीचे के तीन चक्र भौतिक स्तरों से संबंधित है।

**स्वाधिष्ठान चक्र-** कुण्डलिनी के इस चक्र में वह्नि का भेदन करने पर साधक में अग्नि को जल की तरह स्पर्श करने की क्षमता आ जाती है। "The ABC's of Cakra Therapy" में इस चक्र में नियंत्रण, शक्ति एवं सीमाओं से संबंधित माना गया है । इस चक्र में प्रतिकूल स्थितियों में सामञ्जस्य उत्पन्न करने की शक्ति है जिसमें व्यक्ति सदा धरातल पर रहता है। किसी प्रकार का सामर्थ्य बढ़ जाने पर इसे नियंत्रण करने का सामर्थ्य इस चक्र में है। यह चक्र प्रथम दो चक्र मूलाधार एवं मणिपूर के लिए एक प्रकार से सेतु का कार्य करता है। मूलाधार एवं मणिपूर से उत्पन्न होने वाली सभी बातों पर यह नियंत्रण रखता है। प्रेम के बिना सेक्स की भावना इस चक्र के असंतुलित होने पर होती है। इस चक्र से स्वस्थ होने पर व्यक्ति का सीधा संपर्क हृदय से स्थापित हो पाता है। अल्सर, पाचन संबंधी दोष, आँत की बीमारी, मंदाग्नि, डाइबेटिज, लीवर का अच्छी तरह काम न करना इत्यादि इस चक्र के अच्छी तरह कार्य न करने के कारण होता है।

**अनाहतचक्र-** हृदय चक्र का ध्यान करने वाला साधक कल्पवृक्ष के समान हो जाता है। इसको वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यह ईश्वर की तरह संसार की रक्षा एवं विनाश में समर्थ हो जाता है। देवताओं के गुरु बृहस्पति की तरह इसका सम्मान बढ़ जाता है। कुण्डलिनी के इसमें प्रवेश करने पर साधक को वायु गति प्राप्त होती है। यह सभी विद्याओं से भर जाता है। परकाय प्रवेश एवं परपुर सिद्धि भी इस चक्र की उपासना से प्राप्त होती है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनाहत सभी चक्रों का केन्द्र है। यह ऊपर एवं नीचे के चक्रों के बीच सेतु का काम करता है। नीचे के तीन चक्र भावनात्मक एवं भौतिक स्तरों से संबंधित है, तथा ऊपर के तीन चक्र अध्यात्म के केन्द्र हैं। अनाहत प्रेम एवं क्षमा का केन्द्र है। इस चक्र को स्वस्थ करने के लिए गुलाबी एवं हरा रंग महत्त्वपूर्ण साधन है। स्वयं के प्रति उदार एवं नम्र रहना, दया, क्षमा, एवं प्रसन्नचित्त रहना भी इस चक्र को स्वस्थ बनाता है। समुदाय अथवा विश्व का कल्याण करने की भावना यही से उत्पन्न होती है। यह चक्र निज के अस्तित्व के प्रश्नों से भी संबंधित है। अनाहत चक्र के संतुलित नहीं होने पर व्यक्ति खुशामद पंसद होने लगता है। वह अपने हर एक कार्य पर दूसरों की स्वीकृति चाहने लगता है। अस्थमा, ब्राँन्काइटिस, न्यूमोनिया,हृदय संबंधी अन्य रोगों का जनक यही चक्र है। दूसरा चक्र एवं चौथा चक्र परस्पर संबंधित है। कभी –कभी दूसरे चक्र को छोटा हृदय भी कहा जाता है। अनाहत चक्र के खुले होने पर व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को पसंद करता है। इसमें उन्मुक्तता न होने पर व्यक्ति सभी अभिव्यक्ति शर्तो के साथ करता है।

**विशुद्धि चक्र-** विशुद्धि में उपासना करने से साधक सभी द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त कर लेता है। यह ऋषि, कवि, सम्पूर्ण विषयों का ज्ञाता तथा वाक् सिद्ध हो जाता है। यह त्रिकालदर्शी एवं दीर्घायु हो जाता है। यह चक्र सम्प्रेषण, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति, अन्तरात्मा की आवाज एवं मार्गदर्शन से संबंधित है। इसके अस्वस्थ होने के पुराना गले का शोथ, गले एवं मुँह का अल्सर, मसूड़े का रोग, गठिया रोग, जोड़ों का रोग, मेरुदण्ड का टेढा होना, थाइराएड का रोग, स्वर यंत्रिका संबंधी रोग, हकलाना रूप रोग दिखायी पड़ते हैं। कुण्डलिनी के यहाँ पहुँचने पर साधक आकाश मार्ग में गमन करने की शक्ति अर्जित कर लेता है।

**आज्ञाचक्र-** जिस साधक का मनस् इस चक्र में रहता है उसे इच्छा के अनुसार परकाया प्रवेश की शक्ति रहती है। यह दीर्घायु एवं प्रकृष्ट सिद्धियों का लाभ करता है। इसकी अद्वैत तत्त्व में प्रतिष्ठा हो जाती है। यह सर्वज्ञ एवं त्रिकालदर्शी हो ज़ाता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव से इस साधक की एकता स्थापित हो जाती है। कुण्डलिनी, के इस चक्र में स्थित मनस् के भेदन कर लेने पर साधक को मनोगति प्राप्त हो जाती है। इसमें तीनों लोकों की सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने की क्षमता है। इसमें प्राण छोड़ने से साधक को परम-पुरुष में प्रवेश मिल जाता है।

इस चक्र को उच्च बुद्धिलब्धि, साक्षात्कार, अन्तर्ज्ञान, कल्पना, एवं अन्तर्दृष्टि से संबंधित माना जाता है। इस चक्र के असंतुलित रहने पर व्यक्ति बौद्धिक दंभी बन जाता है। ब्रेन टयूमर, रक्त का थक्का जमना, नाड़ी सम्बन्धित विकार, अन्धापन, बहरापन, रीढ़ की हडडी से संबंधित परेशानियाँ, दौरा, जकड़न, अध्ययन की अक्षमता, एकाग्रता का अभाव, मानसिक भ्रम, आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव, इत्यादि इस चक्र के अस्वस्थ रहने पर दिखायी देते हैं। पागलपन एवं मूर्खता के भी लक्षण कभी-कभी दिखायी पड़ते हैं।

**सहस्त्रार चक्र-** जिन्होंने भली भाँति शास्त्र ज्ञान पूर्वक इस चक्र को जान लिया है तथा अपने मन का संयम कर लिया है, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। ऐसे साधक बन्धनरहित एवं सर्वशक्ति सम्पन्न हो जाते हैं।उन्हें कुछ भी करने और रोकने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। इनका चित्त सदा ब्रह्म चिन्तन में लीन रहता है। इनको समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। कुण्डलिनी के यहाँ पहुँचने पर साधक को साक्षात् 'शिवत्त्व' पदवी प्राप्त हो जाती है।

यह चक्र स्वतंत्र इच्छाशक्ति, परमज्ञान, आध्यात्मिकता, एवं पूर्णचेतना से संबंधित है। इस चक्र के स्वस्थ हुए बिना शेष कोई चक्र संतुलित नहीं हो पाते। इस चक्र में सभी चक्रों की क्रियाएँ एवं सूचनाएँ पहुँचती हैं।जिसके कारण इसके परिज्ञान



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से सब कुछ ज्ञात हो जाता है। यह दैवीय प्रेरणा एवं रचनात्मकता का केन्द्र है।

वस्तुतः इन चक्रों के प्रयोजन एवं कार्य के विषय में सांगोपांग जानकारी देना एक विशाल अनुसन्धान का विषय है। इसका मुख्य आधार इन चक्रों में स्थित रश्मियों एवम् उनके देवताओं के बारे में शोध करना है। परम्पराभेद से इन चक्रों में स्थित शक्तियों के नाम एवं ध्यान में भी अन्तर मिलता है। यथा-

**आज्ञाचक्र -** फलविकरिणी, बलप्रमथिनी।

**विशुद्धि-** ब्रह्माणी, चण्डिका, रौद्री, गौरी, इन्द्राणी, कौमारी, वैष्णवी, दुर्गा, नारसिंही, कालिका, शिवदूती, वाराही, माहेशी, कौशिकी, शाङ्करी, जयन्ती।

**अनाहतः-** मङ्गला, कपालिका, मेधा, शिवरूपिका, शाकम्भरी, भीमा, गाण्डा, भ्रामरी, रुद्ररूपिणी, अम्बिका, क्षमा, वाह्निरूपिणी।

**मणिपूर -**धात्री, वह्निरूपा, मध्यमा, अपर्णा, वामा, महोदरी, घोररूपी, महाकाली, भयङ्करी, क्षेमङ्करी।

**स्वाधिष्ठान-** उग्रचण्डा, चण्डावती, चण्डा, प्रचण्डा, चण्डनायकसेविता, चण्डिका।

**मूलाधारः-** महादेवी, मोहरूपिणी, प्रियङ्करी, सनातनी।

चक्रों में स्थित वर्णो के रंगों का उल्लेख इस प्रकार हैः-

**स्वर**-स्कुटिक के समान अथवा धूम्रवर्ण।

**कादिमपर्यन्त**-विद्रुम के समान।

**यादिनव-** पीतवर्ण ।

**क्ष**-अरुण वर्ण ।

अन्य मत में इनका रंग इस प्रकार बताया गया है-

काठिदान्त-सिन्दूरवर्ण, डादिफान्त –गौरवर्ण, बादिलान्त अरुणवर्ण, वादिसान्त- कनकवर्ण, ह-क्ष- तडित् के समान। सम्प्रदायभेद से डाकिनी आदि शक्तियों का ध्यान इस प्रकार है-

**डाकिनी शक्ति-**

**शरच्चन्द्रप्रतीकाशां द्विभुजां लोललोचनाँ,**
**सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम्।**
**कृष्णाम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषितां,**
**ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां डाकिनीं मंत्रसिद्धये ॥**

**राकिनी-**

**शरच्चन्द्रप्रतीकाशां द्विभुजां लोललोचनां,**
**अरुणादित्यसंकाशां द्विभुजां मृगलोचनाम्**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनां ।
शुक्लाम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषिताम् ॥
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां राकिनीं मंत्रसिद्धये ॥

लाकिनी-

सिन्दूरवर्णसंकाशां द्विभुजां खञ्जनेक्षणां
सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितालोचनाम् ।
शुक्लाम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषितां,
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां लाकिनीं मंत्रसिद्धये ॥

काकिनी-

यवयावाकृतिसंकाशां द्विभुजां खञ्जनेक्षणां
सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम् ।
शुक्लाम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषितां,
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां काकिनीं मंत्रसिद्धये ॥

शाकिनी-

शुक्लज्योतिःप्रतीकाशां द्विभुजां मृगलोचनां,
सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चतलोचनाम् ।
कृष्णाम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषितां,
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां शाकिनीं मंत्रसिद्धये ।

हाकिनी-

शुक्लकृणारुणाभासां द्विभुजां लोललोचनां,
भ्रमद्भ्रमरसंकाशां कुटिलालककुन्तलाम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां शुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीं
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां हाकिनीं मंत्रसिद्धये ॥

चक्रों में स्थित इन शक्तियों के आशीर्वाद के बिना साधना में सिद्धि का मिलना दुर्लभ है।

## षट्चक्रों की उपासना

**मूलाधार-** इस चक्र में वँ शँ षँ सँ इन चार वर्णों का न्यास करना चाहिए । इसमें महानटेश्वर एवं लास्येश्वरी अम्बा के ध्यान एवं पूजन का विधान है।

**ध्यान-** तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया,



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम् ।
उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया,
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् ।।

इन सभी चक्रों के ऊपर सहस्रार में अम्बा के चरणारविन्द सुशोभित है। ये चरणकमल रक्त एवं शुक्लवर्णों से युक्त हैं। इन चक्रों की उपासना के अनन्तर सहस्रार में प्रवेश करने के लिए दो मंत्र है-

**महाश्रीचक्रनगरसाम्राज्ञी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः स्वाहा।**

**एवं, महाश्रीचक्रनगरसम्राटश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः स्वाहा ।।**

इस प्रकार चक्रों की साधना करने से साधक जितेन्द्रिय, धन धान्य, आयु, आरोग्य, एवं वैदुष्य आदि को प्राप्त करके जगदम्बा के सायुज्य को प्राप्त करता है।

आनन्दगिरीया टीका में आज्ञाचक्र की उपासना के लिए परमेश्वर एवं परमेश्वरी की बीज ''स्ह्स्रौँ ऐ फ्रेँ '' विशुद्धि के लिए ''ह्सफ्रेँ ऐँ कुब्जिके म्ह्स्रौँ ऐँ फ्रेँ '' तथा अनाहत की साधना के लिए ''हंसद्वन्द्वकुब्जिकायै विच्चे नमः '' मंत्रों का निर्देश है। स्वाधिष्ठान मणिपूर एवं चक्रों की उपासना के लिए इन्होंने 'नवाक्षरी विद्या' का उद्धार किया है। किन्तु इसको प्रकाशित नहीं किया है। यह गुरुगम्य है। कुछ टीकाओं में रश्मियों के नामों में थोड़ा बहुत अन्तर भी मिलता है।

**रश्मियों का महत्व-** आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, एवम् आज्ञाचक्र सम्मिलित रूप में श्रीचक्र है। जिस प्रकार श्रीचक्र सोम, सूर्य, एवम् अनल रूप में त्रिखण्ड में विभक्त है, उसी प्रकार आधारादि चक्र भी तीन खण्डों में विभक्त है। इसमें मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान एक खण्ड है। इसके ठीक ऊपर अग्नि का स्थान है। यहाँ स्वाधिष्ठान का अर्थ प्रचलित परंपरा के अनुसार समझना चाहिए । इस अग्निस्थान में रुद्रग्रन्थि है। मणिपूर एवम् अनाहत द्वितीय खण्ड है। इसके ऊपर सूर्य का स्थान है। इसको विष्णुग्रन्थि कहते हैं। मणिपूर का अर्थ यहाँ भी प्रसिद्ध परंपरा के अनुसार है। विशुद्धि एवम् आज्ञाचक्र तृतीयखण्ड है। इसके ऊपर चन्द्रस्थान है। इसमें ब्रह्मग्रन्थि है। सोमसूर्य एव अनलात्मक त्रिखण्ड श्रीचक्र का कथन कुण्डलिनी के अवरोह क्रम के अनुरोध से किया गया है। उपर्युक्त वर्णन आरोह क्रम के अनुरोध से है। इसमें प्रथम खण्ड के ऊपर स्थित वह्नि प्रथमखण्ड को व्याप्त करती है। द्वितीयखण्ड के ऊपर स्थित सूर्य अपनी किरणों से द्वितीयखण्ड को व्याप्त करते हैं। तृतीयखण्ड के ऊपर स्थित चन्द्र अपनी कलाओं से तृतीयखण्ड को व्याप्त करते है।

पृथ्वी स्थानीय आधार चक्र मे वह्नि की 56 किरणें,तथा जलस्थानीय मणिपूर में 52 रश्मियाँ साधना से प्रवेश करती हैं। इस प्रकार वह्नि की एक सौ आठ किरणें हैं। अग्निस्थानीय स्वाधिष्ठान में सूर्य की 62 किरणें तथा वायुस्थानीय अनाहत में 54 किरणें प्रवेश करती हैं। इस प्रकार सूर्य की 116 किरणें हैं। सूर्य एवम् अग्नि, वस्तुतः एक हैं। अग्नि का सूर्य में अन्तर्भाव है। सूर्य की किरणें मणिपूर को छोड़कर स्वाधिष्ठान में प्रवेश करती हैं। इस प्रकार स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर सूर्य एवम् अग्निस्थानीय हैं। अतः अग्नि के स्थान में सूर्य का प्रवेश तथा सूर्य के स्थान में अग्नि का प्रवेश सुलभ है। आकाश स्थानीय विशुद्धि चक्र मे चन्द्र की 62 किरणें तथा मनस् स्थानीय आज्ञाचक्र में 64 किरणें प्रवेश करती हैं। इस प्रकार चन्द्र की 136 किरणें हैं। भैरवयामल में यह तथ्य प्रकाशित है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पिण्डाण्ड देह एवं ब्रह्माण्ड को सोम, सूर्य तथा अग्नि की किरणें आवृत किए हुए है। पिण्डाण्ड एवं ब्रह्माण्ड के एक होने से पिण्डाण्ड की आवृति तथा ब्रह्माण्ड की आवृति एक ही बात हुई। पिण्डाण्ड सें अतीत सहस्रार ज्योत्स्नमय लोक है। यहाँ चन्द्र नित्य



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कला से सुशोभित है। आज्ञाचक्र के ऊपर चन्द्रकला का स्थान मात्र है। यह चन्द्र का स्थान नहीं है। कलाओं का शुक्ल एवं कृष्णपक्ष में वृद्धि एवं क्षय होता है। जो प्रतिपदादि तिथियों के रूप में है। सहस्रकमलस्थ चन्द्र का वृद्धिक्षय नहीं होता। यहाँ षोडशी कला है जो प्रतिपदादि तिथियों की प्रवर्तिका है।

श्रीविद्या को पञ्चदशतिथियों से संपत्र चन्द्रकला विद्या कहते है। तीन सौ साठ किरणें संवत्सर की हेतु हैं। कालशक्त्यात्मक संवत्सर प्रजापतिस्वरूप है। प्रजापति जगत् के कर्त्ता हैं। इस प्रकार रश्मियाँ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय की कारक है। इसी प्रकार अनन्त कोटि पिण्डाण्ड एवं ब्रह्माण्ड में तीन सौ साठ रश्मियाँ है जो उनकी उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करती रहती है। इस प्रकार रश्मियाँ अनन्त हैं।— यह सिद्ध हुआ। ये रश्मियाँ भगवती के पादारविन्द से उत्पत्र होकर सूर्य, चन्द्र एवम् अग्नि से संपृक्त होकर लोकों का समस्त कृत्य संपन्न करती है। अतः भगवती के पादारविन्द से उद्भूत अनन्त किरणों में से कुछ रश्मियों को लेकर सूर्य, चन्द्र एवम् अग्नि अम्बा के आशीर्वाद से प्राप्त जगत्प्रकाशन सामर्थ्य से लोकों को प्रकाशित करते है। अतः सभी लोकों से अतीत चन्द्रकला चक्र श्रीचक्र है। इसको वैन्दवस्थान करते है । इसमें भगवती के चरणादविन्द शोभायमान हैं। इसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित है। **तमेव भान्तन्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।** (कठ0 5.16) भैरवयामल में यह तथ्य बहुत सुन्दर रूप में प्रतिपादित हुआ है।

**रश्मियों की उत्पत्ति-** तंत्र दो प्रकार का है।पूर्वतंत्र एवम् उत्तरतंत्र। पूर्वतंत्र शक्ति प्रधान है और उत्तरतंत्र शिवप्रधान। जिस तंत्र में शक्ति प्रधान रूप से उपास्या है उसे शाक्तसम्प्रदाय तथा जिसमें शिव की प्रधानता है उसे शैव सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। शांभव मत में शिव –शक्ति के तेजः समूह से उत्पत्र आवरण देवता को 'रश्मि' कहते है। शांभव तंत्र षडन्वयात्मक है। ये षडन्वय है- मानस, नाभस, वायव्य, तैजस, आप्य, एवं पार्थिव। सकल प्रपञ्चों के साक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुण शिव की विश्वोत्पादनलीला से संपत्र विशेषशक्ति से 'परा' नामक शक्ति उत्पत्र होती है। यह ब्रह्मरन्ध्रादिभ्रूमध्यान्त को व्याप्त करके मनस् की अधिष्ठात्री हैं। इसको 'मज्जाधिदेवता' कहा गया है। इससे इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कुण्डलिनी, एवं मातृका रूप देवताओं की उत्पत्ति होती है। यह नभस् , वायु, तेजस, जल एवं भूमि स्थानीय विशुद्धि, अनाहत, स्वाधिष्ठान मणिपूर एवं मूलाधारों में सुशोभित होती है। इन चक्रों के स्थान कण्ठ , हृदय, नाभि, लिङ्ग, एवं गुदोर्ध्व देश है। ये सभी त्वगस्क मांस मेदस् एवम् अस्थि के देवता है। इन्हीं से यह सचराचर विश्व समुज्जृम्भित है।

कुब्जिका तंत्र में यह प्रक्रिया अच्छी तरह बतायी गयी है। परमार्थशरीरी निष्प्रपञ्च शिव के चिदुल्लास से परा उत्पत्र होती है जो इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कुण्डलिनी, एवं मातृका से अभिन्न है। दूसरे शब्दों में यही उपर्युक्त पाँच रूपों को धारण करती है। इसकी दो बहनें है कुण्डलिनी एवं मातृका । इन्हीं से समस्त रश्मिप्रपञ्च प्रादुर्भूत है। पार्थिवरश्मियाँ 'पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, अन्तः करणचतुष्टय मनस्-बुद्धि-चित्त एवम् अहंकार , काल, प्रकृति, पुरुष, एवं महत्तत्व रूप में अट्ठाईस है। ये शिव-शक्ति संबंध भेद से द्विगुणित होकर 56 हो जाती है।

जलीय रश्मियाँ 26 हैं। पञ्चभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ इन दोनों के दस विषय तथा मनस्-ये शैव-शाक्त भेद से द्विगुणित होकर 52 हो जाती है। तैजस तत्त्व 31 है। पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, अपने विषयों सहित ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कमेन्द्रियाँ तथा मनस् । ये भी शिव शक्ति विभाग से 62 हो जाते ।

वायव्य तत्त्व सत्ताईस है। उपर्युक्त पार्थिव तत्त्वों में से इसमें केवल महत्त्व नहीं रहता। शिव-शक्ति के भेद से ये भी 54 हो जाते है। आकाशीय तत्त्व 36 है। शिव-शक्ति सदाशिव ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मनस् ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, शब्दरूपरसगन्धस्पर्श, एवं पञ्चमहाभूत । ये शिव-शक्ति भेद से 62 प्रकार की हो जाती है। मानसतत्त्व 32 हैं। इसमें परा, पश्यन्ती, मध्यमा, एवं वैखरी, भेद से परा चार प्रकार की



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। कर्तुं कारयितुमुपकर्तुं प्रतिकर्तुमुदासितुम इन पाँच भेदों वाली इच्छा पाँच प्रकार की है। ज्ञान सालम्ब एवं निरालम्ब भेद से प्रधानतः दो प्रकार का है। सालम्ब ज्ञान ज्ञातृज्ञेय एवं ज्ञप्ति रूप से तीन प्रकार का है। निरालम्ब ज्ञान त्वम् अहम् त्वदीयम् एवं मदीयम् भेद से चार प्रकार का है। इस प्रकार तीन प्रकार का सालम्ब एवं एक प्रकार का निरालम्ब ज्ञान मिलकर चार प्रकार की ज्ञानशक्ति हुई। निरालम्बज्ञान के भेदों को छोड़कर इसका समाहार बुद्धि से ग्रहण किया गया है। क्रिया सात प्रकार की है-इष्ट ,पूर्त, स्वाध्याय, जप, पूजा, तप एवं दान। कुण्डलिनी भूमिका भेद से चार प्रकार की है-उन्नय, लय, प्रत्यावृत्ति,एवं विश्रान्ति। मातृका वर्गाष्टक भेद से आठ प्रकार की है। ये आठों वर्ग हैं स्वर, स्पर्श, अन्तःस्थ, ऊष्मा, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, एवं विसर्ग। ये सभी मिलकर शिव-शक्तिभेद से 64 प्रकार की है। इस प्रकार सभी रश्मियाँ मिलकर 360 प्रकार की है।

खुब्जिका तंत्र में इच्छा को कण्ठस्थान में रहने वाली व्योमपति तथा 36 तत्त्वों की नायिका कहा गया है। ज्ञाना अनाहत में रहने वाली 26 रश्मियों की स्वामिनी तथा वायु की अधीश्वरी है। क्रिया स्वाधिष्ठान में रहने वाली 31 रश्मियों की स्वामिनी, तथा वह्न्श्वरी है। क्रिया से व्यक्त होने वाली कुण्डलिनी मणिपूर में रहती है। यह 27 रश्मियों की स्वामिनी तथा सलिल नायिका कही गयी है। कुण्डलिनी से उत्पन्न मातृका मूलाधार में रहती है। यह 28 रश्मियों की स्वामिनी तथा क्षिति की अधीश्वरी है। इन रश्मियों के स्मरण मात्र से जीवन्मुक्ति हो जाती है। इनके स्मरण एवं पूजन से पापों का नाश, होता है। साधक लक्ष्मीवान् एवं जीवन्मुक्त होकर रश्मियों के समूह में निवास करता है।" **एवं रश्मिक्रमं कुर्वन् साधको विजितेन्द्रियः। धनधान्यायुरारोग्यं पाण्डित्यादिपदं व्रजेत् ।**

इन षट्चक्रों की उपासना में चक्रावरणदेवतओं के पूजनभूत अन्तर्याग का कथन है। इससे भी पहले मन्त्रावरणदेवतापूजन रूप अन्तर्याग का पृथग् उल्लेख है। इसका विवेचन इस प्रकार मिलता है-

**मूलाधार-** कँ कल्पेश्वराय नमः । अँ अनुगम्यम्बायै नमः । अँ अनुग्रहेश्वरनाथाय नमः । इँ इदङ्गमदनाथाय नमः। ईँ ईड्यम्बायै नमः ।

**स्वाधिष्ठान-** ललिताम्बायै नमः । हँ हतिगनाथाय नमः । रँ रेचकनाथाय नमः । इँ इम्बाभ्मायै नमः । मँ महः पितृनाथाय नमः ।

**मणिपूर-** हँ हरिण्यम्बायै नमः । अँ अन्तःकरणनाथाय नमः ।सँ सारसाम्बायै नमः । हँ हरनाथाय नमः । रँ रतिनाथाय नमः ।

**आज्ञाचक्र-** ईँ इड्येतरनाथाय नमः । कँ कनकदाभ्रनाथाय नमः । मँ मदनास्वादननाथाय नमः । सँ सहादनाथाय नमः । अँ अवलम्बनाथाय नमः । अँ अम्बुगणनाथाय नमः ।

**विशुद्धि-** लँ लभरेप्पुनाथाय नमः । अँ अवकायानाथाय नमः । हँ हङ्गनाथाय नमः । रँ रटछर्दिनाथाय नमः ।इँ इतिहर्यम्बायै नमः । मँ महम्बायै नमः ।

बह्मरन्ध्र के ऊपर कुलस्थान मे सभी तत्त्वों एवं कमलों की भवना करके **'समस्तशक्तितत्त्वनाथायै नमः। श्रीललितामहाभटटारिकायै, नमः।** इन मंत्रों से पूजन करना चाहिए। इसमें चक्रों के क्रम में परिवर्तन तथा अनाहत का अनुल्लेख मिलता है। अनाहत की उपासना ऊँ हंसः सोऽहं स्वाहा तथा सोऽहं हंस स्वाहा मंत्रों से करना चाहिए।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदाध्ययन–विधि एवं महत्त्व

डॉ. अरुण कुमार मिश्र*

वेदाध्ययनं हि–गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणपूर्वमित्यध्ययनलक्षणात् गुर्वनुक्रमाद् गृह्यमाणो वेदवर्णराशिः साङ्गत्वाय अञ्च न शिक्षाशासनमपेक्षते। इसी क्रम में श्लोकवर्तिक में आया है–

**वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।**
**वेदाध्ययनं सामान्या दधुर्नाध्ययनं यथा।।[1]**

वेदाध्ययन के संबंध में याज्ञवल्क्य–शिक्षा में आया है।

**हस्तहीनं तु योऽधीते स्वर–वर्णविवर्जितम् ।**
**ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति।।[2]**
**ज्ञातस्व तथैवार्थो वेदानां कर्मसिद्धये।**
**पठन् मात्रापपाठात्तु पङ्के गौरिव सीदति।।[3]**

वेदाध्ययन में उदात्तानुदात्तस्वरितादि बोधक हस्तसंचालन का बड़ा ही महत्त्व है, इसके बिना वेदपाठ सार्थक नहीं होता। इसके संबंध में वैदिक विद्वानों ने कहा है कि जो वैदिक मन्त्र को हस्तसंचालन के बिना पढ़ता है, उसके वेद संबन्धी मन्त्र वैसे ही निष्फल है जैसे बिना लवण , जीरा, मसाला आदि से रहित व्यञ्जन स्वादिष्ट नहीं होता–

**हस्तहीनं तु योऽधीते मन्त्रं वेदविदो विदुः।**
**न साधयेद्याजुषाणि भुक्तमव्यञ्जनं यथा।।[4]**

हस्तस्वर की प्रशंसा मे आचार्य कहते हैं–

**हस्तभ्रष्टः स्वरभ्रष्टो न वेदफलमश्नुते।।**

वेदाध्ययन अथवा विद्याध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की स्वभावतः क्षीणबुद्धि शिष्य की मेधाशक्ति के उत्पादन के लिए उसे क्या खाना चाहिए, इस प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि–

**त्रिफलां लवणाक्तां वै भक्षयेच्छिष्यकः सदा।**
**क्षीणमेंधाजनन्येषां स्वरवर्णकरी तथा।।[5]**

अर्थात् सैन्धव नमक से युक्त त्रिफला (हरड़, बेहड़ा और ऑवला, को वेदाध्येता शीतल जल के साथ

---

*प्राध्यापक, वेद–विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान श्री रणवीर परिसर, जम्मू

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सदा भक्षण करें। यह अमृत त्रिफला नष्ट बुद्धि को समाप्त कर मेधा शक्ति को उत्पन्न करती है। तथा इतना ही नहीं यह स्वर तथा वर्ण का सुस्पष्ट उच्चारण कराने वाली है। अथातस्त्रैस्वर्यलक्षणं व्याख्यास्यामः[6] उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च तथैव तत् । वेदाध्ययन में स्वर और वर्ण की विशेष प्रधानता मानी गयी है। इस क्रम में स्वर के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन भेद हैं, आनुषंगिक रूप से अनेक लक्षण, में स्वरों के आरोहावरोह से ये तीन भेद होते हैं। जैसा कि उदात्त में स्वारारोह को ऊपर ले जाना, उसे क्रम करके अनुदात्त में नीचे ले जाना तथा स्वरित में सम स्वर का रहना ही कहा गया है। स्वरों के छन्दो विचार के प्रसंग में आचार्यों का मत है कि उदात्त स्वर का गायत्रीछन्द है, जो कि वेदो में अत्यन्त प्रसिद्ध है तथा गीता में इसे भगवत्स्वरूप माना गया है। अनुदात्त स्वर का छन्द त्रैष्टुभ या त्रिष्टुप् छन्द है और स्वरित का जगती छन्द है। इसी प्रकार गान्धर्ववेद या सामवेद जो कि गान प्रधान है, अतः सामवेद में जो षड्जादि सात स्वर कहे गये हैं वे ही यजुर्वेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित नाम से तीन स्वर माने गये हैं। इन तीनों में ही षड्जादिसप्त स्वर अन्तर्भुक्त हैं। इसी क्रम में सामवेद के सात स्वरों का उदात्तादि तीन स्वरों में किस प्रकार विभाजन हुआ है, इस विषय में मुनिवर याज्ञवल्क्य कहते हैं कि–

उच्चौ निषादगान्धारौ। नीचावृषभधैवतौ।
शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्ज–मध्यम पञ्चमाः।।[7]

इसके पश्चात् मूल विषय पर आते हैं कि सस्वर वेदपाठ कैसे प्रारंभ किया जाय इस विषय में आचार्यगण कहते हैं कि–

हस्तौ सुसंयतौ धार्यौ जानुनोरुपरि स्थितौ।
गुरोरनुमतिं कुर्यात् पठन्नाऽन्यमतिर्भवेत्।।[8]
सुप्रसन्नमना भूत्वा किञ्चिन्नम्रस्त्वधोमुखः ।
निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्त्तयेत् ।।[9]
प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम्।
सावित्रीं चानुपूर्वेण ततोवेदान् समारभेत्।।[10]

यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है– प्रणव अर्थात् ॐ के उच्चारण के पूर्व शास्त्र सम्मत 'हरिः'–इस पद का उच्चारण अवश्य करना चाहिए। क्योंकि कहा गया है कि वेद में रामायण में, पुराणों में तथा महाभारत में पारायण के समय आदि, मध्य तथा अन्त में 'हरि' शब्द अवश्य जोड़कर पाठ करना चाहिए। अतएव वैदिक विद्वान् 'हरिः ॐ' इतना उच्चारण के पश्चात् ही वेद का कोई मन्त्र उच्चरित करते

---

1. श्लोकवर्तिक (वा. 366), 2. याज्ञवल्क्य शिक्षा (41)
3. तदेव– 42, 4. तदेव– 39
7. याज्ञवल्क्य शिक्षा (श्लोक. 38)
8. तदेव (श्लोक 1)
9. याज्ञवल्क्य शिक्षा, श्लो. 21
10. तदेव श्लो. 22



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। वेदाध्ययन के प्रारम्भ के समय में वर्णों का उच्चारण किस प्रकार हो इसके विषय में याज्ञवलक्य कहते हैं–

कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य चेष्टां दृष्टिं दृढंमनः।

स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः।।[11]

अर्थात् जिस तरह कछुआ अपने हाथ–पैर आदि अंगों को समेट लेता है, उसी प्रकार स्वस्थचित्त, भयरहित, शान्त–दान्त होकर वेदाभ्यासार्थी अपनी चेष्टा, दृष्टि और मन को दृढ़ता से एकाग्र बनाकर स्वस्थचित्त हो वेद के अक्षरों को उच्चारित करें क्योंकि वेद का अपपाठ नहीं होना चाहिए, अपपाठ का तात्पर्य है अशुद्ध पाठ से। यह बहुधा वर्णों के उच्चारण तथा स्वरों के विनियोग एवं गलत हस्त संचालन से होता है। इन दोषों को दूर करने के लिए आचार्य शिष्य को उपदेश देते हैं कि फलप्राप्ति का कारण मात्रा आदि का ज्ञान होता है और उसका आत्मस्वरूप अर्थज्ञान है। जब तक पाठक को उस शब्द का पदार्थज्ञान नहीं होगा तब तक वास्तविक फल का मिलना असंभव है। अतः अर्थज्ञान हेतु उसे वेदांग का अध्ययन भी आवश्यक है। वेदांग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, ज्योतिष और छन्द होते हैं। इसी क्रम में हस्तधारण में जो आकृतिदोष उत्पन्न होते हैं, उनके प्रति सतर्क करते हुए आचार्य कहते हैं कि वेद के अध्येता को पाठ करते समय मुख में स्थित वर्ण के साथ हाथ को तदनुसार (उच्चारण के समय में, यथा वाणी तथा पाणी अर्थात् जैसा उच्चारण उसी प्रकार हस्तस्वर भी हो।

हस्तस्वर के विषय में सात दोष आचार्यों ने बताये हैं वे इस प्रकार है–

चुलुर्नौका स्फुटो दण्डी स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः।
एते वै हस्तदोषाः स्युः परशुश्चैव सप्रमः।।[12]

इसी प्रकार मुखोच्चारण के संबंध में भी आचार्य पाणिनी जी कहते हैं–

गीती शिघ्री शिरःकम्पी यथालिरिवत्पाठकः।
अल्पकण्ठोऽनवहितः षडेते पाठकाधमाः।।[13]

इसी तरह किस प्रकार मन्त्रों का पाठ किस गति में हो आचार्य याज्ञवल्क्य कहते हैं–

अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।
शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्यात् वृत्तिं विलम्बिताम् ।।[14]

अनेन प्रकारेण यदि वेदाध्ययनं स्यात् तथा हि इंद विशिष्टं फलमित्याह–

संहिता नयते सूर्यं पदं च शशिनः पदम्।
क्रमश्च नयते सूक्ष्मं यत् तत् पदमनामयम्।।[15]

---

11. याज्ञवल्क्यशिक्षा श्लो. 23
12. याज्ञवल्क्यशिक्षा (श्लोक 43)
13. पणिनीशिक्षा श्लो. 32
14. याज्ञवल्क्यशिक्षा (श्लोक 49)
15. तदेव (श्लोक 32)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आशय यह है कि श्रीमद्भगद्गीता में श्रीकृष्ण ने जो कहा है कि–

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगति।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्तुमिहार्हसि।।[16]

अर्थात्, जो भी कर्मकर्ता शास्त्रवचनानुसार कार्य न करके मनोनुसार अथवा सुविधानुसार करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त करता है, न तो सुख और न ही परमगति को। अत: शास्त्रप्रमाण से कार्य को ज्ञात करके शास्त्रवचनानुसार ही कर्म को करना चाहिए।

******

16. श्रीमद्भगवद्गीता–16/23–24



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदों में उल्लिखित नदियाँ

*प्रो. अरविंद पी. पटेल

आर्य लोग नदियों के बड़े भक्त थे। वे नदियों के तटों पर रहना बहुत पसन्द करते थे। ऋग्वेद में अनेकानेक नदियों का विवरण आया है। अनेक नदियों के नाम तो ज्यों के त्यों हैं, परन्तु कुछ के नाम बदल गये हैं। आर्य लोग ज्यों–ज्यों आगे बढ़ते गये, त्यों–त्यों उन्हें नयी नदियाँ और नये–नये देश मिलते गये। औपनिवेशिकों की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार नयी नदियों और नये देशों को वे ही नाम देते गये, जो आर्यों के पुराने देशों और नदियों के नाम थे।

नदियों का प्रवाह भी एक सा नहीं रहता। ईसा की पूर्व शदाब्दी में वक्षु नदी कैस्पियन सागर में गिरती थी, परन्तु इन दिनों अराल सागर में पहुंचती थी। अरबों की भारत पर चढ़ाई के समय हकरा वा वाहिन्दा नाम की एक बड़ी नदी पंजाब के दक्षिण में बहती थी, परन्तु इन दिनों अपने पुराने सूखे हुए मार्गों को लेकर यों ही पड़ी है। दरभंगा जिले की कमला नदी की धारा बदली है। जिस समय सिंध का मोहन जोदडो शहर बना था, उस समय उसके पास ही सिन्धु नदी बहती थी, परन्तु अब वह कई मील दूर हट गई है। सभी देशों की जलवायु धीरे–धीरे बदलती है, जिससे वर्षों में परिवर्तन होता है। इस कारण भी नदियों की धारा बदल जाती है। इसलिये यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में जो नदी स्थान निर्दिष्ट है, वे ही अब तक हैं और नदियों के नाम रूप भी वे ही हैं।

ऋग्वेद में **'सप्त सिन्धवः'** और **'सप्त श्रवतः'** शब्द कई बार आये हैं, जिनका अर्थ है सात नदियाँ। परन्तु पंजाब में या कहीं भी ऐसी सात नदियों के नाम नहीं पाये जाते। दक्षिण भारत की नर्मदा, गोदावरी और कावेरी नदियों के नाम वैदिक साहित्य में नहीं आये हैं। इसलिये जल–शुद्धिवाले श्लोक की सात नदियाँ यहाँ वर्णित नहीं है। फलतः अनुमान होता है कि सब नदी के अर्थ में ही सात नदियों का प्रयोग हुआ है। हो सकता है कि आर्यों के आदि निवास के पास नदियां रही हों और सब नदी के अर्थ में सात नदी कहने का उन्हें अभ्यास हो गया हो।

ऋग्वेद के 10 म. मण्डल के 75 वें सूक्त का नाम 'नदीसूक्त' है। इसमें जगती छन्द में 9 मन्त्र हैं और इसके ऋषि है प्रियमेध–पुत्र सिन्धुक्षित्। इस सूक्त में अनेक नदियों के नाम पाये जाते है। इसके पांचवे मन्त्र में सिन्धु के पूर्वी तट की नदियों के नाम क्रमशः आये हैं।

---

*टी. एम. शाह महिला आर्ट्स कॉलेज, ईडर (सा.कां.)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इमे मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽर्जीकीये श्रष्णुह्या सुषोमया।।

और छठे मन्त्र में सिन्धु तथा उसकी पश्चिम सीमावली नदियों के नाम हैं।

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्वा त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे।।

वैदिक सहित्य में इन नदियों के नाम पाये जाते है–

अंशुमति, अंञ्जसी, अनितभा, असिक्नी, आपया, आर्जीकीया, कुभाप कुलिशी, क्रुमु, गंगा, गोमती, जह्नवी, तष्टामा, दषव्दती, परुष्णी,मरुद्वधा, मेहत्नु, यमुना, यव्यावती, रथस्या, रसा, वरणावती, वितस्ता, विपाश्, विबाली, वीरपत्नी, शिफा, शुतुद्री, श्वेत्या, सदानीरा, सरयू वा सरयु, सरस्वती, सिन्धु, सुदामा, सुवास्तु, सुषोमा, सुसर्त्तु और हरियूपीया, अब इनका विवरण देखना चाहिये।

1. **अंशुमती**– ऋग्वेद (8.95.14) में इसका नाम आया है। इसके तट पर महाशक्तिशाली कृष्ण नाम का असुर रहता था। वह इन्द्र का परम शत्रु था। उसको युद्ध में इन्द्र ने मार दिया था, जिसका उल्लेख इसके अगले 15वें मन्त्र में किया गया है। अंशुमति कहाँ बहती थी, इसका ठीक पता नहीं चलता।

2. **अञ्जसी**– ऋग्वेद (1.104.4) में कुलिसी और वीरपत्नी नदियों के नामों के साथ इसका नाम आया है। इसके तट पर कुयव नाम का असुर रहता था। कदाचित् यह पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की नदी है।

3. **अनितभा**– ऋग्वेद (5.53.9) में रसा, कुभा, सरस्वती और सरयु के साथ अनितभा का नाम आया है। यह सिन्धु की कोई पश्चिमी सहायक नदी है।

4. **असिक्नी**– ऋग्वेद (10.75.5) में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री आदि के साथ ही इसका नाम आया है। यास्क के मत से (निरुक्त 9.26) यह वर्तमान चिनाव वा चन्द्रभागा नदी है। ऋग्वेद के 8.28.25 में सिन्धु और समुद्रों के साथ इसका उल्लेख है। वहां लिखा है कि इसके तट पर रोगहारी बड़ी–बड़ी बूटियां होती थी। ग्रीक (यूनानी) इस नदी को अकेसिनेस् कहते थे।

5. **आर्जीकीया**– ऋग्वेद (10.75.5) में 9 नदियों के नामों के साथ इसका नाम आया है। यास्क के मत से (निरुक्त 9.26) यह विपाश् (व्यास) नदी का ही एक नाम है। कहा जाता है कि यास्क के पहले इसका नाम उरुज्जिरा था।

6. **कुभा**– सिन्धु की महत्त्वपूर्ण सहायक नदी है जिसका उल्लेख ऊपर के नदी सूक्त वाले मन्त्र में तथा ऋग्वेद (5.52.9) में किया गया है।

मा वो रसानितभा कुभा क्रमु र्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्य स्मे इत् सुम्नमस्तु वः।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

7. **गंगा–** ऋग्वेद (10.75.5.) में गंगा का, कई नदियों के साथ नाम आया है। 6.45.31 में "उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः" शब्द आये है। इनका तात्पर्य यह है कि गंगा के उँचे स्थान पर बृबु अवस्थित हुए। बृबु शिल्पकलाचार्य थे। जैमिनीय–ब्राह्मण (3.183), शतपथ–ब्राह्मण (13.5.4.11) और तैत्तिरीय आरण्यक (2.10) में भी गंगा का उल्लेख है।

8. **गोमती–** अनेक नदियों के साथ 10.75.6 में गोमती का नाम आया है। ऋग्वेद 5.61.19 में भी इसका उल्लेख है। राजा रथवीति इसके तट पर रहते थे। श्यावाश्य ऋषि के पिता अर्चनाना ने रथवीति के लिये सोमयाग कराया था और इन्हीं राजा की कन्या से अपना विवाह भी किया था। यह सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी है। अब यह गोमती नहीं रही। इसका नाम गोमल है और यह अफगानिस्तान की नदी है।

9. **जाह्नवी :** ऋग्वेद (3.58.6) में जाह्नवी शब्द आया है। सायण ने इसका अर्थ जह्नुकुलजा किया है। कुछ के मत से यह भी कोई नदी हैं यह गंगा तो नहीं है। सिन्धु के पश्चिम, पांचकोटा के पूर्व और बुनार प्रदेश के उत्तर में, जाह्नवी प्रदेश है। इसे उक्त मन्त्र में पुराणामोकः (पुराना घर) भी कहा गया है। कदाचित जाह्नवी यही बहती थी। ठीक पता नहीं चलता

10. **दृषद्वतीः** ऋग्वेद (3.23.4) में आपया और सरस्वती के साथ इसका नाम आया है। कहा जाता है कि ऋग्वेद (10.53.8) में अश्मन्वती नदी का जो नाम आया है, वह इसी नदी का है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि राजपूताने की बालुका राशि में विलुप्त घघ्घर नदी का ही नाम दृषद्वती है। मनुस्मृति (2.7) में कहा गया है कि सरस्वती और दृषद्वती देव नदियां हैं इनके बीच देव निर्मित देश ब्रह्मावर्त है– **सरस्वती–दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।**

**तं देव–निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।।**

ताण्ड्यमहाब्राह्मण (25.10.14–15 और 25.13.2–4) में भी इसका उल्लेख है।

11. **परुष्णी–** ऋग्वेद (5.52.9, 7.18.8–6, 10.75.5) आदि में इसका उल्लेख है। शत्रुओं ने इसके तट को भ्रष्ट किया था। इन्द्र की कृपा से सुदास राजा ने इसके तट को ठीक किया था। पंजाब की इरावती वा वर्तमान में रावी का नाम परुष्णी है। निरुक्त (9.26) का भी यही मत है।

12. **मरुद्वधा–** ऋग्वेद (10.75.5) में इसका नाम चिनाव (असिक्नी) और झेलम (वितस्ता) के बीच अया है। इसलिये इसे चिनाब की पश्चिमवाली मरुवर्दन नाम की सहायक नदी माना जाता है। अरल स्टाइन का भी यही मत है।

13. **यमुना–** ऋग्वेद (5.52.17) 7.8.19 और 10.75.5 में इसका नाम आया है हापकिंस के मत से रावी का नाम यमुना है। कोई चिनाव को यमुना बताता है तो कोई झेलम को, परन्तु इन मतों का कोई भी आधार नहीं है.। यह वर्तमान यमुना ही है। अथर्व–संहिता (4.9.10), ऐतरेय–ब्राह्मण (8.23) शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11), ताण्ड्यमहाब्राह्मण (9.4.10.,25.10.23, 25.13.4.), जैमिनीय–ब्राह्मण (3. 283), आपस्तम्बीय एकाग्निकाण्ड (2.11.12) आदि में यमुना का विवरण आया है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

14. **यव्यावती–** ऋग्वेद के 6.27.6 में लिखा है कि यव्यावती के तटपर नरशिख असुर के एक सौ तीस पुत्र मारे गये थे। ताण्ड्यमहाब्राह्मण में भी इसका उल्लेख है (25.7.2)। ऋग्वेद के उक्त मन्त्र के पहले के 5वें मन्त्र में हरियूपिया नदी का नाम आया है। सायण के मत से यव्यावती और हरियूपिया एक ही नदी का नाम है। यह नदी कहां थी, इस बात का ठीक पता नहीं चलता। कदाचित् यह कोई पंजाब की नदी थी।

15. **रसा–** ऋग्वेद के 1.112.12, 5.53.9, 10.45.6 तथा जैमिनीय ब्राह्मण के 2.440 में इसका विवरण मिलता है। यह सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी मानी जाती है। पारसी लोग इसे रहा कहा करते थे। कुछ लोगों के मत से यह अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान के उत्तर में प्रवाहित होने वाली नदी है। इसे खुरासान की नदी भी कहा जाता है।

16. **वितस्ता–** ऋग्वेद (10.75.5) में अनेक नदियों के नामों के साथ–साथ इसका नाम आया है। काश्मीर में इसे अब तक ब्यथ कहा जाता हे। यूनानी इसका नाम हीदास्पेस रख गये हैं। यह वर्तमान फेम नदी है। इसे खुरासान की नदी भी कहा  जाता है। आश्चर्य है कि यास्क ने (9.26) इसका स्पष्ट परिचय नहीं दिया है।

17. **विपाश्–** ऋग्वेद के 4.30.11 में कहा गया है कि इन्द्र के द्वारा विचूर्णित उषा देवी का शकट विपाशा नदी के तटपर गिर पड़ा। 3.33 के 1म और 3य  मन्त्रों में सतलज (शुतुद्री) के साथ विपाश् का उल्लेख है। एक तरह से सारे 33 वें सूक्त में विपाश का वर्णन है। सायणाचार्य ने लिखा है कि राजा पिजवन के पुत्र सुदास के पुरोहित विश्वामित्र एक बार पैरोहित्य कर्म से बहुत सा धन लेकर व्यास (विपाश्) और सतलज के संगम स्थल पर पहुंचे। विश्वमित्र ने अगाध–गंभीर नदियों की प्रथम तीन मन्त्रों से स्तुति की। पीछे नदियों ने जल घटाकर उन्हें पार जाने की अनुमति दी। इस तरह सारे सूक्त में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक की भरमार है। गोपथ–ब्राह्मण (1.27) में भी इसका नाम आया है। यह वर्तमान व्यास नदी है। अरबों के भारत आक्रमण के समय यह नदी हकरा पहुंचती थी।

18. **सदानीरा–** शतपथ–ब्राह्मण (1.4.1.14) आदि में इसका उल्लेख है। शतपथ के विवरण से ज्ञात होता है कि कोसल और विदेह प्रदेशों की सीमा यही नदी थी। इसके वर्तमान नाम के सम्बन्ध में बड़ा विवाद है। जर्मन वेद ज्ञाता वेबर ने इसका नाम गण्डकी बताया है। परन्तु कदाचित् वर्तमान विदेह और कोसल वैद्रिक विदेह–कोसल से भिन्न है। इसलिये सम्भवतः सदानीरा गण्डकी नहीं हो सकती। कुछ लोगों के मत से सदानीरा का ही नाम करतोया है। परन्तु करतोया उत्तर बंगाल की नदी है और विदेह (दरभंगा जिला आदि) के पूर्व में हैं, पश्चिम में नहीं। इसलिये कोषकारों का यह लिखना ठीक नहीं कि करतोया और सदानीरा एक ही नदी का नाम है। इसके निश्चित स्थान का पता नहीं है।

19. **सरयू वा सरयु –** ऋग्वेद (4.30.18) में लिखा है कि सरयू नदी के पार में रहने वाले अर्ण और



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित्ररथ राजाओं का इन्द्र ने वध किया था। ऋग्वेद (5.53.9) में रसा, अनितभा, कुभा, क्रुमु, सिन्धु आदि के साथ भी सरयु (सरयू नहीं) का नाम आया है। इससे तो विदित होता है कि यह कोई पश्चिमी नदी है। इसी वेद के 10.64.9 में सिन्धु और सरस्वती के साथ सरयू का उल्लेख हैं पारसियों की अवस्ता में हरोयु नाम की एक नदी का नाम आया है। जो की वर्तमान हरिरुद् (या हरीरुद) नदी है। कुछ लोग कहते हैं कि सरयू और हरिरुद् एक ही हैं अनेक लोगों के मत से यह वर्तमान सरयू ही है। परन्तु ऋग्वेद में न तो गंगा से पूर्व किसी नदी का नाम ही है, न उन दिनों अवध तक आर्यों के आने का कदाचित् कोई प्रमाण ही मिलता है।

20. **सरस्वती**– ऋग्वेद के अनेकानेक स्थलों में सरस्वती का विवरण है। कम से कम 35 स्थानों में तो सरस्वती का स्पष्ट उल्लेख है। इसके तटपर कितने ही यज्ञ और युद्ध हुए थे। अनेक मन्त्रों में सरस्वती की बड़ी ही दिव्य स्तुति की गयी है। ऋग्वेद के 2.41.16 में सरस्वती को मातृगण नदियों और देवों में श्रेष्ठ कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि आर्यों की दृष्टि में गंगा से भी बढ़कर सरस्वती नदी थी। तैत्तिरीय–संहिता (7.2.1.4), अथर्व–संहिता (6.30.1) तैत्तिरीय–ब्राह्मण (2.4.8.7) मन्त्र–ब्राह्मण (2.1.16) ताण्ड्यमहाब्राह्मण (25.10.1 और 16), जैमिनीय–ब्राह्मण (2.397 और 3.120), ऐतरेय–ब्राह्मण (2.11) शांखायन–ब्राह्मण (12.3) और शतपथ–ब्राह्मण (1.4.1.14) आदि में भी सरस्वती की बड़ी महिमा गायी है। कुछ लोग कहते हैं कि कई मन्त्रों में सिन्धु के लिये ही सरस्वती शब्द आया है। परन्तु इस विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं है। मैकडानल और कीथ के मत में भी ऋग्वेद में सरस्वती शब्द सर्वत्र सरस्वती के लिये ही आया है। अनेक का मत है कि कुरुक्षेत्र की सरस्वती ही वैदिक सरस्वती है। यह इन दिनों पटियाला राज्य में विलुप्त हो चुकी है।

किन्तु पुराणवादियों के विश्वासानुसार सरस्वती पृथ्वी के भीतर ही भीतर आकर प्रयाग में गंगा और यमुना के साथ मिल गयी है। इन्हीं तीनों का नाम त्रिवेणी है। तांड्यमहाब्राह्मण में सरस्वती के लुप्त होनें के स्थान का और जैमिनीय–ब्राह्मण में पुनः बाहर निकलने के स्थान का उल्लेख है। पहले पहल क्षीण धारा में सरस्वती बहती थी, इस बात का भी उल्लेख जैमिनीय–ब्राह्मण में है। ऐतरेय–ब्राह्मण से विदित होता है कि सरस्वती से कुछ दूर पर मरुदेश था। इसलिये यह बात भी निराधार नहीं कि राजपूताने की मरुभूमि बीकानेर (विनशन) में सरस्वती विलुप्त हुई है। इसका उत्पत्ति–स्थान मीरपुर पर्वत माना गया है। सरस्वती के उत्पत्ति स्थान पर तुषार क्षेत्र था यही तुषार–क्षेत्र पसीज कर सरस्वती को पुष्ट करता था। इसी तुषार–क्षेत्र को ऋग्वेद में सरस्वान् कहा गया है। ऋग्वेद (3.23.4) में सरस्वती और दृषद्वती के बीच की भूमि को उत्तम स्थान कहा गया है। कुछ लोगों की धारणा है कि कभी सरस्वती सिन्धु के साथ मिलकर पश्चिमी समुद्र में गिरती थी। परन्तु ऋग्वेद में इसका कोई प्रमाण नहीं। हां, देवतावाची सरस्वती शब्द भी कहीं–कहीं अवश्य आया है। सरस्वती के लुप्त होने के दो स्थान–बीकानेर और पटियाला माने जाते हैं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

21. **सिन्धु**– ऋग्वेद के अनेक स्थानों में शब्द आया है अथर्ववेद (6.24.1, 7.45.1, 12,1,3 और 14.1.43), माध्यन्दिन संहिता (8.49.1) जैमिनीय–ब्राह्मण (3.237) आदि में भी सिन्धु शब्द आया है। सिन्धु शब्द कही समुद्र के लिये, कहीं नदी के लिये और कहीं खास नदी के लिये भी आया है। निसन्देह अधिकांश स्थानों में वर्तमान सिन्धु नदी ही वैदिक सिन्धु है। आर्य लोग सिन्धु के बड़े ही भक्त थे। अनेक स्थानों में सिन्धु का बड़ा विमल वर्णन किया गया है।

सिन्धु नदी को ईरानी लोग (पारसी) लोग हिन्दु कहते थे। कहते है कि इसलिये सिन्धु पार रहने वाले हिन्दू कहलाये और इस देश का नाम हिन्दुस्तान पड़ा। अमेरिका के लोग तो इस देश में रहने वाले हिन्दू, मुसलामन, ईसाई सबको हिन्दु कहते हैं। ग्रीक सिन्धु को इन्दस् कहते थे। इसी इन्दस् या इंडस् से इंडिया शब्द बना है।

सिन्धु के तट पर अच्छे घोड़े होते थे इसलिये संस्कृत में घोड़े का एक नाम सैन्धव हो गया। बृहदारण्यकोपनिषद् (2.4.12 और 4.5.13) में नमक के लिये भी सैन्धव शब्द आया हे। अथर्वसंहिता (19.3.82) में सैन्धव गुग्गुलू का नाम आया है।

सिन्धु के घोड़े बिक्री के लिये बाहर भेजे जाते थे। वहां सूती और ऊनी कपड़े भी होते थे। सिन्धु तटपर बकरों और भेड़ों के लोम से सुन्दर कपड़े, शाल और कम्बल तैयार किये जाते थे। हिमालय और बाहलीक ( बल्ख–बुखारा–हिरात) से सिन्धु प्रदेश में स्वर्ण, मणि, रत्न आदि बेचने के लिये लाये जाते थे। सिन्धु से मोती निकाले जाते थे। सिन्धु तटपर फूलों की अधिकता के कारण मधु (शहद) भी बहुत होता था। सिन्धु तटों पर समृद्ध जनपद थे, धनाधिपति और राजा महाराजा भी बहुत रहा करते थे।

22. **सुदामा**– ताण्ड़य–महाब्राह्मण (22.18.7) में एक सुदामन् (सुदामा) नदी का नाम आया है, जिसके तटपर एक यज्ञ का होना लिखा है। पता नही, यह कौन नदी थी।

23. **हरियूपीया**– ऋग्वेद (6.27.5) में इसका नाम आया है। कहा गया है कि इन्द्र ने चायमान राजा के अभ्यवर्ती नामक पुत्र धन देने के लिये वरशिख के पुत्रों और वरशिख के गोत्रोत्पन्न वृचीवान् के पुत्रों को मार डाला था। ऋग्वेद के जर्मन अनुवादक लुड़विग ने लिखा है कि हरियूपीया नगरी का नाम है। सायण के मत से यव्यावती और हरियूपीया एक ही नदी का नाम है। हिलेब्रांट्ड (हिलेब्रान्त) के मत से यह कुर्रम की सहायक नदी इर्याब या इलियाब है। कुछ लोग कहते है कि यह हिरात (अफगानिस्तान) की मरिरुद् नदी है। हापकिंस के मत से यह सरयू का नाम हैं। इस तरह यहां मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्न की उक्ति खूब चरितार्थ हो रही है।

इस प्रकार वैदिक सहित्य में पंजाब, कुरुक्षेत्र, सिन्धु, राजपूताना, अफगानिस्तान आदि की नदियों के नाम आये हैं। आर्य–संस्कृति के केन्द्र सिन्धु और सरस्वती के तट तथा कुरुक्षेत्र आदि थे। दक्षिण और पूर्व भारत का उल्लेख तो वैदिक साहित्य में नगण्य है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# महाकवि कालिदास की कृतियों में वनस्पत्यौषधियाँ

सकीना कुमारी सालवी*

'औषधि' शब्द 'ओष' पूर्वक 'धा' धातु (दुधाञ् धारणपोषणयोः) के योग से 'कि' प्रत्यय से निष्पन्न होता है।[1] अर्थात् 'ओष' को धारण करने के कारण 'औषधि' कहलाता है। 'ओष' से तात्पर्य यहाॅ 'रस' है और रस के माध्यम से ही आरोग्य का आधान होता है, इसलिये 'रस' को धारण करने वाला द्रव्य 'औषधि' कहलाता है– **ओषो नाम रसः सोऽस्यां धीयते यत्तदोषधिः। ओषादारोग्यमाधत्तेतस्मादोष धिरोषयः।**[2]

यास्काचार्य का कथन है कि "जो शरीरगत रोगों को नष्ट कर देती है, रोगी जिसे धारण करते हैं तथा जो त्रिदोष वात, पित्त एवं कफ को नष्ट कर देती है उसे औषधि कहते है।[3] सायणचार्य ने औषधि शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में करते हुए इसकी व्युत्पत्ति **"ओषः पाकः आसु धीयते इति औषधयः"**[4] की है। अर्थात् जिनके फल पकते हैं, उन्हें औषधि कहा है। आचार्य सुश्रुत ने रस एवं आहार का मूल स्रोत औषधि को ही माना है। वे कहते हैं कि –"आहार ही प्रणियों की उत्पत्ति, उनके बल, वर्ण तथा ओज का प्रधान कारण होता है। वह 'आहार' षट् रसाश्रयी एवं 'रस' द्रव्याश्रयी होते हैं। औषधि ही द्रव्य है, अतः औषधि ही मानवजीवनोत्पत्ति इत्यादि का मूल है। तैत्तिरीयोपनिषद्[6] में औषधि को अन्न एवं प्राणियों का आधारभूत कारण स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में औषधियों के सम्बन्ध में कहा है कि **"ये मानवसृष्टि से पूर्व"**[7] तथा मनुष्यों के लिए मातृवत् हितकारिणी[8] हैं। तत्कालीन समाज में ही औषधियों का जो संग्रह करता था उसे भिषग् (वैद्य) कहा जाता था। अथर्ववेद में औषधि के लिए 'भेषजीः' शब्द प्रयोग में लाया जाता था– **"ध्रवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः।"**[10]

सामान्यतया वनस्पति के दो भेद होते हैं– वनस्पति एवं वानस्पत्य। बड़े बृक्षों के लिए वनस्पति तो छोटे वृक्षों के लिए वानस्पत्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। औषधि के भेद भी दो प्रकार के होते है– औषधि एवं वीरूध्। वे पौधे जो छोटे होते है उनके लिए औषधि एवं लता शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसी प्रकार गुल्म आदि को वीरूध कहा गया है। अथर्व वेद में इन सभी प्रकारों का उल्लेख मिलता है– **"वनस्पतीन्वानस्पत्यानोषधीरूतवीरूध"**।[11] चरकसंहिता में भी ओदि्भद् द्रव्य के चार भेद बताए है– वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि एवं वीरूध। यहाँ पर इन सभी की कुछ भिन्न–भिन्न परिभाषा प्रस्तुत की

---

***शोधछात्रा धर्मागम विभाग,**
**संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। जिनमें फल दिखाई देता है, उन्हें वनस्पति, जिनके फल और फूल दोनों की प्रधानता होती है उन्हें वानस्पत्य, फल पक जाने पर जिनका अन्त हो जाए उन्हें 'औषधि' तथा जो लता के रूप में हो उसे 'वीरूध' कहा गया है।[12] आचार्य सुश्रुत ने द्रव्य और 'औषधि' में अभेद बताया ''द्रव्याणि पुनरोषधयः।'' पुनः इन्होंने 'द्रव्य' के स्थावर[13] एवं जंगम[14] दो भेद बताए है।[15] तत्पश्चात् स्थावर द्रव्यों में वनस्पति, वृक्ष, वीरूध तथा औषधि ये चार भेद कहे गये है।[16] जंगमद्रव्य के भी चार भेद किए है– जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भज।[17]

इस प्रकार औषधियों के सन्दर्भ में हम कह सकते है कि औषधियाँ पृथ्वी के ऊपर चाहे जहाँ कही पर भी उत्पन्न हों किन्तु इनसे मनुष्य की पीड़ा या दुःख दूर होता है। ये औषधियाँ माता के समान संरक्षण प्रदान कर प्राणि मात्र की रक्षा करती है।[18] मैं सम्प्रति यहाँ पर प्रस्तुत शोध लेख के द्वारा संक्षेप में महाकवि कालिदास की कृतियों में वर्णित पुष्प वनस्पति का वर्तमान आयुर्विज्ञान की दृष्टि से उपयोगिता प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हूँ–

(1) **आम्रकुसुम**– यह एक ऐसी पुष्प सम्पत्ति है जिसके प्रत्येक अंग का उपयोग मानव करता है। आम्रमंजरी वीर्यवर्धक, अग्निदीपक, रूचिवर्धक तथा कफ का नाश करने में प्रयुक्त होता है। इसके बीज

---

1 वामनशिवराम आप्टे कोश, पृ0– 231.

2 काश्यप खिल 3.27.

3 ओषधयः ओषद् धयन्तीति वा। ओषत्येना ध्यन्तीति वा। दोषं धयन्तीति वा।

4 अथर्व वेद 6.85.3 पर सायणभाष्य।

5 प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च, स षट्सु रसेष्वायत्तः, रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः, द्रव्याणि पुनरोषधयः। (सु0सू0–1.26)

6 ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरूषः। अन्नाद् भूतानि जायन्ते। जायन्त्यन्नेन वर्धन्ते अन्नभूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात् स वौषधमुच्यते। (त0उप0 द्वितीय अनुवाक)

7 ऋग्वेद–10.27.1

8 ओषधीरिति मातरस्द्वो देवीरूप ब्रवे।(ऋग्वेद– 10.87.4)

9 ऋग्वेद–10/87/6

10 अथर्ववेद–8/7/8

11 अथर्ववेद–8/8/14

12 फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पतयः फलैरपि। ओषध्यः फलपाकान्तः प्रतानैर्वीरूधः स्मृताः। (च0 सू0 –1.72)

13 स्थिरः क्षितिस्थः यथा वृक्षपाषाणदिः। (च0 सू0 1.72)

14 गतिशीलः प्राणी, मनुष्यादि। (च0 सू0 26.38)

15 तास्तु द्विविधा स्थावरार्जङ्गमाश्च। (च0सू0 1.26)

16 तासां स्थावराश्चतुर्विधाः वनस्पतयो, वृक्षाः, वीरुधाः ओषध्या इति। (सू0 सू0 1.27)

17 जङ्गमाः खल्वपि चतुर्विधाः (सु0 सू0 –1.28)

18 ऋग्वेद– 10/97/24



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(गुठली) का तेल कसैला, स्वादिष्ट, रूखा, कड़का मुखरोग तथा वात, कफ को दूर करता है।[19] महाकवि कालिदास ने आम्रकुसुम का अभिज्ञान शाकुन्तलम्[20], रघुवंशम्[21], कुमारसंभव[22], एवं ऋतुसंहार में पर्याप्त प्रयोग किया है।

(2) **पलाश**– इसे सामान्यतया ढाक के नाम से भी जाना जाता है। इस वृक्ष की जड़ें, छाल, फूलादि का उपयोग सर्पादि के विष को दूर करने के लिए किया जाता है। सुश्रुत ने बताया है कि बिच्छू के काटने पर इसके फूलों का उपयोग करना चाहिए। महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव[24], ऋतुसंहार[25], एवं मेघदूत[26] में इस पुष्प सम्पत्ति का उल्लेख किया है।

(3) **कुन्द**– यह वनस्पति प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में उपलब्ध होती है। आयुर्वेद में बताया है कि यह पाचक, हृदय के लिए पौष्टिक, पित्तरोगनाशक, विकार और वात को दूर करने वाला होता है। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्[27], विक्रमोर्वशीयम्[28], ऋतुसंहार[30], मेघदूत[31] में इसका प्रयोग किया है।

(4) **केतकी**– इसका फूल स्वादिष्ट, कड़वा, कान्तिजनक, गरम, वात और पित्तनाशक तथा केशों की दुर्गन्ध को दूर करने वाला तथा तापनाशक होता है। इसके फूल का जीरा खुजली को नष्ट करने वाला होता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंशम्[32], कुमारसंभव[33], ऋतुसंहार[32], मेघदूतम्[35], में इसका उल्लेख किया है।

---

19 वनोषधि चन्द्रोदय चन्द्रराज भण्डारी, चौखम्भा 1998
20 अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 5/1
21 रघुवंशम्–8/61, 9/33
22 कुमारसंभव– 1/27,4/14
23 ऋतुसुंहार– 6/16
24 कुमारसंभव– 3/29
25 ऋतुसुंहार– 6/38
26 मेघदूतम् –6/38
27 अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 5/19
28 विकमोर्वशीयम्– 1/4
29 कुमारसंभव– 17/27
30 ऋतुसुंहार– 6/25
31 मेघदूतम् –5/50
32 रघुवंशम्–10/16
33 कुमारसंभव– 8/58
34 ऋतुसुंहार– 2/17
35 मेघदूतम् –1/25



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(5) **कनेर**– सफेद कनेर कटु, कसैली, तीक्ष्ण वीर्य, आंतों को सिकोड़ने वाली तथा प्रमेह, कृमि और कुष्ठ रोग को दूर करने वाली है। लाल कनेर शोधक, चरपरी, पचने के समय कड़वी और कुष्ठ रोग में लाभदायक होती है। सब प्रकार की कनेर अत्यन्त जहरीली होती है।[36] कुमारसम्भवम्[37] में इसका उल्लेख हमें प्राप्त होता है।

(6) **मौलसिरी**– आयुर्वेदिक मतानुसार इसकी छाल कुछ कड़वी, मीठी, हृदय को बल देने वाली, अग्निवर्धक, कृमिनाशक और संकोचक होती है। मसूड़े और दाँत की बीमारियों के लिए यह महत्वपूर्ण है। यूनानी मतानुसार –" मौलसिरी के बीजों को ठंडे पानी में पीसकर रोगी को देने पर अतिसार दूर हो जाता है। मौलसिरी के फूलों का हार पहनने, फूलों को सूंघने से हृदय रोग में लाभ होता है। मालविकाग्निमित्रम्[38], अभिज्ञानशाकुन्तलम्[39], रघुवंश[40], कुमारसम्भव[41], ऋतुसंहार[42] में मौलसिरी पुष्प का वर्णन किया है।

(7) **शिरीष**– इसकी छाल पीसकर लेप करने से कुष्ठ और घठीले व्रण में लाभ होता है। पुराने और कठोर फोड़ों पर रस का लेप किया जाता है। सिरस के बीजों की माला बनाकर पहनाने से बच्चों के दाँत निकलने के समय कष्ट नहीं होता।[43] यूनानी मतानुसार सिरस के बीजों का लेप करने से बवासीर में लाभ होता है। गर्मी में फोड़े फुन्सी पर इसके फूलों का लेप करने से लाभ होता हैं। जुकाम, अण्डकोषों की सूजन मिटती है। इसके फूल वीर्य को गाढ़ा करने और वीर्य को स्तम्भन करने के लिये दिये जाते है। कालिदास ने कुमारसम्भव [44] एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम्[45] में इसका उल्लेख किया है।

(8) **सुरपुन्नाग**– कफ और वात को दूर करने के लिए तथा भूख को बढ़ाने के लिए, संकोचन तथा भीतरी रक्तस्राव को रोकने के लिए इसकी छाल को पूर्णरूप में उपयोग में लिया जाता है। महाकवि ने कुमारसम्भवम्[46] में इसका प्रयोग किया है।

(9) **अशोक**– अशोक मधुर, शीतल, हड्डियों को जोड़ने वाला, सुगंधित, कृमिनाशक, कसैला, गरम, कड़वा, कान्ति को बढ़ाने वाला, स्त्रियों के शोक को दूर करने वाला, पित्त, श्रम, उदररोग, बवासीर,

---

36 मेघदूतम् –5 / 50

37 वनौषधि चन्द्रोदय–2 / 501

38 मालविकाग्निमित्रम्– 3 / 6,14

39 अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 1 / 41, 3 / 55

40 रघुवंशम्–8 / 63,64

41 कुमारसंभव– 1 / 42, 3 / 56

42 ऋतुसुंहार– 1 / 25

43 वनौषधि चन्द्रोदय–1 / 12

44 कुमारसंभव– 1 / 41

45 अभिज्ञानशाकुन्तल – 7 / 28

46 कुमार सम्भव – 1 / 55



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्रण, अपच और रुधिर रोग को दूर करने ताला है।[47] रघुवंशम्,[48] कुमारसंभवम्[49] तथा मेघदूतम्[50] इत्यादि में इसका विवेचन प्राप्त होता है।

(10) **काश**– यह शीतल, मधुर, पेट को मुलायम करने वाला तथा स्निग्ध होता है। पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्रा, क्षय, पथरी रोगों में लाभदायक होता है। कुमारसम्भव[51] एवं ऋतुसंहार[52] में इसका वर्णन प्राप्त होता है।

(11) **चमेली**– यूनानी मतानुसार चमेली के फूलों का लेप करने से मुँह का सौन्दर्य निखर जाता है, इसका रस पैरों की बिवाई दूर करता है तथा मासिक धर्म का कष्ट दूर करता है। चर्म रोगों के लिए गहरा घाव, खुजली, मर्म स्थान के घावों के लिए चमत्कारिक इलाज है।[53] कालिदास के कुमारसम्भवम्[54] ऋतुसंहार में[55] इसका उल्लेख किया गया है।

(12) **मन्दार**– इसका अंग–प्रत्यंग महत्त्वपूर्ण है। यथा– जड़ ऋतुस्राव नियामक होती है छाल–कष्ट, वात, अतिसार को दूर करने वाली होती है। पत्ते कृमिनाशक, भूख बढ़ाने वाले, सूजन को दूर करने वाले और मूत्र संबंधी रोगों में लाभदायक है। फूल पित्तनाशक, पीड़ानाशक होते है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्[56] कुमारसंभवम्[57], मेघदूतम्[58] में इस वनस्पति का उल्लेख किया है।

(13) **कदम्ब**– आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल तेज, कड़वी, मृदु कसैली होती है। यह कामोद्दीपक शीतल, दुष्पाच्य, विषनिवारक और घाव भरने वाली होती है। गर्भाशय की शिकायतों, रक्तरोग, कफपित्त, जलन में यह लाभदायक हैं। इसका फल गरम, कामोद्दीपक और पकने पर पित्तकारक होता है।[59] विक्रमोर्वशीयम्,[60] ऋतुसंहार,[61] एवं मेघदूतम्[62] में कदम्ब का वर्णन मिलता है।

(14) **केसर**– आयुर्वेदिक मत से केसर कड़वी, तिक्त, सुगन्धित, गरम, विषनाशक, कृमिनाशक, विरेचक, पौष्टिक, सूखी खॉसी में लाभदायक है। यह अत्यन्त कामोद्दीपक है।[63] विक्रमोर्वशीय,[64] कुमारसम्भव[65] एवं मेघदूत[66] में इसका उल्लेख मिलता है।

(15) **जपा**– यूनानी मतानुसार इसका गुलकन्द और शरबत बनाकर लेने से दिल की गरमी और खून की खराबी दूर होती है। इसका अर्क भी खून साफ करता हैं। इसका उल्लेख मेघदूत[67] में है।

---

47 वनौषधिचन्द्रोदय– 1/94
48 रघुवंश – 7/2
49 कुमारसम्भव – 3/26
50 मेघदूत – 2/16
51 कुमारसम्भव – 7/1
52 ऋतुसंहार – 3/1
53 वनौषधिचन्द्रोदय – 4/5 (पृष्ठ)
54 कुमारसम्भव – 1/25
55 ऋतुसंहार – 6/6
56 अभिज्ञान. – 7/2
57 कुमारसम्भव – 6/5
58 मेघदूत – 1/1
59 वनौषधि चन्द्रोदय – 2/42
60 विक्रमोर्वशीय – 4/61
61 ऋतुसंहार – 2/21
62 मेघदूत – 1/21
63 वनौषधिचन्द्रोदय – 2/152
64 विक्रमोवशीय – 4/60
65 कुमारसम्भव – 8/76
66 मेघदूत – 1/21
67 वही – 1/39



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(16) **कुमुद**– यह नील एवं लाल वर्ण में उपलब्ध होता हैं। यूनानी मत में कुमुद के तेल की मालिश से लकवे में लाभ होता है। कामेन्द्रिय पर इसे मलने से नपुंसकता में लाभ होता है। बवासीर, गले के रोग, दमा में यह लाभदायक है। अभिज्ञानशाकुन्तल[68] एवं ऋतुसंहार[69] में इसका उल्लेख मिलता है।

(17) **माधवीलता**– इसके पत्ते को पीसकर लेप करने से त्वचा के रोग मिट जाते है। गठिया रोग में लाभदायक है। माधवीलता का अर्क पिलाने से पेट के कृमि मर जाते है। विक्रमोर्वशीयम्[70] तथा मेघदूतम्[71] में इसका विवेचन है।

(18) **पाटल**– आयुर्वेदिक मतानुसार इसकी जड़ पत्ते और फूलों का काढ़ा ज्वरनाशक औषधि की तरह उपयोग में लिया जाता है। यह वनस्पति, शीतल, वातनाशक और ज्वरनाशक होती है। इस पुष्प कां वर्णन अभिज्ञानशाकुन्तल[72] एवं ऋतुसंहार[73] में मिलता है।

(19) **कल्पवृक्ष**– याचक को ईप्सित फल देने वाला यह वृक्ष होता है।[74] मालविकाग्निमित्र[75] तथा कुमारसम्भव[76] में इस वनस्पति का विवेचन प्राप्त होता है।

(20) **दुपहरिया**– आयुर्वेद में इसका उपयोग भारी कफनाशक, ज्वरनाशक और पित्त को दूर करने के लिए होता है। ऋतुसंहार[77] में इसका उल्लेख मिलता है।

(21) **कर्णिकार**– इसका फूल कड़वा, कसैला, पौष्टिक, मृदु, विरेचक, कृमिनाशक होता है। यह कफ, प्रदाह, रक्त सम्बन्धी पीड़ा, जलोदर का निवारक है। इसके पत्तों के ऊपर का बीट घाव का खून बन्द करने के लिए उपयोग में लिया जाता है।[78] ऋतुसंहार[79] में इसका उल्लेख मिलता है।

(22) **मालती**– यह वनस्पति वमनकारक, कृमिनाशक, कुष्ठ, चर्मरोग, व्रण, सूजन, कान से पीप बहना, मुखक्षत में हितकारी है। रुधिर एवं चर्मरोगों में इसका विशेष महत्त्व है। कालिदास ने ऋतुसंहार[80] में इसका वर्णन किया हैं।

(23) **चम्पा**– यह पुष्प पीला एवं सफेद वर्ण का होता है। यूनानी मत में चम्पा के फूलों के रस को गुनगुना करके कानों में टपकाने से कान की पीड़ा कम होती हैं। इसके फूलों की खूशबू उत्तेजक होती है। इससे दिमाग की शक्ति बढ़ती है। ऋतुसंहार[81] में इसका वर्णन प्राप्त होता है।

---

68 अभिज्ञान. 5/28
69 ऋतुसंहार – 3/28
70 विक्रमोर्वशीय – 1/14
71 मेघदूत – 1/16
72 अभिज्ञान. – 1/3
73 ऋतुसंहार 1/28
74 वनौषधिचन्द्रोदय – 3/51
75 मालविका. – 5/19
76 कुमारसम्भव – 2/39
77 ऋतुसंहार – 3/5
78 वनौषधिचन्द्रोदय – 2/47
79 ऋतुसंहार – 7/22
80 वही, 2/25
81 वही – 6/3



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(24) **केवड़ा**– इसके पत्ते तीक्ष्ण, कटु और सुगन्धमय होते है। ये विषनाशक कामोद्दीपक और पथरी तथा अर्बुद में लाभदायक होते है। इसका फूल कड़वा तीक्ष्ण और शरीर सौदर्य को बढ़ाने वाला होता है।[76] कालिदास ने ऋतुसंहार में इसका उल्लेख किया है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि महाकवि कालिदास वस्तुतः प्रकृति के पुजारी थे। इसलिए उन्होंने प्रकृति के मुख्य घटक वनस्पति का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है। इन्होंने कर्णफूल,[84] नवमालती,[85] अर्जुन[86] कटसरैया[87] सिन्धुवार[88] कुसुम्भ[89] लोध्र[90] पुन्नाग[91] अगरु[92] इत्यादि वनस्पतियों का विवेचन अपनी प्रतिभा के बल से अपनी सप्तकृतियों में किया है, जिसका उपयोग आयुर्वेद के लिए वरदान सिद्ध है।

******

---

82 वनौषधिचन्द्रोदय – 2/152
83 ऋतुसंहार – 2/21
84 कुमारसम्भव – 4/14
85 ऋतुसंहार – 3/2
86 वहीं – 2/21
87 रघुवंश – 9/29
88 कुमारसम्भव – 5/53
89 ऋतुसंहार – 1/24
90 वही – 6/35
91 कुमारसम्भव – 1/55
92 रघुवंश – 5/69



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# काव्यशास्त्र के निकष पर रघुवंश महाकाव्य के पंचम सर्ग की समीक्षा

डॉ. विद्याधर सिंह*

कालिदास का 'रघुवंश' समस्त संस्कृत–साहित्य में उत्कृष्ट महाकाव्य है। यह ग्रन्थ कालिदास की परिपक्व प्रज्ञा और प्रौढ़ प्रतिभा का परिचायक है। इसका विस्तार 19 सर्गों तक है, जिसमें सूर्यवंश के 29 भूपतियों का यशोगान किया गया है। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक कई चरित्र सामने आते हैं। इनमें से ही रघु नामक राजा विशेष प्रतापी और दानशील हुआ और तद्वंशीय राजाओं का वर्णन इस महाकाव्य में होने से इसका नाम'रघुवंश' है। इसके समस्त सर्गों में प्रशस्त एवं रुचिर काव्य की सृष्टि करना, आकर्षक चरित्र–चित्रण और विशद वर्णनों में उसकी शोभा में वृद्धि करना तथा इन सबके पश्चात् सम्पूर्ण ग्रन्थ में रस–व्यंजना एवं उदात्त शैली का समन्वय करना– ये कार्य कवि की सर्वातिशायिनी प्रतिभा से ही सम्पादित हो सकते हैं। इन्दुमती का स्वयंवर, अज का विलाप, राम तथा सीता की विमान यात्रा, निर्वासित होने पर लक्ष्मण द्वारा सीता का सन्देश भेजना, शून्य अयोध्या का उसकी अधिष्ठात्री देवी द्वारा कुश के स्वप्न में वर्णन आदि प्रत्येक घटना इतनी स्वाभाविक और सुन्दर शैली में वर्णित हुई है कि पाठक पर वह अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है। इसमें महान् विषय, महदुद्देश्य और गुरुत्व जैसे आवश्यक शाश्वत लक्षणों की पूर्ति अम्लान–प्रतिभा के द्वारा की गई है। इसका प्रधान कारण कालिदास का प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ही है। वस्तुतः कालिदास के व्यक्तित्व का निर्माण तात्कालिक युग की मान्यताओं और भारतीय संस्कृति के अवयवभूत सिद्धान्तों द्वारा हुआ है। कालिदास के कांव्य में तात्कालिक युग की चेतना का प्रतिबिम्ब संस्कृत के अन्य महाकवियों के काव्यों की अपेक्षा अधिक तरलित हुआ है।

रघुवंश में आर्यों की त्याग–प्रधान संस्कृति की निदर्शक, त्याग की अक्षुण्ण परम्परा विद्यमान है। राजधर्म का त्याग–महत्त्व बतलाने के लिए कवि ने रघुवंशी अनेक राजाओं को त्यागी वर्णित किया है। दिलीप ने क्षात्र धर्म की रक्षा के लिए अपने शरीर का, रघु ने यज्ञ के लिए सर्वस्व (त्याग), अज ने अपनी पत्नी के लिए स्वप्राण का, दशरथ ने अपने औदार्य की रक्षा के लिए स्वपुत्रों का, रामचन्द्र ने प्रजानुरञ्जन के लिए सीता का और कुश ने इन्द्र की सहायता के लिए अपने प्राणों का त्याग किया। रघुवंश के दूसरे सर्ग में सिंह–दिलीप संवाद एक नाटकीय संवाद रूप में त्याग की ही पार्श्व भूमि पर स्थित है, जिसमें

---

*सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिलीप की विजय दिखाई गई है। इसी प्रकार इसके पॉचवें सर्ग में नैतिक महत्त्व को इस प्रकार उद्घोषित किया गया है–

किमत्र चित्रं यदि कामसूभवृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा।।[1]

अर्थात् न्याय से धन का उपार्जन करना, बढ़ाना, रक्षा करना तथा उसे सत्पात्रों को देना आदि चार प्रकार के राजाओं के व्यवहार में स्थित रहने वाली प्रजा की भूमि अभिलषित वस्तुओं को पैदा करने वाली यदि हो तो क्या आश्चर्य?

रघुवंश में प्रायः सभी प्रमुख रसों का परिपाक हुआ है। अग्निमित्र के विलास–वर्णन में श्रृंगार का; रघु, अज और राम के युद्ध–प्रसंगों मे वीर का; अज–विलाप में करुण का; वसिष्ठ और वाल्मीकि के आश्रम तथा सर्वस्वत्यागी रघु के वर्णन में शान्त–रस का प्राधान्य है। अलंकारों का प्रयोग भी भाव या दृश्य के चित्र को अधिक चटकीला बनाने के लिए ही हुआ है। भाषा इतनी सुबोध है कि अनेक ग्रन्थकारों और सुभाषितकारों ने कलिदास को रघुकार के नाम से सम्बोधित किया है–"क इह रघुकारे न रमते?"

वैसे तो रघुवंश महाकाव्य का प्रत्येक सर्ग और प्रत्येक सर्ग में आने वाले प्रत्येक पद्य अपने काव्य–सौष्ठव से परिपूर्ण हैं परन्तु इसका पंचम सर्ग कतिपय दृष्टियों से विशेष महत्त्व रखता है। इस सर्ग में रघु से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का काव्यात्मक वर्णन हुआ है। इसका प्रारम्भ रघु की सभा में ब्रह्मचारी कौत्स नामक स्नातक के अपने गुरु वरतन्तु की गुरुदक्षिणा के लिए आने की चर्चा से होता है। रघु ने यद्यपि विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान दे दिया था, तथापि उन्होंने ब्रह्मचारी कौत्स को पूरी दक्षिणा देने की व्यवस्था की। गुरुदक्षिणा के लिए धन की प्राप्ति हो जाने पर प्रसन्न कौत्स ने रघु को पुत्र–प्राप्ति का आशीर्वाद दिया और कौत्स के आशीर्वाद से रघु को अज नामक पुत्र की प्राप्ति हुई, जो तेज, पराक्रम आदि की दृष्टि से अपने पितृ–तुल्य ही था।

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्विभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।।[2]

उस अज ने युवावस्था के प्राप्त होते ही विदर्भराज भोज की बहन इन्दुमती के स्वयंवर में भाग लेनें के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उसने नमर्दा–तट पर एक विशाल वन्य गज को मारा। वह गज मरते ही गन्धर्व बन गया और उसने अज को सम्मोहनास्त्र दिया। विदर्भ पहुँचने पर अज का विशेष स्वागत हुआ।

---

1 रघुवंश, 5.3

2 वही, 5.37

3 (क) ...... रस आत्मा।– काव्यमीमांसा, पृ0 14

(ख) काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपेण न कस्यचिद्विमतिः।– व्यक्तिविवेक, 1.86

(ग) 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'– साहित्यदर्पण, 1.3



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य की उत्कृष्टता अथवा काव्य के मूल तत्त्व को लेकर गहन चिन्तन हुआ है। समय–समय पर काव्याचार्यो ने काव्य के मूल तत्त्व को रूप में किसी ने रस को[3], किसी ने अलंकार को[4], किस ने रीति को[5], किसी ने वक्रोक्ति को[6], किस ने ध्वनि को[7] और किसी ने औचित्य[8] को स्वीकार किया है। रसवादी आचार्य रस को ही काव्य का मूल तत्त्व मानते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर रसवादियों के ही मत को प्रकट किया है। इसी प्रकार अन्य आचार्य भी अपनी–अपनी दृष्टि से ध्वनि आदि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं परन्तु 11वीं शताब्दी में आचार्य मम्मट ने काव्यतत्त्व विषयक सभी मतों के सार–संक्षेप को प्रस्तुत करते हुए रस को काव्य का मूल तत्त्व मानते हुए भी काव्य की उत्कृष्टता अथवा ग्राह्यता के लिए रस, गुण, अलंकार, रीति, ध्वनि आदि को काव्य के ग्राह्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया और दोषों को उसके त्याज्य तत्त्व के रूप में।

यहाँ अग्रिम पंक्तियों में रघुवंश के पंचम सर्ग का रस, रीति, गुण तथा अलंकार आदि काव्य–तत्वों की दृष्टि से समीक्षा की जा रही है–

**रसपरिपाक**– काव्यानन्द का प्रधान रूप भावानुभूति या रसानुभूति है। भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने नाट्य या काव्य के लिए रस को प्रमुख माना है– **'नि हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।'**[9] अर्थात् काव्य या नाटक में रस ही प्रमुख है। इसी बात को प्रकारान्तर से विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर प्रकट किया है। आचार्य मम्मट ने रस–ध्वनि को उत्तम काव्य स्वीकार किया है– **इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।**[10]

संस्कृत के अधिकांश काव्य–समीक्षकों ने इसी परम्परा का पालन करते हुए उसी को उत्कृष्ट काव्य माना जिसमें सहृदय को सहज, रसानुभूति हो। रस के आठ, नव या दस भेद माने गये हैं–

---

4 (क) न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्। –काव्यालङ्कार, 1.13

(ख) अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।।– चन्द्रालोक, 1.7

5 'रीतिरात्मा काव्यस्य।'– काव्यालङ्कारसूत्र, 1.2.6

6 आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानकर इसे व्यापक रूप दिया तथा रीति, रस, अलङ्कार, गुण, ध्वनि आदि समस्त काव्य–तत्त्वों तथा प्रबन्ध–मुक्तक प्रभृति काव्यरूपों में भी वक्रोक्ति का प्रकाश भर दिया।– वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्।

7 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः.......।' ध्वन्यालोक, 1.1

8 औचित्यविचारचर्चा, 4.5

9 (क) नाट्यशास्त्र, अध्याय 6

(ख) एक एव परमार्थतो रसः सूत्रस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति।

भरतमुनि की कारिका 'न हि रसादृते...' पर अभिनवभारती टीका

10 काव्यप्रकाश, 1.4



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।
..............................शान्तोऽपि नवमो रसः।[1]
श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।।[2]

ये रस विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भावों के संयोग से निष्पन्न होता है।[3] कालिदास की शैली रस–प्रधान है। रस की साक्षात् निष्पत्ति के लिए उपयोगी अलड्कारों और गुणों का संयोजन कवि ने स्थान–स्थान पर किया है। कालिदास ने रस तथा अलड्कारादि के द्वारा काव्य–सौन्दर्य में जो विशेष चारुता सम्पादित की, उससे प्रभावित होकर ही आलोचकों ने उन्हें 'रसेश्वर' और 'उपमा–सम्राट्' की उपाधि दी है।

रघुवंश में राजाओं के जीवन–चरित्र के प्रकरण में साधारणतः वीर–रसात्मक घटनाओं की विशेषता होनी ही चाहिए थी। तभी तो क्षात्रधर्म से राष्ट्र की सुरक्षा का परम प्रयोजन कालिदास के द्वारा सिद्ध हुआ है।

**वीररस–** वीररस के दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर भेद से चार प्रकार माने गये है।[4] रघुवंश का पञ्चम सर्ग दानवीर का उत्कृष्ट निदर्शन है। दानवीर में दानी व्यक्ति अत्यन्त उत्साह के साथ सर्वस्व दान करने के लिए तत्पर रहता है। जैसा कि इस महाकाव्य के पञ्चम सर्ग की कथावस्तु का प्रारम्भ ही राजा रघु की सभा में स्नातक कौत्स के दान–याच्ञा से होता है और राजा रघु कुबेर से प्राप्त सम्पूर्ण वैभव को जब कौत्स को दान देने के लिए उद्यत होते हैं, तो यह दानवीर का उत्कृष्ट उदाहरण बन जाता है।

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च।।[5]

यहाँ रघु के त्याग में उत्साह 'स्थायीभाव' है, ब्रह्मचारी कौत्स उसका 'आलम्बन विभाव' है। ब्रह्मचारी कौत्स, और उसके गुरु के तप, स्वाध्याय, अध्यवसाय आदि का स्मरण 'उद्दीपन विभाव' है। सर्वस्व त्याग के लिए तत्पर रहना 'अनुभाव' है, हर्ष, धृति आदि 'सञ्चारीभाव' हैं। इन सबसे परिपुष्ट होकर दानवीर रस के रूप में परिणत होता है। कुबेर से प्राप्त सम्पूर्ण सम्पत्ति को राजा द्वारा देने के लिए उद्यत होने पर भी ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरुदक्षिणा से एक कौड़ी भी अधिक धन न लेना दानवीर का

---

1 वही, 4.29 तथा 35
2 साहित्यदर्पण, 3.182
3 विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।– नाट्यशास्त्र 6,पृ. 93
4 स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।। –साहित्यदर्पण, 3.234
5 रघुवंश, 5.3।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही रूप है, क्योंकि राजा रघु कुबेर से प्राप्त सब धन देना चाहते थे तो कौत्स गुरुदक्षिणा से अधिक धन नहीं लेना चाहते थे। यह दृश्य देखकर अयोध्यावासी दोनों को धन्य–धन्य कहने लगे। इसी प्रकार निम्नलिखित पद्य भी दानवीर का ही उदाहरण है–

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात्।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम्।।[1]

इसी प्रकार इस सर्ग के सैंतीसवें एवं अड़तीसवें पद्य में जहाँ राजा रघु और उनकी पत्नी के द्वारा अपने पुत्र अज के तेजोयुक्त रूप, ऊँचाई एवं पराक्रम आदि को देखकर हर्षित होने में वात्सल्य रस है–

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।।
उत्पात्तविद्यं विधिवद् गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम्।
श्रीः साभिलाषाऽपि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष।।[2]

**शृङ्गाररस**– रघुवंश का पञ्चम सर्ग यद्यपि दानवीर का उत्कृष्ट उदाहरण है, परन्तु इन्दुमती के स्वयंवर के लिए भोज की राजसभा में उपस्थित अज का अपनी सम्भावित पत्नी इन्दुमती को पाने के लिए चिन्तामग्न रहते हुए रात्रि में जागृत रहना इन्दुमती के प्रति अज के पूर्वप्रेम को प्रकट करता है। अतः भोज द्वारा अपनी भगिनी के स्वयंवर के लिए रघु के यहाँ निमन्त्रण भेजने से लेकर भोज के घर में पहुँचकर अज का इन्दुमती के साथ स्वयंवर की यादों में दिन व्यतीत करने की समस्त घटनाएँ शृङ्गार रस के उदाहरण हैं। इन्दुमती के स्मरण में उन्निद्र अज के मन की व्याकुलता द्रष्टव्य है–

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं कन्याललामकमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।।[3]

प्रकृति के उद्दीपन विभाव के रूप में वर्णन– इन्दमती स्वयंवर के लिए जाते हुए अज के विश्राम–स्थल, जंगल, नदी आदि का वर्णन इस सर्ग की पद्य–संख्या 41 से 44 तक प्रकृति के विधि रूपों का मनोहर वर्णन मिलता है। यहाँ इनमें से दो पद्य द्रष्टव्य हैं–

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः।।
स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम्।।[4]

**रीति एवं गुण**– संस्कृत–साहित्य में लक्षणकारों ने गौडी, पाञ्चाली, वैदर्भी तथा लाटी नामक चार प्रकार की रीतियाँ और माधुर्य, ओज एवं प्रसाद, ये तीन गुण स्वीकार किये हैं। गौडी रीति में बड़े–बड़े

1 रघुवंश, 5.30

2 वही, 5. 37–38

3 रघुवंश, 5.64

4 रघुवंश, 5.41–42



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समास तथा पाञ्चाली रीति में छोटे–छोटे समास होते हैं। वैदर्भी रीति में समास प्रायः नहीं के बराबर होते हैं। आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में–

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।[1]

अर्थात्, माधुर्यव्यञ्जक वर्ण, ललित रचना , समास का न होना अथवा अत्यल्प होना, ये समग्रतया वैदर्भी रीति की विशेषताएँ हैं।

गौडी रीति में ओजो गुण , पाञ्चाली में माधुर्य गुण की प्रधानता होती है। कालिदास की रचनाएँ वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण से ओत–प्रोत हैं। ये वैदर्भी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे गये हैं– 'वैदर्भी रीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।' आचार्य दण्डी ने तो वैदर्भी रीति की उद्भावना ही कालिदास के द्वारा मानी है–

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्।।[1]

प्रसाद गुण के कारण कालिदास के काव्य शीघ्र ही समझ में आ जाते हैं। जैसे–

कायेन वाचा मनसाऽपि शश्वद्यत्सम्भृतं वासवधैर्यलोपि।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत्।।[3]

कालिदास के काव्यों में सर्वत्र ही वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण का विलास होने के कारण यहाँ उसके अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है।

**अलङ्कारयोजना**– जिस प्रकार से लोक में कटक, कुण्डल,हार आदि अलङ्.कार कामिनी के शरीर को अलङ्.कृत करते हैं, उसी तरह उपमा आदि अलङ्.कारों के द्वारा कविता–कामिनी का शरीर अलङ्.कृत हो उठता है।[4] आचार्य भामह के अनुसार जिस प्रकार वनिता का मुख बिना अलङ्.कारों के शोभित नहीं हो संकता उसी प्रकार काव्य भी बिना अलङ्.कारों के शोभा को प्राप्त नहीं कर सकता।[5] आचार्य दण्डी भी अलङ्कार को काव्य का शोभाधायक तत्व मानते हैं।[6]

अलङ्कारों के प्रयोग में कालिदास ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनका काव्य

---

1 साहित्यदर्पण 9.2–3

2 अवन्तिसुन्दरी कथा, भूमिका 15

3 रघुवंश, 5.5

4 उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्.गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्.कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।। –काव्यप्रकाश, 8.67

5 न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।–काव्यालङ्.कार, 1.13

6 काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्.कारान् प्रचक्षते । –काव्यादर्श, 2.1



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्यधिक और अनावश्यक अलङ्.कारों के भार से 'आक्रान्त कामिनी की भाँति' मन्द-मंथर गति से चलने वाला नहीं है अपितु 'स्फुटचन्द्रतारका विभावरी' की भाँति सहज सौन्दर्य से सहृदयों के चित्त को आकृष्ट करने वाली है। न केवल रघुवंश महाकाव्य में ही अपितु अन्य रचनाओं में भी कालिदास का अलङ्कारविधान सायास न होकर अनायास सिद्ध है। विभिन्न अर्थालङ्.कारों एवं शब्दालङ्कारों के सहज प्रयोग में कालिदास परम प्रवीण दिखाई देते हैं। कवि ने शब्दालङ्लकारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों पर बिशेष ध्यान दिया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों के प्रयोग में उनकी बहुश्रुतता एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। रघुवंश का पञ्चम सर्ग भी विभिन्न सरस एवं अपूर्व काव्य-अलङ्कारों से युक्त है।

कालिदास की उपमाओं की विलक्षणता तो विश्व-विख्यात है- 'उपमा कालिदासस्य।' वास्तव में उनकी उपमाएँ अद्वितीय हैं। अनुरूपता, सरसता तथा अपूर्वता की दृष्टि से वे बेजोड़ हैं। उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर भी उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है- साधर्म्यमुपमा भेदे।[1] रघुवंश पञ्चम सर्ग का यह पद्य द्रष्टव्य है, जिसमें वसिष्ठ के मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल के प्रोक्षण से सामर्थ्य को प्राप्त महाराज रघु की गति को वायु की सहायता से सर्वत्र गति करने में समर्थ मेघ के सदृश बताई गई है-

**वसिष्ठमन्त्रोक्षणजातप्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु।**
**मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य।।**[2]

कालिदास की उपमाएँ तत्क्षण ही उपमेय और उपमान का समग्र चित्र पाठकों के नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत कर देती हैं। इस सर्ग के 61वें पद्य में भी उपमा अलङ्कार की छटा दर्शनीय हैं इसमें भोज द्वारा युवराज अज के स्वागत करने अथवा उनसे मिलने की तुलना ऊँची-ऊँची लहरों से युक्त चन्द्रमा से मिलने के लिए आतुर समुद्र से की गई है-

**तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।**
**प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली।।**[3]

एवमेव इस सर्ग की पद्य -संख्या 27, 34-35, 46, 59, 64, 68, 70, 72, तथा 75 आदि में उपमा अलंकार है।

उपमा का अर्थ विशिष्ट अलङ्.कार के अतिरिक्त सभी सादृश्यमूलक अलङ्.कारों से ग्रहण किया जा सकता है। अतः समीक्षकों ने 'उपमा कालिदास्य' के साथ 'अर्थान्तरन्यासविन्यासे कालिदासो विशिष्यते' कहकर अलङ्.कार-प्रयोग में कालिदास की निपुणता को भली प्रकार प्रदर्शित किया है। अग्राङि्.कत पद्य में सामान्य या विशेष का उससे भिन्न के द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है-

---

1 काव्यप्रकाश, 10.87

2 रघुवंश, 5.27 3 वही, 5.61

4 वही, 5.17 5 काव्यप्रकाश, 9.79



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि।।[4]

वर्णसाम्यमनुप्रासः।[5] अर्थात् वर्णों की समानता अनुप्रास है। कालिदास के काव्यों में अनुप्रास, यमक आदि अलङ्कार अनायास ही उपस्थित हो जाते हैं। अनुप्रास अलड्.कार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

स मृण्मये वीतिहिरण्मयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः।।[1]

इसी प्रकार कालिदास ने पञ्चम सर्ग के अन्तर्गत कतिपय स्थलों में अलौकिक शक्तियों का वर्णन किया है। जहाँ अलौकिक वर्णन हो वहाँ विशेषालङ्कार होता है। इस सन्दर्भ में पञ्चम सर्ग का यह पद्य द्रष्टव्य है जिसमें राजा रघु के कोशगृह का आकाशीय सुवर्ण–वृष्टि से पूरित होने का वर्णन है–

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः।।[2]

इसी प्रकार एक अन्य पद्य भी अवलोकनीय है। अज ने जैसे ही एक वन्य हाथी को तीर से मारा वैसे ही वह गन्धर्व बन गया –

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्टः।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे।।[3]

कवि की कृति में लोक के नाना प्रकार के जीवों का स्वाभाविक वर्णन देखा जाता है और वह वर्णन काव्य का महत्त्वपूर्ण अङ्ग होता है। आलङ्कारिकों ने इस वर्णन को ही 'स्वभावोक्ति' नाम दिया है। कालिदास स्वभावोक्ति में सिद्धहस्त हैं। उनके शाब्दिक चित्र सजीव एवं स्वाभाविक हैं। रघुवंश महाकाव्य के पंचम सर्ग की पद्य–संख्या 43–49 तक स्वाभावोक्ति अलङ्कार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार इस सर्ग के कई पद्यों में उत्प्रेक्षा, उदात्त आदि अलड्.कारों की छटा दिखाई देती है।

**छन्दोयोजना–** काव्य में छन्दयोजना का विशेष महत्त्व है। विभिन्न रसो की व्यञ्जना के लिए भिन्न–भिन्न छन्द उपयुक्त सिद्ध होते हैं। रसवादी कवि कालिदास ने छन्दोयोजना में विशेष सतर्कता दिखाई है। उन्होंने अपने काव्यों में प्रायः सभी प्रमुख छन्दों का प्रयोग किया है, जिससे उनके प्रौढ पाण्डित्य और काव्याभ्यास का चिर अनुभव प्रकट होता है। वे छन्दों का चुनाव रस और वर्ण्य–वस्तु

---

1 रघुवंश , 5.2
2 वही, 5.29
3 वही,5.51



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के अनुकूल ही करते हैं।

रघुवंश महाकाव्य में अनुष्टुप्, प्रहर्षिणी, उपजाति, मालिनी, वंशस्थ, हरिणी, वसन्ततिलका,पुष्पिताग्रा, वैतालीय, ताटक, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शालिनी, औपच्छासिक, रथोद्धता, स्वागता, मत्तमयूर, नाराच प्रहर्षिणी प्रभृति कुल उन्नीस छन्दों की छटा है। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास ने कठिन और अप्रचलित छन्दों का भी प्रयोग कियाा है। रघुवंश के पञ्चम सर्ग के पद्यों में कवि ने 'उपजाति' छन्द का प्रयोग किया है।

इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य का यह पच्चम सर्ग रस, अलङ्कार, रीति, गुण आदि काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की दृष्टि से उत्कृष्ट तो है ही परन्तु इसके अतिरिक्त यह सर्ग दान और त्याग जैसे भरतीय संस्कृति के वैशिष्ट्य से पूरित है।अतः इस सर्ग का वैशिष्ट्य इसी में निहित है कि रघुवंश के महाप्रतापी राजा रघु भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रतीक थे । कवि कालिदास की दृष्टि में राजा रघु दिग्विजयी होकर महान् तो थे ही किन्तु तब महत्तर हो गये जब उनके पास कुछ भी नहीं रह गया था–

**शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठान्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।**
**आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः।।[1]**

कवि ने अपनी इस त्यागपूत वृत्ति की स्वाभाविकता सिद्ध करते हुए कहा है–

**पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।[2]**

अर्थात् देवताओं द्वारा पीये जाने पर चन्द्रमा की कलाओं का क्षीण हो जाना उनकी वृद्धि से अधिक प्रशंसनीय होता है।

******

1 रघुवंश, 5.15
2 वही, 5.16



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# चर्चामहाकाव्य में वर्णित नारी

प्रदीप कुमार शुक्ल

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं एवं संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विश्व की अनेक सभ्यताएँ समय के प्रवाह में न जाने कहाँ खो गईं, लेकिन भारतीय संस्कृति आज भी समय के प्रहार को सहन करते हुए जीवित है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को जीवंत रखने में प्राचीन काल से ही नारी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत प्रारम्भ से ही पुरुषप्रधान रहा है किन्तु नारी की उत्कृष्टता को प्राचीन काल से ही पुरुषप्रधान समाज के द्वारा दबाया नहीं जा सका, पुरुषप्रधान होते हुये भी नारियों ने इस देश में समय–समय पर अपनी प्रतिभा से जगत् को आश्चर्यचकित किया है। भारतवर्ष में नारी को जो सम्मान पूर्वक स्थान मिला है, वैसा संसार में अन्यत्र कहीं भी दृग्गोचर नहीं होता है। भारत में नारी आरम्भ से ही आदर्श तथा उत्कृष्टता की प्रतिमूर्ति मानी जा रही है। यदि हम वैदिक वाङ्मय की तरफ दृष्टिपात करें तो वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान अतीव गौरवान्वित रहा है। सामान्य रूप से तो हम स्त्री को गृहणी, गृह–स्वामिनी, सहधर्मिणी अत्यादि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं जबकि स्त्रीत्व के बिना इस संसारमात्र की कल्पना करना ही व्यर्थ है। यदि हम बात स्त्रियों के अधिकार की भी करें तो ससुर आदि का यथेष्ट है। उसमें स्वतः ही उसका अधिकार होता है।

**साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।**
**ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।[1]**

इत्यादि वाक्य यह प्रमाणित करता है। ऋग्वेद बिना नारी का घर नरक के समान मानता है यथा–

**जायादस्तम....... जाया एव अस्तंम गृहम् इत्यर्धः**

इस वाक्य को आधुनिक संस्कृत साहित्य भी समर्थित करता है। यथा–

**न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते'**

इस प्रकार ऋग्वेद कन्या की शिक्षा का भी सम्यक् दिग्दर्शन करता है। वह स्त्रियों को भी पुत्रवत् मानते हुए उपनयानादि संस्कार का विधान करते थे। पूर्णरूप से वेदाध्ययन का समर्थन करता है और वेदाध्ययन में निरत ऋषियों के साथ–साथ ऋषिकाओं का भी नामोल्लेख करता है–श्रद्धा, कामायनी, शची, इद्राणी, आदि यदि। हम अद्धाङ्गिनी शब्द पर विचार करें तो ऋग्वेद स्त्रियों के बिना किसी भी यज्ञ

---

***शोधछात्र, साहित्य–विभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय, का.हि.वि.वि., वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुष्ठान के फल को निष्फल मानता है। यथा–

सहोत्रंस्य पुरा नारी समनं वाव गच्छति।

अनेक समाज शास्त्रियों ने नारी के त्रिविध रूप माता, पुत्री एवं पत्नी को चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इसी क्रम में महामहोपाध्याय पं. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी जी ने अपने स्वरचित "चर्चामहाकाव्यम्" नामक ग्रंथ में नारी–माहात्म्य को चित्रित करने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

चर्चामहाकाव्यकार के अनुसार प्राचीन काल में नारी–शिक्षा पूर्ण रूप से विकसित थी। कई विदुषी स्त्रियाँ मंत्रद्रष्टा के रूप में विख्यात थीं, वे सभाओं में जाकर तर्क–वितर्क किया करती थीं यथा– घोषा, मुद्रा, अपाला, आदि।

भारतवर्षे नारीशिक्षाऽऽसीदादिमे काले।
मन्त्राणां द्रष्टृत्वं सुसिद्धमेवार्यललनानाम्।।
शास्त्र–विचार–सभायां महर्षीणां पुरः स्थिता नारी।
शास्त्रार्थे प्रवर्तत शुचिभिर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धम्।।[2]

इस तरह प्राचीन काल में शास्त्र का चिन्तन, मनन एवं तर्क वितर्क सभा में आयोजित हुआ करता था। बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी और याज्ञवल्क्य संवाद इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यज्ञकर्म की कल्पना नारी के बिना संभव ही नहीं थी। नारी को भारतीय संस्कृति में अर्द्धांगिनी माना गया है। किसी भी धर्मिक क्रिया के संपादन के लिये नारी की उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है। इस तरह के उदाहरण संस्कृत साहित्य में कई जगह उपलब्ध होते है। यथा– रामायण में भगवान् राम ने भी अपनी धर्मिक क्रिया (अश्वमेध यज्ञ) को पूर्ण करने के लिये सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित की।

हिरण्यमयी सीताप्रतिकृतिगृहिणीकृता।"[3]

महान् ग्रन्थों में जिसमें नारी स्वतंत्रता के संबंध में कहा गया है कि नारी स्वतंत्रता के योग्य नहीं है, उसका तात्पर्य यह नहीं था कि नारी को परतंत्र रखा जाए अपितु उसका आशय नारी की रक्षा का विधान करना था, क्योंकि नारी समाज के लिये अमूल्य होती है। नारी इस जगत् की पूजनीया होती है जहाँ नारी की पूजा होती है वहॉ देवताओं का वास होता है ऐसा भारतीयों का प्रबल विश्वास है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[4]

इसी तरह के विचारों से ओत–प्रोत चर्चामहाकाव्यकार ने ठीक ही कहा है कि

देवा अपि च रमन्ते नारी सम्पूज्यते यत्र।
सर्वविधश्रद्धानामाधारा विद्यते हि नारी।।[5]
आस्था श्रद्धा का ये आगार है।
कारूण्य मृदु वात्सल्य का भण्डार है।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवता भी वास करते है वहाँ।
हो रही पूजित जहां ये नारियां।।[6]

भारत दीर्घ काल तक परतन्त्रता की बेडियों से जकड़ा रहा, परतन्त्रता के कारण कई कुरीतियाँ नारियों के लिए समाज में प्रचलित हो गयी। जैसे– सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि। परतन्त्रता का प्रभाव इतना विषाक्त था कि समाज में सर्वत्र दोषों की विभिषिका मुँह फाड़े खड़ी हुई दिखाई दे रही थी। गुण प्रायः नष्टप्राय हो गए थे। नारी का उज्ज्वल स्वरूप परतन्त्रता के अन्धकार में तिरोहित हो गया था, उस काल में जो बुद्धिमान् और धीर व्यक्ति थें, वह भी अज्ञानता के अन्धकार से बच नहीं पाये और कुरीतियों के समर्थक बन गये। परतन्त्रता के समय जो नारी गृहस्थों के लिये पूजनीया थी वह केवल भोग्या के रूप में समाज में पालित हो गयी। किन्तु यह व्यवस्था चिरस्थायी नहीं रही। वस्तुतः परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत एवं जटिल नियम है। कुछ समय बाद स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ हुआ। इसी संग्राम के द्वारा नारियों में चेतना का आह्वान हुआ तथा पुरुष के साथ कन्धा मिलाती हुई युद्ध भूमि में रण के लिए उतर गयीं। स्वतन्त्रता संग्राम के समय जब भारत में नवजागरण आया तो उस समय नारी–जागरण की किरण हमारे समाज में प्रकाशित हुई।

परतन्त्रतानिगडिते काले नारी गृहस्थैव।
भोग्या जनयित्री वा कार्याणां पालिका जाता।।
स्वातन्त्र्यार्थं युद्धे सन्नद्धे भारते देशे।
नारी –जागरणानां प्रभा परीवाह आयातः।।

इस काल में कुछ वीराङ्गनाओं जैसे लक्ष्मीबाई, दुर्गादेवी आदि ने अपनी वीरता और चरित्र से सम्पूर्ण जगत् को रोमांचित किया।

दुर्गा–लक्ष्मीबाई–चरित्र–चित्रावलिः काचित्।
रोमांचितं प्रकुरुते निखिले जगतीतले मनुजान्।।

कई आचार्य करुणा से पूरित नारी स्वतन्त्रता के समर्थक हुए और नारी जागरण अभियान को निरन्तर प्रचारित और अग्रसारित करते रहे। आज वैदेशिक तथा वैश्विक सभी दृष्टि से नारी को उन्नति का समर्थन मिल रहा है और आज नारी जागरूकता का केन्द्रींय विषय बनती जा रही है । आज ऐसी मान्यता है कि स्वस्थ–समाज–निर्माण के लिये नारी=शिक्षा और महिलासशक्तीकरण अनिवार्य है। वर्तमान में नारियाँ सब प्रकार से समुन्नत हैं। इस प्रकार की समुन्नत नारी शक्ति होती है तो ये सम्पूर्ण धरा सब प्रकार से सम्पन्न और समर्थ हो जायेगी। आज नारियाँ राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, राज्यपाल, मुख्यमन्त्री जैसे वरिष्ठ पदों की विभूषित कर इस देश का गौरव बढ़ा रही हैं। सेना संगठन में सैनिक के रूप में नियुक्त होकर देशरक्षा में अपना योगदान कर रही हैं । यथा –

नारी प्रधानमन्त्री नारीयं राज्यपालाऽपि।
शासनविविधविधानां नारी परिचालिका युगेऽद्यत्वे।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेनायाः संगठने सैनिकरूपेषु निखिलेषु।
वैमानिक–संसेवामध्ये क्वास्ते न नारीयम्।।

भौतिक समृद्धि के साथ–साथ सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग नारी सशक्तींकरण से ही संभव है। आज संस्कृत की शिक्षा इस की ओर अग्रसर हो रही है। यदि नारी शिक्षा संस्कृत विद्यामय हो जाए तो निश्चित ही इसको ह्रास से बचाया जा सकता है। क्योंकि शिक्षिता नारी ही अपने बच्चों में संस्कृत शिक्षा का संस्कार पैदा कर सकती है।

यदि चेन्नारीशिक्षा संस्कृतविद्यामयी भूयात्।
नूनं ह्रासे रूपं तदिदं परिवर्तितं भूयात्।।

यद्यपि भारतवर्ष बहुभाषायुक्त शिक्षा का समन्वय करता है, परन्तु यदि भारतीयता का विकास करना है तो निश्चित रूप से संस्कृत शिक्षा का प्रचलन आवश्यक है। हमारा देश नारी शिक्षा की ज्योति से जागृत हो रहा है। नारी सभी प्रकार के विकास की मूल है। यह भारतीयों के लिए सुखद समय है कि यहाँ नारीशिक्षा का निरन्तर विकास हो रहा है। नारी मातृरूप में नितान्त पूजनीया है। यह शीलता सौभाग्य, श्रद्धा तथा ममता की प्रतिमूर्ति होती है। नारी के अध्यात्मपरक गुणों से सम्पूर्ण संसार का उद्धार संभव है। जो ज्ञानीजन नारीशिक्षा कार्य में संलग्न हैं वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस देश का उत्थान कर रहे हैं। संस्कृत विद्या से शिक्षित नारी निश्चित रूप से जीवन को दिव्य और पूर्ण बनाती है। यदि इस संसार को स्वर्ग बनाना है तो नारी शिक्षा का विकास आवश्यक है क्योंकि विद्या से विनय की प्राप्ति होती है और कर्तव्यबोध का परिज्ञान सुशिक्षा द्वारा ही संभव है। शिक्षा एक जागृत धर्म है जो सभी प्रकार के अभाव को पूरित करता है। एक मानव को परिपूर्ण बनाता है। परन्तु स्त्री–शिक्षा तो आधार ही है जो न केवल पुरुष वर्ग के लिये अपितु सम्पूर्ण समाज के लिये हितकारी है। अतः समाजिक समुन्नयन के लिये यह आवश्यक है कि स्त्री–शिक्षा को दृढ़ता से समाज में प्रवर्तित तथा विकसित किया जाये। जैसा कि आचार्य कवि श्री शिवदत्त चतुर्वेदी जी कहते हैं। यथा–

पुरुषा एव तु नित्यं स्त्रीशिक्षादेशिका दृष्टाः।
सामाजिकमथजीवनमुन्नेतुं ये दृढव्रता जाताः।।

## सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची


1 ऋग्वेद
2 चर्चामहाकाव्यम्, नारीशिक्षासर्गः
3 उत्तररामचरितम् द्वितीयः अंकः श्लोक 6 अनन्तरम्।
4 मनुस्मृतिः 3/53
5 चर्चामहाकाव्यम् नारीशिक्षासर्गः
6 अज्ञातम्


******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# संस्कृतवाङ्मय में योग विद्या का विमर्श

डा. सहदेव शास्त्री*

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति" (अथर्ववेद 1, 15, 18)

हे मानव ! तु उस परमपिता के शाश्वतकाव्य का अनुशीलन कर जो वेदज्ञान न तो नष्ट होता है और न जीर्ण । मनुमहर्षि के वचनानुसार सः[1] सर्वोऽभिहितो वेदे , सर्वज्ञानमयो हि सः एवं "सर्वं वेदात्प्रसिध्यति"[2] । वेद ज्ञान समस्त वाङ्मय का आधारभूत ज्ञान भण्डागार है। आधुनिक युग के वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार "वेदषु सर्वाः विद्या सन्ति मूलदेशतः[3] एवं " सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर हैं।" अतः इस संसार में जितनी भी विद्याएँ हैं, चाहे वह भौतिक विज्ञान हो, चाहे आत्मा परमात्मा, मनःशारीरिक, आध्यात्म विज्ञान हो, सबका आदि मूल परिपूर्ण परमेश्वर है। सृष्टि के जितने भी लोकलोकान्तर पर्यन्त प्राकृतिक पदार्थ है उन सबका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, ईश्वर है। उसी ईश्वर से समस्त विद्याएँ प्रचलित होने से योग विद्या को भी वेद के माध्यम से प्रदान करने वाला आदिमूल ईश्वर ही है।

संसार के समस्त धर्म , कर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति आदि सत्कर्म वेदविहित है। सायणाचार्य द्वारा "यस्य निःश्वसितं वेदाः"[4] कह कर वेद ईश्वर निःसृत माने गये हैं। भूत वर्तमान भविष्य के ज्ञान विज्ञान, योग आदि का उत्स वेद है। ऋग्वेद में योगप्रादुर्भाव सर्वप्रथम एक मंत्र में हुआ। योग शब्द साधन एवं साध्य दोनों का वाचक हैं– **यस्मादृते न सिध्यति, यज्ञो विपश्चितश्चन।**

**सः धीनां योगमिन्वति[5]।।**

अर्थात् जिन इन्द्राग्नि देवता के बिना प्रकाशपूर्ण ज्ञानी का जीवन यज्ञ भी सफल नहीं होता , उसी में ज्ञानयों को अपनी बुद्धियों एवं कर्मों का योग करना चाहिए।

सर्वनियन्ता परमात्मा के असीम सृष्टि कर्मों में विचित्रता एवं विविधता दृष्टिगत है। सांख्यदर्शनानु–सार – "कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्[6]" के वचन से वेद की उन विविध विद्याओं में से योग विद्या भी मनःशारीरिक विद्या है। जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य करना इसका ऋग्वेद में पुष्टप्रमाण मिलता है। मनुष्य अपना मन ईश्वर में स्थिर करें। जो सर्वत्र व्यापक है। अतः हम सब मिलकर उसकी स्तुति करें–

**युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।**
**वि होत्रा दधे वयुनाविदेकदन्मही देवस्य सवितुः परिदृष्टिः।**

---

*एसोसियेट प्रोफेसर, राज पी. जी. कालेज, किशनगढ़ अजमेर (राजस्थान)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋग्वेद के अनुशासन से ज्ञात होता है कि ऋचाओं में गौतम ऋषि मरूद्– देवताओं का अह्वान कर उनसे ज्योतिप्राप्ति की प्राथना करते है– " हे सत्य के बल से सम्पन्न मारूतों! आपकी महिमा से परमतत्त्व (मोक्ष) हमारे समक्ष प्रकाशित हो जाए– विद्युत्सम अपने प्रकाश से राक्षस का विनाश करो।" यहाँ मंत्र में मरुत् देवताओं से योगपरक अर्थ करने में पञ्चप्राण–प्राण, अपान समान, उदान, व्यानका भी ग्रहण हो सकता है।[8]

योग करने वाले मनुष्य जब ब्रह्म ज्ञान के लिए अपने मन को पहले ईश्वर में युक्त करता है तब परमेश्वर उनको कृपा से युक्त करता है। उसका पुष्टप्रमाण यजुर्वेद में सुस्पष्ट है।[9]

**युञ्जानः प्रथमं मतस्तरत्त्वाय सविता धियः।**

हम लोग विद्या से बलवान व ऐश्वर्यशाली बनकर ईश्वर का ध्यान करते हैं। बार – बार योगाभ्यास से मानसिक एवं शारीरिक बल बढ़ाते हैं इस प्रकार का प्रमाण भी यजुर्वेद के मंत्रों ये दृग्गोचर है।[10]

**योगे–योगे तवस्तरं वाजे–वाजे हवामहे।**
**सखाय इन्द्रमूतये।।**

उपर्युक्त इन प्रमाणों के अतिरिक्त यजुर्वेद के अन्य मंत्र में भी योग सुपरिभाषित करते हैं–

**युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सर्वे।**
**स्वार्ग्याय शक्या।**[11]

अर्थात् हम सब को उत्पन्न करने वाले परदेव ईश्वर की आराधना रूप में यज्ञ में लगे हुए मन द्वारा ईश्वर की प्राप्ति के लिए पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करें।

अथर्ववेद के अनुशीलन से योग विद्या से सम्बन्धित अनेक जानकारी प्राप्त हैं– अथर्ववेद की ऋचा में राजयोग की प्राणयाम प्रणाली से होने वाले शक्ति के आरोहण का वर्णन प्रतीकात्मक मात्रा में वर्णित है । एक ऋचा में पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ क्रमशः अन्न, प्राण और मन की भूमिकाओं के प्रतीक हैं।

**पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमरिक्षाद्.....**

अथर्ववेद में आठ चक्रों और नौ द्वारों से युक्त हमारी यह देहपुरी एक अपराजेय देवनगरी है।

---

1. मनुस्मृति – 2 आध्या./7
2. द्रष्ट्व्य मनुस्मृत– 12/97
3. महर्षि दयानन्द कृत– ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– ब्रह्मविद्याप्रकरणे।
4. सायणकृत– ऋग्वेदभाष्यभूमिका– आदौ।
5. ऋग्वेद – म. 1/17/मं.7
6. सांख्य दर्शन 6–4
7. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका म.द.स.कृत– उपसनाविषये द्रष्टव्य
8. द्रष्टव्य – यजुर्वेद– अध्याय 11/मंत्र–1
9. द्रष्टव्य – यजुर्वेद– अध्याय 11/2
10. वही– यजुर्वेद– अध्याय11/4
11. ऋग्वेद 1/86/9–10



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसमें एक हिरण्मयकोश है, जो ज्योति और आनन्द से परिपूर्ण हैं । चेतना के आरोहण के क्रम में योग को जो अनुभूतियाँ होती है।[12]

**अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।**
**तस्यां हिरण्मयः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।**

वेदो में सूक्ष्मरूप से वर्णन है तथा इससे अधिक योग का प्रतिपादन उपनिषद् ग्रन्थों में दृष्टिगोचर है जिनका केवल नाममात्र ही उल्लेख किया जा रहा है – जैसे कठोपनिषद् एवं योगतत्त्व के अलावा भी – उद्वयतारक , अमृतनाद, अमृतबिन्दु, क्षुरिक, तेजबिन्दु त्रिशिखब्राह्मण दर्शन ध्यानबिन्दु, नादबिन्दु, ब्रह्मविद्या, योगचूड़ामणि योगकुण्डली महावाक्य आदि उपनिषद् से भी रोचक वर्णन प्राप्त है।

स्मृतिशास्त्रों में योग निरूपण :– स्मृति शब्द सामान्य रूप से स्मरण, चिन्तन तथा धर्मशास्त्र का द्योतक है। मनु के अनुसार " धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः" कहा है। मुख्यतः ये स्मृतियाँ मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, पराशर, आपस्तम्ब, दक्ष, हारीत आदि की हैं– इनमें मनुस्मृति में प्रायः योग को ही मुख्य तत्त्व मानकर धर्मों का विश्लेषण किया गया है। मनुमतानुसार मनुष्य को सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त कर योग द्वारा आत्मा को ही देखना चाहिए–यथा– "सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः।"[14]

इनक मत में–" प्राणों का नियम वही मुख्यतः योग है।" योगी के अन्तः करण के सर्वथा शुद्ध होने पर ईश्वर के समस्तगुण उसे प्राप्त होते हैं यथा [15]

**प्राणायामैर्दहेदोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।**
**प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानरष्वारान् गुणान्।।**

महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति के आरम्भ में ही योग ईश्वर साक्षात्कार का मुख्य ध्येय निर्दिष्ट किया– **अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।।**[16]

महर्षि का कथन है कि चित्त की वृत्तियों का सम्यक् रूपेण निरोध कर ध्यान के द्वारा सूक्ष्म आत्मा को अपने अन्तर्गत परमात्मा को देखना चाहिए। यथा **ध्यानयोगेन समर्पयेत् सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः।**[17] **प्रजापतिदक्ष ने अपनी स्मृति की प्रस्तावना में कहा है–**[18]

**लोको वशीकृतो येन चात्मा चापि वशीकृतः।**
**इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम्।।**

अर्थात् योग से ही मनुष्य सम्पूर्ण संसार को वश कर इन्द्रियों को निवृत्त कर सकता है –

---

12. अथर्ववद 4/14/13
13. वही 16/2/31
14. कल्याणपत्रिका – योगतत्वांक के पृ. सं. 207 पर
15. मनुमहर्षि कृत– मनुस्मृति के 6 अध्या. 65 श्लोक
16. मनुमहर्षि कृत– मनुस्मृति के 6 आध्या., 72 श्लोक
17. याज्ञवल्क्य स्मृति– 11/17
18. या. स्मृ. 3/4/64



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**बौद्ध एवं जैन धर्म में योगविद्या विवेचनः–** महात्मा बुद्ध ने योग साधना हेतु अष्टमार्गों का वर्णन कर उनमें एक मार्ग " सम्यक् समाधि" का भी विवेचन किया है। बौद्धमत मे एक यथार्थ सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार कर उच्चतम चिन्तन का नाम ध्यान कहा गया है । बौद्ध धर्म यद्यपि मूलतः प्रेम का धर्म है तथापि ध्यानयोग का संसार से विरक्ति कि लिए किया गया हैं।

वैदिकेतर जैन बौद्ध दर्शन में यद्यपि ईश्वर सृष्टिकर्ता के रूप में अमान्य है तथापि आत्मा पुण्यपाप, परलोक और मोक्ष तत्त्वों को मानते हैं। अतः योगविषयक अवधारणाएँ प्राप्त है योगार्थ में जैनाचार्यों ने योगपरिभषा इस प्रकार दी है– **मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र निरुध्यते।**[19]

आचार्य भद्रसूरि ने योग को इस प्रकार परिभाषित किया।[20]

**सक्खेण योजणाओं जोगो।**

पातञ्जलयोगदर्शन के योगपरिभाषा को आधार मानकर श्री यशोविजय ने इस प्रकार जैनदर्शन में योग को परिभाषित किया है–

**यतो समीतिगुप्तीजां प्रपंचो योग उत्तमः।**[21]

अर्थात् मन, वचन, कर्म को संयत करने वाला धर्मव्यापार ही योग है ।

यही कारण है कि आधुनिक युग में भी भारत के सभी मतों – पंथों मजहबों, सम्प्रदायों, संगठनों के अतिरिक्त विदेशों में भी मोक्षप्राप्ति रूप परमलक्ष्य रूपी वैदिकयोग की ओर अब सबका ध्यानाकर्षण हो रहा है । तथा उ हर वि. वि. में भी योगकेन्द्र के माध्यम से पढ़ाया जाकर प्रायोगिक कार्य निरन्तर चलने से समस्त जनता जनार्दन को लाभ हो रहा है।

**योग विद्या की व्युत्पतिः–** उपर्युक्त वैदिक वाङ्मय के कतिपय मुख्यग्रन्थों का सूक्ष्म निरूपण करने के पश्चात् इतर ग्रन्थों में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है– योग शब्द युज समाधि आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में घञ् प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। ( युज़घञ्=अ) अतः योग शब्द का अर्थ है समाधि अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध योग है। योगश्चित्तवृतिनिरोधः। यद्यपि योग शब्द युजिर् योगे तथा युज संयमने धातुओं से भी निष्पन्न है। जिनका क्रमशः योगफल जोड़ तथा नियमत अर्थ होगा तथापि प्रथम व्युत्पत्ति समीचीन है। इसका व्युप्तत्तिपरकार्थ है– **"युज्यतेऽनेन आत्मना परमात्मना वा इति योगः।"** यदि हम वैदिक Etymilogy को देखें तो योग शब्द का अर्थ है– The word of Yoga originates from the word "Yoke" which means "to hold together of to bind"

**भारतीय दर्शनानुसार :–** "Yoga Means of binding the individual soul the Jeevatma' to the

---

19. महर्षि दक्ष को प्रस्तावना के 7/1
20. योगतत्वांक– कल्याण में प्रकाशित पत्रिका के पृ. सं. 282 पर
21. श्रीयशोविजयकृता द्वात्रिंशिका–10/1
22. श्रीहरि भद्रसूरिकृत– योगविंशिका–1
23. द्रष्टव्य– योग द्वात्रिंशिका– 30



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Universal soul, the Parmatma" इन उक्तियों से निष्कर्ष निकला कि –

(i) Relaxation at muscular

(ii) Slowness at pranic level

(iii) Expansion at mental level

**योगपरिभाषाएँ** :–विविध कालक्रमानुसार योगविद्या की संक्षेप में परिभाषाएँ अधोलिखित है–

1. **आध्यात्मानुसार** –जीवात्मा से परमात्मा का योग होना ही योग है।
2. **व्यापकार्थानुसार**– मनुष्य के व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक पक्षों का योग।
3. **पौराणिकानुसार** –शक्ति को शिव से मिलाना अर्थात् अशिव से शिव की ओर अग्रसरित होना।
4. **व्यवहारिक दृष्टि से** –योग मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक विकास का क्रम है।
5. **गीतानुसार** – योग दुःख और वेदनाओं से मुक्ति की अवस्था है।
6. **याज्ञवल्क्यानुसार** – योग की अन्तिम परिणति समाधि द्वारा मोक्ष प्राप्ति करना है।

सम्प्रति वेद तथा वैदिक वाङ्मय में कतिपय मुख्य योग स्वरूप निम्न प्रकार से दृष्टिगत है इन्हें उक्त प्रयोजनार्थ आधारभूत स्वीकारते हैं

1. **वैदिक स्वरूप**– ब्रह्य विद्या अथवा प्राणविद्या ही योग हैं।
2. **श्वेताश्वतरोपनिषदनुसार**– योगभ्यास से शरीर में हल्कापन, नीरोगता, मन की स्थिरता, शरीर में ओज की वृष्टि, रोग से छुटकारा होता हैं– श्वे. उप. 2,13
3. **कठोपनिषदनुसार**– तां योगमिति मन्यन्ते शिरमिन्द्रिय धारणम् ।

   अप्रभस्तु तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ।। – कठोपनिषद् 2, 3
4. **योगतत्वोपनिषदनुसार** – सः एवं लययोग स्यात् यो. उप. 23 अर्थात् चलते , बैठे, सोते, यानि–

   हर समय ब्रह्म का ध्यान करते रहना लययोग है। योग बिना ध्रुव मोक्ष का देने वाला भला कैसे हो सकता है? उसी प्रकार ज्ञान ही न योग भी मोक्ष कर्म असमर्थ है।
5. **आयुर्वेदानुसार** – आयुः वेदयति इति आयुर्वेदः आयुर्वेद के मूलग्रन्थ चरक संहिता के अनुसार

   शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् । चरक सूत्र– 1

   चरक संहितानुसार – मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन तथा सशरीरस्य योगाज्ञास्तुं योगमृषयो विदुः (च स 1,138)
6. **सांख्यदर्शनानुसार**– आत्मा का अपने स्वरूप को जान लेना ही सांख्य योग कहा जाता है ।
7. **पतञ्जलिमहाभाष्यानुसार** – पदेन वाचा अर्थात वाणी की शुद्धि के लिये योग का प्रयोग हुआ है।
8. **पतञ्जलि योगदर्शनानुसार** – योगश्चित्तवृत्तिनिरोध : । यो. द. 1,2

*****



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**9. योगवाशिष्ठानुसार–** 1. योगः मनःप्रशमनोपायः इत्यभिधीयते । यो. वा.

2. योगो वृति निरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्। यो. वा.

**10. व्यासभाष्यानुसार – योगस्समाधिः । व्या. भा. 1, 1**

**11. अमरकोशानुसार –** योग को ध्यान व संगति का वाचक माना है। **योगः सन्नहनोपायः ध्यनसंगतियुक्तिषु। –** अ. का.

12. महर्षि योगी अरविन्द द्वारा सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया ही योग है। जिसमें शारीरिक , मानसिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, भावनात्मक, उन्नति हो।

13. महर्षि **दयानन्द सरस्वती के अनुसार –** ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासनाविषय के अन्तर्गत कहा गया कि – योगदर्शनादि समस्त आर्य शास्त्रों में प्रतिपादित जो योग विद्या है उसे भी वेद के माध्यम से प्रदान करने वाला आदिमूल ईश्वर ही है,। ऋ भा. भू. द्र. युञ्जते मनः.. ऋ वे 5, 81. 1 स्वामीविवेकानन्दानुसार– विकास की गति में तीव्रता योग से सम्भवः पशुवत् मानव से, सामान्य मानव में महामानव से दैवी मानव से देवत्त्व का प्रादुर्भाव होना –

अब प्रश्न उठता है कि योग क्या है और क्या नही है? यह विवेच्य विषय हैः–

**योग क्या नहीं है?** योग शारीरिक चमत्कार सिद्धियों का प्रदर्शन, तांत्रिकों की हठधार्मिकता, शारीरिक उच्छल कूद, चमत्कारिता, करतब, भगत – समाधि, पानी पर चलना, आग पर चलना, काँटों पर चलना, अग्नि खाना, तलवार मुँह से भीतर डालना, एसिड पानी, जादूगर या रोप ट्रीक करना, केवल योगासन व प्राणयाम, सम्मोहित करना, कठोरता हिंसात्मकता, भौतिकता बर्बरता, शुश्कता, काम, क्रोध , मद लोभ, मोह, मात्सर्य षड् रिपुओं मे आसक्ति रखना, तनाव अवसर, अनिद्रा थकान, घटती कार्यक्षमता का नाम, मानसिक चंचलता, अविवेक, अस्थिरता, उद्वेगता, अनिर्णय की स्थिति आदि में वृद्धि होना योग नही है।

अपितु " Yoga is a science holistic living consisting of a Holistic value system featured by health and wealth, bliss & poise, harmony and efficiency,"

भारत वर्ष वैदिक काल से ही योग विद्या (ब्रह्म) में अग्रणी रहा हैं। भारतीय योग साधकों ने ब्रह्म विद्या के क्षेत्र मे जिस चिरन्तन सत्य का साक्षात्कार किया, उसकी प्रभा– स्वर रश्मि में विश्व का प्रत्येक भू – भाग आलोकित हैं। योग विद्या के क्षेत्र में चिरकाल से अद्यावधि विश्व का नेतृत्व किया हैं।

वैदिक, जैन, बौद्ध तीनों परम्पराओं में योगविद्या रूपी अध्यात्म ब्रह्मविद्याा की गरिमा यथेष्ट ज्ञान है और इसके द्वारा सम्प्राप्य योग विद्या का सीधा लाभ विश्व के प्रत्येक मानव का परम पुरुषार्थ उद्देशित किया जाता है। आधुनिक भारत के लिए इस योग विद्या का नितान्त महत्त्व दृष्टिगत है। भारतीय योगविद्या शांति अहिंसा व विश्व बन्धुत्व के आदर्श आज युद्ध की विभीषिका से त्रस्त मानवता के लिए एक आशा की किरण हैं।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदों में उदात्त राष्ट्रीय भावना

प्रो.मनसुख पी.पटोलिया*

ऋषि–मुनियों के वचन निरन्तर
कानों में मधुरस घोलें।
वेदों की अमृता ऋचायें
मानस के पट को खोलें।।

वेद हमारी संस्कृति के मूलस्रोत हैं, हमारी सभ्यता को उच्चकोटि तक पहुचानें वाले ग्रन्थ हैं। वेदों का सर्वाधिक धार्मिक महत्त्व है। आधुनिक भारत में जितने विभिन्न मतमतान्तर प्रचलित हैं उनका मूलस्रोत वेद से ही प्रवाहित होता है। वेदों की रचना का हेतु ही मनुष्य का और राष्ट्र का कल्याण करने का है। वेद सभी प्रकार के ज्ञान के सागर है। इन्हें परमात्मा ने लोककल्याण के लिए सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशित किया था। इन वेदों की पाश्चात्य विद्वानों ने भी सराहना की है। 'विद्' धातु से बने 'वेद' शब्द का अर्थ होता है ज्ञान प्राप्त करना। वेद शब्द ज्ञान का पर्याय है। वेद ब्रह्मस्वरूप मानें गयें है। वैदिक साहित्य में मुख्यत: चार वेद हैं– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में 10552 मन्त्र हैं। इनका लक्ष्य मनुष्य को ज्ञान देना ही है। यजुर्वेद में 1975 मन्त्र हैं। जो उत्तम कर्मो की और प्रेरित करतें हैं।। सामवेद में 1875 मन्त्र हैं, जिनमें ईश्वर स्मरण और साधना का वर्णन है। अथर्ववेद का विषय योग है। 'अथर्व' शब्द का शाब्दिक अर्थ एकाग्रता से है। इस वेद के 5987 मन्त्रों में राष्ट्रधर्म, समाजव्यवस्था, गृहस्थ धर्म, अध्यात्मवाद, प्रकृतिवर्णन आदि का विस्तृत एवं व्यावहारिक ज्ञान समाहित है। वेद वाक्य राष्ट्रप्रेम, देशसेवा और उत्सर्ग के प्रेरक है।

हमारे ऋषियों ने वेदों में मानवजीवन के विविध पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा प्रस्तुत की है। उनकी दृष्टि मानव के केवल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का ही मूल्यांकन नहीं करती, अपितु स्वदेशभक्ति, स्वदेशप्रेम किंवा राष्ट्रप्रेम के भावों को भी उजागर करती है। क्योंकि हमारे ऋषियों को यह तथ्य भली भांति विदित था कि अपनी सामूहिक सम्मानपूर्ण सत्ता बनाए रखने के लिए यह परम आवश्यक हैं कि अपनी धरती और देश की तन–मन धन से सुरक्षा की जाय, और तभी संभव है जब कि हम अपनी जन्मभूमि, अपनी धरती, अपने देश और अपनी राष्ट्रभूमि के प्रति निष्ठावान् रहें, उसकी

---

*राजकोट, गुजरात

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्नति के लिए क्रियावान् बनें, और उसके सम्मानित 'अस्तित्व' की रक्षा के लिए सदैव संगठित एवं जागरूक रहें।

यही सब सोचकर भारतीय ऋषियों ने यहां के जनमानस में देश–प्रेम किंवा राष्ट्रप्रेम की अदम्य भावना को भरने के लिए वेदों में अनेक स्थलों पर अपनी मातृभूमि की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, जिसे पढकर या सुनकर हमारे ह्रदय में अपने देश के लिए गौरव का भाव पनपता है।

अपने देश को, अपनी धरती को अर्थात् अपनी जन्मभूमि को माता मानने की भावना हमें सर्वप्रथम वेदों में ही उपलब्ध होती है। इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि को अपनी मातृभूमि कहकर सम्बोधित करने की शिक्षा भी हमें वेदों से ही मिलती है। वेदों में राष्ट्रीय भावना भरसक दिखाई पड़ती है। उसमें मातृभूमि की विशेषताएं, मातृभूमि में सर्वस्व की भावना, एकता तथा संगठन, नगरों के प्रति स्वाभिमान, नदियों के प्रति समादर, पर्वतों से प्रेम, स्वराज्यभावना, मातृभूमि, मातृसंस्कृति और मातृभाषा के प्रति आदर–हमें देखने को मिलता है।

मातृभूमि विषयक प्रेम का इस प्रकार वेदों में वर्णन है–

**नमो मात्रे पृथिव्यै–यजुर्वेद 9–22**
**धरती माता को वन्दना करता हूँ।**
**नमो मात्रे पृथिव्यै माहं मातरं पृथिवीं**
**हिंसिषं मा मां माता पृथिवी हिंसीत्। तै.सं. 1–8–15**

अर्थात् मै मातृभूमि को वन्दना करता हूं। मेरे से उनको कोई कष्ट न पहुंचे और उनसे मेरा कोई अहित न हो।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में मनुष्य और मातृभूमि दोनों से एक दूसरे का कल्याण हो और दोनों का अभ्युदय हो ऐसी भावना है। यहां पर 'पृथिवी' का अर्थ मातृभूमि या स्वदेश ही उपयुक्त है।

पुत्र के मन में, यह निश्चय भी रहे कि हमारी मातृभूमि हमारा कल्याण ही करेगी, तो ही मातृभूमि की सेवा एकनिष्ठ हो सकेगी–ऐसी भावना इस मन्त्र में है–

**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। (अथर्ववेद 12–1–12)**
**'भूमि स्वेदश मेरी माता है और में उनका पुत्र हूं।'**
**भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्। (अथर्ववेद 12–1–63)**

ऋग्वेद में और अथर्ववेद में मातृभूमि की सेवा करने का स्पष्ट निर्देश इस प्रकार है–

**उपसर्प मातरं भूमिम् (ऋग्वेद 10–18–10)**
**उससर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।। अथर्ववेद 18–3–49**

एतां मातरं भूमिं इस मातृभूमि की उपसर्प सेवा करें। जो विशाल मातृभूमि उत्तम सेवा करने योग्य है। इस मन्त्र में मातृभूमि सु–सेवा अर्थात् उत्तम प्रकार से सेवा करने योग्य है ऐसा स्पष्ट कहा है। हरेक वैदिक धर्मानुयायिओं को मातृभूमि की सेवा करने में तत्पर होना चाहिये। सब को सम्मिलित होकर माता



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की उपासना अवश्य करनी चाहिये। सेवा शब्द आत्मसर्वस्व का समर्पण की भावना से युक्त सेवा होनी चाहिये। इन दोनों ऋचाओं में मातृभूमि की सेवा में तत्पर रहने की घोषणा है।

अपने सभी व्यवहार मातृभूमि के विषय में श्रेष्ठ आदर व्यक्त करने वाले ही होने चाहिये ऐसी भावना इस मन्त्र में है। **यद्वदामि मधुमत्तयद्वदामि।**

**यदीक्षे तद्वनंति मा।। (ऋग्वेद 12–1–58)**
**मैं जो बोलूँगा वह तेरे विषय में मधुरता से युक्त ही होगा।**
**और जो मैं देखूँगा वह भी मेरी दृष्टि से योग्य ही होगा**

मातृभूमि का द्रोह न करने के विषय में वेद का उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है–

**ये गामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम्।**
**ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते।। (अथर्ववेद 12–1–56)**

इस मातृभूमि पर के समग्र ग्राम, अरण्य, सभा, युद्ध और समितियों में हम उनका शुभ ही बोलेंगे। मनुष्य गांव में हो या नगर में विचरता हो,, अरण्यों में संचरता हो, सभा और सत्संग में बैठा हो या युद्ध में प्रवृत्त हो, सभी जगह में या प्रत्येक पल में मन में मातृभूमि की दृढ़ भक्ति रखने की घोषणा की है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में देश को समर्पित होने की भावना इस तरह प्रगट होती है–

**उपस्थाते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः।**
**दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहतः स्याम।। (अथर्ववेद 12–1–62)**

हे मातृभूमि! हमें जहां आसरा मिला है वह तेरा बाहुपाश रोग और घसारे से मुक्त रहे। हम जागरूक और दर्शनीय दीर्घायु से जीयें और हमारा जीवन आपको समर्पित करें।

अपने राष्ट्र में सजग होकर नेतृत्व करने हेतु एक मन्त्र इस प्रकार है–

**वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।। (यजुर्वेद 9–23)**

हम अपने राष्ट्र में सावधान होकर नेता बनें। यहां 'पुरोहित' शब्द का अर्थ नेतृत्व देने वाला है।

**'गायत्री परिवार' में यह मन्त्र प्राणमन्त्र है।**

राष्ट्र कल्याण की श्रेष्ठ भावना इस मन्त्र में ऋषि ने की है–

**ॐ आ ब्रह्मब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्**
**अस्मिन्राष्ट्रे राजन्य ईषव्यः**
**शूरो महारथो जायताम्**
**दोग्ध्री धेनुर्वोढानड़्वानाशुः सप्ति**
**पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः**
**सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्।**
**निकामे निकामे नः वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः**
**पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।। यजुर्ववेद 22–22**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस राष्ट्र में ब्रह्मतेज से दीप्त ब्राह्मणों का जन्म हो, बाणादि आयुधों में कुशल शूर महारथी राजपुत्र उत्पन्न हों, पयस्विनी गायें उत्पन्न हों, बहिष्ठ पैदा हो, तीव्रशक्तिशाली वेगवान् घोड़े उत्पन्न हों, नगर की रक्षा कर सकें ऐसी वीरांगना और रूपवती स्त्रियां उत्पन्न हों, राष्ट्र के पुरुषों को तरुण, विजयशाली, रथ–निपुण, सभा में कुशल शूरवीर पुत्र उत्पन्न हों। आवश्यकतानुसार मेघवृष्टि हो, औषधि फलवती रहे और हमारा योगक्षेम चलता रहे।

ऋग्वेद के 'इन्द्र–सूक्त' में परमात्मा से स्वराष्ट्र के लिये धन–धान्यवान् पुत्रों से समृध्ध होने की कामना की गयी है–

**स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं वरुणं रयिणाम्।**
**चर्कुत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयि दाः।। ऋग्वेद 10–47–2**

हे परमैश्वर्यवान्! आप हमे धन–धान्य से ऐसी संतान प्रदान कीजिये, जो उत्तम एवं अमोघ शस्त्रधारी हो, अपनी और अपने राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हो तथा न्याय, दयादाक्षिण्य और सदाचार के साथ जन–समूह का नेतृत्व करने वाली हो, साथ ही नाना प्रकार के धनों को धारण कर परोपकार में रत एवं प्रशंसनीय हो तथा लोकप्रिय एवं अद्भुत गुणों से सम्पन्न होकर जन–समाज पर कल्याणकारी गुणों की वर्षा करने वाली हो।

वेदों का ऐक्य समष्टि विश्व तक विस्तारित है और अन्त में स्वसुख में लीन होता है। **मित्र की दृष्टि से प्राणीमात्र को देखने** के लिए ऋषि इस मन्त्र में कहते हैं–

**मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।**
**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। यजुर्वेद 36–18**
मित्र की दृष्टि में देखूँ प्राणीमात्र को
मित्र की दृष्टि से देखें परस्पर को हम।

मानवजाति को संगठित होने को और एक ध्येय के लिये कार्य करने की शिक्षा भी ऋग्वेद देता है। इन मन्त्रों में राष्टैक्य की कामना ऋषि करते हैं–

**1. सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। ऋग्वेद 10–191–2**
**2. समानो मन्त्रः समितिः समानी।**

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# सीता की अग्नि–परीक्षा प्रसंग का संस्कृत नाटकों में निरूपण

डॉ. दिनेशचन्द्र चौबीसा*

नाटक में लाकवृत्त की अनुकृति, विविध भाव–आस्थाओं तथा प्रख्यात इतिवृत्त का सफल गुंफन होने से साहित्य की यह विधा मनुष्य–जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। यही कारण हैं कि रामायण एवं महाभारत सदृश ऐतिहासिक काव्य हजारों वर्षों से जनमानस के प्रेरणास्त्रोत बने रहे हैं। संस्कृत के प्रमुख नाट्यकार इन्हीं काव्यों को अपने नाटकों का आधार बनाकर, समकालीन परिवेश की यथास्थिति का निरूपण कर लोगों को उत्प्लावित करते रहे हैं।

रामायण हमारी संस्कृति का आधार स्तम्भ ग्रंथ है। इस काव्य के युद्धकांड के उत्तरार्द्ध में सीता की अग्नि–परीक्षा प्रसंग का निरूपण हुआ है। संस्कृत नाटयकारों ने इस प्रसंग को अत्यन्त सुन्दरता के साथ नाट्यकृतियों में गुंफित करके तत्कालीन समाज की रूढ़ि–परम्पराओं मूल्यों–मान्यताओं पर अपेक्षित प्रकाश डाला है। रामायण पर आधारित संस्कृत नाटकों में सीता की अग्नि–परीक्षा प्रसंग का, उसके पीछे निहित कारणों, नैतिक मूल्यों, मान्यताओं तथा सैद्धान्तिक जीवन–व्यवहार से सम्पृक्त सामाजिक नियम एवं उससे उत्पन्न जीवन संघर्षों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

रामायणकालीन समाज में उस स्त्री का जीवन दूभर रहा है जिसका पति किन्हीं कारणवश उससे दूर रहा है। पति से दूर रहने पर उसके चरित्र की निर्दोषता एवं सतीत्व पर प्रश्नचिह्न लगते रहे हैं। नारी की निर्दोषता एवं शुद्ध सतीत्व का साक्षी स्वयं उसका पति होने पर भी उसे शंका की दृष्टि से देखा जाता रहा है।

ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर स्त्री को अन्तःकरण की शुद्धता के बहाने अग्नि–परीक्षा करवा कर उसकी पवित्रता का परिचय देना आवश्यक समझा जाता रहा है। रामायण के युद्धकांड के उत्तरार्द्ध में सीता के चरित्र पर संदेह करके राम उन्हें स्वीकार करने से इनकार करते हैं। ऐसी स्थिति में सीता श्रीराम को उपालम्भपूर्ण उत्तर देकर, अपने सतीत्व की परीक्षा के लिए अग्नि के समक्ष पहुँच कर कहती है कि–

यथा मे ह्रदयं नित्यं नापसर्पति राघवः।
तस्य लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।।

---

*बड़ोदरा, गुजरात

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो मेरा हृदय क्षणभर के लिए भी कभी राघवेन्द्र से दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत् के साक्षी अग्निदेव मेरी रक्षा करें।

यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तस्य लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।।

मेरा चरित्र शुद्ध है फिर भी रघुनन्दन मुझे दूषित मान रहे हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलंक होऊँ तो सम्पूर्ण जगत् के साक्षी अग्निदेव मेरी सर्वतः रक्षा करें। और इतना कहकर सीता अग्नि की परिक्रमा करके निःशंक चित्त से उस प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर गयी।

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशंकेनान्तरात्मना।।

यहॉ अग्निदेव ने जन्मना तपःपूत सीता को चिता से उठाकर, श्री राम को समर्पित करके उनकी पवित्रता को प्रमाणित किया है और अपने बचाव में उस समय राम का यह कहना है कि लोकापवाद का भय मेरे समक्ष होने से न चाहते हुए भी मैने सीताा की अग्नि–परीक्षा ली है। यह प्रत्यक्ष रूप से भावनात्मक दाम्पत्य जीवन के मूल्यों की पवित्रता के ह्रास का द्योतक है। वे स्वयं कहते हैं–

अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति।
दीर्धकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा।।

इतना ही नहीं, अपितु उनका यह कहना है यदि मैं जानकी की परीक्षा न करता तो लोग वही कहते की दशरथपुत्र राम बड़ा मूर्ख और कामी है। इसी लोकापवाद व कुल के कलंकित होने के भय से बाध्य होकर उनके द्वारा शुद्धि परीक्षा का कठोर निर्णय सीता को सुनाया गया।

रामायण की इसी हृदय विदारक घटना को संस्कृत नाट्यकारों ने भावनात्मक रूप से सामाजिक चिन्ता का विषय बनाकर अत्यन्त सूक्ष्मता से नाटकों की मूल कथातंतु में गूंथा तथा स्त्री के सतीत्व एवं चारित्रिक पावनत्व की सापेक्षता, स्त्री स्वातंत्र्य की उपेक्षा से व्यथितमना तत्कालीन प्रस्थापित सामाजिक मूल्यों एवं मानदंडो को सहृदय सामाजिकों के सामने लाकर उन्हें इस प्रश्न पर सोचने को बाध्य किया है। लोक मर्यादा के पालन में वचनबद्ध राम के लिए जन्मना पवित्र सीता का अग्नि में प्रवेश का उल्लेख 'महावीरचरित' नाटक में भी हुआ है। 'महावीरचरित' के सातवें अंक में त्रिलोक में विचरण करने वाले प्राणियों को सावधान करके कहा गया है कि 'वसु, सूर्य, रुद्र से युक्त साक्षात् इन्द्र साध्वी सीता का अभिनन्दन कर रहे हैं, जो अग्नि में बैठकर अपनी शुद्धता का परिचय दे चुकी है। संसार की मर्यादामयी सीता का  हे रघुनन्दन! आप आदर करें। इसके बाद अलका उपास्थित होकर सूचना देती है कि 'ये देवगण भी रावण के घर में रहने के कारण लगने वाले कलंक शंका को मिटाने के लिए आग में प्रवेश करके अपनी पवित्रता का परिचय देनेवाली सीता का अभिनन्दन कर रहे हैं।'

'उत्तररामचरित' नाटक के प्रथम अंक में दुर्मुख प्रसंग में भी सीता की पवित्रता की श्रेष्ठता सूचक अग्नि परीक्षा को राम याद करते हुए कहते हैं कि– 'हाय हाय ! धिक्कार है। सीता को पराये घर में



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहने का जो कलंक (अग्नि में शुद्धि आदि) अनेक उपायों से शान्त कर दिया गया था, वही यह भाग्य के दुष्परिणाम से फिर पागल कुत्ते के विष के समान सर्वत्र फैल गया है। दामोदर मिश्र के 'हनुमन्नाटक' में हनुमानजी के कहने पर सीता राम को प्रणाम करना चाहति है तब राम दूर हट जाते है तथा उपस्थित लोगों को सम्बोधित कर कहते हैं कि 'हे महानुभावों ! यद्यपि मेरी प्रिया सीता पतिव्रता है तथापि यह बिना परीक्षा के मुझे कैसें छू सकती है।' इसका उपालम्भ पूर्ण प्रयुत्तर देते हुए कवि ने सीता के मुख से अक्षरशः वही कहलवाया है जो रामायण में अग्निदेव को सम्बोधित करके सीता ने कही है। यथा– (सत्वरं ज्वलत्पावकमुपगम्य भो भगवन् अग्ने!)

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह ममगं पावकं पावक त्वं
सुललितफलभाजा त्वं हि कर्मैकसाक्षी।।

यदि मेरे मन में, वचन में, जागृत अथवा सुप्तावस्था में भी श्री राघवेन्द्र से अन्य किसी पुरुष में पतिभाव हुआ हो,तो आप मेरे इस देह को जला डालिये, क्योंकि आप सबको पवित्र करने वाले तथा अच्छे कर्मों के साक्षी हैं।

'हनुमन्नाटक' में सीता अपने मन की बात को सबके समक्ष स्पष्ट कर जलती हुई अग्नि में अपने शरीर को गिरा देती है। राम अग्नि में स्थित जानकी के विकसित मुख को देखकर देवताओं से पूछते हैं– 'क्या अंगारों के बीच यह कमल खिला है।

नाट्यकार शक्तिभद्र 'आश्चर्यचूडामणि' में रामायण के ही प्रसंग को आधार बनाकर अग्निपरीक्षा प्रसंग को निरूपित करते है। 'आश्चर्यचूडामणि' में सुग्रीव तब तक लंका में प्रवेश करना उचित नहीं समझते हैं जब तक सीता देवी लंका से निकलकर बाहर न आ जायें। राम के आदेश से सुग्रीव सीता को लेने के लिए जाते हैं तब लक्ष्मण राम को कर्तव्य निर्वाह की सीख कुछ इस प्रकार से देते हुए कहते हैं कि– स्त्रियों का स्वभाव सुख का अभिलाषी होता है। राक्षस कूर होते हैं। हम उनसे दूर रहे हैं, अतः देवी के अन्तःकरण की शुद्धता की परीक्षा होनी चाहिए।' यहां महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अन्तर्द्वन्द्वों से घिरे राम को सीता की अग्नि–परीक्षा लेने का रामायण में कहीं उल्लेख नहीं है। नाटक में राम को सीता के चारित्र्य के विषय में लोग क्या कहेंगे? इस बात की चिन्ता उनके मन में बार बार उठती है। उसी समय सुग्रीव सीता को लेकर प्रवेश करते हैं और सीता आभूषणों से मंडित है, यह अनसूया के वरदान का प्रभाव है। परंतु इस तरह आभूषणों से सुसज्जित सीता को देखकर राम उसके पतिव्रताधर्म पर आक्षेप करते हैं। पति के वियोग में पतिव्रता नारियों का आभूषण से सुसज्ज होना वर्जित रहा है। अतः मेरे से वियोग की स्थिति में सीता के लिए भी आभूषणों का त्याग समुचित था, किन्तु इसके विपरीत इसने तो प्रसाधन किया है, जो पतिव्रता नारी के चरित के प्रतिकूल है, अतः इसका चरित्र सन्दिग्ध है। राम के इस कथन पर सीता का स्वगत मनोमंथन हृदय विदारक है– 'हाय ! अनसूया का वरदान भी इस समय मेरे



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिए अभिशाप बन गया है। हनुमान्‌जी भी अलंकृत सीता को देखकर राम से सीता को दंड देने की बात करते हैं। सीता चौतरफ से हो रहे वाग्प्रहारों से व्यथित है तथा कोई और विकल्प जीवन की आशा न देख राम से कहती हैं कि मैं आपके आदेश से अग्नि में प्रवेश करना चाहती हूँ। अग्नि–प्रवेश के अवसर पर सीता राम को, अयोध्या में निवास करने वाले गुरुजनों को प्रणाम कर, साथ ही लक्ष्मण को 'गुरुजनों का आज्ञाकारी बनो' ऐसी सीख देकर तथा भरत व शत्रुघ्न को मन से याद करके अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं। अग्निदेव स्वयं दोष रहित सीता को आगे करके देवताओं के सम्मुख पृथिवी पर प्रकट होते हैं।

इस तरह सीता की अग्नि–परीक्षा प्रसंग को नाटककारों ने रामायण से ग्रहण कर अपनी कृत्तियों में इसे निबद्ध किया है। कवि जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' नाटक में इस प्रसंग को रामायण की मूल कथा से अलग रखकर कवि कर्म–कौशल एवं अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। प्रस्तुत आलेख में सीता की अग्नि परीक्षा प्रसंग का सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना उद्देश्य नहीं रहा है अपितु नाट्यकारों ने इस प्रसंग को सामाजिक तौर पर किस रूप में उठाया है, इसे देखना मात्र रहा है।

**संदर्भ सूची**


1. रामायण, युद्धकांड, सर्ग 115/17–21 पृ. 558
2. वही, 116/25 पृ. 560
3. वही, 116/26 पृ. 560
4. वही, 116/27 पृ. 560
5. वही, 116/29 पृ. 560, 118/10, पृ. 564
6. वहीं, 118/13 पृ. 564
7. वहीं, 118/14 पृ. 564
8. महावीरचरितम्, 7/3 पृ. 301
9. वही, 7/4 पृ. 301
10. उत्तररामचरितम्, 1/40, पृ. . 119
11. हनुमन्नाटकम्, अंक–14, पृ. 240
12. वही, 14/54, पृ. 240
13. इति ज्वलन्तीवदहनान्तराले देहं चिक्षेप। हनुमन्नाटक, 14 अंक, पृ. 24
14. वही, 14/56, पृ. 241
15. आश्चर्यचूडामणि, 7/12, पृ. 232
16. वही, 7/16 पृ. 235
17. वही, अंक–7, पृ. 238
18. शाधि ! देहि ! यथार्हं दण्डमस्याः। वही, पृ. 240
19. वही, 7/19, 244।


******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# भारत में स्त्री–आन्दोलन का इतिहास

डॉ. वीणा द्विवेदी*

भारत में स्त्री आन्दोलन तीन कालखण्डों में बाँटा जा सकता है प्रथम कालखण्ड स्वतंत्रता के पूर्व, दूसरा स्वतंत्रता के बाद, तीसरीं 1990 के बाद। अन्तराष्ट्रीय महिला आन्दोलन की तरह प्रथम कालखण्ड में उदारवादी चिन्तन का प्रभाव रहा। आधुनिक भारत में ब्रिटिश साम्रज्यवाद के दौर में स्त्री प्रश्नो की चर्चा राष्ट्रवादी आन्दोलन तथा सुधारवादी आन्दोलनो के केंन्द्र में रही।1829 लार्ड बेन्डीक्ट ने राजाराम मोहन राय की पैरवी पर जब सती विरोधी कानून पारित किया तो परामपरा बनाम आधुनिकता के विवाद में स्त्री प्रश्नो की चर्चा एक विमर्श का रूप लेने लग गयी। इस कालखण्ड में स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह रोकथाम आदि मुद्‌दों पर ना केवल विमर्श हुआ बल्कि सुधारको ने इस संबन्ध में कानून भी पास करवाये और कानून को सख्ती से लागु करने के लिए प्रशासन व जनमत पर हर तरह का प्रभाव डालने की कोशिश की गई इस कालखण्ड के दौरान आम तौर पर स्त्री प्रश्नो की चर्चा में अग्रणी पुरूष सुधारक थे। जो एक तरफ समाज को पुरानी कालबाहय हो चुकी दमनकारी प्रथाओं से मुक्त कराना चाहते थे तो दुसरी तरफ वे साम्राज्यवाद के विरोध में राष्ट्रवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि बना रहे थे। ऐसे में स्त्री शिक्षा जिन दूर–2 कोनो तक पहुँची वहां से स्त्री चेतना की आवाजे भी मुखर हुयी। चाहे वो सावित्री बाई फुले, पण्डिता रमा बाई सरस्वती, रमाबाई रानडे, हो। यह कालखण्ड सुधारवादी कालखण्ड था। स्त्रीयाँ अभी भी सार्वजनिक जीवन से दूर रखी जाती थी और इन सभी विचारको ने इस बात पर प्रहार किया और परम्परा और धर्म के नाम पर स्त्रीयों को अपने विकास से दूर रखना अमानवीय सोच है। भारतीय नारीवाद की नीव जाति, पितृसता ,वर्ग इन तीनो के आधार पर होने वाले स्त्री के दमन के विश्लेषण के रूप में रखी गयी। भारतीय नारीवाद शुरूआत से ही धर्म आधारित व्यवस्था में स्त्री के दमन को कटघरे में खड़ा करता रहा है।

स्वतंत्रता पूर्व कालखण्ड में दूसरा अहम पड़ाव है राजनैतिक सहभागिता के रूप में नारीवादी विमर्श का विकास इस दौर की शुरूआत भले ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्थापना के साथ हुआ हो परन्तु इसका उभार गांधीवादी, राष्ट्रवादी आन्दोलन के साथ हुआ राजनैतिक रूप में स्त्रीयाँ सार्वजनिक जीवन में गतिशील हुयी और उन्होंने अपनी उपस्थिति से ही राजनैतिक व्यवस्था व विचारधारा में कई सवाल खडे किये। इस मुख्यधारा के आन्दोलन के साथ ही स्त्रीयाँ वर्ग संघर्ष पर आधारित किसान व

*प्रोफेसर, उदयपुर स्कूल ऑफ सोशल वर्क, उदयपुर

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मजदूर आन्दोलनो में भी सक्रिय रही थी । क्रान्तीकारी संगठनो में भी स्त्रीयों की अहम भूमिका रही है। इसी के साथ इस दूसरे दौर में कई राष्ट्रीय महिला संगठनों की स्थापना हुयी। इन संगठनो की उपस्थिति प्रमुख रूप से शहरो में दिखाई देती थी, परन्तु इसके बावजूद इनका गहरा असर सामाजिक चिन्तन तथा सुधार गतिविधियों पर रहा है। 1905 के दौरान महिला सेवा समाज , भगीनी समाज, आर्य महिला समाज, अन्जुमने–ए–खवातिन –ई–इस्लाम, चमनबाई मेंटेनिटी होम, आदि संगठन 20वीं शताब्दी के शुरूआत में शुरू हुए। 1910 से लेकर 20 के दौरान राष्ट्रीय स्तर महिलाओं के स्वायत संगठन स्थापित करने के प्रयास किये गये। 1917 में ऐनीबेसेन्ट के नेतृत्व में इंडियन वुमन एसोसिएशन स्थापना की गयी। कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में ऐनीबेसेन्ट ने कहा की राष्ट्रवादी आन्दोलन में स्त्रीयों की भूमिका इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उनका त्याग निस्वार्थ भाव और धैर्य उनकी पहचान है। उसी सत्र में सरोजीनी नायडू ने कहा की भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन की पूरक भूमिका में है। यह समय राष्ट्रवादी उभार के चलते स्त्रीयों को शक्ति, दुर्गा तथा सती के प्रतीक के रूप में जोड़ा जाता है। 1924 में ऑल इंडिया वुमन कोन्फ्रेंस की स्थापना की गयी । समान अधिकार महिला अधिकारों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान इन मुदो पर राजनैतिक संघर्ष व प्रतिनिधित्व करना इस संस्था अपना उद्देश्य माना। शिक्षा का अधिकार इस प्रमुख मांग को उन्होंने सहपाठी शिक्षा के रूप में तब्दील कर दिया । साथ ही विवाह के संदर्भ में अधिकार , विवाह विच्छेद का अधिकार उतराधिकार का अधिकार के लिए कानूनी सुधार करना, भरण पोषण, पति के उत्पन्न में समान अधिकार विधवाओं के हक की सुरक्षा, समान वेतन और गर्भपात का अधिकार दिया गया। ए.आई.डब्लू.सी. शुरूआत के दौर में भारत के नारीवादी आन्दोलन का सर्वसम्मत प्रतिनिधि संगठन माना जाता था। परन्तु धीरे–2 कई मूद्दो पर इस संगठन में मतभेद उभर कर आये । इस संगठन में एक समूह था जो यह मानता था की संगठन को महिला शिक्षा जैसे र्निविवाद मुद्दों पर काम करना चाहिये यह एक सुरक्षित जरिया था। किसी भी रूप में वैचारिक मतभेद की संभावना इसमें कम थी। इस संगठन में अधिकतर नेतृत्व उच्चवर्गीय कुलीन स्त्रीयों को पास था और ऐसे में यह संगठन एक दबाव समूह की तरह काम करता था। किसी भी मुद्दे पर प्रत्यक्ष मैदान में उतरने की या संघर्षरत होने की संभावना कम थी। जो संघर्ष थे वो अत्यधिक प्रतीकात्मक रूप में थे। 1940 के दौरान जब राष्ट्रीय आन्दोलन स्वतंत्र भारत के लिए उभार पर था तब महिला आन्दोलन के लिए भी महिलाओं के अधिकारो के मुद्दे गौण हो गये ।1942 के भारत छोडो आन्दोलन में बडे पेमाने पर स्त्रीयाँ आन्दोलन का हिस्सा बनी, जेल गयी, पुलिस दमन का सामना किया। यह शुरूआत 1930 के सविनय कायदे भंग के आन्दोलन से शुरू हुआ था। मानूषी इस स्त्रीवादी पत्रिका की संचालिका मुधुकेशवर मानती है कि गांधी जी ने इस देश की महिलाओं को नयी चेतना आत्म विश्वास व सम्मान सार्वजनिक जगत में दिलवाया क्योकि इन आन्दोलनों के जरिये महिलाये केवल राजनैतिक स्तर पर नेपथ्य का हिस्सा न रह कर एक सक्रिय राजनैतिक रूप से सचेत नागरिक के रूप में उभर कर आयी परन्तु साथ ही गांधी हिन्दु परम्परा के अनुयायी थे। उनके नेतृत्व में महिलायें घर परिवार के दायरे से बाहर आयी व सुधार की धारा को उन्होंने अपने व्यवहार व आचरण से आगे बढाया।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गांधी जी का इस बात पर जोर था कि स्त्रीयों का मुख्य भूमिका एक मां के रूप में जो अगली पीढी को संस्कारित करने का काम करती है यही वजह थी की गांधी ने स्वदेशी आन्दोलन को घर–2 तक पहुचाने व चरखे के माध्यम से अहिंसक सत्याग्रही आन्दोलन की नींव डालने की जिम्मेदारी महिलाओं को सौपी। 1828–29 में जब आर्थिक मंदी का दौर चला तो बडे पैमानों पर मजदूर आन्दोलनों में सक्रिय हुयी महिलाओं ने इन आन्दोलन में बडी संख्या में हिस्सा लिया। अधिकतर बडे शहरों में होने वाले ये आन्दोलन लेबर यूनियन के साथ–साथ जातीय प्रश्नों पर भी सक्रिय थे। वर्ग संघर्ष के आधार पर जो वामपंथी आन्दोलन इस दौर में शुरू हुए उस आन्दोलन में शामिल महिला मणीबाई कारा, उषा डांगे, पार्वती बाई भोर, संतोष कुमारी देवी, प्रभावती देवी आदि ने मजदूर आन्दोलन को दिशा दी। परन्तु इन संगठनो में भी गांधीवादी आन्दोलन की तरह स्त्रीयों की भूमिका एक प्रचारक संगठक के रूप में थी । स्त्रीयों की सांघीक शक्ति का इन संगठनों में महत्व था। गोदावरी परूरेकर व श्रीमती भालेराव इन्होने सरवेन्टस ऑफ इंण्डिया सोसायटी की महिला शाखा की नीव डाली। कारखानों, खदानों, आदि में होने वाले संघर्ष के सभी मोर्चो पर स्त्रियाँ सक्रिय थी। इसके बाद सविनय कायदे भंग की शुरूआत हुई जिसमें नमक का सत्याग्रह बहुत अह्म था । भारत में विभिन्न स्थानों पर नमक का सत्याग्रह किया गया जिसमें गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु यानि भारत में समुन्द्रिय प्रदेशो में महिलाओं ने भी बडी संख्या मे नमक सत्याग्रह में हिस्सा लिया। समुन्द्र के पानी को अपने साथ लाकर उससे नमक तैयार करना तथा उसे स्थानीय बाजारों में बेचना यह साम्राज्यवादी लडाई का एक प्रतीक बन गया परन्तु दांडी में यात्रा 12 मार्च से 6 अप्रैल तक गांधीजी के नेतृत्व में गुजरात के विभिन्न गांव से होकर निकली । उनमें से 71 सत्याग्रहियों में से एक भी महिला नही थी। राष्ट्रवादी महिला नेताओं के तबके से इसका प्रखर विरोध हुआ। दादाभाई नेरोजी की पोती खुरशीद नेरोज इस पर बिफर पडी। मारगरेट कजिन्स इन्होनें गांधी के इस निर्णय का अपनी किताब स्त्री धर्म में विरोध किया। तब गांधी जी कि प्रतिक्रिया थी कि राष्ट्रवादी आन्दोलन में नमक सत्याग्रह से बडी भूमिका देखते है । कमलादेवी चटोपाध्याय ने कहा गांधी जी का यह निर्णय केवल दांडी यात्रा पर ही लागू था और यह निर्णय गांधीजी से भी अधिक कांग्रेस समिति का था। इसका मुख्य कारण था कि महिलाओं की आन्दोलन की जो मुख्य मांगे थी उनमें कांग्रेस समिति राजी नही और अन्य जगहों पर नमक सत्याग्रह हुए उसमें महिलाओं की भूमिका अग्रणी थी। इससे सबक लेते हुए सरोजीनी नायडु यात्रा के आखरी दिन दांडी पंहुची और सत्याग्रह में हिस्सा लिया। कांग्रेस समिती ने अपने निर्णय को बदला और इसके बाद सत्याग्रह में महिलाओं की भूमिका पर विशेष बल दिया गया। जगह –जगह पर समिति में महिला शाखा खोली गयी। जिसमें सरोजिनी नायडू, लाडोरानी जुत्सी, कमला नेहरू, हंसा मेंहता, अवन्तिका गोखले , सत्यवती पार्वतीबाई , रूक्मणी, लक्ष्मीपति, गोषीबेन केप्टन, लिलावती मुंशी, दुर्गाबाई देशमुख, कमलादेवी चटोपाध्यय आदि महिलाएं शामिल थी। इन महिलाओं ने महिलाओं की सहभागिता को आगे बढाने के लिए जगह–जगह पर महिला संगठनों का मजबूत किया । इसका परिणाम यह हुआ की राष्ट्रवादी आन्दोलन में सत्याग्रह और महिला सहभागिता एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये। अहिंसक आन्दोलन में महिलाओं की सहभागिता अपने



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आप ने उन पर समाज में होने वाली हिंसा का प्रतिरोध बन गयी। राष्ट्रवादी आन्दोलन में क्रांतिकारी संगठन अपने आप में एक अलग धारा थी और इस धारा में कई महिलाएं शामिल थी। दुर्गा भाभी, भगत सिंह, राजगुरू, चन्दशेखर आजाद इनके साथ सक्रिय थी व कन्धे से कन्धा लडा कर क्रांतीकारी गतिविधीयों को अंजाम देने में सक्रिय भूमिका थी। भगत सिंह को लाहौर से बाहर निकालने का ज़िम्मा दुर्गा भाभी को सौपा गया था। बंगाल में वहा के गर्वनर स्टेमलि जैक्शन पर गोली चलायी परन्तु वे कामयाब न हो सके। शान्तीघोष, सुनीति चौधरी आदि को भी क्रान्तीकारी गतिविधियों के लिए आजन्म कारावास की सजा सुनाई गयीं। प्रतिलता वाडेकर, कल्पना दत्त शुरूआत में राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित थी, परन्तु बाद में क्रांतिकारी विचाराधारा की ओर मुड़ गयी। 6 फरवरी 1932 में बंगाल के गर्वनर सर स्टैनली जेक्शन कलकता विश्वविद्यालय में पदविदान समारोह में भाषण आने वाले थी चिदगांव की बिनादास जो स्नातक छात्रा थी वह अपनी जगह से उठकर मंच तक गयी और निडरता से उन्होंने छोटी दूरी से गर्वनर पर पिस्तौल दागी परन्तु इस दौरान उन्हें पकड लिया गया। बिनादास को नौ साल की सख्त परिश्रम की सजा सुनायी गयी। 1 मार्च 1932 में चिदगांव कांड के संदर्भ में 12 आरोपियों को हत्या के साजिश के जुर्म में गिरफ्तार किया गया। परन्तु क्रान्तीकारी गतिविधियाँ इससे कम नही हुयी। 13 जून 1932 को कैप्टन केमरून में धाल घाट में एक खोजी दल का नेतृत्व कर रहे थे तब उन पर गोली चलाई गयी जिसमें वे मारे गये निर्मल सेन, अर्पूव सेन व प्रतिलता वाडेकर जो इस क्रांतिकारी दल की सदस्य थी, जो वहाँ से निकल भागीं। कल्पना दत्ता अपने स्मृति चित्रों में लिखती है कि मई 1932 में मास्टर दा से मिलने धालघाट गयी थी। तडके ही पुलिस टुकडी कैप्टन केमरून के नेतृत्व में घर को घेर लिया । और केमरून में मशीनगन से गोलीयाँ बरसायी हमने भी उन पर रिवाल्वर से प्रतिहल्ला किया। कुछ ही मिनटों में स्थिति को समझते हुए अपने हाथ में हथियार लेकर उसे चलाना शुरू किया। केमरोन इस गोलीबारी में मारा गयां निर्मलदा गंभीर रूप से जख्मी हुए। केमरोन की टुकडी कुछ समय के लिए वारदात में उलझ गयी। इस दौरान "भाग निकलो" यह फरमान सुनाया गया। प्रिति जो इस दौरान भारी गोलीबारी में व्यस्त थी अचानक साथी को जख्मी देखकर वे टूट गयी परन्तु इसके बावजूद वहाँ से भाग निकलने में कामयाब हुयी। यह वाक्या हमें बताता है कि किस तरह से क्रान्तीकारी आन्दोलन में महिलाये पूरी शिद्दत से सहभागी थी और उन्होनें आन्दोलन के हर मोर्चे पर हर प्रकार की भूमिका निभायी।

### किसान,मजदूर व आदिवासी आन्दोलन में स्त्रियाँ : वाम आन्दोलन का प्रभाव

मजदुर व किसान आन्दोलनों पर देखा जा सकता है। शहरों में कारखानों और मिलों में काम करने वाले मजदुरों को अपने हक समान वेतन बेहतर कार्य स्थितियां इन मुद्दो पर संगठित करने के साथ ही 1930 के दशक से उभरे कई वाम संगठनों ने इसे साम्राज्य विरोधी लड़ाई का मोर्चा भी बनाया। मजदुरों की यूनियन बनाने में महिलाओं का भी योगदान रहा है। विमल रन्डीवे, अहिल्या बाई रागनेकर , कनक मुखर्जी, इला भट्टाचार्य आदि महिलायें कांग्रेस से विचारधारा के अलगाव के चलते अलग हुई। वह उन्होंने आदिवासी, खेतीहर मजदुर ,मील मजदुर आदि निम्नले तबके के सामाजिक समूहों में काम



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करना शुरु किया आगे चलकर इन महिलाओं ने 1970 के दशक में उभरे नये महिला आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। पार्वती मेनन अपनी किताब बेक्रिक बेरीयरर्स में उस दौरान की वामपंथी आन्दोलन से जुड़ी 12 महिलाओं के जीवन तथ्य संकलित कर प्रस्तुत करती है। इन कथानको से जो अहम बात सामने आती है वो यह की वामपंथी आन्दोलन में महिलाओं के विरोध में होने वाले अत्याचार का विश्लेषण वर्ग के आधार के होने वाले उत्पीडन के परिप्रेक्ष से किया जाता रहा है परन्तु पितृसता का ढांचा हिलाने के उद्देश्य से उस दौर में यह अन्दोलन अपनी चेतना नहीं जुटा पाता। विमल रन्डीवे , अहिल्या रागनेकर ये दोनों की बम्बई में संगठित हुए मील मजदुर आन्दोलन में अग्रणी थी। उन्होंने 1943 में ''परड महिला संघ'' की स्थापना की वह उन्होंने विशेष तौर पर महिला मजदूरों के प्रश्नो को सामने रखा जैसे मातृत्व अवकाश, समान वेतन, कार्य के घंटे इस दौरान महिलाओं की इस संगठन में सामूहिक रसोई भी चलाई। इसी तरह ''केरला महिला संघ'' की स्थापना सुशीला गोपालन ने की। मल्लुस्वराज्यम आंध्रप्रदेश महिला संघ स्थापित किया इन महिलाओं ने अलग– अलग स्थानो पर महिला संगठनो की नींव रखते हुए महिला प्रश्नों को अहम दिलाने की पहल की। इसके परिणाम स्वरूप 1981 में जनवादी महिला संगठन की स्थापना की। आदिवासियों काम कर रहे गोदावरी परूरेकर, कोमरेड डांगे इन्होने महाराष्ट्र में आदिवासी आन्दोलन की शुरूआत की आन्ध्रप्रदेश के तेलगांना प्रान्त में 1940 के अन्त में तेलगांना आन्दोलन की. ...... उसके खिलाफ यह आन्दोलन तेजी से तेलंगाना के कोनो में फैल गया परन्तु इस कर्जदारी की मुख्य वजह जो नशाखोरी थी। उसके खिलाफ दारूबंदी जैसे कार्यक्रमों को पार्टी ने तवज्जो नही दिया और उसके कारण होने वाली घरेलु हिंसा भी कभी आन्दोलन का मुख्य मुद्दा न बन सकी । तेलंगाना आन्दोन की समीक्षा करते हुए ''स्त्री शक्ति संगठन'' ने 1989 में लिखी किताब वी वर मेंकिक हिस्ट्री तेलगांना आन्दोलन में शामिल महिला कार्यकर्ताओ की कथन प्रस्तुत करती है। इन महिलाओं को इस बात का दुखः था कि वर्ग अधारित संघर्ष में जेन्डर आधारित भूमिकाओं को बदलने में यह आन्दोलन कार्यकर्ताओं के स्तर पर भी असफल रहा क्योंकि महिलाओं को इन आन्दोलनो में जो भूमिका दी जाती थी वह उनके पुरूष साथियों के लिए खाना बनाना किसी भी मोर्चे पर संगठन के लिए चन्दा इक्कठा करना ऐसे ''घरेलु'' काम करवाये जाते थे पर मुख्य मोर्चो पर उन्हे पीछे रखा जाता था।

**जाति विरोधी आन्दोलन में महिलायें**

भारत में स्त्रीवाद की नींव रखने वाली सुधारको में फुले ने सबसे पहली बार पितृसत्ता, वर्ग और जाति इनके गठजोड़ की उत्पीड़न भूमिका की व्याख्या की गई थी। उनका मानना था कि ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को अगर तोड़ना है तो शुद्राती–शुद्र और महिलायें, इन्हे शिक्षित व संगठित करना पड़ेगा तभी जातिवाद को खत्म किया जा सकता है। सत्याशोधक समाज की स्थापना करने के बाद फुले ने सम्पूर्णतया नवीनतम जीवन शैली जिसमें समानता के हर मानदण्ड पर खरा उतर सके ऐसे परिवार व समाज की संकल्पना की थी। उन्होनें वैदिक विधि से होने वाली विवाह संस्था को नकारते हुए सत्यशोधक विवाह पद्धति विकसित की गई जिसमें वर वधु अत्यन्त सादे ढंग से करबद्ध होकर एक दुसरे के साथ रहने की शपथ लेते है। वे दोनो समता शिक्षा व समाजिक सुधार के लिए ता उम्र प्रयत्नशील



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहेगे या एक दूसरे का साथ देगे यहाँ पर विवाह की संकल्पना समता आधारित संबन्धो पर देखी गयी थी। इस आन्दोलन में महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्र में अपना असर दिखाया व कई महिलायें इस सत्य शोधक आन्दोलन में सहभागी हुयी।

जाति विरोधी आन्दोलन में दूसरा अहम चरण था अम्बेडकरवादी आन्दोलन फुले की विरासत को निभाते हुए अस्पृश्यता मिटाने के लिए कई सत्याग्रहों का आयोजन किया। यह वही दौर था, जब गांधीजी सविनय कायदे भंग के आन्दोलन से साम्राज्यवाद की जड़े हिला रहे थे अम्बेडकर ने मंदिर प्रवेश, मनुस्मृति दहन आदि आन्दोलनों से ब्राह्मणवाद के लिए आचार धर्मो को तोड़ने का कार्यक्रम हाथ में लिया। इसमें महत्वंपूर्ण मोड 1927 में आया, जब महाड़ में उन्होनें एक सार्वजनिक तालाब से पानी पीया व सार्वजनिक स्थलों पर दलितों को प्रतिबन्धित करने वाली मनुवादी विचारधारा को तोड दिया। इसी समय 25 दिसम्बर को उन्होंने महिलाओं और दलितो को मानवीय जीवन अधिकार से वंचित रखने वाली मनुस्मृति का दहन किया। इस दिन को महिला संगठनों ने भारतीय महिला दिवस के रूप में घोषित किया। अम्बेडकरवादी आन्दोलन में सहभागी होने वाली स्त्रियों के आत्मकथन को मीनाक्षी मुन और उर्मिला पंवार इन्होने आमीही इतिहास गडावला (वी आलसो मेंड हिस्ट्री) इस किताब के रूप में संकलित किया । मील मजदुरो को संगठित करने वाली राधाबाई काम्बले ने लडकियों के लिए स्कूल चलाने वाली जायीबाई चौधरी , दलितो की लड़कियों में शिक्षा का प्रसार करने वाली विरेन्द्रा बाई आदि महिलाओं के आत्मकथन इस किताब में उपलब्ध होते है । शांता बाई दाणी विदरभ के अम्बेडकरवादी आन्दोलन की प्रमुख कार्यकर्ता थी। इस सभी महिलाओं ने दारू बंदी , शिक्षा प्रसार, देवदासी परम्परा का खात्मा करना आदि मुद्दों को प्राथमिकता दी। उन्होंने कई मोर्चो पर अपनी नेतृत्व क्षमता दिखाई। इन कथनों से यह साफ होता है कि दलित महिलायें पितृसत्ता के जाति, वर्ग व जेन्डर आधारित उत्पीड़न व दमन का सामना करती है व दमन के इस चक्र में सबसे अधिक उत्पीड़न का शिकार होती है।

1926 में रामास्वामी पेरीयार ने स्वाभिमान आन्दोलन की नींव रखी कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रमों को चुनौती देते हुए उन्होंने जाति विरोधी सामाजिक सुधार का रास्ता अपनाया। उनका मानना था कि कांग्रेस राष्ट्रीय एकता के नाम पर जातिगत भेदभाव के मुद्दो को दबा रही है। स्वाभिमान आन्दोलन ब्राह्मणवादी वर्चस्व हिन्दु मूल्य तथा शास्त्रपुराणों को पूरी तरह नकारता है। 1920 से लेकर 30 के दौरान चले इस आन्दोलन में ब्राह्मणवादी पितृसता को चुनौती देने वाली महिलाओं का सक्रिय सहभाग उनके आत्मकथनों से प्रस्तुत होता है। विद्युतभागवत मानती है कि पेरीयार ने महिलाओं के प्रश्नो को केवल राष्ट्रीयता का प्रतीकात्मक सूचक नही बनाया, बल्कि उन्होंने सच्चे अर्थो में स्त्री मुक्ति का पुरजोर सर्मथन भी किया। उन्होंने अपने व्याख्यानो में 'मातृत्व' की जगह अभिभावक की संकल्पना को आगे बढ़ाया। उन्होंने फुले की तरह वैदिक विवाह पद्धति को नकारते हुए उसका विकल्प प्रस्तुत किया, उनका मानना था कि सुचिता, प्रतिव्रता जैसी संकल्पनाएं स्त्रीयों के दासियत्व का सूचक है और इसीलिए इन भ्रामक संकल्पनाओं को जितना जल्दी हो सके छोड़ देना चाहिए। उन्होंने विधवा विवाह का पुरजोर समर्थन किया। वह स्त्री पुरूषों के लिए समान शिक्षा व समान कार्य के अवसर उपलब्ध हो इस बात पर जोर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिया। पेरीयार के इस आन्दोलन में स्वाभाविक रूप से महिलाओं के जीवन को पूरी तरह से बदल दिया। लीलावती जानकी जैसी कार्यकर्ताओं ने ब्राह्मणवादी धार्मिक कार्मकाण्डों का विरोध किया। जेकेश्री ने दलित व उच्चजातियों में श्रम के असमान बंटवारे पर ध्यान आकर्षित किया। परगध वल्ली ने आदि द्रविड़ महिलाओं की जीवन को प्रस्तुत करते हुए जाति व जेन्डर आधारित दमनकारी गठजोड़ को सामने रखा उन्होंने बताया कि किस तरह से दलित औरतों के उर्धवांगो के कपड़े पहनने पर जो प्रतिबन्ध था वह किस तरह से उनके दोहरे शोषण का कारण बना।

**स्वतंत्रता के बाद में स्त्री आन्दोलन**

1947 में भारत जब आजाद हुआ तब भारत ओर पाकिस्तान के बीच विभाजन हुआ इस विभाजन की त्रासदी ने कई महिलाओं को अपना शिकार बनाया गया। विभाजन के दौरान हुये दंगो में कई महिलाओं पर बलात्कार हुए व उनका अपहरण भी कर लिया गया। दोनो तरफ हुयी इस हिंसा के बाद जब दोनों देश प्रशासनिक तौर पर प्रस्थापित हुए तो इन अपहरित महिलाओं को अपने देशो को लौटाये जाने के संदर्भ में संसदो में चर्चा हुयी। भारत के संसदीय इतिहास में यह सबसे बड़ी काली छाया थी। विभाजन ने हिंसा के साथ घृणा का जो माहौल तैयार किया उसका सबसे ज्यादा कष्ट महिलाओं को भुगतना पड़ा। अमरूत कौर तथा अन्य कांग्रेस प्रतिनिधियों ने एक समिति बनायी व इन महिलाओं के आदान प्रदान का काम गरीमापूर्ण तरीके से हो इस पर ध्यान दिया। वरना संसद में स्वतंत्र भारत के सांसद इन महिलाओं का सामुहिक बलात्कार कर सजा देने की मांग कर रहे थे। ऐसे समय में जब सरकार ने स्त्री पुरूष समानता को तवज्जो देते हुए पारिवारिक कानूनों में परिवर्तन करने की इच्छा जताई तो, अपने ही पक्ष से उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा। स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री डां. बाबा साहब अम्बेडकर ने हिन्दु कोड बिल प्रस्तावित किया था। इस बिल के तहत स्त्रीयों को विवाह विच्छेद का अधिकार, उतराधिकार, दतक अधिकार, आदि दिये जाने प्रस्तावित थे। परन्तु इस बिल को पारित करने के संदर्भ में तात्कालिन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू सहमत थे। परन्तु राजेन्द्र प्रसाद तथा सरदार पटेल जैसे बड़े नेताओं के विरोध में इसे स्थगित करना पडा। परिणामस्वरूप निषेध के रूप में अम्बेडकर ने अपने विभाग से इस्तीफा दे दिया। अन्ततः हिन्दू कोड बिल के टुकडे हुए और 1955–56 में हिन्दु विवाह अधिनियम पारित हुआ जिसने महिलाओं को विवाह विच्छेद का अधिकार दिया व बहुपत्नी प्रथा से मुक्ति दिलवायी।

1950–60 के दशक में स्वतंत्रता पूर्व आन्दोलन में शामिल स्त्री कार्यकर्ता कांग्रेस सरकार का हिस्सा बन चुकी थी। भले ही ठोस रूप में महिलाओं के लिए योजनाएँ तथा उन्हे मुख्यधारा में लाने के प्रयास कमतर साबित हो रहे थे, परन्तु यह समय आशावादी था जो, 1970 के आते आते प्रतिरोध में तब्दिल हो गया। 1950 से 60 के दशक में स्त्रीवादी आन्दोलन छुटपुट आन्दोलनों का हिस्सा बन रहा था परन्तु ठोस रूप में कोई कार्य नही हुआ। इस दौरान मंहगाई के खिलाफ आन्दोलन चलाया गया जिसमें समाजवादी महिला सभा जिसकी स्थापना 1954 में हुयी थी, अग्रणी रही। तेलंगाना आन्दोलन में भूदान आन्दोलन में गांधीवादी स्वतंत्र सेनानी जयप्रकाश नारायण बिहार में विनोबा भावे का साथ देते हुए



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जमीन के पुर्नविभाजन को लेकर क्रांतीकारी पहल की गई। भूदान के सर्वोदयी पक्ष के साथ जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी विचारधारा को इस आन्दोलन में प्रवाहित कर रहे थे। उत्तराखण्ड की पहाडियों में सर्वोदय आन्दोलन ने अपनी जड़े जमा ली। गांधी के आश्रम में रहने वाली मीरा बहन व सरला बहन ने इस आन्दोलन का नेतृत्व किया जिसमें उन्होंने महिलाओं को दारू बंदी के लिए लाम बन्द किया गया। 1960 के शुरूआती सालों में इस दारूबंदी आन्दोलन का काफी प्रभाव रहा । सुन्दरलाल बहुगुणा जो पर्यावरण के क्षेत्र में एक अह्म नाम है, उन्होंने गांधीवादी गतिविधियों से नशाखोरी के खिलाफ आन्दोलन को छेड़ते हुए दारू के उत्पादक व विक्रेताओं के खिलाफ आन्दोलन छेड़ा। जिससे नशाखोरी के संदर्भ को समाज से अपना प्रतिकार प्रदर्शित किया। 1964 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी में विघटन हुआ और वह दो हिस्सो में बट गयी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी व दुसरा हिस्सा कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इन्डिया। धीरे–2 मार्क्सवादी आन्दोलन बिहार, केरल, पश्चिमी बंगाल के गांवो में फैलने लगा। बिहार के नक्सलवादी गांव में जमीनदारों के खिलाफ जंग छेडते हुए। खेतीहर मजदुरो ने जमीन पर कब्जा कर लिया '' जो जोते उसकी जमीन'' यह नारा बुलंद हुआ। जगह जगह पर किसान समिति बनायी गयी। बिहार, बंगाल के गांवों में यह आन्दोलन तेजी से फैलता गया। जहाँ आन्दोलनकारियों ने जमींदार के चंगुल से जमीन को मुक्त कराया वह प्रदेश ''लिबेरेटेड जोन'' कहलाया। इसी तरह आन्ध्रप्रदेश, उडीसा में भी यह आन्दोलन फैल गया। केरला के मलाबार तट पर लाल सैन्य का स्थान तैयार हो गया। इन सभी जगहों पर सक्रिय राजनैतिक समूह अलग–अलग थे। किसी एक विचारधारा या पक्ष में बंधे हुए नही थे। 1969–70 के दौर में माओवादी प्रभाव के साथ भारतीय कम्युनिट पार्टी (एम.एल.) की स्थापना हुई। 1972 के दौरान बंगाल में पुलिस ने एनकाउन्टर पद्धति को अपनाते हुए कई क्रांतीकारियों को मार गिराया । अमानुष दमन के साथ में युवाओं का नेतृत्व मिलें इस आन्दोलन को पूरी तरह दबा देने की कोशिश की गयी। इन आन्दोलन किसान व खेतीहर मजदुरों का था परन्तु इसका नेतृत्व करने वाले युवा विद्यार्थी थे। जो शहरो से गांवो में जाकर बस गये थे।इस आन्दोलन का दमन किया गया। (इस आन्दोलन का दमन करने वाले भी कम्युनिस्ट थे) इस आन्दोलन में कई युवा छात्राएँ भी शामिल थी, जिन्होने दमन के दौरान राज्यतंत्र अपरिमित हिंसा का सामना किया।

इसी आन्दोलन का एक दूसरा छोर उत्तर महाराष्ट्र तात्कालिन धुलिया जिले के शहादा तहसील में हुए आदिवासी आन्दोंलन से मिलता हैं। यह आन्दोलन भी वामपंथी विचारधारा से प्रेरित था, परन्तु यह वर्ग संहार की संकल्पना को नकार रहा था। कर्ज में डुबे हुए आदिवासियों ने 1972 के अकाल के बाद संगठित होना शुरू किया। नक्सलबाडी आन्दोलन की तरह युवा छात्र छात्राओं ने इसका नेतृत्व किया। इस आन्दोलन में महिलाओं के प्रश्न को धीरे–धीरे केन्द्र में लाया गया। मारियामीज जो जानीमानी पर्यावरणवादी स्त्रीवादी चिन्तक थी उन्होनें कहा कि ''शहादा आन्दोलन नक्सलबाडी'' का विकल्प था। इस आन्दोलन के दौरान कर्ज में डूबे आदिवासी औरतों ने यह माना कि उन पर हो रही हिंसा और कर्ज का सीधा सम्बन्ध है। आमतौर पर दारू /नशाखोरी के कारण उनके पति साहुकारो से पैसे उधार लेते है और भी सूतखोरी के चलते धीरे–धीरे ये कर्जे उनकी जमीनों को निगल जाते है। दारू पीकर पति



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा मारपीट एक आम घटना थी। इसलिए शहादा की आदिवासी महिलाओं ने अपना संगठन बनाकर दारूबंदी के विरूद्ध मुहिम शुरू कर दी। यह दारू बंदी आन्दोलन उतराखंड के दारू बंदी आन्दोलन से भिन्न था। जहाँ पर उतराखंड में महिलायें दारू बेचने वाले विक्रेताओं तथा उनके दुकानों के बाद प्रदर्शन तथा सत्याग्रह कर उन्हे शर्मिदा करते हुए शांति पूर्वक अपना विरोध जता रही थी। वहाँ शहादा की आदिवासी महिलाएं केवल विक्रेताओं और दुकानों के बाहर प्रदर्शन तक ही सीमित नही रही। उन्होंने बोतलो को फोड़ना, दुकानों को पूरी तरह से बंद करना, साथ ही वे उन पतियो को भी सार्वजनिक रूप से पिटने या अपमानित करने से नही चुकती थी जो अपनी पत्नीयो को पिटते थे। पहली बार भारत में महिलाओं के खिलाफ होने वाली घरेलु हिंसा का मुद्दा सार्वजनिक रूप से सामाजिक आन्दोलन का मुद्दा बना। शहादा आन्दोलन ने साथ ही आदिवासी किसानो के अधिकार को लेकर के आन्दोलन में एक नयी दिशा दी, क्योंकि यहाँ पर जमींदार विरूद्ध किसान ऐसी आसान लडाई नही थी यहाँ पर परम्पारिक रूप से खेती करने वाले आदिवासियों के पास जमीन के पट्टे नही थे, इसलिए राजस्व व वन विभाग की दृष्टि से वे किसान नही थे। वनविभाग की दृष्टि से वे वन विभाग की जमीन पर अतिक्रमण कर रहे थे। इस लड़ाई को सूतखोर साहुकारों के खिलाफ की लडाई में तब्दील किया गया। सुझाता घोसकर व मीरा सवारा बताती है कि इस आन्दोलन ने पहली बार यह प्रस्तापित किया विरोध केवल दारू का नही हैं, बल्कि उस नशाखोरी से उत्पन्न होने वाली विकृति व महिला विरोधी हिंसा का है। चूँकि इस हिंसा के लिए दारू पीना एक नियमित होता था। इसिलिए दारू बंदी का काम हाथ में लिया गया।

गुजरात में इसी दौरान एक नया प्रयोग जन्म ले रहा था। अहमदाबाद के मील मजदुरों की यूनियन जो स्वयं गांधीवादी विचाराधारा से प्रेरित थी, जिसे इला भट्ट ने 1972 में "कपड़ा मजदूर समिति" के रूप में शुरू किया। कपड़ा मजदुरों की पत्नीयों को वह उस इलाके में छोटे स्तर पर उत्पादन करने वाली अथवा ठेले वाली औरतों को उन्होंने संगठित किया। इन स्वरोजगार से जुडी औरतों का संगठन कहलाया " सेल्फ ऐम्पलाईड वुमन एसोशिएशन –सेवा' ' सेवा को यूनियन के रूप में पंजीकृत करने में काफी दिक्कत थी, क्योंकि "ट्रेड युनियन अधिनियम" के तहत यह आवश्यक था कि युनियन से जुड़े मजदूर सदस्य किसी मील या कारखाने में काम करते हो , चूँकि ये औरतें स्वरोजगार से जुड़ी थीं इसीलिए वह किसी एक स्थान या कारखाने का हिस्सा नही थी। दूसरा यह की आमतौर पर मील मजदुरों की लड़ाई बेहतर मजदूरी व कार्य स्थितियो के लिए अपने मील मालिक के खिलाफ होती थी। परन्तु छोटा मोटा घर पर उत्पादन करने वाली ये औरतें अपने नियोक्ता से भी अपरिचित थी। इनके पास आने वाले माल व इनसे तैयार पक्कामाल मिलों तक पहुँचाने का काम ठेकेदार करता था। उसी तरह ठेला चलाने वाली औरतों को पुलिस, प्रशासन तथा प्रदायक परेशानी का सबब बनते थे। "सेवा" ने इन महिलाओं को इस उत्पीडन से छुटकारा दिलाने के लिए एक नया रास्ता चुना शोषण से मुक्ति, नियमित काम, बेहतर अवसरों के लिए प्रशिक्षण व क्षमतावर्धन इस भारत के स्त्री आन्दोलन ने एक नयी दिशा प्रदान की। हांलाकि कई नारीवादी चिन्तक सेवा के इन प्रयासो को सुधारवादी पहल मानते है। क्योकि सेवा एक समिति की तरह काम करती थी व व्यवस्था पर चोट करने के बजाए उसी व्यवस्था में अपने लिए



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नये अवसर उत्पन्न करने पर जोर देती थी। यह गांधीवादी रास्ता था सेवा भी संगठनात्मक तौर पर तथाकथित नारीवादी आन्दोलन से दूर रहा।

गुजरात में यह समय नवनिर्माण आन्दोलन के साथ जुड़ा हुआ था। जयप्रकाश नारायण से जुड़े समाजवादी आन्दोलन का एक रूप नव निर्माण आन्दोंलन के रूप में देखा जा सकता है। मंहगाई विरोधी लड़ाई में इस आन्दोलन ने महिलाओं को नेतृत्व में लाया गया। 1973 में समाजवादी पार्टी के साथ जुड़कर मार्क्सवादी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने महंगाई विरोधी महिलाओं के संयुक्त मोर्चा की नींव रखी। शहरों से लेकर ग्रामीण इलाकों तक यह आन्दोलन तेजी से फैला। अकाल से पीडित लोग शहरों की तरफ पलायन कर रहे थे। ऐसे में महंगाई की मार सबसे मारक थी। थाली, बेलन लेकर उन्होंने तत्कालीन सरकारो को हिला डाला। ''नवनिर्माण आन्दोलन'' शुरूआत में विधार्थी आन्दोलन के रूप में संगठित हुआ तथा धीरे–धीरे मंहगाई, भ्रष्टाचार, व कालाबाजारी इन मुद्दों को लेकर मध्यम वर्ग के बीच अपनी जगह बनायी। हजारों की संख्या में महिलायें इस आन्दोलन में सड़को पर उतर आयी। धीरे–धीरे यह आन्दोलन भारतीय राज्य व्यवस्था के खिलाफ एक चुनौती बन कर उभरा। प्रभातफेरी, प्रदर्शन, धरना,अनशन , पुतलादहन इन नये हथकंडो के साथ युवाओं ने भ्रष्टाचार व कालाबजारी करने वालों के खिलाफ सड़कों पर नाटकीय ढंग से मुकदमें चलाये। 1974 में इस आन्दोलन को दबाने के लिए पुलिस को 3 महिने तक लगातार दमन चक्र का सहारा लेना पड़ा जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांती के नारे से प्रभावित यह आन्दोलन राज्य तंत्र को अपनी मर्यादा दिखाने के साथ–साथ आमुलचूल परिवर्तन करना चाहता था । इसी समय नवनिर्माण आन्दोलन ने हजारों महिलाओं को संगठित कर अपने हितों के लिए परिवार की चारदिवारी के बाहर सार्वजनिक प्रतिरोध का हिस्सा बनाया। इसी दौरान भारत में पहली बार स्त्रीवादी आन्दोलन की नींव रखी गयी। हैदराबाद में प्रगतिशील नारी संगठन की स्थापना की गयी। इस संगठन ने पहली बार जेन्डर आधारित होने वाले दमन व प्रताडना के मुद्दे पर महिलाओं को संगठित करना शुरू किया व अपने घोषणा पत्र के आधार पर भारत में स्त्रीवाद का आगाज किया। जहाँ पर एक तरफ स्त्री पुरूष के समानता को रेखाकिंत किया गया। वहाँ 1970 में उभरे इस नारीवादी आन्दोलन में पितृ सता विरोधी स्त्री आन्दोलन के रास्ते को अलग मोड़ दे दिया। प्रगतिशील महिला संगठन अपने घोषणा पत्र में समानता व नारीवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताता है कि भारत में कभी भी स्त्री को पुरूष का समान साथी और समाज की विभिन्न गतिविधियों में सक्रिय सहभागी होने की अवधारणा नही रही है। इसलिए हमें एक तरफ हमारे संविधान के मूलभूत तत्वो के आधार पर स्त्रीयों के लिए समानता अर्जित करनी है। जिससे जो कुछ स्त्रियाँ नेता के रूप में उभर कर आयी है, उन्हें किसी भी प्रकार के दमन का सामना न करना पड़े सामन्तवादी संस्कृति महिलाओं को घर पर अलग थलग कर देती है व उनके सार्वजनिक जीवन में सक्रिय सहभागीता पर पाबन्दी लगा देती है यह कहा जा रहा था, एक तरफ विदेशी संस्कृति का चलन बढ़ रहा है और दूसरी तरफ महिला को सुशोभित लिंग वस्तु बनाकर महिला के अस्तित्व को संर्कीणता में ढाल दिया गया। अश्लील साहित्य व कला का प्रदर्शन लगातार बढ़ता जा रहा है और दूसरी तरफ आक्रामक पुरूष प्रधानता छेडछाड, बलात्कार जैसी घटनाओ



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को आम बनाती जा रही थी। जो स्त्रीयाँ पुरूषो के काँधे से काँधा मिलाकर कर काम कर रही थी उन्हें मुलभूत रूप से समान काम के लिए समान काम का वेतन भी नही मिल पाता था। गृहणी की स्थिती भी बेहतर नही थी वह घर में बंदी थी और रात दिन घर के कामों में खुद को खपाते हुए वह स्वतंत्रता व गरीमापूर्ण जिन्दगी जी पाती थी। इस संगठन के अनुसार स्त्री संगठन के मुख्य दो आधार थे एक लैगिंक श्रम विभाजन और दूसरा विभाजन जो इस समाज के सभी घटकों तक पहुचाने व उसे स्वभाविक रूप साबित करने का काम था। इसीलिए महिलाओं का स्वाभिमान, समानता, स्वतंत्रतापूर्ण जिन्दगी जीने के अवसर उपलब्ध कराने के लिए यह संगठन प्रतिबद्ध था। इसी दौरान महाराष्ट्र में स्त्रीवादी गतिविधियो का उभार आया। 1975 को अन्तराष्ट्रीय स्तर पर यू.एन-, ने महिला वर्ष घोषित किया था। इस वर्ष में कई गतिविधियाँ शुरू की गयी थी। प्रगतिशील महिला संगठन से प्रभावित होकर पुणे में ''पुरोगामी स्त्री संगठन'' की स्थापना की गयी। बम्बई में ''स्त्री मुक्ति संगठन'' स्थापित हुयी। भारत में पहली बार अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। जिसमें राजकीय पक्षों की महिला मोर्चा के साथ ही इन स्वतंत्र संगठनों ने हिस्सा लिया । ये सभी संगठन नारीवाद की समाजवादी विचारधारा से प्रेरित थे, जो पितृसता के खिलाफ संघर्ष को वर्ग संघर्ष के साथ जोडकर देखते थे। 8 मार्च के मौके पर ''लाल निशान पार्टी'' ने महिलाओं के मुद्दे पर पार्टी प्रपत्र जारी किया। अगस्त में साधन इस समाजवादी पत्रिका ने महिलाओं के मुद्दे पर एक विशेषांक निकाला। सितम्बर में दलित व समाजवादी कार्यकर्ताओं ने देवदासियों का एक सम्मेलन आयोजित किया। इसके बाद पूणे में लाल निशान पार्टी श्रमिक संगठन मागोवा इन संगठनो ने मिल कर पुणे में संयुक्त स्त्रीमुक्ति संघर्ष सम्मेलन आयोजित किया। धीरे–धीरे उस समय सक्रिय दलित व समाजवादी आन्दोलन में स्त्रीयों का मुद्दा एक केन्द्रीय मुद्दा बनकर उभर रहा था। महिलायें इन आन्दोलनों में काम करते हुए अपने लिए एक अलग आकाश चुन रही थी। तत्कालीन दलित आन्दोलन महाराष्ट्र में उग्रवादी बनता जा रहा था। और ऐसे जातिवाद व पितृसता के गठजोड़ का सामना महिला कार्यकर्ता को करना पड़ रहा था। ''महिला समता सैनिक दल'' यह संगठन इन दलित आन्दोलनों से उभर कर सामने आया और स्वाभाविक रूप से पितृसत्ता व महिला दमन के विश्लेषण में, धर्म को पितृसत्ता के केन्द्र में बताया गया। धार्मिक व्यवस्थायें जिस तरह से जातिवाद को शह देती है वैसे ही, वह पितृसत्ता को भी उभारती है जैसे महिलाओं व दलितों का शोषण किया जाता है। प्रगतिशील महिला संगठन से, इस संगठन की सोच अलग थी। अपने घोषणा पत्र में यह दल कहता है कि पतिव्रता की संकल्पना विशिष्ट अवयव के पवित्रता की आधार पर बनायी गयी है। परन्तु जब परिवार के पवित्रता की बात की जाती है तो वह पुरूषों के किसी विशिष्ट अवयव की पवित्रता को केन्द्रीय नही मानती, बल्कि स्त्रीयों के अवयव को ही पवित्रता का दामन थामा जाता है। इसी कारण उसे घर के बाहर निकलने पर प्रतिबन्धित किया जाता है। इस तरह की पुरूषवादी जातिवादी सोच महिलाओं पर अन्याय करती है व उनके विश्वास को तोड़ती है। हमारा यह निश्चित रूप से मानना है कि पुरूषों ने महिलाओं को ज्ञान व स्वतंत्रता से महरूम रखा है। व खुद के लिए लैगिंग उपभोग की वस्तु बना दिया है।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

1975 में देश में आपातकाल लागु हुआ व महिला संगठनों की भूमिका राजनैतिक हो गयी। कई महिला संगठन मानवाधिकार संगठनों के साथ जुड़कर इस आपातकाल का विरोध कर रहे थे। जिस दौरान महिला कार्यकर्ताओं को जेल भेजा गया । 1977 में जब आपातकाल खत्म करके चुनाव हुये व जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। तब महिला आन्दोलन वापस अपने मूल लक्ष्य की ओर लौट आया। स्वायत संगठनों ने धीरे–धीरे महिलाओं के विभिन्न मुद्दो पर काम करना शुरू किया। मथुरा बलात्कार कांड ने इन विभिन्न महिला संगठनों को एक मंच पर लाया व इसके बाद महिला विरोधी हिंसा के सम्बन्ध में कई अभियान चलाये गये। इसी दौरान 1977 में ''महिला दक्षता समिति'' की स्थापना हुयी। 1978 में बम्बई में समाजवादी नारीवादीयों का राष्ट्रीय सम्मेलन पहली बार आयोजित किया गया। जिसमें दिल्ली व बम्बई दो मुख्य केन्द्र इस आन्दोलन में उभरते नजर आये। दिल्ली में जहाँ पर वामपंथी दलो का वर्चस्व था व उदारवादी ,सुधारवादी नारीवाद की संकल्पना प्रचलित थी, वहीं पर बम्बई में समाजवादी नारीवादियों का बोलबाला था। दिल्ली व बम्बई के समूह में एक स्पष्ट विरोध की रेखा उभरकर सामने आयी जो मुद्दों, रणनीतियों तथा प्राथमिकताओं के आधार पर अभिव्यक्त हो रही थी। हैदराबाद में पहले से स्थापित प्रगतिशील महिला संगठन से कार्यकर्ताओं का एक हिस्सा अलग हुआ और उन्होंने ''स्त्री शक्ति संगठन'' की स्थापना की। गाँव में अधिकतर महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के विरोध में ग्रामीण स्तर पर महिला संगम की शुरूआत की गयी थी। रयतुकुली संगम के साथ–साथ यह स्वायत्त स्वतंत्र संगठन 1979 में कोदुरप्पा संगठन की स्थापना हुई जिसमें 150 सदस्य थे । संगठन ने पुर्जोरूप से यह बात सामने रखी गई जिसमें महिला के स्वायत्त संगठन की मांग स्वयं ग्रामीण स्तर से उभर कर आयी थी। उनका मानना था कि ग्रामीण व शहरी स्त्रीयों के मुद्दे कई दृष्टियो से अलग है, साथ ही उन मुद्दों का देखने का दृष्टिकोण भी अलग है। इसीलिए महिलाओं को संगठित करने काम ग्रामीण स्तर की महिलाओं पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए।

इसी समय बिहार के बोधगया जिले आन्दोलन जयप्रकाश नारायण से जुड़ी नारीवादी महिलाओं ने महिलाओं के मुद्दों को ''छात्रा युवा संघर्ष वाहिनी'' ने इस मंच से उठाना शुरू किया। खेतीहर मजदुरों के बीच काम करते हुए इस संगठन ने एक पर्चा जारी किया जिसका शीर्षक था ''औरत''। जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांती की अवधारणा तीन मुद्दो पर आधारित थी ''व्यक्ति बदलेगे अगर समाज बदलेगा''। दूसरा समाज बदलेगा अगर व्यक्ति बदलेगे और आदमी–आदमी, आदमी–औरत और औरत–औरत के सम्बन्धो में जब तक परिवर्तन नही आता तब तक समाज में परिवर्तन संभव नही है। मानवीय सम्बन्ध धर्म, नस्ल और लिंग के आधार पर स्थापित है। जब तक इन सभी सदर्भो में परिवर्तन नहीं लाया जाता तब तक सम्पूर्ण क्रांति का सपना साकार नही हो सकता । बोधगया में महिला शिविर के दौरान छात्र युवा संघर्ष वाहिनी ने महिलाओं तथा पुरूषों दोनों को इन लक्ष्यो को साकार करने के लिए अपने नाम दर्ज कराने का आह्वान किया। वाहिनी अलग स्त्री संगठनो से अलग संघटना थी । उन्होंने कभी अलग महिलाओं की संघटना स्थापित नही की। परन्तु अलिखित रूप से महिलाओं की शाखाये विकसित हुयी। वाहिनी की कार्यकर्ता चेतना बताती है कि वाहिनी की महिलाओं के मुद्दों पर



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अलग समझ थी। जहाँ पर महिला को एक स्वतंत्र विचार करने वाले व्यक्ति के रूप में स्वीकारा गया। लोग आम तौर पर सोचते है कि अगर वें स्वतंत्र विचार करती हैं तो वह किसी पुरूष का प्रभाव है। वाहिनी ने इस संकींण मानसिकता को बदलने का प्रयास किया गया। उन्होंने विवाह संस्था की आलोचना प्रस्तुत की। क्योंकि उनका मानना था कि विवाह संस्था ने महिलाओं का दमन किया है। इससे यह पता चलता है कि छात्र युवा संघर्ष वाहिनी से आ रही नारीवादी विचार पर कई न कई अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरे उग्रवादी नारीवाद की छाप थी।

छात्रयुवा संघर्ष वाहिनी एक तरह से इस दौर की आखिरी कड़ी थी। जिसमें सामाजिक आन्दोलनों से उभरे महिला समूहों ने सामूहिक हितो के संदर्भ में महिलाओं के अधिकारों को परिभाषित किया था। 1980 का पूरा दशक और 90 के आधे दशक के दौरान महिला आन्दोलन व अन्य सामाजिक आन्दोलन अपने अलग अस्तित्व के साथ उभरे महिलाओं के अधिकार के सम्बन्ध में केन्द्रीय भूमिका लेते हुए महिलायें आन्दोलन सामाजिक अन्दोलन की विचारधारा को चुनौती दे रहे थे । उनका मानना था कि सामाजिक आन्दोलन की विचारधारा तथा रणनीतियों में कही पर भी महिलाओं के दमन से मुक्ति का पक्ष नही उभरता । ऐसे में सामाजिक आन्दोलन में सहभागी स्त्री कार्यकर्ताओं ने स्वायत महिला संगठनों की नीव रखी। इस पूरे दौर में किसी भी राजनैतिक मुख्यधारा की विचारधारा से हटकर महिला अधिकारों की राजनीति विविध स्तर पर इन संगठनों ने विकसित कीं। इसमें महिला विरोधी हिंसा, एक मुख्य मुद्दा था। सार्वजनिक व पारिवारिक स्तर पर महिलाओं के ऊपर होने वाली हिंसा एक ऐसा मुद्दा बना जिसके संदर्भ में ये विविध संगठन एक गठबन्धन तैयार कर पाये। हिंसा के सम्बन्ध में अनेक प्रश्नों को लेकर अलग–अलग अभियान चलाये गये जिनका मुख्य लक्ष्य इस प्रकार था–

1. समाज में घटित होने वाले इन हिंसा प्रकारो को वैधानिक रूप से दर्ज करना व उसका सामाजिक निषेध करना।
2. कानूनी स्तर पर उपलब्ध उपायो में सुधार लाना व नये कानून बनाने के लिए राज्य व्यवस्था पर दबाब समूह की तरह काम करना।
3. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले प्रयासो के कियान्वयन पर देश में निगरानी करना।
4. हिंसा के सम्बन्ध में पीडित महिलाओं को राहत देने के लिए विविध स्तर पर सहायता तंत्र उपलब्ध करवाना।

1980 के दशक में चले इन अभियानों के लिए राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निधि उपलब्ध करवाया गया। जिसके चलते इन संगठनो में से कई संगठनो ने सामुहिक प्रयासो से अलग–अलग गैर सरकारी संगठन द्वारा महिला प्रश्नों को उद्धेश्य बनाकर महिला मुद्दों पर काम करना शुरू किया। ऐसे में इन स्वायत्त संगठनों की विचारधारा, अधिकारों की समझ, दायरा तथा पितृसत्ता के व्यवस्थात्मक संरचना पर चोट करने की रणनीतियाँ, इनमें अलग–अलग स्तर पर उभर कर आयी। ऐसे में यह कहना बेहतर होगा कि भारत में महिला आन्दोलनों की विविधता रही हैं।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# ब्राह्मण–ग्रंथों में जीवन–दर्शन

नरेन्द्र कुमार पितलिया*

'ब्रह्मन्' शब्द से 'अण्' तद्धित प्रत्यय करने पर 'ब्राह्मण' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है– 'ब्रह्म का' अर्थात् ब्रह्म से सम्बन्धित रचना आदि।

ब्राह्मण शब्द में आये 'ब्रह्म' शब्द से यहाँ 'मन्त्र' और 'यज्ञ' ये दोनों ही अर्थ गृहीत है। इस प्रकार मन्त्र और यज्ञ इन दोनों की ही व्याख्या करने वाले ये ग्रन्थ 'ब्राह्मण–ग्रन्थ' कहलाते हैं।

ब्राह्मण विचारधारा में मानव संस्कृति के सर्वांगीण विकास का विशद् विवरण प्राप्त होता है। मानव निर्मिति के रहस्य के "तत् सृष्टवा तदेवानुप्राविशत्" की भावना से अनुप्राणित विचार ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रंथ एवं उपनिषदों से भरे पड़े हैं, अतः चेतनतत्व स्वरूप परमात्म तत्व ही है। देवों और मनुष्यों में आत्म तत्व समान ही है।[1] नव द्वारों वाला शरीर सत्व, रज, तम तीनों गुणों में बँधा हुआ है।[2] मर्त्य पुरूष को सब प्रकार से बनाकर देवों ने उसमें प्रवेश किया।[3] अपने में देवी गुणों को जन्मना स्वीकार करते हुए मानव दुष्ट या नीच न होकर सभी मानवों के प्रति भातृत्व की भावना से ओतप्रोत है। सभी के प्रति उसने सत्तत बन्धूत्व को माता के गर्भ में ही स्वीकार कर लिया है। इसी कारण मनुष्य अपने को मात्र मानव ही न समझ कर (दैविक गुणों से सम्पन्न मानें और उन्हीं गुणों का अनुशीलन कर, अपने को ही ब्रह्म समझे[4]) यही ब्राह्मण विचारधारा का लक्ष्य है।

ब्राह्मण विचारधारा का ऋषि आनन्दमग्न होकर ही स्तवन करता है।[5] इन स्तवनों को वह हर्ष के स्त्रोतों का बहाव कहता है। वह मानव जीवन को मात्र पाप पुंज या कष्ट भोगने के लिए ही नहीं आँकता[6] अपितु वह आनन्दित होकर उस दैविक आनन्द की अनुभूति को जीवन में प्राप्त करता है। दानी पुरूष के सुखी जीवन के लिए उसे देव मन्दिर के समान रमणीय घर मिलते हैं। घर से बाहर जाने और वापिस आने के सुखमय होने की प्रार्थना की गई है।[7]

इस विचारधारा के दर्शन की आधार भित्ति भौतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन दोनों का समन्वय है। जो विद्वान इस विचारधारा को केवल भौतिकवादी तथा कर्मकाण्ड प्रधान कहकर ही इसकी उपेक्षा करते हैं यह अनुचित है। इसमें उदात्त भावनाओं के ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन के लिए सुदृढ़

---

*व्याख्याता, संस्कृत, सेठ मथुरादास बिनानी
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नाथद्वारा (राज.)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वातावरण प्रस्तुत किया गया है। ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों में किस प्रकार से सामंजस्य रह सके, यही इस विचारधारा के दर्शन का रहस्य है। यह पति–पत्नी, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व बन्धुत्व की भावनाओं से ओतप्रोत है। सर्वप्रथम युगल स्नेह से इसका समारम्भ होता है। वैवाहिक सम्बन्ध ब्राह्मण विचारधारा का आदर्श पावन संबंध है जैसा शायद ही किसी देशी विदेशी विचारधारा में लभ्य हो सके। दोनों के उचित सम्मान पारस्परिक स्नेह रज्जु पाश से बँधे हुए इस संबंध को पूर्वकाल में सूर्या के विवाह से सुगमतया समझा जा सकता है।[8] इस सूक्त में पत्नि को समान आदर वाली गृह–स्वामिनी के रूप में सौभाग्यवती–सुमंगली कहा गया है, यह ब्राह्मण विचारधारा का आदर्श गृहस्थ जीवन का स्वरूप है जो विश्व के सभी धर्मों के मूल्यांकन में सर्वोच्च माना गया है।

समाज में, परिवार में, राष्ट्र में, विश्व में, सभी प्राणियों में समान भाव, समान विचार रखते हुए एक उदीयमान राष्ट्र के नागरिक जागरूक रहकर जीवन में उन्नति करें। इस प्रकार संगठन की सामूहिक भावनाओं से आभरित ये ब्राह्मण विचारधारा अपना विशेष महत्त्व रखती है।[9]

भौतिक उपलब्धियों के साथ सत्य के अनुशीलन, चरित्र की शुद्धिके लिए देवों से अपने को पवित्र किए जाने की प्रार्थना की गई है।[10] और इच्छाओं के परित्याग, अहिंसा तथा विश्वहित के भावों को विशेष स्थान दिया है। सत्य बोलने वाले व्यक्ति के लिए कहा गया है कि सत्यवादी का तेज बढ़ता है।[11] और असत्यवादी का तेज क्षीण होता है। अविद्या तथा क्लेशों के निराकरण को महत्त्व दिया गया है क्योंकि क्लेश जीवन में सदैव बने रहते हैं। बाद में उनका अनुशय होता है। ये जीवन की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। अतः ये हेतु सर्वत्रग हेतु कहे गए हैं क्योंकि ये सनातन होते हैं, इनका कारण अविद्या है। क्लेशों का विनाश तथा जीवन की पवित्रता ही ब्रह्मा विचारधारा का लक्ष्य है।

ब्राह्मण विचारधारा की प्रवृत्ति सदैव आचार प्रवणता की ओर रही है। जीवन और जगत् के सभी क्षेत्रों में ब्राह्मणों ने पावनता की प्रतिष्ठा करने का पूरा–पूरा प्रयास किया थां यह पावनता मानवता के विकास के लिए प्रतिष्ठित की गई थी। आम्नायवेद्य ब्राह्मण विचारधारा की महनीय कीर्ति सामाजिक

---

1. देवासौ हिस्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातय। ऋ. 08/27/14
2. पुण्डरीकं नव द्वारं त्रिभि गुर्णोभिरावृतम्। अथर्व. 10/8/43
3. 'सर्वं' संसिच्य मत्यै देवाः पुरूषाविशन्। अथर्व. 11/8/13
4. तस्माद् वे विद्वान् पुरुषमिंद ब्रह्मेति मन्यते। अथर्व. 11/8/32
5. ऋ. 10/68/1
6. ऋ. 10/107/10
7. मधुमन्मे परायणं मधु मत्पुनरायनम्। ऋ. 10/24/6
8. सुमंगलीरियं वधूरिमां 7 सौभाग्यमस्यै परेतन। ऋ. 10/85/33
9. ऋ. 10/191/1–3, अथर्व. 6/64/1–3
10. पुनन्तु मा देवजनाः, पुनन्तु मनसाधियः। यजु. 19/39
11. स यः सत्यं वदति। तस्य भूयो भूय एव तेजो भवति – योऽनृतंवदति। – श.ब्रा. 2/1/6/19



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्नतिकरण में निहित है, क्योंकि कोई भी विचारधारा जो मानव को उदात्त बनाते हुए उसका अभ्युदय करें, वही सर्वमान्य अथवा सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। समाज के अभ्युदय हेतु सिद्धान्त बहुल होना कोई उपादेयता प्रदान नहीं करता अपितु क्रियात्मक पक्ष का ही प्राधान्य श्रेयस्कर तथा चिरन्तनकालीन रूप देता है। इसमें आचार प्रवणता प्रमुखरूपेण वर्णित है। (आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः) (आचारः परमो धर्मः) की उक्तियों में सदाचरण पर बल दिया है। जिस विचारधारा में मानव समाज के स्तर को संकीर्ण मनोवृत्तियों, स्वार्थपरता, कुचेष्टाओं की पूर्ति, वासनामय जीवन की कुपरिणामता आदि से हटाकर भद्र भावनाओं के परिवेश द्वारा उनकी उदात्तता, उत्कृष्टता तथा विशालता की ओर ले जाए वही श्रेष्ठ विचारधारा है। साथ ही जिस विचारधारा का अनुशीलन मानव की भौतिक आकांक्षा की उपेक्षा न करता हुआ आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति भी जुटा सके तथा उभयविध समन्वय व सामंजस्य की महिमा एवं गरिमा से मण्डित होकर मानवता के सभी गुणों के आदान–प्रदान, मंजुल, सरस एवं स्निग्ध अवसरों को प्रदान करे वही महत्त्वाशाली तथा अनुकरणीय विचारधारा कही जा सकती है। इस पावनता को हम ब्राह्मण विचारधारा में कई रूपों में प्रतिबिम्बित पाते हैं। वैदिक संस्कृति में मानव जीवन की पवित्रता, आचरण की पवित्रता, आजीविका की पवित्रता और विचारों की पवित्रता आदि पर सर्वत्र बल दिया गया है।

ब्राह्मण विचारधारा में एक प्रमुख प्रवृत्ति मिलती है जिसके कारण वह सदैव अपने स्पर्श सम्पर्क से अन्य विचारधाराओं को आत्मसात् करती रही है वह है समन्वयात्मक दृष्टिकोण – आत्मा की एकता के आधार पर अनेकता में एकता। सर्वत्रसत्य के दर्शन यथा विभित्र रूचि होते हुए भी सभी के प्रति सम्मान एवं स्नेह तथा सौजन्य निभाने की प्रवृत्ति। अहिंसा, करूणा, मैत्री और विनय के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान सुगमतया संभव हो जाता है। उत्सवप्रियता भारतीयों की सामूहिक भावना का द्योतक है। तीर्थयात्रा, रक्षाबन्धन, विजयादशमी, दीपावली, गंगास्नान (कार्तिक पूर्णिमा) तथा होली मिलन सभी सामाजिकता की अभिवृद्धि के ही साधन हैं सनातन सत्यों के अनुशीलन में पूर्ण आस्था होने के कारण न्यायप्रियता तथा पापाचरण यदि अपने प्रिय का भी, तो वह दण्डनीय था। अपरिग्रह की भावना में व्यक्तिपरता भी नहीं, न समाजपरता अपितु पारिवारिक वृत्ति का विकास है। अतः समन्वयशीलता ब्राह्मण ग्रंथों का प्रमुख अंग रहा है।

ब्रह्मचर्य रहस्यों को जानकर ब्रह्मचर्य परायण ब्रह्मचारी को सभी वेद अपने तत्त्वावेश से सुशोभित कर देते हैं जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि देदीप्यमान होती है ठीक उसी प्रकार वह ब्रह्मचारी स्नातकर बनकर विश्व में चमकता है।

वाणी के दो ही निःसन्देह कर्म है– सत्य और झूठ तीसरा कर्म नहीं है। इसी को देवगण अपना मुख्यव्रत मानकर पालन करते हैं। जो यह सत्य है उसी से वे यश प्राप्त करते हैं। इस हेतु मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि नमन से झूठ सोचे न वाणी से बोले और न शरीर से करे। अतः मनसावाचकर्मणा सत्य का सेवन आवश्यक है।

"न मनसा अनृतमिगच्छेन्न वदेन्न कुर्यात्।" (तै.ब्रा.1/7/1)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तपरूप साधन से ही ज्ञान, उपासना आदि कर्म साध्य होते हैं। अन्तःकरण की शुद्धता तप पर ही निर्भर है।

ब्राह्मण ग्रंथों में भारतीय संस्कृति के प्रतिमान पाँच महायज्ञों का भी उल्लेख किया गया है ये ही महासत्र भी कहलाते हैं। इनकी संख्या पाँच है– (1) भूतयज्ञ (2) मनुष्यज्ञ (3) पितृयज्ञ (4) देवयज्ञ (5) ब्रंह्मयज्ञ। ग्रहस्थ व्यक्तियों के लिए इनका नियमपूर्वक विधान किया गया है। प्रतिदिन गो आदि प्राणियों को भोजन देना यही भूतयज्ञ का सम्पादन है। जलपात्रभार अन्न किसी भूखे मनुष्य को देना मनुष्यज्ञ का सम्पादन है। नित्य प्रति स्वधारकपूर्वक पित्तरों को अन्न देना पितृयज्ञ है। नित्यशः स्वाहाकारपूर्वक देवों को काष्ठपर्यन्त हविका अर्पण–देवयज्ञ है। अपनी वंश परम्परा के अनुसार शाखा का विधिपूर्वक आचार्य से अध्ययन 'ब्रह्मयज्ञ' कहलाता है।

आर्यजनों का पवित्र, परमोदार, चिरन्तनशास्त्रीय आचरण संसार के लिए एक महान आदर्श है। जिसके द्वारा पवित्र हुए मनुष्य सांसारिक अग्नि परीक्षाओं से अनायास उत्तीर्ण हो जाते हैं, उसी पावन, स्वच्छ आचरण पथ पर चलकर ही पापात्मा रूपी घोर शत्रु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ब्राह्मण विचारधारा में **"वसुधैव कटुम्बकम्"** वाले सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है। सर्वकल्याण की भावना वास्तव में ब्राह्मण विचार की व्यापक दृष्टि का परिणाम थी कि ब्राह्मण प्रातः उठकर व्यकितगत कल्याण की कामना न करके विश्व के कल्याण की कामना करते थे।

उपरोक्त विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि ब्राह्मण ग्रंथों में जीवन का उदात्त, शाश्वत सत्य तत्वों का समावेश है। हम भारतीय आर्य अवश्य हैं परन्तु आर्य संस्कृति से भिन्न आचार–व्यवहार के शासन से आज की जीवन पद्धति का निर्माण हो रहा है। जिसका प्रतिफल समाज भोग रहा है। संसार में व्याप्त अराजकता, भ्रष्टाचार का वातावरण, पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति के प्राकृतिक असंतुलन के कारण निर्मित हुआ है। अतः प्रत्येक भारतीय को श्रद्धा, अभिज्ञानपूर्वक आर्य संस्कृति का सेवक होना आवश्यक है जो व्याप्त अशान्ति का समूलोच्छेद करने में समर्थ हो सकता है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्री रामचरित मानस में दो वरदान

डॉ. स्वामी जयेन्द्रानन्द सरस्वती हरिओम*

श्री रामचरित मानस के अनेक प्रसंगों में दान और वरदान की चर्चा आई है, किन्तु अयोध्या काण्ड में महारानी कैकेयी द्वारा माँगे गये दो वरदानों ने श्री रामकथा को एक नया मोड़ प्रदान कर दिया। चक्रवर्ती सम्राट दशरथ जी ने गुरु वशिष्ठजी एवं मन्त्रियों से मन्त्रणा करके राम जी को अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा कर दी। रामायण में वर्णन आता है कि एक दिन राज-सिंहासन पर बैठे हुए राजा ने अनायास ही दर्पण लेकर अपना मुख देखा। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मुकुट कुछ टेढ़ा हो गया है। जब उसे वे उठाकर ठीक करने लगे तो कानों के समीप कुछ सफेद बाल दिखाई पड़े।

गोस्वामी जी लिखते हैं-

**रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा।**
**श्रवण समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा।।**
**यहु विचारू उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।**
**प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरुहि सुनायउ जाइ।। 2/2/6-7**

श्रवण के समीप सफेद बालों को देखकर विचारवान राजा के मन में यह भाव उदित हो गया कि अब राजकाज से संन्यास लेकर जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए। अतः अपने मनोरथ को गुरुदेव के समीप प्रकट किये और मन्त्रियों से विचार विमर्श करके राम को युवराज बनाने की घोषणा कर दी। राजा के इस निर्णय से सम्पूर्ण प्रजा में आनन्द की लहर दौड़ गयी। मन्त्री सहित सभी लोग रामराज्य की तैयारी में लग गये। सभी मंगल द्रव्य एकत्र किये जाने लगे, राज्याभिषेक के लिए आवश्यक तैयारियाँ जोरों से होने लगीं।

वर्णन आया है-

**मनिगन मंगल वस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका।।**
**वेद बिदित कहि सकल विधाना। कहेउ रचहु पुर विविध बिताना।।**
**सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।।**
**रचहुं मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू।।**
**पूजहुं गनपति गुर कुल देवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा।।**
**ध्वजपताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।।**
**सिर धरि मुनिबर वचन सबु निज निज काजहिं लाग।।** 2/6/4-8

---

***अयोध्या, उत्तर प्रदेश**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु अयोध्या का यह आनन्द उत्सव देवताओं को पसन्द नहीं आया। उन्होंने निश्चय किया कि किसी तरह से रामराज्य में बाधा डाली जाय और श्री राम को वनवास दिलाया जाय। इस कार्य के लिए उन्होंने माता सरस्वती से प्रार्थना की। पहले तो सरस्वती ने मंगल कार्य में बाधा डालने से मना कर दिया किन्तु लोक कल्याण का विचार करके वे अयोध्या में दुखदायी ग्रहदशा बन कर आई। बहुत प्रयास करने पर अयोध्या में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं मिला जिसकी बुद्धि में विकृति पैदा कर सकें। अंत में कैकेय देश से आई हुई मन्थरा की तरफ उनकी दृष्टि गयी । फिर क्या था मंथरा को अजस पेटारी बनाकर उन्होंने अयोध्या में विष बीज का वपन कर दिया-

**नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकेयीं केरि।**

**अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।** 2/12

अयोध्या का यह मंगल विधान देखकर मंथरा ने लोगों से पूछा कि क्या कारण है कि नगर को इतना अधिक सजाया संवारा जा रहा है, जब उसको ज्ञात हुआ कि कल श्रीराम जी का राज्याभिषेक होगा तो उसके मन में विद्वेष की अग्नि भड़क उठी। इस शुभ कार्य में कैसे बाधा डाली जाय यह विचार करके रोती बिलखती महारानी कैकेई के पास पहुँची। रानी ने उसके इस विस्मय विषाद का कारण पूछा तब भी वह कुछ न बोल कर गरम-गरम उसासें छोड़ती रही। महाकवि ने मंथरा को इस प्रसंग में काली सर्पिणी की संज्ञा दी-

**तबहूँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि।**

**छाड़इ स्वास कारि जनु सांपिनि।।** 2/13/8

मंथरा की विस्मित स्थिति को देखकर महारानी कैकेई के मन में शंका हुई कि मेरे राज्य परिवार में कुछ अमंगल तो नहीं हो गया अतः वह अपने सभी प्रियजनों का नाम लेकर मंथरा से कुशल क्षेम पूछती है-

**सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।**

**लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु।।** 2/93

कुशल पूछने में सर्वप्रथम कैकेई माता ने राम का ही नाम लिया है। इससे प्रतीत होता है कि राम के लिए उनके मन में अपार स्नेंह है। और जब मंथरा ने सुनाया कि कल राम युवराज बनेंगे तो कैकेई की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने कहा कि इतना मंगलमय संदेश तुमने सुनाया है कि जो कुछ भी माँगों मैं तुम्हे दे सकती हूँ। तेरा कथन जिस दिन सत्य होगा वह मेरे लिए सर्वाधिक खुशी का दिन होगा।

**सुदिनु सुमंगल दायकु सोई तोर कहा फुर जेहि दिन होई।**

**जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।।**

**राम तिलकु जौं साँचहुँ काली। देऊँ मागु मन भावत आली।।** 2/15/2-4

मंथरा ने आगे कहा कि राम राजा बनें इसमें मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है किन्तु मैंने जो इसमें षड़यंत्र की बातें सुनी है वे ह्रदय दहलाने वाली हैं। अब तो अयोध्या में सिर्फ राम का जय घोष करना होगा। कौशल्या का गर्व तो अब देखने ही लायक है, उन पर तो मानो विधाता अनुकूल हो गया है। उनकी शोभा तो जरा जाकर देखो, वही देखकर मेरे मन में क्षोभ हो गया है। तुम्हारा पुत्र विदेश जाकर बैठा है इसकी तुम्हें कोई परवाह नहीं है। क्योंकि तुम जानती हो कि राजा तुम्हारे वश में हो गये हैं। खूब नींद भरकर सोओ। लेकिन सावधान, राजा की कपट भरी चतुराई को तुम जानती नहीं।

मंथरा की अटपटी बातें सुनकर कैकेई क्रोध में उबल पड़ी उन्होने कहा मंथरा चुप कर, बक बक बोलोगी तो तेरी



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीभ निकलवा लूँगी। तेरी जैसी विकलांगिनी कुटिलता से भरी होती है-

**सुनि प्रिय वचन मलिन मन जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी।**
**पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढावउ तोरी।।**
**काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।**
**तिय बिसेषि पुनि चेरिकहि भरतमातु मुसकानि।।** 2/14/9-8

कैकेई आगे कहती है कि ज्येष्ठ भाई राजा बनता है यह तो रघुकुल का संविधान है। पुनः तुझे इस बात में क्यों आपत्ति है। कौशल्या के समान सभी माताएँ राम से सहज प्रेम करती है। किन्तु मैंने तो परीक्षा लेकर देखा है कि राम मुझसे अधिक प्रेम करते है। मैं तो ईश्वर से नित्य प्रार्थना करती हूँ कि अगले जन्म में राम मेरे पुत्र और सीता मेरी पतोहू बनें। फिर उनके राजतिलक पर तेरे मन में क्षोभ क्यों हो रहा है—

**जो बिधि जनमु देउ कर छोहू। हों राम सिय पूत पतोहू।।**
**प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभ कस तोरे।।**
**भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।**
**हरष समय विसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ।।** 2/15/7-8

कैकेई का पूछना इतना था कि मंथर को अपनी बात कहने का मौका मिल गया। फिर तो उसने झूठ और कपट का ऐसा जाल बनाया कि कैकेई उसमें बुरी तरह फँस गयी। ऐसी उलझी कि न इधर की रही न उधर की। पति और पुत्र दोनों से हाथ धो बैठी। उनके नाम पर ऐसा कलंक लगा जो आजतक नहीं धुल पाया। आज भी अपनी पुत्री का नाम कोई कैकेई या मंथरा नहीं रखता।

गोस्वामी जी सूत्र देते हैं कि इस परिवर्तन का कारण एक मात्र कुसंगति है-

**को न कुसंगति पाइ नसाई।**
**रहे न नीचम चतुराई।।**

एक तरफ मंथरा की गूढ़ कपट प्रिय भाषा, और ऊपर से देवताओं की माया-

**गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तिय अधर बुधि रानि।**
**सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।।** 2/17

मंथरा ने देख लिया कि राम के प्रति कैकेई के हृदय में अपार स्नेह है। अतः अब उसने कौशल्या के प्रति भड़काना प्रारम्भ कर दिया। उसने कहा कि रामराज्य के पीछे एक बहुत बड़ा षड्यंत्र कौशल्या ने रच रखा है। राम तो राजा बनेंगे, लखन उनके परामर्शदाता बनेंगे तथा भरत को बन्दीगृह में डाल दिया जाएगा। और तुमको कौशल्या की दासी के रूप में सेवा करना होगा। मंथरा ने सौत की कल्पित असंख्य कहानी सुनकर कैकेई के मन में प्रबल विरोध का भाव भर दिया है-

**रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोध।**
**कहिसि कथा सत सवति के जेहि विधि बाढ़ बिरोध।। 2/18**
**कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।**
**भरत, बंदिगृह सेइहहि लखन राम के नेब।।**

इतना सुनते ही कैकेई क्रोध से काँपने लगी शरीर से पसीना छूटने लगा। उनकी मनः स्थिति का बड़ा सचित्र वर्णन



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाकवि ने प्रस्तुत किया है..

**कैकेय सुता सुनत कटुबानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी।।**
**तन पसेऊ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी।।**
**कह कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी।।** 2/20/1-3

कुबरी ने देखा कि अब रानी मेरी माया जाल में उलझ गयी तो धीरे से उनके कान में बोली। मेरे पास एक बहुत बढ़िया उपाय है। तुम अगर चाहो तो कौशल्या का सारा दाँव उल्टा पड़ जाएगा। कैकेयी ने कहा जल्द बताओ तुम कहो तो कुएँ में छलांग लगा दूँ पति और पुत्र को त्याग दूँ। तुम जो कहो सबकुछ करने को तैयार हूँ..

**परउँ कूप तव बचन पर सकउँ पूत पति त्यागी।**
**कहसि मोर दुःख देखि बड़, कस न करब हित लागी।।** 2/21

पुनः मंथरा रानी को राजा द्वारा दिये गये दो वरदानों की याद दिलाती है। आज दोनों माँगकर अपनी छाती शीतल कर लो और अपनी कौशल्या की छाती में डाल दो। लेकिन सावधान रहना, राजा जब राम की सौगंध खा लें तब वरदान माँगना अन्यथा वे वचन से बदल भी जायेंगे-

**कहइ चेरि सुधि अहइ कि नहीं। स्वामिनी कहिहु कथा मोहि पाही।।**
**दुउ वरदान भूपसन थाती। मागहू आजु जुड़ावहु छाती।।**
**सुतहि राज रामहि बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।**
**भूपति राम शपथ जब करई। तब मागेहू जेहि वचन न टरई।।**
**होइ अकाजु आजु निसि बीते। वचन मोर प्रिय मानेहू जीते।।**
**बड़ कुघात करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु।**
**काज सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतिआहु।।** 2/22/4-8

इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्म रामायण में वर्णित कथा की ओर गोस्वामी तुलसी दासजी ने संकेत किया है। कुछ अन्तर के साथ दोनों प्रसिद्ध रामायणों में कथा आती है। एकबार देवासुर संग्राम में इन्द्र को मदद करने के लिए राजा दशरथ जी स्वर्ग गये थे।

युद्ध क्षेत्र में महारानी कैकेयी भी राजा के साथ गयी थी। युद्ध के दौरान रथ की धूरी की कील टूटकर गिर गयी। कैकेयी ने देखा कि कील के बिना तो रथ नीचे गिर जाएगा। अतः उन्होनें अपनी दो अंगुलियाँ कील की जगह डालकर राजा को घायल होने से बचाया था। बाद में राजा ने रानी के दोनों घायल ऊँगलियों को देखा तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे दो वरदान माँगने को कहा। रानी ने कहा कि अभी तो मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। आगे देखा जाएगाा। मंथरा उन्हीं दोनों वरदानों को स्मरण करा रही है। उसने कहा कि जब राजा राम की शपथ ग्रहण कर लेवें तब माँगना—

प्रथम –भरत का राज और द्वितीय राम को वनवास।।

गोस्वामी जी कहते हैं कि इन दोनों वरदानों के माध्यम से अयोध्या में विपत्ति का बीज बो दिया गया। अगर बीज ग्रीष्म ऋतु में और कठोर भूमि में डाल दिया जाए तो अंकुरित नहीं होगा। अतः कवि ने कहा कि मंथरा की बुद्धि वर्षा ऋतु बनी तथा कैकेयी की कुमति भूमि बनी। कपट का जल पाकर उसमें अंकुर उगे जिसका फल अयोध्यावासियों के लिए दुःखद परिणाम लेकर आया— **बहु विधि चेरिहि आदर देई। कोप भवन गवनी कैकेई।।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**विपति बीज वरषा रितु चेरी। भुइं भइ कुमति कैकेयी केरी॥**
**पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥** 2/23/4-6

उधर कोपभवन में कैकेयी है इधर अयोध्या में पूरे जोरों से रामराज्याभिषेक की तैयारियाँ चल रही है। सम्पूर्ण व्यवस्था बताकर राजा ने सोचा कि सन्ध्या समय महारानी को यह सुसंवाद में स्वयं सुनाऊँगा तो कैकेयी अधिक प्रसन्न होगी, परन्तु यहाँ तो सारा वातावरण ही विषाक्त हुआ है। कोपभवन की बात सुनकर चक्रवर्ती सम्राट भयभीत हो गये। डर के मारे उनके पाँव आगे नहीं बढ़ रहे हैं। बहुत संभल कर पांव आगे रख रहे हैं कि कहीं गिर न जाएं। लेकिन कैकेयी की कुमति में इतनी भयंकर काई जमी हुई है कि राजा फिसल कर गिर जाते हैं। काई पर फिसलने पर हाथ पाँव टूटने का भय बना रहता है। किन्तु राजा तो ऐसे गिरें कि प्राणान्त हो गया-

**काई कुमति कैकेयी केरी।**
**परी जासु उर विपति घनेरी॥**

डरते गये कोप भवन में बहुत संभल कर राजा जाते हैं और रानी को मनाने के लिए कई प्रतिज्ञाएँ करते है। रानी ने कहा कि प्रतिज्ञा तो बहुत करते हैं किन्तु कभी कुछ देते तो हैं नहीं—

**मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।**
**देन कहेउ वरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥** 2/29

राजा ने कहा कि तुम्हारी दोनों थाती मेरे पास सुरक्षित हैं। मुझे विस्मरण हो गया आप दो के बदलों चार माँग लो, इसके लिए कोप भवन में आने की क्या जरूरत है?

**थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि मोर सुभाऊ॥**
**झूठेहुँ हमहि दोष जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू।**
**रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥**
**सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान विदित मनु गाए॥**
**तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रधुराई॥** 2/28/2-7

राजा द्वारा रघुकुल की रीति, सत्य की दुहाई देना और राम की शपथ खाने के बाद कैकेयी को वरदान माँगने का अवसर स्वतः प्राप्त हो गया, अतः उन्होने तुरन्त दोनों वरदान मांग लिए-

**सुनहु प्रानप्रिय भावत जीका। देहु एक वर भरतहि टीका॥**
**मागहूँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥**
**तापस बेस विसेष उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी॥**

कैकेयी द्वारा इतने कठोर वरदान मांगने पर राजा व्याकुल हो गये, जैसे तरुवर के ऊपर वज्रपात हो जाए और लावा के झुण्ड पर बाज झपट्टा मार दे उसी प्रकार राजा हतप्रभ हो गये। राजा के मनोरथ रूपी सुरतरु को जैसे हथिनी ने समूल उखाड़ कर फेंक दिया। उन्हें ऐसा लगा कि कैकेई ने अयोध्या को उजाड़ कर विपत्ति की अचल नींव डाल दी है अथवा तो फल सिद्धि के समय अविद्या ने योगी के योग को नष्ट कर दिया-

**कवने अवसर का भयउ गयउँ नारि विस्वास।**
**जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास॥** 2/29



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजा की व्याकुलता को देखकर कैकेई उन पर बाणों की वर्षा करने लगी। क्या भरत आपके पुत्र नहीं है। क्या मुझे आप खरीद कर ले आयें है। चाहे तो दोनों वरदान दीजिए या अपयश लीजिए। राजा ने दीन बनकर राम को बनवास नहीं जाने के लिए बहुत प्रार्थना की लेकिन रानी ने अपना स्पष्ट निर्णय सुना दिया-

**होत प्रातु मुनिवेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।**
**मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं।। 2/33**

राजा ने कहा भरत को युवराज बनाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन अगर राम जंगल जायेगे तो मेरे प्राण भी उन्हीं के साथ निकल जाऐंगे। राजा ने सोचा कोई भी भारतीय नारी अपने पति की मृत्यु की कामना नहीं करेगी। किन्तु कैकेयी ने कहा कि हम दोनों में एक की तो मृत्यु निश्चित सामने खड़ी है। अगर राम वन जाएंगे तो आपकी मृत्यु होगी और नहीं जाएगे तो मेरी मृत्यु होगी तो आपको कलंक लगेगा और आपकी मृत्यु होगी तो आपको सुयश मिलेगा, आपकी महिमा बढ़ेगी, आपके पूर्वजों का सिर ऊँचा होगा। क्योंकि आपके कुल में शिवि, दधीचि, बलि और हरिश्चन्द्र आदि अनेक ऐसे राजा हुए है जिन्होंने अपने वचन की रक्षा के लिए प्राणों को संकट में डाला है—

**सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा।**
**तनु धनु तजेउ वचन पनु राखा।।**

इतना कहकर कैकेई कुटिल भाव से ऐसे खड़ी हो गयी जैसे- क्रोध की नदी में बाढ़ आ गयी है। उस बाढ़ के वेग में राजा के मनोरथ रूपी वृक्ष ढह गये और क्रोध की वह नदी विपत्ति के समुद्र की ओर बढ़ चली। राजा ने स्वयं को भवँर जाल में फँसे हुये देखकर सोचा कि मानो उनकी मृत्यु सिर के ऊपर नाच रही हो-

**लखी नरेस बात फुरि सांची।**
**तिय मिस मीचु सीस पर नाची।। 2/34/5**

गोस्वामी जी आगे लिखते हैं कि कैकेई मानों आज सिद्धि के लिए मशान जगा रही है। तन्त्र साधना में ऐसा कहा जाता है कि अपने प्रिय जन को बलि देकर श्मशान की साधना सिद्ध की जाती है। राजा को ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे प्राणों की बलि देकर आज कैकेई श्मशान साधना की सिद्धि प्राप्त करना चाह रही है। जब राजा का सारा प्रयत्न कैकेई को मनाने के लिए व्यर्थ चला गया तो सभी प्रकार से संसार से निराश होकर राम-राम की रट लगाने लगे।

**राम राम रट विकल भुआलू।**
**जनु विनु पंख बिंहग बेहालु।। 2/39/1**

अब संसार से उनकी आसक्ति पूर्ण रूपेण समाप्त हो गयी। बस एक ही कामना है कि राम से मेरा वियोग नहीं हो किन्तु संयोग वियोग तो संसार का नियम है। यह अपने काल क्रम के अनुसार होता ही रहेगा। राजा के मन में अब राम के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा। अब तो उनके रोम-रोम में राम ही राम रम गये। महाप्रयाण के समय उनके मुखारविन्द से राम नाम का उच्चारण अनवरत होता रहा-

**राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।**
**तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।। 2/155**

उन दोनों वरदानों के माध्यम से, गोस्वामी जी यह सन्देश देना चाहते हैं कि वरदान कभी-कभी भयंकर अभिशाप



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का रूप धारण कर लेता है। आज जो स्नेही है कल वही शत्रु बनकर प्राण भी ले सकता है। क्योंकि संसार के सारे सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित हैं। जब स्वार्थों में टकराहट होती हैं तो मित्र को भी शत्रु बनते देर नहीं लगती। इसको एक दृष्टान्त के द्वारा गोस्वामी जी ने समझाने की चेष्टा की है। कमल जब तक जलभरे सरोवर में रहता है तो सूर्य की किरणें उसका पोषण करती हैं, उसको प्रस्फुटित करने में सहायक बनती हैं, किन्तु जल सूखते ही वही सूर्य कमल को जलाकर क्षार बना देता हैं।

**रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहि पिरीते।।**
**भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।।** 2/17/7-8

यही दृष्टान्त देकर मंथरा कैकेयी की बुद्धि फेरने में सफल हो गयी। जो राजा की प्राण प्यारी थी वही उनकी प्राणप्यासी बन गयी।

इस प्रसंग में दूसरा सूत्र यह मिलता है कि जहाँ काम, क्रोध और लोभ एकत्र हो जाएँ वहाँ रामराज्य नहीं हो सकता है। महाराज दशरथ की बुद्धि में काम हैं कैकेयी की मति में क्रोध आ गया और मंथरा के मन में लोभ आ गया है। ऐसी परिस्थिति में भला अयोध्या में रामराज्य की स्थापना कैसे हो सकती है?

उत्तर काण्ड के अंत में महाकवि ने जहाँ मानस रोगों का वर्णन किया है वहाँ उन तीनों को अत्यन्त भयंकर बताया है। अगर तीनों एकत्र हो जाएँ तो सन्निपात हो जाता है जिसमें रोगी के प्राण जाने का खतरा रहता हैं।

**काम बात कफ लोभ अपारा क्रोध पित्त नित छाती जारा।**
**प्रीति करहिं जौ तीनउ भाई उपजइ सन्यपात दुखदाई ।।**
**विषय मनोरथ दुर्गम नाना ते सब सूलनाम को जाना।**
**एक व्याधि बस नर मरहि ए असाधि बहु व्याधि ।।**

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम की जीवनचर्या

डॉ. राकेश्वरी प्रसाद*

श्रीराम वैदिक संस्कृति और सभ्यता के आदर्श प्रतीक हैं। श्रीराम के जीवन में वैदिक संस्कृति का साकार रूप देखने को मिलता है। मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत जब हम विश्व के महापुरुषों के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं। तो भगवान् राम का जीवन सर्वोपरि जान पड़ता है। आज हजारों वर्षों में राम का पावन चरित्र लाखों लोगों को प्रेरणा और मागदर्शन दे रहा है।

वाल्मीकिरामायण में (3/37/13) मारीच रावण से राम के गुणों का वर्णन करते हुए कहता है-''रामो विग्रहवान् धर्मः'' अर्थात् श्रीराम धर्म के मूर्तिमान् स्वरूप हैं, राम सत्य के आधार हैं और सत्य को सर्वस्व मानते हैं। सुमित्रा कहती है- ''नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथस्थितः (वाल्मीकि 2/44/26) श्रीराम से बढ़कर सन्मार्ग में स्थिर रहने वाला मनुष्य संसार में दूसरा कोई नहीं है।

धर्मप्राण भारतीय जीवन दृष्टि, महान् चरित्र और मानवीय आदर्श सबसे अधिक प्रभु श्रीराम के जीवन में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। वाल्मीकि ने विभिन्न स्थलों पर प्रभु राम को धर्मज्ञः, धर्मस्य, परिरक्षकः, धर्मनित्यः, धर्मात्मा, धर्मवत्सलः,धर्मविदांवरः आदि शब्दों से अलंकृत किया है। वाल्मीकि ने प्रभु श्रीराम को अद्वितीय मर्यादारक्षक बताया है। श्रीराम ने लोकहितार्थ एवं धर्मरक्षार्थ ही धरती पर अवतार लिया था। मानवजाति के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करने के लिए ही भगवान् श्रीराम ने एक सदाचारमय जीवनचर्या का प्रतिमान प्रतिष्ठित किया। प्रातः जागरण से लेकर रात्रि-शयनपर्यन्त व्यक्ति विशेष द्वारा किये जानेवाले कार्य या आचार-विचार ही उसकी दैनिक चर्या की संज्ञा से अभिहित होते हैं। दैनिकचर्या ही जीवनचर्या का मूल होती है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवनयापन की शैली ही जीवनचर्या कहलाती है।

श्रीरामचन्द्र जी की दिनचर्या सुनियमित एवं शास्त्रोक्त नियमों की अनुसारिणी थी। इसी के परिणामस्वरूप उनकी जीवनचर्या में आध्यात्मिकता का पूर्णरूपेण समावेश था। व्यक्तिविशेष की जीवनचर्या उसके चरित्र का दर्पण होती है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की जीवनचर्या आदर्श थी, इसी कारण उनका चरित्र उत्कृष्ट कोटि का था।

प्रभु श्रीराम सद्गुणों के सागर थे। अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान, एकपत्नीव्रत, प्रजारंजकता, व्यवहारकुशलता, न्यायप्रियता, पवित्रता, सत्यवादिता, नीतिज्ञता, प्रतिज्ञापालन आदि सभी गुण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम में पूर्ण विकसित अवस्था में विद्यमान थे। सत्य का पालन उन्हें सदैव प्रिय था-**'सत्यमिष्टं हि मे सदा।'** (वा.रा. 3/10/18)।

प्रभु श्रीराम दृढ़प्रतिज्ञ थे। वे अपना अहित करने वालों के प्रति भी सद्व्यवहार करते थे। उनकी जीवनचर्या में

---

***असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, श्री बलदेव स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़ागाँव, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मातृभक्ति, पितृभक्ति, भ्रातृप्रेम, सख्यप्रेम, शरणागतवत्सलता, कृतज्ञता, पराक्रम तथा क्षमा का पर्याप्तरूपेण समावेश था।

कौसल्यानन्दवर्धन,श्रीराम सर्वगुणसम्पन्न थे। वे गाम्भीर्य में समुद्र, धैर्य में हिमालय, पराक्रम में विष्णु, पिय्रदर्शन में चन्द्रमा, क्रोध में कालाग्नि, क्षमा में पृथिवी, त्याग में कुबेर तथा सत्यपालन में साक्षात् धर्म के समान थे-

**स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।**

**समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥**

**विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।**

**कालाग्निसदृशो क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥**

**धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।** (वा.रा. 1/1/17-19)

सत्कार्य करके नैतिकता के उत्कृष्टतम स्तर पर पहुँचना उनकी जीवनचर्या का अंग था एवं उनके जीवन का परम लक्ष्य था। भगवान् श्रीराम आचरण से मौन रहकर नीतिका शिक्षण करते थे, बहुभाषण से नहीं। नीतिशास्त्रकार शुक्राचार्य के अनुसार वे अद्वितीय नीतिमान् राजा थे-

**न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।** (शुक्रनीति 5/41)

लोकशिक्षण की दृष्टि से उनकी जीवनचर्या का अत्यन्त महत्त्व है। प्रभु श्रीराम का समग्र चरित्र आदि से अन्त तक एक सुसंस्कृत मर्यादासम्पन्न सदाचारी महापुरुष का चरित्र है। बालक श्रीराम की पवित्र दिनचर्या आजकल के बालकों के लिये प्रेरणा का स्रोत है। भगवान् श्रीराम के नैतिक, धार्मिक एवं सुसंस्कृत सदाचारमय जीवन की झाँकी उनकी दिनचर्या एवं जीवनचर्या में दर्शनीय है।

प्रभु श्रीराम की दिनचर्या का आरम्भ अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्यों से होता था। प्रातः जागरण के पश्चात् स्नानादि से निवृत्त होकर देवताओं का पूजन पितरों का तर्पण, सन्ध्योपासना तथा गायत्री जप उनकी दिनचर्या का अभिन्न अंग था-

**प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च॥**

**प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।**

**हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्॥** (वा.रा. 1।29।31-32)

वे सूर्यदेव का दर्शन एवं उपस्थान करते थे वे तीनों काल स्नान करते थे। प्रातः काल देवताओं का पूजन करते थे। वे देवताओं, पितरों एवं ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करते थे। श्रीवाल्मीकिरामायण में उनके द्वारा किये गये गोदावरीस्नान के पश्चात् देवतओं के तर्पण का उल्लेख मिलता है।

श्रीराम देवोपासना किया करते थे। श्रीवाल्मीकिरामायण में उनके द्वारा मधुसूदन को प्रणाम, शुद्ध अग्नि में आहुति के पश्चात् देव मन्दिर जाने तथा श्रीनारायण (रंगनाथ) की उपासना का उल्लेख मिलता है-

**कृतोदकः शुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः।**

**देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम् ॥** (वा.रा. 7।37।13)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीवाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलो पर भगवान् श्रीराम द्वारा किये गये प्रणाम, चरणस्पर्श, आचमन आदि का उल्लेख है। मुनि विश्वामित्र से बला और अतिबला विद्याओं को ग्रहण करने से पहले श्रीराम ने आचमन किया–

**ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः।।** (वा.रा. 1।22।21)

**प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः।** (वा.रा. 1/22/22)

श्रीवाल्मीकीरामायण में श्रीराम के द्वारा पिता के चरणों में प्रणाम, माताओं के चरणस्पर्श एवं उनको प्रणाम, मुनियों को प्रणाम, हाथ जोड़ना, माता-पिता की परिक्रमा एवं स्वस्तिवाचन में विश्वास का अनेकशः उल्लेख है।

राक्षसों के संहार के पश्चात् राज्यप्राप्ति होने पर जब सम्पूर्ण ऋषि-महर्षि श्रीराम का अभिनन्दन करने अयोध्यापुरी आये तब वे मुनियों को देखकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने एक-एक गाय भेंटकर पाद्य, अर्घ्य आदि के द्वारा उनका आदरपूर्वक पूजन किया और उनको प्रणामकर आसन प्रदान किया-

**दृष्ट्वा प्राप्तान् मुनीस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।**

**पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च गां निवेद्य च सादरम्।।**

**रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेश ह।** (वा.रा. 7।1।13-14)

भागवान् श्रीराम माता-पिता एवं गुरुजनों की सेवा दत्तचित्त होकर करते थे। वे अपने गुरु विश्वामित्र के समस्त कार्य सेवा भाव से करते थे- **गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजे।** (वा.रा. 1।।22।2

इसी प्रकार वे पिता को देवतओं का भी देवता मानते थे और उनकी आज्ञा का पालन करते थे-

**'पिता ही दैवतं तात देवतनामपि स्मृतम् ।** (वा.रा. 2।34।52)

भरत के ननिहाल चले जाने पर श्रीराम और लक्ष्मण अपने देवोपम पिता की पूजा में संलग्न रहते थे-

**गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।।** (वा.रा. 1।77।20)

**पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा।** (वा.रा. 1।77।21)

वे माता-पिता और गुरु को परम देवता मानते थे। उनकी मान्यता थी कि माता-पिता एवं गुरु की आराधना करने पर धर्म, अर्थ और काम-तीनों की प्राप्ति होती है तथा तीनों लोकों की आराधना सम्पन्न हो जाती है। वे पितृसेवा को कल्याण प्राप्ति का प्रबल साधन मानते थे। उनके मतानुसार सत्य, दान, मान एवं पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञ भी पितृसेवा के तुल्य नहीं होते। गुरुजनों की सेवासे स्वर्ग, धनधान्य, विद्या, पुत्र एवं सुख सब सुलभ हो जाते है। ऐसा उनका अटूट विश्वास था। माता-पिता की सेवा में लगे रहने वाले महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्व लोक, ब्रह्मलोक, गोलोक तथा अन्य लोकों को भी प्राप्त कर लेते हैं- **देवगन्धर्वगोलोकान् ब्रह्मकांस्तथापरान् ।**

**प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः।।** (वा.रा. 2।30।37)

दान का उनकी जीवनचर्या में विशेष रूप से समावेश था। असंग्रह एवं अनासक्ति की भावना उनके चरित्र में समाविष्ट थी। वे अर्थपरायणता को उचित नहीं मानते थे। दान, भोग एवं नाश धनकी तीन स्थितियाँ होती हैं। श्रीराम ने प्रथम स्थिति का पालन किया है। उनहोंने प्रजा के हितार्थ यज्ञादि कर्मों में सर्वस्व दान किया।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वन जाने से पूर्व उन्होंने सीता से उत्तम वस्तुएँ- आभूषण, वस्त्रादि दान करने के लिये कहा-

**ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् ।**

**देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम् ।।** (वा.रा. 2।30।43)

प्रभु श्रीराम पिता की आज्ञा से नगरवासियों के हितकारी कार्य करते थे। वे अपने को बड़े संयम से रखते थे और समय-समय पर माताओं के लिये उनके आवश्यक कार्य पूर्ण करके गुरुओं के भारी-से भारी कार्यों को भी सिद्ध करने का ध्यान रखते थे—

**पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।**

**चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च।।**

**मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः।**

**गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत।।** (वा.रा. 1/77/21-23)

वे किसी के दोष नहीं देखते थे। वे सदा शान्तचित्त रहते एवं मीठे वचन बोलते थे। यदि उनसे कोई कठोर बात भी कह देता तो वे उसका उत्तर नहीं देते थे। उपकार को मानने से उनमें कृतज्ञता का गुण था। किसी के अपराधों को वे याद नहीं रखते थे। सीता से मिलकर आने पर वृत्तान्त जानकर उन्होंने हनुमान् के प्रति कृतज्ञता दर्शाते हुए कहा कि आज हनुमान् ने सीता का पता लगाकर धर्मानुसार मेरी, समस्त रघुवंश और महाबली लक्ष्मण की भी रक्षा की है-

**अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।**

**वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः।।** (वा.रा. 6/1/11)

नीतिरक्षण, धर्मपालन, प्रेमविवशता एवं सेवकसुख-दातृत्व के गुण प्रभु श्रीराम में थे। उनका चरित्र राजर्षियों जैसा पवित्र था। प्रभु श्रीराम में क्रूरता का अभाव, दया, विद्या, शील, दम एवं शम- छः गुण विद्यमान थे—

**आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।**

**राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्।।** (वा.रा. 2/33/12)

प्रभु श्रीराम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करते थे। लक्ष्मण को धर्म की श्रेष्ठता बताते हुए उनका कथन है कि प्रतिज्ञा करके पालन करना आवश्यक है। इससे स्पष्ट है कि वे दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिये सन्मार्ग पर स्थित रहने वाले वनवासी ऋषिमुनियों का पक्ष लिया। वे उत्तम नियमों का पालन करते थे। वे सन्मार्ग पर स्थित रहने को कुलधर्म का वर्धन करने वाला मानते थे। वे सत्य, धर्म, पराक्रम, समस्त प्राणियों के प्रति दया, सबसे प्रिय वचन बोलना तथा देवतओं, अतिथियों और ब्राह्मणों की पूजा को स्वर्ग लोक का मार्ग मानते थे-

**सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च**

**भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।**

**द्विजातिदेवातिथिपूजनं च**

**पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः।।** (वा.रा. 2।101।31।)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु श्रीराम श्राद्ध करते थे एवं उत्तम वस्तुएँ ब्राह्मणों को देते थे। वे पितरों एवं देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिये बड़े-बड़े पिण्डात्मक पितृयज्ञों का अनुष्ठान करते थे—

**पित्र्याणि ब्रह्मरत्नानि यज्ञान् परमदुस्तरान् ।**

**चकार रामो धर्मात्मा पितृन् देवान् विवर्धयन् ॥** (वा.रा. 7।99।19)

श्रीराम ने पर्याप्त दक्षिणाओं से युक्त अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोसव तथा अन्य बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया। श्रीराम धर्मपालक तपस्वी राजा थे-

**अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः।**

**ईजे क्रतुभिरन्यैश्च स श्रीरामानाप्तदक्षिणैः॥** (वा. रा. 7।99।10)

धार्मिक होने के साथ-साथ प्रभु श्रीराम मधुर फल-मूल का आहार करते थे। इस प्रकार वे सात्त्विक भोजन ग्रहण करते थे एवं शाकाहारी थे। जाबालि मुनि के नास्तिक मत का खण्डन करते हुए श्रीरामने फल-फूल आदि ग्रहण करने के विषय में कहा है-

**वनवासं वसन्नेव शुचिर्नियतभोजनः।**

**मूलपुष्पफलैः पुण्यैः पितृन् देवांश्च तर्पयन् ॥** (2।109।26)

भरत को राजनीतिविषयक उपदेश देते हुए उनका मत है कि स्वादिष्ट भोजन अकेले नहीं खाना चाहिये-

**कच्चित् स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव।**

**कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि॥** (वा.रा. 2/109/26)

इस प्रकार प्रभु श्रीराम का आहार एवं विचार सात्त्विक था।

श्रीराम ने कभी शत्रु का भी अनिष्ट नहीं किया। उनकी किसी से भी शत्रुता नहीं थी। वे तो रावण के भी हितचिन्तक थे। श्रीरामचन्द्र जी अस्त्र-शस्त्र रहित अनीतिरत क्रूर रावण के साथ युद्ध को धर्म विरुद्ध समझते थे। उन्होंने उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया। उन्होंने उसे शस्त्रसहित रथारूढ़ होकर आने के लिये कहा-

**प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं**

**प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम् ।**

**आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी**

**तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः॥** (6।59।143)

रावण को अपना स्नेहभाजन बतलाकर विभीषण को अन्त्येष्टि करने की अनुमति देना प्रभु श्रीराम की उदार युद्धनीति का प्रमाण है। उन्होंने रण क्षेत्र में भी सदा मर्यादा एवं शालीनता का अनुपालन किया। रावण की मृत्यु पर उनका कथन है कि मरने के बाद वैरों का अन्त हो जाता है।-



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।**

**क्रियतामस्य संस्कारो माप्येषः यथा तव।।** (वा.रा. 6।109।25)

प्रभु श्रीराम के राज्य काल में एक साधारण से साधारण जीव को भी न्याय प्राप्त होता था। इस विषय में कुत्ते का आख्यान उल्लेखनीय है। उनके राज्यकाल में प्रजाजन उनकी आदर्श जीवनचर्या से प्रभावित हुए, क्योंकि राजाओं के जैसे आचरण होते हैं, प्रजा भी वैसे ही आचरण करने लगती है।

श्रीराम के सदाचारमय आचरण का यह पावन सन्देश है कि एक राजपुरुष को आस्तिक होना चाहिये। उसे ज्ञानियों का संग, सद्ग्रन्थों का अध्ययन एवं श्रवण तथा मांगलिक कार्यों का अनुष्ठान करने रहना चाहिये तथा सात्त्विक आहार ग्रहण करते हुए भोजन आदि ऐश्वर्यभोग में भाई बन्धुओं से दुराव और द्वैध नहीं करना चहिये। वृद्धों एवं पूज्यजनों का सम्मान उनकी जीवन चर्या का महत्त्वपूर्ण अंग था।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम की जीवनचर्या एक आदर्श जीवनचर्या थी। यही कारण है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम कहलाये। सनातन वैदिक संस्कृति की पूर्ण प्रतिष्ठा भगवान् श्रीराम में चरितार्थ हुई है। जीवन के सभी क्षेत्रों में राम की जीवनचर्या आदर्श प्रस्तुत करती है। भारत का यह आदर्श यदि विश्व मानव का आदर्श बन जाय तो मानव जाति सुसंस्कृत हो जाएगी। प्रभु श्रीराम की उदात्त जीवन चर्या आज भी जनमानस के लिए पूजनीय एवम् अनुकरणीय है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# तुलसीदास और उनका काव्य

मानेश्वर नाथ गुर्जर*

किसी देश का कवि अपने युग का प्रतिनिधि हुआ करता है। तुलसीदास जी का जन्म भी भारत में उसी समय हुआ था जब उनकी बड़ी आवश्यकता थी। मुसलमानों के आक्रमण से भारतीय जीवन में काफी हलचल उत्पन्न हो गई थी। धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। देश परतंन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा चुका था। स्वभावतः अपनी विवशता, दरिद्रता और निराशा भरी परिस्थिति को देखकर जनता का ध्यान भगवान की ओर हो गया। महाकवि तुलसी ने भगवान के शील, सौन्दर्य और शक्ति इन तीनों की पूरी-पूरी झलक देकर जनता में आशा और उत्साह का संचार किया। उन्होंने यह संदेश "सबको प्रभु सब में बसै, सबकी गति को जान" घर-घर में पहुँचा दिया। तुलसी की भक्ति में आडम्बर नहीं वरन् उनका भक्तिमार्ग स्वाभाविक और सीधा-साधा है। वे भगवान् को केवल घर में नहीं वरन् उनका भक्ति मार्ग स्वाभाविक और सीधा-साधा है। वे भगवान् को केवल घर में नहीं वरन् समस्त संसार में व्याप्त पाते हैं।

"सियाराम मय सब जग जानी, करौं प्रणाम् जोरिजुग पाणी" से बढ़कर इसका प्रमाण और क्या हो सकता है। तुलसीदास की भक्ति की अलौकिक धारा आज तक सहृदयजनों को भगवत्प्रेम से स्निग्ध करती रही है। इसलिये किसी ने ठीक ही कहा है कि "गोस्वामी तुलसीदास शंकराचार्य के बाद सर्वश्रेष्ठ चरित्र संशोधक एवं धर्मोपदेशक हुए जिन्हें पाकर मानवता निहाल हो गई।

तुलसीदास का साहित्य स्वान्तः सुखाय होते हुए भी समाज हिताय है। कवि की भावना रामचरित्र मानस के उस अन्तर्मुख साधक की रही है जो अपने भावों में ही डूबा रहकर संसार की समस्याओं और संघर्षों से बेखबर रहता है। रामचरित मानस का कवि तो समाज के बीच खड़ा होकर समाज से वस्तु और प्रेरणा ग्रहण कर उसे एक नया रूप देने का आग्रह रखता है। उन्होंने रामचरितमानस प्रसंगवश सामाजिक अराजकता के विरूद्ध जोरदार आवाज बुलन्द की है। अपने चरित्रों और घटनाओं के द्वारा भी उन्होंने भारतीय सामाजिक जीवन के परम्परागत आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है।

तुलसीदास का व्यक्तित्व बड़ा विशाल था। वे संत भक्त ही नहीं प्रत्युत सुधारक, विचारक और कलाकार भी थे। रामचरित मानव के अध्ययन के पश्चात् यह समझते देर नहीं लगती कि तुलसीदास के हृदय में नारी के प्रति पुनीत भावनाएं भरी हुयी थीं। उन्होंने आदर्श परिवार में नारी का आदर्श स्थान निश्चित किया। कुछ लोगों का यह आक्षेप है कि तुलसीदास ने नारी निन्दा की है, लकिन यह उनका भ्रम है। नारी जाति के प्रति तुलसी का कोई द्वेष नहीं था, यदि पुरूषों की अधीनता

---

***अध्यक्ष, सार संस्थान**
**संगीत परिषद, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में रहकर उन्होंने गृहस्ती का कार्यभार सम्भालना कहा है तो यह कौन सी बुरी बात है। जिस तरह तुलसी ने नारी के पतिव्रत्य पर भी जितना जोर दिया है उतना ही पुरुषों के एक पत्नीत्व पर भी इसमें नारी की क्या निन्दा हो गई? तुलसी ने पक्षपात रहित हो नारी के प्रति अपनी भावनाएं व्यक्त की हैं। उन्होंने पुरूष और नारी दोनों के लिए मुक्ति प्राप्ति का समान अधिकार माना है। जैसा कि- **रामभगति रत नर अरु नारी।**

**सबहिं परम पद कर अधिकारी।।**

इससे स्पष्ट हो जाता है प्रत्येक कलाकार, संत या सुधारक की सफलता इसी में है कि वह अपने समाज और देश के स्तर को ऊँचा उठाए। वह एक ऐसे आदर्श की योजना करे जिससे जीवन का सुन्दर विकास हो सके। तुलसी ने इसी आदर्श को ध्यान में रखकर अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं। उन्होंने अपने इस पद में भाव प्रस्तुत किया है-

**भूली जनता के पथदर्शक, हे आर्य जाति के उद्धारक**
**नैराश्य जगत और दग्ध हृदय के, आशा वारिद सुखकारक**
**किसका क्या कर्तव्य? तुम्हीं ने, ले ओर धर्म की बतलाया**
**कविता रसिकों को सरस अमल, कविता प्रवाह में नहलाया**

**तेरी पावन रचना ने, जन भेद भाव सब दूर किए**
**पद-पद पर लौकिक कर्मों में, उपदेश हमें भरपूर दिए**
**किस तरह लोक-परलोक बने, यह मार्ग तुम्हीं ने दिखलाया**
**भीतर-बाहर का तमहर दीपक, राम नाम को बतलाया**

**सहयोग तुम्हारी वाणी का, यदि आज हमें न मिला होता**
**क्या सम्भव था इस जगती को, पुरुषोत्तम राम मिला होता**
**जिस भाँति राम का नाम राम से, अधिक लोक हितकारी है**
**जन-मन कल्मष हरने वाली, ''मानस'' यह कृति तुम्हारी है**

**सब कुछ खोकर भी आज बने हैं, हम जो कुद भी सामिमान**
**पा रहे तथा गौरव उसका, बस हेतु तुम्हारी कृति महान्**
**हे काव्य गगन के चन्द्र कहो, किस भाँति तुम्हारा गान करें**
**अति अल्पशब्द यह कहो किस तरह, गौरव सिन्धु महान् भरें**

तुलसी के साहित्य में भक्ति, ज्ञान और कर्म का सुन्दर समन्वय हुआ है। तुलसी, एक ज्ञानी भक्त, सुधारक, धर्मोपदेशक एवं महान् समन्वयकारी लोक नायक थे। हिन्दी के संत कवियों और भक्तों के बीच उनका स्थान सर्वोच्च है। तुलसीदास जी ने श्रीराम के चरणों से अनुराग किया और करते रहे।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# योग–विमर्श

**डॉ0 बैजनाथ पाण्डेय***

योग शब्द के बहुत अर्थ हैं लेकिन दर्शन के क्षेत्र में योग शब्द के दो अर्थ– आत्मा को परमात्मा से जोड़ना और 'समाधि' मान्य है। महर्षि पतंजति के योगसूत्र के व्यासभाष्य में कहा गया है कि योग समाधि है। इसलिए 'युज समाधौ' से निष्पन्न समाधि ही योग है। समाधि चित्त का सार्वभौम धर्म है। चित्त अन्तःकरण है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि मन, बुद्धि और अहंकार के सम्मिलित रूप को चित्त कहा जाता है। चित्त का किसी विषय के आकार में परिवर्तित हो जाना ही चित्त की वृत्ति है।

व्यासभाष्य में चित्त की पाँच भूमियाँ बतायी गयी हैं–क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध। इन सभी भूमियों में समाधि होती है इसलिए समाधि को चित्त का सार्वभौम धर्म कहा गया है। किसी एक विषय में चित्त की एकाग्रता अर्थात् एकविषयिणी स्थिति ही समाधि है लेकिन क्षिप्त, विक्षिप्त और मूढ़ जिन्हें क्रमशः रजस्, सत्व और तमस् कहते है– में योग प्रतिपादित समाधि की अवस्था नहीं होती है क्योंकि इन तीनों अवस्थाओं में एकविषयिणी स्थिरता क्षणिक होती है। चित्त की एकाग्रता भूमि में समाधि की अवस्था आती है। जैसे अल्पतम वायु में स्थित दीपशिखा उपर की ओर प्रज्वलित होती रहती है। कहने का आशय यह है कि परमार्थ ध्येय की चित्तवृत्ति सतत रहने के कारण सत्त्व का साक्षात्कार होता रहता है और अविद्यादि पंच क्लेशों का नाश हो जाता है।[1] कर्मबंधन विलुप्त हो जाते हैं। यह अवस्था सम्प्रज्ञात की होती है। सम्प्रज्ञात समाधि में ध्येय तीन होते हैं– ग्राह्य, (रूपादि विषय), ग्रहण (इंद्रियाँ), ग्रहीता (चेतन पुरुष) का सम्यक् साक्षात्कार हो जाता है। यह सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की होती है–स्थूल विषयक सम्प्रज्ञात वितर्क है। सूक्ष्म विषयक सम्प्रज्ञात सविचार है। इससे प्राप्त होने वाला ह्लाद आनन्द है।[2]

एकात्मिका वृत्ति अर्थात केवल पुरुषाकारा समाधि अस्मिता है। इस सम्प्रज्ञात समाधिकी पराकाष्ठा धर्ममेघ समाधि होती है। यह धर्ममेघ समाधि जिसमें सत्त्व और चेतन पुरुष का अन्यथा ज्ञान होता है– सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात के बीच की अवस्था होती है।

वस्तुतः योग दर्शन में बताया गया है कि योग के माध्यम से अनागत दुःखों का नाश किया जाता है इसलिए अनागत दुःख ही हेय है और हेय का कारण अविद्या है।[3] इस अविद्या के कारण द्रष्टा और दृश्य का संयोग हो जाता है।[4] कहने का आशय यह है कि द्रष्टा–चेतन पुरुष दृश्य(सम्पूर्ण भोग्य विषयों का) का भोक्ता बन जाता है और यही दुःख का कारण बन जाता है।[5] और विवेकख्याति की अवस्था

---

***अवकाशप्राप्त उपाचार्य, संस्कृत–विभाग, के.बी.पी.जी. कालेज, मीरजापुर**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आती है। द्रष्टा की पृथक्ता का ज्ञान ही विवेकख्याति है। कहने का आशय यह है कि सम्प्रज्ञात समाधि के पश्चात् जब धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है उसके बाद ही विवकेख्याति होती है।

योगसूत्र में कहा गया है कि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही चित्तवृत्तियों का निरोध होता है। वैराग्य दो प्रकार का होता है– चित्तरूपी नदी दो धारा में प्रवाहित होती है एक पाप की और एक कल्याण की ओर। इस चित्त नदी के एक प्रवाह अर्थात् विषय मार्ग की और जाने वाली धारा को वैराग्य के द्वारा रोक दिया जाता है और विवेकख्याति के द्वारा कल्याणकारिणी नदी की धारा प्रवाहित कर दी जाती है। परवैराग्य से विवेकख्याति का परित्याग कर दिया जाता है। इसके पश्चात् ही असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। इसी अवस्था में सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाता है इसीलिए योगसूत्र में 'योगशचित्तवृत्तिनिरोधः–1/2' चित्तवृत्ति निरोध के द्वारा यह बताया गया है कि असम्प्रज्ञात अवस्था में सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है। इस निरोध का तात्पर्य वृत्तियों का अभाव नहीं है, वरन् वृत्तियों के संस्कार की शेषावस्था रहती है। इसमें किसी प्रकार का बीज नहीं रहता है इसीलिए इसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं। इस असम्प्रज्ञात अवस्था में द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। जैसे स्फटिक के समक्ष जपाकुसुम के रहने से स्फटिक लाल दिखायी पड़ता है और उसे हटा देने पर स्फटिक अपने निर्मल रूप में स्थित हो जाता है, इसी प्रकार जब विवेकख्याति होती है, द्रष्टा और दृश्य के संयोग का नाश हो जाता है, तब असंग चेतन पुरुष केवल चेतन रूप में ही प्रतीत होता है।

उपर्युक्त चित्तवृत्तिनिरोध रूपी योग की प्राप्ति जिस अभ्यास और वैराग्य के द्वारा बताया गया है वे उत्तम अधिकारी के लिए हैं। मध्यम अधिकारी तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानरूप साधनों के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त कर सकते हैं और मन्द अधिकरी अष्टांग योग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।[6] प्रायः लोग यम और नियम के बिना ही आसन और प्राणायाम को योग समझ कर इन्हीं दोनों का अभ्यास करते हैं।

योग–सूत्र में आसन को स्थिर और सुखद बताया गया है।[7] आसन के दो अर्थ होते हैं– जिस पर हम बैठते हैं, उसे भी आसन कहा जाता है। इसके अतिरिक्त योग में जिन मुद्राओं के द्वारा बैठा जाता है, उन्हें ही आसन कहते हैं। योग में योग के लिए उपयोगी आसन सिद्धासन और पद्मासन है। इसके अतिरिक्त वीरासन, भद्रासन आदि विविध आसन है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जितने भी जीव के आसन हैं, उतने प्रकार के आसन है।[8]

---

1. पा0 यो0 सूत्र 1–1, व्यास भा0
2. पा0यो0 सूत्र 2–17
3. पा0यो0सूत्र 2–16– हेयं दुःखमनागतम्
4. पा0यो0सूत्र 2–17
5. पा0यो0सूत्र 2–23
6. पा0यो0सूत्र 2–28 योगवार्तिक
7. पा0यो0सूत्र 2–46 तत्व वै0 तथा योगवार्तिक
8. पा0यो0सूत्र 2–48



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह आसन स्थिर अर्थात् निश्चल होना चाहिए। किसी प्रकार का कम्पन नहीं होना चाहिए और साथ ही साथ आसन सुखद होना चाहिए न कि कष्टप्रद। इसे प्रयत्न पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। पतंजलि का कहना है कि आसन पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद द्वंदों–शीत–उष्ण, सुख–दुःख, हानि–लाभ आदि का प्रभाव साधक पर बिल्कुल नहीं पड़ता है।[9]

प्राणायाम के लिए आसन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। बिना आसन–जय के प्राणायाम की सिद्धि नहीं होती। योग –सूत्र के अनुसार जो साधक आसन को सिद्ध कर लेता है, वह सहज भाव से श्वास और प्रश्वास का प्रतिषेध कर लेता है।[10]

योग–शास्त्र में यम, नियम, आसन, प्राणयाम और प्रत्याहार को बहिरंग साधन माना जाता है और धारणा, ध्यान तथा समाधि को अंतरंग साधन माना जाता है। उपर्युक्त विवेचना से यही ज्ञात होता है कि योग प्राप्ति के लिए योग–शास्त्र के नियमों का पालन करना चाहिए।

******

9. पा0यो0सूत्र 2–49 व्यासभाष्य
10. पा0यो0सूत्र 2–49 योगवार्तिक



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# छत्रपतिसाम्राज्यम् में सात्त्विक अभिनय

डॉ. उपेन्द्र देव पाण्डेय*

नाट्यशास्त्र के दृष्टिकोण से मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक द्वारा विरचित छत्रपतिसाम्राज्यम् एक महानाटक है, जिसका मंचन सरल है। इसकी भाषा शैली संवाद–योजना और वाक्य–विन्यास कर्णप्रिय तथा हृद्य है। कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। कवि को विशेष कल्पनाओं के द्वारा इस नायक को महत्वपूर्ण बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि इतिहास सिद्ध शिवाजी का चरित्र अपने आप में स्वच्छ दर्पण की भांति चमत्कारपूर्ण पथ–प्रदर्शक है। नाटक में अर्थ प्रकृतियों, पंच अवस्थाओं और पंच सन्धियों का प्रयोग एक ओर नाटक की शास्त्रीयता को अभिव्यक्त करता है, तो दूसरी ओर कथा को सरस बनाने में सहयोग करता है। नाटकीय तत्त्वों के समुचित प्रयोग, से नाटककार के नाट्यशास्त्रीय ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। रंगमंचीय दृष्टि से यह नाटक सफल है, क्योंकि रंगमंच पर पात्रों की असंगतपूर्ण भीड़ एकत्र नहीं की गई है। उनके आगमन और निष्क्रमण, दृश्य, परिवर्तन एवं आवश्यक दृश्य वस्तुओं की व्यवस्था में सुविधा आदि की सुन्दर योजना की गई है। वीर रस प्रधान होते हुए भी नाटककार ने रंगमंच पर दिखाये जाने वाले गीत एवं वाद्य का चित्ताकर्षक प्रयोग किया है।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि नाट्य प्रयोक्ता भी थे। इसलिए उन्होंने अभिनयतत्व की सुन्दर व्यख्या प्रस्तुत की। अभिनय ही नाट्यतत्व का प्राण है। अभिनय शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है–

**"मुख्य प्रयोजन की ओर प्रयोग को ले जाना"**। अभिनय शब्द में **'अभि'** उपसर्ग और **प्रापणार्थक णीञ्** धातु है। इसमें **'अच्'** प्रत्यय लगा हुआ है। इसलिए इसका अर्थ होता है **"मुख्य प्रयोजन की ओर ले जाने वाला तत्व अभिनय है।"**[1]

भरतमुनि ने अभिनय को स्पष्ट करते हुए बतलाया है–कि अभिनय अपनी शाखा, अपने अंग तथा उपांगो से युक्त होकर नाट्य प्रयोगों द्वारा अनेक अर्थों (भाव रसादि) को सामाजिकों के हृदय में अभिव्यक्त करता है।[2] वस्तुतः अभिनय काव्य के अर्थों को सामाजिकों के हृदय में प्रवेश कराता है। इसके कारण ही सहृदय साधारणीकरण को प्राप्त होकर रस का आस्वादन करते है। नाट्य में प्रयुक्त होने वाला अभिनय मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है[3] – **1.आंगिक अभिनय 2.वाचिक अभिनय 3. आहार्य अभिनय और 4.सात्त्विक अभिनय।**

---

***प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, सुधाकर महिला पी0जी0 कालेज, वाराणसी**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतमुनि के विचार में वाणी अंग तथा सत्व पर निर्भर रहने वाले अभिनय को सामान्य अभिनय कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय– आंगिक, वाचिक और सात्विक अंगों का संतुलित प्रयोग सामान्य अभिनय की मौलिक महत्ता है। जिस अभिनय में सत्त्व का अतिशय समावेश हो उसे उत्तम, सामान्य मात्रा में हो तो मध्यम और सत्त्वरहित हो तो अधम प्रकार का अभिनय कहा जाता है।[4]

भावों की अभिव्यक्ति को सात्त्विक अभिनय कहते हैं। नाट्यशास्त्र के षष्ठ अध्याय में रसों और सप्तम अध्याय में भावों का विवेचन करते हुए भरत ने सात्त्विक अभिनय पर विस्तृत रूप से लिखा है। किस भाव का प्रकाशन कैसे किया जाता है, इसका व्यापक विधान है। जैसे शोक का अभिनय अश्रुपात विलाप, परिदेवना, (उलाहना), विवर्णता, स्वरभंग, शिथिलगात्र, भू–पतन, आक्रन्दन आदि अनुभाव से करें[5] स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, विवर्णता (मुख का रंग बदलना) वेपथु (कम्प) अश्रुप्रवाह तथा प्रलय चेष्टाहीनता ये सात्विक भाव हैं,[6] इन्हें भी कुछ लोग अनुभावों की कोटि में रखते हैं। शरीर में सत्त्वगुण की अभिवृद्धि से स्वभावतः जन्म लेने के कारण ये सात्त्विक कहलाते हैं। इनका भी मंच पर प्रकाशन होता है। जिससे रसोद्भावन में सुविधा होती है।

वस्तुतः भरत के मत में सत्त्व अदृश्य रूप वाला होता है किन्तु रसों तथा भावों को उचित रूप में रोमांच, अश्रु, विवर्णता आदि के द्वारा भावाश्रित होकर अभिव्यक्त करता है।[7]

**पुरुषों के सात्त्विक भाव :** भरतमुनि ने पुरुषों के आठ सात्त्विक गुणों की विवेचना करते हुए कहा है कि सत्त्व भेद से पुरुषों में होने वाले आठ सात्त्विक भाव–शोभा, विलास, माधुर्य्य, स्थैर्य्य, गाम्भीर्य्य, ललित्य, औदार्य्य, तेज होते हैं।[8]

**अ. शोभा–** दक्षता, शौर्य, उत्साह, उत्तम कार्यो, में स्पर्धा तथा अधमकार्यो के प्रति घृणा का भाव रखना ही पुरुषों का शोभा नामक सात्त्विक भाव है।

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में धर्मराज्य के संस्थापना[9] के प्रति शौर्य और उत्साह देखा जाता है तथा परदारा[10] स्वीकरण रूप अधमकार्य के प्रति घृणा देखी जाती है। इसलिए शिवाजी की शोभा नामक सात्विक भाव की अभिव्यक्ति होती है।

1. अभिपूर्वस्य धातुराभिमुख्यार्थ निर्णये। यस्मात् प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः।।
2. विभावयति अस्माच्च नानार्थान् त्विह प्रयोगतः। शाखाङ्गापाङ्ग संयुक्तस्तस्मादभिनयः स्मृतः।
3. द्रष्टव्य–ना0 शा0 8/9
4. ना0 शा0 24/1–2
5. ना0 शा0 7/10
6. ना0 शा0 8/13
7. अव्यक्तरूपं सत्त्वं त्विप विज्ञेयं भावसंश्रयम् यथा स्थानरसोपेतं रोमाः चास्त्रादिभिर्गुणैः।।
8. ना0 शा0 24/31
9. मानं धनं राजविलासभोगान्, मित्राणि दारानपि जीवितं च। हुत्वा रिपून्ज्वलितहव्यवाहे, संस्थापयिष्ये मम धर्मराज्यम्।।
10. छ0 सा0 3 पृ. 53–54



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**ब. विलास**— वीरता प्रदर्शन, वृषभ के समान चाल रहना, स्थिर दृष्टि तथा मन्द मुस्कान के साथ की जाने वाली बातचीत का होना विलास गुण कहलाता है।[11]

शिवराज का औरंगजेब की सभा में गमन करना तथा जयसिंह से बात करते समय उनके विलास सात्विक भाव की अभिव्यक्ति होती है।[12]

**स. माधुर्य्य**— इन्द्रियों का किसी भाव या विकार की अतिशयता में भी दीर्घकालीन अभ्यास के कारण चित्त की स्थिर प्रवृत्ति माधुर्य्य नामक सत्त्व गुण को अभिव्यक्त करती है।[13]

छत्रपतिसाम्राज्यम् में बाजीप्रभु द्वारा परदारा रूप विकार के उपस्थित करने पर भी शिवाजी के चित्त की स्थिरता माधुर्य्य गुण को प्रकट करती है।

**द. स्थैर्य्य**— धर्म, अर्थ तथा काम के विषय में शुभ या अशुभ परिणाम के उपस्थित होने पर भी विचलित न होना स्थैर्य्य कहलाता है।[14]

नाटक के प्रारम्भ में शिवराज अर्थाभाव से संतप्त हैं तथा बाजीप्रभु के मारे जाने पर दुःखी हैं तथा औरंगजेब द्वारा कपटपूर्वक बन्दी बना लिए जाने पर भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते। यह उनके स्थैर्य्य भाव को द्योतित करता है।

**य. गाम्भीर्य**— क्रोध, हर्ष तथा भय की दशा में मुख–मण्डल के द्वारा सुख या दुःख की अभिव्यक्ति का न होना 'गाम्भीर्य' कहलाता है।[15]

शिवाजी को जब स्वयं के बन्दी बना लिये जाने की आशंका होती है तो रघुनाथपन्त आदि भय को अभिव्यक्ति करते हैं किन्तु शिवाजी का निर्भय मुख–मण्डल उनके गाम्भीर्य्य नामक सात्तिवक भाव को अभिव्यक्त करता है। इसी प्रकार राज्याभिषेक के समय उनकी गम्भीरता देखी जाती है।[16]

**र.लालित्य**— जिसकी वाणी और शृंगारिक चेष्टायें बिना प्रयास के ही सुकुमार रहती हैं उस भाव को लालित्य सात्विक भाव कहते हैं।

छत्रपतिसाम्राज्यम् में राज्ञी के प्रति शिवराज का कथन[17] उनके ललित भाव को अभिव्यक्त करता है।

---

11. ना0 शा0 24/33
12. छ0 सा0 8, पृ. 139–140
13. ना0 शा0 24/34.
14. ना0 शा0 24/35
15. ना0 शा0 24/36
16. तव व्रते मे ह्रदयं प्रतिष्ठितं मनश्च मे त्वन्मनसैकतां गतम्। त्वयि प्रसन्ने भवति प्रसन्नं समाकुलं चाकुलिते त्वयि प्रिय!।। छ0 सा0 3/17
17. छ0 सा0 10/172
    हेला हावश्च भावश्च परस्परसमुत्थिता।।
    सत्त्वभेदे भवन्त्येते शरीरे प्रकृतिस्थिताः।। ना0 शा0 : 24/6, 7



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**ल. औदार्य**— अपने हों या पराये सभी व्यक्तियों को दान देना, प्रिय सम्भाषण तथा उदार वर्ताव के द्वारा समभाव रखना औदार्य कहलाता है।

नाटक के दसवें अंक में शिवराज का ब्राह्मणों को दान आदि देना उनके औदायर्य सात्विक भाव को द्योतित करता है।[18]

**व. तेज**— शत्रु के द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किये गये आक्षेप या अपमान को प्राण जाने पर भी सहन न करना तेज कहलाता है।

औरंगजेब के दरबार में शिवराज जब प्रवेश करते हैं तब मुगलसम्राट शिवराज पर आक्षेप करता है तथा उन्हें अपमानित[19] भी करता है। शिवराज उसे सहन नहीं करते अपितु प्रतिकार[20] करते हैं। यह उनके तेज भाव को बतलाता है।

**स्त्रियों के सात्विक भावः**— भरतमुनि ने स्त्रियों में होने वाले भाव—हाव, हेला को सात्त्विक विकार बतलाये हैं। ये विकार स्त्रियों के यौवन काल में अधिक होते हैं। स्वाभाविक रूप से देहात्मक हाने वाले भाव हाव हेला सात्त्विक भाव है। कहने का आशय यह है कि स्त्रियों की देहात्मक स्वाभाविकता को सत्त्व कहा जाता है। इस सत्त्व से भाव का भाव से हाव का और हाव से हेला का उद्‌भव होता है। वस्तुतः भाव, हेला सत्त्व के ही विभिन्न रूप हैं।[21]

**अ. भाव**— वाणी, अंग, मुखराग तथा सत्त्व के अभिनय द्वारा नाट्‌यरचनाकार के अन्तर्गत भावों का भावन करवाने के कारण भाव कहलाता है।[22]

दशरूपककार की दृष्टि में निर्विकारात्मक सत्त्व से उत्पन्न होने वाला प्रथम विकार भाव कहलाता है। आशय यह है कि विकार का हेतु उपस्थित रहने पर भी विकार रहित रहना सत्त्व कहलाता है।

**ब. हाव**— भाव की उस अवस्था को जो चित्तवृत्तियों से उद्‌भूत होकर नेत्रादि के द्वारा श्रृंगार रस को अभिव्यक्त करती हैं, हाव कहलाता है।[23]

**स. हेला**— पात्रों का जो हाव श्रृंगार रस के आश्रित रहकर ललित शारीरिक चेष्टाओं का अभिव्यंजक हो, उसे हेला कहते हैं।[24]

---

18. जसवन्तसिंहपार्श्वमेनमुपवेशय। छ0 सा0 8, पृ0 139
19. किमसौ जल्पति।.......तत्प्रापयैनं स्वनिवेशम्। छ0 सा0 8, पृ. 139
20. निमन्त्रितस्यावमतिर्ममेयं किं सार्वभौमेश्वरतानुरूपा। क्षुद्रोऽथवा प्राप्य महत्पदं निजं निसर्गसिद्धं न जहाति लाघवम्।। छ0 सा0 8, पृ.3
21. देहात्मकं भवेत्सत्त्वं सत्त्वाद्भावः समुत्थितः।
    भावात् समुत्थितो हावो हावद्धेला समुत्थिताः।।
22. वागङ्गमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च।
    करेवन्तर्गतं भावयन् भाव उच्चते।। न.शा. 24/9
23. ना.शा. 24/10
24. ना. शा. 24/11



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में स्त्री पात्रों का अत्यल्प वर्णन किया गया है। इसलिए नाट्यशास्त्र प्रतिपादित सात्त्विक अलंकारों की प्राप्ति उनमें सम्भव नहीं है। राजमाता और राज्ञी केवल दो ही स्री पात्र है। उनकी उपस्थिति बहुत कम समय के लिए होती है। इसलिए उनमें सात्त्विक अभिनय की सम्भावना नहीं पायी जाती।

भरतमुनि ने चारों प्रकार के अभिनय की जिन सूक्ष्मताओं का वर्णन किया है वे किसी एक रूपक में प्राप्त नहीं हो सकती। इन्होंने आंगिक अभिनय के प्रसंग में प्रत्येक अंगो की नाट्य–प्रयोगीय क्रियाओं का वर्णन किया है उसे सम्यक् रूप से अभिनीत करना सामान्य पात्रों के वश की बात नहीं है। हस्त और पाद के कर्मों का जिस प्रकार विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है उसका समायोजन करना किसी एक नाट्यकार के वश में नहीं है।

वस्तुतः नाटक एकांगीय रचना नहीं होता वह रसनुभूति कराने वाला अनुपम दृश्य काव्य होता है। भरत जैसे आचार्य ही नाट्यशास्त्र में नाट्यप्रयोगों या नाट्याभिनयों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव को अभिव्यक्त कर सकते हैं। नाटयकार नाट्यशास्त्र के सम्पूर्ण वर्णनों में से नाटक के आवश्यकतानुसार सिद्धान्तों को लेकर नाटक की रचना करता है। इसलिए छत्रपतिसाम्राज्यम् में भी आवश्यक सिद्धान्तों का वर्णन पाया जाता है। नाटककार, दर्शक और पाठक को नाट्यशास्त्र का ज्ञान होना चाहिए तभी वह नाट्यप्रयोगों से तादात्म्य स्थापित कर सकता है। नाटककार भी सभी आंगिक अभिनयों ऐसा करके, ऐसा करके को लिखित रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता। इसलिए सहृदय को उसकी स्वयं कल्पना करनी पड़ती है। यह कल्पना तभी सार्थक होगी जब उसे नाट्यशास्त्र का किञ्चित ज्ञान हो।

इसी प्रकार वाचिक अभिनय आहार्य अभिनय और सात्त्विक अभिनय के समग्र सिद्धान्त को किसी भी एक नाटक में नहीं पिरोया जा सकता। उसके रसोत्पादक भाग को ही रूपक का विषय बनाया जा सकता है। भरतमुनि ने तो सभी प्रकार के रूपकों के लिए सिद्धान्तों का विवेचन किया है। समय के साथ–साथ सिद्धान्तों में भी परिवर्तन होता जाता है। परिवर्तन प्रकृति का स्वभाविक नियम है। इसलिए देश–काल एवं परिस्थिति के अनुसार नाट्यप्रयोगों में भी परिवर्तन होता रहता है।

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में तोपों का प्रयोग हुआ है। अस्त्र–शस्त्र के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। इसके अतिरिक्त युद्धनीति छापामार में भी परिवर्तन हुआ है, इसलिए नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों को उपलक्षण मान करके आवश्यकता के अनुसार सभी प्रकार के अभिनयों में परिवर्तन करना श्रेयस्कर है। 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में अभिनय के अधिकांशतः सिद्धान्तों का पालन किया गया है। इसलिए अभिनय के दृष्टिकोण से 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' सफल नाटक है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# दैववाद एवं कर्मवाद के सम्बन्ध में आदिकवि वाल्मीकि का दृष्टिकोण

डॉ. श्रीमती मिन्टी पाण्डेय*

'दैव' शब्द का अर्थ है– भाग्य, नियति, भवितव्यता।[1] अमर कोश में दैव शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है– **"दैवं दिष्टं भागधेयं स्त्री नियतिर्विधिः।**[2]

क्षीर स्वामी ने अमरकोश के दैव शब्द की व्याख्या करते हुए दैव को पूर्वकर्म कहा है– **दैवं पूर्वकर्म।** दैव को भाग्य या भागधेय इसलिए कहा जाता है कि ऐश्वर्य आदि के भाग को भोगा जाता है और यही 'दैव' व्यक्ति के कर्मों के फलों का नियमन करता है, इसलिए इसे 'नियति' भी कहा जाता है।

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में दैववाद को कहीं दैव, कहीं काल और कहीं नियति शब्दों से विचारित किया है। जिस कैकेयी के लिए राम भरत से भी प्रिय थे, उसने राम के लिए राज्याभिषेक से पूर्व चौदह वर्ष का वनवास दिया, वन में सीता का रावण द्वारा हरण, सुग्रीवादि से श्रीराम का मिलन, विश्वविजयी रावण की समुद्रों से घिरी लंका तक पहुँचने के लिए सेतु निर्माण , रावण की युद्ध में पराजय एवम् उसका वध आदि अनेक ऐसे कथासूत्र हैं जिनका कोई पूर्व कारण दृष्टिगत नहीं होता और ये सामान्य मानव–मस्तिष्क के चिन्तन से परे होने के कारण असम्भव से दिखायी पड़ते हैं इसलिए आदिकवि वाल्मीकि कथासूत्रों की संगति के लिए दैववाद का अवलम्बन करते हैं। रामायण में दैव को इस रूप में परिभाषित किया गया है–

**सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ।**
**यस्य किञ्चित् तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत्।। अयो० का022/22**
**असंकल्पितमेवेह यदकस्मात् प्रवर्तते।**
**निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत्।। अयो0 का0 22/24**

अर्थात्, व्यक्ति के सुख–दुःख, भय–क्रोध, लाभ–हानि, उत्पत्ति एवं विनाश तथा इस प्रकार के जितने परिणाम प्राप्त होते हैं, जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता, वे सब दैव के ही हैं। जो घटना अविचारित रूप में अकस्मात् सिर पर आ पड़ती है और प्रयत्नों द्वारा आरम्भ किए हुए कार्य को रोककर एक नया ही काण्ड उपस्थित कर देती है, वह अवश्य दैव का ही विधान है। कविवर तुलसीदास भी दैव को कुछ इस तरह परिभाषित करते हैं–

---

***रार्बट्सगंज, सोनभद्र**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**हानि लाभ जीवन मरनु जसु अपजसु विधि हाथ।।**

रामचरितमानस, अयो0 का0 172

रामायण में **'दैवं हि दुरतिक्रमः'** (उ0 का0– ५०/४) तथा **'कालो हि दुरतिक्रमः'** (अ0 का0– ६८/२१, ७२/१६) कहकर दैव को सर्वशक्तिमान बताते हुए उसे दुर्लंघ्य[3] बताया गया है। इसके विधान को धन, कामना, पराक्रम अथवा शक्ति किसी भी रूप से परिवर्तित नहीं किया जा सकता।[4] वास्तव में इसके विधान को लाँघना असम्भव है[5] और इसके विधान को रोकना प्राणियों के वश की बात नहीं है।[6] अपितु सभी जीवधारी, देवता या सिद्धपुरुष इस दैव के विधान से बँधे हुए हैं।[7] रामायण की सूक्तियों के अनुसार यह काल (दैव) भी स्वयं अपने नियम का उल्लंघन नहीं कर सकता।[8] इसके विधान से प्रेरित होकर ही व्यक्ति की इन्द्रियाँ अनियंत्रित हो जाती हैं, उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रह जाता।[9] उग्र तपस्वी भी दैव से प्रेरित होकर मर्यादा से भ्रष्ट हो जाते हैं[10]। यह काल पक्षपात रहित होकर सभी के साथ व्यवहार करता है, क्योंकि इसका किसी के साथ भाई चारे का, मित्रता का अथवा रिश्ते–नाते का सम्बन्ध नहीं है।[11] दृष्ट, अदृष्ट सभी कार्यों का एक मात्र कारण दैव ही है।[12] दैव ही सबकी परम गति है।[13] सभी अपने भाग्य के अनुसार जीवन निर्वाह करते हैं[14] तथा स्वभाव को पाकर कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता।[15] यहाँ स्पष्ट रूप से व्यक्ति के प्रारब्ध कर्मों की ओर संकेत किया गया है।

**गोविन्दराजप्रणीत रामायणभूषण** में भी 'दैव' का अर्थ **'प्रारब्ध कर्म'** किया गया है।[16] प्रारब्ध कर्म से तात्पर्य है, पूर्व जन्म के वे कर्म जिनका फल भोगा जा रहा हैं[17]। इसे ही बौद्ध दार्शनिक **'अविज्ञप्ति कर्म'** कहते हैं और मीमांसक **'अपूर्व'** के रूप में परिभाषित करते हैं।[18] कर्म अनुष्ठान और फल के समय में व्यवधान दृष्टिगोचर होता है। कर्म का अनुष्ठान आज हो रहा है, परन्तु तज्जन्य स्वर्गादिफल की प्राप्ति कालान्तर में सम्पन्न होती है। इस वैषम्य को दूर करने के लिए मीमांसा दर्शन में 'अपूर्व' नामक सिद्धान्त प्रतिपादित है। कर्म से उत्पन्न होता है– अपूर्व और अपूर्व से उत्पन्न होता है– फल, इस प्रकार अपूर्व ही कर्म और कर्म–फल को बॉधने वाली श्रृंखला है।[19] आचार्य शंकर के शब्दों में अपूर्व कर्म की सूक्ष्म उत्तरावस्था है और फल की पूर्वावस्था है।[20]

उपर्युक्त विवेचन में दैव की दुर्लंघ्यता, महत्ता को देखकर एकमात्र दैव के सहारे अकर्मण्य होकर बैठ जाना उचित नहीं है अपितु दैव के विपरीत गति को अपने पौरुष एवं पराक्रम से सापेक्ष कर लेने वाला अथवा उसके प्रभाव को गौण बना देने वाला पुरूष ही संसार में सम्माननीय एवं सफल होता है जैसा कि आदिकवि ने लक्ष्मण की उक्ति के माध्यम से स्पष्ट किया है–

**विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते।**
**वीराः सम्भावितात्मनो न दैवं पर्युपासते।।** अयो0 का0 23/16
**दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम्।**
**न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति।।** अयो0 का0 23/17

अर्थात्, जो कायर है, जिसमें पराक्रम का नाम नहीं है, वही दैव पर भरोसा करता है। सारा संसार



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिसे आदर की दृष्टि से देखता है, वे शक्तिशाली वीर पुरुष दैव की उपासना नहीं करते हैं। जो अपने पौरुष से दैव को बाधित करने में समर्थ है, वह पुरुष दैव के द्वारा अपने कार्य में बाधा पड़ने पर खेद नहीं करता।

वस्तुतः जिस प्रकार एक पहिए से रथ में गति नहीं होती, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य सफल नहीं होता है।[21] हितोपदेश में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में भाग्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है–पुरुषार्थ के बिना भाग्य सफल नहीं होता। पूर्व जन्म में किया गया जो कर्म है, उसे 'भाग्य' कहते हैं। इस कारण मनुष्य आलस्य रहित होता हुआ पुरुषार्थ से यत्न करे।[22]

रामायणकार के अनुसार व्यक्ति का बल, पौरुष अथवा धर्मादिरूप सभी कुछ कर्म से प्रकट होता है। रामायण में सुख के साधनभूत जो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) है, उन सबका एक मात्र कर्म हीं प्रयोजक है।[23] श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने यह प्रतिपादित किया है कि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो बिना कार्य किये रह सकता है। सभी को न चाहते हुए भी स्वाभाविक गुणों के द्वारा कर्मो को करना पड़ता है[24] सच तो यह है कि सम्पूर्ण जगत् कर्म प्रधान माना गया है, जैसा कि रामचरितमानस में वर्णित है।–

**'करम प्रधान सत्य कह लोगू।'** (रामचरित मानस अयो0 का0 90/8)

आदिकवि वाल्मीकि की दृष्टि कर्म के सम्बन्ध मे अत्यन्त पैनी है। उन्होंने देव या भाग्य को अभिभूत करने वाले पौरुष के साथ–साथ इस पौरुष के प्रयोजक कर्म के सम्बन्ध में भी विचार किया है। आदिकवि ने कर्म के पाप–पुण्य रूप के विषय में तदनुसार शुभ–अशुभ फल के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया है। उनके अनुसार मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, अपने उसी कर्म के फलस्वरूप उसे सुख और दुःख प्राप्त होते हैं।[25] शुभ कर्म करने वाले को उत्तम फल की प्राप्ति होती है और पाप कर्म करने वाले को पाप का फल भोगना पड़ता है[26] संसार के पुरुषों को समृद्धि, सुन्दर रूप, बल–वैभव–वीरता तथा पुत्रादि की प्राप्ति पुण्य कर्मों के अनुष्ठान से ही होती है[27] और पाप कर्मो का फल केवल दुःख है।[28]

रामायण में आदिकवि कर्म के करने से पूर्व उसके फल के सम्बन्ध में भी विचार करने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार जो कर्मों का आरम्भ करते समय उनके फलों की गुरुता या लघुता को नहीं जानता, उनसे होने वाले लाभ रूपी गुण अथवा हानि रूपी दोष को नहीं समझता, वह मनुष्य बालक (मूर्ख) कहा जाता है।[29] जो क्रियमाण कर्म के फल का ज्ञान या विचार न करके, केवल कर्म की ओर ही दौड़ता है, उसे उसका फल मिलने के समय उसी तरह शोक होता है, जैसे आम के वृक्ष को काटकर पलाश सींचने वाले को हुआ करता है।[30] जो चंचल है और बिना सोचे–विचारे ही किसी कार्य की ओर दौड़ पड़ता है, उसकी इस दुर्बलता को शत्रु लोग उसी तरह ताड़ जाते हैं, जैसे क्रौंच पर्वत के छिद्र को पक्षी।[31] अतः व्यक्ति को कर्मों के उचित परिणाम पर पूर्ण विचार करके ही कर्म करने चाहिए। जीवों के कर्म के फल इस लोक और परलोक में भी भोगने पंड़ते हैं। परन्तु जो कामना–विशेष के उद्देश्य से यत्नपूर्वक कर्मों का अनुष्ठान करता है, उसे यहाँ भी उसके सुख मनोरथ की प्राप्ति हो जाती है।[32] यहाँ स्पष्टतः कर्मों के दो रूप बताये गये हैं– (१) निष्काम कर्म और (२) काम्य कर्म। निष्काम कर्म लौकिक



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं पारलौकिक सुख रूप दोनों प्रकार के परिणाम प्रदान करता है किन्तु काम्य कर्म केवल लौकिक सुख ही प्रदान करते हैं।

इस प्रकार, मनुष्य शुभ और अशुभ भी कर्म करता है, उसका फल भोगना ही पड़ता है। करोड़ों कल्प बीत जाने पर भी बिना कर्मफल को भोगे हुए मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती। लेकिन प्रयत्न छोड़कर पूर्ण रूप से बढ़े हुए दुर्लभ एवं बलवान् फल पर ही दृष्टि रखना उचित नहीं है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ के बल पर प्रारब्धकर्मों 33 के परिणाम को स्वल्प समय में ही भोग लेता है तथा कर्म के फलों से छूट जाता है और संसार से मुक्त हो जाता है।

## संदर्भ

1. संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ0–४७६
2. अमरकोश– १/ ४/२८
3. दैवं हि दुरतिक्रमम्।। वा0रा0, उ0का0–५०/४
4. नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न याज्ञया।
   शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता।। वा0रा, यु0का0– ११०/२५
5. वा0 रा0 यु0 का0– ४६/२७
6. विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम।
   सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः प्श्य मोहितान्।। वा0रा0, सु0 का,–३७/४
7. सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ।
   न दैवस्य प्रमुंचन्ति सर्वभूतानि देहिनः।। वा0 रा0 अ0 का0 – ६६/१२
8. न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते।
   स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते।। वा0 रा0, कि0 का0– २५/६
9. कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये।
   कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः।। वा0 रा0, अ0 का0 – ३०/१५
10. ऋषयोप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः।
    उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान् भ्रश्यन्ते काममन्युभिः।। वा0 रा0, अयो0 का0– २२/२३
11. न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः।
    न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः।। वा0 रा0, कि0 का0–२५/७



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

12. नियतिः कारणं लोके नियतिः कार्यसाधनम्।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम्।। वा0 रा0, कि0 का0–25/4

13. दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः। वा0 रा0 बा0 का0–58/23

14. आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुंजानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते।। वा0 रा0 अयो0 का0 – 27/4

15. न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते।
स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते।। वा0 रा0 कि0 का0 25/6

16. अत इत्युपस्कार्यं दैवमत्र प्रारब्धफलमदृष्टं परं श्रेष्ठं पुरुषं हिताहितप्रापकमित्यर्थः। व0 रा0 बा0 का0 58/23 की रामायण भूषण टीका

17. भारतीयदर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0–389

18. भारतीयदर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0–141

19. भारतीयदर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0–309

20. न चानुत्पाद्य किमप्यपूर्वं कर्म विनश्यत् कालान्तरितं फलं दत्तुं शक्नोति। अतः कर्मणो वा सूक्ष्मा काचिदुत्तरावस्था फलस्य वा पूर्ववस्थापूर्वनामास्तीति तर्क्यते। शांकरभाष्य

21. हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–29।

22. हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–30

23. कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम्।
श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम्। वा0 रा0 यु0 का0 64/7

24. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।गीता–3/5।।

25. यदा चरति कल्याणि शुभं वा यदि वा शुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः।। वा0 रा0 अयो0 का0–63/6

26. शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम्। वा0 रा0 यु0 का0–111/26

27. ऋद्धि रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जिताः पुण्यकर्मभिः।। वा0 रा0, उ0 का0–15/26



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

28. पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना।
तस्मादात्मापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति।। वा0 रा0 उ0 का0 15/24

29. गुरुलाधवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम्।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते। वा0 रा0 अयो0 का0– 63/7

30. अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः। वा0 रा0 अयो0 का0– 63/9

31. चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौंचस्य खमिव द्विजाः। वा0 रा0 युद्ध का0– 63/19

32. ऐहलौकिकपारक्यं कर्म पुंभिर्निषेव्यते।
कर्माण्यपि तु कल्याणि लभते काममास्थितः।। वा0 रा0 यु0 का0– 64/9

33. नाभुक्तं क्षीयते कर्म अब्दकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।। ब्रह्म वै0 पुराण, प्रकृति–37/16

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# संस्कृत साहित्य में मण्डन–कला के प्रतिमान

डॉ. भावना आचार्य*

सभ्यता के आदिकाल से देह का मण्डन या रूप का श्रृंगार-मानव मात्र की सहज प्रवृत्ति रही है। प्रकृति ने जैसी आकृति, जैसा रूप हमें दिया, उसको सौन्दर्य प्रसाधनों द्वारा और अधिक सुन्दर सुदर्शनीय बनाने का नाम मण्डन है। इस प्रवृत्ति की प्रेरणा भी मनुष्य को प्रकृति के पल-पल बदलते रूप-रंगों और ऋतुओं से ही मिली है। इन्हीं से मानव ने अपने रूप को सजाना सँवारना सीखा, अलंकरण की मनोहारी कला को विकसित किया और धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति उसके जीवन का अंग बन गई।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि काल, अवस्था, स्थान और पात्र-भेद से मण्डन-कला की सामग्री और उसके प्रयोग-प्रकार बदलते रहे हैं। गुफाओं में रहने वाले आदिमानव ने गेरू से चेहरा रंगा होगा और अपनी प्रिया के लिए पत्तों के वस्त्र और हड्डियों के आभूषण बनाये।[1] गाथासप्तशती की अल्हड़ गिरिबाला ने कानों में मोरपंख पहनकर अपने सौभाग्य पर इठलाते हुए अपनी सौत का मान-मर्दन किया था।[2] वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि वनवासी राम ने सीता का श्रृंगार मनःशिला और जंगली पत्र-पुष्पों से किया था।[3] ससुराल के लिए विदा होते समय शकुन्तला को रेशमी वस्त्र, फूलों के आभूषण और महावर वृक्षों ने ही प्रदान किये थे।[4] किन्तु जैसे- जैसे मानव-सभ्यता का विकास होता गया, वैसे वैसे उसके मण्डन-प्रसाधन भी विकसित हुए और उसकी रुचि में भी परिष्कार होता गया और इस तरह मण्डन-विधि ने एक ऐसी कला का रूप ग्रहण कर लिया, जिसमें सौंदर्यशास्त्र, आरोग्य-विज्ञान, रसायन और वनस्पति शास्त्र तथा मनोविज्ञान का भी संगम होता गया है।

संस्कृत साहित्य में मण्डन कला के शास्त्रीय और साहित्यिक विवरण ही नहीं मिलते, अपितु इस कला का सम्पूर्ण दर्शन भी अपने बहुआयामी रूप में देखने को मिलता है जो भारतीय सौन्दर्यविशेषज्ञों और कला-मर्मज्ञों की वैज्ञानिक दृष्टि के साथ-साथ असुन्दर को भी सुन्दर बनाकर देखने वाली सुरुचि का प्रमाण है।

संस्कृत साहित्य में मण्डन कला के प्रतिमान वैदिक युग से ही स्थिर हो चुके थे। चौंसठ कलाओं में उनका स्थान माना गया था।[1] अमरकोश में मण्डन कला के लिए आकल्प परिकर्म वैशेषिक, प्रसाधन अंग-संस्कार वेश-विधि जैसे शब्द आए है।[2] महाकवि कालिदास ने रूप-मण्डन करने वाले व्यक्ति के लिए प्रसाधक या प्रसाधिका शब्द का प्रयोग किया है।[3] महाभारत ग्रंथ के विराट पर्व में तो द्रौपदी ने अज्ञातवास के समय प्रसाधिका का रूप और कार्य अपनाया था और उसका नाम भी सैरन्ध्री था।[4] सैरन्ध्री प्रसाधिका का ही पर्याय होता है। उस युग के समाज में रूप—मण्डन की कला अभिजात्य व्यवसाय का रूप ले चुकी थी, जिसके अन्तर्गत स्नान-क्रिया वेशभूषा केश—विन्यास और सज्जा में दक्षता प्राप्त लोग राजमहलों में नियुक्त होकर आजीविका कमाते थे। शूद्रक के मृच्छकटिक नामक प्रकरण में इसे 'सुकुमार कला' कहा गया है।

---

*व्याख्याता–संस्कृत राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मण्डन-कला को शास्त्रीय धरातल पर स्थापित करने का श्रेय कामसूत्र के रचनाकार वात्स्यायन को है, जिन्होंने इसे 'सुभगंकरण' की कला कहा है। इस कला के मूल में कामभावना की प्रेरणा रहती है। प्रकृति ने जो रूप दिया है, उसमें यदि कुछ न्यूनता है, तो अन्य साधनों से उसकी पूर्ति करके उसे आकर्षक और मनोहारी बना देना ही सुभगंकरण कहलाता है।[5] अंग्रेजी में इसे ही मेकअप (Make-up) कहते हैं। सभ्य समाज में पात्र और अवसर की दृष्टि से इसकी पद-पद पर आवश्यकता पड़ती है।

आगे चलकर वात्स्यायन की इसी शास्त्रीय परिकल्पना की कश्मीर के काव्यशास्त्री राजानक रुय्यक ने विस्तार से परिभाषा की। अपने छोटे से ग्रंथ सहृदयलीला में उन्होंने युवतियों की शोभा बढ़ाने वाले गुण धर्मों का वर्गीकरण किया है।[6] शोभा विधायक धर्मों को वे गुण कहते हैं, जो प्रकृतिप्रदत्त होते हैं। शोभा को जिन बाह्यसाधनों से बढ़ाया जाता है, वे अलंकार कहलाते हैं। रुय्यक के मतानुसार अलंकार सात प्रकार के होते हैं— रत्न, हेम, अंशुक, माल्य, मण्डन, द्रव्यमय, योजनामय और प्रकीर्ण।[7] इन सात प्रकार के अलंकारों के समवाय को 'वेष' कहा जाता है। महाकवि कालिदास का कथन है कि नारी के वेष की सार्थकता प्रिय द्वारा उसे देखने और सराहने में ही निहित रहती है—

**'स्त्रीणां' प्रियालोकफलो हि वेषः।[8]**

रुय्यक के इसी वर्गीकरण को 16 वीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूपगोस्वामी ने संक्षिप्त करते हुए मण्डन कला के चार अंग माने। अपने ग्रंथ 'उज्ज्वलनीलमणि' में वे लिखते है—

**चतुर्धा मण्डनं वासोभूषामाल्यानुलेपनैः।[9]**

अर्थात् मण्डन चार प्रकार का होता है— वस्त्र, आभूषण, माल्य और अनुलेपन। वस्त्र को परिधेय मण्डन, आभूषण को देहधार्य, माल्य को कचधार्य और अनुलेपन को अंगराग मण्डन भी कहा गया है।

---

1. नारी शृंगार हर्षनन्दिनि भाटिया पृ. 10
2. सिहिपेहुणावअंसा बहुआ वाहस्स गव्विरी भमइ।
   गइमोत्तिअरइपसाहणाणँ मज्झे सवत्तीणं। हालरचित गाहासत्तसई, 2/73
3. रूपं वर्णः प्रभा राग आभिजात्यं विलासिता।
   लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमी गुणाः।। 1/4
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/5

---

1. कामसूत्र1/3/3/16
2. अमरकोश2/6/99
3. कुमारसंभवम् 7/58
4. विराटपर्व 9/10-12
5. रूपं गुणो वयस्त्याग इति सुभगकरणम् 7/1/59/3
6. सहृदयलीला 3/2
7. रत्नं हेमाङ्शुके माल्यं मण्डनं द्रव्ययोजने।
   प्रकीर्णं चेन्यलङ्कारा सप्तैवेते मया मताः।। सहृदयलीला 2/18
8. कुमारसंभवम् 7/22
9. उज्ज्वलनीलमणि, उद्दीपनविभाव, श्लोक 51



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुय्यक के अनुसार वस्त्र- मण्डन का नाम अंशुकमय अंगकार हैं।[1] इसे वासक सज्जा भी कह सकते हैं। ऋतु उत्सव सामाजिक समारोह और पति से मिलन-प्रसंग आदि के अनुरूप तथा अंग-सौष्ठव की वृद्धि के लिए विविध रंग के सुन्दर वस्त्रों को धारण करना-इसी विधि को वासकसज्जा के अन्तर्गत माना जाता है। वस्त्र चार प्रकार के होते है— क्षौम, कार्पास, कौशेय, रोमज। पेड़ की छाल या रेशों से बने वल्कल वस्त्र, क्षौम या दुकूल कहलाते हैं। कपास या रूई से बने सूती वस्त्र कार्पास कहलाते है। कीड़ों के कोश से निर्मित रेशमी वस्त्रों को कौशेय या अंशुक और पशुओं के रोमों से बने ऊनी वस्त्रों को रांकव या रोमज कहते हैं। पहनने की विधि के अनुसार इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है— निबन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्या जिन वस्त्रों को गांठ बांधकर शरीर पर पहना जाता है, वे 'निबन्धनीय' है। जिन सिले वस्त्रों में हाथ, गर्दन और पैर डालकर पहना जाता है, वे प्रक्षेप्य कहलाते हैं। ऊपर से शरीर पर डाले जाने वाले खुले वस्त्र आरोप्य कहलाते हैं। भारत में वस्त्र प्रसाधन प्रागैतिहासिक काल में ही विकसित हो चुका था। वैदिक मंत्रों में पति से मिलने के लिए पत्नी के सुन्दर वस्त्र धारण करने की उपमा मिलती है— **'जायेव पत्य उशती सुवासाः।**[2]

अलंकार धारण की कला का विकास भी भारत में बहुत पुराना है। आयु, लक्ष्मी और सौभाग्यवृद्धि के लिए विविध धातुओं और रत्नों के आभूषण पहनने के निर्देश आयुर्वेद तथा अन्य धर्म-ग्रंथों में बिखरे पडे.हैं। आचार्य भामह ने कहा है कि बिना आभूषण के वनिता का सुन्दर मुख भी सुशोभित नहीं होता—

**न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।**[3]

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि आभूषण धारण-विधि की दृष्टि से चार प्रकार के होते हैं— आवेध्य, बन्धनीय, क्षेप्य और आरोप्य—

**चतुर्विधन्तु विज्ञेयं नाट्ये ह्याभरणं बुधैः।**
**आवेध्यं बन्धनीयञ्च क्षेप्यमारोप्यमेव च॥**[4]

शरीर के अंग को बींधकर पहने जाने वाले आभूषण आवेध्य कहलाते हैं। जैसे- कुण्डल, नथ आदि। बांधकर पहने जाने वाले भुजबंद, करधनी आदि बंधनीय आभूषण कहे जाते हैं। जिनमें शरीर का अंग प्रक्षेपित कर पहना जाए, वे प्रक्षेप्य आभूषण होते हैं, जैसे अंगूठी, कड़े आदि। जो शरीर पर ऊपर से डाले जाते हैं, वे आरोप्य आभूषण कहलाते हैं, जैसे- हार, हेमसूत्र आदि।

नख से शिख तक शृंगार में कई प्रकार के आभूषण पहनने की रुचि नारी को आदिकाल से रही है। ये आभूषण प्रारंभ में शंख, हाथीदांत, सींग आदि से बनते थे, बाद में 'धातुयोनिक' आभूषण बनने की परिपाटी शुरू हुई।[5] इन धातुओं में सोना, चांदी, तांबा, लोहा, जस्ता आदि का प्रयोग किया जाता है। धातुओं में माङ्गलिक और मूल्यवान् हेम का प्रयोग वैदिक युग में शुरू हो चुका था। बहुमूल्य मणियों और रत्नों के आभूषण ग्रहादि दोषों के परिहार के लिए अलग से भी बनते थे और उन्हें सोने में जड़कर भी बनाया जाता था। इसी से मणिकाञ्चन संयोग का मुहावरा भी प्रचलित हो गया है।

---

1. सहृदयलीला 2/6
2. ऋग्वेद 10/7/14
3. भामहकृत काव्यालङ्कार 1/13
4. नाट्यशास्त्र 23/12
5. अंगविज्जा



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिर, कर्ण, नासिका, कण्ठ, बाहु, मणिबन्ध, हस्त, कटि, और पादगुल्फ— इन अंगों को आभूषणों से सजाया जाता है। सोमेश्वर के ग्रंथ 'मानसोल्लास' में अनेक प्रकार के स्वर्णाभूषणों के नाम दिए गये हैं। इन्हीं से षोडश शृंगार के साथ द्वादश आभरणों की परम्परा मध्यकाल में विकसित हुई, जिसका उल्लेख रूपगोस्वामी ने राधा के शृंगार-प्रसंग में किया है।[1]

माल्य-मण्डन पुष्पों के शृंगार की कला का नाम है। महर्षि चरक ने सूत्रस्थान में गन्धमाल्य को पुष्टि बल प्रदान करने वाला, आयु को बढ़ाने वाला तथा अलक्ष्मी को मिटाने वाला बताया है।[2]

यह सत्य है कि पुष्प प्रकृति का सुकोमल, सुन्दर और सुगन्धमय उपहार है। संस्कृत-परम्परा में कामदेव को पुष्पधन्वा और पुष्पबाण कहा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पुष्प के रंग, गन्ध और रूप का सम्बन्ध काम-भावना से होता है, साथ ही पुष्प मंगल और सौभाग्य के भी सूचक होते हैं, ऐसा लोक विश्वास सम्पूर्ण भारतीय समाज में प्रचलित है।

पुष्प प्रसाधन के विविध रूपों का वर्णन शास्त्रों और काव्यों ग्रंथों में प्राप्त होता है। भरतमुनि ने माल्य के पांच प्रकार बताए हैं[3]—

1. **वेष्टित :** जो गुँथी हुई माला हो।
2. **वितत :** जो एक पार्श्व में फैली हो।
3. **संघात्य :** जो विविध पुष्पों से रचित हो।
4. **ग्रन्थिमत् :** जिसके बीच-बीच में गांठ लगी हो।
5. **प्रालम्बित :** जो काफी लम्बी हो।

शिरीष, कुरबक, कुंद, बकुल,कमल,केसर, मौलसिरी, कदम्ब, मालती, मल्लिका, यूथिका, कर्णिकार, अशोक, आदि अनेक पुष्पों के शृंगार का वर्णन ऋतुसंहार, कादम्बरी, कर्पूरमंजरी आदि में मिलता है। कालिदास द्वारा मेघदूत में स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले पुष्प-प्रसाधन का सुन्दर उल्लेख किया गया है-

**'हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुबिद्धं**
**नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।**
**चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं**
**सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥'** [4]

मण्डन कला का चौथा और विशिष्ट अंग है— अनुलेपन, जो आधुनिक कॉस्मैटिक्स का नाम है। इसके अन्तर्गत अंगराग और सुगन्ध का सुरुचिपूर्ण उपयोग आता है। यह एक वैज्ञानिक कला है, जिसे मण्डन विधि की आत्मा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। त्वचा की रक्षा और सौन्दर्य वृद्धि के लिए विविध रसों, उबटनों और लेपों का प्रयोग, स्नानीय प्रसाधन, केश-प्रसाधन और विन्यास, भ्रूघटना, नेत्रविशेषक, कपोलरंजन, ओष्ठराग, स्तन-मण्डन, हस्ताङ्गराग, पदाङ्गराग,

---

1. उज्ज्वलनीलमणि-राधाप्रकरण, 8/10
2. वृष्यं सौगन्ध्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम्।
   सौमनस्यमलक्ष्मघ्नं गन्धमाल्यनिषेवणम् ।। महर्षि चरक कृत सूत्रस्थान
3. वेष्टितं विततञ्चैव सङ्घात्यं ग्रन्थिमत्तथा।
   प्रालम्बितं तथा चैव माल्यं पञ्चविधं स्मृतम्।। नाट्यशास्त्र, 23/11
4. उत्तरमेघ, 2.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नखरंजन की सुकुमार विधियाँ इसी अनुलेपन या अङ्गराग विधि के अंग हैं। अनुलेपन तैयार करने के लिए वानस्पतिक द्रव्यों का भरपूर उपयोग किया जाता था, जो वनस्पतियों की जड़, काष्ठ पत्र, छाल, केवड़ा, पोदीना, नींबू, हरड़, आंवला आदि पदार्थों का द्रव्य गुण के आधार पर लेप, रस, घोल, आदि बनाने में उपयोग किया जाता था। जो स्वास्थ्य एवं सौन्दयवर्धक ही नहीं, आयुवर्धक भी माने जाते थे। केश-विन्यास की भी अनेक विधियाँ प्रचलित थीं, जिनके कई रूप उन युगों की मूर्तिकला में भी देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार केशों से लेकर चरणनख तक त्वचा और अंगों को सुन्दर, स्वस्थ और आकर्षक बनाने वाले पदार्थों को वर्ण्य और सुवासित करने वाले द्रव्यों को सौगन्ध्य नाम दिया गया था। नायक- नायिकाओं के श्रृंगार-वर्णन मे कवियों ने मण्डन-कला के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। कालिदास तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि आकृति मधुर हो तो कोई पदार्थ ऐसा नहीं, जो उसके लिए मण्डन न बन जाए—

**'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।'**[1]

ये वर्णन और प्रमाण सिद्ध करते हैं कि भारत में मण्डन-कला के प्रतिमान बहुत प्राचीन काल से स्थापित हो चुके थे और प्रत्येक युग में उनका विविध रूपों में विकास होता रहा है।

******

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/18



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# राजस्थान में शक्ति पूजा एवं स्थल

रामनारायण सोनी,*

भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मा, विष्णु, महेश सर्वोच्च देवों के रूप में प्रतिष्ठित है। ये त्रिदेव ब्रह्म के त्रिगुणात्मक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रह्मा सृजनमूलक रूप के प्रतीक हैं। विष्णु संयोजन के पालनहार अधिष्ठाता है एवं महेश नवसृष्टि के पूर्वरंग प्रलय के प्रयोजक शिक्षा द्वारा संपोषण एवं विघटन की क्रियाएँ होती हैं। संयोजन एवं विघटन के पारस्परिक तनाव के फलस्वरूप एक विद्युतीय उर्जा का स्फुरण होता है। यह ऊर्जा ही शक्ति है। इसे ही जगदम्बा, जगद्धात्री, जगन्माता एवं अन्य नामों से पुकारा जाता है। शक्ति ब्रह्म का ही प्रकाशित स्वरूप है। अतः शक्ति को ब्रह्ममयी कहा गया है। दूसरे अर्थ में शक्ति ही सृष्टि का मूल तत्व है।

शक्ति की अभिव्यक्ति नारी के रूप में की गई है। सृष्टि की प्रक्रिया में नारी का योगदान स्पष्टतः प्रमाणित है। शक्ति का प्रारंभिक रूप शिव पत्नी उमा अथवा पार्वती से है जिसे जगज्जननी कहा गया है। जिसकी महिमा निरंतर बढ़ती गई और उसमें अन्य देवियों के गुण एवं स्वरूप जुड़ते गये। धीरे–धीरे उसने महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती का समन्वित रूप धारण कर लिया। वस्तुतः शक्ति ही समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का हेतु है। समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति करने वाली होने से ही यह आदि शक्ति कही जाती है। अंग्रेजी भाषा में इसे Power कहते है। विज्ञान की भाषा में एनर्जी कहा जाता है। यही शक्ति अखिल ब्रह्माण्ड के कण–कण में व्याप्त होकर विश्व के समस्त क्रिया–कलापों का संचालन करती है। इसीलिए इसे चेतना अथवा गति भी कहते हैं। शक्ति के बिना सृष्टि का कोई भी कार्य होना संभव नहीं है। इससे शक्ति की व्यापकता स्पष्ट हो जाती है।

भारत वर्ष में शक्ति पूजा के प्रमाण सैन्धव काल से ही प्राप्त होने लग जाते हैं। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा में एक प्रकार की मृण्मयी मूर्तियॉ मिली हैं जिन्हें पुरातत्ववेत्ता मातृदेवी की मूर्तियॉ मानते हैं।

देश के अन्य भागों की भॉति राजस्थान में शक्ति पूजा का प्रचलन ईस्वी शताब्दी के प्रारंभ से माना जा सकता है। टोंक के कर्कोट नगर से प्राप्त एक पके हुये मिट्टी के ठीकरे पर देवी का अंकन किया गया है। इसमें देवी असुर को अपने घुटनों पर रख कर वध करती हुई अंकित है। साम्भर (नागौर) के उत्खनन में प्राप्त पुरावशेषों से शक्ति उपासना के संकेत मिलते हैं। रैढ़ उत्खनन में मातृदेवी की अनेक गुप्तकालीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो इस युग की शक्ति पूज़ा के प्रचलन की परिचायक हैं।

***पूर्व अध्यक्ष, इतिहास प्रकोष्ठ, अ. भा. मैढ़, क्ष. स., लाडनू, नागौर, राज.**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मध्यकालीन राजस्थान में शक्ति पूजा के प्रमाण अभिलेखों मन्दिरों तथा मूर्तियों के रूप में प्राप्त होते हैं। इन मंदिरों में उत्कीर्ण अनन्त मूर्तियाँ अपने समय की सभ्यता, धार्मिक विश्वास एवं कला के गौरव का सम्यक् चित्रण करती हैं।

अभिलेखीय प्रमाणों से पता चलता है कि इस काल में शक्ति की उपासना काफी लोकप्रिय थी। यथा–नागौर जिले के गोठमांगलोद से प्राप्त सातवीं शती के एक अभिलेख में वागेश्वरी सरस्वती की प्रार्थना की गई है। तत्पश्चात् दहिमा ब्राह्मणों की कुलदेवी दधिमती के मन्दिर का उल्लेख है। नागौर जिले के ही किणसरिया ग्राम के निकट कैवाय माता के मन्दिर में सं. 1056 के अभिलेख में कात्यायिनी तथा काली देवी की स्तुति है। वि. सं. 749 के एक लेख में सकराय माता उदयपुर वाटी के मन्दिर का अग्रभाग स्थानीय गोष्ठियों द्वारा बनाये जाने का विवरण प्राप्त होता है। रेवासा के जीणमाता के मन्दिर की जानकारी वि. सं. 1162 के अभिलेख से मिलती है। जगत के अम्बिका देवी के मंदिर के सभामंडप में वि. सं. 1017 का एक अभिलेख उत्कीर्ण है। उनवास हल्दीघाटी के पिप्पलाद माता के मंदिर के अभिलेख का प्रारंभ सरस्वती वंदना से हुआ है।

इसी तरह आबू के निकट बसंतगढ से प्राप्त वर्मलात के वि.सं. 682 के अभिलेख में क्षेमकरी दुर्गा की वंदना की गई है। भेवाल ग्राम के काली माता मन्दिर में तीन अभिलेख उत्कीर्ण है। छोटी सादड़भ का सं. 547 का भ्रमर माता के मन्दिर का अंभिलेख दुर्गा माता की आराधना से संबंधित है। लुद्रवा के हिंगलाज देवी के मन्दिर में स्तम्भ पर एक लेख उत्कीर्ण है। वसुंदर नामक ग्राम में वसुन्धरा देवी के मन्दिर में प्राप्त सातवीं शती के अभिलेख का प्रारंभ देवी की वन्दना से होता है। ओसियां के सच्चियाय माता के मन्दिर में वि. सुंदरी मंदिर में उत्कीर्ण शिलालेख द्वारा 1157 में मंदिर के जीर्णोद्धार की सूचना मिलती है। भैंकरोड़ के विन्ध्यवासिनी मंदिर में वि. सं. 1291 के शिलालेख से मंदिर के पुनरुद्धार करने का पता चलता है। ये सभी अभिलेख राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति उपासना की प्राचीनता के पुष्टिकारक प्रमाण हैं।

सातवीं से तेरहवीं शताब्दी में राजस्थान ने एक नये राजनीतिक परिदृश्य में प्रवेश किया। मालव–अवन्ति और अर्बुदाचल प्रदेशों में परमार, मेवाड़ तथा बागड़ में गहलोत, शाकम्भरी में चौहान, ढूंढ़ाड़ में कछवाहे जांगल और मरू में राठौड़ मत्स्य राजोगढ़ में गुर्जर प्रतिहार आदि राजवंशो का प्राबल्य बढ़ा। इस काल में निर्मित मंदिरों का पर्यवेक्षण करने पर हम पाते हैं कि इन राजवंशो में शक्ति उपासना का प्रचलन उच्च स्तर पर हुआ। राजस्थान के नरेशों का शक्ति पर विश्वास इस कदर बढ़ता गया कि प्रायः राजपरिवारों ने तो उसे कुलदेवी के रूप में स्वीकार कर लिया। यथा– जोधपुर राजपरिवार ने नागणेचिया, सिसोदिया नरेशों ने बाणमाता, जैसलमेर शासकों ने स्वांगिया, बीकानेर राजपरिवार ने करणीमाता, कछवाहों ने जमवाय माता को कुल देवी मान लिया।

इस काल में निर्मित मंदिरों में बल एवं शौर्य का उन्मीलन प्रगाढ़ रूप से दिखाई देता है। एकलिंग के अरण्यवासिनी मंदिर, कुण्डाग्राम के कैटभरिपु मंदिर, जगत का अम्बिका मंदिर, किराडू का महिषमर्दिनी मंदिर, चितौड़ का कालिका मंदिर, आवानेरी का हर्षत माता मंदिर आदि में भागवत एकत्व स्पष्ट है मित्रता



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवल धर्मगत है। चौदहवीं शताब्दी में बनने वाले मंदिरों को बाहर से किले के रूप में बनाया जाने लगा। कुम्मलगढ़ के बाणमाता मंदिर, रणकपुर के मन्दिर आदि के चारों तरफ बनी हुई दीवारों, बुर्जो आदि में दुर्ग स्थापत्य का अवंलंबन स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

मंदिर निर्माण का कार्य राजस्थान में काफी प्राचीन रहा है। मंदिरों में अधिकांशतः पंचायतन प्रकार के हैं तथा खजुराहों की भांति ऊंचे चबूतरों पर निर्मित है। यहां के मन्दिर दो स्थलों में केन्द्रित हैं। प्रथम वर्ग के मन्दिर आठवीं–नवीं शताब्दी तक बने हैं। ये सभी यद्यपि आकार में छोटे हैं किन्तु उनके विशिष्ट एवं उत्कृष्ट वास्तु शिल्प ने उनकी इस कमी को ढक दिया है। यद्यपि ये सभी मंदिर इण्डो आर्यन शैली के हैं किन्तु अधिकांशतः प्रत्येक मंदिर की रचना में मौलिकता एवं वैयक्तिक गुण हैं। दूसरे वर्ग के मन्दिरों का निर्माण नवीं शताब्दी के पश्चात् हुआ है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि राजस्थान में शक्ति के रूप में देवी की उपासना का प्रचलन बहुत पहले ही शुरू हो गया था। शक्ति की उपासना महिषमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, योगेश्वरी, दधिमती, क्षेमंकरी, अरण्यवासिनी, राष्ट्रयेना, सच्चियाय, अम्बिका, काली, कात्यायिनी, अष्टमातृका, राधिका, लक्ष्मी, नन्दा, सरस्वती आदि रूपों में की जाती थी और आज भी इन रूपों में अगाध श्रद्धा रखी जाती है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदान्त दर्शन में ब्रह्म-स्वरूप-निरूपण

डॉ0 धनंजय कुमार सिंह*

यदि समस्त भारतीय धर्म, दर्शन एवं वेदान्त का सारामृत एक शब्द के द्वारा प्रस्तुत करना हो, तो वह वेदान्त का ब्रह्म है। ब्रह्म स्वभावतः सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त , सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं अद्वैत – स्वरूप वह परमार्थतत्त्व है, जो मानव जीवन का परम जिज्ञास्य एवं साध्य है, जिसकी अपरोक्षानुभूति होने पर मानव को कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रह जाता। ब्रह्म तत्त्व ससीम जीवन की असीम सीमा एवं जीवन का परम पुरुषार्थ है। ब्रह्म ही मुक्ति, ज्ञान, परम, सत्य एवं जीवन का परम श्लाघ्य लक्ष्य है।[1] यद्यपि ब्रह्म तत्त्व का उल्लेख ऋग्वेद[2] से मिलना आरम्भ हो जाता है, परन्तु इसका प्रमुख प्रतिपादक वेदान्त[3] दर्शन ही है। यद्यपि वेदान्त शब्द से शांकर वेदान्त के अतिरिक्त रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, महाप्रभु चैतन्य, जीवगोस्वामी, भास्कर एवं बलदेव विद्याभूषण आदि आचार्यों के द्वारा वैदिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित दार्शनिक सिद्धान्तों का भी बोध होता है एवं इन आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्त भी वेदान्त दर्शन के नाम से ही विदित है, परन्तु मुख्य रूप से वेदान्त से शांकर वेदान्त का ही तात्पर्य गृहीत होता है।[4]

वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत हम प्रस्थानत्रयी—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता के परिप्रेक्ष्य में उस अद्वितीय अखण्ड परम तत्त्व का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

## उपनिषदों में 'ब्रह्म' का स्वरूप

'न द्वैतं इति अद्वैतम्' इस अद्वैत तत्त्व के रूप में ब्रह्म का प्रतिपादन विभिन्न उपनिषदों में किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के अन्तर्गत अद्वैत तत्त्व के रूप में ब्रह्म की स्थापना के क्रम में ब्रह्म एवं जगत् में अद्वैत भाव की स्थापना की गई है–सर्वं खल्विदं ब्रह्म। ब्रह्म जगत् का अधिष्ठानस्वरूप एवं जगत् अध्यस्त है। जिस प्रकार शुक्ति में रजत की सत्ता वास्तविक नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्म में अध्यस्त जगत् की सत्ता भी अध्यस्त होने के कारण वास्तविक अर्थात् पारमार्थिक नहीं है। यह शंका होने पर शुक्ति में अध्यस्त रजत की सत्ता की भाँति व्यावहारिक जगत् की सत्ता का सर्वथा मिथ्यात्व संभव नहीं तो प्रत्युत्तरस्वरूप वेदान्त में यह कहा गया है कि ब्रह्म एवं जगत् के उदाहरण में पारमार्थिक दृष्ट्या जगत् का सर्वथा मिथ्यात्व ही है, क्योंकि परमार्थबोध की स्थिति में एकमात्र ब्रह्म का ही बोध शेष रह जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में एक अन्य स्थल पर ब्रह्म एवं नामरूपात्मक जगत् की अद्वैतता एवं एकमात्र ब्रह्म की सत्यता को सिद्ध करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार एक मृत्पिण्ड का ज्ञान होने पर सारे मृण्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। सुवर्ण पिण्ड का ज्ञान होने पर सुवर्णजन्य कुण्डलादि का बोध हो जाता है, क्योंकि मृत्तिका, सुवर्णादि विभिन्न विकार नाममात्र के तथा वाचारम्भण मात्र हैं,[5] उसी प्रकार वेदान्त में जगत् की सत्ता ब्रह्म से पृथक् न होने के कारण ब्रह्म एवं जगत् में अद्वैतसिद्धि ही प्रसिद्ध है।

---

* राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर ( राजस्थान )

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्मकारणता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि जिससे समस्त भूत उत्पन्न होते हैं जिसमें उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं तथा मृत्यु होने पर जिसमें प्रवेश करते हैं, उसी को जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है।[6] कठोपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन अत्यन्त ही सुन्दर उपमेय उपमान के माध्यम से किया गया है। यह सनातन अश्वत्थ वृक्ष ऊर्ध्वमूल एवं अवाक्शाख अर्थात् नीचे की ओर शाखा वाला है, जिस परमेश्वर में इस वृक्ष का मूल है, वह शुद्ध प्रकाशमान एवं अमृत रूप है। समस्त लोक उसी में आश्रित है तथा ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यहाँ अश्वत्थ से तात्पर्य संसार रूपी वृक्ष से है।[7] बृहदारण्यकोपनिषद् के अन्तर्गत ब्रह्म को सच्चिदानन्द एवं परमज्योति स्वरूप कहा है।[8] उपनिषदों में ब्रह्म का, देश एवं काल की सीमा से परे एक असीम एवं पर ब्रह्मतत्त्व के रूप में, विवेचन प्राप्त होता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अन्तर्गत याज्ञवल्क्य गार्गी को ब्रह्म-स्वरूप विवेचन करते हुए कहते हैं कि हे गार्गी, जिसमें सब ओत-प्रोत है, वह अविनाशी न स्थूल है न सूक्ष्म है, न छोटा है, न बड़ा है, न वह लोहित है और न ही संसार जीवन की तरह स्नेहमय। वह आवरणरहित, तमोरहित, वायुरहित, स्वादरहित, गन्धरहित, नेत्ररहित, श्रोत्ररहित, मन-वाणीरहित, तेज एवं प्राणरहित, मुखरहित, परिणामरहित, अन्तरहित एवं बाह्यरहित है।[9] श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्म को त्रिकालातीत बतलाया गया है।[10] माण्डूक्योपनिषद् के अन्तर्गत ब्रह्म का प्रतिपादन अक्षर एवं अविनाशी तत्त्व के रूप में हुआ है।[11] माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म को समस्त जागतिक प्रपंचों का उपशम, शिव, अद्वैतस्वरूप तथा जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति की स्थिति से अतीत होने के कारण चतुर्थ अर्थात् तुरीय कहा गया है।[12] ब्रह्मतत्त्व का निरूपण स्वरूपलक्षण एवं तटस्थलक्षण के रूप में भी प्राप्त होता है। सत्य, ज्ञान, अनन्त[13] एवं सच्चिदानन्द[14] स्वरूप में भी मिलता है।

अपने शुद्ध बुद्ध एवं मुक्तस्वरूप[15] में ब्रह्म निरुपाधिक एवं स्वरूपलक्षण है तथा सोपाधिक एवं सगुण रूप में जगत्

---

1. वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप एवं जीवन दर्शन (पृष्ठ 1) प्रोफेसर राममूर्ति शर्मा
2. एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद 1.164.46.)
3. वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणम्। (वेदान्तसार पृष्ठ 92)
4. वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप एवं जीवन दर्शन (पृष्ठ 1) प्रोफेसर राममूर्ति शर्मा
5. छान्दोग्य उपनिषद् (6.1.2)
6. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ये जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति। (तैत्तिरीय उपनिषद् 3.1.1)
7. ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एतद्वै तत् । (कठवल्ल्युपनिषद् (2.6.1)
8. बृहदारण्यकोपनिषद् (4.4.16)
9. बृहदारण्यकोपनिषद् (4.4.12)
10. 'परस्त्रिकालातीतं बृहदारण्यकोपनिषद् (3.8.8)
11. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्—माण्डूक्योपनिषद् (2)
12. प्रपंचोपशमं शान्तं। शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते (माण्डू उप. 9)
13. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। (तैत्ति. उप. 2.1.1)
14. ब्रह्मैवेदं सर्वं सच्चिदानन्दरूपम्। (नृसिंहोपनिषद 8)
15. नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तम् (नृसिंहोपनिषद् 8,4)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय का कर्ता ब्रह्म[16] तटस्थ लक्षणस्वरूप है। बृहदारण्यकोपनिषद् के अन्तर्गत ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण रूप का वर्णन मूर्त एवं अमूर्त रूप में प्राप्त होता है।[17] परन्तु यह विभाग द्विविध ब्रह्म की परिकल्पना नहीं, अपितु एक ही ब्रह्म की दो स्थितियों के नाम है।[18] नकारात्मक शैली का आश्रय लेकर नेति नेति[19] द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का आत्मरूप से प्रतिपादन किया गया है। उपनिषदों के अन्तर्गत ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन निरुपाधिक आत्मा के रूप में भी किया है। औपनिषद् वेदान्त में निर्गुण ब्रह्म एवं निरुपाधिक आत्मा पृथक् न होकर एक ही है।[20]

'माण्डूक्योपनिषद् पर गौडपादाचार्य ने अपने कारिका भाष्य के अन्तर्गत उपनिषदों के समान 'ब्रह्म' को अज्ञेय अज एवं नित्य बतलाया है। ब्रह्म शान्त, अद्वयस्वरूप, स्वस्थ एवं विशुद्ध रूप है।[21] गौडपादकारिका के अन्तर्गत ब्रह्म को अनिद्र, अस्वप्न एवं असकृत् विभाग तथा सर्वज्ञ कहा है।[22]

## शांकरवेदान्त में ब्रह्म

शंकराचार्य ने 'ब्रह्म' शब्द की व्युत्पत्ति बृह (वृद्धौ) धातु से सिद्ध करते हुए ब्रह्म के सर्वातिशायी स्वरूप के आधार पर उसके नित्य शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्तस्वरूप का प्रतिपादन किया है।[23] आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म पारमार्थिक कूटस्थ, नित्य, व्योमवत् सर्वव्यापी, सर्वविध विकारों से रहित नित्यानन्द स्वरूप निरवयव एवं ज्योतिःस्वरूप है।[24] ब्रह्म अशरीर एवं मोक्षस्वरूप[25] है। ब्रह्मसूत्र-भाष्य के अन्तर्गत शंकराचार्य ने ब्रह्म के स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहा है कि "ब्रह्म वह है, जो नामरूप के द्वारा अव्यक्त अनेक कर्तृत्व भोक्तृत्व से संयुक्त ऐसे क्रिया और फल का आश्रय है, जिसके देश, काल और निमित्त व्यवस्थित हैं, मन से भी जिसकी रचना के स्वरूप का विचार नहीं हो सकता, ऐसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश का कारण वह सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ ब्रह्म है।"[26]

शांकर वेदान्त के अन्तर्गत ब्रह्म तत्त्व का प्रतिपादन त्रिकालाबाधित परमार्थ सत्[27] (सत्ता) के रूप में हुआ है। परमार्थ सत् रूप ब्रह्म को कूटस्थ एवं ध्रुव कहा गया है। अपने कूटस्थ स्वरूप के कारण ही ब्रह्म एक अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत

---

16. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3.1.1
17. 'द्वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च' (बृहद् उप. 2.3.1)
18. न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यत् विभक्तं यत् पश्येत। (बृहद उप. 4.5.23)
19. स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि शीर्यते, असंगो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते नरिष्यति विज्ञातारमरे केन कं विजानीयात्। (बृहद. 4.5.15)
20. 'अयं आत्मा ब्रह्म' (बृहद. उप. 2.5.14)
21. 'ब्रह्म ज्ञेयमजमनित्यम् (गौड़पादकारिका 4.3')
22. गौड़पादकारिका (3.34)।
23. ब्रह्मशब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य नित्यं शुद्धत्वादयोऽर्थाः प्रतीयन्ते, बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्। (ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य-1.1.1)
24. इदं तु पारमार्थिकं, कूटस्थं नित्यं व्योमवत् सर्वव्यापि सर्वविक्रियारहितं नित्यतृप्तं निरवयवं स्वयंज्योतिःस्वभावम् (ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य-1.1.4)
25. तदेतदशरीरत्वं मोक्षाख्यम् (ब्र. सू. शां. भा. 1.1.4)
26. 'अस्य जगतो नामरूपाभ्यां व्याकृतस्य अनेककर्तृभोक्तृसंयुक्तस्य प्रतिनियत-देशकाल-निमित्तक्रियाकलापस्य मनसापि अचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गो यतः सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः कारणाद् भवति, तद् ब्रह्म। (ब्र. सू. शां. भा. 1.1.2)
27. 'यत्राव्यभिचरति तत् सत्। (शांकरभाष्य, गीता- 2.1.6)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्य है। वेदान्त दर्शन के अनुसार स्वभावतः प्रकाशमान ब्रह्म स्वभावतः ज्ञानस्वरूप एवं मोक्षस्थिति स्वरूप है। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।[28] इस उपनिषद् वचन से भी अभिप्राय की पुष्टि होती है, वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत ब्रह्म को इस जगत् का अधिष्ठान रूप माना गया है। अधिष्ठानवाद के अनुसार ब्रह्म जगत् का अधिष्ठान एवं नामरूपात्मक जगत् अध्यास अर्थात् अविद्या है।[29] अधिष्ठान रूप ब्रह्म में जगत् उसी प्रकार अध्यस्त है जिस प्रकार शुक्ति में रजत एवं रज्जु में सर्प का अध्यास होता है। जिस प्रकार अध्यास रजत एवं सर्प दोनों ही मिथ्या हैं, उसी प्रकार अध्यस्त जगत् के मिथ्यात्व प्रतिपादन के अनन्तर एकमात्र 'पारमार्थिक ब्रह्म' की त्रैकालिक सत्यता सिद्ध होती है। 'ब्रह्म-बोध' की स्थिति में तत्त्वज्ञानी को अद्वैत ब्रह्मस्वरूप का ही बोध होता है, नामरूपात्मक द्वैत जगत् का कदापि नहीं।

शांकर वेदान्त के अन्तर्गत निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म की व्याख्या अविद्या के आधार पर एवं अपर ब्रह्म के रूप में की गयी है। सगुण एवं मायोपहित ब्रह्म लीलाविधायी एवं सृष्टि का निर्माता है। सृष्टि ईश्वर की लीलामात्र होने के कारण सृष्टिनिर्माण में ईश्वर का कोई उद्देश्य नहीं है।[30]

शंकराचार्य ने ईश्वर के धर्माधर्मापेक्षी स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि सृष्टि-वैषम्य का कारण धर्माधर्म है। सृज्यमान प्राणियों के पूर्वकृत धर्माधर्म के कारण ही सृष्टि में वैषम्य देखा जाता है। देवमनुष्यादि की सृष्टि में तत्त जीवों में रहने वाली सामर्थ्य असाधारण कारण है तथा ईश्वर साधारण कारण है।[31] वेदान्त के अनुसार ईश्वर सभी प्राणियों में स्थित है तथा अन्तर्यामी एवं सबका नियन्ता है। यही ईश्वर जगत् का कारण भी है व्यवहार दशा में। पारमार्थिक दृष्ट्या तो एकमात्र सत् वस्तु ब्रह्म ही है जो नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, विज्ञानस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप है,[32] और वही वेदान्त का परम लक्ष्य भी है।

******

---

28. ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। (मुण्डकोपनिषद् 3.2.4)
29. अध्यासं पंडिता अविद्येति मन्यन्ते। ( ब्र. शू. शां. भा. 1.1.1)
30. यथालोके कस्यचिदाप्तैषणस्य राज्ञो राजामात्यस्य वा व्यतिरिक्तं किंचित् प्रयोजनमनभिसंधाय केवलं लीलारूपाः प्रवृत्तयः क्रीडा-विहारेषु भवन्ति,.... एवमीश्वरस्यापि अनपेक्ष्य किंचित् प्रयोजनान्तरं स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति। (ब्र.सू.शां.भा. 2.1.32)
31. धर्माधर्मावपेक्षेते, इति वदामः। (ब्र. सू. शां. भा. 2.1.32)
32. अतः सृज्यमान-प्राणि-धर्माधर्मपेक्षा विषमा सृष्टिः यथा हि पर्जन्यो व्रीहि-यवादौ-सृष्टौ साधारणं कारणं भवति। एवमीश्वरो देवमनुष्यादिसृष्टौ साधारणं कारणं भवति। (ब्र. सू. शां. भा. 2.1.34)



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# वेदों में सृष्टि विज्ञान

सत्यनारायण भारद्वाज*

संसार में मानव–पदार्पण के साथ ही उसके मस्तिष्क में इस प्रकार के प्रश्न जन्म लेते रहे हैं कि यह विश्व कैसे बना? प्रारंभ में क्या था? किस प्रकार इन सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि का निर्माण हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए प्राचीन काल से ही विभिन्न मानवीय सभ्यताओं के विद्वानों ने अथक प्रयास किये हैं। मध्यपूर्व (2700 ई.पू.) की परिकल्पनाओं के अनुसार इस सृष्टि का उद्भव देवी–देवताओं से सम्बद्ध है। अवेस्ता ने (600 ई पू.) संसार की उद्भव प्रक्रिया में सात लोकों का निर्माण माना है। चीनी विद्वानों (300 ई.पू.) के अनुसार ब्रह्माण्ड के दो भागों में टूटने से द्युलोक और पृथ्वीलोक बने। जापानी धर्म के अनुसार (800 ई.पू.) सृष्टि से पूर्व एक तैल से परिपूर्ण समुद्र था, जिससे देवी–देवताओं तथा उनके बाद संसार का निर्माण हुआ। इनके पश्चात् बाइबिल की कल्पना प्रसिद्ध है कि छः दिनों में सम्पूर्ण संसार का निर्माण हुआ।[1] लेकिन गत तीन शताब्दियों में पाश्चात्त्य दार्शनिकों ने निरन्तर अवलोकन, अन्वेषण के पश्चात् सृष्टि–निर्माण की निर्दिष्ट परिकल्पनाओं को निराधार सिद्ध करने के साथ–साथ अभाव से भाव की धारणा को भी सदा के लिए निरस्त कर दिया।

सृष्टि–उत्पत्ति के संदर्भ में संपूर्ण जगत् में चार प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित हैं– (1.) नवीन वेदान्ती जगत् को स्वप्नवत् मिथ्या मानते हैं। (2.) कुछ विचारधाराओं के लोग है जो अभाव से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं अभावात् भावोत्पतिर्नादुर्भावात्।[2] इनके दूसरे साथी कहते है कि अनिमित्ततो भावोत्पतिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्।[3] अर्थात् बिना किसी निमित्त के ही जगत् उत्पन्न हो गया। इन्हीं के तीसरे साथी कहते हैं कि एक शून्य ही तत्त्व है। शून्य से जगत् उत्पन्न हुआ और इसी में समा जाता है– "शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य। (3) तीसरे मतवादियों के अनुसार जगत् अनादि है और अनन्त है। वह न उत्पन्न हुआ और नही नष्ट होगा– "सर्व नित्यं पंचभूतनित्यत्वात्।"[4] (4) चौथे मतवादियों के अनुसार जगत् का कोई स्रष्टा है और यह जगत् सप्रयोजन है।

---

***सहायक आचार्य, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनू, राजस्थान**

---

1. Encyclopaedia American (1981] Vol. 8, P. 162-164)
2. न्यायसूत्र 4/1/14,
3. न्यायसूत्र 4/1/22,
4. न्यायसूत्र 4/1/29

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन चारों मतों की समीक्षा करने पर क्रमशः यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि नवीन वेदान्तियों के मत को स्वीकार किया जाये तो हमें मानवीय चेतना की ही मीमांसा करनी पड़ेगी कि मानव में चेतना भी है या वह भी स्वप्न ही है। इस वाद के वक्ता भी स्वप्नवत् मिथ्या हैं या यथार्थ। यदि वे भी मिथ्या ही हैं तो ऐसे मिथ्या सिद्धान्त पर चर्चा करना ही मिथ्या है।

दूसरे मतवादी (नैयायिक) पदार्थ और ऊर्जा के अस्तित्व को ही अभाव से उत्पन्न बताते है। यह विचार भौतिक विज्ञान के विरुद्ध और तर्कशून्य है क्योंकि अभाव से कभी भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

तीसरा मत भी प्रत्यक्ष दर्शन के विरुद्ध है क्योंकि घट–पट, मनुष्य, पशु–पक्षी आदि का उत्पन्न होना और नष्ट होना प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है तब उन्हें नित्य कैसे कह सकते हैं। पृथ्वी, सूर्य आदि जो वस्तु बनी है वह नष्ट भी होती है। बुद्धिपूर्वाकृति स्वाभाविक नहीं हो सकती।

उष्मागतिकीय नियमानुसार सृष्टि का आदि और अन्त है। इसलिए इसका एक सर्वज्ञ, शक्तिमान स्रष्टा अवश्य होना चाहिए। पृथ्वी की तीन गतियाँ, उसका क्षेत्रफल, वायुमण्डल एवं उसका दाब, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रादि की स्थिति, मिट्‌टी पानी, पेड़–पौधे आदि के विशेष गुण, सृष्टि की सप्रयोजिता पर प्रकाश डालते है। इसलिए उसको अकस्मात् उत्पन्न नहीं कहा ज़ा सकता। अतः सृष्टि निर्माण में चौथा मत ही बुद्धिसंगत, पूर्णतया वैज्ञानिक और वेदानुकूल है।

**वैदिक सृष्टि–प्रकिया**– वैदिक मान्यतानुसार सृष्टि का कर्त्ता परमेश्वर है। वेदों में इसके अत्यधिक प्रमाण मिलते हैं। कुछ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

**इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।**
**यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग्वेद यदि वा न वेद।।**[1]

अर्थात्, जिससे यह विविध सृष्टि उत्पन्न हुई है, जो इसका धारण व प्रलय करता है, वही इसका अध्यक्ष है। यह सृष्टि आकाश के समान सर्वव्यापक परमात्मा में स्थित है और अंत में प्रलय को प्राप्त होती है।

इसी विचार के समर्थन में एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है–

**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।**[2]

यजुर्वेद से एक मन्त्र यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें भी ईश्वर को ही सृष्टि का कर्ता बताया गया है–

**पुरुष एवेदं सर्वं यद्‌भूतं यच्च भाव्यम्।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।**[3]

1. ऋग्वेद, 8/7/27
2. ऋग्वेद, 10/121/1
3. यजुर्वेद, 31/2



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात्, पुरुष जो पूर्ण है और जिसकी व्याप्ति से यह जगत् पूर्ण बना हुआ है, वही परमेश्वर भूत, भविष्यत् वर्तमान में उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का रचयिता है। वही इस पर शासन कर रहा है। वही अमृत (मोक्ष) देने वाला है। वह जगत् में भी व्याप्त है व उसके परे भी।

छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि उसी परमात्मा की इच्छा मात्र से यह जगत् प्रकाशित होता है। मानव के अन्तःकरण में ज्ञान के प्रकाश की कामना से ही वह इस जगत् का निर्माण करता है–

**"तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति"।**[1]

**सृष्टि उत्पत्ति में कारण–** ईश्वर, जीव और प्रकृति सृष्टि की उत्पत्ति में प्रमुख कारण हैं। प्रमुख तीन कारणों में प्रथम–निमित्त कारण वह परमात्मा है, दूसरा उपादान कारण–त्रिगुणात्मक प्रकृति है तथा तीसरे साधारण कारण में वस्तु के निर्माण में सहायक सामग्री, जैसे–दिशा, काल, आकाश, ज्ञान, बल, हाथ–पैर आदि आते है।

वैदिक मान्यतानुसार ईश्वर जीव का सम्बन्ध अनादि है–

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।**
**तयोरम्नयः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनशनन्नयो अभि चाकशीति।।**[2]

अर्थात्, ब्रह्म और जीव दोनों चेतना और पालन आदि गुणों में सदृश व्याप्य–व्यापक भाव में संयुक्त परस्पर मित्रवत् और सनातन हैं। वैसा ही वृक्ष अनादि मूलकारण और शाखा रूप में अनादि कारण प्रकृति है।

यजुर्वेद के इस उदाहरण में भी इसी तथ्य का समर्थन किया गया है–

**कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथा।**
**तथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।**[3]

सांख्य दर्शन[4] के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति महत्तत्त्वादि से हुई है– "सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि। अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रकृति का प्रथम कार्य (विकार) महत्तत्त्व है। महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्र और दस इन्द्रियों तथा पंच तन्मात्रों से पांच स्थूलभूत उत्पन्न हुए।

**महाभूतों का उत्पति–क्रम :–** अहंकार के भूतादि भेद से जो तामस् प्रधान है– शब्द तन्मात्र की उत्पत्ति हुई। शब्द से आकाश, आकाश से स्पर्श, स्पर्श से वायु, वायु से रूप, रूप से अग्नि, अग्नि से रस,

---

1. छान्दोग्य उपनिषद्, 6/2/2
2. ऋग्वेद 1/164/20
3. यजुर्वेद, 40/4
4. भारतीय दर्शन शब्द कोश, पृ. 273



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रस से जल, जल से गन्धतन्मात्र तथा गन्ध से पृथिवी तत्त्व उत्पन्न हुआ। इस प्रकार तमोगुण प्रधान अहंकार से पांच तन्मात्रों एवं पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई।

अहंकार के वैकारिक भेद से वाक् हस्त–पाद, पायु और उपस्थ ये–पांच कर्मेन्द्रियाँ तथा इसी प्रकार इसके तैजस् भेद से आंख, कान, नाक, रसना और त्वचा–ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं।

**वेदों में सृष्टि–उत्पत्ति–क्रम :–**

वैसे तो सभी वेदों में तात्कालिक अवस्था तथा सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन यत्र तत्र बिखरा हुआ है तथापि ऋग्वेद में तत्सम्बन्धी वर्णन अधिक है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त तो इस विषय के वर्णन से अत्यधिक सम्पन्न है। पं. मधुसूदन ओझा ने अपनी कृति ब्रह्मविज्ञान के अन्तर्गत इस सूक्त में वर्णित सृष्टि– प्रक्रिया के विषय को दस वादों में विभक्त किया है। स्वामी दयानन्द ने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के **'सृष्टिविद्याविषय'** नामक प्रकरण के पूर्व में सृष्टि प्रक्रिया विषय के संदर्भ में नासदीयसूक्त को ही उद्धृत किया है।[1]

ऋग्वेद के नासदीयसूक्त में सृष्टि उत्पत्ति क्रम के विषय को प्रथम मंत्र में ही इस प्रकार उद्धृत किया गया है– **नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।**

**किमावरीवः कुह कस्यशर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।।**[2]

अर्थात्, उस समय प्रलयावस्था में न असत् था न सत् था, पृथ्वी भी नहीं थी और आकाश तथा आकाश में विद्यमान सातों भुवन भी नहीं थे। आवरण भी कहाँ था? किसका कहाँ स्थान था? क्या दुर्गम और गम्भीर जल उस समय था? इसी तथ्य का समर्थन इसी सूक्त के दूसरे मंत्र में भी किया गया है–

**न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।**
**आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास।।**[3]

अर्थात्, उस समय न मृत्यु थी न अमृत, रात और दिन का भेद भी नहीं था। वायु–शून्य और आत्मावलम्बन से श्वास–प्रश्वास युक्त केवल एक ब्रह्म था। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

सृष्टि के प्रथम में सर्वत्र अंधकार (माया रूपी अज्ञान) से अन्धकार जगत्कारण आच्छन्न था। सभी अज्ञात और जलमय (अविभक्त) था। अविद्यमान वस्तु के द्वारा एक सर्वव्यापी आच्छन्न था। तपस्या के प्रभाव से वही एक तत्त्व उत्पन्न हुआ–

**तम आसीत् मसाहगू ळत मग्रेह प्रकेतंऽसलिलं सर्वमा इदम्।**
**तुच्छ्रयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।**[4]

---

1. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, सृष्टिविद्याविषय, पृ. 85
2. ऋग्वेद , 10/129/1
3. ऋग्वेद , 10/129/2
4. ऋग्वेद , 10/129/3



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्दिष्ट वर्णन से स्पष्ट होता है कि उस समय चारों ओर गहन अंधकार का साम्राज्य था क्योंकि उस समय प्रकाश कणों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। सब ओर अप्रकेत सलिल व्याप्त था। सलिल शब्द गत्यर्थक षल् धातु से निष्पन्न है, अतः गति का सूचक है। केवल एक परमब्रह्म ही था, जो इस सृष्टि के निर्माण होने से पूर्व भी विद्यमान था।

दशम मण्डल के अन्य सूक्त में सृष्टि के रचना क्रम को इस प्रकार बताया गया है–

**ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।**
**तत्तोरा जायतत्र्य ततः समुद्रो अर्णवः।।**[1]

अर्थात्, प्रज्वलित तपस्या से ऋत् (यज्ञ) और सत्य उत्पन्न हुए। इनके बाद रात्रि और तत्पश्चात् अर्णव समुद्र उत्पन्न हुआ।

ऋत शब्द 'ऋ गतौ' धातु से निष्पन्न होने के कारण गति का बोधक है। सत्य शब्द, होने के अर्थ में प्रयुक्त अस् धातु से निष्पन्न होने के कारण सत्ता अथवा स्थिरता का बोधक है। रात्रि विराम अर्थात् जड़ता का प्रतीक है। इस प्रकार सर्वप्रथम सत्त्व, रजस् और तमस् उत्पन्न हुए जो क्रमशः स्थिति तत्त्व, गति तत्त्व तथा जड़ तत्त्व की उत्पत्ति के कारण बने। इसके पश्चात् अर्णव समुद्र अर्थात् उर्जा का महासमुद्र उत्पन्न हुआ, जिससे ऊर्जा का आनन्त्य लक्षित है। अर्णव शब्द की निष्पति गत्यर्थक ऋगतौ धातु से होती है, जिसका अर्थ होता है– गतिशील तत्त्वों का समूह– **'अर्णांसि सन्ति यस्मिन् स अर्णवः।'**[2] तत्पश्चात्– **समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।**
**अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतोवशी।।**[3]

जल (ऊर्जा) से भरे हुए समुद्र से संवत्सर उत्पन्न हुआ। जैमिनीय ब्राह्मण में संवत्सर का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है– 'जो तपता है वह संवत्सर है। जो चमकता है वह संवत् है तथा जो उसके मध्य कृष्णमण्डल है वह **'सर'**[4] है।' यह चमकना शुक्ल अर्थात् वृद्धि तथा कृष्ण अर्थात् क्षय का द्योतक है। इस उत्थान–पतन में स्पन्दन की किया होती है। इस प्रकार संवत्सर की उत्पत्ति से सृष्टि में स्पन्दन होने लगा।

इसके बाद वशी ने अहोरात्र को धारण किया। वशी शब्द कान्ति अर्थ वाली वश् धातु से निष्पन्न है। इसने अहोरात्र को धारण किया। लौकिक अर्थ में अहोरात्र का अर्थ दिन–रात होता है लेकिन इसका यहां यह अर्थ नहीं किया जा सकता, क्योंकि जब सूर्यादि ही उत्पन्न नहीं हुए तब दिन–रात की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? मैत्रायणी संहिता के अनुसार जो शुक्ल है वह अह का रूप है तथ़ जो कृष्ण है, वह रात्रि का रूप है।[5]

---

1. ऋग्वेद , 10/190/1
2. द्रष्टव्य– संस्कृत हिन्दी कोश पृ. 96
3. ऋग्वेद , 10/190/2
4. जैमिनीय ब्रह्मण 2/20
5. मैत्रायणी संहिता 3/6/6/1



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके पश्चात्– सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।[1]

सूर्य और चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई लेकिन यहां सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण वर्तमान सूर्य और चन्द्रमा से नहीं है। आ. यास्क ने सूर्य शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा कि– "सूर्यः सर्तेर्वा, सुवतेर्वा, स्वीर्यतेर्वा[2] अर्थात् गतियुक्त पिण्ड सूर्य है। सूर्य शब्द स्वर शब्द से भी व्युत्पन्न है और स्वर का अर्थ होता है– चमकना। अतः सूर्य प्रकाशमान तथा गतियुक्त पिण्ड है। चन्द्रमा से अभिप्राय यहाँ अन्धकार युक्त पिण्ड से है। ब्राह्मणकार **'रात्रिर्वैचन्द्रमा'**[3] कहकर इस तथ्य की पुष्टि करता है। अतः चन्द्रमस् ऐसे पिण्ड हैं, जिनमें स्वयं प्रकाश नहीं अपितु वे दूसरों के प्रकाश से चमकते हैं। ये अंधकार युक्त पिण्ड भी गतियुक्त हैं। चन्द्रमा शब्द की निष्पत्ति चण् और द्रम् धातु से होती है और ये दोनों ही गत्यर्थक हैं। उक्त सादृश्यों के आधार पर ही वर्तमान में सूर्य–चन्द्रमा का नाम ग्रहण किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य (आदित्य) की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ (परमात्मा) के ऊपरी भाग अर्थात् कपाल से हुई। उसके कपाल में जो रस भरा हुआ था, उसकी रश्मियाँ बनीं और कपाल से द्यौ की सृष्टि हुई। आदित्य में वायु, आपः और अग्नि परमाणुओं का बाहुल्य है।[4]

प्रकाशमय तथा अन्धकारमय पिण्डों के अनन्तर सूर्य, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवम् आकाश आदि का निर्माण हुआ जो उपर्युक्त मंत्र की द्वितीय पंक्ति में स्पष्ट है। दिव शब्द की मूल धातु दिवु द्योतने अर्थात् चमकने अर्थ में है जिसका आशय सूर्य तथा उसके समान चमकने वाले अन्य तारों से हैं। **"पृथ्वी"** पद से पृथिवी तथा उसकी तरह अन्य ग्रह, **"अन्तरिक्ष"** का अर्थ वायुमण्डल तथ **"स्वः"** शब्द का अर्थ आकाश किया गया है। पृथिवी की उत्पत्ति के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि– **"इयं वै पृथ्वी भूतस्य प्रथमजा"**[5] अर्थात् यह भूमि सभी लोकों में प्रथम उत्पन्न हुई। महदण्ड के अधोभाग से इस पृथिवी की उत्पत्ति हुई है। मनुस्मृति में कहा गया है कि– परिवत्सर कल्प का 100वां भाग पर्यन्त महदण्ड को ब्रह्मा ने अपने ध्यान, जल और वायु के वेग से दो टुकड़ों में तोड़ दिया। उन्हीं टुकड़ों से द्यौलोक और पृथ्वीलोक की उत्पत्ति हुई है। दोनों के मध्य आकाश, आठ दिशाएँ और जल का स्थान बनाया–

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनोध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिनं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपांस्थानं च शाश्वतम्।।[6]

---

1. ऋग. 10/190/3
2. निरुक्त 12/10 शतपथ ब्राह्मण 14/1/2/3
3. माध्यन्दिनीय शतपथ 12/4/4/7
4. शतपथ ब्राह्मण 6/1/2/3
5. शतपथ ब्राह्मण 14/1/2/10
6. मनु. 1/12–13



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शतपथ के अनुसार पृथिवी का निर्माण नौ रूपों में हुआ। इस पृथिवी पर क्रमशः फेन, मृत्तिका, शुष्कापम्, ऊषर, सिकता, शर्करा, अश्मा, अय–हिरण्य तथा औषधि–वनस्पति उत्पन्न हुई, जिससे सम्पूर्ण पृथिवी आच्छादित हो गई।[1]

ऋग्वेद में अन्य स्थान पर सूर्य–चन्द्रमा आदि की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है कि उस परम पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु, नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से द्यौ (स्वर्ग) चरणों से भूमि तथा श्रोत्र से दिशाएँ आदि उत्पन्न हुए–

**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।**
**श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।।**
**नाभ्या आसीदन्तरिक्षंशीर्ष्णोद्यौः समवर्तत।**
**पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ अकल्पयन्।।**[2]

और अन्त में सभी ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रों की उत्पत्ति हुई, जो सूर्य से मानी गई है–

**"ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः।**[3]

******

1. शतपथ ब्राह्मण 6/1/1
3. ऋग्वेद 10/90/13–14
3. वायुपुराण 50/99



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्रीगणपति–तत्त्व–विमर्श

डॉ. पवनकुमार शास्त्री*

## विद्याविनयसम्पन्ना आचार्याः पं. व्रजवल्लभद्विवेदिमहोदयाः

अखिलमपि जगत् पवित्रीकर्त्तुं शक्तां महाशक्तिस्वरूपां संस्कृतगीर्वाणीमहर्निशं सेवमानानां पूतान्तः– करणानां प्राच्य–पाश्चात्त्यदिशा समधिगतशास्त्रार्थानां विशेषतः आगमशास्त्रेषु वैदुष्याधिकारयोर्द्वयो–रपि पक्षयोरप्रतिमप्रतिष्ठावतां दिक्षु दोलायमानकीर्ति–पताकानामस्मच्छ्रद्धेयानां पण्डितवर्याणां श्रीमतां व्रजवल्लभद्विवेदिमहाभागानां विद्वन्मूर्धन्यानां स्वाध्यायतपोऽभिनन्दनार्थं स्मृतिग्रन्थोऽयं प्रकाश्यतामेतीतिनातोधिकं किमपिऽमोदकारणं भवितुमर्हति।

वाचि माधुर्य, व्यवहारे विनयवैभवा, निरवद्यविद्यासु तलस्पर्शिपाण्डित्यं निरुपमाशास्त्रचातुरी, विश्वप्रसृतं शुभ्रं यशः; सर्वेप्येते गुणविशेषाः पण्डितवर्येषु श्रीमत्सु व्रजवल्लभद्विवेदिमहाशयेषु अहमहमिकया समवतिष्ठन्तेस्मः। पण्डितवर्याः श्रीव्रजवल्लभ–द्विवेदिमहाभागाः आगमशास्त्रेषु प्राक्तनं निखिलमपि चिन्तनामृतं निपीय प्रपाणकरसमिव नवास्वादसम्भृतं शास्त्रपतिपाद्यं सुधीजनानां पुरःस्थितं काञ्चिद् भावभूतिं प्रकटयन्तिस्मः। सान्द्रा गाढभावान्विता आगमविद्या पं० द्विवेदिप्रस्तुतौ सद्यस्तरलासती स्नापयतिस्म प्रभावयतिस्म च श्रोतृजनान्।

पण्डितवर्याणां श्रीमतां व्रजवल्लभद्विवेदिमाहाभागानां विद्वन्मूर्धन्यानां स्वाध्यायतपसो–भिनन्दनार्थं प्रकाश्यमाने स्मृतिग्रन्थे हं हिन्दीभाषायां निबद्धमिमुपरिलिखतं–श्रीगणपति–तत्त्व–विमर्शनामधेयं शोधनिबन्धं प्रस्तूय आत्मनो धन्यतामनुभवामीति शम्
पवनकुमार शास्त्री

---

*अध्यक्षः, साहित्य–संगीत–परषिद, काशी।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय जनमानस में सर्वाधिक ख्यात, लोकप्रिय एवं समादृत देवता हैं– भगवान् श्रीगणेश। भारी–भरकम तोंद पर शोभायमान हो रही टेढ़ी सूँड़ वाले पीताम्बरधारी गजवक्त्र श्रीगणेशजीको भारत का बच्चा–बच्चा जानता है। सभी देवताओं के मन्दिरों में विराजमान तथा समस्त सनातन धर्मावलम्बियों के भवनों के मुख्य–द्वार पर अधिष्ठापित श्रीगणेशजी; जिनकी पूजा प्रत्येक शुभ कार्य या अनुष्ठान के आरम्भ में आदिपूज्य देवताके रूप में सर्वप्रथम की जाती है; को भला कौन नहीं जानेगा? लेकिन भगवान् श्रीगणेश के सम्बन्धमें जनसामान्यके बीच जितना कुछ कहा–सुना और समझा जाता है वह पर्याप्त नहीं है। उदाहरणार्थ सामान्य जनता श्रीगणेशजीको भगवान् भवानीशंकर के सुपुत्र–रूप में ही जानती और पूजती हैं यह सत्य भी है, किन्तु वास्तविकता केवल इतनी ही नहीं हैं। भगवान् श्रीगणेशके सम्बन्ध में श्रुतियों–स्मृतियों एवं पुराणादि आकर ग्रन्थोंमें बहुत सारी बातें कहीं गई हैं।, जिनका सम्यक् प्रचार–प्रसार होना चाहिए और जनसामान्य को उनकी जानकारी होनी चाहिये। गत दिनों श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्र का भाष्य लिखते समय मुझे उक्त ग्रन्थोंके अनुशीलनका एक अवसर मिला था, जिससे श्रीगणपतिमहिमा का किञ्चित् प्रकाश मेरे हृदय में हुआ; मैं अपनी लेखनी को पवित्र करनेकी अभिलाषासे उसे शब्दरूप देकर प्रस्तुत निबन्ध का प्रणयन कर रहा हूँ।

भगवान् श्रीगणेशकी महिमा अनन्त है, तथा आपके नाम–रूप एवं गुणादि अनन्त हैं तथा आपके पावन चरितों का विस्तार अमित हैं। श्रुतियो ने जिन्हें 'नेति–नेति,' कहकर गाया है तथा स्मृतियों एवं पुराणादि आकर ग्रन्थों में भी जिनकी महिमा के मात्र कुछ अंश ही प्रकट हुए हैं; ऐसे भगवान् श्रीगणेशको हम बारम्बार नमन करते हुए निम्नलिखित विमर्श प्रस्तुत करते हैं।,

भगवान् श्रीगणेश कारणस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं। आप सर्वशक्तिमान् तथा सर्वतन्त्र–स्वतंत्र जगदीश्वर हैं। आप अपनी पलकों के उन्मेष–निमेष मात्रसे क्षणभर में सृष्टि–स्थिति एवं लय करने में समर्थ हैं। सभी देवता आपके शरीर हैं तथा आप उन सभी देवताओंकी आत्मा हैं। आप चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न होने वाले जीवों में आत्मारूप से निवास करने वाले सर्वात्मा हैं।

भगवान् श्रीगणेशके नाम अनन्त हैं। हम भले ही केवल उनके सुमुखादि द्वादश नामों एवं गणेश्वरादि सहस्रनामों से ही परिचित हों किन्तु श्रुतियाँ कहती हैं कि जब से ब्रह्म प्रतिष्ठित हुआ है तभी से वाक् भी प्रतिष्ठापित हैं, इसलिए जितने भी शब्द हैं, वे सभी ब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशजीके नाम हैं। श्रीगणेशसहस्रनाम स्तोत्रमें श्रीगणेशजी का जो ६६८ वॉ नाम 'अनन्तनाम' गिनाया गया है; उसका अर्थ भी यही है कि भगवान् श्रीगणेशके नाम अनन्त हैं। केवल नाम हीं नहीं अपितु भगवान् श्रीगणेश के रूप भी अनन्त हैं। भगवान् श्रीगणेशकी प्रभा सर्वदा करोड़ों सूर्य के समान होती है तथापि आप सत्ययुगमें

---

1 सम्भवतः इसी आधार पर सप्तर्षियों ने दस्यु रत्नाकर को ईशाराधन हेतु उसकी प्रकृति के अनुरूप 'मरामरा'– यह चार अक्षरों का नामोपदेश देकर जप करने का निर्दश दिया था, जिसे जप कर वह महामुनि वाल्मीकि बन गया था। ब म् –ब म् कहकर गाल बजाने से शिवजीको होने वाली प्रसन्नताकी उक्ति भी सम्भवतः इसी तथ्यकी ओर संकेत करती है। आधुनिक कालमें श्रीरामचरितमानस नामक ग्रन्थ के सम्पूर्ण या किञ्जित अंशको मन्त्र–रूप में पढ़ने की परम्परा तथा उससे सिद्ध होने वाली अभिलाषापूर्ति की घटनाएँ भी इसी ओर संकेत करती हैं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रमाके समान हेमवर्ण, त्रेतायुगमें अर्जुन के समान रूप्यकवर्ण, द्वापरयुग में शक्रगोप के समान रक्तवर्ण तथा कलियुग में धूम्रवर्ण के दिखाई देते हैं। आपका विराटरूप कल्पनातीत है। हजार सिर, हजारनेत्र तथा हजार पैरों वाले परमात्माश्रीणेशजीके विराटरूप दिगम्बर शरीरमें पृथ्वी ही कटि है, सप्तद्वीप उरूमण्डल हैं, अश्विनीकुमारद्वय घुटने हैं, पाताल जंघाएँ हैं तथा पृथ्वी के नीचे के सातो लोक चरण हैं। आकाश नाभि है, सभी समुद्र आपके उदारान्तर्गत जल हैं तथा यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस और मनुष्य आपकी कुक्षिके अन्तर्गत ऑतों के रूपमें है। सुमेरु पर्वत पीठ है, विन्ध्यादि पर्वत कंधे हैं, रुद्र गर्दन हैं तथा सभी नदियॉ एवं नद आपकी भुजाएँ हैं। महाकाल अँगूठा है, शेषादि नाग अँगुलियों में हैं तथा ध्रुवादि तारागण नखरूप में हैं। ऊपरके सातोंलोक मूर्धा हैं, ब्रह्म मस्तक है तथा सत्यलोक आपके सिरके बालों का गुच्छा हैं। दिशाएँ कान हैं, शक्र नासिका हैं, धर्म और कृत्तिकादि सत्ताइस नक्षत्र आप के मुखके अन्तर्गत के भतीरी दॉत हैं। करोड़ों चन्द्रमाके समान निर्मल छवि वाले भगवान् श्रीगणेश समस्त ब्रह्यण्डोंको गॅूथकर मेखलाके समान अपनी कमरमें धारण किये हुए है। भगवान् श्रीगणेशका विराटरूप वर्णनों से परे हैं इसका केवल ध्यान किया जा सकता हैं आपकी व्यापकता भी अद्‌भुत है। आपका कालस्वरूप हैं। लव से लेकर महालय तक कालमापनकी इकाइयॉ आपका ही रूप हैं। नक्षत्र, योग, राशियॉ, तिथियॉ, करण, अंश, होर, मेरु, ध्रुव, सप्तर्षि, राह्वादि नवग्रह, भूम्यादि पञ्चमहाभूत, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर, भूत, पशु, मनुष्य, पक्षीगण, समुद्र, सरिताएँ तथा पर्वतादि सब आपके ही रूप हैं।

भगवान् श्रीगणेश इतना विराट एवं व्यापक होते हुए भी भक्तों की आराधना में सुगमता हेतु अत्यन्त छोटे आकार के भी बन जाते हैं। श्रुतियॉ हमें आश्वस्त करती हैं कि भगवान् श्रीगणेश अमित हीं नहीं अपितु संमित (एक अंगुष्ठ के बराबर सीमित आकारके) भी हैं। पूजा के क्रममें अक्षतपूर्ति सकोरे में कुंकुम विरचित अष्टदलचक्र पर गोमयकी पिंडी कल्पित गौरीके साथ पूगीफल में आवाहित छोटेसे श्रीगणेशजी भी भक्तोंकी पूजा/अर्चना उसी प्रकार स्वीकार करते हैं; जिस प्रकार बड़े–बड़े मन्दिरों में विराजमान बड़े गणेशजी।

श्रीगणेशजी निष्कल (निरवयव) हैं तथ छन्दविग्रह हैं। आप अपनी इच्छा से और भक्तों की भावना (आवश्यकता) के अनुसार विभिन्न रूपों में प्रकट (अवतरित) होते रहते है। प्राचीन काल में आपने देवताओं की कार्य–सिद्धि हेतु मनुष्य एवं हाथीकी सम्मिलित आकृति स्वीकार कर ली थी और तब से आज तक आपक इसी रूपमें पूजे जाते हैं। आपने लोकमंगल के लिये महर्षि कश्यप तथा राजर्षि वरेण्य के पुत्र रूप में भी अवतार लिया था।

आपके जन्म लेने का प्रसंग अत्यन्त आह्लादकारी हैं। पुराणों में कहा गया है कि प्राचीनकाल में भगवती पार्वतीने अपने श्रीअंगों पर लगें हुए उबटनका मैल उतारकर एक शिशुकी आकृति बनाई और उसे समीप में बह रही गंगाजी में प्रवाहित कर दिया। गंगाजीने अपनी छोटीबहन द्वारा प्रवाहित उस आकृति में प्राण डाल दिये और वह लोक में द्वैमातुर, गौरीतेजोभू एवं उमांगमलजः नामसे प्रसिद्ध हुआ। त्रिपुरासुर से युद्धके क्रम में भगवान् शिवके मुखारविन्द से श्रीगणेशजी के प्रकट होने की कथा भी मिलती हैं।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यद्यपि भगवान् श्रीगणेश सभी देवताओंके आदरणीय एवं वन्द्य है और सभीसे आपके मधुर सम्बन्ध हैं, तथापि भगवान् शिव एवं उनके परिवार से आपका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। आप शम्भुके मुखसे उत्पन्न शिवतेजस्वरूप हैं। आपको शिवसे अभिन्न कहा गया है। आप स्थाणुप्रिय एवं ईशानसुत कहे गए हैं। उमापुत्र श्रीगणेशजी माता पार्वतीकी गोदमें कौतुकपूर्ण क्रीडाएँ करके उनके आनन्द को बढ़ा देते हैं और अपनी बाललीलाओं से पिता शिवजी के कोप को दूर करके उन्हें हँसा देते हैं आप माता पार्वती एवं पिता महोदव के परमभक्त हैं तथा शास्त्रों के मर्मको जानने वाले परम चतुर हैं। आपने विश्व–प्रदक्षिणाके प्रसंगमें अपने माता–पिताको ही विश्वरूप मानकर उनकी परिक्रमा कर डाली थी; जिससे न केवल आप विश्व–परिक्रमा में विजयी हुए थे अपितु प्रथम–पूज्य भी बन गए थे। आपको विघ्नेश्वरकी पदवी मिली थी। आप विघ्न हरते भी है। और विघ्न डालते भी हैं। यदि आपकी अग्रपूजा कर दी गई तो आप कार्यों से विघ्नों को दूर कर देते हैं और यदि आपकी अग्रपूजा न की गई तो आप कामों में विघ्न डाल देते हैं। समुद्र–मन्थन के समय देवताओं द्वारा और त्रिपुरासुरसे युद्धके समय शिवजी द्वारा स्मरण न किये जाने पर आपने विघ्न उत्पन्न कर दिये थे। अतः ऋषियों ने विद्यारम्भ,विवाह,प्रवेश, निर्गम, संग्राम तथा संकटों आदि के समय आपकी अग्रपूजा अनिवार्य कर दिया था। श्रीगणेशजी शिवभावना में निरन्तर लीन रहने वाले नित्यशैव हैं तथा आपको रूद्रैकादशिनी प्रिय है। आप स्कन्दके बड़े भाई गुहाग्रज कहे गए हैं तथा आप नन्दीश्वर के परमप्रिय सखा हैं। राजा दिवोदासके कार्यकाल में मन्दराचल पर प्रवास कर रहे शिवजी को पुनः काशी में लाकर बसाने में श्रीगणेशजी का अनुपम योगदान रहा था। इसी प्रसंग में आप ढुंढिराज कहलाए थे तथा भगवान् विश्वनाथसे प्रशंसित होकर काशीमें उनके मन्दिरके पश्चिमी द्वार पर विराजमान हो गए थे। काशीमें ढुंढिराज श्रीगणेशका दर्शन किये बिना भगवान् विश्वनाथ का दर्शन निष्फल होता है श्रीगणेशजी काशी में आठों दिशाओं में चक्राकार फैली हुई सात परिधियों में ५६ विनायक रूपों से विराजमान रहकर काशी का मंगल करते रहते हैं। पुराणों में यह कथा भी मिलती है कि आप काशी में एक पैर से खड़े रहते हैं।

पुराणों में कहा गया है कि साकार रूप भगवान् श्रीगणेश के समस्त अंग–प्रत्यंग समुद्रशास्त्र में कहे गए शुभ लक्षणों के सम्पन्न हैं। आपके चरणकमल कछुए की पीठकी भाँति गोल और ऊँचे उठे हुए हैं। आपके टखने एड़ियाँ, जंघायें, और जानु और ऊरूयुगल भरे–भरे तथा मांसल हैं। आपकी कमर मोटी और नाभि गहरी है। आपकी भुजाएँ जानुपर्यन्त लम्बी हैं। आपके कंधे मोटे तथा मजबूत हैं। आपका कंठ शंखकी तरह त्रिवलियोंसे युक्त है तथा अपका हनु मांसल है। आपका मुख हाथीका है किन्तु उसपर अंकुश नहीं छुआया जाता। आपका मस्तक अत्यन्त घना व कठोर है। आपका कुम्भाग्र (सिर) स्तबक के समान सिन्दूरित लालवर्णका है तथा उससे चूनेवाले मद को पीने के लिए भौरे उसपर गुंजार करते रहते हैं। आपके ललाट पर अष्टमी का चन्द्रमा सुशोभित होता है। आपकी नासिका अर्थात् सूँड़ लम्बी और टेढ़ी है। उसपर नाना भाँति के रंग–बिरंगे चित्र बने होने के कारण वह कुछ–कुछ श्यामल और मनोहर दिखती है। आपके कान सूपके समान लम्बे हैं। आपका बाँया दाँत टूटा हुआ तथा दाहिना दाँत ऊँचा



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उठा हुआ है। आपकी ऑखे तीन किन्तु ऐसी छोटी—छोटी हैं मानों वे किसी सूक्ष्म—तत्व का निरीक्षण कर रही हों। आपके करतल, पादतल, तालु और ओंठ रक्ताभ हैं। आप वामन भी हैं तथा प्रांशु भी हैं। आप सामान्यतया पीताम्बर पहनते हैं किन्तु यदा—कदा श्वेताम्बर, रक्ताम्बर एवं व्याघ्राजिनाम्बर भी धारण कर लेते हैं। आपके कानों में कुण्डल तथा वक्षःस्थल पर मुक्तादिके सुन्दर हार सुशोभित होते हैं। आपके सिरपर रत्नजटित किरीट सुशोभित होता है। समस्त आभरणों से विभूषित आप छहों ऋतुओं में खिलनेवाले पुष्पों की आपादलम्बिनी वनमाला सदैव धारण किये रहते हैं। आप मूषक को ध्वजो एवं वाहन बनाने वाले आखुकेतन तथा आखुमहारथः कहे गए हैं। हालॉकि आपने अपने अन्य अवतारों में सिंह, मयूर एवं शेषनाग वाले परमात्मा को भी वाहन बनाया था; ऐसी कथा पुराणोंमें मिलती है। आपका एक नाम गजपतिध्वजी भी प्रसिद्ध है।

आप (भगवान् श्रीगणेश) अपने भक्तों के लिए तो उपर्युक्त प्रकार से सुन्दर, सुमुख, अघोर और सुरुप हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप महाभयंकर तथा दुर्मुख हैं। सिर पर सर्पोंका मुकुट धारण किये हुए, कंधों पर सर्पराज वासुकि को उत्तरीय की भॉति ओढ़ हुए, कर्कोटकादि नागों को ग्रैवेयक, हार, बाजूबन्द, यज्ञोपवीत एवं मेखलादि आभूषणवत् धारण करने वाले, अगणित विघ्नों से घिरे हुए दस हजार फणों वाले नागराज पर आसीन, अग्नि एवं सूर्य के समान दुर्धर्ष तेजस्वी, व्याघ्रचर्मधारी, सिंहवाहन भगवान् भीम (श्रीगणेशजी का एक नाम) को देख पाना या छू पाना क्या सम्भव है? कदापि नहीं।

भगवान् श्रीगणेश उपनिषदों द्वारा जाने जा सकने वाले वेदान्तगोचर हैं, आपको वेदों के द्वारा ही जाना जा सकता है न कि वेद विरूद्ध तर्कों के द्वारा। तार्किकोंके लिए तो आप सर्वथा दुष्प्राप्य ही हैं। आपके स्वरूपका एक बाल के बराबर भागका भी दर्शन बिना अपकी कृपा के सम्भव नहीं है। आपको भक्ति मार्ग विशेष प्रिय है। आप छहो दर्शनों में बताई गई युक्तियों से पकड़ में नहीं आते किन्तु निर्मलचित्त वाले भक्तोंको सहज ही सुलभ हो जाते हैं। सामान्यतया आपका ध्यान सूर्यमण्डलके मध्य में किया जाता है किन्तु आपका भक्त जहॉ कहीं भी आपका ध्यान करता है; आप वहीं प्रकट हो जाते हैं। आपके कान सूपके समान लम्बे—लम्बे हैं जिनसे आप दूरस्थ भक्तोंकी पुकार भी इस प्रकार सुन लेते हैं मानों वह समीप से ही बुला रहा हो। आपका भक्त आपको भक्तिपूर्वक जो कुछ भी पत्र, पुष्प, फल या जल अर्पित करता है, आप उसे देख लेते हैं, हाथ में धारण कर लेते हैं या उसके द्वारा प्रदत्त नैवेद्यादि को खाकर ग्रहण कर लेते हैं। पुराणों के अनुसार श्रीगणेशजी को वशीभूत (प्रसन्न) करने का एकमात्र साधन उनकी पूजा ही हैं।

भगवान् श्रीगणेश का प्राकट्य चतुर्थी तिथि को हुआ था। इस तिथि को (आपका) पूजन करने से आप परम प्रसन्न होते हैं। आपकी पूजामें फल—फूल के अतिरिक्त दूर्वा और शमीपत्र विशेष रूप से अर्पित किया जाता है। आपको पूड़ी,फेनी, मोढ़, बड़ा, ऊँख, लड्डू (मोदक), राब (खॉड़) और कपित्थ का नैवेद्य विशेष प्रिय है। श्रीगणेशजी को नैवेद्य समर्पित करते समय उनके भारी—भरकम तोंदको देखकर तथा उनके महोदर एवं लम्बोदरादि नामों को स्मरण करके श्रद्धालु भक्तोंको इस बातसे चिन्तित नहीं होना चाहिये कि श्रीगणेश जी बहुत ज्यादा खाते होंगे और इतने अल्प नैवेद्य से भला उनको सन्तुष्टि कैसे



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलेगी? भक्तजन बिल्कुल निश्चिन्त रहें। प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु एवं पिता शिव द्वारा दिये गए नैवेद्यों को खाने से आपका पेट लम्बा अवश्य हो गया था किन्तु महोदर नाम होने पर भी आपका भोजन अधिक नहीं है। आप अपने भक्तों द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित किये गए अल्प नैवेद्य से हीं संतुष्ट हो जाते हैं। इसीलिये आपको भक्तों पर अतिशीघ्र प्रसन्न होने वाला क्षिप्रसादन कहा गया है।

श्रीगणेशजी धनिकों पर हीं नहीं अपितु अकिंचनों पर भी समान रूप से कृपा करते हैं। समाज का धनिक–वर्ग जहाँ वेदमंत्रोच्चार पूर्वक लड्डुओं आदिसे भव्य सहस्रार्चनकरके आपको संतुष्ट करता है, वहीं समाजके अकिंचनवर्ग द्वारा मात्र दूर्वार्चन किये जाने से ही आप तदेव प्रकार तुष्ट हो जाते हैं। आपको अग्निमें (यज्ञ में) मन्त्रोचारपूर्वक तिलादि अष्टद्रव्योंसे दी गई आहुतियाँ विशेष प्रिय हैं, तथा ढक्का, पटह या नगाड़ेकी ध्वनियाँ आपको बहुत अच्छी लगती हैं।

श्रीगणेशजी वेद, वेदांग, शास्त्र पुराण एवं नाटकादि काव्यों सहित चतुर्दश विद्याओंके पारंगत विद्वान् हैं तथा समस्त भाषाओं एवं लिपियों के ज्ञाता हैं। अतः सभी भाषा–भाषी भक्तों की बातें समझ लेते है। यहाँ तक कि पशु–पक्षियों की बोली को भी समझ कर उनपर अनुग्रह करते हैं। आप ज्ञानियों एवं मन्दबुद्धि भक्तोंमें कोई भेद–भाव नहीं रखते और विद्वानों पर हीं नहीं अपितु मूढ़ों पर भी समान रूप से कृपा करते हैं। आप जहाँ विद्वद्वर्ग द्वारा मन्दिरों में वेदमंत्रोच्चारपूर्वक की गई स्तुतियोंसे प्रसन्न होते है; वहीं आप अल्पधी महिलाओं द्वारा अपनी नैत्यिक गोष्ठियो में कही–सुनी गई आपने जन्म उवं बुद्धि चातुर्यादिकी कपोल–कल्पित चटपटे किस्सों–कहानियों से भी तुष्ट हो जाते हैं। काशीमें गंगातट पर ऐसे किस्से–कहानियाँ कहने–सुनने वाली भक्तिमती महिलओं के सफल होने की बाते प्रायः देखेन–सुनने को मिलती हैं।

करुणामूर्ति भगवान् श्रीगणेश अत्यन्त कृपाल हैं। आप अपने भक्तोंको फल देने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। देवताओं में सर्वाधिक उदार महादेवजी माने जाते हैं। श्रीगणेशजी उनसे भी अधिक देने वाले 'उदारत्रिरशाग्रणी' कहे गए हैं। आप चिन्तामणि, कामधेनु एवं कल्पवृक्ष के दान देने के गर्वको चूर–चूर कर देने की लालसा रखते हैं। ये तीनों तो याचकको उसकी अपेक्षा (याचना) से बहुत अधिक दे देते हैं। आप अपनी सूँड़के अग्रभाग पर स्थित स्वर्णकुम्भों में भरे हुए रत्नोंकी सदैव वर्षा करते रहते हैं। तथा राजाओंकी भाँति भ्रूक्षेपमात्र से लक्ष्मी (धन) दे देते हैं। निधिप्रिय कुबेरादि निधिपतियों के आप उपास्य हैं एवं लक्षाधीशोंके आप प्रिय आधार हैं। ये अपने कोशकी वृद्धि हेतु अपने प्रतिष्ठानोंकी सम्मुख दीवालोंपर, कोश–मज्जूषाओंके शीर्षपर तथा लेखाबहियोंके मुखपृष्ठादि प्रमुख स्थानों पर स्वस्तिकरूप में आपको पधराकर 'श्रीगणेशजी सदा सहाय' की प्रार्थना करते रहते हैं।

भगवान् श्रीगणेश नानाविध गुणों से सम्पन्न गुणी कहे गए हैं। आपके गुण अनन्त हैं तथापि आपका विघ्नहरत्व एवं मंगलदातृत्व गुण विशेष रूपसे ख्यात है। भगवान् विनायक विघ्नराज एवं विघ्ननायक कहे गए हैं। आप विघ्न हरते भी हैं और विघ्न डालते भी हैं। आपके इन गुणोंका वर्णन पीछे किया जा चुका है। ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट आपकी अग्रपूजा की अनिवार्यता को स्मरण कर सुधीजन आज भी अपने



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संकल्पों की सम्पूर्ति हेतु आपकी अग्रपूजा करते हैं; जिससे प्रसन्न होकर आप उनके समुदाय से विघ्नों को दूर कर देते हैं और उनके संकल्प निर्बाध सिद्ध हो जाते हैं।

श्रीगणेशजीका मंगलदातृत्व गुण भी अनूठा है। आप का नाम लेते ही सर्वत्र मंगल होने लगता हैं आप गणनाथ हैं। आप समस्त शुभों में (शुभदायी सर्वार्थसिद्धि आदि योगों में) शुभता तिथि चतुर्थी को भी अपने प्राकट्य से शुभद बना दिया हैं परब्रह्म परमेश्वर के उपासक चोहे शैव हों या वैष्णव; शाक्त हों या सौर या अन्य कोई भी; सभी आपकी मंगलमूर्त्ति को नमन करते हैं। सभी के भवनों के मुख्यद्वार पर देहलीविनायक भगवान् श्रीगणेश विराजते हैं। सभीकी पूजा–अर्चना विघ्नेश्वर गणपति की प्रथम पूजा से ही शुरू होती है। योगीजन भी कुण्डलिनी जागृत करके सर्वप्रथम मूलाधार चक्रमें श्रीगणेशजीका ही ध्यान करते हैं।

श्रीगणेशजीकी कीर्तियाँ अनन्त हैं। आप सहस्राक्षबलापह हैं। प्राचीन काल में आपने इन्द्रको हरा दिया था और उनसे सुसेवित हुए थे। आप चतुर्दश इन्द्रों को वर देने वाले हैं। आप चतुर्दश मनुओंके प्रभु हैं, नवनारायणों से स्तुत्य हैं तथा नवदुर्गाओं से सेवित हैं। आप अष्टभैरवों एवं अष्टवसुओं से वन्द्य हैं। आप तीव्रादि शक्तियों से सुसेवित हैं तथा आप रावण और बाणासुर से भी अर्चित हुए हैं।

श्रीगणेशजी बह्माजी से लेकर क्षुद्र कीट पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों पालक हैं। आप प्राणों के भी प्रांण हैं। नवद्वार वाले इस शरीर में आप जीवात्मा रूप से प्राणों का स्तम्भन करके बैठे रहते हैं। आपके हटते ही शरीर निष्प्राण हो जाता है। आप भक्तोंके भय एवं शोक को हरने वाले, दुःखों के भंजक, दुष्ट ग्रहोंके निवारक तथा दुःस्वप्नों को सुस्वप्नों में बदलकर उन्हें शुभद बना देने वाले है। आप निःसंतान दम्पतियों के शुक्र–रजादि को पुष्ट करके और उनके गर्भधारणादि दोषों को दूर करके उन्हें सन्तान सुख प्रदान करते हैं तथा आप सन्तान सम्पन्न दम्पतियोंके सन्ततियों की सुरक्षा करके उनकी वंश परम्परा एवं कौलतंत्र का संरक्षण करते हैं। आपकी महिमा अनन्त है। वेदों, पुराणों एवं स्मृतियों के अतिरिक्त काव्यादि साहित्य में भी आपके जीवनचरितों के उल्लेख मिलते हैं।

आधुनिक कालमें प्रचलित लोक–कथाओं में श्रीगणेशजीके जितने पावन–चरित प्राप्त हैं उतने स्यात् ही किसी देवता के होंगे। आपके जन्म, दाम्पत्यजीवन, बुद्धिमत्ता तथा चातुरी, आदिसे सम्बन्धित दन्तकथाएँ जनता–जनार्दनकी जिह्वा पर रहती हैं और आपसी लघु गोष्ठियों में वे बड़े ही चावसे कही–सुनी जाती हैं। इनमें आपकी भक्तवत्सलता औ धन–धान्य–सुतादि दातृत्व का बड़ा ही मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली चित्रण होता है। आपके प्रीत्यर्थ किये जाने वाले व्रतों, अनुष्ठानों एवं उत्सवों की सूची भी बड़ी लम्बी है–बहुला, करक,वरद,वैनायकी एवं संकष्टी आदि श्रीगणेशचतुर्थी के व्रतोत्सवोंकी महत्ता अनुपम है। इनमें से कुछ धन–धान्यप्रद, कुछ सुतप्रद तो कुछ दाम्पत्य सुखवर्द्धक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मूषक पर सवार भारी–भरकम तोंद और लम्बी सूँड़ वाले पीताम्बरधारी गजाननकी एवंविध ख्यातिका प्रमुख कारण उनका भगवान् भवानीशंकर का पुत्र होना ही है क्योंकि आराधक आपके बाल–स्वरूप से सहज ही अपनत्व स्थापित कर लेते हैं और श्रद्धापूर्वक आपकी आराधना करके आपको



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसन्न कर सफल मनोरथ होते हैं। संतों ने लिखा है कि श्रीगणेशजी को अपने लिये 'भवानीनंदन' और 'शिवपुत्र' सम्बोधन सुनना अच्छा लगता है।

संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान् श्रीराम का गुणानुवाद करते हुए लिखा है कि–

**राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार।**
**सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिनह कें विमल विचार।।**

भगवान् श्रीगणेशजीके गुण–संकीर्तनके सन्दर्भ में भी यह दोहा सटीक लागू होता है। भगवान् श्रीगणेशजी के भी नाम, रूप एवं गुणादि अनन्त हैं तथा उनके पावन चरितों का विस्तार अमित है। श्रीसरस्वती एवं श्रीशेषनाग समस्त काले–काले पर्वतों को समुद्र में घोलकर स्याही बना लें तथा कल्पवृक्ष की शाखाओं को लेखनी बनाकर पृथ्वीरूपी कागजपर दिन–रात लिखते रहें तब भी वे परब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीगणेश की महिमा का पार नहीं पा सकते। मैं तो एक अत्यल्प बुद्धि वाला श्रीगणेशजीका अत्यन्त साधारण सेवक हूँ। मैं भला क्या लिख सकूँगा? अन्त में सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा विरिचित निम्नलिखित पदसे श्रीगणेशजी को नमन करते हुए लेखनी को विश्राम दूँगा–

**गाइये गणपित जग बन्दन, संकर सुवन भवानी नंदन।**
**सिद्धिसदन गजबदन विनायक, कृपासिंधु सुंदर सब लायक।।**
**मोदक प्रिय मुद मंगल दाता, विद्यावारिधि बुद्धि विधाता।**
**माँगत तुलसिदास कर जोरे, बसहिं रामसिय मानस मोरे।।**

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# धर्मशास्त्र की उदारता

डॉ. ज्योत्सना सी. रावल*

धर्मशास्त्र शब्द में धर्म और शास्त्र दो शब्द हैं। धर्म शब्द की व्याख्या देते हुए महाभारत में कहा गया है कि–'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः'। धृ धातु का पाणिनि ने धारणपोषणयोः प्रयोग बताया है। जो धारण करता है और पुष्ट बनाता है वह धर्म है। मानव स्वभाव से स्वकेन्द्रिय है। वह स्वयं और अपने परिवार की ही विशेष चिंता करता है। उसको मानव बनने के लिये शास्त्रों ने सामान्य धर्म का उपदेश दिया है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, पांच मुख्य धर्मों को जैन धर्म में अणुव्रत और महाव्रत कहा गया है। सम्यक् आचार का बौद्ध धर्म ने समर्थन किया है।

विष्णुसहस्रनाम में कहा गया है कि 'आचारप्रभवो धर्मः, धर्मस्य प्रभुरच्युतः।' (139) मनु, याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रकारों ने भी आचार को प्रथम धर्म माना है। व्यक्ति मानव बना रहे पशु वृत्ति से बचे और दिव्यता की ओर जीत से प्रस्थान करे, उसको धर्म कहा गया है और धर्म का आदेश, उपदेश देनेवाले शास्त्र को 'शासनात् शास्त्रम्' कहा गया है–

**श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।**

वेद श्रुति है, और धर्मशास्त्र स्मृति है। जो स्मृति श्रुति से अविरूद्ध है वह स्मृति ग्राह्य है। जो स्मृति श्रुति से विरुद्ध है, उसको अस्वीकार किया गया है।

कुछ लोगों की धारणा है कि हिन्दु धर्मशास्त्र संकुचित है, पर प्रस्तुत लेख में बताया गया है कि धर्मशास्त्र में सामाजिक हित की सुरक्षा और वैयक्तिक उर्ध्वीकरण के लिए मार्ग बतया गया है। जहां संकुचित दृष्टि लगती है वहाँ केवल समाज के हित में विचार किया गया है। व्यवहार और आचार में वह प्रधानतया दिखाई देता है। परन्तु मानवीय स्वाभाविक वृत्तियों का दुष्परिणाम समझकर धर्मशास्त्रों ने औदार्य बताया है। यह बात खास तौर पर स्त्री–पुरुष सम्बन्ध और संतानों के बारे में दिखाई पड़ती है।

एक पति–पत्नीत्व आदर्श स्त्री–पुरुष सम्बन्ध होने पर भी समाज में बहु पतित्व और बहुपत्नीत्व की प्रथायें हैं और अवैध सम्बन्ध भी होते रहते हैं। धर्मशास्त्रों में इस अवैधता पर कड़े नियंत्रण रखने पर भी समाज में ऐसे सम्बन्ध होते रहते हैं। परन्तु धर्मशास्त्रों ने उसके दुष्परिणाम की ओर उदार मत अपनाया हैं। सुशील पत्नी का त्याग करना अपराध माना गया है। परन्तु दुराचारिणी पत्नी का त्याग

---

*आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, बडनगर, गुजरात

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करने पर भी भरण पोषण की जिम्मेदारी पति की मानी गई है। पत्नीधर्म पति और पुत्र के लिये आवश्यक माना गया है। इसलिए पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है। धर्मशास्त्रों ने सवर्णा पत्नी को धर्म पत्नी कहा है। जिस पत्नी के संग में धार्मिक क्रिया नहीं कि जाती वह धर्मपत्नी नहीं है। मैत्री करार से साथ में रहने वाली स्त्री धर्मपत्नी नहीं हो सकती। अष्टविध विवाहों में भी जिस विवाह में धार्मिक क्रिया से पाणिग्रहण नहीं किया गया, वह धर्मपत्नी नहीं है। आसुर, पैशाच जैसे विवाहों से धर्मपत्नी की कल्पना नहीं कि गई है।

भिन्न वर्णवाली पत्नी भी धर्मशास्त्र की दृष्टि से धर्मपत्नी नहीं है। फिर भी मनुष्य की स्वाभाविक निर्बलता को ध्यान में रखते हुए सब प्रकार की स्त्रियों को पत्नी का दरजा दिया गया है। यह केवल धर्मशास्त्र का स्त्रियों की ओर औदार्य है। स्त्रियों को असुरक्षित नहीं रखना चाहिए यह धर्मशास्त्र की प्रथम प्रतिज्ञा है। इसीलिए कहा गया है कि–

**पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने।**
**स्थविरे पुत्रा रक्षन्ति, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।।**

स्त्रियों की स्वतंत्रता का अर्थ स्त्रियों की असुरक्षा अभिप्रेत है। स्त्रियों को सदा खुश रखना चाहिए। वहाँ ही स्वर्ग होता है। पितर भी कुलवधू आने पर आनन्दित होते है। इसलिये नान्दीमुख पितरों का आराधन विवाह विधि में किया जाता है। वधूदर्शिनः पितरः यह वेद वचन है।

विवाह का एक उद्देश्य संतान प्राप्ति है। पुत्र संतान की महत्ता समाज में आज भी है। वंशवृद्धि पुत्रों से मानी गई है। फिर भी दाय विभाग में धर्मशास्त्रकारों ने पुत्रों के बाद पुत्रियों का भी महत्त्व बताया है। दोनों की शिक्षा और पालन में कोई भेद धर्मशास्त्र ने स्वीकृत नहीं किया। परंतु समाज में दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न होने से शिक्षा प्रणालिका भिन्न मानी गई है। फिर भी ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का भी महत्त्व बताया है। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों और ऋषिकाओं के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि स्त्री का दर्जा पुरुष से कम नहीं था। सूर्या सूक्त में वरकन्या ऋक्–साम, द्यावा–पृथ्वी की तरह समकक्ष माने गये हैं। वधू को सुमंगली कहा गया है। अघोर–चक्षु पत्नी दाम्पत्य जीवन को सफल बनाती है। इसे सिद्ध होता है कि स्त्रियों का स्थान निम्न नहीं था, स्त्रियों का स्थान महत्त्व का था।

स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध से उत्पन्न संतानों के धर्मशास्त्रकारो ने बारह प्रकार माने हैं। इन में 6 दायाद और 6 अदायाद पुत्र हैं। दायाद का अर्थ है दायद का अधिकारी। दायका अर्थ है–पैतृक संपत्ति। पितृ–पितामह की संपत्ति में 6 प्रकार के पुत्रों का अधिकार माना गया है। इसमें औरस पुत्र मुख्य है। औरस का सामान्यतया अर्थ है–उरसा जातः। स्वयं का पुत्र। परन्तु धर्मशास्त्रकारों ने औरस पुत्र को धर्मपत्नीज माना है। औरसो धर्मपत्निजः। तत्समौ पुत्रिकासुतः। पुंत्री का पुत्र अर्थ है–अपुत्र पिता अपनी पुत्री का विवाह करते समय जामाता के साथ यह शर्त करता है कि इस कन्या से जो पुत्र हो वह मातामह का पुत्र होगा। ऐसे पुत्र को पुत्री का पुत्र कहा जाता था। यह सामाजिक समस्या का उकेल था। निःसंतान पति की मृत्यु होने पर नियोग पद्धति से उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रज पुत्र कहा जाता था। धृतराष्ट्र और पांडु



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसे क्षेत्रज पुत्र थे। उसका भी पिता की संपत्ति में अधिकार था। आज कल ऐसे पुत्रों का नामों निशान नहीं। आज कल दत्तक पुत्र माने गये है। केवल दत्तक पिता को पिण्डदान देता है और संपत्ति का अधिकारी होता है। द्वामुष्यायण दत्तक और जनक दोनों को पिण्डदान देता है और दोनों की सम्पत्ति का अधिकारी होता है। उस के सिवा सगर्भा कन्या का विवाह होने पर जो पुत्र विवाहोपरांत उत्पन्न होता है, उस को सहोढ़ कहा गया है। आज कल ऐसे पुत्र का समाज में केवल अनाथाश्रम में स्थान होता है। परन्तु धर्मशास्त्रों ने उन को कुटुम्ब में स्थान दिया है। पुनर्भूः स्त्री का विवाह संस्कार पुनः होता है। एक पति को छोड़कर अन्य पुरूष की पत्नी होने वाली वाली स्त्री पुनर्भूः होती है। ऐसी स्त्री का पुत्र पौनर्भव कहा जाता था। ऐसे पुत्र को भी धर्मशास्त्र ने स्वीकृति दी है।

रोहित के स्थान पर बलि देने के लिये शुनःशेप का क्रयण किया गया था। ऐसे पुत्र को क्रीत कहते हैं। अजीगर्त ने शुनः शेप को बेच दिया था। ऐसे पुत्र को विक्रीत कहते हैं जो कोई आपात काल में स्वयं पुत्र होकर रहे उसकों स्वयंदत्त कहते है ऐसे पुत्र को भी धर्मशास्त्रकारों ने मान्यता दी है। कौमार्यावस्था में अवैध सम्बन्ध से होने वाले पुत्र को कानिन कहा गया है। कर्ण कुंती का कानिन पुत्र था। कुंती ने कर्ण को त्याग दिया था। यह बताया गया है कि कानिन पुत्र होने पर स्त्री की भारी निंदा होती थी। आज कल भी वैसी स्थिति है। ऐसे पुत्र का स्थान आज कल अनाथाश्रम में है। शकुन्तला को कण्व उठा लाए और उस का परिपोष किया। यह लोगों का औदार्य बताता है। फिर भी धर्मशास्त्रकारों ने कानिन को भी पुत्र का दर्जा दिया है। केवल 'कुण्ड' और 'गोलक' निन्द्य पुत्र माने गये है। पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्तरि गोलकः। पति का अस्तित्व होने पर अन्य पुरुष से उत्पन्न पुत्र को कुण्ड कहा जाता है और पति की मृत्यु होने पर अन्य से संपादित पुत्र को गोलक कहते है। ऐसे पुत्र व्यभिचार से उत्पन्न होने से निन्द्य है। अन्यथा धर्मशास्त्र ने स्वयं मर्यादा बांधकर हो सके उतना औदार्य रखकर स्त्रियों और संतानों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। इसमें मानव सुलभ निर्बलता और समाज की सुरक्षा ही दृष्टि समक्ष रखे गये है।

गीता में लोक कल्याण को यज्ञ का दरजा दिया गया है। पुरूष सूक्त में कहा गया है–

**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**

लोक कल्याण का चक्र सदा चलता रहे इस मूलभूत भावना को देखकर हम कह सकते है कि– ***Hindu religion and its Dharmasastra are not condervative but they are enough broad minded and they are interested in Preserving the social benevilence and welfare than that of an individual.***

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# पातञ्जलयोगसूत्र और मनोनुशासन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. विनोद कुमार पाण्डेय*

मनुष्य जीवन कर्ममय है, कर्म–राहित्य जड़ता है। जीवन का कोई भी क्षण ऐसा नहीं है, जिसमें मनुष्य कोई कर्म न करता हो यथा – श्वांस लेना, हिलना, खाँसना, छींकना, देखना, बोलना, चलना, खाना–पीना, सुनना इत्यादि। ये सब ऐसी क्रियाएँ है जो निरन्तर चलती रहती हैं। इनमें से कुछ क्रियाएं जाग्रत अवस्था में और कुछ सुषुप्तावस्था में भी चलती रहती हैं। यहाँ विचारणीय यह है कि मनुष्य के शरीर और इन्द्रियों में यह क्रियाशीलता आती कहाॅ से है? मानव शरीर का वह संचालन अंग कौन सा है जिससे सम्पूर्ण शरीरावयवों को गति मिलती है।

शरीरशास्त्रियों ने क्रियात्मक अथवा गत्यात्मक शक्ति' मन में स्वीकार किया है। इनके अनुसार मानव शरीर में 'मन' ही वह नियामक अंग है जो अन्य अंगों का नियमन और संचालन करता है। जड़ इन्द्रियों की क्रियाशीलता में मन ही कारण है। मन संकल्प रूप है और संकल्प कर्मबीज रूप है। यहाॅ यदि यह कहा जाय कि मानसिक संकल्प ही शरीर अथवा वाणी के द्वारा अभिव्यक्त होकर कर्म के रूप में परिणत होता है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वैदिक ऋषि भी इस मत का समर्थन करते हैं। यहाँ ऋषि कहते हैं कि मनमें उत्पन्न शुभ संकल्प और शुभ विचार उन्नति, विकास, प्रगति और दीर्घायुष्य का साधन बनता है,[1] तथा मन में, उत्पन्न अशुभ संकल्प अथवा अशुभ विचार अवनति , रोग, शोक, दैन्य और अल्पायुष्य का साधन बनता है । तात्पर्य यह कि मनुष्य की उन्नति – अवनति, विकास–ह्रास, रोग, शोक, दीर्घायुष्य – अल्पायुष्य आदि की प्राप्ति में उसके मन में उत्पन्न संकल्प ही कारण बनता है।

हमारे वैदिक ऋषियों की ऐसी मान्यता है कि संसार में सबसे पहले संकल्प शक्ति का आविर्भाव हुआ, जो सृष्टि का कारण बनी । मुण्डकोपनिषद् के अनुसार 'ज्ञानमय तप के द्वारा परब्रह्म परमात्मा सृष्टि की ओर उन्मुख होता है– **तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते**[2]। छान्दोग्योपनिषद् में इसे और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि– **'तदैक्षत बहु स्याम'**[3] अर्थात् उस परब्रह्म ने संकल्प किया कि मैं बहुत हो जाऊँ। अपने इसी बहुभवन संकल्प के द्वारा वह सृष्टि की ओर उन्मुख हुआ। मन में उत्पन्न होने वाली यह संकल्प शक्ति मन का सार भाग है, उसे मन का रेतस् अथवा वीर्य भी कहा जाता है। संस्तुत मन का रेतस् अथवा वीर्यरूप संकल्प शक्ति ही कर्मोत्पति का आधार है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का जैसा संकल्प होगा, कर्म भी वैसा ही होगा तथा कर्मफल , कर्मानुसार ही होगा।

---

*संस्कृत विभाग, डी. ए. वी कालेज, कानपुर

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारे आर्य ऋषियों ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भली – भांति समझा था, इस बात का प्रमाण हमें शिवसंकल्प सूक्त से मिल जाता है। इस सूक्त का शीर्षक ही है शिव संकल्प अर्थात् शुभ संकल्प। इसी सूक्त में ऋषि बार–बार अपने मन से शुभ संकल्प युक्त होने का आग्रह करता है क्योंकि वह जानता है कि शरीर में मन की ही प्रमुखता है। मन ही शरीर के साथ इन्द्रियों का संचालक है। इसके एक मन्त्र में ऋषि कहता है–'सुषारथिश्वानिव यन्मनुष्या–

न्नैनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।[5]

कठोपनिषद् में भी कुछ ऐसे ही भावों की अभिव्यक्ति मिलती है–

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्यराङ्पश्यति नान्तरात्मन्
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।[6]

महर्षि रमण ने मन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि मन अथवा चित आत्मा स्वरूप में रहने वाली एक अद्‌भुत शक्ति है, जिसमें सकल विचारों या संकल्पों का उदय होता है। आत्मा के समस्त विचारों को अथवा संकल्पों को अलग कर देने पर मन जैसी कोई वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। सुषुप्ति में मन नहीं है, केवल जाग्रत और स्वप्न में ही मन है। अतः जगत् भी स्वप्न और जाग्रत में ही दिखाई पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि मन जब विचारों से समन्वित होकर आत्मस्वरूप से बाहर निकलता है तब जगत प्रतीत होता है, परन्तु उस समय आत्मा दिखाई नही पड़ती। इसी तरह जब आत्मा भासित होता है तब जगत् दिखाई नहीं पड़ता। मन का सम्बन्ध जगत् से है और जगत् का मन से है। योगवाशिष्ठ में आत्मा की संकल्पशक्ति में मन कहा गया है। इसके अनुसार जब आत्मा में संकल्प उत्पन्न होता है तब उसे मन कहा जाता है । मन का काम संकल्पों के द्वारा विषयों की रचना करना है। और विषय संसारचक्र का सम्पादन करते हैं।[8] मन की संकल्पशक्ति से विषय उत्पन्न होते हैं। जिनके उपभोग की ओर इन्द्रियाँ मन की सहायता से प्रकट होती है । इनमें प्रीतिकर विषयभोग में राग और अप्रीतिकर विषय भोग से द्वेष उत्पन्न होता है । ये राग और द्वेष विषय भोग से उत्पन्न होने वाले भाव हैं जो मन में स्थिर हो जाते हैं। इन्हीं रागद्वेषात्मक भावों के कारण हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह की ओर मनुष्य उन्मुख होता हैं। ये ऐसे कर्म है जो मनुष्य की लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति को अवरुद्ध कर देते हैं और मनुष्य बार–बार इस दुःखमय संसार में जन्म लेने और मृत्यु का ग्रास बनने के लिए विवश हो जाता हैं।

---

1. ऋग्वेद – 1/98/8
2. मुण्डकोपनिषद्– 1/1/9
3. छान्दोग्य – 6/2/3
4. शुक्ल यजुर्वेद –34/6
5. कठोपनिषद्– 4/3/4
6. मै कौन हूँ? महर्षि रमण, पृ. सं. 6
7. भारतीय मनोविज्ञान संख्या नारायण शास्त्री पृ. –2
8. योगसूत्र 2/3



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योग, जैन और बौद्ध तीनों ही दार्शनिक निकायों में इस तथ्य को अस्वीकार किया जाता है कि मनुष्य के बन्धन के कारणों में मुख्य रूप है राग और द्वेष–ये दो ही भाव हैं शेष सभी इन्हीं से प्रसूत हैं। राग और द्वेष की उत्पतिस्थली है अविद्या। [9] अतः अविद्या सकल अनर्थ की जड़ है। योगसूत्रकार ने राग –द्वेष को क्लेश कहा है।[10] मनोनुशासनकार इसे कषाय के अन्तर्गत रखते हैं। [11] धम्मपद में इसको मन का मल कहा गया है।[12] रागादि अविद्योद्भूत मनोभाव हैं और अविद्या का आश्रयस्थल है मन। अतः यह कहा जा सकता है कि जीव के बन्धन और मुक्ति में मन की ही निर्णायक भूमिका है।

मन के द्वारा जीव के बन्धन और मुक्ति को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है । जिस प्रकार विकारयुक्त नेत्र से अथवा रंगीन दर्पण में वस्तु का यथार्थ स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता उसी प्रकार विकारग्रस्त मन के द्वारा वस्तुतत्व का यथार्थ अवलोकन नहीं हो सकता। अनादिअविद्या के कारण बन्धनमें पड़े हुए जीव की मुक्ति के लिए जगत् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है क्योंकिं तभी जीव को जगत् से अपनी भिन्नता का बोध होगा। चूँकि अविद्या के कारण आत्मा की स्वशक्ति कुंठित हो चुकी है इसलिए जगत् के अवलोकन में मन ही सहायक है। मन जगत् का जो चित्र और जैसा चित्र आत्मा के समक्ष उपस्थित करेगा आत्मा उसे ही वास्तविक स्वीकार करेगा। मन जब राग से दूषित है तब इसके द्वारा जगत् का यथार्थ उपस्थापन आत्मा के समक्ष सम्भव नही हैं। अतः मन के द्वारा जगत् के अवास्तविक स्वरूप को वास्तविक स्वरूप मानना आत्मा के लिए आवश्यक हो जाता है । वस्तुतः यही मन के द्वारा आत्मा के बन्धन की प्रक्रिया है। इसके विपरीत जब मन समाधिज ज्ञान से संयुक्त होता है तब अविद्या का विकार समाप्त हो जाने से स्वच्छ दर्पण के सदृश वह जगत् के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करता है और उसे ही आत्मा के समक्ष प्रस्तुत करता है। आत्मा के द्वारा जगत् के वास्तविक स्वरूप का दर्शन होने पर उससे अपनी भिन्नता का बोध भी हो जाता है। अतएव आत्मा जगत् से पृथक् होकर मुक्त हो जाता है। यहाँ ज्ञातव्य है कि आत्मा का जड़जगत् से पृथक् हो जाना उसके पृथक् बोध से ही संभव है और यह तभी संभव है जब आत्मा को जगत् के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार हो जाए। चूँकि जगत् के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराना मन का कार्य है। क्योंकि मन ही आत्मा की दृश्य शक्ति है और यह कहा जा सकता है कि यथार्थतः मन ही बन्धन और मुक्ति का हेतु हैं ।

योगसूत्रकार पतञ्जलि कहते हैं पुरुष (आत्मा) तो सर्वथा शुद्ध है, साक्षी है, वह तो बुद्धि की वृतियों का प्रतिसंवेदी होने के कारण उसी के कर्तृत्व और भोक्तृत्व को स्वयं का कर्तृत्व और भोक्तृत्व मानने लगता है , वस्तुतः यही पुरुष के बन्धन की प्रक्रिया है। ऐसी स्थिति अविद्या के कारण उत्पन्न होती है। अविद्यादि क्लेशों के कारण चित्त में विकार उत्पन्न होता है जिससे चित्त के द्वारा जगत् के अवास्तविक स्वरूप का ग्रहण होता है। चूँकि आत्मा अथवा पुरुष चित्त की वृत्तियों का प्रतिसंवेदी है अतः वह उन्ही

---

9. मनोनुशासन पृ.सं. –29
10. धम्मपद– 18/8, 9
11. योगसूत्र 2/4
12. योगसूत्र 3/55



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वों को ग्रहण करेगा जिसे चित्त कि द्वारा ग्रहण किया गया है। इसी कारण कैवल्य का स्वरूप बतालाते हुए सूत्रकार कहते हैं–' 'सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्[13] अर्थात् सत्त्व (बुद्धि) और पुरुष (आत्मा) का शुद्धि साम्य ही कैवल्य है।

सांख्य–योग शास्त्र प्रकृति की विकारस्वरूपिणी बुद्धि को भी त्रिगुणात्मक मानते हैं। इनके अनुसार सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों गुण मूल प्रकृति में साम्यावस्था में तथा उत्तर प्रकृति में विषमावस्था में रहते हैं। वस्तुतः गुणों की यह विषमावस्था ही प्रकृति में विकार उत्पन्न करती है। फलतः प्रकृति से महत्तत्त्व और उससे अहंकार, तन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि उत्पन्न होते हैं। इस तरह प्रकृति से जगत् का निर्माण होता है। चूँकि महत् तत्त्व प्रकृति का कार्य है उसलिए कारण अगुण कार्य में होना स्वभाविक है। यहाँ यह भी स्मर्तव्य है कि महत् तत्त्व अर्थात् बुद्धि में भी तीनों गुण विषमावस्था में ही रहतें हैं अर्थात् एक दूसरे का अभिभव करने, आश्रय बनने, आविर्भाव करने एवं मिलकर कार्य करने की वृत्ति या व्यवहार वाले होते हैं । तीनों गुणों का स्वभाव प्रीति या सुख, अप्रीति या दुःख और विषाद या मोह सा होता है। अतः बुद्धि भी सुख , दुःख और मोह उत्पन्न करने वाली सिद्ध होती है। इस त्रिगुणात्मिका बुद्धि में जब रजस् को अभिभूत कर सत्त्व मात्र का उद्रेक होता है तब पुरुष को प्रकृति से अपनी भिन्नता का बोध होता है। यह स्थिति सम्प्रज्ञात समाधि का उत्कर्ष है।[14] उस अवस्था में क्लेशों के दग्धबीज हो जाने से बुद्धि सर्वथा विकार रहित होकर स्वच्छ हो जाती है। वस्तुतः यही सत्त्व अर्थात् बुद्धि की शुद्धि है। पुरुष यद्यपि सर्वथा शुद्ध है तथापि प्रतिसंवेशी होने के कारण बुद्धिगत अशुद्धियों का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता था परन्तु अब तो बुद्धि भी शुद्ध हो चुकी है। इसलिए अब तो शुद्ध बुद्धि का प्रतिबिम्ब ही उसमें पड़ेगा। वस्तुतः यही तदपत्यात्मकता पुरुष और बुद्धिका शुद्धि साम्य है जिसे सूत्रकार ने कैवल्यावस्था कहा है।

यहाँ सूत्रकार यह भी कहते हैं कि द्रष्टा और दृश्य अर्थात् पुरुष और प्रकृति का संयोग ही हेय (बन्धन) का हेतु है। पुरुष और प्रकृति के इस संयोग का हेतु अविद्या है।[15] अविद्या, अस्मितादि क्लेशों को उत्पन्न करती है अतः प्रथमतः तो अविद्या ही बन्धन कारण सिद्ध होती है। अविद्या का आश्रय–स्थल है मन और मन वृत्तिमुक्त है। योग के द्वारा मन की वृत्तियों का निरोधकर पुरुष अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाता है । वस्तुतः यही योग का उद्देश्य है। सूत्रकार ने कहा भी है।–

'यदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्[16]

अर्थात् द्रष्टा की स्वरूप में अवस्थिति ही योग का प्रयोजन है। इसी लिए इसे योग कहा गया है।

मनोनुशासनकार भी इस मत से सहमत हैं कि आत्मा अथवा जीव के बन्धन और मुक्ति में मन ही कारण है क्योंकि एक ओर मन जहाँ कषाय और क्लेश का आश्रयस्थल है वहीं दूसरी ओर संवर और

---

13. वही– 2/16
14. वही– 2/24
15. वही– 1/3
16. मनोनुशासन पृ. सं. 21



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्जरा का अनुसेवन मन के द्वारा ही सम्भव है। अतः मनोनुशासनकार के शब्दों में मन का अनुशासन शिक्षण संयमन की प्रक्रिया ही बन्धन से मुक्ति की प्रयाण की प्रक्रिया है। मनोनुशासन के व्याख्याकार आचार्यमहाप्रज्ञ ने जैन दार्शनिक आचार्य हेमचन्द्र के शब्दों को अठ्ठत्तर बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया को संक्षेप में समझया है।

**आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोक्षकारणम्।**
**इतीयमार्हतो दृष्टिः सर्वमुञ्चत प्रपञ्चनम्।।**[17]

आस्रव बन्धन का और संवर मोक्ष का हेतु है। वस्तुतः जैन दर्शन का इतना ही सभी संक्षेप है, शेष सभी के विस्तार हैं जैन दार्शनिक ने मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को बन्ध का हेतु कहा है[18]। इन पाँच प्रकार के हेतुओं का कर्म के प्रवाह में निमित्त होने के कारण समूह को आस्रव कहा जाता है। प्रथम क्षण में कर्म स्कन्धों का आगमन होता है,जिसे आस्रव कहा गया तथा दूसरे क्षण में इन कर्म स्कन्धों की आत्मप्रदेशों में स्थिति हो जाती है जिसे बन्ध कहा गया है। इस तरह आस्रव बन्ध का हेतु सिद्ध हो जाता है।

आस्रव आत्मा की चैतन्य शक्ति को आवृत कर देता है जिसके कारण जीव अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता। अतः अवास्तविक स्वरूप को वास्तविक मानकर तदनुसार आचरण करता हुआ दुःखी होता है। महाप्रज्ञ जी आगे कहते हैं कि जीवन पथ की दीर्घयात्रा के कारण काल विपाक के कारण कोई क्षण ऐसा आता है तब आत्मा में मुक्ति की भावना जाग उठती है। यहाँ यह विचारणीय हो जाता है कि आत्मा में जो मुक्ति की भावना जाग्रत हुई है क्या वह आगन्तुक है अथवा पूर्व से ही मन में स्थायी भावों के रूप मे स्थित थी ।

इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक योगसूत्रकार ने वृत्तियों के विभाजन में देने का प्रयास किया है–**वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाप्यक्लिष्टाः**[19] अर्थात् प्रमाणादि वृत्तियाँ क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो प्रकार की होती है। अविद्यादि क्लेशों से उत्पन्न होने वाली तथा कर्मसंस्कार समूह को उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ क्लिष्ट और और विवेकख्यातिविषयक गुणों के कार्य की विरोधिनी वृत्तियॉ अपने स्वभाव से च्युत न होते हुए चित्त में स्थित रहती है। इनमें एक के उदयावस्था में होने पर दूसरी सुषुप्तावस्था में रहती है, परन्तु अपने स्वभाव में स्थित रहते हुए । यदि एसा नहीं माना जायेगा तब तो कर्म की अक्लिष्ट वृत्तियों का उदय ही नहीं हो सकता क्योंकि अनादिकाल से जीव क्लिष्टवृत्ति प्रवाह वाला ही है। तभी तो वह बन्धन में पड़ा है। इसी तरह यदि क्लिष्ट वृत्तियों के प्रवाह में अक्लिष्ट वृत्तियों का उदय और उसकी अलग सत्ता स्वीकार नहीं की गयी तब तो अक्लिष्ट वृत्तियों के अभाव में अभ्यास, वैराग्य और विवेकख्याति सब असम्भव हो जायेगा तथा किसी को कभी भी मोक्ष की सम्भावना भी नहीं रहेगी। इसलिए यही मानना तर्कसंगत और सर्वथा समुचित होगा कि क्लिष्ट वृत्तियों के प्रवाह में भी अक्लिष्ट

---

17. तत्त्वार्थसूत्र 8/9
18. योगसूत्र – 2/29
19. योगसूत्र 1/29



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वृत्तियों की स्थिति होती है परन्तु अक्लिष्ट वृत्तियों के स्वरूप में क्लिष्टरूपता का सम्पर्क नहीं होता।

यद्यपि अनादि अविद्या के कारण आस्रव के द्वारा जीव का बन्धन सम्पादित हो रहा है, परन्तु मुक्ति का भाव आगन्तुक नही है, वह बन्ध के प्रवाह में भी अपने स्वरूप में स्थित है। ऐसा मानने पर ही संवर का भाव उदित होगा और तब संवरसिद्धिपूर्वक जीव मुक्ति प्राप्त करेगाा।

यह सत्य है कि घना काला मेघ सूर्य के प्रकाश को कुछ क्षण तक आच्छादित कर सकता है, परन्तु न तो वह उसे दीर्घकाल तक आच्छादित किये रह सकता है और न ही उसके स्वच्छ प्रकाश को अन्धकार में परिवर्तित कर सकता है। सहज शब्दों में इसे इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि पाप और पुण्य, धर्म–अधर्म, नैतिक, अनैतिक भाव एक साथ अपने स्वभाव से च्युत न होते हुए प्रत्येक प्राणी के मन में स्थित रहते हैं। चूंकि दोनों परस्पर विरोधी वृत्तियॉ हैं अतः एक साथ दोनों का उदय सम्भव नहीं है। अर्थात् पाप वृत्ति के उदयकाल में पुण्य वृति सुषुप्तावस्था में रहती है तथा पुण्यवृत्ति की उदयवस्था में पापवृत्ति सुषुप्तावस्था में रहती हैं । परन्तु ऐसा कदापि नहीं होता की किसी भी समय पाप, पुण्य, में और पुण्य, पाप में परिवर्तित हो जाए। वस्तुतः इसी कारण बन्धन है और मुक्ति का भी हेतु यही है। जीवन पथ की दीर्घ यात्रा में कोई भी वैसा बाह्य आलम्बन प्राप्तकर मुक्ति का भाव जो सुषुप्तावस्था में था जाग्रत हो जायेगा, जिससे जीव की मुक्ति होगी। समत्व जीव का स्वरूप है और आत्मसमता भाव की प्राप्ति ही जीव का साध्य है। साध्य की प्राप्ति बिना साधन के सम्भव नहीं है। अतः योगसूत्रकार और मनोनुशासनकार दोनों नें जीव के साध्य की प्राप्ति के लिए समान साधनों का निर्धारण किया है । ये साधन हैं– यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें प्रथम पाँच योग के अथवा मन के अनुशासन के बाह्य साधन हैं तथा शेष तीन अन्तरङ्ग साधन हैं। चूँकि मुक्ति बिना ज्ञान के सम्भव नही है और ज्ञान बौद्धिक नहीं समाधिजज्ञान अथवा अतीन्द्रिय होना आवश्यक है। बौद्धिक ज्ञान, मन और इन्द्रिय की शक्ति सीमित है और चैतन्य की शक्ति असीम है। अतः ससीम के द्वारा असीम की प्राप्ति सम्भव नहीं है उसके लिए तो समाधिजज्ञान की आवश्यकता होगी जिसकी उपलब्धि योग अथवा मनोनुशासन का प्रतिफल हैं। वस्तुतः इसी कारण समाधि को मुक्ति का सर्वाधिक प्रमुख और अन्तिम साधन माना गया है। साधक जब समाधि में स्थित होकर ध्यान के द्वारा चेतना के सूक्ष्मस्तर तक चला जाता है, तब उसे देह से आत्मा की पृथक्ता का बोध होता है, जिसके परिणामस्वरूप जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

चूँकि आत्मा का देह से अलग हो जाना ही उसकी कर्म शून्यता है और आत्मा का निष्कामी हो जाना ही परम मुक्ति अथवा विदेह मुक्ति है।

कठोपनिषद् में एक मंत्र ऐसा मिलता है जिसमें कहा है कि 'मनुष्य की इन्द्रियों का स्वभाव बहिर्मुख प्रवृत्तिवान है, इसलिए वह बाहर की ओर ही देखता है अर्थात् वह अपनी इन्द्रियों के द्वारा प्रथमतः बाह्य विषयों को ही ग्रहण करता है। चूँकि वे विषय उसे अतिसुखकर लगते हैं इसलिएं वह उनमें ही रम जाता है। यद्यपि इन बाह्य विषयों से मनुष्य को चाहे जितना भी रस प्राप्त हो परन्तु वह इनसे अन्तिम



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूप से संतुष्ट नही होता । वस्तुतः यही असन्तुष्टि मनुष्य को अन्तर्यात्रा की ओर अभियुक्त करती है। अब यह स्थिर भी सबके साथ नहीं होती, कोई ऐसा धीर और आचार सम्पन्न व्यक्ति होता है जो माक्ष की इच्छा करता है, जो आत्मतत्त्व अर्थात् अपने आन्तरिक एवं पारमार्थिक स्वरूप को जानना चहता है इसके लिए वह साधना के पहले बर्हिमुख इन्द्रियद्वारों को अवरुद्ध करता है तथा मन को अनन्यता की ओर अभिमुख करता है। ध्यान की पराकाष्ठा की अवस्था में जीव की अन्तर्यात्रा समाप्त होती है और वह आत्मतत्त्व का साक्षत्कार कर लेता है। इस तरह जब अन्तर्जगत् की यात्रा समाप्त होती है तब जीवन में अपने अन्तरात्मा का ईक्षण अथवा दर्शन होता है। [20]

पाश्चात्त्य दार्शनिक एडवर्ड नमी ने भी कठोपनिषद् के इस मंत्र का प्रतिघोष सुना और उसे अपने शब्दों में अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि– We look out before, we look in , we look in before, we look up.[21]

**उपसंहारः–** उपर्युक्त विवेचना के पश्चात् निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि योग–सूत्र और मनोनुशासन, दोनों मोक्षवादी दर्शन हैं। दोनों में जीव के बन्धन और मुक्ति में मन की प्रमुखता को स्वीकार किया गया है तथा मन अथवा चित्त की वृत्तियों का संयमन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। दोनों ही ग्रन्थों में मोक्ष प्राप्ति के साधनों में भी पर्याप्त समानता है। इन दोनों ग्रन्थों में जो मूलभूत अन्तर है वह जीव के स्वरूप और मोक्ष के बाद की स्थिति को लेकर है ।

******

---

20. कठोपनिषद् 2/1/1
21. धर्मदर्शन, पृ. 189



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# अश्रुवीणा में उपचारवक्रता

प्रो. दीनानाथ शर्मा*

अश्रुवीणा आचार्य महाप्रज्ञ जी का एक अप्रतिम गीतिकाव्य है। इसमें अनेकविध साहित्यिक सामग्री भरी पड़ी है। अलंकार, रस, ध्वनि, संवाद, गुण, आदि तत्त्व इसमें कूट–कूट कर भरे है। डॉ. हरिशंकर पाण्डेय ने इस काव्य की व्याख्या करते समय इन सभी तत्त्वों की विशद चर्चा यथास्थान की है। वैसे तो इस काव्य का मुख्य रस भक्ति है लेकिन कहीं–कहीं करुण आदि अन्य रसों का भी परिपाक हुआ दीखता है। इस काव्य में लक्षणा व्यंजना आदि शब्दशक्तियाँ भी परिलक्षित होती है। प्रस्तुत लेख में लक्षणा निरूपण पर विचार किया गया है।

अश्रुवीणा में उपचारवक्रता पर विचार करने से पूर्व लक्षणा के स्वरूप पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। काव्य शास्त्र के लिए प्रकाश स्तम्भ रूप काव्यप्रकाश के प्रणेता आचार्य मम्मट ने लक्षणा की व्यापक परिभाषा दी है। वैसे तो वेदार्थ निर्वचन के प्रसंग में सर्वप्रथम यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड में बहुभक्तिवादीनि ब्राह्मणवचनानि कहकर भक्ति या लक्षणा की ओर स्पष्ट संकेत किया है। आगे चलकर मीमांसा सूत्र और भाष्य में अनेकशः लक्षणाविषयक संकेत प्राप्त होने लगे। मम्मट ने लक्षणा की जो परिभाषा दी है, वह इस प्रकार है–

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया।।

जब किसी वाक्य का प्रयोग किया जाता है तो सर्व प्रथम मुख्यार्थ की उपस्थिति होती है फिर जब उनके परस्पर अन्वय पर विचार किया जाता है तब वाक्यगत शब्दों में परस्पर मिलने की शक्ति है या नहीं यथा गङ्गयां घोषः में गङ्गा और घोष में परस्पर मिलने की शक्ति नहीं है क्योंकि गङ्गा अर्थात् गंगा की धारा और उसमें फिर घर–ये दोनों एक साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते क्योंकि गंगा की धारा घर का आधार नहीं बन सकती। इसलिए यहाँ अन्वय की अनुपस्थिति होती है। बहुतेरे उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें अन्वय की उपपत्ति तो हो जाती है लेकिन फिर भी लक्षणा वहाँ प्रवृत्त होती है जैसे काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्। इसमें कौओं से दही को बचाना सम्भव है साथ ही कौओं जैसे अन्य जीव या बालक आदि से भी दही को बचाना चाहिए यह अर्थ लक्षणा से प्राप्त होता है। यहॉ अन्वय की उपपत्ति होने के बावजूद

*आचार्य, प्राकृत विभाग, जैन भारती वि.वि.,लाडनूं (राजस्थान)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तात्पर्य की उपपत्ति नहीं होती इसलिए यही अर्थ समीचीन प्रतीत होता है, लक्षणा की पहली शर्त हैमुख्यार्थबाध की।

दूसरी शर्त है तद्योगे अर्थात् मुख्यार्थ से भिन्न किसी ऐसे अर्थ का किया जाना जो मुख्यार्थ से सम्बद्ध हो और उसको लेने से मुख्यार्थ सम्बन्धी बाधा दूर हो सके। जैसे–गंगायां घोषः से गंगा शब्द अपने मुख्यार्थ गंगा प्रवाह को छोड़कर गंगा तट को लेता है जिससे उत्पन्न हुई बाधा दूर हो जाती है क्योंकि गंगा तट पर घर होना सम्भव है। लक्षणा की तीसरी शर्त रूढ़ि अथवा प्रयोजन है। कुशल शब्द का प्रयोग कार्य करने में जो चतुर हो, उसके लिए होता है लेकिन यह अर्थ कुशल शब्द का मुख्यार्थ नहीं है। कुशल उसे कहते हैं जो कुश नाम की घास लाये क्योंकि कुश घास लाना आसान नहीं होता। उसे उखाड़ते समय हाथ के कटने का या चिर जाने का भय होता है। इसलिए उसे उखाड़ते समय बहुत सावधानी रखनी पड़ती है, जो एक चतुर व्यक्ति ही कर सकता है। इसी अर्थ को व्यापक बनाकर किसी भी काम में चतुर व्यक्ति को कुशल कहा जाने लगा। कुशल शब्द चतुर अर्थ में रूढ़ हो गया। इस प्रकार इसमें रूढि से लक्ष्यार्थ का ज्ञान किया गया। गंगायां घोषः वाले उदाहरण में गंगा की धारा का लक्ष्यार्थ गंगातट एक विशेष प्रयोजन से लिया गया। वह प्रयोजन है गंगा की शीतलता और पवित्रता। उसकी धारा के अतिरिक्त उसके किनारे पर भी व्याप्त है तो गंगा की शीतलता और पवित्रता की व्यापकता जो किनारे तक है, बताना प्रयोजन है।

इस प्रकार लक्षणा के ये तीन घटक हैं। ध्यान रहे कि लक्षणा एक शब्द की शक्ति है जो लक्ष्यार्थ प्राप्त कराने में सहायक होती है। अब हम लक्षणा के इन तीन घटकों की सहायता से अश्रुवीणा में घटित लक्षणा का अवलोकन करेंगे।

इसमें सर्वप्रथम तो पहला लोक ही लक्षणामय है। जिसमें श्रद्धा को सम्बोधित कर उसके स्वभाव का वर्णन किया जा रहा है। दुधमुहें बच्चे से प्रेम करना, तर्क से खिन्न विद्वानों से प्रेम करना और तर्क से विमुख रहना किसी सचेतन और विवेकी जीव का कार्य हो सकता है। श्रद्धा ऐसी कोई जीव नहीं है वह तो मानव मात्र के मन की एक प्रक्रिया है जो सर्वथा अमूर्त है इसलिए **श्रद्धे। मुग्धान् शिशून् प्रणयसि** आदि वाक्य में अन्वयानुपपत्ति के कारण मुख्यार्थ बधित है। तब श्रद्धा की निर्दोषता और सरलता बताने के उद्देश्य से दूसरा अर्थ किया जाता है कि श्रद्धा मुग्ध, भद्र सरलस्वभावी बच्चों को होती है साथ ही उन विद्वानों को भी होती है जो तर्क करके खिन्न हो गये है। पर उन्हें नहीं होती जो तर्क करते हैं। यहां प्रयोजनवती लक्षण लक्षणा है।

दूसरे श्लोक में भी श्रद्धा को सम्बोधित कर उसमें मानव सहज क्रियाओं का आरोप किया गया है जो लक्षणाजन्य है।

तीसरा श्लोक इस प्रकार है:–

**तत्रानन्दः स्फुरति सुमहान् यत्र वाणी श्रिताऽसि**
**दुःखं तत्रोच्छलति विपुलं यत्र मौनावलम्बा।**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किं वाऽऽनन्दः किमसुखमिदं भाषसे सप्रयोगं
त्वामक्षिप्य स्वमतिजटिलास्तार्किका अत्र मूढा।।3।।

इस श्लोक में श्रद्धा को सम्बोधित कर कहा गया है कि हे श्रद्धे तुम जब बोलती हो तो आनन्द स्फुरित होता है जब चुप रहती हो तो दुःख उछलता है। तुम सुख या दुःख को प्रयोग द्वारा परिभाषित करती है। तुम्हें छोड़कर अपनी मति में उलझे हुए तार्किक लोग इस विषय में मूढ़ हो जाते हैं।

प्रथम वाक्य में श्रद्धा का बोलना और आनन्द का स्फुरित होना सम्भव नहीं है क्योंकि यह काम तो सचेतन जीव का है और श्रद्धा और आनन्द एक अमूर्त मानसिक स्थितियाँ है। तब यह वाक्य अपनी सिद्धि के लिए अपने नजदीक के दूसरे अर्थ को आरोपित कर लेता है और अर्थ होता है श्रद्धावान् व्यक्ति का कार्य सफल होता है और उस सफलता में श्रद्धा स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस वाक्य में प्रयोजन है श्रद्धा की अतिशायित उत्कृष्टता जो व्यंग्य है।

दूसरे वाक्य में श्रद्धा में अभाव में दुःख ही दुःख होता है। यह अर्थ लक्षणा जन्य है जिसमें श्रद्धा की अपरिहार्यता घोषित करना प्रयोजन व्यंग्य है। तीसरे और चौथे वाक्य में श्रद्धावान् व्यक्ति सुखी और श्रद्धाहीन व्यक्ति दुःखी और मूढ़ होता है–यह अर्थ लक्षणा द्वारा सूचित है। प्रयोजन वही श्रद्धा की अपरिहार्यता।

चित्रं चित्रं तव सुमृदवः प्राणकोशास्तथापि
कष्टोन्मेषे दृतममतौ मानवे चानुरागः।
श्रद्धाभाजौ जगतिगणिताः सन्दिहाना असंख्याः,
श्रद्धापात्रं भवति विरलस्तेन कश्चिन्तपस्वी।।5।।

इस श्लोक में 'तत्र दीपस्त्वमेव' वाक्य का मुख्यार्थ है वहां तुम ही दीपक थे। अब महावीरस्वामी या किसी भी ऐसे व्यक्ति का दीपक होना सम्भव नहीं क्योंकि व्यक्ति एक चेतन जीव है जो अपना काम स्वयं कर लेता है जब कि दीपक एक निर्जीव पदार्थ है जो स्वयं कुछ नहीं कर सकता। इसलिए मुख्यार्थ बाधित हुआ। अब मुख्यार्थ अपनी सिद्धि के लिए दूसरे अर्थ को आरोपित कर लेता है वह अर्थ है हे भगवन् तुम मुझे दीपक की तरह ज्ञान का प्रकाश देने वाले थे। यही अर्थ कवि को विवक्षित है। इसमें गौणी लक्षणा है क्योंकि गुणों के आधार पर महावीर स्वामी पर दीपक का आरोप किया गया है। महावीर स्वामी लोगों को ज्ञान देकर अज्ञान दूर करते हैं तो दीपक अपना प्रकाश फैलाकर अन्धकार दूर करता है। यहाँ पर गौणी लक्षणा सिद्ध हो रही है। इसमें प्रयोजन है वह ज्ञान जो महावीर स्वामी ने धारिणी को दिया था वह दीप प्रकाश की तरह शीघ्र ही अज्ञान के अन्धकार को हटाने वाला था। यह व्यंजना से प्राप्त है।

चित्रा शक्तिः सकलविदिता हन्त युष्मासु भाति,
रोद्धुं यन्नाक्षमत पृतना नापि कुन्ताग्रमुग्रम्।
खातं गर्ता गहन गहनं पर्वताश्चापगापि,
मग्ना सद्यो वहति विरलं तेऽपि युष्मत्प्रवाहे।।24।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे आसुओं, आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे अन्दर अद्‌भुत शक्ति सुशोभित है जो सब जानते हैं। जिन्हें न तो सेना, न उग्र नौक वाले भाले न गहरी खाई, न गुफा, पर्वत व नदियाँ रोकने में समर्थ हैं उन्हें भी तुम्हारे विरल प्रवाह हे श्रद्धे। तुम्हारे प्राणकोष अत्यन्त कोमल हैं फिर विपत्ति के बवण्डर में कठोर मति वाले मनुष्य में अनुराग रखती हो, यह आश्चर्य की बात है। संसार में श्रद्धावान् बहुत कम लोग हैं जबकि सन्देहशील अधिक इसलिए कोई विरल तपस्वी ही श्रद्धा का पात्र होता है।

इस श्लोक की प्रथम दो पंक्ति देखें तो श्रद्धा से उसके निवास की बात कही जा रही है। यहाँ भी पहले की तरह मुख्यार्थ बाधित हो रहा है क्योंकि श्रद्धा का किसी चेतनशील विवेकी पुरुष की तरह निवास करना सम्भव नहीं है। इसलिए यह वाक्य अपनी सिद्धि के लिए अपने निकट के दूसरे अर्थ को आरोपित कर लेता है। वह अर्थ है श्रद्धा दृढमति वाले व्यक्ति में ही रहती है। इसका प्रयोजन यह बताना है कि श्रद्धा एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो अत्यन्त कोमल है और इसका बदला जाना नितान्त सम्भव है। ऐसी श्रद्धा का किसी दृढ़ बुद्धि वाले व्यक्ति में रहना ही सम्भव है। यह बात व्यंग्य है।

**आशास्थानं त्वमसि भगवन् स्त्रीजनानामपूर्व**
**त्वत्तो बुद्ध्वा स्वपदमुचितं स्त्रीजगद् भावि धन्यम्।**
**जिह्वां कृष्ट्वाऽसहनरथिकः काममत्तोऽम्बया में**
**दृष्टिं नीतोस्तमितनयनस्तत्र दीपस्त्वमेव।।4।।**

**अर्थ**–भगवन् तुम स्त्रियों के लिए अपूर्व आशास्थान हो। स्त्री जगत् अपने उचित स्थान को जानकर धन्य हो गया। मेरी माता ने अपनी जिह्वा खींचकर, कामोन्मत्त, अस्तमितनयन और क्रूर रथिक की आँखे खोल दी थी। उस समय आप ही दीप थे।

इस श्लोक में मग्नाः सद्योवहति युष्मत्प्रवाहे। इस पंक्ति का मुख्यार्थ है वे भी तुम्हारे विरल प्रवाह में बह जाते हैं। यह वाक्यार्थ उत्पन्न नहीं होता क्योंकि एक तो अश्रु–प्रवाह हो वह भी विरल और उसमें अनेक लोग बह जय यह सम्भव नहीं है इसलिए यह वाक्य अपनी सिद्धि के लिए दूसरे अर्थ को आरोपित कर लेता है और तब उसका अर्थ होता है ऑसू देखकर लोगों को अधिक संवेदना होती है। यह हुआ लक्ष्यार्थ। इस प्रयोजन यही अश्रु के कारण लोग इतने संवेदनशील हो जाते हैं कि वे अपना कार्य छोड़कर उस दुःखी व्यक्ति को सहायता पहुँचा जाते यही आशय है यान्नाक्षमत रोद्धु पृतना आदि वाक्य का। ये सारे अर्थ व्यंग्य हैं।

**आरुक्तापि क्षणमथ न सा वाष्पसद्धं मुमोच,**
**प्लुष्टो लोकपिबति पयसा फूत्कृतैशपि तक्रम्।**
**सम्प्रेक्षायामघृतितरलाचक्षुषां कातरणा–**
**मासन् भावाः किमिव दधतो मज्जनोन्मज्जनानि।।52।।**

**अर्थः**–भगवान् के रुकने पर वह आश्वस्त होती हुई भी क्षण भर ऑसुओं को नहीं छोडी क्योंकि दूध का जला छाछ को भी फूँक–फूँक कर पीता है। उस समय चन्दना की ऑखो में अस्थिर और चंचल



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव डूब उतरा रहे थे। इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्ति में चन्दना की ऑखो में चंचल भावों का डूबना उतराना कहा गया है। डूबना और उतराना क्रिया पानी में सम्भव है ऑखों में नहीं। इसलिए यह मुख्यार्थ बाधित हुआ और अपनी सिद्धि के लिए अन्य अर्थ का अरोप कर लिया है वह अर्थ है चन्दना की ऑखे इतनी चंचल थीं कि उनसे अनेक भाव कभी प्रतीत होते थे तो कभी प्रतीत नहीं होते थे। यह अर्थ लक्षणाजन्य है। इसका प्रयोजन है जब उसकी शिक्षा लेने वापस लौट रहे थे तब उसके नयन चंचल थे कि यह कह पाना कठिन था कि कौन सा भाव प्रतीत हुआ और कौन सा भाव तिरोहित हुआ। अर्थात् भ.महावीर आ रहे हैं इससे प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हुआ। वे कहीं चले न जॉय इसलिए विषाद का भाव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उसकी दृष्टि में ये सब भाव एक–एक करके प्रतीत और तिरोहित हो रहे थे।

इसके अतिरिक्त अश्रुवीणा में अनेक श्लोक ऐसे है जिनमें लक्षणा उपचार वक्रता स्पष्ट प्रतीत होती है। जैसे श्लोक संख्या 64 में कहा गया है–

**बोद्धुं नालं स्वमतिरचिते जीवनस्याध्वनीह,**
**गर्ताः शैलाः कति च कति वा मोटनानि भ्रमा वा।**
**अन्यं कञ्चित व्रजति तनुमानेकमुल्लङ्घ्य पूर्व–**
**मावर्तं तद् भवति सहसा विस्मृतिः प्राक्तनस्य।।64।।**

इस श्लोक में जीवन का मार्ग, उसमें फिर गड्ढे, पर्वत, मोड़ और आवर्त का होना सर्वथा बाधित है। क्योंकि कि ये सब तो पार्थिव मार्ग पर देखे जाते हैं जीवन में नहीं। हॉ, इनके समान दुःखकारी परिस्थितियाँ अवश्य आ जाती हैं जो जीवन की सुचारुता में बाधक होती है। यही अर्थ कवि को अभिप्रेत है जो लक्षणाजन्य है। इसका प्रयोजन है जीवन के दुःखों की भयंकरता प्रतिपादित करना।

इसी प्रकार श्लोक संख्या 65,68,73,74 में लक्षणा के लक्षण देखे जा सकते हैं।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्रीमद्भागवतमहापुराण में मानव–मूल्य

**डा. बाबूलाल मीना***

संस्कृत वाङ्मय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारत देश का आत्मस्वरूप है और संस्कृत वाङ्मय में भी संस्कृत का पौराणिक साहित्य भारतीय मनीषा की बहुआयामी सर्जकता की प्रौढ़ परिणति है। एक हजार वर्षों से अधिक की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों का वह ऐसा जीता जागता और समृद्ध शिलालेख है कि उसे छोड़कर अपने अतीत का ही नहीं, वर्तमान का भी समीचीन ज्ञान असम्भव है। यद्यपि अष्टादश पुराण किसी न किसी रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु प्रेम, भक्ति और ज्ञान की त्रिवेणी के प्रवाहित होने के साथ–साथ मानवीय जीवन मूल्यों की दृष्टि से भी पुराणों में श्रीमद्भागवतपुराण की जितनी उपादेयता है वह अन्य पुराणों में दुर्लभ है, अतएव विषयवस्तु और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से भागवत के वैशिष्ट्य को आधार बनाकर यह उक्ति प्रसिद्ध हो गयी– **"विद्यावतां भागवते परीक्षा"**

अर्थात् भागवत में ही विद्वानों की परीक्षा होती है।

वस्तुतः भागवतपुराण ने ही ऐतिहासिक परम्पराओं, धार्मिक स्रोतों और दार्शनिक धाराओं का सामञ्जस्य प्रस्तुत कर अत्यन्त महनीय कार्य किया है। यह वैष्णव मत का तो प्रमुख उत्स है, साथ ही हिन्दी साहित्य की सगुण भक्ति धारा इसी से रस ग्रहण कर भारतीय संस्कृति एवं समाज को सींचती एवं पल्लवित करती रही है, क्योंकि भागवतकार ने कृष्ण भक्ति के प्रेम सिद्धान्त का उज्ज्वल रूप में वर्णन किया है और सामाजिकों को आध्यात्मिक और आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा भी दी है।

भागवतपुराण के सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भावतपुराण में मानवमूल्यों और नैतिक जीवन–मूल्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। भागवतकाल में मानव का सर्वांगीण महत्त्व गुण और कर्म पर आश्रित था। अतः भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण नन्दबाबा से कहते हैं कि पिताजी प्राणी अपने कर्म के अनुसार ही पैदा होता है और कर्म से ही मर जाता है–

**कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।**
**सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते।।**[1]

भागवतकालीन जन ब्रह्म, जीव और जगत् से भली भाँति परिचित थे। उनकी धर्म और अध्यात्म में गहन रुचि थी, अतः भागवतपुराण में स्थान–स्थान पर मानव मूल्यों के आधारभूत मानव धर्म की चर्चा की गई है–

---

***सह आचार्य, संस्कृत विभाग, एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यःपृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधाञ्छुभान्।
नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा।।[2]

भागवतपुराण में तत्कालीन समाज में प्रचलित मानव मूल्यों और सांस्कृतिक नैतिक जीवन–मूल्यों के अन्तर्गत त्याग, उदारता, परोपकार, दया, शान्ति, गम्भीरता, सहिष्णुता, सत्यपरायणता, सेवा, क्षमा, आदि के स्थान–स्थान पर दर्शन होते हैं। ये वही मानवीय गुण हैं जो मानवमूल्य कहे जाते हैं और मानव का व्यक्तिगत रूप से सर्वांगीण विकास करते हैं।

श्रीमद्भागवत में राजा रन्तिदेव की उदारता में त्याग की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर हुई है। मानव को प्राणिमात्र के प्रति उदार होना चाहिए, क्योंकि उदारता ही परम धर्म है–

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।[3]

श्रीकृष्ण सर्वदा सभी के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण जब अक्रूर से पाण्डवों की कुशल–क्षेम पूछते हैं, तब उनकी उदारता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।[4] भागवतकालीन लोग त्यागभाव से परिपूर्ण थे। मनु जी त्याग का महत्त्व बताते हुए भागवत में कहते हैं–

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[5]

अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व और इस विश्व में रहने वाले समस्त चर–अचर प्राणी सब उन परमात्मा से ही ओत–प्रोत है। इसीलिये संसार के किसी भी पदार्थ में मोह न करके उसका त्याग करते हुये ही जीवन निर्वाह मात्र के लिए उपभोग करना चाहिए। तृष्णा का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। भला, ये संसार की सम्पत्तियाँ किसकी हैं? भागवत में सेवा भावना का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। तत्कालीन नारी अपने पातिव्रत्य धर्म आदर्श और सदाचार के कारण अत्यन्त पूजनीय थी। माता देवहूति की पावनता और सेवा भावना से ही भगवान कपिल का जन्म हुआ–

भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम्।[6]

मनु पुत्री देवहूति एकाग्र भाव से पति की सेवा करती थी। मैत्रेयजी विदुरजी से देवहूति की पति–सेवा का वर्णन करते हैं।[7] इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ स्वयं प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करती थीं।[8]

भागवत में राजा के प्रजा के प्रति दया का आचरण करने के कारण राजा–प्रजा का संबंध पिता–पुत्र की भाँति था, महाराज युधिष्ठिर की प्रजावत्सलता के कारण राज्य में किसी भी प्राणी को त्रिविध क्लेश नहीं होते थे।[9] प्रजा के प्रति सर्वदा दया भाव के कारण जब भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के

---

1. भाग. पु. 10/24/13
2. भाग. पु. 3/33/18
3. भाग. पु. 9/21/12
4. वहीं 10/40/32–35
5. वहीं 8/1/10
6. वहीं 3/23/10
7. वहीं 3/23/1–3
8. वहीं 10/59/45
9. वहीं 1/10/4–6



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राज्यारोहण के पश्चात् द्वारका जाते हैं, तो प्रजा उनका अत्यधिक स्वागत करती है–

**भवाय नस्त्वं विश्वभावन....रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत।**[10]

दधीचि ऋषि देवताओं से दया भाव का वर्णन करते हुए कहते हैं–

**योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान्।**
**ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि।।**[11]

अर्थात् देवशिरोमणियों, जो मनुष्य इस विनाशी शरीर से दुःखी प्राणियों पर दया करके मुख्यतः धर्म और गौणतः यश का सम्पादन नहीं करता, वह जड़ पेड़–पौधों से भी गया बीता है।

भगवान् श्रीकृष्ण की दयालुता का वर्णन करते हुये उद्धव जी से विदुर जी कहते हैं–

**दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः।**
**यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग् योगेन कस्तद्विरहं सहेत।।**
**तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम्।**
**नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य।।**
**अहो बकीयं स्तनकालकूटकं वा दयालुं शरणं व्रजेम।।**[12]

अर्थात्, आप लोगों ने राजसूय यज्ञ में प्रत्यक्ष ही देखा था कि श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले शिशुपाल को वह सिद्धि मिल गयी, जिसकी बड़े–बड़े योगी योग साधना करके स्पृहा करते रहते हैं। उनका विरह भला कौन सह सकता है। शिशुपाल के ही समान महाभारत युद्ध में जिन दूसरे योद्धाओं ने अपनी आखों से भगवान् श्रीकृष्ण के नयनाभिराम मुख–कमल का मकरन्द पान करते हुए अर्जुन के बाणों से बिंधकर प्राणत्याग किया वे पवित्र होकर सब के सब भगवान के परमधाम को प्राप्त हो गये। पापिनी पूतना ने अपने स्तनों में हलाहल विष लगाकर श्रीकृष्ण को मार डालने की नीयत से उन्हें दूध पिलाया था, उसको भी भगवान् ने वह परम गति दी जो धाय को मिलनी चाहिए। उन भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कौन दयालु हैं, जिसकी शरण ग्रहण करें।

भागवतकालीन लोग परोपकारी थे। परोपकारी के लिए, धर्म की स्थापना एवं अधर्म के विनाश के लिये ही भगवान कृष्ण ने जन्म लिया था। श्रीकृष्ण परोपकार का महत्त्व बताते हुए अपने मित्रों से कहते हैं–

**पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्।**
**वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः।।**
**अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।**
**सुंजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः।।**
**पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः।**

---

10. वहीं 1/11/7–9
11. वहीं 6/10/8
12. 3/2/19,20,23



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते।।
एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा।।[13]

अर्थात् मेरे प्यारे मित्रों! देखो ये वृक्ष कितने भाग्यवान् हैं। इनका सारा जीवन केवल दूसरों की भलाई करने के लिये ही है। ये स्वयं हवा के झोकों से वर्षा, धूप और पाला सब कुछ सहते हैं परन्तु हम लोगों की उनसे रक्षा करते हैं। मैं कहता हूँ कि इन्हीं का जीवन सबसे श्रेष्ठ हैं क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियों को सहारा मिलता हैं, उनका जीवननिर्वाह होता है, जैसे किसी सज्जन के घर से कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षों से भी सभी को कुछ न कुछ मिल ही जाता है। ये अपने पत्ते, फूल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी गन्ध, गोंद लाख, कोयला, अंकुर और कोपलों से भी लोगों की कामना पूर्ण करते हैं। मेरे प्यारे मित्रों! संसार में प्राणी तो बहुत हैं परन्तु उनके जीवन की सफलता इतने में ही है कि जहाँ तक हो सके, अपने तन से, विवेक विचार से, वाणी से और प्राणों से भी ऐसे ही कर्म किये जायें, जिनसे दूसरों की भलाई हो।

भगवान् विष्णु देवताओं से दधीचि मुनि के परोपकार का वर्णन करते हैं।[14] भक्त प्रह्लाद बाल्यकाल से ही प्राणिमात्र के प्रति दया और परोपकार की भावना रखते थे। उन्होंने दैत्य बालकों को उपदेश देते हुए कहा–

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम्।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः।।[15]

महात्मा दधीचि ने वृत्रासुर के वध के लिए देवताओं को अपने शरीर को परोपकारार्थे दिया था। देवगण दधीचि ऋषि से कहते हैं कि–

किं न तद् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूतानुकम्पिनाम्।
भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम्।।[16]

अर्थात्, ब्रह्मन्! आप जैसे उदार और प्राणियों पर दया करने वाले महापुरुष जिनके कर्मों की बड़े–बड़े यशस्वी महानुभाव भी प्रशंसा करते हैं, प्राणियों की भलाई के लिए कौन सी वस्तु न्यौछावर नहीं कर सकते? महात्मा भरत जन्म से ही प्राणिमात्र के प्रति परोपकार एवं दया का भाव रखते थे। भागवत में बिछड़े हुए हिरण शावक के प्रति भरत की दया एवं परोपकारिता सुप्रसिद्ध ही है।[17]

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनं संसारपारितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः।।[18]

अर्थात्, तरह–तरह के पापों से पूर्ण, सांसारिक तापों से अत्यन्त तपे हुए अपने अन्तःकरण को पण्डित जन इस भक्तिसरिता में नित्य निरन्तर नहलाते रहते है। इससे उन्हें जो परम शान्ति मिलती है,

---

13. वहीं 10/22/32–35
14. वहीं 6/9/52–53
15. वहीं 7/6/24
16. वहीं 6/10/5
17.वहीं 5/8/7,9,10
18. वही 5/6/17



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह इतनी आनन्दमयी होती है कि फिर वे लोग उसके सामने अपने ही आप प्राप्त हुए मोक्षरूप परम पुरुषार्थ का भी आदर नहीं करते। भगवान् के निज जन हो जाने से ही उनके समस्त पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। भागवतकालीन लोग भोगों से जीवन–निर्वाह हेतु ही संबंध रखते हुए सुखमय और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे, क्योंकि जो व्यक्ति भोगों से अनासक्त रहकर सम्यग् रीति से धनार्जन कर जीवन यापन करते हैं, उन्हें ही शान्ति प्राप्त होती है–

**न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।**
**यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम्।**
**समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमयाः दिशः।।**[19]

अर्थात्, विषयों के भोगने से भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती अपितु जैसे घी की आहुति डालने पर अग्नि और भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगों से प्रबल हो जाती हैं। जब मनुष्य किसी भी प्राणी और किसी भी वस्तु के साथ राग–द्वेष का भाव नहीं रखता, तब वह समदर्शी हो जाता है और उसके लिए सभी दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं। नारदजी बाल ध्रुव को मानवीय मूल्य संतोष की शिक्षा देते हुए कहते हैं–

**परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पुरुषः।**
**दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः।।**
**यस्य यद् देवविहितं स सुखदुखयोः।**
**आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमच्छति।।**[20]

अर्थात्, तात! भगवान् की गति बड़ी विचित्र है। इसलिए उस पर विचार करके बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि दैववश उसे जैसी भी परिस्थित्ति का समाना करना पडे, उसी में संतुष्ट रहे। विधाता के विधान के अनुसार सुख–दुःख जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में चित्त को संतुष्ट रखना चाहिए। ऐसा करने वाला पुरुष मोहमय संसार से पार हो जाता है।

भागवत के सप्तम स्कन्ध में गृहस्थों के लिए मोक्ष धर्म की प्राप्ति हेतु संतोष की महत्ता नारद जी ने वर्णित की है। संतुष्ट न रहने वाले व्यक्ति की क्या स्थिति होती है उसका वर्णन करते हुए नारद जी युधिष्ठिर से कहते हैं–

**असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः।**
**स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते।।**[21]
**पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः।**
**सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोषात् पतन्त्यधः।।**[22]

---

19. वहीं 9/19/14–15
20. वहीं 4/8/29–33
21. वहीं 7/15/19
22. वहीं 7/15/21



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात्, जो ब्राह्मण संतोषी नहीं है। इन्द्रियों की लोलुपता के कारण उसके तेज, विद्या, तपस्या और यश क्षीण हो जाते हैं और वह विवेक भी खो बैठता है। अनेक विषयों के ज्ञाता, शंकाओं का समाधान करके चित्त में शास्त्रोक्त अर्थ को बैठा देने वाले और विद्वत्सभाओं के सभापति बड़े–बड़े विद्वान् भी असन्तोष के कारण गिर जाते हैं।

उपर्युक्त कथन से सन्तोष की महत्ता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी भागवत में सन्तोष को महन्महत्ता व्यक्त की है।[23] असुरराज बलि बड़े धीरे–गम्भीर थे। उनकी धीरता और गम्भीरता के विषय में महर्षि वेदव्यास लिखते हैं –

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप।।[24]

भाव यह है कि यद्यपि बलि वरुण के पाशों से बंधे हुए थे। उनकी सम्पत्ति भी उनके हाथों से निकल गयी थी, फिर भी उनकी बुद्धि निश्चयात्मक थी और सब लोग उनके उदार यश का गान कर रहे थे।

ध्रुव जी एक यक्ष के द्वारा अपने भाई उत्तम के मारे जाने पर यक्षों की हत्या करने लगते हैं, तब उनके पितामह मनु ने कहा कि तुम अपने भाई से प्रेम करते थे किन्तु उसकी मृत्यु से दुःखी होकर एक यक्ष के बदले बहुत से निरपराध यक्षों को मारने से क्या लाभ? मनु जी उन्हें सहिष्णुता की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि–

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति।।[25]

अर्थात् सर्वात्मा श्रीहरि तो अपने से बड़े पुरुषों के प्रति सहनशीलता, छोटों के प्रति दया, बराबर वालों के साथ मित्रता और समस्त जीवों के साथ समता का वर्ताव करने से ही प्रसन्न होते है।[26]

इन्द्र के विघ्न के कारण जब महाराज पृथु के 99 यज्ञ ही हो पाये, तो उनका सौ अश्वमेध करने का संकल्प पूर्ण नहीं हो पाया तब भगवान् विष्णु उनके 99 यज्ञों से ही संतुष्ट होकर इन्द्र सहित पृथु के समक्ष उपस्थित होते हैं और उन्हें क्षमाशीलता का उपदेश देते हैं। भागवत में द्रौपदी की क्षमाशीलता द्रष्टव्य है। जब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँच पुंत्रों को मार दिया, तब उसे बाँधकर द्रौपदी के समक्ष लाया गया, तब भी कोमलहृदया द्रौपदी ने उसे क्षमा करते हुए गुरुपुत्र के वध का विचार ही नहीं किया–

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च।।
मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः।।[27]

भाव यह हैं कि द्रौपदी जानती हैं कि अश्वत्थामा के वध से उसके पुत्र पुनः जीवित नहीं हो सकते

---

23 वहीं 10/52/31–33 24. वहीं 8/21/28

25. वहीं 4/11/13 26. वहीं 4/20/2–4 27. वहीं 1/7/42–47



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और अश्वत्थामा के कारण उनकी माता भी जीवित है। जैसे मुझे पुत्रों की मृत्यु से अत्यन्त दुःख हो रहा हैं, वैसा दुःख अश्वत्थामा की माता को न उठाना पड़े। वास्तव में यहाँ द्रौपदी की क्षमाशीलता अद्वितीय है। वह स्वयं दुःखी है किन्तु दूसरे को दुःखी नहीं देखना चाहती और उसे अपराधी होने पर भी क्षमादान दे देती है।

भक्त प्रह्लाद में विनम्रता, करुणा, प्रेम, श्रद्धा आदि मानवीय गुण कूट कूट कर भरे थे। नारदजी युधिष्ठिर से प्रह्लाद के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं–

दासवत्संनतार्याङ्घ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः।
भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः।।[28]

अर्थात्, प्रह्लाद बड़े लोगों के चरणों में सेवक की तरह झुककर रहते थे। गरीबों पर पिता के समान स्नेह रखते थे। बराबरी वालों से भाई के समान प्रेम करते और गुरुजनों में भगवद्भाव रखते थे। विद्या, धन, सौन्दर्य और कुलीनता से सम्पन्न होने पर भी घमण्ड और हेकड़ी उन्हें छू तक नहीं गयी थी–

स चाहं वित्तलोभन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम्।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा।
न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्।।[29]

अर्थात्, गुरुदेव! मैं प्रह्लाद जी का पौत्र हूँ और एक बार देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ अतः अब मैं धन के लोभ से ठग की भाँति इस ब्राह्मण से कैसे कहूँ कि मैं तुम्हे नहीं दूँगा। इस पृथ्वी ने कहा है कि असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है। मैं सब कुछ सहने में समर्थ हूँ परन्तु झूठे मनुष्य का भार मुझसे नहीं सहा जाता है।

महाराज हरिश्चन्द्र ने भी सत्य की रक्षा के लिए अनेक कष्ट सहे किन्तु उन्होंने सत्य का त्याग नहीं किया। महर्षि वेदव्यास जी ने सत्यपरायण हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा का वर्णन करते हुए कहा–

सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः।
विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम्।।[30]

इसी प्रकार भागवत में विदुर जी के द्वारा धृतराष्ट्र को कहे गये वचन में उनकी यथार्थवादिता दृष्टिगोचर हुई है।[31] भागवतकाल में हमें प्रेम का सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ता है। द्वारका की प्रजा का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम था। श्रीकृष्ण प्रजा को प्राणों से भी प्रिय थे। जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से द्वारका आते हैं, तो द्वारकावासी प्रसन्न होकर कहते हैं कि आपके बिना हमारा एक–एक क्षण कोटि–कोटि वर्षों के समान लम्बा हो जाता है। आपके बिना हमारी दशा वैसी हो जाती है, जैसे सूर्य के बिना आँखों की–

---

28. वहीं 7/4/32
29. वहीं 8/20/3–4
30. वहीं 9/7/24
31. वहीं 1/13/28



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यद्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत।।[32]

भगवान् श्रीकृष्ण का अपने मित्र सुदामा के प्रति अत्यन्त प्रेम भाव भागवत में प्राप्त होता है। जब सुदामा श्रीकृष्ण से भेंट करने द्वारका आते हैं तो भगवान् उनसे बड़े प्रेम से मिलते हैं।[33] भागवत में श्रीकृष्ण और विदुर जी का परस्पर अनन्य प्रेम भाव दृष्टिगोचर होता है। तभी तो श्रीकृष्ण दुर्योधन के महलों को छोड़कर विदुर जी के घर अनाहूत गये थे।[34]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत महापुराण में सर्वत्र मानवमूल्यों की अभिव्यंजना हुई है। तत्कालीन समाज में त्याग, उदारता, परोपकार, सहिष्णुता, क्षमाशीलता, दया, गम्भीरता, शान्ति सन्तोष, सत्यता आदि मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक तत्त्वों का महनीय स्थान था। ये मूल्य जन–जन में विद्यमान थे। अतः वर्तमान कलियुग में भी अपनी प्राचीन संस्कृति की पुनःस्थापना के लिए श्रीमद्भागवतपुराण का श्रवण, मनन, पठन–पाठन और सत्संग करना चाहिए। यह यथार्थ ही है कि श्रीमद्भागवतपुराण का अनुसरण करके ही हमारा समाज और राष्ट्र सतत सर्वांगीण विकास कर सकता है।

******

---

32. वहीं 1/11/9
33. वहीं 10/80/18–20
34. वहीं 10/81/37–4



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# श्रीमद्भागवतपुराणकालीन अर्थव्यवस्था

डॉ. आशा सिंह*

भारतीय अर्थव्यवस्था जन्म पर आश्रित न होकर प्रारंभ में कर्म पर आश्रित थी। जो व्यक्ति जिस कर्म के योग्य होता था, वह उसी वर्ण का अधिकारी होता था। योग्यता और शक्ति के अनुसार ही उसे अपने योग्य आजीविका के साधन को चुनने का अधिकार भी था। प्राचीन भारत में आजीविका के मुख्य साधन कृषि, पशुपालन, उद्यान, व्यापार एवं अन्य उद्योग धंधे थे। हमारा प्राचीन समाज भी आधुनिक समाज की भांति ही कृषि प्रधान था, अतः कृषि उस काल में आजीविका का मुख्य साधन थी। कृषि में पशुओं की विशेष आवश्यकता होती ही है। अतः गाय, भैस आदि से दुग्ध की प्राप्ति होने के कारण पशुपालन का भी उस समाज में विशेष महत्व था। वैश्य लोग प्रायः वाणिज्य और व्यापार करते थे। व्याज पर रूपया ऋण देकर अतिरिक्त सम्पत्ति का अर्जन करना भी उस युग का एक प्रधान धनोपार्जन का साधन था। व्याज की दर निश्चित थी और अधिक व्याज लेने वाले व्यक्तियों को राज्य की ओर से दण्ड भी दिया जाता था।

वस्तुतः भारत प्राचीनकाल से ही कृषि–प्रधान देश रहा है। यहाँ आर्थिक जीवन का केन्द्र कृषि एवं पशुपालन ही रहे है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। कृषि की प्रधानता के कारण पशुओं का भी विशेष महत्व था। गायें, भैसें आदि पशुओं का पालना भी दूध की दृष्टि से अधिक उपयोगी था। इसके साथ अन्य व्यवसाय भी होते थे। देश–विदेश में व्यापार भी होता था। नदियों द्वारा भी व्यापार करने के प्रमाण मिलते हैं। सहायक उद्योग धंधे भी किये जाते थे। इस दृष्टि से हम भागवत पुराण की समीक्षा करते हैं, तो ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवतकालीन समाज आज की अपेक्षा सुसम्पन्न था। देश में दूध–दही की नदियाँ बहती थी। लोग कठोर परिश्रम करते थे, जिससे कि वे पूर्णतया स्वस्थ्य रहते थे। बीमारियों का तो नामोनिशान तक नहीं था और आज आए दिन भारत के लोग बीमार ही बने रहते हैं।

भागवतकालीन अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आर्थिक समृद्धि को हम निम्न पाँच बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं–

**1.कृषि व्यवस्था**–प्राचीन भारत के लोग खेती करते थे। उन्हें खेती करना अत्यधिक अच्छा लगता था। खेती हल ओर बैलों के द्वारा की जाती थी। उन लोगों के खेती का तरीका वैसा ही था, जैसा कि

---

*असिस्टेट प्रोफेसर–संस्कृत
राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आजकल गांव के लोगों का है। हमारे आर्यजन भी आजकल की तरह ही जुताई, बुवाई, सिंचाई, कटाई पिटाई करते थे। खेती मूलतः बैलों द्वारा ही की जाती थीं, उस समय अन्य साधनों का प्रचलन नहीं हुआ था। नदियों द्वारा सिंचाई की जाती थी। सिंचाई के लिए नदियों पर बांध बांधे जाते थें। कुओं और जलाशयों द्वारा भी सिंचाई के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

मनु ने असावधानी के कारण खेती न करने वालों पर समुचित प्रतिबंध लगाने के व्यवस्था दी है। उस समय यदि कोई खेतीहर असावधान होता और अपने खेत में पशुओं को चर जाने देता अथवा उपज को किसी प्रकार भी नष्ट होने देता तो राजा उससे भूमि का दस गुना दण्ड रूपमें लेता था। उस समय सिंचाई के सुप्रबंध के लिए गांवो की सीमाओं पर तडाग, उदपान, बांवली और नहरों का प्रबंध था।

भागवतकाल में भी कृषिकार्य अर्थव्यवस्था के प्रमुख अंगों से सम्बन्धित मुख्य व्यवसाय था। जब गोपगण इंद्रयज्ञ की तैयारी करते हैं, तब श्रीकृष्ण नंदबाबा से कहते है कि पिताजी! आप किस उत्सव की तैयारी कर रहे हैं। उनका यज्ञ करने के बाद जो कुछ बचा रहता है, उसी अन्न से हम सब मनुष्य धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग की सिद्धि के लिए अपना जीवन–निर्वाह करते हैं। मनुष्यों के खेती आदि प्रयत्नों के फल देने वाले इंद्र ही है–

**तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे।**
**पुंसां पुरूषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः।**

वैश्यों की वृत्ति के अंतर्गत कृषि की गणना की गई है–

**कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते।**
**वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम्।।**

सिंचाई का कोई उल्लेख नहीं मिलता जिससे सिद्ध होता है कि अधिकतर कृषि उस समय वर्षा पर ही निर्भर होती थी। इंद्र के द्वारा की गई वर्षा पर ही कृषि के निर्भर होने का उल्लेख प्राप्त होता है। नंदबाबा श्री कृष्ण से कहते हैं–

**पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः।**
**तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः।।**
**तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम्।**
**द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते कतुभिर्नराः।।**

अर्थात् भगवान् इन्द्र वर्षा करने वाले मेघों के स्वामी है। ये मेघ उन्हीं के अपने रूप हैं। वे समस्त प्राणियों को तृप्त करने वाले एवं जीवनदान करने वाला जल बरसाते हैं। मेरे प्रिय पुत्र! हम और दूसरे लोग भी उन्हीं मेघपति भगवान् इन्द्र की यज्ञों के द्वारा पूजा किया करते है, जिन सामग्रियों से यज्ञ होता है, वे भी उनके बरसाये हुए शक्तिशाली जल से ही उत्पन्न होती हैं।

भागवत पुराण में यह भी उल्लेख मिलता है कि महाराज पृथु ने पृथ्वी को समतल कर कृषि योग्य बनाया था। इससे सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण भूमि कृषि योग्य नहीं थी–



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समां च कुरू मां राजन्देववृष्ट यथा पयः।
अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो।।

अर्थात्, पृथ्वी राजा से कहती है कि आपको मुझे समतल करना होगा, जिससे कि वर्षा ऋतु बीत जाने पर भी मेरे उपर इन्द्र का बरसाया हुआ जल सर्वत्र बना रहे। मेरे भीतर की आर्द्रता सूख न पाये, यह आपके लिए बहुत मंगलकारक होगा।

खेतों में मेंढ़ लगाकर उनका विभाजन किया जाता था। कृषक प्रायः धनिकों पर निर्भर रहते थे। वर्षा–वर्णन के प्रसंग में कहा गया कि खेत को अन्न से भरा हुआ देखकर कृषक आनन्दित हो रहे हैं और धनिक दुःखी हो रहे हैं–

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्‌भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम्।।

अर्थात् सब खेत अनाजों से भरे–पूरे लहलहा रहे थे। उन्हें देखकर किसान तो आनन्द के कारण फूले नहीं समाते थे, परन्तु सब कुछ प्रारब्ध के अधीन है। यह बात जानने वाले धनिकों के चित्त में बड़ी ईर्ष्या और जलन हो रही थी कि अब हम इन्हें अपने पंजे में कैसे रख सकेंगे। इससे सिद्ध होता है कि कृषक उस समय ऋणग्रस्त भी रहते होंगे।

**2.पशुपालन–**

भारतीय संस्कृति में गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद और धर्म सदा से ही पूजनीय रहे हैं। इनमें गौ का स्थान सर्वप्रमुख रहा है। स्वयं श्रीकृष्ण इन्द्रपूजन के अवसर पर नन्द बाबा से कहते हैं कि पिताजी! हमारा मुख्य व्यवसाय गोपालन ही है, इसलिए हम लोग गौओं, ब्राह्मणों और गिरिराज का यजन करने की तैयारी करें। इन्द्र यज्ञ के लिए जो सामग्रियां इकट्ठी हो गयी हैं, उन्हीं से इस यज्ञ का अनुष्ठान होने दें। अनेक प्रकार से पकवान, खीर, हलुआ, पुआ, पुरी आदि से लेकर मूँग की दाल तक बनाई जाये। ब्रज का सारा दुग्ध एकत्र कर लिया जाये। वेदपाठी ब्राह्मणों के द्वारा भलीभांति हवन कराया जाये तथा उन्हें अनेक प्रकार से अन्न, गौएँ और दक्षिणाये दी जायें। चाण्डाल, पतित तथा कुत्तों तक को यथायोग्य वस्तुएँ देकर गायों को चारा दिया जाये और फिर गिरिराज को भोग लगाया जाय। इसका उल्लेख भागवत में इस प्रकार प्राप्त होता है–

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः।।
पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम्।।
हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैब्रह्मवादिभिः।
अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुर्दक्षिणा।।
अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यवसं च गवां दत्वा गिरये दीयतां बलिः।।

इसके अनन्तर श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार ही नन्दबाबा तथा अन्य गोपों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। पहले ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर उसी सामग्री से गिरिराज और ब्राह्मणों को सादर भेंट दी तथा गौओं को हरी–हरी घास खिलायी। इसके बाद नन्दबाबा आदि ने गायों को आगे करके गिरिराज की प्रदक्षिणा की–

तथा च व्यदधुः सर्व यथाऽऽह मधुसूदनः।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्।।
उपहृत्य बलीन् सर्वानादत्ता यवसं गवाम्।
गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणाम्।।

भागवतकाल में राजागण यज्ञों एवं विवाह आदि के अवसर पर गायों का दान किया करते थे। राजा अम्बरीष ने बड़े भक्तिभाव से ब्राह्मणों को स्वादिष्ट और अत्यन्त गुणकारी भोजन कराकर उनके घर 60 करोड़ गायें सुसज्जित करके भेजीं थी। उनके सींगों में स्वर्ण और खुर चॉदी से मढे हुए थे। सुन्दर–सुन्दर वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिये गये थे। वे गौएँ बड़ी सुशील छोटी अवस्था की, सुन्दर , बछड़े वाली और खूब दूध देने वाली थीं। उनके साथ दुहने की उपयुक्त सामग्री भी उन्होंने भिजवा दी थी–

गवां रूक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम्।
पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम्।
प्राहिणोत् साधु विप्रेभ्यो गृहेषुन्यर्बुदानि षट्।
भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम्।।

भागवतकाल में साधारणतया लोग दूध के लिए गायों को पालते थे। गोपों का मुख्य व्यवसाय गोपालन होने के कारण गौ को धन माना जाता था। गोप लोग अपने पशुओं को खाद्य सामग्री की सुविधा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर आया करते थे–

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरूधम्।।
तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम्।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते।

अर्थात्, वृन्दावन नाम का वन है। उसमें छोटे–छोटे और भी बहुत से नये–नये हरे भरे वन हैं।वहां बहुत बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी–भरी लता और वनस्पतियां हैं। हमारे पशुओं के लिए तो वह बहुत ही हितकारी है। गोप, गोपी और गायों के लिए वह केवल सुविधा का ही नहीं अपितु सेवन करने योग्य स्थान है। अतः यदि तुम सब लोगों को यह बात अच्छी लगती हो तो आज ही हम लोग वहॉ के लिए कूच कर दें, देर न करें। गाड़ी–छकड़े जोते और पहले गायों को जो हमारी एकमात्र सम्पत्ति है, वहॉ भेज दें।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार भावतकाल में पशुपालन का अत्यधिक महत्व था। वस्तु विनिमय का आधार पशु ही थे। पशुओं में गायें ही वास्तविक धन था। यज्ञों में धन की जगह पशुधन ही दिया जाता था। अस्तु! कृषि की प्रधानता होने के कारण पशुपालन का महत्वपूर्ण स्थान था।

**3. विनिमय प्रणाली–** भागवतकाल में विनिमय–प्रणाली पूर्णरूप से समृद्ध थी। भागवतकाल में वस्तुविनिमय और द्रव्यविनिमय दोनों के प्रचलन का उल्लेख मिलता है। उस समय अनाज के बदले में फल विक्रय होता था। भागवत में एक फल बेचने वाली जब फल लेने के लिए आवाज लगाती है, तो बाल श्रीकष्ण अपनी अंजलि में अनाज लेकर फल लेने के लिए दौड़ने लगते हैं–

**क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः।**
**फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः।।**

द्रव्य विनिमय की अपेक्षा वस्तु विनिमय ही अधिक होता था। नरक–वर्णन के प्रसंग में द्रव्यविनिमय का उल्लेख मिलता है–

**यत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरूषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जननदिभिर्यात्यनभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये।।**

अर्थात् जो पुरूष दूसरों के धन, सन्तान तथा स्त्रियों का हरण करता है, उसे अत्यन्त भयानक यमदूत कालपाश में बॉधकर बलात् तामिस्र नरक में गिरा देते हैं। उस अन्धकारमय नरक में उसे अन्न–जल न देना, डंडे लगाना और भय दिखलाना आदि अनेक प्रकार के उपायों से पीड़ित किया जाता है। इससे अत्यन्त दुःखी होकर वह एकाएक मूर्च्छित हो जाता है।

वेतन द्वारा सेवा–विनिमय का भी भागवत में वर्णन प्राप्त होता है–

**यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थलीपुरीषा दीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति।।**

विनिमय के माध्यम रूप में प्रचलित केवल 'काकणी' नामक मुद्रा का वर्णन मिलता है। वस्तु का वजन तौलने के लिए 'मास' इकाई का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त पल और माष इकाई का भी उल्लेख प्राप्त होता है। 'बॉट' के लिए उन्मान शब्द का प्रयोग किया जाता था। द्रव्य का मान 'प्रस्थ' व लम्बाई का मान 'अंगुल' से होता था। बाजार के लिए आपण शब्द का प्रयोग होता था। आपण के लिए कहीं–कहीं विपण शब्द का प्रयोग किया जाता था। नगर–स्थापत्य के वर्णन में भी विपण शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।

**4.व्यापार–वाणिज्य–**भागवतकाल में व्यापार भी पूर्ण विकसित एवं उन्नत था। अनेक वस्तु आदि का व्यापार एवं वाणिज्य भी वैश्य की वार्ता बताई गई है। क्रय विक्रय के लिए नगरों में बाजार होते थे, जिन्हें आपण कहा जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य देशो में भी जाकर व्यापारी व्यापार करते थे। ये लोग



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काफिला बनाकर व्यापारिक यात्रा किया करते थे, जिन्हें 'सार्थ' कहा जाता था। वस्तुतः समाज के सुचारु विकास के लिए सभी प्रकार के उद्योग धन्धों का समृद्ध होना भी आवश्यक है। भागवत में श्रीकृष्ण ने स्वयं उद्योग धन्धों के विकास की आवश्यकता पर बल दिया है तथा उन्होंने उद्योग धन्धों को प्रतिष्ठित भी किया है। उन्होंने देखा कि उनके यहॉ पशु सम्पत्ति की मात्रा अधिक है। अतएव उन्होंने पशुपालन को व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई। यद्यपि श्रीकष्ण के आविर्भाव से पूर्व ग्वालों का यह व्यवसाय इन्द्र की तानाशाही के कारण नहीं पनपता था, क्योंकि इस व्यवसाय का पूरा लाभ तो इन्द्र वसूल लेता था। उन्होंने गोपों को नीति सम्मत उपदेश देकर राजा का अपनी प्रजा को तानाशाही के आतंक से बचाने का कर्तव्य पूर्ण किया। श्रीकृष्ण ने गोपों से कहा–

रजसा चोदिता मेघा वर्षत्यम्बूनि सर्वतः।
प्रजास्तैरेव सिद्धयन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति।।
तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः।।

अर्थात् रजोगुण की प्रेरणा से मेघगण सर्वत्र जल बरसाते है। उसी से अन्न और अन्न से ही सब जीवों की जीविका चलती है इसमें भला इन्द्र का क्या लेना–देना है? वह भला क्या कर सकता है? इसीलिए हम लोग गायों, ब्राह्मणों और गिरिराज का यजन करने की तैयारी करें। इन्द्र–यज्ञ के लिए जो सामग्रियां इकट्ठी की गई हैं, उन्हीं से इस यज्ञ का अनुष्ठान होने दें।

भगवान् श्रीकृष्ण का जब अक्रूर जी के साथ मथुरा में आगमन हुआ, तब उन्होंने एक कपड़े रंगने का भी काम करने वाले धोबी से, उससे धुले हुए वस्त्र मॉगे–

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः।
दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च।।

इसके बाद उन्हें एक दर्जी मिला। उसने भगवान् के सौन्दर्य से प्रसन्न होकर रंग–बिरंगे वस्त्रों को उनके शरीर पर ठीक ढ़ंग से सजा दिया–

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत्।
विचित्रवणैश्चैलेयैशकल्पैरनुरूपतः।।

इसके अनन्तर भगवान् सुदामा माली के घर गये। सुदामा माली ने दोनों भाइयों को उठकर प्रणाम, किया फिर उनको आसन पर बैठाकर उनके पांव पखारे, हाथ धुलाये और ग्वालबालों के सहित सबकी फूलों के हार, पान, चन्दन आदि सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजा की–

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः।
तौ दृष्टवा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि।।
तयोरासनमानीय पाद्यं चाहर्यार्हणादिभिः।
पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः।।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार भागवत में रजक, रंगकार, वायक, मालाकार आदि विभिन्न उद्योग धन्धों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त कसाई, मत्स्यजीवी और सूद का भी उल्लेख मिलता है। व्यापार–वाणिज्य के अन्तर्गत कुसीद वृत्ति का भी वर्णन मिलता है।

**5. आय–व्यय व्यवस्था–** प्राचीन काल से ही राजाओं ने अपनी आय के लिए कृषि, पशुपालन, दण्ड के रूप में आय, कर आदि साधनों को अपनाया था। वस्तुतः आय के साधनों का सर्वांगीण स्वरूप अर्थशास्त्र में मिलता है। राज्य और शासन को अपने कोष एवं देश की समृद्धि सुप्रबन्ध और सुव्यवस्था के लिए कर लगाना आवश्यक हो जाता था। कर लगाते समय ध्यान यह रखना पड़ता था कि वह जनता के लिए कष्टकर नहीं हो। जनता पर करों का बोझ डालने से विप्लव की संभावना रहती है। अतः उतना ही कर लगाया जाता था, जितना कि प्रजा प्रसन्नता के साथ चुका सके। साथ ही विभिन्न वस्तुओं पर विभिन्न प्रकार का कर लगता था। कर के भाग को राज्याधिकारी ही निश्चित करते थे।

भागवत में आय–व्यय व्यवस्था के अन्तर्गत प्रजा की रक्षा करने वाले राजा की वृत्ति कर द्वारा बताई गई है। प्रजा की रक्षा करने वाले क्षत्रिय का जीवन निर्वाह ब्राह्मणों को छोड़कर सबसे यथायोग्य कर तथा दण्ड आदि के द्वारा होता था–

**राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः।**

प्राचीन परम्परा के अनुसार ही राजा को कर के रूप में अपनी आय का षष्ठ अंश ही देय कहा गया है। राजर्षि गय को प्रजा के द्वारा कर देने के विषय में कहा गया है–

**छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान् दुदुहूराजजह्रुरथो बलिं नृपाः।**
**प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य।।**

अर्थात् उन्हें कोई कामना न थी, तब भी वेदोक्त कर्मो ने उनको सब प्रकार की भेंटे दी। तथा ब्राह्मणों ने दक्षिणादि धर्म से संतुष्ट होकर उन्हें परलोक में मिलने वाले अपने धर्मफल का छठा अंश दिया। नंद (बाबा) स्वयं कर देने के लिए कंस के पास जाते थे–

**नंदः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह।**

वस्तुतः भागवतकालीन राजागण कोमलतापूर्ण ही प्रजा से कर ग्रहण करते थे। महाराज पृथु की कर ग्रहण नीति के विषय में कहा गया है कि सूर्य जिस प्रकार गर्मी में पृथ्वी का जल खींचकर वर्षाकाल में उसे पृथ्वी पर वर्षा देता है तथा अपनी किरणों से सबको ताप पहुँचाता है उसी प्रकार वे कर रूप में प्रजा का धन लेकर उसे दुष्काल आदि के समय मुक्त हस्त से प्रजा के हित में लगा देते थे तथा सब पर अपना प्रभाव बनाये रखते थे–

**सूर्यवृद्धिसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च भुवो वसु।**

राजा का प्रथम कर्तव्य है प्रजापालन और द्वितीय कर्तव्य है प्रजा से कर ग्रहण। विष्णु भगवान् महाराज पृथु को राजा के कर्तव्य पालन का महत्व बताते हुए कहते हैं–



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्साम्पराये सुकृतात् षष्ठमंशम्।
हर्तान्यथा हतपुण्यः प्रजानामरक्षिताकरहारोऽधमत्ति।।

अर्थात्, राजा का कल्याण प्रजापालन में ही है। इससे उसे परलोक में प्रजा के पुण्य का छठा भाग मिलता है। इसके विपरीत जो राजा प्रजा की रक्षा तो नहीं करता, किन्तु उससे कर वसूल करता जाता है उसका सारा पुण्य तो प्रजा छीन लेती है और बदले में उसे प्रजा के पाप का भागी होना पड़ता है।

भागवत में श्रीकृष्ण ने यादवों के लिए द्वारकापुरी का निर्माण किया। अपने मित्र युधिष्ठिर के लिए इंद्रप्रस्थ नगर का निर्माण कराया। प्रजाकल्याण के लिये अत्याचारियों से युद्ध किये और कराये। नगर–निर्माण एवं युद्ध ये दो ऐसे कार्य है जिनमें पूंजी का विनियोग बड़ी मात्रा में करना होता है। श्रीकृष्ण के व्यवहारानुसार राजा को चाहिए कि जिन शत्रुओं को जीत लिया है अथवा जिनका वध कर दिया गया है। उनकी सम्पत्ति को वह प्राप्त करें। इस प्राप्त हुई सम्पत्ति से अपना कोष समृद्ध और प्रजा को समृद्ध बनाये। श्रीकृष्ण की दृष्टि में राजाओं को विवाह, यज्ञ, जन्मदिवस के अवसर पर उपस्थित राजाओं से मिलने वाले उपहार भी कोष समृद्धि में सहायक होते है। उन्होने स्वयं कोसल देश के राजा नग्नजित् की पुत्री नग्नजिती को विवाह सम्बंधी शर्त को बल–पौरूष से पूरा करके अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त किया। इस अवसर पर नग्नजित से उन्हें दस हजार गायें, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित तीन हजार दासियां नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक और एक विशाल सेना दहेज के रूप में प्राप्त हुई। नम्नजित् से मिले इस उपहार से अवश्य ही श्रीकृष्ण का कोष समृद्ध हुआ होगा–

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद् विभुः।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम्।।
नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान्।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान् नरान्।।
दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृत्तौ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः।।

स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण आय–व्यय व्यवस्था के अन्तर्गत कोष की वृद्धि के कारणों से भली भांति परिचित थे। ऐसा भी उल्लेख भागवत में मिलता है कि कर वर्ष में एक बार दिया जाता था।

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युपाताश्च गोकुले।।

आय व्यवस्था में कर के अतिरिक्त आर्थिक दण्ड द्वारा भी राजा को आर्थिक आय होने के संकेत मिलते है–

यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन शान्तिद्रोहजिहासया।
राजा लब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः।

इसी प्रकार कर–ग्रहण करने के लिए राजा के द्वारा उनके पार्षदों की नियुक्ति का उल्लेख भी मिलते है, जो उसे कर लाकर दिया करते थे।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**निष्कर्षः**– संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भागवतकालीन समाज आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न था। भागवतकाल में कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था के प्रमुख अंग रहे है। कृषि की गणना वैश्यों की वृत्ति के अंतर्गत की गई थी। इंद्र के द्वारा की गई वर्षा पर ही अधिकतर कृषि के निर्भर रहने की चर्चा मिलती है। तत्कालीन समाज में सिंचाई द्वारा कृषि होने का उल्लेख नहीं मिलता है। कृषि के लिए असमतल भूमि को भी समतल बनाया जाता था। कृषि की प्रधानता होने कारण गौ आदि पशुओं का भी विशेष महत्व था। साधारणतया लोग दूध के लिये गायों को पालते थे। गोपों का मुख्य व्यवसाय गोपालन ही था, अतएव गौ को धन भी माना जाता था। दहेज में भी प्रसन्नता के साथ गौ को देने का प्रचलन था। गोप एवं कृषक लोग अपने पशुओं की खाद्य सामग्री के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे। तत्कालीन समाज में द्रव्य विनिमय की अपेक्षा वस्तुविनिमय का अधिक प्रचलन था।

व्यापार भी पूर्ण उन्नत एवं विकसित था। व्यापार वैश्य का ही कर्म माना गया था। भागवत में उद्योग धंधों के रूप में रजक, रंगकार मालाकार वायक इत्यादि के अतिरिक्त कसाई, मत्स्यजीवी और सूद कुसीद आदि थे। प्रजा की रक्षा करने वाले क्षत्रिय का जीवन निर्वाह ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबसे लोककल्याणकारी राज्य की धारणा के अनुकूल कर लेकर होना बताया है। राजा अपने पार्षदो के माध्यमों से वर्ष में एक ही बार आय का षष्ठांश कर लेकर अपने कोष को समृद्ध करता था। राजा कोष के धन को प्रजा के कल्याणकारी कार्यों एवं वेतन आदि में व्यय करता था। आपातकाल में भी कोश का सदुपयोग करता था। आय व्यवस्था में कर के अतिरिक्त आर्थिक दण्ड के द्वारा भी राजा को आय होती थी और इससे उसका कोश समृद्ध होता था। इस प्रकार भागवतकालीन समाज अर्थव्यवस्था की दृष्टि से समुन्नत, पूर्णतया आत्मनिर्भर एवं विकसित था।

**सन्दर्भ**–

1. भारतीय संस्कृति के मूल तत्व पृ. 116.

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# आचार्य हरिभद्र और पतंजलि के योगशास्त्रों में ईश्वर व क्रियायोग: एक समीक्षा

डॉ. देवीशङ्कर शर्मा*

प्राचीनकाल से प्रचलित योग शब्द युज धातु से निष्पन्न होता है। जोड़ने अर्थ को द्योतित करने वाली युज धातु से निष्पन्न योग अत्यन्त वैज्ञानिक विषय है। आध्यात्मिक अर्थ में आत्मा को ब्रह्म से जोड़ने का साधन योग है। अहिंसा वैर को दूर करके जीव को जीव से सम्पृक्त करने वाली शक्ति योग है, आसक्ति से अनासक्ति से अनासक्ति में प्रवृत्तिकरण योग का लक्ष्य है। बहिर्मुखी चित्तवृत्तियों का विरोध कर अन्तर्मुखी करना योग है। महर्षि पतंजलि ने योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः कहकर जिस योग फा सूत्रपात किया है वह योग सार्वभैमिक एवं वैज्ञानिक है जिसक विस्तार आचार्य हरिभद्रसूरि ने आत्मस्पर्शी शब्दों में किया है।

पातंजल योगदर्शन सांख्य दर्शन की साधनापद्धति का प्रतिनिधि ग्रंथ है। आचार्य हरिभद्र के योगविषयक ग्रंथ जैनधर्म का प्रतिनिधित्व करते है। आचार्य हरिभद्र की दृष्टि बहुत उदार एवं समन्वयात्मक रही है। उन्होंने उभय परम्पराओं में सामंजस्य की एक विशेष चिन्तन दृष्टि प्रदान की है जो योगाभिलाषियों के लिए पथप्रदर्शक बन सकती है। सभी दार्शनिक परम्पराओं में योग शब्द निवृत्ति मूलक है। जैन परम्परा में भी निवृत्ति को विशेष महत्त्व दिया गया है। इस कारण से अनेक समानताएँ चाहे वे शब्दगत हों, अर्थगत हों अथवा विषयगत हों प्राप्त होती हैं। जिन पर हम आगे प्रकाश डाल रहे हैं।

पतंजलि ने साधना में योग को आधार बनाया। आज योग शब्द बहुत प्रचलित है। यद्यपि जितनी निवृत्तिवादी धाराएँ रही है उनमें योग शब्द सामान्य रूप से प्रचलित रहा है। जैन, बौद्ध और सांख्य इन तीनों में योग शब्द का व्यापक प्रयोग मिलता है।

आचार्य हरिभद्र द्वारा निरूपित योगस्वरूप व पातंजल योग में निर्दिष्ट धर्मव्यापार इन दोनों अर्थो का स्थूल रूप से चिन्तन करते हैं, तो दोनों अर्थों में भिन्नता परिलक्षित होती है, दोनों में पर्याप्त दूरियाँ दिखलाई देती हैं। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाये तो एकरूपता भी दिखलाई देती है। चित्तवृत्ति का निरोध करना एक क्रिया है, साधना है। इसका तात्पर्य है चित्त की वृत्तियों को रोकना किन्तु यह एकान्ततः निषेधात्मक भाव की ही अभिव्यक्ति नहीं करता है, बल्कि विधेयात्मक अर्थ को भी अभिव्यक्त करता है। रोकने के साथ करने का भी सम्बन्ध है। इसलिए पतंजलि द्वारा प्ररूपित योगस्वरूप का वास्तविक अर्थ यही है कि साधक अपनी संसाराभिमुख चित्तवृत्तियों को रोककर अपनी साधना को मोक्ष अर्थात् साध्य सिद्धि के अनुकूल बनाए। स्वमनोवृत्तियों को सांसारिक प्रपंच व विषय वासनाओं से विमुख कर मोक्षाभिमुखी बनाए। दूसरी ओर आचार्य हरिभद्र द्वारा निर्दिष्ट योग अर्थात् मोक्षप्रापक धर्मव्यापार का भी यही अर्थ ध्वनित होता है। इनके अनुसार मोक्ष के साथ सम्बन्ध करने वाली साधना या क्रिया ही योग है। जैन धर्म में आध्यात्मिक साधना के परिप्रेक्ष्य में संवर शब्द का प्रयोग

*व्याख्याता ( जैनोलॉजी ) वज. महाविद्यालय, सरदार शहर जिला-चूरू ( राज. )

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुआ है। संवर आस्रव के निरोध के कहा है। इस तरह संवर और योग दोनों के अर्थ में निरोध शब्द का प्रयोग हुआ है। किन्तु दोनों जगह विशेषण अलग है- एक में चित्तवृत्ति है तो दूसरे में आस्रव। आगमों में आस्रव मिथ्यात्त्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को कहा है। यहां आस्रव में प्रयुक्त योग योगदर्शन में प्रयुक्त चित्तवृत्ति के स्थान पर है। इस प्रकार पतंजलि ने जिसे चित्तवृत्ति कहा है, जैन दर्शन ने उसे आस्रव रूप योग कहा है।

आस्रव योग के दो भेद है सकषाय और अकषाय। ऐसे ही दो भेद चित्तवृत्ति के भी हैं। क्लिष्ट और अक्लिष्ट। जैन दर्शन कषाय के चार भेद मानता है-क्रोध, मान, माया तथा लोभ। पतंजलि भी क्लिष्ट चित्तवृत्ति के चार भेद मानते हैं- अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। जैन दर्शन में पहले सकषाय योग और बाद में अकषाय योग के निरोध को कहा है। पतंजलि ने भी पहले क्लिष्ट चित्तवृत्ति के निरोध तथा बाद में अक्लिष्ट चित्तवृत्ति के निरोध की बात कही है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त विवेचन यह स्पष्ट करता है कि आचार्य हरिभद्र व पतंजलि के द्वारा निरूपित योग का स्वरूप स्थूल दृष्टि से तो भिन्न है, किन्तु यदि उसका सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो उसके अर्थ व विषय में एकरूपता दिखाई देती है।

**ईश्वरविषयक अवधारणा** योग दर्शन में ईश्वर को परिभाषित करते हुए लिखा है-

**क्लेशकर्मविपाकाशयापरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।**

अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक आदर्श पुरुष है।

आचार्य हरिभद्र की दृष्टि में ईश्वर को सृष्टि के कर्ता-धर्ता के रूप में नहीं किन्तु साधना के अनुग्राहक के रूप में लिया गया है। उन्होने लिखा कि यदि हम ईश्वर का अनुग्रह न माने तो भी साधक में ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने की योग्यता माननी ही पड़ेगी। क्योंकि यदि साधक में अनुग्रह प्राप्त करने की योग्यता मुख्य वस्तु है अर्थात् साधक अपने आध्यात्मिक विकास के द्वारा अमुक स्तर पर पहुँचकर रईश्वर के अनुग्रह को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। इस प्रकार यदि ईश्वर को अनुग्राहक माना जाय तो भी अनुग्रह पात्र बनने का प्रयत्न तो व्यक्ति को ही करना होगा। यह अनुग्रह व्यक्ति की योग्यता पर आधारित न हो तो ईश्वर राग-द्वेष से युक्त सिद्ध होगा। वह क्यों कुछ व्यक्तियों पर अनुग्रह करता है और कुछ पर नहीं करता है। अतः वीतराग ईश्वर अनुग्रह का कर्ता नहीं हो सकता। हरिभद्र का कथन है कि अनादिमुक्त ऐसे ईश्वर की सिद्धि तर्क से शक्य नहीं है। परन्तु आध्यात्मिक विकास के फलस्वरूप प्रयत्न सिद्धशुद्ध आत्मा को परमात्मा मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है।

**क्रियायोगविषयक अवधारणा** योग सूत्र का प्रथम समाधिपाद उत्तम अधिकारी के लिए है किन्तु जिसका चित्त समाहित नहीं है उसके लिए द्वितीय पाद (साधना पाद) में उपाय वर्णित है। इनमें तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है। आचार्य हरिभद्र के अनुसार भी अरति निवारण के संदर्भ में भय से आक्रांत के लिए गुरुशरण कर्मरोग को मिटाने में तप क्रिया चिकित्सा रूप है तथा मोह रूप विष का प्रभाव नष्ट करने में स्वाध्याय कहा है। योग पर अधिकार प्राप्त करने के लिए साधककी आवश्यक तैयारी जैसी देव, गुरु का पूजन, सदाचार का पालन करना आदि को कहा है। पतंजलि ने वेदशास्त्र के पाठ को स्वाध्याय कहा है तथा तप, स्वाध्याय व ईश्वर शरणागति को विधान पर आधिकार प्राप्त करने में सहायक माना है।

इस प्रकार दोनों आचार्यो के मत के साम्य, वैषम्य का अध्ययन करने पर निम्न बिन्दु ध्यान में आते है। प्रथम तो योगसूत्र ईश्वर प्रणिधान का उल्लेख करता है जबकि हरिभद्र गुरु की शरण का उल्लेख करते है। योगसूत्र भी ईश्वर को परम



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरू के रूप में मानता है। ईश्वरप्रणिधान का फल समाधि लाभ बतलाया गया है। तप का फल हरिभद्र के अनुसार कर्मरोग का निवारण अर्थात् निर्जरा है जबकि योग परम्परा भी कर्म क्लेश और वासना के छिन्न-भिन्न करने का साधन तप को मानती है। हरिभद्र ने स्वाध्याय का फल मोह का नाश माना है कि तपस्या शारीरिक क्रिया योग है स्वाध्याय वाचिक तथा ईश्वरप्रणिधान मानस अहिंसा क्रिया का न करना है। उसमें जो कष्ट होता है उसे सहन करना तप है।

ईश्वर प्राणिधान के दो अर्थ हैं— क्रिया का ईश्वरार्पण कर देना अथवा उसके फल की इच्छा न करना। जैन परम्परा में व्रत के लिए निःशल्य होना आवश्यक माना है। जिसकी तुलना फल की कामना न करने से की जा सकती है।

आचार्य हरिभद्र व पतंजलि दानें ने ही योग साधना में कायिक आचार की अपेक्षा मानसिक भावना की उत्कृष्टता को महत्त्व प्रदान किया है। पतंजलि ने क्रियायोग की अपेक्षा या आवश्यकता बताते हुए कहा है- समाधि की भावना के लिए क्लेशों को तनु करने हेतु क्रिया योग है। अर्थात् तप से शरीर प्राण, इंद्रिय और मन की अशुद्धि दूर होने पर वे स्वच्छ होकर क्लेशों को दूर करने और समाधि प्राप्ति में सहायता देते हैं। स्वाध्याय से अंतःकरण शुद्ध होता है और चित्तविक्षेपों के आवरण से शुद्ध होकर समाहित होने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है और क्लेशों की निवृत्ति होती है। इस प्रकार की मानसिक भावना को श्रेष्ठ बताते हुए टीकाकार वाचस्पति मिश्र ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है कि सद्बोधमय निष्ठा तथा भावपूर्वक जो सक्रिया की जाती है, वह दोषों को सर्वथा नष्ट कर देती है, जिससे वे पुनः नहीं उभर पाते हैं जैसे भस्म के रूप में बदला हुआ मेंढ़क फिर कभी जीवित नहीं होता।

बाह्य क्रिया अर्थात् शारीरिक क्रिया द्वारा दोषों का सर्वथा क्षय नहीं होता, उपशम मात्र होता है, जिससे वे अनुकूल स्थिति पाकर फिर उभर आते है। जैसे- टुकड़े-टुकड़े बना, मिट्टी में मिला मेंढ़क शरीर वर्षा होने पर जीवित हो जाता है।

आचार्य हरिभद्र ने भी ऐसा ही कहा है- शारीरिक क्रिया अर्थात् देहाश्रित बाह्य तप द्वारा नष्ट किये गये दोष मेंढ़क के चूर्ण के समान है। यही दोष यदि भावना अर्थात् मनोभाव अन्तर्वृत्ति की पवित्रता द्वारा क्षीण किये गये हों तो मेढ़क की राख के समान समझना चाहिए।

इस प्रकार ईश्वरप्रणिधान एवं क्रियायोग को अवलम्बन बना कर क्लेशों को न्यून करके चित्तवृत्तियों का निरोध करने के पश्चात् समाधि के द्वारा योगी परब्रह्म का दर्शन कर पाता है। यही योग का चरमोत्कर्ष है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. आस्रवनिरोध संवरः! तत्वार्थसूत्र 9/1।
2. पातंजलयोगदर्शन 1/24
3. विशेषं चास्य मन्यन्ते ईश्वरानुग्रहादिति।
   प्रधानपरिणामात्तु तथाऽन्ये तत्तवादिनः।। योगबिन्दुः 265
4. योगबिन्दुः 303-310 शास्त्रवार्तासमुच्चय, 194
5. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।। पा.यो. द. सू. 2/1 पृं. 146
6. सरणं गुरू उ एत्थं किरिया उ तओत्ति कम्मरोगम्मि।
   मतो पुण सज्झाओ मोहविस विणासणो पयरो।। योगशतक गा. 48
7. योगदृष्टिसमुच्चय 4




CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

8. योगबिन्दुः 111-141
9. पातंजल योगप्रदीप पृ. 275
10. ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलं संन्यासो वा।।
    पातंजलयोगदर्शन सूत्र 2/1 भाष्य पृ. 146
11. वही, 1/23
12. अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्यत इति। तपसः उपादानम्
    पातंजल योग सूत्र, भाष्य पृ. 146
13. वही, पृ.101
14. वही, पृ.147
15. वही, पृ.146
16. वही, पृ.2/1-2
17. कायकिरियाए दोसा खविया मंडुक्कचुन्नतुल्ल त्ति।
    ते चेव भावणाए नेया तच्छारसरिसन्ति।। योगशतक, 86

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# कुन्ती स्तुति : एक अनुशीलन

डॉ. मनोज कुमार चतुर्वेदी*

भक्त जब भक्ति की आदर्श नगरी में पहुंचता है तो प्रथम उसके प्रभु के अनन्त, अखंड गुणों की प्रतीति होती है, बस यही प्रतीति यही आभास उसके अन्दर विद्यमान सारे कालुष्य को समाप्त कर देता है। प्रभु की महात्ता का ज्ञान होते ही है भक्त उनकी करुणा के महासागर में उनके चरणों से प्रसूत अमृत के अनन्तानन्त अम्बुधि में गोता लगाने लगता है। आहा हा कहाँ उसका अहंकार कहाँ उसकी समृद्धि!! अहंकार का विलय, विषयों का विसर्जन भक्ति की प्रथम भूमिका है। भक्ति के विश्वविद्यालय में प्रवेश का प्रथम योग है। कुन्ती ने पूरा किया सब कुछ समाप्त कृतज्ञता की धारा ने कुन्ती को कुन्ती बना दिया। अध्यात्म उन्नति जो अविद्या को समाप्त कर दे विनष्ट कर दे, वही तो कुन्ती है। उन्दी क्लेदने धातु से कुन्ती शब्द निष्पन्न होता है। जो पवित्रता की पून्यभूमि है। सहजता का मानवीकरण वह कुन्ती है। शोभा दीप्ति है। सहज उल्लास का नाम है कुन्ती। कोशकारों ने कमुकान्तौ धातु से भी कुन्ती शब्द को निष्पन्न माना है।

वह कुन्ती, रूपवती कुन्ती, गुणवती कुन्ती, शीलवन्ती कुन्ती, प्रभुपरायणा कुन्ती, आज कृतज्ञता के भाव से गद्‌गद है। अपने वंश के ऊपर कृष्ण की अकारण करुणा की बरसात से कुन्ती भाव विभोर हो उठती है। अनेक विपत्तियों में प्रभु ने रक्षा की। अभी–अभी अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से अर्जुन और उत्तरा के गर्भ परीक्षित को भी बचाया। अनगिनत उपकार हैं भगवान् श्री कृष्ण के पृष्ठावलोकन शैली में। कृतज्ञता भाव के साथ कहती है वह भागवती कुन्ती– प्रभो। कितना गिनाऊँ हे नाथ। मैं बार–बार विपत्तियों से अपने पुत्रों के साथ आपके द्वारा बचायी गई। जब–जब विपत्ति आई तब–तब स्वयं भगवान् का दर्शन दिव्य रूप का दर्शन लाभ प्राप्त हुआ।

**विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शना–**
**दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।**
**मृधे मृधेकनेकमहारथास्त्रतो**
**द्रौव्यरस्त्रतश्चास्म हरेभिरक्षिताः।।**

1. विष से 2. लाक्षागृह की भयंकर अग्नि से 3. हिडिम्ब आदि राक्षसों की दृष्टदुष्टि से 4. धूर्तों की धूर्तसभा से 5. वनवास के कष्ट से 6. युद्धों में बार–बार महारथियों के अस्त्र से और अभी अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भी आपने ही रक्षा की।

---

***उत्तर प्रदेश पुलिस सेवा, राष्ट्रीय वीरता पुरस्कार प्राप्त।**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

26 श्लोकों में कुन्ती भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करती है। अनेक छन्द प्रयुक्त हैं– अनुष्टुप् उपजाति, वंशस्थ आदि। स्तुति का प्रारंभ अनुष्टुप् में होता है सर्वव्यापी प्रभु के नमस्कार के साथ–साथ

**नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्**
**अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्।।**

कुन्ती अपने हृदयेश के प्रति स्तुति–नमस्कार से प्रारंभ करती है नमस्कार से ही अन्त भी करती है। यह नमस्कार की घटना बड़ी विलक्षण है। दोनों जगह प्रारंभ और अन्त में नमस्कार, नमस्ते से प्रारंभ भगवन्नमस्ते से अन्त। नम प्रह्वत्वे शब्दे च धातु से नमस्ये और नमस्ते शब्द बनते हैं। नमस्कार में प्रह्वत्व भावं है। अहंकार का विगलन हृदय का झुकना और अपने हृत्प्रदेश में महान् गुणों का आवाहन प्रह्वत्व भाव है। पहले अहंकार का विनाश होता है। प्रभु चरणों की स्मृति आते ही मन विगलित हो जाता है। हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा नमस्कार के साथ अपने उपास्य के प्रति समर्पित होने लगती है। जैसे ही यह समर्पण प्रारंभ होता है वैसे ही हृदय अथवा भक्त मानस उन गुणों की ओर बढ़ने लगता है। उस स्थान की ओर प्रतिष्ठित होने का चरण न्यास करने लगता है, जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता। नमस्कार उस महाशक्ति महाप्रभु के साथ स्वात्मविलयन की घटना है। यह एक विलक्षण घटना है जिसमें दक्ष व्यक्ति मात्र अहंकार को छोड़कर सब कुछ प्राप्त कर लेता है। कुन्ती के साथ भी ऐसा ही घटित हुआ।

भक्त की याचना भी बड़ी विलक्षण होती है। साक्षात् भगवान् नारायण सारा खजाना देने के लिए सामने खड़े होते हैं लेकिन भक्त को कुछ और काम्य है। भक्त अपनी सारी क्रियाओं का सम्पादन अपने स्वामी के चरणों में बैठकर ही करना चाहता है, एक क्षण भी प्रभु का वियोग उसे सह्य कहां है? देखें भक्तिमती कुन्ती क्या कहती है–

**विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।**
**भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवकारणम्।। 1.8.25**

जगद्गुरु हमारे जीवन में सदा पद–पद पर विपत्तियाँ आती रहें क्योंकि विपतियों में ही आपके निश्चित रूप से दर्शन हुआ करते हैं और आपका दर्शन मात्र प्राप्त हो जाए, बस क्या कहना? जन्म मृत्यु के चक्कर से व्यक्ति सद्यः मुक्त हो जाता है।

भगवान् भी बड़े विलक्षण हैं। उनके पास जाने के लिए कोई योग्यता की आवश्यकता नहीं। अहंकार, ऐश्वर्यवाद जब तक रहते हैं प्रभु की स्मृति कहां आती है? साक्षात् दर्शन तो बहुत दूर की बात हो गई। कुन्ती कहती है हे प्रभो आप तो अकिंचन गोचर है–अकिंचन को दिखाई पड़ते हैं। अकिंचन का अर्थ है अनन्य भक्त। जिसके मन में प्रभु चरणों के प्रति अनुराग को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। वह अकिंचन है। टीकाकार श्रीधर स्वामी कहते हैं–नास्ति परमार्थतयाभिप्रेतं भवताऽन्यत् किंचनापि वस्तु येषां ते अकिंचना एकान्तभक्ताः तेषां गोचरम् विषयम्। अन्य संस्कृत के टीकाकारों ने भी ऐसा ही अर्थ किया है। भगवान् उसी के पास जाते हैं, जो भगवान् का अनन्य भक्त होता है। कुन्ती अनन्य भक्त थी। भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर उसके हृदय में किसी का अधिवास नहीं था।

सहज ऋत पवित्र समर्पित और अनन्य भक्त ही भगवान् को प्रिय है। कुन्ती की स्तुति में अनेक



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थलों पर भक्त, भक्ति और भगवान् के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। भक्त श्रद्धावान् एकनिष्ठ कृपालु अनन्य एक अकिंचन होता है।

कलियुग में सभी साधनों में भक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है। प्रभु चरणों में अविच्छिन्न अनुराग भक्ति है। स्नेहपाश का भजन और प्रभुचरण में अनन्यरति भक्ति है। कुन्ती बड़ी मार्मिक भाषा का प्रयोग करती है:–

**त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मपतेऽसकृत्**
**रतिमुद्वहतादद्धा गंगेवौघमुदन्वति।।**

अर्थात् हे कृष्ण। जैसे गंगा की अखण्डता समुद्र में गिरती है वैसी ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे। यह अनन्यता अखण्डता अटूटता ही भक्ति है।

भक्त अपने भगवान् की विविध लीलाओं का बार–बार स्मरण कर तृप्त होता है, प्रसन्न होता है। कुन्ती की स्तुति में ललित और उदात्त बालक और विराट के उभयपक्षीय सौन्दर्य का दर्शन होता है।

भगवान् सर्वव्यापक हैं, सर्वभयहारक हैं दिव्य हैं, महान् हैं अनन्त हैं यह सब उदात्त और भव्य सौन्दर्य है। कुन्ती ज्ञानी भी है और स्त्री भी है। स्त्री सहज सुलभता को वह कभी नहीं छोड़ती है। अपनी स्तुति में भी वह भगवान् के उस बाल लीला पर ही रीझ जाती है जब यशोदा मइया ने कृष्ण का कान पकड़ा था और कृष्ण डर गए। वाह रे भक्त–भगवान् की लीला। जिससे मृत्यु भी भय खाती है वही परमेश्वर आज एक स्त्री से डर गया। कुन्ती इस ललित प्रसंग को याद करना नहीं भूलती। यही तो कृतज्ञता की दशा है अपने स्वामी के हर गुणों को याद करना। वसन्ततिलक छन्द की रमणीयता कुन्ती की भाषा को और रमणीय बना देती है–

**गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावत्**
**याते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम्।**
**वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य**
**सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति।।**

काव्यास्त्रीय परिधि में कुन्ती–स्तुति को देखने से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इस स्तुति काव्य में वे ही अलंकार और छन्द प्रयुक्त हुए हैं जो कृतज्ञता के क्षण में सहज ही स्फूर्त होते है। उपमा, रूपक, काव्यलिंग, परिकर, भाविक, उदात्त, दृष्टान्त आदि अलंकार अहमहमिका से उपस्थित हुए हैं। उदात्त, अनुप्रास, काव्यलिंग, परिकर, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारो से संबंधित श्लोक द्वारा ही यह स्तुति प्रारंभ होती है। न लक्ष्यसे में दृष्टान्त, कृष्णाय में साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग से परिकरांकुरालंकार, त्वमकिंचनगोचरम् में परिकर, मलस्येव चंदनम् में उपमा आदि प्रमुख अलंकार हैं।

आज के युग के लिए आधुनिक संसार के लिए जबकि केवल भय, डर का वातावरण विद्यमान हैं, उस दशा में भागवतपुराण के प्रथम स्कन्ध के आठवें अध्याय में वर्णित 26 श्लोकीय कुन्ती–स्तुति अद्भुत प्रभावकारी है। प्रतिदिन के पाठ मात्र से सारे विघ्न, पाप बाधाएं समाप्त हो जाती है। ह्रदय में सात्विक–सामर्थ्य की उत्पत्ति होती है। यह स्तुति भक्तों के लिए ह्रदयहार के समान है। प्रभु का कृपा–प्रसाद इस स्तुति के पद–पद में विद्यमान है।

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# समयसार में भेद–विज्ञान–निरूपण

श्रीमती रेखा यादव*

दर्शन के प्रश्न गहरे चिन्तन से अभिप्रेत हैं। दर्शन का लक्ष्य सत्य की खोज करना और उनकी उपलब्धि का प्रयास करना है। सत्य का स्वरूप निरपेक्ष अपरिवर्तनीय है या सापेक्ष परिवर्तनीय? सत्ता एक है या अनेक? ज्ञाता–ज्ञेय, विषयी–विषय, आत्म–अनात्म भेद क्या है? इसका स्वरूप क्या है? पूर्व और पाश्चात्त्य दोनों दर्शन परम्परा में उक्त प्रश्न चिन्तनीय रहे हैं। भारतीय परम्परा प्रमुख रूप से आध्यात्मिक रही है, जिसका मुख्य लक्ष्य आत्मतत्व–निरूपण है। आत्म दर्शन का अर्थ है आत्मा से आत्मा का दर्शन। यह आत्मज्ञ स्थिति शुद्ध द्रष्टा भाव है जो हमें विषयातीत अनुभव की ओर ले जाता है जिसे हमारे ऋषियों ने साक्षात् अनुभूत किया है।

आचार्य कुन्दकुन्द की गणना ऐसे ही साक्षात्कार को अनुभूत करने वाले ऋषियों में होती है। आचार्य कुन्दकुन्द आत्मतत्त्व–निरूपण करते हुए भी समन्वयात्मक दृष्टि के आग्रह की अपेक्षा रखते है जिसमें ऐकान्तिक एकत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व तीनों ही दृष्टियों से सर्वथा मुक्त चिन्तन है। आचार्य कुन्दकुन्द के दर्शन में भेद–विज्ञान की अनुपम ज्ञान पद्धति का दर्शन होता है जो ज्ञान और व्यवहार दोनों पक्षों के समाधान प्रस्तुत करती है।

**समयसार** आचार्य श्री के कर्तृत्व से उपजा अनुपम फल है। जो प्राकृत भाषा में लिखा गया है। समयसार में जैन आगमों के दर्शनतत्त्व की गहराई का बोध उपलब्ध होता है। जो अन्य दर्शन परम्पराओं से स्पर्श करता हुआ भी अपने दर्शन के वैशिष्ट्य को बनाये रखता है। वैसे तो आचार्य कुन्दकुन्द की दृष्टि में विवेचन सम्बन्धी मौलिकता का बोध होता है परन्तु इसके सूत्र जैन आगमों में उपलब्ध हैं। जैन आगमों में निश्चयनय प्रसिद्ध था तथा निक्षेपों में भावनिक्षेप भी प्रसिद्ध था। भावनिक्षेप की प्रधानता से निश्चय का आश्रय लेकर आचार्य ने जैन दर्शन के तत्त्व को तत्कालीन दार्शनिकों के समक्ष नये रूप से प्रस्तुत किया।[1]

भेद–विज्ञान का अर्थ है आत्म व अनात्म का भेद, आत्मा व शरीर के प्रति भेद दृष्टि। ज्ञान की प्रक्रिया में इसे ज्ञाता–ज्ञेय, विषयी–विषय भेद के रूप में भी समझ सकते हैं जिसकी चर्चा कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य अपने आलेख में भी करते हैं। यह विषय को समझते जानते हुए विषय चेतना को भी विषय रूप में देखने की दृष्टि है जो अन्ततः अपने सविषयक स्तर को पार करते हुए शुद्ध विषयातीतता का साक्षात्कार करती है। यही आध्यात्मिक दृष्टि है। यह आत्माभिमुखी दृष्टि है। जीव–अजीव का भेद न

*व्याख्याता, दर्शन शास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानना आत्मा अनात्मा का भेद जानना बहिर्मुखी दृष्टि है। जो व्यक्ति पदार्थ में, जड़ में मूर्च्छित रहता है, उसका दृष्टिकोण भौतिक होता है और जो आत्मानुभूति में जीता है उसका आध्यात्मिक। अन्तर्मुखी होकर ही व्यक्ति अपनी परतन्त्रता के कारणों को समझ सकता है। इसी प्रक्रिया में उसे शुद्ध वास्तविक स्वाभाविक दृष्टि प्राप्त होती है। यही तत्त्व–ज्ञान की दृष्टि है। उक्त तत्त्व–ज्ञान की दृष्टि ही मोक्ष प्राप्ति में सहायक है तथा इसका अभाव ही बन्धन की अवस्था है। समयसार में तत्व ज्ञान प्राप्त आत्मा को ही समयसार संज्ञा दी गई है। जो नयपक्षातिक्रान्त निर्मल आत्मा है। समयसार के प्रारम्भ में ही आत्मविषयक दो दृष्टियाँ उपलब्ध होती हैं। आचार्य कहते हैं जो जीव दर्शन, ज्ञान और चरित्र में स्थित है उसे स्वसमय जानो और जो पुद्गल कर्म प्रदेशो में स्थित है उसे परसमय जानो।[2] समयसार में समय से तात्पर्य आत्मा और कभी–कभी सामयिक भी किया जाता है।[3] समयसार का लक्ष्य शुद्ध एकत्व विभक्त आत्म दर्शन है, जिसके अनुसार अपने गुणों के साथ एकत्व के निश्चय को प्राप्त करने वाला शुद्धात्मा ही उपादेय है तथा कर्मबन्ध के साथ एकत्व प्राप्त करने वाला आत्मा हेय है।

इस भेद–विज्ञान की दृष्टि में एक पक्ष आत्म–स्वातन्त्र्य की दृष्टि है जो चेतन अस्तित्व के गहनतम स्तरों को छूती हुई विषयातीत हो जाती है, यह शुद्ध निश्चय की दृष्टि है। दूसरा पक्ष व्यवहार नय है जिसमें हम विभाव परिणमन को जानते हैं, यह परतन्त्रता की दृष्टि है। आचार्य कुन्दकुन्द ने दोनों ही दृष्टियों को हमारे समक्ष रखा है और समग्रता की दृष्टि का निर्देश दिया है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में व्यवहार नय और निश्चय नय सत्य की खोज की दो दृष्टियां है और दोनों ही सत्य हैं। किन्तु हमें व्यवहार की सच्चाई को अन्तिम सच्चाई नहीं मानना चाहिये। हमें व्यवहार नय से निश्चय नय की सच्चाई तक जाना है। अगर निश्चय नय पर इतना बल नहीं होता तो हम धर्म के मामले में स्थूल होते।[4]

जैन दर्शन द्वैतवादी, बहुत्वादी, लोकवादी तथा क्रियावादी दर्शन है जहाँ मानवीय पुरुषार्थ को केन्द्र में रखा गया है। समयसार में यथोचित नय के माध्यम से विषयवस्तु का निरूपण किया गया है। समयसार में जीव–अजीव भेद को स्पष्ट करते हुए उनके स्वरूप की व्याख्या की गई है। जीव स्वतन्त्र है, चेतनामय और शुद्ध उपयोगमय है। परमार्थ जीव–रसरहित, रूपरहित, गन्धरहित है, इन्द्रियों से अगोचर है। चेतनागुण से युक्त है। किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा जिसका ग्रहण नहीं होता और जिसका आकार बताया नहीं जा सकता, उसे जीव जानो।[5] वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यन्त भाव व्यवहार नय से जीव के होते हैं। परन्तु निश्चय नय के मत में उनमें से कोई भी जीव नहीं है।[6] इन वर्णादिक भावों के साथ जीव के सम्बन्ध की तुलना दुग्ध और जल के सम्बन्ध से की गई है।

---

1. कुन्दकुन्दाचार्य की प्रमुख कृतयों में दार्शनिक दृष्टि, प्रस्तावना, पृष्ठ सं. 25
2. समयसार 1–2–2
3. मूलाचार 7–23
4. समयसार–निश्चय और व्यवहार की यात्रा पृष्ठ 74
5. समयसार 2–11–49
6. समयसार 2–18–56



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निश्चय नय से आत्मा में पुद्गल का कोई गुण नहीं है। वह रस, रूप, गन्ध, शब्द रहित है उसका ग्रहण सिर्फ अनुभव से होता है। व्यवहार नय से आत्मा में पुद्गल के गुण कहे जाते हैं। जब व्यवहार नय से चेतन आत्मा और पुद्गलात्मक देह की अभिन्नता विषय बनती है तो उन दोनों को अभिन्न समझने के कारणों का और अभिन्न से उत्पन्न परिणामों का विश्लेषण करने से व्यवहार नय की सीमाओं का व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है। सीमित की सीमिता को जानकर ही असीम की ओर प्रस्थान किया जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द व्यवहार नय की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–जिस प्रकार अनार्य को वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिये उसी की भाषा में ज्ञान कराया जाता है उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश शक्य नहीं है।[7]

संसारी जीवों के संसार में भ्रमण का कारण उनकी राग–द्वेष परिणिति है। इस परिणिति का मूल कारण भेद–विज्ञान का अभाव है। भेद–विज्ञान के द्वारा जीव को स्व–पर विवेक का ज्ञान होता है। यह आत्मा की अनात्म द्रव्यों से पूर्ण भिन्नता को जानकर ही अपने स्वभाव में परिणमन करता है। राग–द्वेष रूपी परिणमन ही कर्मबन्ध का मूल कारण है। समयसार के अनुसार आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावकर्म का कर्ता होता है। ज्ञानी ज्ञानमय भाव का कर्ता होता है और अज्ञानी अज्ञानमय भाव का[8] निश्चय नय के अनुसार मानसिक अशान्ति का कारण व्यक्ति और वस्तु नहीं है, राग है। व्यवहार नय की अपेक्षा से इस कारण को व्यक्ति और वस्तु जाना जाता है। समयसार कर्म के वास्तविक कारण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। अज्ञानी आत्मस्वभाव को नही जानता है। उसे स्व–पर विवेक का भान नहीं होता। वह आत्मा और राग को एक ही मानता है और उस कर्म के फल का सुख–दुःख रूप से अनुभव करता है।

ज्ञानी आत्मज्ञ होता है जिसे व्यवहार नय की दृष्टि से सर्वज्ञ कहा जाता है। ज्ञानी के भाव ज्ञानमय होते हैं अतः वह कर्म के फल का दाता, द्रष्टा होता है उसे सुख दुःख रूप से अनुभव नहीं होता। कषाय के कारण ही पुद्गल कर्म का आत्मा से संयोग होता है। यही आस्रव है। स्व–पर विवेक के अभाव में जीव इन पुद्गल–जनित कर्मों और कर्मजनित कषायो का कर्त्ता होता है। इसी प्रकार जब वह लोक में अन्य क्रियाओं में प्रवृत्त होता है तो उसे अपने कर्तव्य का अहंकार होता है। भेद–विज्ञान जानने वाला ज्ञानी अनुभव करता है मैं एक हूँ शुद्ध उपयोगमय हूँ। दर्शन अरूपी हूँ, कोई अन्य परमाणु द्रव्य मेरा नहीं है। समयसार के अनुसार जो भी जीव आत्मा और आस्रवो का लक्षण तथा भेद जान लेता है उसको कर्मबन्ध नहीं होता। जीव और पुद्गल के परिणाम में निमित्त–नैमित्तिक भाव है।[9] जीव के स्वभाव परिणमन में पुद्गल हेतु नहीं होता बल्कि विभाव परिणमन की अपेक्षा से पुद्गल निमित्त है। इसी प्रकार पुद्गल का परिणमन उसके स्वभाव की अपेक्षा से है, वहाँ जीव उपादान कारण नहीं है।

---

7. समयसार 1–8–8
8. समयसार 3–58–126
9. समयसार 3–32–100



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भेद विज्ञान को जानने वाला दोनों नय की अपेक्षा से कथन को मात्र जानता है, वह किसी भी नय पक्ष को ग्रहण नहीं करता, यही सम्यग् दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि शुद्ध उपयोग की दृष्टि है। यह शुभ–अशुभ से निरपेक्ष दृष्टि है। शुभ कर्मबन्ध से भी आसक्ति होती है। मुमुक्षु को इसके प्रति सतर्क रहना चाहिए। उसे शुभोपयोग अशुभोपयोग से मुक्त रहते हुए शुद्धोपयोग आत्मा का द्रष्टा होना होगा।

भेद–विज्ञान आध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हम कर्मचेतना और फलचेतना को तो जान लेते हैं परन्तु ज्ञान चेतना से अनजान रहते हैं। ज्ञान चेतना को जानने के लिये भेद–विज्ञान की दृष्टि महत्त्वपूर्ण है। भेद–विज्ञान कर्मफल भोगने की कला है सामञ्जस्य का सूत्र है। जिसका प्रयोग कायोत्सर्ग है जिससे आरम्भ करके ही हम प्रेक्षाध्यान की पद्धति को ग्राह्य बना सकते है।

इस प्रकार समयसार की दृष्टि हमें तत्त्वज्ञान की एक गहरी दृष्टि उपलब्ध कराती है जिसमें उपनिषदीय परम्पराओं से निकटता भी प्रतीत होती है परन्तु इस दृष्टि की अपनी वैयष्टिता बरकरार है। अद्वैतवादी दर्शन में तो अनात्म–आत्म द्वैत पारमार्थिक स्तर पर शुद्ध आत्मतत्व में घटित हो जाता है। सांख्य दर्शन में आत्म–अनात्म द्वैतवाद है व वास्तववाद है परन्तु वहां पुरुष निर्विकार, गुणातीत, द्रष्टा मात्र है। प्रकृति कर्त्री है। परन्तु समयसार में आत्मा शुद्ध स्वाभाविक रूप में भी स्वभाव परिणमन युक्त है। वह द्रष्टा होने के साथ साथ अपने भावों का कर्ता भी है।

व्यवहार व निश्चय दोनों दृष्टियाँ सत्य को जानने की हैं। समयसार की दृष्टि में ज्ञान और ध्यान ज्ञान और क्रिया दोनों पक्षों के प्रति आदर है। यहाँ जीवन व्यवहार के पक्ष की उपेक्षा नहीं है बल्कि यहाँ मूल्यपरक दृष्टिकोण है जो हमारे पुरुषार्थ से जागता है। यहाँ अनुभव को दूसरों को बताने के लिये नय की अपेक्षा भी है और शुद्ध आत्मावस्थिति भाव का अनुभव भी है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**

1. समयसार–समय प्रमुख आचार्य विद्यानन्द मुनिराज सम्पादक पं. बलभद्र जैन प्रकाशन जैन विद्या संस्थान श्रीदिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी
2. समयसार–निश्चय और व्यवहार की यात्रा–युवाचार्य महाप्रज्ञ
3. कुन्दकुन्दाचार्य की प्रमुख वृत्तियों में दार्शनिक दृष्टि–डॉ सुषमा गांग

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# SAIVA SIDDHANTA - THE PHENOMENOLOGY OF GRACE

**Dr. Rama Ghosh***

Shaiva Siddhanta, one of the three prevalent schools of Saivism at present. undoubtedly a highly developed, elaborate and a most valuable among all the forms of devotional religion, is according to Sir John Pope uniquely southern Tamil religion that represents one of the most systematic expressions of the theistic spirituality of India. It proclaims the truth of Grace and places it at the top of the causes of every achievement. It emphatically asserts the impossibility of spiritual life without Grace. Indeed, there is the element of Grace in almost all the theistic religions of the world but it is so convincingly established in Shaiva Siddhanta that it at once arrests the attention of the students of religion and philosophy. Commenting on the system Macnicol observes, "the breadth and dignity of this doctrine and its deep sense of the gracious character of God give it a place apart from other systems which have arisen in India." Though Shaiva Siddhanta has a very systematic metaphysical exposition, it is fundamentally and primarily an exposition of the doctrine of Grace. Shiva-jnana siddhiyar, one of the most fundamental scriptures of Shaiva Siddhanta, chants -

> **"His form is Grace; His attributes are Grace; His limbs are Grace and His Grace is all for the soul and not for Himself."**

There is no denying the fact that Shaiva Siddhanta has a distinct position among the philosophical expositions of the concept of Grace. There is 'hardly any book so eloquent on the concept of Grace as Tiruvarulpayan, one of the fourteen canonical works, by the saint Umapati Shivacarya. It is undoubtedly a most valuable exposition of the doctrine of Grace as the guiding principle of the destiny of souls.`

Though Shaiva Siddhanta admits three realities as 'co-existent they are not equal. God is all-pervading and omnipresent consciousness, the in-dweller in everything in theform of knowledge as the letter 'a' is inherent in all vowels Since God is 'unequal', nothing in the world is comparable with Him. He is transcendent beyond everything and is of the nature of Grace which is inseparable from the Lord. Grace, the power of God bestows in ultimate end to devote souls. The incomparable Lord is unique in nature as the subtler than the subtlest and the greatest of the great who confers the priceless gifts to souls who seek union with Him. Besides being the author of the creation, preservation

---

***Director, Shaiv Bharati Shodh Pratisthan, Jangamwadimath, Varanasi**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

and destruction, God is the substratum, the refuge of all. He is formless in the true sense though he graciously allows the devotee to enjoy His glory in the form of knowledge. He is the omniscient Supreme Being, the bestower of knowledge to aspiring souls. He transcends everything but at the same time remains inseparable from them as heat from fire and imparts justice by protecting His devotees. To be faithful and devoted to the Lord is the supreme way of life as God is ever merciful towards His devotees. Dedication brings the long cherished fruit of the union with God. He is the antidote of the primordial anava or atomic limitation and bestows true knowledge to release the soul from its bondage. God as Consciousness, both transcendent and immanent is the redeemer of the soul.

In order of merit the soul comes next to the Lord. It is in its true nature lustrous and of all-pervading consciousness, though beginninglessly enve-loped in the grip of the primordial limitation - the anavamala. Souls lack in their capacity to get release from the clutches of anavamala that over- shadows their consciousness and creates the darkness of Ignorance, so much so that they lie dormant like an unconscious entity. The grip of anavamala is so strong that souls cannot be free from it until God, out of compassion, redeems them. Shiva creates this world with Maya, the primordial material cause called the parigraha iakti and provides the souls with tana, karana, bhuvana, and bhoga - respectively - the body, sense organs, world, and its experiences and they obtain the true knowledge i.e. the world is false. God endows the soul with karma, the principle of action to enable it to perform actions and have experiences of the world. It is to be noted here that though God out of mercy creates the world and allowssouls to have proper knowledge of the world of objects by keeping them within the activity of maya and karma for their growth, yet owing to its close association with maya they are unable to obtain knowledge of their real nature. Due to attachments to anavamala souls are not aware of the eternal presence of God in the form of knowledge within themselves. According to the actions performed and the results obtained thereof, souls are divided into three categories, namely, sakala, pralayakala and Vijnanakala respectively those who have all the three defilements - maya karma and aljzava, those who have shed themselves and those who have only anavathe primordial limitation. Souls, according to Shaiva Siddhanta, are described as sadasat as they remain either with the real, namely Shiva or with the unreal, that is the world or Maya. The innumerable all-pervading conscious spirits when fettered are named pasu, animal. The beginningless state of the soul is the utter envelopment with the primordial defilement mala, limitation that completely covers its light of consciousness turning it into a dormant, finite, embodied, immobile spirit, incapable of being enlightened because of inability by its own initiative to remove the darkness of Ignorance. The soul is not only darkened with Ignorance but also loses its power to_ get free from it. As consciousness is totally obscured, it is not even aware of its fallen state. Thus Grace is the only remedy that shines as the true knowledge that can enlighten souls. Grace alone is capable of dispelling the darkness of impurity and bestows the Bliss of union with the Divine Feet.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

These are three fetters that bind the soul. Literally anava means atonic, finitude and is the real original positive "dirt" mala more powerful than darkness; while darkness veils all objects but reveals itself, anavamala, the primordial defilement obscures the light of consciousness of the soul beginninglessly. Mala is present as a congenital ingredient of the self veiling its vision and action like the green pigment on copper which is inherently present in that metal forming, as it were, its necessary part of being as ultimate. Hence it is not only the negative entity as mere absence of knowledge but also pervades the fettered being with the knowledge of the soul as a positive entity, obscuring its essential lustre and making it like a dormant thing and depriving it of any sort of initiative in the process of purification. Anava is a total darkness, the real finitude that envelops the soul beginningless. Umapati in his famous scripture Sivprakasan says that just as the mercurial pill (iraca kulikai) has the power to remove the natural rust from copper, so the power of God (catti) can remove the veil created by anavaf The relation between the soul and the anavamala is not that of substance and attributes, rather anava is co-eval like the rusty coating of the pure copper or of the husk in paddy to rice. Unlike maya and karma anava is a complete darkness, always creates hindrances and obscures the consciousness of souls.

Etymologically maya which is the second fetter means that from which everything comes out and to which everything goes back. 'Ma' stands for involution and 'Ya' for evolution. The question arises as to whether maya is capable of creating the world on its own. The Siddhantin's reply is quite clear. He emphatically asserts that maya is inert and so cannot emerge on its own. God's will, being of the nature of compassionate intelligence, energises maya for the benefit of souls i.e. to impart the true knowledge to them who are essentially of the nature of all-pervading consciousness, but fallen and trapped in the grip of anavamala. The root 'ma' signifies the 'unfoldment' as well as 'cunningness' and points out to the diametrically opposed and paradoxical character of maya Will of God energises it and uses it for the benefit of the soul as said above. The body and the world which the soul inhabits are nothing but the evolutes of delusive maya. Maya distracts the attention of the soul and creates a state of confusion which is detrimental to its spiritual life. Maya is the stuff or the material source of the creation by which as said above: God provides the soul with tanu, karma, bhuvana and bhoga, i.e. body, sense organs as the instruments, world of experiences and the enjoyment of the fruit of past deeds. Though one, maya expresses itself in manifold ways creating confusion for the soul. The nature of maya is subtle, indestructible, one, formless, all pervasive, eternal and inert. Though non-intelligent, yet being controlled by the power of God, it is the source of enlightenment also. It serves the purpose of a thorn that has been used by God to rescue the soul from its original malady. Maya and karma are not total darkness, rather partial illumination. They stand in need of an intelligent efficient cause which being an underlying principle, may be the author and director of the whole process. Of all the evolutes of maya, antalgkararya, the inner instrument is psychical, while others are physical developments. Maya, in its original state, is called the suddha-maya, the pure stuff emerging from this state, it assumes the subtle state



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

named as asuddha or impure maya. Further it becomes gross and mixed with karmamala and, is named prakrti maya. Pure and impure maya cause pleasure and pain as well as produce perfect and imperfect knowledge, also pure and impure realms (suddha and asuddha prapancha) respectively.

God's Will, the underlying principle, actively participates, in the function of knowledge by standing as the 'ground' - the condition and throwing a positive light of knowledge so that the soul is able to differen- tiate between the real and the unreal. Thus the will of God energises, controls and guides the world of maya as well as the life of soul. To serve the different purposes of the different souls, maya has been envisaged to manifest various categories of evolutes viz. suddha maya that produces the pure realm - the sphere of sounds which causes the evolution of words, letters, the mantras, tattvas etc. Suddha maya is called Mamaya, Kundalini, Bodha, Sakti, Bindu etc. and produces the evolutes of different combina~tions and permutations are: Suddha maya, nada, bindu, sadaichaya, maheshvari and suddhavidya. The evolutes, all combined, are called Shivatattva or Preraka-kanda, directly controlled by God. Asuddha maya or Adhomaya causes the world of impure, mixed realm having the evolutes with form and without form which are: tanu, karana, bhovana, bhoga i.e. body, senses, world and its enjoyments. Panchakanchakas i.e. five sheathes namely kala, niyati, kala, vidya and raga are the evolutes of asuddha maya. Prakrimaya also known as Mutaprakriti and Avyakta is the combination of the three guna's viz. sattva, raj as and tamas and the source of twenty four evolutes viz. three internal organs (intellect, mind and ego), ten external organs, (sensory and motor), five subtle elements (mahabhutas). Purusa-tattva which produces the sense of agency is another evolute of the impure maya. Thus there are thirtysix products of maya (6 shiva tattvas, 5 Kanchukas, 25 prakriti tattvas) that act in such a way that they provide the training ground for the soul to cast off its bondage and acquire the true knowledge of the world as the transitory, perishable, inert, delusive, object of empirical experience and consequently urges the search for the eternal truth. Shiva himself is the agent of suddha maya, Sadashiva acts upon the asuddha maya, while Rudra brings forth the evolutes of prakritimaya. Shiva is the ultimate controlling agent, all the other act under his guidance. The souls who are advanced in spiritual life but have not attained liberation for want of necessary perfection are adhikara muktas and apara muktas should have their abodes provided by suddha maya which being pure produces pleasure alone and asuddha maya which provides both pleasure and pain according to the action performed by the soul.

## KARMA

Karma is one of the three fetters which has been provided to the soul to enable it to enjoy the objects of the world, it is beginningless. Karma, according to Indian philosophy, means "deeds" as well as the 'fruit of deeds'. It signifies a law that one has to reap the consequences of one's actions. One acts in order to enjoy and while enjoying another karma is created. Thus the chain continues. Shaiva siddhanta maintains that karma as a law is a dispensation by God to soul to get



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

free from the 'original bondage, viz. the anavamala. By conferring reward and punishment, God makes the soul realise the futility of its experience in the world. Karma is the means by which God forces the soul to regularise its life. Karma thus is the expression of Divine justice.

At God's command the soul experiences pleasure and pain and consequently accepts the good rejecting the evil. God is the ordainer, the law-giver and the soul is the observer of the law. As the lotus blooms in accordance with certain conditions, so also the soul responds to the act of God according to its inner status. Gradations indicates the different spiritual status of the souls according to their respective inner advancement. In ascending the spiritual stages, inspiration springs from within the soul, by the grace of God and becoming satiated with the transitory experiences of the world, it turns towards God for eternal life. Understanding the futility of empirical enjoyment, the soul surrenders itself to God to enjoy the full freedom and bliss.

## TWO THEOLOGICAL FORMULATIONS OF IMMANENT GRACE

The concept of immanent Grace has been expressed in Shaiva Siddhanta by means of its doctrine of the Divine cosmic function and also by its doctrine of God as the inner revealer of soul's knowledge and experience. The self-concealing dynamism of the divine Reality is at work, cosmically speaking, in the operation of creation, preservation and destruction and individually it operates as the veiled condition of souls which makes possible their knowledge and experience of the world. The first is cosmological in significance having to do with the whence, where and whither of the world process. The second is of epistemological significance stressing that aspect of the Divine which serves as the hidden Logos informing knowledge and activity of the individual selves. Both are constituents of the' self-veiling function of the Divine which is preparatory to the function of self-revelation~ the transcendental Grace. Shaiva Siddhanta understands the cosmic play (lila) not in the general literal sense - a motiveless play but rather in the specific religious sense of Divine activity positively implying love. Love, ,on the one hand, symbolises negatively egolessness and on the other, positively unreserved self-giving. The figure that Shaiva Siddhanta chooses to depict divine activity, as dance. The great Lord, says the famous Shaiva Siddhanta text performs the beneficent cosmic operation in the form of dancing. The dancing form of God acquired in time a great theological significance in the history of the religion of Shaiva Siddhanta. A profound interpretation of the image, symbolising effortlessness, spontaneity, rhyth-mic activity and involvement combined with detachment has. also been given. God's bestowal of Grace consists in his eventual revelation of Himself, in the meanwhile bringing to fruition the latent capabilities of the individual selves, with a view to making them capable of receiving Shiva's self-revelation. The cosmic operations of God are to be accounted from the perspective of the fettered condition of souls. This underlies our under-standing of God as Grace. What would have been the situation if there was only the fettered condition and no cosmic operation of a benevolent Deity?

The primordial defilement of individual spirit would have continued for ever without even a possibility of removal. The spirit under defilement is precisely the one being in need of help. It thus



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

follows that the entire initiative for action rests with One who is intrinsically free from thecondition of bondage. The cosmic activity of creation etc. is gracious in the sense that it makes possible for the individual soul to fulfil itself by overcoming what has been obstructing its fulfilment.

## TRANCENDENTAL GRACE

God's activity is to be understood at two levels, namely, immanent and transcendent. Before the condition of bondage can be ultimately removed by the descent of Divine Grace, the pre-conditions of the descent, that is to say, those things by which the occurrence of the descent of Grace can become possible, have also to be provided by Grace. Even though Divine Gracelis unconditional (nirhetuka) and a free act, it is conditioned by one's readiness or openness to receive However paradoxical it may sound, it is God alone who fulfils the conditions necessary for His own action to become effective. The ultimate descent of Grace becomes intelligible only if Grace functions prior to the descent. Shaiva Siddhanta theology uses the figurative language about revealing and concealing to indicate the differ-ence between these two levels or dimensions of Grace. Grace operates initially concealing itself and then at the opportune moment comes out as revelatory. Such is the transcendental Grace which is exemplified in the performance of the 'micro-cosmic' operation called the bestowal of Grace (anugraha). As God is all Grace (uruvarul), it is quite logical and natural for Him to offer all help to the soul in distress in bondage. Thus Shaiva Siddhanta may very aptly be described as the phenomenology of Grace.

## References

1. Tirunarulpayan. I. 1.
2. Padam uttridum ~ Sivaprakasan, 19.
3. Slivaprakasam, 20.
4. Ibid.
5. Sivajnava Siddhiyar, supakkam, V. 7.
6. Sivajana Siddhiyam, supakkam, XI. 8.

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# DIVINE GRACE ACCORDING TO THE ADVAITA SAIVA SCHOOL OF KASHMIR

**Dr. Debabrata Sen Sharma***

The theory of Saktipata (the descent of the Divine Conscious Force as Grace) constitutes an integral part of the scheme of spiritual discipline (sadhana) envisaged by the Advaita Saiva writers of Kashmir. Before we discuss this important concept and evaluate its place in the scheme of the spiritual discipline prescribed by the Kashmir Saivites, it would perhaps be fruitful to look for the presence of a similar theory, if any, in the field of spiritual discipline laid down by other schools of Indian religio-philosophical thought. We begin our search with the principal Upanishads. Two pithy statements, occuring in the Isavasyopanisadand the Kathopanisad appear to be very significant in this context. It has been said in the form of a prayer in the Isavasyopauisacle that "the face of the Truth (the Ultimate Reality) lies hidden by the golden lid. O Sun god, remove the veil so that we might get a glimpse of that Truth." The seer seeks the help from the Sun god for removal of the veil.

In the Kathopanisad Yama, the Lord of Death, tells Naciketa (symbolising the human disciple): "The Self cannot be realised (merely) by listening to discourses, by intellectual ratiocination or by deep study of the scriptures. It can be realised by one whom it (the Self) chooses -by him before whom the Self reveals itself."

These two passages from two well-known Upanishads replete with deep spiritual thoughts indicate that spiritual wisdom cannot be gained by one and all through their own efforts. It can dawn only in those select few who have developed the capacity to experience it. The Upanishadic seers recognised that the supreme spiritual knowledge is by its very nature beyond the grasp of man's limited intellect or discursive thought since it is nirvikalpa in nature i.e. free from the thought constructs. They therefore declare that "the highest reality lies beyond the reach of words and mind". Only those fortunate few who succeed in transcending the limitations of mind and developing within themselves the faculty of intuitive direct apprehension (pratibhca), get a vision of the Supreme Being or the Self. This shows that the Upanishadic seers tacitly recognised the necessity of Grace in some form or the other as a precondition for the revelation of the Supreme Truth or Being to spiritual adepts.

---

***Professor and Head, Philosophuy dept. Kurukshetra University, Hariyana**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

When we turn our attention from the Upanishads to the orthodox school of the Indian religio-philosophical thought to see if the doctrine of Grace figures in them in direct or implicit form, we find that except the Advaita Vedanta of Sankara, no other orthodox school leaves any room for grace in its scheme of spiritual discipline. Only the Sankara Vedantins indirectly admit the necessity of Grace flowing through the spiritual guide ( guru ) for the revelation of the true nature of Self in the pure intellect of the disciple. They hold that when the spiritual teacher utters the mahavakya (great sentences pregnant with deep spiritual wisdom contained in the Upanishads) namely, Tattvamasi (That thou art), he thereby arouses in the pure intellect of the disciple the supreme Knowledge that existed in dormant forms in him. This is because the Advaita Vedantins hold that the supreme Knowledge is not an intellectual knowledge that can be conveyed through words externally by the spiritual teacher to the disciple. It exists in every one in latent form and it has only to be awakened by the spiritual teacher in the disciple so that the latter may have its direct experience. The Advaita Vedantins thus indirectly recognise the necessity of Grace coming through the medium of the teacher to the disciple before the latter could embark on the spiritual journey to the ultimate Goal. This view advocated by the Sankara Vedantins is in conformity with the famous declaration made by the sage Yajnavalkya in the Brhaddranyaka Upanisad which reads thus -"The self should be (first) seen, (and then) heard (about from the teacher's lips) then deeply reflected and meditated upon."

When the Advaita Saiva writers of Kashmir talk about divine Grace as a prerequisite for the embarking on the path of spiritual realisation, it is in agreement with their metaphysical thought that has no parallel in the Indian religio-philosophical scene. It is proposed here to describe in brief the salient features of their metaphysical viewpoint relevant in this context.

The Advaita Saivites are staunch advocates of monism which, unlike that of the Sankara Vedantins' is not based on denial or negation, (neti,neti). They subscribe to a monism of an integral kind which, takes a realistic view of the world, and attempts at explaining its diversity as the manifestation of the unity of the supreme Reality. The monism which it upholds is an all-encompassing one, for nothing can exist outside Shiva. By virtue of this unique feature, their concept of supreme Reality is of the nature of Fullness-in-itself (pauipurna Svabhava).

The ultimate Reality or the supreme Being, technically called Parama Siva or the Paramesvara (Supreme Lord) is, according to the Advaita Saivites of Kashmir, endowed with divine Sakti which constitutes his essence? By virtue of this Sakti which is inalienable from his nature, he manifests himself as the Universe with its infinite variety out of his free will," without forsaking his real nature as the supreme Being and the Supreme Lord. The supreme Being thus has two forms in which he is seen to manifest himself - as immanent (visvatmaka) he permeates and pervades the entire creation, and at the same time, he is the transcendent Reality (visvottirna) that ever remains outside the manifested world, as such Siva is the Absolute or the anuttaraf Being endowed with divine Sakti, which is unrestricked in nature and technically called svatantra (divine Freedom),'" the Supreme Being is said to perform five functions perennially." These functions are nigraha (act



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

of self-limitation), srsti (creation), sthiti (preservation), samhéra (dissolution) and anugraha (grace)." He is said to perform these functions in cyclic order in such a manner that it is not possible to discern their beginning. But looking from the point of view of the manifestation of the world, the function of nigraha (self-limitation) must be regarded logically as beginning of the cycle of functions and anugraha (dispensation of Grace) as their culminating point.

The function or act of nigraha (self-limitation) is the most important one as this paves the way for the manifestation of the world. It is the first step towards the Supreme Being's self-manifestation (cibhcisa) as the Universe. It consists in his imposing limitation on himself or contracting his universal nature out of his own free and independent will. As a consequence of this act of self-limitation or voluntary self-contraction (sankoca) he is said to give up his all-pervasive form and assume the monadic form, the form of cidanu when he not only loses his unrestricted divine powers but also forgets his divine nature," as it were. He assumes, the form of a limited being, bereft of the divine powers, and is called a paiu (fettered being) or jiva (a mundane being). When this happens, he is covered by a defilement (mala) called the anavamala. This defilement is the first and foremost among the defilements that veil his true nature arising from his will to become many."

The function called creation (Sosti) is the manifestation of the universe comprised of thirty-four levels of creation together with infinite number of subjects, objects and the instruments of enjoyment on each of these levels of creation. Two levels of creation namely, the iiva-tattva and the saktitattva exist eternally just below Parama Siva and as such they lie outside the purview of creation though included in the list of 36 levels." The thirty-six levels of creation are again sub-divided under the subtle and gross realms of creation, technically called the suddha adhva (pure way) and the asuddda adhva (impure way)." '

The preservation, stithi, is that function of the supreme Being which consists in his maintaining the manifested universe for a period of time, while dissolution (pralaya) stands for that function whereby the supreme Being re-absorbs within himself his self-expansion (S[jara) 18 or self-projection as the universe.

It must be pointed out that the dissolution or re-absorption by Siva within himself of his self-projection as the universe does not imply the end of his perpetual self-manifestation as the universe. It only marks the end of a kalpa (cycle of self-manifestation) for the time being.

The Advaita Shaivites hold that the cycle of functions that started with nígraha or the voluntary imposition of limitation by the Supreme Being on himself must come to an end. For this, they conceive the function called anugraha or the descent of divine Grace on his self-contracted form of pam, (fettered being). They uphold that every fettered being must realise his essence i.e. Shiva-nature. This is the ultimate destiny of every fettered being, the culminating point of Shiva's self-manifestation as the universe. The descent of divine Grace plays a crucial role in the achievement of this ultimate end.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

The concept of divine Grace, technically called saktipaita can be looked at from two standpoints viz., from the point of view of the Supreme Being or Shiva, and also from that of the fettered being, the recipient of divine Grace.

As has already been pointed out Saktipata or the descent of divine Grace is an act of divine Freedom (svatantrya) on the part of the Supreme Being or Lord Shiva" who is considered to be the ultimate source of Grace. The showering of his Grace is one of his five principal functions referred to above which he is said to perform eternally as a part of his divine Play (kridé). The Advaita Shaivites therefore hold that divine Grace flows freely and perennially on the fettered beings in order to rescue them from the quagmire of their mundane existence. But it is not available to all immediately as they lack the capacity to hold it." The Advaita Shaivites of Kashmir therefore lay stress on the need of the spiritual adepts to develop the capacity or acquiring fitness (technically called adhikara) for the infusion of divine Grace.

The concept of divine Grace can also be considered from the point of view of the fettered beings, the recipients of the divine Grace. The fettered beings existing normally on different levels of creation in the impure realm (asuddha adhva) are equipped with bodies of gross or subtle material. They are therefore impure in nature and stay deeply entangled in the web of matter." In order that they may acquire fitness for receiving divine Grace from above, they are required to disentangle themselves from the clutches of matter by cultivating within themselves the sense of non-attachment in regard to mundane and heavenly enjoyments, purge their faculties or intruments, especially the intellect, of all impurities caused by the recidual impressions of their actions etc. and develop intense longing for the realisation of their true nature. They must open themselves to spiritual experiences which follow in the wake of the descent of Grace and their achieving withdrawal from mundane life. Such individual beings may expect to receive divine grace in due course. Here it must be pointed out that according to the Advaita Shaivites the flow of divine grace from the Supreme Lord to the fettered beings is not conditioned by the development of fitness in them as it is an independent act of the Supreme Lord's divine Freedom."

The Advaita Shaivites of Kashmir look at the problem of the fettered beings' acquiring fitness for receiving divine Grace from the point of view of the constitution of their being. Every embodied being is said to be enveloped by three kinds of defilements technically called - anavamala," mayiyamalam and the karmamala." As has been already mentioned the dnavamala is regarded by the Advaita Shaivites as the basic mala (defilement) which results from the Supreme Being's voluntary assumption of self contraction. The cinavamala not only conceals the divine nature of the supreme Lord but also imposes limitations on his universal nature, making him appear in the form of spiritual monad, (cidanu). The individual monads are then enveloped by the mdyiyamala on the level of the mciyci-tattva which creates the sense of division and deprives them of divine powers like omnipotence, omniscience, omnipresence etc. and makes them fettered beings in the true sense of the term." The fettered beings are then covered by kdrmamala that arises from the accumulated



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

residual impressions of actions performed by them in the previous cycle of creation, and lie in seed-form (bUarL2pa) on the level of the prakrti tattva which is practically the same as the Prakriti of the Sankhya Philosophy. As the kdrmik seeds cling to fettered beings on the level of Prakriti they are equipped by appropriate kinds of bodies."

The Advaita Shaivites hold that the individual spiritual adepts possess the capacity of removing the veil or cover caused by the karmamala through their personal efforts by elevating themselves, the level beyond Prakfti. They can also destroy the veil on their true self due to mayiyamala by raising themselves above the level of mfiyé through their intense and incessant efforts, they are however incapable of entering into the pure level of the spirit Shiva, technically called suddha adhva." The infusion of divine grace is essential for the destruction of the basic defilement, called nina- vamala which had deprived pasus of their essential divinity, reducing them to the state of fettered limited beings. The descent of divine Grace which follows from the operation of Shiva's anugraha (dispensation of Grace) by the supreme Lord, puts an end to their original self-imposed limitation or contraction (sarhkoca), restores, the divine powers that they lost and thus enables them to enter into the pure levels of creation, technically called the suddha adhva.

While discussing the concept of saktipata from the point of view of limited individual beings, Abhinavagupta has critically examined the plausible causes of the descent of Grace and their admissibility in his Tantrasara," Tantralokaw and the MalinivijayavarttikafA gist of the points made by him on this subject is given below:

Abhinavagupta says that if it is assumed that the descent of divine Grace on a fettered individual depends on the performance of the appro- priate kind of meritorious deeds by him, then this will lead to a difficult situation. For it is universally recognised that all our present actions are motivated and governed by our past actions since it is believed that all actions leave residual impressions on our mind which generate tendencies or motivating factors which necessarily follow from them. Since the chain of actions performed by an individual is beginningless it is impossible to single out a particular action which may be held responsible for inducing the individual being to perform a particular meritorious deed that might cause the descent of Grace on him. In other words the performance of meritorious deeds of a particular kind cannot be logically linked to the descent of divine Grace.

Some hold that karma samya i.e. the equipoise of the meritorious and the sinful deed, is conducive to the "rise" of spiritual knowledge (pratibhajriana) from within which the Shaivites consider to be an offshoot of the descent of the divine Grace. Abhinavagupta points out a flaw in this theory. He says that the residual impressions of meritorious deeds cancelling the residual impressions of the opposite kind of deeds would result in the dissociation of the individual being from a physical body as its continuance is dependent on the continuity of residual impressions of past deeds. If an individual being becomes disembodied as a consequence of karma samya, then



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

there will be no possibility of the awakening of the pratibhajftana (spiritual knowledge) from within him.

Some theistic schools of Indian philosophy e.g. Vaishnavites like Ramanuja and others assert that the descent of divine Grace is the outcome of the divine Will of the supreme Lord (paramesvareccha) Abhinavagupta points out two major defects in this theory. First, it is impossible for man living in the world to know about the Will of the Lord because man has no access to it. Secondly, even if one accepts this explanation by the theistic thinkers, they cannot rule out the possibility of some one attributing motive of partiality to the supreme Lord while showering his Grace on particular individuals.

The dualist Shaiva-siddhantins put forward the theory of maturation of defilements, technically called malaparipaka, in the individual spiritual seekers as conducive to the descent of divine Grace. Abhinavagupta rejects this explanation on three grounds. First, the defilements according to the Advaita Shaivites are not of the nature of substance (dravya) which could be subject to the influence of time (kzila) and be ripened by it. Of the three kinds, of defilements, accepted by both the dualist Shaivites and monist Shaivites, the cinavamala comes into being as a consequence of the supreme Lord imposing limitation on himself out of his free Will which covers his real and universal nature. As such, the cinavamala can not be conditioned by time as it has existence only on the mundane level of mciyé. The Advaita Shaivites do not recognise the existence of Time on the level, above Maya. Only the karma and mciyiycimalas can be considered as subject to the influence of time as these exist and operate on the levels below rmiyci and the prakrti tattvas. Secondly, if the theory of the maturation of defilements, is accepted as a precondition for the descent of divine Grace, then one would have to exclude the viglicina-kalas and pralayci kalas, the unembodied and the disembodied beings respectively, from the purview of the operation of divine Grace. Gnly embodied beings or sakalas would be eligible for receiving divine Grace from the supreme Lord. This position is not acceptable to the Advaita Shaivites. Thirdly, if the theory of maturation of defilements is accepted as conducive to the descent of divine Grace, then it would militate against the doctrine of divine freedom (svcitantrya) of the Lord which is the cardinal doctrine of the Advaita Shaivites. The descent of divine Grace constitutes an inseparable part of divine Freedom of the supreme Lord and as such, it must necessarily be unrestricted and unconditional. Abhinavagupta therefore asserts that no causal factors can be adduced for the descent of divine Grace from the supreme Lord on fettered beings as it is an offshoot of the function of anugraha on the part of Paramshiva as has been said above. Abhinavagupta rejects other plausible factors such as the development of intense feeling of non-attachment towards worldly things," achievement of purification of body and mind through personal endeavour propitiation of a particular deity etc. on the ground that they are inconsistent with the doctrine of divine Freedom which the Advaita Shaivites wish to uphold at all cost. The descent of divine Grace on fettered beings is not conditioned by any causal factor, it is a natural, independent and unrestricted act of divine freedom of the supreme Lord.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Though the Advaita Shaivites vehemently oppose the idea of assigning any factor conducive to the descent of divine Grace on fettered souls, looking from the point of view of individual beings, the maturation of the defilements (mala) appears to be the best possible explanation of the Shaktipata. This alone is capable of answering many questions that the rational mind of man can raise and seek answers to. It must however be pointed out that this theory cannot be directly linked to descent of divine Grace which is in its very nature unconditional. The theory of maturation of malas indicates, the state of fitness on the part of a particular fettered being for receiving divine Grace and the development of the capacity in them to hold it. Moreover this theory offers a rationale for the difference in the intensity of divine Grace when it is actually received by a bound creature. In other words the maturation of defilements may be looked upon as the index of the development of the capacity in individual beings for receiving the Grace in appropriately intense form.

From the point of view of the supreme Lord, the descent of divine Grace is an unconditional, perennial and unitive act of divine Freedom. It has been classified under three broad heads in accordance with the degree of its intensity in which it is actually received by fettered beings. These are: the most intense (tivra), intense (madhya) and the mild (manda) forms of the divine Grace (Shaktipata). Abhinavagupta in his Tantrciloka and the Tantrascira has given an elaborate classification of the Saktipiita, dividing each of its three kinds further under three sub-headings thus making a total of nine kinds of Saktipcita in all in so far as its intensity is concerned. These are (1) tivra utkrsfa tivra-madhyasta (3) tivra nikrsta (4) madhya upkfsla (5) madhya madhyastha (6) madhya-nikrsga (7) manda utkrsta (8) mandamatthyastha and (9) manda nikrsta. Saktipaita arranged in the descending order of intensity."

Abhinavagupta has also thrown light on the consequences of the difference in the intensity of Shaktipata or divine Grace which the recipient spiritual adept experiences. For example, he says that as soon as a spiritual adept receives divine Grace of the first kind i.e. the tivra utkfsgfa, all three kinds of defilements are immediately burnt off, his physical body also is simultaneously destroyed, and as a consequence of this, he is immediately restored to his essence i.e. Shiva-nature. Such a fortunate individual is not required to undertake any spiritual discipline, he achieves his goal instantaneously through Shaktipata.

The recipients of divine Grace in the tivra madhyastha form of intensity also do not have to make any personal effort to remove the veils from their intellect and body due to the different kinds of impurities, namely, the rinava, the, mziyiya and the karmamalas' enveloping them with the infusion of divine Grace in very intense form. Their intellect becomes purified. Thus it seems as a perfect medium for the rise of the higher spiritual wisdom spontaneously without the intervention of any external factor. The supreme spiritual knowledge technically called sat-tarka not only illumines their intellect but also restores the divine powers to them which they lost due to Shiva's voluntary self-contraction.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

The recepients of the divine Grace in tivra nikrsta form of intensity are required to resort to the study of scriptures as their intellect is not fully cleansed owing to the mild form of infusion of divine Grace. They have to make efforts to remove their veil of defilements which continue to affect them owing to the mildness of Grace. The recipients of the divine Grace of the madhya utkrsta variety have to approach a spiritual teacher for arousing in them the highest spiritual wisdom. They have to depend on the external agency owing to the mildness of divine Grace received by them. The true spiritual teacher, technically called the sadgura appears before them as the Bhairava Bhattaraka (a form of the supreme Lord) after they are infused with divine Grace to awaken spiritual knowledge in their intellect. Such recipients also do not have to make any personal effort for receiving Grace.

The recipients of divine grace of the madhya madhyastha variety have to strive hard to develop faith in a spiritual teacher's instructions about spiritual knowledge and follow this advice regarding the rites to be performed by them. The performance of prescribed rites helps in cleansing their psycho-physical vehicle for spiritual discipline. The recipients of divine grace of madhya-nikrsta kind are found not to be inclined towards the achievement of the supreme goal immediately after the descent of divine Grace. They generally develop desire for enjoyment of the fruits of spiritual elevation which must be satisfied first. Only then they try to reach the supreme goal.

The recipients of the divine Grace manda utkfsta, madhya manda and manda manda kinds are required to put in greater efforts to achieve the supreme goal. They have to follow rigorous spiritual disciplines, to practice - the anavopaya (lit. the way of contracted monadic souls) to compensate as it were for the mild force or divine Grace. This is because the divine Grace in milder intensity infused into such spiritual adepts is unable to eradicate fully the various defilements from this psycho-physical vehicle. Their progress in the spiritual path is delayed but realization of their Shiva-nature which is their ultimate goal is guarantied.

Very often the recipients of divine Grace in milder intensity are unable to realise that the path leading them to the ultimate Goal has opened up with the influx of the divine anugraha into them._The Malini vijaya tantra mentions the different signs" indicating the influx of Grace into fettered beings. These are five-fold: (i) the development of deep devotion towards Lord Shiva (ii) the efficacy of the mantra (sacred words) noticed in its repetition on japa (iii) achievement of control over all creatures of the world (iv) achievement of success in all undertakings by the spiritual adepts and (v) automatic effortless development of poetic faculty in spiritual adepts. The appearance of these signs shows the beginning of spiritual transformation within the recipients of saktipdta in mild intensity. To sum up, the descent of divine Grace which as a rule is available to individual spiritual adepts only through the medium of a spiritual teacher (Guru) , who opens the path to them to start their spiritual journey to their ultimate destiny. Divine Grace thus holds the key to their spiritual elevation culminating in the realisation of their divine nature, sivatva.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

## References

1. Ishopanisad V. 15.
2. 1.2.23.
3. Kathopanisad 1.2.9
4. Taittiriyopanisad 1, 9.
5. Cf Vedantasara (Sadananda) Section of Mahavakya.
6. Kathopanisad. -
7. Pratyabhijna-hridayam Com under Sec 1.
8. Prat. Hrd. Su. 2.
9. T.A.I, 66 Com P. 105.
10. Quoted in T.A.I. 69 Com. P. 108. Mal. Vij Va I, 89.
11. Opening verse in Prat. Hrd. Ihid Su 10 com.
12. Quoted from Svach. Tantra in Pr. Hd. under Sec 10.
13. Sat trms Tattva Sandoha V. G. Com.
14. Sanda-nirnaya I, 9 Com P. 23 for real nature of Cidanu Sec. T. A. IX, 144-45 Com P. 112.
15. Cf the well known Vedic statement.
16. Cf Isv Prat Isvara-Pratyabhijna-Vimarsini II, 1.2. p. 218.
17. Sat trm tatt. San. V. 5 Com. Ibid. v 5.
18. Tantraloka 1. p. 121
19. Cf Tantraloka XIII V. 279.
20. Cf M.V.V. I 696.
21. Ibid XIII, V. 2.79. pp. 171.
22. Ibid. XIII. V. 2.79. pp. 171.
23. Ibid X, 68 Comm P. 61; Sp. Nir. I, 9 Comm P. 23. Par, Sav V 24 Comm P. 55.
24. Tantraloka IX, 180 p. 139.
25. Ibid. IX, 88 Comm p. 75.
26. Amittaraprakasa paficasika Verse 21-25.
27. Ev. Prat Vim III. 2, 10 comm pp. 254-255.
28. Tan Sdv VIII pp. 80-81.
29. Ibid XI pp. 118 ff.
30. Tantraloka XII pp. 49f. '
31. Malinivijayavarttika I. V. 689-93 p. 65.
32. Tan, Sav XI p. 118.
33. Mal. Vij Va I, 689 p. 65.
34. Tan Sav XI pp. 119-20; Ibid. V. 687 p. 65.
35. Malinivijaysttava Tantra II. 12-18, p. 8.

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# VEDA VYASA AND MAHABHARATA

**Dr. Uttam Singh***

## 1.1 Veda Vyasa

The Mahabharata, the great epic, was authored by Krisna Dvaipayana Vyasa. The life history of Vyasa is shrouded in darkness. His mother was Satyavati,' the step-mother of Bhisma and wife of Santanu. The name of his father was Parasara[2] Krishna Chaitanya writes about the meaning of the name Vyasa, "Krishna seems to have been his given name unless, as some believe, he was know thus because he was clark in complexion. He was called Dwaipayana because he was born in a river is let (dwip means is land). He came to be know as Vyasa because accorcling to tradition -he was the man who first separated, arranged, edited (the words implies all these) the vast corpus of orally transmitted Vedic material into four great compilations which are the form in which they have come down to us."[5] Vyasa's other name is said to be Badarayana due to his having resided at Badarik as rama which was situated in the land of Uttrakhand

A set of scholars regard Vyasa not the author but the arranger of the Mahabh.tratit_ Monier Williams observes, "But the Hindus invest this personage, whoever he was, with a ninibus of mystical sanctity, and assert that he was also the arranger ofvarious other celebrated religious works, such as the Vedas and Puranas. He is called Vyasa, but this is, of course, a mere epithet derived from the Sanskrit verb, vyasa, meaning to dispose in regular sequence, and therefore, would be equally applicable to any compiler."5 Arthur Amackdonell. writes, "When the Mahabharata attributes its origin to Vyasa, it implies it belief in a final redaction, for the name simply means 'Arranger.''' Hopkins considers Vyasa the editor of the Mahabharata rather than the author[7]

Vyasa taught Mahabharata is his disciple Vaisampayana." Vaisampayaria recited this work to lanameiaya during the Sarpasatra (Snake-sacrifice) ' Suta told that he would recite the enlarged edition oflvlahabharata during the sacrifice of saunalyasa`s place ol work was Badrilmsratna. It was the name venue where he imparted the education ofSastras to his four disciples named: Pail, Vaisampayana,jaimini and Sumanad.' ' Sulta is also said to be the disciple of Vyasa.

The Vyasa cave is situated near Saraswati river. Vyasa authored all his works in this cave. Some scholars are ofthe view that Vyasa breathed his past in the holy land of Badrilasrama.'3

---

**Project-Officer**
**Adult & Continuing Education. HP. University, Shimla-5 (HP)**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**1.2 Mahabharata -a glimpse**

The epic was called Jaya' in the beginning." After the inclusion ofsome verses it was named 'Bharata' and ultimately it became 'Mahabharata' due to some more additions. The Mahabharata is considered as the fifth Veda" due to moral teachings and high religious ideals described in it. These have not only been given as teachings but arereflected in the lives and actions ofthe characters.

The work consists of 18 parvas. The Adiparva narrates the early life of the Kauravas and the Pandavas, Draupadi's marriage and the Pandavas' familiarity with Krsna, the hero ofthe radavas. The subject-matter ofthe second parva is the prosperity ofthe Pandavas at Indraprastha and the losing of everything, including Draupadi, by Yudhisthira in a play ofdice with Duryodhana. The Pandavas agree to go into exite for a period of 12 years and to remain in disguise during 13"' year. The forest life ofthe Pandavas for 12 years in the Kamyalsa forest has been described in the Vanaparva. The Virata-parva narrates how the Pandavas spent the thirteenth year in disguise as servants ofVirata, the king ofMatsyas. The preparations for war by the Pandavas have been narrated in the Udyoga»parva because the Kurus deny theirjust demands.

The next five parvas give detailed account ofthe great war in which everyone except the Pandavas and Krsna dies. The funeral rites ofthe dead have been dealt with in the 11"' parva. The subject matter of the next two parvas, isrthe lengthy discourse of Bhisma to Yudhisthira on Rajadharina. The Asvamedha-parva deals with Yudhisthira's coronation and horse-sacrifice and the 15"' parva with the resort to forest ofDhi1.arastra and his queen Gandhari. The internicine condict ofthe Yadavas and accidental death ofKrsna at the hands ofa hunter is the subjecvmatter of Mausala-parva. The 17th parva narrates how the Pandavas get tired oflife and make the great departure to the Merumountain. The Svargarohana-parva narrates the ascent and admission to heaven ofthe Pandavas. Krsna's ancestry, adventures and the future corruptions ofthe Kali age have been described in the Harivamsa-parva.

**1.3 Characteristics of Mahabharata**

Vyasa highlights the characteristics ofthe epic as enshrined in the following verse;

अलंकृकृत शुभैः शब्दैःस्वमन्यैर दिव्यमानुषैः ।
छन्दो–वृतेश्च विविधै अन्वितं विदुषां प्रियम् । ।15

"Emblished with elegant expressions composed in various meteraes (poetical measures) and resplendent with conversations ~ divine and human Mahabharata is mental food of great delight for the intelligentia (thc learned)"

**1.3.1 Characterization**

The characterization of the Mahabharata in par excellence. C. Kunhan Raja hints at the individuality and variety of its characters, "The character delineations are superb, each character keeping up his individuality. Their feelings and emotional manifestation-s and their experiences and reactions to various situations, and the large variety of characters that co me together in the field f all such features make the work a study of human nature_"''



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

### 1.3.2 Sentiment of Quietude

The reigning force of the epic is the sentiment of quietude (santarasa) _l.P, Sinha writes, "W the inmost import ofthe Mahabharata from the literary stand point is the sentiment ofquietude (santa rasa). This santa rasa seen in the Mahabharata through the literary spectacle is integrated with the highest human attainment of 'freedom' (moksa) as the central theme of the Mahabharata seen through the philosophical spectacle," The sentiment of pathos (Karuna) is also prevalent in the Mahabharatafq

### 1.3.3 Figures of Speech

Figures of speech are the ornaments ofthe Mahabharata.2° As Sadhu Ram points out, "They are all couched in the most attractive and power ful language which is embellished with similes, metaphors and various offer charming figures of speech."

### 1.3.4 Suktis

Suktis are also found in this epic." The significance of the Stiktis in poetry has been described by Sadhu Ram in this way, "Another test ofthe supreme artistry ofa poem is the manner in which felicitous ideas and expressions occurring in its pass into the national memory as proverbs and maxims_""

### 1.3.5 Trivarga

The major pursuits of life have been classified into four groups ofvalues, viz., Dharma, Artha, Kama and Moltsa. The leading motive of the great epic 'Dharma' is couched in the simplest yet in the most attractive and powerful language. Dhar a is a very subtle and difficult word to comprehend Dharma finds itself defined in the Mahabharata in the following words:

धारणादधर्म इत्याहुधर्मेण विधष्ताः प्रजाः ।
यत्स्माद् धारणासंयुक्तं स धर्म..... । ।24

Kama is used for libido/sex or desire which is the motivating force of life, Dharma, Artha and Kama have collecactively acquired a famous name 'Trivargaf According to the Mahabharata all the worldly activities are motivated by them." The act of pursuance of Dharma, Ai-tha and Kama should be in close cooperation with one another." The attainment ofMolts.\ or final emancipation is possible only by an escape from Trivarga.

### 1.3.6 Vedas

There are ample examples to prove the fact that Mahabharata is repository of Vedic knowledge. Mahabharata quotes Veda in order to solve controversial matters," Vyasa quotes Vedas to support his views to prove the legality ofthe Niyoga-vidhi" because Vedas are the source ofDharma. This fact is proved by the expressions such as Srutih etc," _

### 1.3.7 Anviksiki (Philosophy)

Different philosophical systems such as Samkhya, Nayaya are traceable in the Mahabharata. Dr. Raclhalcrishnan writes about the Sanikhya philosophy as depicted in this great epic, "In cosmology the Mahabharata accepts the Samkhya theory though not consistently The evolution



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

of the world is described after the samkhya system in many places in the Mahabharata .,., The Samkhya cnu meration of the elements is accepted by the Mahabharata,%'/

1.3.8 Daridaniti (Science of Govt.)

The Mahabharata is not divoid of the knowledge pertaining to Dandaniti (Science of Govt.) for which different terms have been used in it, These are: Rajadharma," Raiasastra," Dandaniti," Arthasastra, '5 Artl1avidya,"* Rajanitisastrav And how charmingly Vyasa describes the significance ofDandaniti:

त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तिस्त्रो विद्या विजानताम्।
ताभिः सम्यक्प्रयुक्ताभिर्लोकयात्रा विधीयते।।[38]

Dandaniti acts as a saviour of Dharma and it is ofgreat help for the king in bringing the people back to the right path," It has widened its scope due to the inclusion of various subjects in it."

**1.3.9 Varta**

Military science, medical science, veterinary science etc. are included in Varta. The king is instructed in the Mahabharata to promote the Varta - agriculture, veterinary science, trade and commerce - which is very mttch essential for the existence ofthe human society." Varta touched new heights in the Kuru country owing to the expertise of Yadhisthira."

The Military Science or Dhanurveda was at its peak during the Mahabharata times. To acquire knowledge ofMilitary Science one had to seek the blessings of the learned Guru. Two categories olweapons have been mentioned in the epic: Divyani (divine) weapons and Manusani weapons (used by the human beings).''' There were four wings in the army: the infantry, cavalry, elephantry and chariots. ''' Ayurveda (Medical Science) finds a prominent place in the great epic Mahabharata. There are instructions for the king to collect all kinds of medicines" and appoint four types of physicians." A large number of efficient surgeons were invited to extract the arrows from the body of Bhisma."

The progress of Veterinary science is also visible in the Mahabharata. Salihotra is regarded as the founder ofthis science. Bahuka" who was the Asvadhyaksa of king Rtuparna of Ayodhaya and Granthikalq (Nakula) who was Asvadhyaksa and Asvabandha of king Virata were famous for imparting the best training to the horses as well as for their medical treatment.

The development of agriculture can take place only when the king is able to please the agriclutre. This very cause of concern finds a place in a question which is put by Narada to Yudhisthira. According to Narada if the people were unhappy, the destruction of the State was unavoidable.[50]

Trade and commerce are the main sources upon which the foundation of the State's economy is laid, therefore, the Mahabharata instructs the king to behave nicely with the merchants" and to engage the people in trade and commerce." There is a description in the epic that the king should work for promoting the industry and for attaining this aim he should employ artisans and make the raw material available to them,5 ' Astrology and Astronomy have been assigned a significant place in the Mahabharata. A brahmin made a forecast that Kunti would be blessed with sons

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# हृत् विमर्श Hrt Vimarsah

**Nihar Purohit***

**अभिमर्शस्वभावम् तत् हृदयम् परमेशितुः।**
**Abhimarsasvabhavam tat hridayam paramesituh**

अभिमर्श (self reflective awareness) is the nature, the heart of the lord.

According to the philosophy of Kashmir Shaivism or Pratyabhij¤à philosophy Hçdaya is saüvid or consciousness, Heart of the lord. It is non different from the lord. Synonym of Hçdaya is bodha (Absolute awareness). Hçdayaü bodha paryàyaþ. It is the center of consciousness. Hçdaya is not a word but a concept denoting the perfection of the divine. It denotes the absoluteness, the fullness of , The Awareness..

Pratyabhij¤à philosophy is a real philosophy and we can apply it in real life situation. Now if we take this one teaching which says, the heart is absolute awareness and hold onto it. The first thing it does is it makes us conscious about present moment. And if we see subtly what is so close in this present moment , we may come across many things but what is left is our own consciousness i.e our own awareness. The reality is, many times we forget that we have to be in present moment. Usually we live in past and future and the result is we do not get established in our heart. In our Indian culture we will hear even from an uneducated person saying , speak from the heart.. Does it mean the physical heart? Of course not. We are mentioning to that space which is very sacred and pure. We all have experienced this sometime in our life. That space which has one thing for sure and that is ànanda (bliss). May be we do not know what actually it is and we are so habituated to give labels that we consider it the function of the physical heart. Kashmir Shaivism gives us the required support and guidance to lead us into recognition of our own heart, , The Heart.. In Tantrasàra Abhinavagupta has given 15 synonyms for vimar÷a- self reflective awareness, which are as follows: Kåla, Sàmarthya, Urmi, Hçdayaü, Sàraü, Spandaþ, Vibhuti, Trisalà, Kàlã, Karùaõi, Càndi, Vàni, Bhoga, Dçk, Nityà This absolute conscious awareness we are talking about is the totality of all, it is the potency in everything, and it is the continuous pulsation in consciousness as consciousness,

---

***PHD, Dharmagama dept., S.V.D.V. B.H.U**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

the anàhata - self reverberating sound. That is why who so ever comes from this space or becomes this space, what he offers is fullness. And the same teaching is conveyed through the famous Upanishad mantra:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥[1]

This is perfect, that is perfect. From perfect what comes forth is perfect. When perfection is taken from perfection, what remains is perfection. All this is perfect.

**In Srimadbhagvad gita it is said,**

हृद्देशेर्जुन तिष्ठति[2]

**O Arjuna ! He abides in the core of 'The heart'.**

Here hridaya is not used, as plural, it is singular. Singularity of consciousness, oneness, uniqueness of consciousness is hçdaya .That reality is none other than atman, the uniqueness of character of lord by which he is not only the creator but is the center of one consciousness. Present Past & future everything is consciousness. If we focus on this word hçdaya it can be divided into hr + da + ya.

- Hr harane-denotes removal of contracted state, shifting from vyasti (differentiation or limitation) to samasti (oneness or expansion).
- Da dane - sukham dadàti, gives happiness. It is the delight of merging with the Self
- Ya ina gatau - moves uninterruptedly

This means, when we approach Hrdaya it takes away the contracted state and we get established in the expanded state of the heart which is continuously and uninterruptedly moving i.e it continuously reflects within itself , ever new, thus offering us permanent happiness or bliss.

There is also another interpretation to understand Hçdaya. It can be seen as hrt + aya.

- Hrt is the supreme consciousness base of all experiences.
- Aya outwardly means knowledge of varied objects and inwardly means advancing of mind (knowledge) towards the heart.

Hence Hçdaya means advancement of mind (knowledge) into the supreme consciousness. We can also see it as merging in the supreme consciousness. But how is it for a common man or even for a sàdhaka? It is said that heart is there still it is not there. It exists in every human being but is not recognized as if blades of grass on the path are not known by someone sitting in a chariot. But still if we see our day to day language we do see it being used. When we want testify any truth or speak sweet we say please take your heart into consent and then speak the truth or the heart always speaks the truth. Or when we hear something which we like, we immediately say this touched my heart. The point we want to consider is whether the word referred here is mentioning the physical heart which we have or something else. Does everybody know what they are saying about or referring to. When we analyze it we may see that it is not about the physical heart but we are mentioning a space or a state which is full of love and divinity. It is actually a state of being, state

---

1. Isavasya Upanishad
2. Srimadbhagvad gita 18.61



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

of awareness. We all are on a journey. This journey is not about going somewhere but it is about not going anywhere, it is about recognition here and now. It is about discovering something which we already have. It is just that we have forgotten it. This discovery is not very easy because we are not discovering somebody who is other than us but we are discovering our own self. It is not outside but deep within us. To help with the discovery we have our scriptures and they have specific directions for us including milestones so that we know whether we are progressing in the right direction and how far we have gone. So before knowing the means we will have to know how we have come into being. Saints gives the answer in a very mysterious way, They say, We are born out of Gods ecstasy. We are completely wrapped in his ecstasy, sustained in His ecstasy..3 So the question in mind is what is God's ecstasy, his ananda sakti? Acharya Abhinavagupta gives a beautiful answer to this in his work Tantràloka. He says,

तयोर्यद्यामलं रुपं संघट्ट इति स्मृतः।
आनन्दशक्तिः सैवोक्त यतो विश्व विसृज्यते॥
परापरात्परं तत्त्वं सैषा देवी निगद्यते।
तत्सारं तच्च हृदयं स विसर्गः परः प्रभुः॥[4]

The merging or the union of Siva and Sakti is the energy of bliss (ananda Sakti) from which the entire universe comes into being, a reality beyond the Supreme and the non supreme. It is called the Goddess, the essence, 'The Heart' and it is the Supreme outward flowing Lord as creation. , It is very clear that when we are connected with the universal heart, Hçdaya, when we possess the state of absolute awareness then we are connected with our own ànanda Sakti. If this ànanda Sakti is present every moment then why is it that we are not able to access it? For sure there are obstacles in the way of our discovery. So before moving onto the discovery we should know these obstacles and how we are going to get over them. Another question can be asked, can we ourselves do it or we need some help. The scriptures have a mystical way of naming these obstacles and they are called granthis or knots. They say there are 3 main knots called Brahmagranthi, Visnugranthi and Rudragranthi.

. Brahmà is recognized as the power of creation. When Brahmagranthi is blocked it conceals true vision and creates a sense of separation. It is located at the mulàdhara cakra.

. Visnu is recognized as the power of sustainence . When this knot is blocked, it conceals the vision of divinity within which everything is sustained. Hence it brings lack in everything. It is located at the anàhata cakra.

. Radra is recognized as the power of dissolution. If this knot is blocked person cannot see beyond his illusion; the knot conceals his true nature. He cannot have the unified vision. It is located at the ajna cakra.

These are not simple knots which can be broken but are densely filled with our past saüskàras. They are so strong that it is impossible for a limited being to get free from these knots. So what is the upàya, means to overcome them. The Siva sutra says,

**3. Enthusiasm Swami Chidvilasananda**
**4. Tantrasloka 3.68cd-69**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरुरुपायः।।

The Guru, (a realized being) is the only means.[5]

Only the Guru can break these granthis and make us free of them. Guru does this by bestowing Saktipàta, the unfoldment of grace or emergence of intuitive power which becomes our guide on this journey which is also known as anugraha or grace, the fifth act of Siva. The Siva sanhità describes the mysterious process in this way,

सुप्ता गुरुप्रसादेन जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयो पि च।।[6]

When the sleeping Goddess Kundalini is awakened through Guru's grace, then all the cakras and knots are pierced. As long as Kundalini Sakti is asleep the ànanda÷akti also remains dormant. The moment ànanda Sakti becomes active because of Guru's grace the disciple receives the mantra. The essence of the mantra is the recognition that I am the Self which is already there in us, is rekindled. Scriptures reveal that through the Guru we get two precious gems First Mantra virya and second Mudra virya. (Virya means the potency or power and mudrà means the pose or the state of being) Mantra virya is tasting the experience that I am the Self and Mudra virya is being established in it. Mantra leads us to Mudra. Mudra virya offers us Khecari samya.

खे ब्रह्मणी अभेदरुपे स्थित्वा चरति इति खेचरी।

**Khe brahmani abhedarupe sthitva carati iti khecari.**

The pose in which one moves (shines) about by being one with Brahman (Self) is called Khecarã . So what are the steps involved so that we can be prepared to experience this sublime state or pose. Our scriptures are ready to support us with this. Abhinavaguptapadàcarya gives us a clue in tantraloka to make this state, our state forever. He says,

चितः स्वातन्त्र्यसारत्वात् तस्यानन्दघनत्वतः।
क्रिया स्यात्तन्मयीभूत्यै हृदयाह्लाददायिभिः।।[7]

The essence of Consciousness is freedom and the essence of freedom is a mass of bliss, ànanda. So in order to attain a state of identity with and absorption in Consciousness, the ritual actions that are performed should employ elements that bring joy to the heart. The ritual action can include meditation, chanting, mantra repetition, offering selfless service, prayer, contemplation, satsa¤g and whatever that brings joy to the heart. We need to have the bhàva of samàvesa in every action of ours. Recognition that I am the Self is the knot that has to be pierced and that is done by s§araõa i.e. continuously having this awareness of the Self at all times. The Siva sutraputs this technique in a beautiful way,

हृदये चित्तसंघट्टाद्दृश्स्वापदर्शनम् ।[8]

When his thoughts are diverted to the center of Consciousness (hçdaya) then he feels one

---

**5 Siva sutraII-6**
**6 Siva sutra 4.13**
**7 Tantraloka 26.60cd-61ab**
**8 Shiva Sutras I - 15**



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

with the existence of Consciousness, in the objective world and also where there is no trace of objectivity (subjective world).

Here the word svàpa means void. It is the subjective state where there is no trace of objectivity. When we make our mind enter into the light of consciousness then our mind feels this whole universe as one with that universal being. We remain in the subjective and the objective world as well as transcend them. Both of them happens simultaneously as there is unity consciousness.

The practices are to be done with regularity; the plant does not grow overnight neither does our goal is achieved overnight. This is a journey which has to be enjoyed because actually there is no goal to be achieved. The process itself is the result. The journey itself is the goal as the point itself is the line; so let us enjoy this process and completely surrender ourselves to it.

***In Kasmir Saivism surrender means merging in the Self, forgetting our limited selves, forgetting that we as 'I' exist. It is to constantly experience the freshness of abhinava awareness and let It reveal itself.***

*Pandit Vrajvallabh Dwivedi was my dearest teacher. I was very fortunate to have learnt from him. I was fortunately the last Indian student to have studied with guruji for almost 3 years uninterruptedly. It is only his blessing if I am able to articulate even a few words.*
*Apart from his scholarly expertise I was emensely impressed with his personality. He never posed as a scholar. He always accepted his limitation regarding spiritual practice and was extremely truthful. He was very punctual in teaching, would begin at right time and end at right time. This went on forever till I learnt from him. He was also very particular in his approach and the most important of him was his clarity and authenticity. I was blessed that I could learn from him , from a disciple of M M Gopinath kaviraj. He loved me very much and I am very proud of the fact that I was the only student whom he taught in our mother tongue gujarati.*
*His teachings and his benevolent personality will always remain in my heart. I always would feel his blessings and his over powering love. As he was so good at heart I am offering my gratitude in form of this small article on ùdym The heart which is actually saüvid or consciousness.*

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

# THE ROOT AND EXPLANATION ON THE SUTRA OF RECOLLECTING THE TRIPLE GEM

**Dr. Tashi Tsering***

## THE SUTRA OF RECOLLECTING THE TRIPLE GEM

**I prostrate to the omniscient one.**

Thus, the Buddha, bhagawan, tathagata, arhat, perfectly enlightened the learned and virtuous, the sugata, the knower of the world, the charioteer and tamer of beings, the unsurpassable one, the teacher of gods and human beings, is the Buddha bhagavana. The tathagata is in accord with all merit. He does not waste the roots of virtue. He is completely ornamented with all patience. He is the basis of the treasures of merit. He is adorned with the minor marks. He blossoms with the flowers of the major marks. His activity is timely and appropriate. Seeing him, he is without disharmony. He brings true joy to those who long with faith. His knowledge cannot be overpowered. His strengths cannot be challenged. He is the teacher of all sentient beings. He is the father of bodhisattvas. He is the king of noble ones. He is the guide of those who journey to the city of nirvana. He possesses immeasurable wisdom. He possesses inconceivable confidence. His speech is completely pure. His melody is pleasing. One never has enough of seeing him. His form is incomparable. He is not stained by the realm of desire. He is not stained by the realm of form. He is not affected by the formless realm. He is completely liberated from suffering. He is completely and utterly liberated from the aggregates (skandhas). He is not possessed with constituents (dhatus). His sense fields (ayatanas) are controlled. He has completely cut the knots. He is completely liberated from extreme torment. He is liberated from craving. He has crossed over the river. He is perfected in all the wisdoms. He abides in the wisdom of the Buddha bhagavans, who arise in the past, present and future. He dwells on the stage where he sees all sentient beings. All these are the perfect virtues of the greatness of the Buddha bhagavan.

---

***Associate Professor in Sakya Philosophy**
**Dean of Indian and Four Tibetan Buddhist Schools**
**Central University of Tibetan Studies,**
**(Under the Cultural Department of Government of India)**
**P.O.Sarnath.Varanasi. U.P. India**

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

The holy dharma is good at the beginning, good in the middle, and good at the end. It's meaning is excellent. Its words are excellent. It is uncorrupted. It is completely perfect and completely pure. It completely purifies. The Bhagavan teaches the dharma well. It brings complete vision. It is free from sickness. It is always timely. It directs one further. Seeing it fulfills one's purpose. It brings discriminating insight for the wise. The dharma that is taught by the Bhagavan is revealed properly in the Vinaya. It is without contradiction. It is pithy. It is trustworthy and puts an end to the journey.

As for the sangha of the Great Vehicle, they enter completely. They enter insightfully. They enter straightforwardly. They enter harmoniously. They are worthy of veneration with joined palms. They are worthy of receiving prostration. They are a field of glorious merit. They are completely capable of receiving all gifts. They are an object of generosity. They are a great object of complete generosity.

## EXPLANATION FOR THE SUTRA

## THE SUTRA OF RECOLLECTING THE TRIPLE GEM

Recollection or mindfulness refers to thinking or keeping the mind pre-occupied with excellent qualities that really existed in the Buddha, Dharma and Sangha. 'Thus' means these excellent qualities are as follows:

### THE BUDDHA

**Bhagvan Buddha** is, 'Bhagvan' 'Bhag' means defeating the four demons (Maras) and 'van' means being endowed with six excellent fortunes. Buddha defeated the (1) 'Mara of the Divine son' just before attaining 'Buddhahood' at Bodhgaya under the Bodhi tree, and, thereafter, he defeated the (2) 'Mara of Defilement' under that very Bodhi tree and attained complete Buddhahood. He defeated the (3) 'Mara of Death' at Vaishali through extension of his life for three more months and defeated the (4) 'Mara of Aggregates' at Kushinagar entering in Mahaparinirvana. In order to avoid the God as a 'Creator', Tibetan translators added 'Des' (The Transcendental) after 'Bhagvan' (Chom dan des). 'Buddha' is translated into 'Sangye' in Tibetan which consists of two words. 'Sang' means who has awakened from the sleep of ignorance and 'Gye' means who has a vast knowledge of the phenomena. But in Sanskrit, the word 'Buddha' consists of both of the Tibetan meaning and, hence, there is no need to separate it as it is done in Tibetan. Six excellent Fortunes are: 1.Power 2.Body 3.Glory 4.Fame 5.Wisdom, and 6. Effort.

- **Thus Gone One (Tathagata)** means attained Buddhahood through practicing the same path as practiced by the previous Buddha or who have reached ultimate goal.
- **Foe Destroyer (Arhat)** means, as the enemy harms oneself and others in the same manner emotional affliction harms for oneself and others. Therefore, emotional affliction is called 'enemy' or 'foe' and this enemy is completed uprooted by the Buddha. So, the Buddha is called 'The Foe Destroyer'.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

- **The Perfectly enlightened** means one who has complete knowledge concerning all phenomena, and one who is not like the Shravak Foe destroyer, who has four types of non-defiled darkness and partial knowledge.
- **The Learned and Virtuous One (or one who is endowed with knowledge and feet):** Here, 'knowledge' refers to having proper view and 'feet' refer to having knowledge of how to proceed on rest of the noble paths, such as the path of meditation and that of no more learning.
- **Gone in Bliss (Sugata)** means the act of going from causal joyful path to a joyful result.
- Knower of the World means having the knowledge of the manner of emergence of internal sentient beings and the external world in the most subtle way.
- Unsurpassable Charioteer and Tamer of Beings mean one who teaches in accordance with the mental capacity of sentient beings and applies them to Dharma. Therefore, he is 'the Charioteer and Tamer of Beings'. He is also 'Unsurpassable' since he brought of a very wrathful and passionate person to the path of Dharma such as Angulimala, Nanda and so forth.
- The Teacher of gods and human beings because gods and humans are the main disciples of the teaching.
- The above mentioned excellent qualities are attributed to Bhagvan Buddh. The Thus Gone One/ (Tathagata) is in accordance with the causes of all merits. He never wastes the roots of virtue.
- The excellent qualities of the exalted body of the Buddhas are being Completely ornamented with patience, means because of practicing patience in lives his body is endowed with many excellent qualities such as, a special height, golden colour, a distinctive personality and so forth.
- Basis of the treasures/immeasurable merit means each of the bodily hair pores of the Buddha is similar to the merit of all the sentient beings multiplied into ten.
- Adorned with the minor marks means endowed with 80 minor marks explained in 'The Ornament of Realization' of Maitriyanath.
- Blossoms with the flowers of the major marks means 32 major marks are like flourishing flowers. (Explained in 'The Ornament of Realization' of Maitriyanath).
- Timely and appropriate activities means any physical activity of walking, sitting, sleeping etc. is neither too fast nor too slow and in accordance with the situation.
- Without disharmony when seeing him means when anybody sees his physical activity of taking food and the verbal activity of talking, nobody dislikes those activities thinking them to be wrong.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

- Brings true joy to those who have faith means produces proper joy for those who have faith in the Buddha.
- His knowledge cannot be overpowered means Buddha's knowledge/wisdom cannot be overpowered by other non-Buddhist or Shravakas.
- His strength cannot be challenged means Yaksha and so forth cannot challenge Buddha's strength.
- The exalted activities of benefitting sentient beings are as follow:
- Teacher of all sentient beings means teaching the path of happiness to all sentient beings.
- Father of Bodhisattvas means all the Bodhisattvas are produced from the teachings of the Buddha. Therefore, the Buddha is like a father of the Bodhisattvas, and Bodhisattvas are like sons of the Buddha. So, Bodhisattvas are called 'Sons of the Victorious One'.
- King of noble persons means the Buddha is the highest amongst noble persons.
- Guide to those who journey to the city of Nirvana means leading those who make an effort to attain liberation.

**The exalted deeds of the mind of the Buddha are as follows:**

- Possessing immeasurable wisdom means he has immeasurable wisdom of methods of benefiting other sentient beings because of knowing the aspirations of his disciples.
- Possessing inconceivable confidence means having an extraordinary teaching method.
- Completely pure speech means faultless speech.
- Pleasing melody means endowed with 60 melodious speeches.
- The Exalted deeds of the body are as follows:
- One never has enough of seeing him (or not enough satisfaction of seeing him) means people want to see the body of the Buddha more and more without satisfaction.
- Incomparable form means there can be no comparison with the body of the Buddha.
- Not stained by the realm of desire means not affected by the fault of the realm of desire, such as, longing for a desirable object as a beautiful body or the abandonment of emotional affliction of this realm.
- Not stained by the realm of form means not affected by the fault of the realm of form, such as, clinging to the joy of concentration of the realm of form and so forth or abandonment of emotional affliction of such a realm.
- Not affected by the realm of formlessness means not affected by the fault of formless realm, such as, clinging to the concentration of formless realm makes the thinking space unlimited or abandonment of the emotional affliction of formless realm.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

- Completely liberated from suffering means the Shravakas have physical, verbal and mental faults, such as, stepping on a snake, laughing like a horse and so forth, but the Buddha has no physical and mental suffering at all.
- Completely liberated from the aggregates means Buddha has attained complete liberation. Therefore, he is freed from taking birth in the cyclic existence in the manner of aggregates.
- Does not possess constituents (Khams) means not afflicted by emotions depending on objects and human consciousness.
- Sense fields (kye ched= skye mched) are controlled means the Buddha has abandoned the emotional affliction depending on sense fields.
- Completely cutting the knots means Buddha has completely cut all the craving knots emerging from having contact with the object.
- Completely liberated from extreme torment means Buddha is freed from an anxiety/tension emerging from not meeting with the pleasant ones.
- Liberated from craving means Buddha is freed from craving which comes under the three realms.
- Crossed over the river means as river takes a thing by force from the stream, in the same manner, emotional affliction takes a person's mind by force. But the Buddha is freed from this. Therefore, he is said to have 'crossed over the river'.
- Perfected in all wisdom means because of omnipresent wisdom the Buddha knows all the cognizable things.
- Abiding in the wisdom of the past, present and future Buddha means knowing that there is no difference at all in the exalted wisdom of the Buddha of the three times.
- Does not abide by Nirvana means not abiding in Shravaka's Nirvana and taking frequent birth in the cyclic existence solely to benefit innumerous sentient beings.

Abiding by ultimate perfection means abiding by Dharma Kaya (Natural Body) and also helping sentient beings which is superior to the rest of the Shravakas and the noble Bodhisattvas since in one single moment the Buddha can abound in emptiness and also benefit sentient beings.

**The Summarization is:**

Dwelling on the stage seeing all sentient beings means dwelling on a place where he can realize aspiration, propensity and so forth of all sentient beings.

All (the above mentioned) these are the perfect virtues of the greatness of Bhagwan Buddha.

**DHARMA**

The holy Dharma/teaching refers to discourse, realization and liberation/cessation. The teaching of Discourse and Realization belongs to Truth of Path and the teaching of Cessation belongs to the



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Truth of Cessation among the four noble truths.

- **Good at the beginning** means when the teaching is heard at the beginning one develops convince faith. Therefore, the holy Dharma is called 'good at the beginning'.
- **Good in the middle** means when the teaching is contemplated after hearing one can acknowledge the benefit received from the teaching and this produces joy. Therefore, the holy Dharma is called, 'good in the middle'.
- **Good at the end** means when the teaching is meditated at the end, it becomes a cause to perceive reality. Therefore, the holy Dharma is called, 'good at the end'.
- **Excellent meaning** means teaching two truths in the proper way.
- **Excellent words** means easy to grasp the meaning, having no confused words.
- **Uncorrupted (or not mingled/mixed)** means since it teaches the virtue of selflessness and the phenomena of emptiness which is uncommon with the non-Buddhist.
- **Completely perfect** means it abandons emotional affliction of all the three realms and not like non-Buddhist meditation which is incapable of abandoning emotional affliction of the Peak of Cyclic Existence.
- **Completely pure** means seeing through emptiness.
- **Completely purifies** means purification of (or free from) the subject and object duality.
- **The Bhagvan teaches the Dharma well** means the Buddha teaches the path of liberation in the rightful way and does not divert or lead the disciple in the wrong way.
- **Brings complete vision** means teaches the authentic characteristics of two truths.
- **Free from sickness** means free from two obscurations of emotional affliction and cognizance.
- **Always timely (or uninterrupted time)** means no demotion from the noble path.
- **It directs one further** means leading towards the sphere of uncontaminated phenomena after abandoning suffering and its origin.
- **Seeing it fulfill one's purpose** means there exist the benefit of attaining the supreme result because of seeing the Dharma.
- **It brings insight recognition for the wise** means this teaching of emptiness can be seen only by spontaneous wisdom gain through meditation by a noble person and not through the concept of an ordinary person.
- **It perfectly reveals Vinaya/discourse taught by the Buddha** means the teaching given by the Buddha and realized by spontaneous wisdom is also based on the discourse of the Buddha and not by an ordinary person.



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

- It is renunciation means the teaching can renounce the person from the cyclic existence.
- **It causes one to arrive at perfect enlightenment** means by relying on the discourse one can lead to perfect enlightenment, the state of Buddhahood, which is the ultimate goal of existence of all sentient beings.
- Without contradiction means emptiness which is to be realized is the same and there is no difference in the manner of experiencing it by a noble person.
- It is pithy means spontaneous wisdom can realize various kinds of phenomena of impermanence, suffering, emptiness, selflessness and so forth.
- Trustworthiness means all the virtuous phenomena depend on the sphere of the Dharma and that very sphere of Dharma is the ultimate Jewel of Dharma.
- Ends movements means ceases the activities of the mind and other mental factors.

**SANGHA**

The Sangha of the Greater Vehicle comprises the following:

- Entering completely/Abiding perfectly means abiding by three kinds of morality.
- Entering insightfully/Abiding intelligently means abiding by immeasurable concentration.
- Entering/Abiding straightforwardly means not abiding by the two extremes of eternalism and nihilism.
- Entering/Abiding harmoniously means harmonious in both view and behaviour.
- Worthy of veneration with joined palms means being able to perceive profound emptiness.
- Worthy of receiving prostration means endowed with the powers of benefitting others without caring for oneself by virtue of great compassion.
- Field of glorious merit means endowed with great merit.
- Completely capable of receiving all gifts means when anyone offers a gift similar to the size of the three realms to that Bodhisattva, the gift does not become obstacle to the Bodhisattva and it becomes a cause to benefit the poor people.
- Object of generosity means that Bodhisattva becomes an uncommon object of offering.
- Great object of complete generosity means because of offering to those Bodhisattvas, it becomes a cause to receive an imperishable effect forever.

**BHAVATU SARVA MANGALAM**

******



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

**शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्**

डी. 35/77 जंगमवाड़ीमठ

वाराणसी- 221001

ग्रन्थमाला सं. 91 978-93-82639-31-2

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri